* श्रीगणेशायनमः *

गुरुमण्डल का २३ वां पुष्प

मार्कण्डेय पुराण



(सप्तशती पर शान्तनवी टीका के साथ)

महर्षिकृष्णद्वैपायनव्यासदेवजीकृत

मनसुखरायमोर

५. क्लाइव रो

कलकत्ता—१

॥ श्रीगणेशायनमः ॥

मार्कण्डेयपुराण के विषय में

श्रीनन्दनन्दन वृन्दावन विहारी भगवान् राधामुकुन्द की असीम अनुकम्पा से गुरुमण्डल ग्रन्थमाला के ८३वें पुष्प रूप से प्रथित श्रीमार्कण्डेय पुराण विद्वज्जन के करकमलों में प्रस्तुत करते हुए अतीव आनन्द हो रहा है। इस पुराण के लिये वैदेशिक विद्वानों का मत है कि यह कई स्थानों पर प्रक्षिप्तअंशों से पूर्ण है और सम्बन्धित कथाख्यानों की पूर्वापर सन्दर्भों से समीचीन सङ्गति नहीं बैठती है। सुतरां, यह पुराण महापुराणों की गणना का विषय होकर भी लक्षणों से उस परिभाषा के प्रकोष्ठ में समाविष्ट नहीं होता। यह पुराणों की गणना में सातवां है।

ब्राह्मं पाद्मं वैष्णवं च शैवं भागवतं तथा।
तथान्यं नारदीयं च मार्कण्डेयं च सप्तमम्॥

[मा० पु० अ० १३७]

प्रस्तुत ग्रन्थ की विषयानुक्रमणिका नारदपुराण के पूर्वभाग की ८७ की अध्याय में इसप्रकार प्रतिपादित है :—

मार्कण्डेयपुराण के प्रतिपाद्य विषयों को बताते हुए नारदपुराण में कहा गया है कि इसमें शकुनिगण (पक्षियों) को उद्दिष्ट कर सभी धर्मों का

यत्राधिकृत्य शकुनीन् सर्वधर्मनिरूपणम्।
मार्कण्डेयेन मुनिना जैमिनेः प्राक् समीरितम्॥

कथा, अवीक्षित चरित्र और किमिच्छकव्रत का कीर्तन है। इनके साथ-साथ नरिष्यन्त का चरित्र और परमप्रतापी इक्ष्वाकु राजा का चरित्र वर्णित है। तुलसी के चरित्र के बाद श्रीरामचन्द्र की पुण्य सत्कथा, कुश-वंश का आख्यान और सोमवंश का गुणानुवाद निरूपित है। पुरूरवा राजा की कथा के अनन्तर परमतेजस्वी नहुष राजा का अद्भुत आख्यान और पुण्य-श्लोक परम भागवत ययाति का पवित्रकीर्ति सम्पन्न चरित्र और उनके आज्ञाकारी पुत्र के नाम से यदुवंश प्रचलित हुआ उनका कीर्तन प्रतिपादन किया गया है। श्रीकृष्णभगवान् का बालचरित्र उनके द्वारा मथुरा में कंसको वध कर उग्रसेन और माता देवकी का दुःख निवारण फिर द्वारका चरित्र और भगवान के सम्पूर्ण अवतारों की कथा वर्णित है। इसके पश्चात् सांख्य का सिद्धान्त और प्रपञ्च असत्त्व का सविस्तर निरूपण है। इसके अनन्तर महर्षिमार्कण्डेय का चरित्र वर्णन है। तत्पश्चात् इस पुराण श्रवण की महिमा का फल निरूपित है। हे वत्स! जो मनुष्य इस श्री मार्कण्डेय नामक पुराण को भक्ति पूर्वक एवं आदर पूर्वक सुनता है वह परमगतिको प्राप्त होता है। जो इसे अवि-कल श्रोतृवृन्द को सुनाता है उसे भगवान् आशुतोष शङ्कर जी का शैवलोक मिलता है। जो कार्तिक मास में सोने के हाथी के सहित इस महापुराण को लिखकर विद्वान् द्विजवर्य को देता है उसे ब्रह्मपद मिलता है। जो इस पवित्र महिमामय मार्कण्डेयपुराण की अनुक्रमणिका को सुनते और सुनाते हैं उन्हें अभिवाञ्छित फल मिलता है।

मनूनां च कथा नाना कीर्तिताः पापहारिकाः।
तासु दुर्गाकथाऽत्यन्तं पुण्यदा चाष्टमेऽन्तरे॥
तत्पश्चात्प्रणवोत्पत्तिस्त्रयीतेजः समुद्भवः।
मार्त्तण्डस्य च जन्माख्या तन्माहात्म्यसमाश्रिता॥

प्रतिपादन किया गया है। यह विषय जैमिनि ऋषि को मार्कण्डेयजी ने पहले बतलाया था। सर्वप्रथम धर्मसञ्ज्ञक पक्षीगण का जन्म निरूपण, इनके पूर्व जन्म की कथा और दिवस्पति (इन्द्र) द्वारा इन्हें शाप फिर श्रीबलरामजी का तीर्थयात्रा। द्रौपदी के पुत्रों का आख्यान, पुण्यप्रदायक हरिश्चन्द्र का पवित्र चरित्र आडीबक (गृध्र और बक) का युद्ध पिता पुत्र का आख्यान फिर दत्तात्रेय की कथा, हैहय कार्तवीर्यार्जुन का महाख्यानयुक्त चरित्र निरूपित है। महात्मा मदालसा का अद्भुत आख्यान और चक्रवर्ती सम्राट अलर्क का चरित्र वर्णन है। आगे पुण्यमयी नव प्रकार की सृष्टि का प्रतिपादन है। सृष्टि के कल्पान्तकाल का निर्देश, यक्ष्म (यक्ष) के द्वारा सृष्टि निरूपण है। रुद्रादि की सृष्टि, द्वीपचर्या आदि का सम्यक निरूपण, सम्पूर्ण चतुर्दश मनुओं की पापहारिणी महत्त्वपूर्ण कथायें उनमें अष्टम मन्वन्तर में भगवती आद्या महाशक्ति के प्रथम मध्यम और उत्तम चरित्रों सहित महाकाली, महालक्ष्मी एवं महासरस्वती की पुण्यदायिनी कथा सविस्तर वर्णित है। तत्पश्चात् प्रणव (ओङ्कार) का आविर्भाव और त्र्यम्बिकेश्वर के उद्भव का वर्णन सूर्यभगवान् की उत्पत्ति और सूर्य के माहात्म्य का निरूपण वैवस्वत वंश का समाख्यान और उसके बाद राजर्षि वत्सप्रीका चरित्र है। महात्मा खनित्र की पुण्य

पक्षिणां धर्मसञ्ज्ञानां ततो जन्मनिरूपणम्।
पूर्वजन्म कथा चैषां विक्रिया च दिवस्पतेः॥
तीर्थयात्रा बलस्याऽतो द्रौपदेयकथानकम्।
हरिश्चन्द्रकथा पुण्या युद्धमाडीबकाभिधम्॥

पितापुत्रसमाख्यानं दत्तात्रेयकथानकम्। हैहयस्याऽथचरितं महाख्यानसमन्वितम्
मदालसा कथाप्रोक्ताह्यलर्कचरितन्तथा। सृष्टिसङ्कीर्तनं पुण्यं नवधापरिकीर्तितम्
— — — — यक्ष्मसृष्टिनिरूपणम्। रुद्रादिसृष्टिरप्युक्ता द्वीपचर्यानुकीर्तनम्

ऐसी स्थिति में भगवान् वेदव्यास की यह यथावदुपलब्धकृति ही सन्तोषाधायक होगी। हमें बहुत ही प्रसन्नता है कि पुराणों के हस्तलिखित ग्रन्थों की प्रतियों से हमारे गुरुमण्डल ग्रन्थमाला में प्रकाशित पुराणों के पाठ· भेद की तुलना के लिये वारम्वार कृपालु विद्वद्वृन्द से सादर प्रार्थना करने का इस वार श्रीमार्कण्डेयपुराणके प्रकाशन समाप्तिपर फण से छत्री माहेश्वर (मध्य प्रदेश)से श्रीमान् परमपूज्य शिवचैतन्यजी वर्णी द्वारा सविशेष मार्कण्डेयपुराण की हस्तलिखित प्रतिके भेजनेका पूर्ण साहाय्य मिला। वर्णीजीके कथनानुसार यह प्रति २०० वर्ष पुरानी है। दुर्गासप्तशती के प्राधानिक, वैकृतिक और मूर्तिरहस्यों का इस हस्तलिखित पुराणप्रति में अविकल अध्याय प्रतिपादन-पुरःसर निरूपण है। अब भी मेरी हार्दिक इच्छा है कि २००० श्लोक जो अनुपलब्ध है उन्हें किसी भी प्रख्यात हस्तलिखित ग्रन्थ भाण्डार में से उपलब्ध करवाकर जो महोदय विद्वद्वर्ग इस पुराण को पूर्ण करने में श्रीमान् शिवचैतन्य जी वर्णी द्वारा प्रस्तुत आदर्शानुसार हमें अपना पथप्रदर्शन करेंगे उन्हें सभी पुराणप्रेमी साभार कृतज्ञता प्रदर्शित करेंगे। 'सौभाग्य से इस पुराण के उपान्त्य भाग ही अनुपलब्ध हैं। इसलिये उन्हें हम परिशिष्ट में ग्रन्थ में सम्मिलित कर अपने कर्तव्य का पालन करेंगे। वर्णीजी के पुराणोद्धारार्थ इस प्रयत्न का मैं ऋणी हूँ।

रहस्य-त्रय हमें परिशिष्ट में इसलिये देना पड़ा कि सम्पूर्ण ग्रन्थ के

यस्तु व्याकुरुते चैतच्छैवं स लभते पदम् ॥
तत्प्रयच्छेल्लिखित्वा यः सौवर्णकरिसंयुतम् ।
कार्तिक्यां द्विजवर्याय स लभेद् ब्रह्मणः पदम् ॥
शृणोति श्रावयेद्वाऽपि यश्चानुक्रमणीमिमाम् ।
मार्कण्डेयपुराणस्य स लभेद्वाञ्छितं फलम् ॥

इसप्रकार हम देखते हैं कि उपर्युक्त अनुक्रमणिका में वर्णित नरिष्यन्त चरित्र के बाद हम के आगमन के अनन्तर प्रस्तुत मार्कण्डेयपुराण में उपसंहारात्मक श्लोकों के साथ साथ ग्रन्थ समाप्ति हो जाती है। इसके आगे अबतक के प्रकाशित मार्कण्डेयपुराण की प्रतियों में नहीं मिलता। अतएव श्लोक संख्या प्राय ७००० उपलब्ध है। मत्स्यपुराण में इसकी श्लोक संख्या नौ हजार वर्णित है।

"यत्राधिकृत्य शकुनीन् धर्माधर्मविचारणा।
व्याख्याता वै मुनिप्रश्ने मुनिभिर्धर्मचारिभिः॥
मार्कण्डेयेन कथितं तत्सर्वं विस्तरेण तु।
पुराणं नवसाहस्रं मार्कण्डेयमिहोच्यते॥"

अर्थात् पक्षिगण को अधिकृत करके धर्म एवं अधर्म का सिद्धान्ततः प्रतिपादन, धर्म के पालन करने वाले मुनिवृन्द द्वारा प्रश्नोत्तर रूप में श्रीमार्कण्डेय द्वारा सविस्तर कहा गया है। यही ९००० श्लोक वाला मार्कण्डेयपुराण प्रसिद्ध है।

वैवस्वतान्वयश्चापि वत्सश्चास्य चरितं ततः।
खनित्रस्य ततः प्रोक्ता कथा पुण्या महात्मनः।
अविक्षिच्चरितं चैव किमिच्छिव्रतकीर्तनम्॥

नरिष्यन्तस्य चरितं इक्ष्वाकुचरितं ततः। तुलस्याश्चरितं पश्चाद्रामचन्द्रस्य सत्कथा कुशवंशसमाख्यानं सोमवंशानुकीर्तनम्। पुरूरवः कथा पुण्या नहुषस्य कथाद्भुता ययातिचरितं पुण्यं यदुवंशानुकीर्तनम्। श्रीकृष्णबालचरितं माथुरं चरितं ततः द्वारकाचरितं चाथ कथा सर्वावतारजा। ततः सांख्यसमुद्देशः प्रपञ्चासत्त्वकीर्तनम् मार्कण्डेयस्य चरितं पुराणश्रवणे फलम्। यः शृणोति नरो भक्त्या पुराणमिदमादरात्
मार्कण्डेयाभिधं वत्स स लभेत् परमां गतिम्।

ऐसी स्थिति में भगवान् वेदव्यास की यह यथावदुपलब्धकृति ही सन्तोषाधायक होगी। हमें बहुत ही प्रसन्नता है कि पुराणों के हस्तलिखित ग्रन्थों की प्रतियों से हमारे गुरुमण्डल ग्रन्थमाला में प्रकाशित पुराणों के पाठ- भेद की तुलना के लिये वारम्वार कृपालु विद्वद्वृन्द से सादर प्रार्थना करने का इस वार श्रीमार्कण्डेयपुराणके प्रकाशन समाप्तिपर फण से छत्री माहेश्वर (मध्य प्रदेश)से श्रीमान् परमपूज्य शिवचैतन्यजी वर्णी द्वारा सविशेष मार्कण्डेयपुराण की हस्तलिखित प्रतिके भेजनेका पूर्ण माहात्म्य मिला। वर्णीजीके कथनानुसार यह प्रति २०० वर्ष पुरानी है। दुर्गासप्तशती के प्राधानिक, वैकृतिक और मूर्तिरहस्यों का इस हस्तलिखित पुराणप्रति में अविकल अध्याय प्रतिपादन- पुरःसर निरूपण है। अब भी मेरी हार्दिक इच्छा है कि २००० श्लोक जो अनुपलब्ध हे उन्हें किसी भी प्रख्यात हस्तलिखित ग्रन्थ भाण्डार में से उपलब्ध करवाकर जो महोदय विद्वद्वर्ग इस पुराण को पूर्ण करने में श्रीमान् शिवचैतन्य जी वर्णी द्वारा प्रस्तुत आदर्शानुसार हमें अपना पथप्रदर्शन करेंगे उन्हें सभी पुराणप्रेमी साभार कृतज्ञता प्रदर्शित करेंगे। 'सौभाग्य से इस पुराण के उपान्त्य भाग ही अनुपलब्ध हैं। इसलिये उन्हें हम परिशिष्ट में ग्रन्थ में सम्मि- लित कर अपने कर्तव्य का पालन करेंगे। वर्णीजी के पुराणोद्धारार्थ इस प्रयत्न का मैं ऋणी हूँ।

रहस्य-त्रय हमें परिशिष्ट में इसलिये देना पड़ा कि सम्पूर्ण ग्रन्थ के

यस्तु व्याकुरुते चैतच्छैवं स लभते पदम् ॥
तत्प्रयच्छेल्लिखित्वा यः सौवर्णकरिसंयुतम् ।
कार्तिक्यां द्विजवर्णाय स लभेद् ब्रह्मणः पदम् ॥
शृणोति श्रावयेद्वाऽपि यश्चानुक्रमणीमिमाम् ।
मार्कण्डेयपुराणस्य स लभेद्वाञ्छितं फलम् ॥

प्रकाशन का कार्य समाप्ति पर था और इस हस्तलिखित पुराण ग्रन्थ की हमें सभी प्राप्ति हुई समयोपरान्त अवश्य यही मार्गानुसरण करनेको हम बाध्य हुए कृपालु पाठक क्षमा करें।

भगवती जगदम्बा आद्याशक्ति की अनन्त महिमा भारतीय जनता की अलौकिक श्रद्धा एवं भक्ति की आराध्या के रूप में आलवाल से सर्वत्र प्रसिद्ध है। मार्कण्डेयपुराणान्तर्गत ८१ अध्याय से ९३ तक सप्तशती का पूर्ण आख्यान है जो साङ्गोपाङ्गविधि एवं पारायण सहितश्रद्धालु भक्तोंका, तान्त्रिक समुदाय का और दुर्गाभक्ति परायण महानुभावों का अत्युत्तम उपहार है। इस दुर्गासप्तशती की उपादेयता सर्वविदित है साथ ही इसमें वर्णित एक एक श्लोक में एवं एक एक अक्षर में विशेष मन्त्र की प्रक्रिया है ऐसा उसके विशिष्ट मर्मज्ञों का मत है। इस सप्तशती की विशेष टीकायें विद्वज्जनानुमोदित प्रायः १५, २० हैं जिनमें शान्तनवी और गुप्तवती टीकायें सबमें मूर्धन्य हैं। भगवती के साक्षात्कार बिना ऐसी मार्मिक व्याख्या का आविर्भाव कठिन ही नहीं असम्भव ही समझिये। ये टीकायें दुर्लभ थीं। विद्वद्वृन्द के प्रीत्यर्थ शान्तनवी टीका का समावेश विशेष रूप से किया है। ग्रन्थ की विज्ञप्ति इस प्रकार आप महानुभावों की सेवा में निवेदित की है।

मेरी सभी सम्मान्य पुराणप्रेमी सज्जनों से करबद्ध प्रार्थना है कि इस व्यास वाणी को संसार में सिद्धान्ततया प्रसारित कर सच्चे अर्थों में 'सर्वभूतहिते रता' बनने का अनुग्रह करें। ठोस कार्यों से ही हमारी संस्कृति आजतक अक्षुण्ण है भविष्य में हम इस प्रभु की आज्ञा रूप धर्मशास्त्र और पुराणों में प्रतिपादित अपने कर्तव्य कर्मों का पालन कर ठोस कार्य अपने लिये एवं भावी सन्तान के लिये कर सकते हैं। भगवती पराम्बा हमें इस महान् कार्य में सफलता प्रदान करने की क्षमता प्रदान करे यही सादर प्रार्थना एवं कामना है।

इस महापुराण की आदर्शप्रति कलिकातास्थ जीवानन्दविद्यासागर प्रकाशित संस्करण और बम्बई के श्रीवेङ्कटेश्वर मुद्रणालय से १९८० विक्रम सम्वत् में छपे मार्कण्डेयपुराण (सप्तशती पर शान्तनवीटीका सहित) दुर्लभ ग्रन्थ हैं। बम्बई की प्रतिप्राप्त करने में हमारे अन्यतम शुभैषी बीकानेरनिवासी श्रीमान् कथाव्यास पं० गोपालदत्तजी रत्ताणी ने अत्यन्त परिश्रम किया तदर्थ हम श्रीमान् पण्डितजी के हृदय से आभारी हैं। भविष्य में सदा ही इसीप्रकार कृपा करते रहेंगे।

अन्त में इस विशाल कार्य के सम्पादनार्थ आरम्भ से व्यापृत श्री पण्डित ब्रह्मदत्तजी त्रिवेदी व्याकरणाचार्य एम० ए० लक्ष्मणगढ़-सीकरनिवासी तथा पण्डित रामनाथजी शास्त्री पुराणसाङ्ख्यस्मृतितीर्थ नवलगढ़-जयपुरनिवासी को इस कार्य में सहयोग देने को धन्यवाद देने की आवश्यकता नहीं, कारण यह तो उनका अपना कार्य है और उसके लिये कोई प्रशस्ति का साधुवाद देना उनकी कार्य-गुरुता को लघु बनाना है। अपनी अपूर्णता के लिये मैं करबद्ध क्षमा प्रार्थी हूँ।

"कामयेदुःखतप्तानां प्राणिनामार्तिनाशनम्"

कृपाभिलाषी

मनसुखराय मोर
५, क्लाइव रो,
कलकत्ता—१

शुभमिति फाल्गुन शुक्ला
हरिदोलोत्सव पूर्णिमा बुधवार
२०१८ विक्रमसम्वत्

* श्रीगणेशायनमः *

श्रीमार्कण्डेयपुराणस्य विषयानुक्रमणिका

—:*:—



परिशिष्टे :—

समाप्ताचेयं मार्कण्डेयमहापुराणस्य विषयानुक्रमणिका ।

इति विद्वज्जनकृपाभिलाषिणौ लक्ष्मणदुर्गाभिजन (लक्ष्मणगढ़-सीकरनिवासि)
ब्रह्मदत्त त्रिवेदि—नवलदुर्गवास्तव्य (नवलगढ़-जयपुरनिवासि)
रामनाथमिश्रदाधीचौ ।

—:*:—



सा मा पातु सरस्वती भगवती निःशेषजाड्यापहा

— * —

* श्रीगणेशायनमः *

॥ ॐ नमोभगवतेवासुदेवाय ॥

मार्कण्डेयपुराणम्

—:*:—

श्रीमन्महर्षिवेदव्यासप्रणीतम्

प्रथमोऽध्यायः

मङ्गलाचरणपूर्वकवपुनामाप्सरःशापवर्णनम्

यद्योगिभिर्भवभयार्तिविनाशयोग्यमासाद्य वन्दितमतीव विविक्तचित्तैः ।
तद्वः पुनातु हरिपादसरोजयुग्ममाविर्भवत्क्रमविलङ्घितभूर्भुवःस्वः ॥ १ ॥
पायात् स वः सकलकल्मषभेददक्षःक्षीरोदकुक्षिफणिभोगनिविष्टमूर्त्तिः ।
श्वासावधूतसलिलोत्कणिकाकरालः सिन्धुः प्रनृत्यमिव यस्य करोति सङ्गात्
नारायणं नमस्कृत्य नरञ्चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ॥
तपःस्वाध्यायनिरतंमार्कण्डेयंमहामुनिम् । व्यासशिष्योमहातेजाजैमिनिःपर्य्यपृच्छत
भगवन्!भारताख्यानं व्यासेनोक्तंमहात्मना । पूर्णमस्तमलैःशुभ्रैर्नानाशास्त्रसमुच्चयैः
जातिशुद्धिसमायुक्तं साधुशब्दोपशोभितम् ।
पूर्वपक्षोक्तिसिद्धान्तपरिनिष्ठासमन्वितम् ॥ ३ ॥

त्रिदशानां यथा विष्णुर्द्विपदां ब्राह्मणो यथा । भूषणानाञ्च सर्वेषां यथा चूडामणिर्वरः
यथायुधानां कुलिशमिन्द्रियाणां यथा मनः । तथेह सर्वशास्त्राणां महाभारतमुत्तमम्
अत्रार्थश्चैव धर्मश्च कामो मोक्षश्च वर्ण्यते । परस्परानुबन्धाश्च सानुबन्धाश्च ते पृथक्

धर्मशास्त्रमिदं श्रेष्ठमर्थशास्त्रमिदं परम् ।
कामशास्त्रमिदं चाग्र्यं मोक्षशास्त्रं तथोत्तमम् ॥ ७ ॥

चतुराश्रमधर्माणामाचारस्थितिसाधनम् । प्रोक्तमेतन्महाभाग वेदव्यासेन धीमता
तथा तात कृतं ह्येतद्व्यासेनोदारकर्मणा । यथा व्याप्तं महाशास्त्रं विरोधैर्नाभिभूयते
व्यासवाक्यजलौघेन कुतर्कतरुहारिणा । वेदशैलावतीर्णेन नीरजस्का मही कृता
कलशब्दमहाहंसं महाख्यानपराम्बुजम् । कथाविस्तीर्णसलिलं कार्ष्णं वेदमहाह्रदम्
तदिदं भारताख्यानं बह्वर्थं श्रुतिविस्तरम् । तत्त्वतो ज्ञातुकामोऽहं भगवंस्त्वामुपस्थित

कस्मान्मानुषतां प्राप्तो निर्गुणोऽपि जनार्दन ।
वासुदेवो जगत्सूतिस्थितिसंयमकारणम् ॥ १३ ॥
कस्माच्च पाण्डुपुत्राणामेका सा द्रुपदात्मजा ।
पञ्चानां महिषी कृष्णा ह्यत्र नः संशयो महान् ॥ १४ ॥

भेषजं ब्रह्महत्याया बलदेवो महाबलः । तीर्थयात्राप्रसङ्गेन कस्माच्चक्रे हलायुधः
कथञ्च द्रौपदेयास्तेऽकृतदारा महारथाः । पाण्डुनाथा महात्मानो वधमापुरनाथवत्
एतत् सर्वं विस्तरशो ममाख्यातुमिहार्हसि । भवन्तो मूढबुद्धीनामवबोधकराः सदा
इति तस्य वचः श्रुत्वा मार्कण्डेयो महामुनिः । दशाष्टदोषरहितो वक्तुं समुपचक्रमे

मार्कण्डेय उवाच

क्रियाकालोऽयमस्माकं सम्प्राप्तो मुनिसत्तम । विस्तरेणापि वक्तव्ये नैव कालः प्रशस्यते
ये तु वक्ष्यन्ति वक्ष्येऽद्य तानहं जैमिने तव । तथा च नष्टसन्देहस्त्वां करिष्यन्ति पक्षिणः

पिङ्गाक्षश्च विबोधश्च सुपुत्रः सुमुखस्तथा ।
द्रोणपुत्राः खगश्रेष्ठास्तत्त्वज्ञाः शास्त्रचिन्तकाः ॥ २१ ॥
वेदशास्त्रार्थविज्ञाने येषामव्याहता मतिः ।

विन्ध्यकन्दरमध्यस्थास्तानुपास्य च पृच्छ च ॥ २२ ॥

एवमुक्तस्तदा तेनमार्कण्डेयेन धीमता । प्रत्युवाचर्षिशार्दूलो विस्मयोत्फुल्ललोचनः

जैमिनिरुवाच

अत्यद्भुतमिदं ब्रह्मन्! खगवागिव मानुषी । यत् पक्षिणस्ते विज्ञानमापुरत्यन्तदुर्लभम्

तिर्यग्योन्यां यदि भवस्तेषां ज्ञानं कुतोऽभवत् ।

कथं च द्रोणतनयाः प्रोच्यन्ते ते पतत्त्रिणः ॥ २५ ॥

कश्च द्रोणः प्रविख्यातो यस्यपुत्रचतुष्टयम् । जातं गुणवतां तेषांधर्मज्ञानंमहात्मनाम्

मार्कण्डेय उवाच

शृणुष्वावहितो भूत्वा यद्वृत्तं नन्दने पुरा । शक्रस्याप्सरसाञ्चैव नारदस्य च सङ्गमे

नारदोनन्दनेऽपश्यतपुंश्चलीगणमध्यगम् । शक्रंसुराधिराजानंतन्मुखासक्तलोचनम्

स तेनर्षिवरिष्ठेन दृष्टमात्रः शचीपतिः । समुत्तस्थौ स्वकं चास्मै ददावासनमादरात्

तं दृष्ट्वावनवृत्रघ्नमुत्थितं त्रिदशाङ्गनाः । प्रणेमुस्ताश्च देवर्षिं विनयावनताःस्थिताः

ताभिरभ्यर्चितः सोऽथ उपविष्टे शतक्रतौ । यथार्हं कृतसम्भाषःकथाश्चक्रे मनोरमाः

ततः कथान्तरे शक्रस्तमुवाच महामुनिम् ।

शक्र उवाच

देह्याज्ञां नृत्यतामासां तव याभिमतेति वै ॥ ३२ ॥

रम्भा वाकर्कशा वाथउर्वश्यथ तिलोत्तमा । घृताची मेनका वापियत्रवाभवतोरुचिः

एतच्छ्रुत्वा द्विजश्रेष्ठो वाचं शक्रस्य नारदः ।

विचिन्त्याप्सरसः प्राह विनयावनताः स्थिताः ॥ ३४ ॥

युष्माकमिहसर्वासांरूपौदार्य्यगुणाधिकम् । आत्मानंमन्यतेयातुसानृत्यतुममाग्रतः

गुणरूपविहीनायाः सिद्धिर्नास्त्यस्य नास्ति वै ।

चार्वधिष्ठानवन्नृत्यं नृत्यमन्यद्विडम्बनम् ॥ ३६ ॥

मार्कण्डेय उवाच

तद्वाक्यसमकालश्चएकैकास्तानतास्ततः । अहंगुणाधिकानत्वंनत्वंचान्याब्रवीदिदम्

ताभ्यां सम्भ्रममालोक्य भगवान् पाकशासनः ।
पृच्छयन्तौ मुनिरित्याह वक्ता यां यो गुणाधिकाम् ॥ ३८ ॥
रम्भाप्रमुखानुयाताभिः पृष्टाभिः सनारदः । प्रोवाच यत्तदा वाक्यं जैमिने तन्निबोध मे
तपस्यन्तं नगेन्द्रस्थं या,च क्षोभयते बलात् ।
दुर्वाससं मुनिश्रेष्ठं तां वो मन्ये गुणाधिकाम् ॥ ४० ॥

मार्कण्डेय उवाच

तच्छ्रुत्वा वचनं प्राह वपुर्वेपितकन्धरा । अशक्यमेनं क्षोभयितुमिति ताश्चक्रिरे कथाः
तत्राप्सरा वपुर्नाम मुनिक्षोभणगर्विता ।
प्रत्युवाचानुयास्यामि यत्रास्तौ संस्थितो मुनिः ॥ ४२ ॥
अद्य तं देहयन्तारं प्रयुक्तेन्द्रियवाजिनम् । स्मरशस्त्रगलद्रश्मिं करिष्यामि कुसारथिम्
ब्रह्मा जनार्दनो वापि यद्वा नीललोहितः । तमप्यद्य करिष्यामि कामबाणक्षतान्तरम्
इत्युक्त्वा प्रययावाथ प्रालेयाद्रिं वपुस्तदा । मुनेस्तस्य प्रभावेण प्रशान्तश्वापदाश्रमम्
सा पुंस्कोकिलमाधुर्यं यत्रास्ते स महामुनिः ।
क्रोशमात्रे स्थिता तस्मादगायत वराप्सराः ॥ ४४ ॥
तद्गीतध्वनिमाकर्ण्य मुनिर्विस्मितमानसः । जगाम यत्रास्ते सा बाला चारुविरानना
तां दृष्ट्वा चारुसर्वाङ्गीं मुनिः संस्तभ्य मानसम् ।
क्षोभणायागतां ज्ञात्वा कोपामर्षसमन्वितः ॥ ४८ ॥
उवाचेदं ततो वाक्यं महर्षिस्तां महातपाः ॥ ४९ ॥
यस्मान्मद्दुःखार्जितस्येह तपसो विघ्नकारणात् । आगतासि मदोन्मत्ते ममदुःखाय खेचरि
तस्मात् सुपर्णगोत्रे त्वं मत्क्रोधकलुषीकृता ।
जन्म प्राप्स्यसि दुष्प्रज्ञे यावद्वर्षाणि षोडश ॥ ५१ ॥
निजरूपं परित्यज्य पक्षिणीरूपधारिणी । चत्वारस्ते च तनया जनिष्यन्तेऽधमाप्सरः
अप्राप्य तेषु च प्रीतिं शस्त्रपूता पुनर्दिवि । वासमाप्स्यसि वक्तव्यं नोत्तरं ते कथञ्चन
इति वचनमसह्यं कोपसंरक्तदृष्टिश्चलककलया तां मानिनीं श्रावयित्वा ।

तरलतरतरङ्गां गां परित्यज्यविप्रःप्रथितगुणगणौघां संप्रयातःखगङ्गाम् ॥ ५४॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे वपुनाप्सरःशापवर्णनंनाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः

चटकोत्पत्तिवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

अरिष्टनेमिपुत्रोऽभूद्गरुडो नामपक्षिराट् । गरुडस्याभवत् पुत्रःसम्पातिरितिविश्रुतः

तस्याप्यासीत् सुतः शूरः सुपार्श्वो वायुविक्रमः ।

सुपार्श्वतनयः कुन्तिः कुन्तिपुत्रः प्रलोलुपः ॥ २ ॥

तस्यापि तनयावास्तां कङ्कः कन्धर एव च ॥ ३ ॥

कङ्कः कैलासशिखरे विद्युद्रूपेति विश्रुतम् । ददर्शाम्बुजपत्राक्षं राक्षसं धनदानुगम्

आपानासक्तममलस्रग्दामाम्बरधारिणम् । भार्यासहायमासीनं शिलापट्टेऽमले शुभे

तद्दृष्टमात्रं कङ्केन रक्षः क्रोधसमन्वितम् ।

प्रोवाच कस्मादायातस्त्वमितो ह्यण्डजाधम! ॥ ६ ॥

स्त्रीसन्निकर्षे तिष्ठन्तंकस्मान्मामुपसर्पसि । नैषधर्मःसुबुद्धीनां मिथोनिष्पाद्यवस्तुषु

कङ्क उवाच

साधारणोऽयं शैलेन्द्रो यथा तव तथामम । अन्येषाञ्चैव जन्तूनांममताभवतोऽत्र का

मार्कण्डेय उवाच

ब्रुवाणमित्थं खड्गेनकङ्कं चिच्छेदराक्षसः । क्षरत्क्षतजबीभत्सं विस्फुरन्तमचेतनम्

कङ्कं विनिहतं श्रुत्वाकन्धरःक्रोधमूर्च्छितः । विद्युद्रूपवधायाशु मनश्चक्रेऽण्डजेश्वरः

स गत्वा शैलशिखरं कङ्को यत्रहतःस्थितः । तस्य सङ्कलनञ्चक्रे भ्रातुर्ज्येष्ठस्यखेचरः

कोपामर्षविवृद्धाक्षो नागेन्द्र इव निःश्वसन् ॥ ११ ॥

जगामाथ सपक्षास्ते भ्रातृहा तस्य राक्षसः । पक्षवातेन महता चालयन्भूधरान्वरान्
वेगात्पयोदजालानि विक्षिपन्क्षतजेक्षणः । क्षणात्क्षयितशत्रुः सपक्षाभ्याक्रान्तभूधरः
पानासक्तमतिं तत्र स ददर्श निशाचरम् । आताम्रवक्त्रनयनं हेमपर्यङ्कमाश्रितम्
स्रग्दामापूरितशिखं हरिचन्दनभूषितम् । केतकीपत्रगर्भाभैर्दन्तैर्घोरतराननम् ॥ १५
वामोरुमाश्रिता चास्य ददर्शाऽऽयतलोचनाम् ।
पत्नीं मदनिकां नाम पुंस्कोकिलकलस्वनाम् ॥ १६ ॥
ततो रोषपरीतात्मा कन्धरं कन्दरस्थितम् । तमुवाच सुदुष्टात्मन्नेहि युध्यस्व वै मया
यस्माज्ज्येष्ठो मम भ्राता विश्रब्धो घातितस्त्वया ।
तस्मात्त्वां मदसंसक्तं नयिष्ये यमसादनम् ॥ १८ ॥
विश्वस्तघातिनां लोका ये च स्त्रीबालघातिनाम् ।
यास्यसे निरयान् सर्वांस्तांस्त्वमद्य मया हतः ॥ १९ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इत्येवं पतगेन्द्रेण प्रोक्तः स्त्रीसन्निधौ तदा । रक्षः क्रोधसमाविष्टः प्रत्यभाषत पक्षिणम्
यदि ते निहतो भ्राता पौरुषं तद्धि दर्शितम् । त्वामप्यद्याहनिष्येऽहं खड्गेनानेन खेचर।
तिष्ठ क्षणमात्रं जीवन् पतगाधम यास्यसि । इत्युक्त्वाञ्जनपुञ्जाभं विमलं खड्गमाददे
ततः पतगराजस्य यक्षाधिपभटस्य च । बभूव युद्धमतुलं यथा गरुडशक्रयोः ॥ २३
ततः स राक्षसः क्रोधात्खड्गमाविध्य वेगवत् । चिक्षेप पतगेन्द्राय निर्घाताङ्गारवर्चसम्
पतगेन्द्रश्च तं खड्गं किञ्चिदुत्प्लुत्य भूतलात् । चञ्च्वा जग्राह तदा गरुडः पन्नगं यथा
चञ्चुपादतलैर्भङ्क्त्वा चक्रे सोऽमुमथाण्डजः । तस्मिन् भग्ने ततः खड्गे बाहुयुद्धमवर्तत
ततः पतगराजेन वक्षस्याक्रम्य राक्षसः । हस्तपादकरैराशु शिरसा च वियोजितः
तस्मिन्विनिहते सा स्त्री खगं शरणमभ्ययात् ।
किञ्चित् सञ्जातसन्त्रासा प्राह भार्या भवामि ते ॥ २८ ॥
तामादाय खगश्रेष्ठः स्वकं गृहमगात्पुनः । गत्वा स निष्कृतिं भ्रातुर्विद्युद्रूपनिपातनात्
कन्धरस्य च सा वेश्म प्राप्येच्छारूपधारिणी । मेनकातनया सुभ्रूः सौपर्णं रूपमाददे

तस्यांसजनयामासताक्ष्यीं नामसुतांतदा । मुनिशापाग्निविप्लुष्टां वपुमप्सरसांवराम्
तस्या नाम तदा चक्रे तार्क्षीमिति विहङ्गमः ॥ ३१ ॥
मन्दपालसुताश्चासंश्चत्वारोऽमितबुद्धयः । जरितारिप्रभृतयो द्रोणान्ताद्विजसत्तमाः
तेषां जघन्यो धर्मात्मावेदवेदाङ्गपारगः । उपयेमे सतांताक्ष्यीं कन्धरानुमतेशुभाम्
कस्यचित्त्वथ कालस्य तार्क्षी गर्भमवाप ह । समपक्षाहिते गर्भे कुरुक्षेत्रं जगाम सा
कुरुपाण्डवयोर्युद्धे वर्त्तमाने सुदारुणे । भावित्वाच्चैव कार्य्यस्यरणमध्यंविवेशसा
तत्रापश्यत्तदा युद्धं भगदत्तकिरीटिनोः । निरन्तरं शरैरासीदाकाशं शलभैरिव
पार्थकोदण्डनिर्मुक्तमासन्नमतिवेगवत् । तस्या भल्लमहिश्यामं त्वचं विच्छेदजाठरीम्
भिन्नेकोष्ठेशशाङ्काभं भूमावण्डचतुष्टयम् । आयुषः सावशेषत्वात्तूलराशाविवापतत्
तत्पातसमकालञ्च सुप्रतीकाद्गजोत्तमात् । पपात महतीघण्टा वाणसञ्छिन्नबन्धना
समं समन्तात् प्राप्ता तु निर्भिन्नधरणीतला ।
छादयन्ती खगाण्डानि स्थितानि पिशितोपरि ॥ ४० ॥
हते च तस्मिन्नृपतौ भगदत्ते नरेश्वरे । बहून्यहान्यभूद्युद्धं कुरुपाण्डवसैन्ययोः ॥ ४१
वृत्तेयुद्धेधर्मपुत्रे गतेशान्तनवान्तिकम् । भीष्मस्यगदतोऽशेषान्श्रोतुंधर्मान्महात्मनः
घण्टागतानि तिष्ठन्ति यत्राण्डानिद्विजोत्तम! । आजगामतमुद्देशंशमीकोनामसंयमी
स तत्र शब्दमशृणोच्चिचीकुचीति वाशताम् ।
बाल्यादस्फुटवाक्यानां विज्ञानेऽपि परे सति ॥ ४४ ॥
अथर्षिःशिष्यसहितोघण्टामुत्पाट्यविस्मितः । अमातृपितृपक्षाणिशिशुकानिददर्शह
तानि तत्र तथा भूमौ शमीको भगवान्मुनिः ।
दृष्ट्वा स विस्मयाविष्टः प्रोवाचाऽनुगतान् द्विजान् ॥ ४६ ॥
सम्यगुक्तं द्विजाग्र्येण शुक्रेणोशनसास्वयम् । पलायनपरं दृष्ट्वादैत्यसैन्यं सुरार्दितम्
नगन्तव्यं निवर्त्तध्वंकस्माद्व्रजतकातराः । उत्सृज्यशौर्य्ययशसी क्वगतानमरिष्यथ
नश्यतो युद्ध्यतो वापि तावद् भवति जीवितम् ।
यावद्धातासृजत् पूर्वं न यावन्मनसेप्सितम् ॥ ४९ ॥

एके म्रियन्तेऽस्यगृहे पलायन्तोऽपरे जनाः । भुञ्जन्तोऽन्ये तथैवाप पिबन्तो निधनं गता विलासिनस्तथैवान्ये कामयाना निरामयाः । अविज्ञाताद्भुताश्चान्ये वै प्रेतराजवशं गताः अन्ये तपस्यभिरता नीताः प्रेतमृपानुगैः । योगाभ्यासेरताश्चान्ये नैव प्राप्ताः मृत्युताम् शम्बराय पुरा क्षिप्ते यत्र कुलिशपाणिना । हृदयेऽभिहतस्तेन तथापि न मृतोऽसुर तेनैव खलु वज्रेण येनैवन्द्रेण दानवा । प्राप्ते काले हता दैत्यास्तत्क्षणान्निधनं गताः

विदित्वैवं न सन्त्रास कर्तव्यो विनिवर्तत ।

ततो निवृत्तास्ते दैत्यास्त्यक्त्वा मरणजं भयम् ॥ ५५ ॥

इति शुभवध सत्यं हनमभि खगोत्तमं । ये युद्धेऽपि न संप्राप्ता यत्रान्धमनिमानुषे काण्डानां पतनं विप्रा क घण्टापतनं संभ्रमम् । क च मांसवसारक्तैर्भूमेरास्तरणक्रिया केऽप्येते सर्वथा विप्रा नैते सामान्यपक्षिणः । दैवानुकूलता लोके महाभाग्यप्रदर्शिनी एवमुक्त्वा स तान् वीक्ष्य पुनर्वचनमब्रवीत् । निवर्तताश्रमं यात गृहीत्वा पक्षिबालकान् मार्जारादुभयं यत्र नैषामण्डजजन्मनाम् । श्येनतोऽनकुलाद्वापि स्थाप्यन्तां तत्र पक्षिण

द्विजा किमत्र प्रयत्नेन मार्यन्ते कर्मभिः स्वकैः ।

रक्ष्यन्ते चाखिला जीवा यथैते पक्षिबालकाः ॥ ६१ ॥

तथापि यत्न कर्तव्यो नरैः सर्वेषु कर्मसु । कुर्वन् पुरुषकारन्तु वाच्यतां याति नो सताम्

इति मुनिवरचोदितास्ततस्ते मुनितनया परिगृह्य पक्षिणस्तान् ।

तरुविटपसमाश्रितालिसङ्घं ययुरथ तापसरम्यमाश्रमं स्वम् ॥ ६३ ॥

स चापि वन्य मनसाभिकामित प्रगृह्य मूल कुसुमं फलं कुशान् ।

चकार चक्रायुधरुद्रवेधसां सुरेन्द्रवैवस्वतजातवेदसाम् ॥ ६४ ॥

अपाम्पतेर्गोष्पतिचित्तरक्षिणो समीरणस्यापि तथा द्विजोत्तम ।

धातुर्विधातुश्च तथ वैश्वदेविका श्रुतिप्रयुक्ता विविधास्तु सत्क्रिया ॥ ६५ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे चटकोत्पत्तिवर्णननाम द्वितीयोऽध्याय ॥ २ ॥

——•• ——

तृतीयोऽध्यायः

विन्ध्यवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

अहन्यहनि विप्रेन्द्र! सतेषांमुनिसत्तमः। चकाराहारपयसा तथा गुप्त्या चपोषणम्
मासमात्रेण जग्मुस्ते भानोःस्यन्दनवर्त्मनि। कौतूहलविलोलाक्षैर्द्दृष्टामुनिकुमारकैः
दृष्ट्वा महीं सनगरां साम्भोनिधिसरिद्वराम्। रथचक्रप्रमाणां ते पुनराश्रममागताः

श्रमक्लान्तान्तरात्मानो महात्मानो वियोनिजाः।
ज्ञानञ्च प्रकटीभूतं तत्र तेषां प्रभावतः॥ ४॥

ऋषेः शिष्यानुकम्पार्थं वदतोधर्मनिश्चयम्। कृत्वाप्रदक्षिणंसर्वे चरणावभ्यवादयन्

ऊचुश्च मरणाद्धोरान्मोक्षिताः स्मस्त्वया मुने!।
आवासभक्ष्यपयसां त्वं नो दाता पिता गुरुः॥ ६॥
गर्भस्थानां मृता माता पित्रा नैवाऽपि पालिताः।
त्वया नो जीवितं दत्तं शिशवो येन रक्षिताः॥ ७॥
क्षितावक्षततेजास्त्वं कृमीणामिव शुष्यताम्।
गजघण्टां समुत्पाट्य कृतवान् दुःखरेचनम्॥ ८॥

कथं वर्द्धेगुरवलाःखस्थान् द्रक्ष्याम्यहंकदा। कदाभूमेर्द्रुमंप्राप्तान् द्रक्ष्येवृक्षान्तरंगतान्

कदा मे सहजा कान्तिः पांशुना नाशमेष्यति।
एषां पक्षानिलोत्थेन मत्समीपविचारिणाम्॥ १०॥

इतिचिन्तयताताता!भवताप्रतिपालिताः। तेसाम्प्रतंप्रवृद्धाःस्मः प्रबुद्धाःकरवामकिम्

इत्यृषिर्वचनं तेषां श्रुत्वा संस्कारवत् स्फुटम्।
शिष्यैः परिवृतःसर्वैः सहपुत्रेण शृङ्गिणा॥ १२॥

कुतूहलपरो भूत्वा रोमाञ्चपटसम्वृतः। उवाच तत्त्वतो ब्रूत प्रवृत्तेः कारणं गिरः॥

कल्प शाशादिव प्राप्ता मद्बुद्धिर्विनिन्दिया परा । रूपस्य वचसश्चैव तन्मे वक्तुमिहार्हथ

पक्षिण ऊचु

विपुलस्वानितिख्यात प्रागासीन्मुनिसत्तम । तस्यपुत्रद्वयजज्ञेसुकृशन्तुम्बुरुन्तथा
सुकृशस्य वय पुत्राश्चत्वार सयतात्मन । तस्यर्षेर्विनयाचारभक्तिनम्रा सदैव हि

तपश्चरणशक्तस्य शाम्यमानेन्द्रियस्य च ।
यथाभिमतमस्माभिस्तदा तस्योपपादितम् ॥ १७ ॥

समित्पुष्पादिकं सर्वंयच्चभोजनसम्पदादिकम् । एवनिवसतामतस्मिन्नस्माकं वनानने
आजगाम महावर्ष्मा भग्नपक्षो जरान्वित । आताम्रनेत्र स्रस्तात्मा पक्षीभू चासुरेश्वर
सत्यधर्मविक्रमाचारमतीवोदारमानसम् । जिज्ञासुस्तमृषिश्रेष्ठमस्मच्छापभवाय च

पक्ष्युवाच

द्विजेन्द्र माक्षुधाविष्टपरित्रातुमिहार्हसि । भक्षणार्थी महाभाग ! गतिर्भवममातुला
विन्ध्यस्यशिखरेतिष्ठन् पतिपत्रवितेन वै । पतितोऽस्मिमहाभागश्वसनेनातिरहसा
सोऽहमोहसमाविष्टोभूमौनष्टाहमस्मृति । स्थितस्तसप्तमेनाहाच्चेतसा प्राप्तवानहम्
प्राप्तचेता क्षुधाविष्टो भवन्त शरणं गत । भक्ष्यार्थी विगतानन्दो दूयमानेनचेतसा
तत्कुरुष्वामलमते मत्त्राणायाचलामतिम् । प्रयच्छभक्ष्यविप्रर्षे प्राणयात्राक्षमंमम
सएवमुक्त प्रोवाचतमिन्द्रपक्षिरूपिणम् । प्राणसन्धारणार्थायदास्येभक्ष्यतवेप्सितम्

इत्युक्त्वा पुनरप्येनमपृच्छत्स द्विजोत्तम ।
आहार कस्तवार्थाय उपकल्प्यो मयाऽन्यथा ।
स चाऽऽह नरमासेन तृप्तिर्भवति मे परा ॥ २७ ॥

ऋषिरुवाच

कौमारं [redacted] व्यतिक्रान्तमतीतं यौवनञ्च ते । वयस परिणामस्ते वर्ततेनूनमण्डज

यस्मिन्प्राणिनां सर्वेषामशेषेच्छा निवर्त्तते ।
स कस्माद्वृद्धभावेऽपि सुनृशसात्मको भवान् ॥ २९ ॥

क मानुषस्य पिशितं क वयश्चरम तव । सर्वथा दुष्टभावाना प्रशमो नोपपद्यते

अथवा किं मयैतेनप्रोक्तेनास्तिप्रयोजनम् । प्रतिश्रुत्य सदादेयमितिनोभावितंमनः

इत्युक्त्वा तं स विप्रेन्द्रस्तथेति कृतनिश्चयः ।
शीघ्रमस्मान् समाहूय गुणतोऽनुप्रशस्य च ॥ ३२ ॥
उवाच क्षुब्धहृदयो मुनिर्वाक्यं सुनिष्ठुरम् ।
विनयावनतान् सर्वान् भक्तियुक्तान् कृताञ्जलीन् ॥ ३३ ॥

कृतात्मानोद्विजश्रेष्ठाऋणंयु क्ता मया सह । जातं श्रेष्ठमपत्यंवो यूयंममयथाद्विजाः

गुरुः पूज्यो यदि मतो भवतां परमः पिता । ततः कुरुतमे वाक्यंनिर्व्यलीकेनचेतसा

तद्वाक्यसमकालंच प्रोक्तमस्माभिरादृतैः । यद्वक्ष्यति भवांस्तद्वै कृतमेवावधार्यताम्

ऋषिरुवाच

मामेष शरणं प्राप्तो विहगः क्षुत्तृषान्वितः । युष्मन्मांसेन येनास्य क्षणं तृप्तिर्भवेतवै

तृष्णाक्षयश्चरक्तेनतथाशीघ्रंविधीयताम् । ततोवयंप्रव्यथिताःप्रकम्पोद्भूतसाध्वसाः

कष्टं कष्टमिति प्रोच्य नैतत् कर्मेति चाब्रुवन् ॥ ३८ ॥

कथं परशरीरस्य हेतोर्देहं स्वकं बुधः । विनाशयेद्घातयेद्वा यथा ह्यात्मा तथा सुतः

पितृदेवमनुष्याणां यान्युक्तानि ऋणानि वै ।
तान्यपाकुरुते पुत्रो न शरीरप्रदः सुतः ॥ ४० ॥
तस्मान्नैतत्करिष्यामो नो चीर्णं यत् पुरातनैः ।
जीवन् भद्राण्यवाप्नोति जीवन् पुण्यं करोति च ॥ ४१ ॥

मृतस्य देहनाशश्च धर्माद्युपरतिस्तथा । आत्मानं सर्वतो रक्ष्यमाहुर्धर्मविदो जनाः

इत्थं श्रुत्वा वचोऽस्माकं मुनिः क्रोधादिव ज्वलन् ।
प्रोवाच पुनरप्यस्मान् निर्दहन्निव लोचनैः ॥ ४३ ॥
प्रतिज्ञातं वचो मह्यं यस्मान्नैतत् करिष्यथ ।
तस्मान्मच्छापनिर्दग्धास्तिर्यग्योनौ प्रयास्यथ ॥ ४४ ॥
एवमुक्त्वा तदा सोऽस्मांस्तं विहङ्गममब्रवीत् ।
अन्त्येष्टिमात्मनः कृत्वा शास्त्रतश्चौर्ध्वदेहिकम् ॥ ४५ ॥

भक्षयस्व सुविस्रब्धो मामत्र द्विजसत्तम । आहारार्थं कृतमेतत्ते मया देहमिहात्मनः
एतावदेव विप्रस्य ब्राह्मणत्वं प्रचक्ष्यते । यावत् पतगजात्यग्र्य स्वसत्यपरिपालनम्
न यज्ञैर्दक्षिणावद्भिस्तत्पुण्यं प्राप्यते महत् । कर्मणान्येन वा विप्रैर्यत्सत्यपरिपालनात्
इत्यूर्ध्वं वचनं श्रुत्वा सोऽन्तर्विस्मयनिर्भरः । प्रत्युवाच मुनिं शक्रः पक्षिरूपधरस्तदा
योगमास्थाय विप्रेन्द्र त्यजेदं स्वकलेवरम् । जीवज्जन्तुं हि विप्रेन्द्र न भक्षामि कदाचन
तस्यैतद्वचनं श्रुत्वा योगयुक्तोऽभवन्मुनिः । तं तस्य निश्चयं ज्ञात्वा शक्रोऽप्याह स्वदेहभृत्

भो भो विप्रेन्द्र बुध्यस्व बुद्ध्या बोध्यं बुधात्मक ।
जिज्ञासार्थं मयाद्य ते अपराधः कृतोऽनघ ॥ ५२ ।

तत्क्षमस्वामलमते का चेच्छा क्रियतां तव । पालनात्सत्यवाक्यस्य प्रीतिर्मे परमा त्वयि
अद्य प्रभृति ते ज्ञानमैन्द्रं प्रादुर्भविष्यति । तपस्यथ तथा धर्मे न ते विघ्नो भविष्यति
इत्युक्त्वा तु गते शक्रे पिता कोपसमन्वितः । प्रणम्य शिरसास्माभिरिदमुक्तो महामुनिः
बिभ्यतां मरणात्तात त्वमस्माकं महामते । क्षन्तुमर्हसि दीनानां जीवितप्रियता हि नः
त्वगस्थिमांससङ्घाते पूयशोणितपूरिते । कर्तव्या न रतिर्यत्र तत्रास्माकमियं रतिः
श्रूयतां च महाभाग यथा लोको विमुह्यति । कामक्रोधादिभिर्दोषैर्विवशः प्रबलैरिमैः
प्रज्ञाप्राकारसंयुक्तमस्थिस्थूणं पुरं महत् । चर्मभित्तिमहारोधं मांसशोणितलेपनम्
नवद्वारं महायासं सर्वतः स्नायुवेष्टितम् । नृपश्च पुरुषस्तत्र चेतनावानवस्थितः
मन्त्रिणौ तस्य बुद्धिश्च मनश्चैव विरोधिनौ । यतेते वैरनाशाय तावुभावितरेतरम्

नृपस्य तस्य चत्वारो नाशमिच्छन्ति विद्विषः ।
कामः क्रोधस्तथा लोभो मोहश्चान्यस्तथा रिपुः ॥ ६२ ॥

यदा तु स नृपस्तानि द्वाराण्यावृत्य तिष्ठति । तदा सुस्थबलश्चैव निरातङ्कश्च जायते
जातानुरागो भवति शत्रुभिर्नाऽभिभूयते ॥ ६४ ॥

यदा [illegible] सर्वद्वाराणि विवृतानि स मुञ्चति । रागो नाम तदा शत्रुर्नेत्रादिद्वारमृच्छति
सर्वव्यापी महायामः पञ्चद्वारप्रवेशनः । तस्यानुमार्गं विशति तद्वै घोरं रिपुत्रयम्
प्रविश्याथ स वै तत्र द्वारैरिन्द्रियसंज्ञकैः । रागः संश्लेषमायाति मनसा च सहेतरैः

इन्द्रियाणि मनश्चैव वशे कृत्वा दुरासदः। द्वाराणिचवशेकृत्वा प्राकारं नाशयत्यथ
मनस्तस्याश्रितं दृष्ट्वा बुद्धिर्नश्यति तत्क्षणात्।
अमात्यरहितस्तत्र पौरवर्गोऽभिभूतस्तथा॥ ६६॥
रिपुभिर्लब्धविवरः स नृपो नाशमृच्छति। एवंरागस्तथामोहोलोभःक्रोधस्तथैव च
प्रवर्तन्ते दुरात्मानो मनुष्यस्मृतिनाशकाः।
रागात्क्रोधः प्रभवति क्रोधाल्लोभोऽभिजायते॥ ७१॥
लोभाद् भवति सम्मोहः सम्मोहात् स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात् प्रणश्यति॥ ७२॥
एवं प्रणष्टबुद्धीनां रागलोभानुवर्त्तिनाम्। जीविते च सलोभानां प्रसादंकुरु सत्तम!
योऽयं शापो भगवता दत्तः स न भवेत्तथा।
न तामसीं गतिं कष्टां व्रजेम मुनिसत्तम!॥ ७३॥

ऋषिरुवाच

यन्मयोक्तं न तन्मिथ्या भविष्यतिकदाचन। न मे वागनृतंप्राह यावदद्येति पुत्रकाः
दैवमत्र परं मन्ये धिक् पौरुषमनर्थकम्। अकार्यं कारितो येन बलादहमचिन्तितम्
यस्माच्चयुष्माभिरहंप्रणिपत्यप्रसादितः। तस्मात्तिर्यक्त्वमापन्नापरंज्ञानमवाप्स्यथ
ज्ञानदर्शितमार्गाश्च निर्धूतक्लेशकल्मषाः।
मत्प्रसादादसन्दिग्धाः परां सिद्धिमवाप्स्यथ॥ ७८॥
एवं शप्ताः स्म भगवन्! पित्रा दैववशात् पुरा।
ततः कालेन महता योन्यन्तरमुपागताः॥ ७६॥
जाताश्च रणमध्ये वै भवता परिपालिताः। वयमित्थंद्विजश्रेष्ठ! खगत्वं समुपागताः
नास्त्यसाविह संसारे यो न दिष्टेन बाध्यते॥ ८०॥

मार्कण्डेय उवाच

इति तेषां वचः श्रुत्वा शमीको भगवान् मुनिः।
प्रत्युवाच महाभागः समीपस्थायिनो द्विजान्॥ ८१॥

पूर्वमेव मयाप्युक्तं भवतां सन्निधाविदम्। सामान्यपक्षिणो नैते केऽप्येते द्विजसत्तमाः
ये युद्धेऽपि न सम्प्राप्ताः पञ्चत्वमतिमानुषे॥ ८२॥
तत प्रीतिमता तेन तेऽनुज्ञाता महात्मना। जग्मुः शिखरिणां श्रेष्ठं विन्ध्यं द्रुमलतायुतम्
यावदद्य स्थितास्तस्मिन्नचले धर्मपक्षिणः।
तपःस्वाध्यायनिरताः समाधौ कृतनिश्चयाः॥ ८४॥
इति मुनिवरलब्धसत्क्रियास्ते मुनितनया विहगत्वमभ्युपेताः।
गिरिवरगहनेऽतिपुण्यतोये वनमनमौ निवसन्ति विन्ध्यपृष्ठे॥ ८५॥
इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे विन्ध्यवर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः॥ ३॥

चतुर्थोऽध्यायः

चतुर्व्यूहावतारवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

एवं द्रोणसुता पक्षिणो ज्ञानिनोऽभवन्। वसन्ति हाचले विन्ध्ये तानुपास्य च पृच्छ च
इत्येवं वचनं श्रुत्वा मार्कण्डेयस्य जैमिनिः। जगाम विन्ध्यशिखरं यत्र ते धर्मपक्षिणः
तं नगं समुपागम्य शुश्राव पठतां ध्वनिम्। श्रुत्वा च विस्मयाविष्टश्चिन्तयामास जैमिनिः
स्थानमोष्ठपुटस्पन्दं जितश्वासमविभ्रमम्। विस्पष्टमपदोषं च पठ्यते द्विजसत्तमैः
वियोनिमपि सम्प्राप्तानेतान्मुनिकुमारकान्। चित्रमेतदहं मन्ये न जहाति सरस्वती
बन्धुवर्गस्तथा मित्रं यच्चान्यदपरं गृहे। त्यक्त्वा गच्छति तत्सर्वं न जहाति सरस्वती
इति सञ्चिन्तयन्नेव विवेश गिरिकन्दरम्। प्रविश्य च ददर्शासौ शिलापट्टगतान्द्विजान्
पठतस्तान् समालोक्य मुखदोषविवर्जितान्।
सोऽथ शोकेन हर्षेण सर्वानेवाभ्यभाषत॥ ८॥
स्वस्त्यस्तु वो द्विजश्रेष्ठा! जैमिनिं मां निबोधत।
व्यासशिष्यमनुप्राप्तं भवतां दर्शनोत्सुकम्॥ ९॥

मन्युर्न खलु कर्त्तव्योयत्पित्रातीवमन्युना। शप्ताःस्वगत्वमापन्नाःसर्वथादिष्टमेवतत्

स्फीतद्रव्ये कुले केचिज्जाताः किल मनस्विनः।

द्रव्यनाशे द्विजेन्द्रास्ते शवरेण सुसान्त्विताः॥ ११॥

दत्त्वा याचन्तिपुरुषाहत्वावध्यन्तिचापरे। पातयित्वाचपात्यन्तेतएवतपसःक्षयात्

एतद्दृष्टं सुबहुशो विपरीतं तथा मया। भावाभावसमुच्छेदैरजस्रं व्याकुलं जगत्

इति सञ्चिन्त्य मनसा न शोकं कर्तुमर्हथ। ज्ञानस्य फलमेतावच्छोकहर्षैरधृष्यता

ततस्ते जैमिनिं सर्वेपाद्यार्घ्याभ्यामपूजयन्। अनामयञ्चपप्रच्छुःप्रणिपत्यमहामुनिम्

अथोचुः खगमाः सर्वे व्यासशिष्यं तपोनिधिम्।

सुखोपविष्टं विश्रान्तं पक्षानिलहतक्लमम्॥ १६॥

पक्षिण ऊचुः

अद्य नः सफलं जन्म जीवितञ्च सुजीवितम्।

यत् पश्यामः सुरैर्वन्द्यं तव पादाम्बुजद्वयम्॥ १७॥

पितृकोपाग्निरुद्भूतो यो नो देहेषु वर्त्तते!

सोऽद्य शान्तिं गतो विप्र! युष्मद्दर्शनवारिणा॥ १८॥

कच्चित्ते कुशलं ब्रह्मन्नाश्रमे मृगपक्षिषु। वृक्षेष्वथ लतागुल्मत्वक्सारतृणजातिषु

अथवा नैतदुक्तं हि सम्यगस्माभिरादृतैः। भवता सङ्गमो येषां तेषामकुशलं कुतः

प्रसादञ्च कुरुष्वात्र ब्रूह्यागमनकारणम्। देवानामिव संसर्गोभवतोऽभ्युदयो महान्

केनाऽस्मद्भाग्यगुरुणा आनीतो दृष्टिगोचरम्॥ २१॥

श्रूयतां द्विजशार्दूलाः! कारणं येन कन्दरम्।

विन्ध्यस्येहागतो रम्यं रेवावारिकणोक्षितम्।

सन्देहान् भारते शास्त्रे तान् प्रष्टुं गतवानहम्॥ २२॥

मार्कण्डेयं महात्मानं पूर्वं भृगुकुलोद्वहम्। तमहं पृष्टवान् प्राप्यसन्देहान् भारतंप्रति

सचपृष्टोमयाप्राहसन्तिविन्ध्येमहाचले। द्रोणपुत्रामहात्मानस्तेवक्ष्यन्त्यर्थविस्तरम्

तद्वाक्यचोदितश्चेममागतोऽहं महागिरिम्।

तत् शृणुध्वमशेषेण श्रुत्वा व्याख्यातुमर्हथ ॥ २५ ॥

पक्षिण ऊचु

विषये सति वक्ष्यामो निर्विशङ्क शृणुष्व तत् ।
कथ तत्र वदिष्यामो यदस्मद्बुद्धिगोचरम् ॥ २६ ॥

चतुर्ष्वपि हि वेदेषु धर्मशास्त्रेषु चैवहि । समस्तेषु तथाङ्गेषु यच्चान्यद्वेदसम्मितम्
यत्रेषु गोचरोऽस्माकन्बुद्धेर्ब्राह्मणसत्तम । प्रतिज्ञान्तुममायोद्धु तथापिनहि शक्नुम

तस्माद्ब्रूहस्व विश्रब्ध सन्दिग्ध यद्धि भारते ।
वक्ष्यामस्तव धर्मज्ञ न चेन्मोहो भविष्यति ॥ २९ ॥

जैमिनिरुवाच

सन्दिग्धानीह वस्तूनि भारत प्रति यानि मे ।
शृणुध्वममलास्तानि श्रुत्वा व्याख्यातुमर्हथ ॥ ३० ॥
कस्मान्मानुषता प्राप्तो निर्गुणोऽपि जनार्दन ।
वासुदेवोऽखिलाधार सर्वकारणकारणम् ॥ ३१ ॥

कस्माच्च पाण्डुपुत्राणामेका साद्रुपदात्मजा । पञ्चानामहिषीकृष्णाप्सुमहानत्रसशय
भेवज ब्रह्महत्याया बलदेवो महाबल । तीर्थयात्राप्रसङ्गेन कस्माच्चक्रेहलायुध
कथञ्च द्रौपदेयास्तेऽकृतदारा महारथ । पाण्डुनाथा महात्मानो वधमापुरनाथवत्

एतत् सर्वं कथ्यता ॥ सन्दिग्धं भारतप्रति ।
कृतार्थोऽह सुख येन गच्छेय निजमाश्रमम् ॥ ३५ ॥

पक्षिण ऊचु

नमस्कृत्य सुरेशाय विष्णवे प्रभविष्णवे । पुरुषायाऽप्रमेयायशाश्वतायाऽव्ययाय च
चतुर्व्यूहात्मने तस्मै त्रिगुणायाऽगुणाय च । वरिष्ठायगरिष्ठायवरेण्यायाऽमृतायच

यस्मादणुतर नास्ति यस्मान्नास्ति बृहत्तरम् ।
येन विश्वमिद व्याप्तमजेन जगदादिना ॥ ३८ ॥

आविर्भावतिरोभावदृष्टादृष्टविलक्षणम् । वदन्तियत् सृष्टमिन्तथैवाऽन्ते च सहृतम्

ब्रह्मणे चादिदेवाय नमस्कृत्य समाधिना ।
ऋग्यजुःसामान्युद्गिरन्नयर्षियः पुनाति जगत्त्रयम् ॥ ४० ॥

प्रणिपत्य तथेशानमेकयाणविनिर्जितैः । यस्यानुग्रहणीयं गणिलुप्यन्ते न यक्षिनाम्

प्रवक्ष्यामो मतं कृत्स्नं व्यासस्याद्भुतकर्मणः ।
येन भारतमुद्दिश्य धर्मार्थाः प्रकटीकृताः ॥ ४२ ॥
आपो नारा इति प्रोक्ता मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ।
अयनं तस्य ताः पूर्वं तेन नारायणः स्मृतः ॥ ४३ ॥
स देवो भगवान् सर्वं व्याप्य नारायणो विभुः ।
चतुर्धा संस्थितो ब्रह्मन्! सगुणो निर्गुणस्तथा ॥ ४४ ॥
एका मूर्तिरनिर्देश्या शुक्लां पश्यन्ति तां बुधाः ।
ज्वालामालोपगूढाङ्गी निष्ठा सा योगिनां परा ॥ ४५ ॥
दूरस्था चान्तिकस्था च विज्ञेया सा गुणातिगा ।
वासुदेवाभिधानोऽसौ निर्ममत्वेन दृश्यते ॥ ४६ ॥

रूपवर्णादयस्तस्यां न भावाः कल्पनामयाः । अस्त्येव सा सदा शुद्धा सुप्रतिष्ठैकरूपिणी

द्वितीया पृथिवीं मूर्ध्ना शेषाख्या धारयत्यधः ।
तामसी सा समाख्याता तिर्यक्त्वं समुपाश्रिता ॥ ४८ ॥

तृतीया कर्म कुरुते प्रजापालनतत्परा । सत्त्वोद्रिक्ता तु सा ज्ञेया धर्मसंस्थानकारिणी
चतुर्थी जलमध्यस्था शेते पन्नगतल्पगा । रजस्तस्या गुणः सर्गं सा करोति सदैव हि
या तृतीया हरेर्मूर्तिः प्रजापालनतत्परा । सा तु धर्मव्यवस्थानं करोति नियतं भुवि

प्रोद्धूतानसुरान् हन्ति धर्मविच्छित्तिकारिणः ।
पाति देवान् सतश्चान्यान् धर्मरक्षापरायणान् ॥ ५२ ॥

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति जैमिने! । अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजत्यसौ
भूत्वा पुरा वराहेण तुण्डेनापो निरस्य च । एकया दंष्ट्रयोत्खाता नलिनीव वसुन्धरा
कृत्वा नृसिंहरूपञ्च हिरण्यकशिपुर्हतः । विप्रचित्तिमुखाश्चान्ये दानवा विनिपातिताः

वामनाद्यैस्तथैवान्यैस्त सङ्ख्यातुमिहोत्सहे । अवताराश्चतस्येह माथुर साम्प्रतत्वयम्

इति सा सात्त्विकीमूर्त्तिरवतारान् करोति वै ।
प्रद्युम्नेति च सा ख्याता रक्षाकर्मण्यवस्थिता ॥ ५७ ॥
देवत्वेऽथ मनुष्यत्वे तिर्य्यग्योनौ च संस्थिता ।
गृह्णाति तत्स्वभावञ्च वासुदेवेच्छया सदा ॥ ५८ ॥

इत्येतत्ते समाख्यातं वरस्योऽपियत्प्रभु । मानुषत्वगतोविष्णुः शृणुष्वास्योत्तर पुन

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे चतुर्व्यूहावतारवर्णननाम चतुर्थोऽध्याय ॥ ४ ॥

—— * ——

पञ्चमोऽध्यायः

इन्द्रविक्रियावर्णनम्

पक्षिण ऊचु

त्वष्टृपुत्रे हतेपूर्वं ब्रह्मन्निन्द्रस्य तेजस । ब्रह्महत्याभिभूतस्य परा हानिरजायत
तद्धर्मं प्रविवेशाऽथ शाक्रंतेजोऽपचारत । निस्तेजाश्चाभवच्छक्रोधर्मे तेजसि निर्गते
तत पुत्र हत श्रुत्वात्वष्टा क्रुद्ध प्रजापति । अवलुञ्च्य जटामेकामिदं वचनमब्रवीत्
अद्य पश्यन्तुमे वीर्यं त्रयो लोका सदेवता । स च पश्यतु दुर्बुद्धिर्ब्रह्महा पाकशासनः

स्वकर्माभिरतो येन मत्सुतो विनिपातित ।
इत्युक्त्वा कोपरक्ताक्षो जटामग्नौ जुहाव ताम् ॥ ५ ॥

ततो वृत्र समुत्तस्थौ ज्वालामाली महासुर । महाकायो महादंष्ट्रो भिन्नाञ्जनचयप्रभ
इन्द्रशत्रुरमेयात्मा त्वष्टृ तेजोऽपबृंहित । अहन्यहनि सोऽवर्द्धदिषुपात महाबल
वधाय चात्मनोदृष्ट्वावृत्रं शक्रोमहासुरम् । प्रेषयामाससप्तर्षीन् सन्धिमिच्छन्भयातुर
सख्यञ्चानुस्ततस्तस्य वृत्रेण समयास्तथा । ऋषय प्रीतमनस सर्वभूतहिते रताः
समयस्थितिमुल्लङ्घ्ययदाशक्रेण घातित । वृत्रो हत्याभिभूतस्य तदाबलमशीर्य्यत

तच्छक्रदेहविभ्रष्टं बलं मारुतमाविशत् । सर्वव्यापिनमव्यक्तं बलस्यैवाधिदैवतम्
अहल्यायां यदा शक्रो गौतमं रूपमास्थितः । धर्षयामास देवेन्द्रस्तदा रूपमहीयत
अङ्गप्रत्यङ्गलावण्यं यदतीव मनोरमम् । विहाय दुष्टं देवेन्द्रं नासत्यावगमत्ततः
धर्मेण तेजसा त्यक्तं बलहीनमरूपिणम् । ज्ञात्वा सुरेशं दैतेयास्तज्जये चक्रुरुद्यमम्
राज्ञामुद्रिक्तवीर्याणां देवेन्द्रं विजिगीषवः । कुलेष्वतिबला दैत्या अजायन्त महामुने
कस्यचित्त्वथ कालस्य धरणी भारपीडिता । जगाम मेरुशिखरं सदो यत्र दिवौकसाम्
तेषां सा कथयामास भूरिभारावपीडिता । दनुजात्मजदैत्योत्थं खेदकारणमात्मनः
एते भवद्भिरसुरा निहताः पृथुलौजसः । ते सर्वे मानुषे लोके जाता गेहेषु भूभृताम्

अक्षौहिण्यो हि बहुलास्तद्भारार्ता व्रजाम्यधः ।
तथा कुरुध्वं त्रिदशा यथा शान्तिर्भवेन्मम ॥ १९ ॥

पक्षिण ऊचुः

तेजोभागैस्ततो देवा अवतेरुर्दिवो महीम् । प्रजानामुपकारार्थं भूभारहरणाय च
यदिन्द्रदेहजं तेजस्तन्मुमोच स्वयं वृषः । कुन्त्यां जातो महातेजास्ततो राजा युधिष्ठिरः
बलं मुमोच पवनस्ततो भीमो व्यजायत । शक्रवीर्यार्द्धतश्चैव जज्ञे पार्थो धनञ्जयः
उत्पन्नौ यमजौ माद्र्यां शक्ररूपौ महाद्युती । पञ्चधा भगवानित्थमवतीर्णः शतक्रतुः

तस्योत्पन्ना महाभागा पत्नी कृष्णा हुताशनात् ।
शक्रस्यैकस्य सा पत्नी कृष्णा नान्यस्य कस्यचित् ।
योगीश्वराः शरीराणि कुर्वन्ति बहुलान्यपि ॥ २५ ॥

पञ्चानामेकपत्नीत्वमित्येतत्कथितं तव । श्रूयतां बलदेवोऽपि यथा यातः सरस्वतीम्

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे इन्द्रविक्रियावर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

षष्ठोऽध्यायः

बलदेवब्रह्महत्यावर्णनम्

पक्षिण ऊचुः

रामः पार्थपरां प्रीतिं ज्ञात्वा कृष्णस्य लाङ्गली। चिन्तयामास बहुधा किं कृतं सुकृतं भवेत्

कृष्णेन हि विना नाऽहं यास्ये दुर्योधनान्तिकम्।
पाण्डवान् वा समाश्रित्य कथं दुर्योधनं नृपम्॥ २॥

जामातरं तथा शिष्यं घातयिष्ये नरेश्वरम्। तस्मान्नाहं यास्यामि नापि दुर्योधनं नृपम्

तीर्थेष्वाप्लावयिष्यामि तावदात्मानमात्मना।
कुरूणां पाण्डवानाञ्च यावदन्ताय कल्पते॥ ४॥

इत्यामन्त्र्य हृषीकेशं पार्थदुर्योधनावपि। जगाम द्वारकां शौरिः स्वसैन्यपरिवारितः

गत्वा द्वारवतीं रामो हृष्टपुष्टजनाकुलाम्। भोगन्तव्येषु तीर्थेषु पपौ पानं हलायुधः

पीतपानो जगामाथ रैवतोद्यानमृद्धिमत्। हस्ते गृहीत्वा समदां रेवतीमप्सरोपमाम्

स्त्रीकदम्बकमध्यस्थो ययौ मत्तः पदा स्खलन्। ददर्श च वनं वीरो रमणीयमनुत्तमम्

सर्वर्तुफलपुष्पाढ्यं शाखामृगगणाकुलम्।
पुण्यं पद्मवनोपेतं सपल्वलमहावनम्॥ ९॥
स शृण्वन् प्रीतिजननान् बहून्मदकलान् शुभान्।
श्रोत्ररम्यान् सुमधुरान् शब्दान् खगमुखेरितान्॥ १०॥
सर्वर्तुफलभाराढ्यान् सर्वर्तुकुसुमोज्ज्वलान्।
अपश्यत् पादपांस्तत्र विहङ्गैरनुनादितान्॥ ११॥
आम्रानाम्रातकान् भव्यान् नारिकेलान् सतिन्दुकान्।
आबिल्वकांस्तथा जीरान् दाडिमान् बीजपूरकान्॥ १२॥
पनसान् लकुचान् मोचान् नीपांश्चातिमनोहरान्।

पारावतांश्च कङ्कोलान् नलिनानम्लवेतसान् ॥ १३ ॥
भल्लातकानामलकांस्तिन्दुकांश्च महाफलान्॥
इङ्गुदान् करमर्दांश्च हरीतकविभीतकान् ॥ १४ ॥
एतानन्यांश्च स तरून् ददर्श यदुनन्दनः । तथैवाशोकपुन्नागकेतकीवकुलानथ ॥ १४
चम्पकान् सप्तपर्णांश्च कर्णिकारान् समालतीन् ।
पारिजातान् कोविदारान् मन्दारान् वदरांस्तथा १६ ॥
पाटलान् पुष्पितान् रम्यान् देवदारुद्रुमांस्तथा ।
सालांस्तालांस्तमालांश्च किंशुकान् वञ्जुलान् वरान् ॥ १७ ॥
चकोरैःशातपत्रैश्च भृङ्गराजैस्तथा शुकैः । कोकिलैः कलविङ्कैश्चहारीतैर्जीवजीवकैः
प्रियपुत्रैश्चातकैश्च तथान्यैर्विविधैः खगैः । श्रोत्ररम्यं सुमधुरं कूजद्भिश्चाप्यधिष्ठितम्
सरांसिच मनोज्ञानि प्रसन्नसलिलानि च । कुमुदैःपुण्डरीकैश्चतथा नीलोत्पलैः शुभैः
कह्लारैः कमलैश्चापिआचितानि समन्ततः । कादम्बैश्चक्रवाकैश्च तथैव जलकुक्कुटैः
कारण्डवैः प्लवैर्हंसैः कूर्मैर्मद्गुभिरेव च ।
एभिश्चान्यैश्च कीर्णानि समन्ताज्जलचारिभिः ॥ २२ ॥
क्रमेणेत्थं वनं शौरिर्वीक्षमाणो मनोरमम् । जगामानुगतः स्त्रीभिर्लतागृहमनुत्तमम्
स ददर्श द्विजांस्तत्र वेदवेदाङ्गपारगान् ।
कौशिकान् भार्गवांश्चैव भारद्वाजान् सगौतमान् ॥ २४ ॥
विविधेषु च सम्भूतान् वंशेषु द्विजसत्तमान् ।
कथाश्रवणवद्धोत्कानुपविष्टान्महत्सु च ॥ २५ ॥
कृष्णाजिनोत्तरीयेषु कुशेषु च वृषीषु च । सूतं च तेषां मध्यस्थंकथयानंकथाःशुभाः
पौराणिकीः सुरर्षीणामाद्यानां चरिताश्रयाः ।
दृष्ट्वा रामं द्विजाः सर्वे मधुपानारुणेक्षणम् ॥ २७ ॥
मत्तोऽयमिति मन्वानाः समुत्तस्थुस्त्वरान्विताः ।
पूजयन्तो हलधरमृते तं सूतवंशजम् ॥ २८ ॥

ततः क्रोधसमाविष्टो हली सूतं महाबलः। निजघान विवृत्ताक्षः क्षोभिताशेषदानवः।

अध्यास्यति पदं ब्राह्मं तस्मिन् सूते निपातिते।

निष्क्रान्तास्ते द्विजाः सर्वे वनात्कृष्णाजिनाम्बराः॥ ३०॥

अवधूतं तथात्मानं मन्यमानो हलायुधः। चिन्तयामास सुमहन्मया पापमिदं कृतम्

ब्राह्मं स्थानं गतो ह्येष यत्सूतो विनिपातितः।

तथा ह्यमी द्विजाः सर्वे मामवेक्ष्य विनिर्गताः॥ ३२॥

शरीरस्य च मे गन्धो लोहस्येवाऽसुखावहः।

आत्मानञ्चावगच्छामि ब्रह्मघ्नमिव कुत्सितम्॥ ३३॥

धिगमर्षं तथा मद्यमभिमानमशीलताम्। यैराविष्टेन सुमहन्मया पापमिदं कृतम्

तत्क्षयार्थं चरिष्यामि व्रतं द्वादशवार्षिकम्।

स्वकर्मख्यापनं कुर्वन्प्रायश्चित्तमनुत्तमम्॥ ३४॥

अथ येयं समारब्धा तीर्थयात्रा मयाऽधुना।

तामेव प्रयास्यामि प्रतिलोमां सरस्वतीम्॥ ३५॥

ततो जगाम रामोऽसौ प्रतिलोमां सरस्वतीम्।

ततः परं शृणुध्वेमं पाण्डवेयकथाश्रयम्॥ ३६॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे बलदेवब्रह्महत्यावर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः॥ ६॥

सप्तमोऽध्यायः

द्रौपदेयोत्पत्तिवर्णनम्

धर्मपक्षिण ऊचुः

हरिश्चन्द्रेतिराजर्षिरासीत्त्रेतायुगे पुरा। धर्मात्मापृथिवीपालःप्रोल्लसत्कीर्तिरुत्तमः

न दुर्भिक्षंनचव्याधिर्नाकालमरणंनृणाम्। नाधर्मरुचयःपौरास्तस्मिन्शासतिपार्थिवे

बभूवुर्न तथोन्मत्ता धनवीर्य्यतपोमदैः। नाजायन्त स्त्रियश्चैवकाश्चिदप्राप्तयौवनाः

स कदाचिन्महाबाहुररण्येऽनुसरन् मृगम्।

शुश्राव शब्दमसकृत्त्रायस्वेति च योषिताम्॥ ४ ॥

सविहायमृगंराजामाभैषीरित्यभाषत। मयिशासतिदुर्मेधाःकोऽयमन्यायवृत्तिमान्

तत्क्रन्दितानुसारी च सर्वारम्भविघातकृत्।

एतस्मिन्नन्तरे रौद्रो विघ्नराट् समचिन्तयत्॥ ६ ॥

विश्वामित्रोऽयमतुलं तप आस्थाय वीर्य्यवान्।

प्रागसिद्धाभवादीनां विद्याः साधयति व्रती॥ ७ ॥

साध्यमानाःक्षमामौनचित्तसंयमिनाऽमुना। तावैभयार्त्ताःक्रन्दन्तिकथंकार्य्यमिदंमया

तेजस्वी कौशिकश्रेष्ठो वयमस्य सुदुर्बलाः।

क्रोशन्त्येतास्तथाभीता दुष्पारं प्रतिभाति मे॥ ९ ॥

अथवाऽयं नृपः प्राप्तो माभैरितिवदन्मुहुः। इममेवप्रविश्याशुसाधयिष्येयथेप्सितम्

इति सञ्चिन्त्य रौद्रेण विघ्नराजेन वै ततः। तेनाविष्टो नृपः कोपादिदंवचनमब्रवीत्

कोऽयंबध्नातिवस्त्रान्तेपावकंपापकृन्नरः। बलोष्णतेजसादीप्तेमयिपत्यावुपस्थिते

सोऽद्यमत्कार्मुकाक्षेपविदीपितदिगन्तरैः। शरैर्विभिन्नसर्व्वाङ्गो दीर्घनिद्रांप्रवेक्ष्यति

विश्वामित्रस्ततः क्रुद्धः श्रुत्वा तन्नृपतेर्वचः। क्रुद्धे चर्षिवरेतस्मिन्नेशुर्विद्याः क्षणेनताः

सचापिराजातंदृष्ट्वा विश्वामित्रंतपोनिधिम्। भीतःप्रावेपतात्यर्थंसहसाश्वत्थपर्णवत्

स दुरात्मविति यदा मुनिस्तिष्ठेति चाब्रवीत् ।
ततः स राजा विनयात् प्रणिपत्याऽभ्यभाषत ॥ १६ ॥

भगवन्नेव धर्म्मो मे नापराधो मम प्रभो ! । न क्रोद्धमर्हसि मुने निजधर्मरतस्य मे
दातव्य रक्षितव्यञ्च धर्मज्ञेन महीक्षिता । चापश्चोद्यम्य योद्धव्यं धर्मशास्त्रानुसारतः

विश्वामित्र उवाच

दातव्य कस्य के रक्ष्या कैर्योद्धव्यञ्च ते नृप !। क्षिप्रमेतत् समाचक्ष्व यद्यधर्मभयं तव

हरिश्चन्द्र उवाच

दातव्य विप्रमुख्येभ्यो येचान्ये कृशवृत्तय । रक्ष्या भीताः सदा युद्धं कर्तव्यं परिपन्थिभिः

विश्वामित्र उवाच

यदि राजा भवान् सम्यग्राजधर्ममवेक्षसे । निर्वेष्टुकामो विप्रोऽहं दीयतामिष्टदक्षिणा

पक्षिण ऊचु

एतद्राजा वच श्रुत्वा प्रहृष्टेनान्तरात्मना । पुनर्जातमिवात्मानं मेनेप्राह च कौशिकम्

उच्यतां भगवन् ! यत्ते दातव्यमविशङ्कितम् ।
दत्तमित्येव तद्विद्धि यद्यपि स्यात् सुदुर्लभम् ॥ २३ ॥

हिरण्य वा सुवर्णं वा पुत्र पत्नी कलेवरम् । प्राणा राज्य पुरं लक्ष्मीर्यदभिप्रेतमात्मन

विश्वामित्र उवाच

राजन् ! प्रतिगृहीतोऽयं यस्तेदत्त प्रतिग्रह । प्रयच्छ प्रथमं तावद्दक्षिणां राजसूयिकीम्

राजोवाच ।

ब्रह्मंस्तामपि दास्यामि दक्षिणां भवतो ह्यहम् ।
व्रियतां द्विजशार्दूल ! यस्तवेष्ट प्रतिग्रह ॥ २६ ॥

विश्वामित्र उवाच

ससागरा धरामेतां सभूभृद्ग्रामपत्तनाम् । राज्यञ्च सकलं वीर ! रथाश्वगजसङ्कुलम्
कोष्ठागारञ्च कोषञ्च यच्चान्यद्विद्यते तव । विना भार्य्याञ्च पुत्रञ्च शरीरञ्च तवानघ
धर्मञ्च सर्वधर्मज्ञ ! यो यान्तमनुगच्छति । बहुना वा किमुक्तेन सर्वमेतत् प्रदीयताम्

पक्षिण ऊचुः

प्रहृष्टेनैव मनसा सोऽविकारमुखो नृपः । तस्यर्षेर्वचनं श्रुत्वा तथेत्याह कृताञ्जलिः

विश्वामित्र उवाच

सर्वस्वं यदि मे दत्तं राज्यमुर्व्वीबलंधनम् । प्रभुत्वंकस्यराजर्षे! राज्यस्थेतापसेमयि

हरिश्चन्द्र उवाच

यस्मिन्नपिमयाकालेब्रह्मन्दत्तावसुन्धरा ।तस्मिन्नपिभवानस्वामीकिमुतायमहीपतिः

विश्वामित्र उवाच

यदि राजंस्त्वादत्तामम सर्व्वा वसुन्धरा। यत्रमेविषयेस्वाम्यंतस्मान्निष्क्रान्तुमर्हति

श्रोणीसूत्रादिसकलं मुक्त्वाभूषणसङ्ग्रहम् । तरुवल्कलमाबध्यसह पत्न्या सुतेनच

पक्षिण ऊचुः

तथेतिचोक्त्वाकृत्वाचराजागन्तुंप्रचक्रमे । स्वपत्न्याशैव्यया सार्द्धंबालकेनात्मजेनच

व्रजतःसततोरुद्ध्वा पन्थानंप्राहतंनृपम् । क्वयास्यसीत्यदत्त्वामेदक्षिणांराजसूयिकीम्

हरिश्चन्द्र उवाच

भगवन्! राज्यमेतत्ते दत्तं निहतकण्टकम् । अवशिष्टमिदं ब्रह्मन्नद्य देहत्रयं मम

विश्वामित्र उवाच

तथापिखलु दातव्या त्वयामेयज्ञदक्षिणा । विशेषतो ब्राह्मणानांहन्त्यदत्तंप्रतिश्रुतम्

यावत्तोषो राजसूये ब्राह्मणानां भवेन्नृप !! तावदेव तु दातव्या दक्षिणा राजसूयिकी

प्रतिश्रुत्य च दातव्यं योद्धव्यं चाऽऽततायिभिः ।

रक्षितव्यास्तथा चार्त्तास्त्वयैव प्राक् प्रतिश्रुतम् ॥ ४० ॥

हरिश्चन्द्र उवाच

भगवन्! साम्प्रतं नास्ति दास्ये कालक्रमेणते । प्रसादंकुरुविप्रर्षेसद्भावमनुचिन्त्यच

विश्वामित्र उवाच

किम्प्रमाणो मया कालः प्रतीक्ष्यस्ते जनाधिप !!

शीघ्रमाचक्ष्व शापाग्निरन्यथा त्वां प्रधक्ष्यति ॥ ४२ ॥

हरिश्चन्द्र उवाच

मार्गेण तव विप्रर्षे ! प्रयास्ये दक्षिणापथम् । नास्त्यन्नं नास्ति मे वित्तमनुज्ञातुमर्हसि

विश्वामित्र उवाच

गच्छ गच्छ नृपश्रेष्ठ ! स्वधर्ममनुपालय । शिवश्च तेऽस्त्वध्वगमनमनुमान्यनुपरिपन्थिन

पक्षिण ऊचुः

अनुयान्तं स गच्छेति जगाम वसुधाधिप । पद्भ्यामनुचितागन्तुमगच्छत्तनयप्रिया
तं समायान्तं नृपश्रेष्ठं निष्क्रान्तं सपुत्रं पुरात् । दृष्ट्वा प्रचुक्रुशुः पौरास्तत्रानुयायिनः

हा नाथ ! किं जहास्यस्मान् नित्यार्तिपरिपीडितान् ।
त्वं धर्मपरो राजन् ! पौरानुग्रहकृत्तथा ॥ ४९ ॥

नयाऽस्मानपि राजर्षे ! यदि धर्ममवेक्षसे । मुहूर्तं तिष्ठ राजेन्द्र ! भवतो मुखपङ्कजम्
पिबामो नेत्रभ्रमरैः कदा द्रक्ष्यामहे पुनः । यस्य प्रयाणेऽनुयान्ति पृष्ठतः पार्थिवा

नान्याऽनुयाति भार्येयं गृहीत्वा बालकं सुतम् ।
यस्य भृत्याः प्रयान्त्यग्रे यान्त्यपि कुञ्जरस्थिताः ॥ ५० ॥
स एव पद्भ्यां राजेन्द्रो हरिश्चन्द्रोऽद्य गच्छति ।
हा राजन् ! सुकुमारं ते सुभ्रु सुपक्ष्म सुनसम् ॥ ५१ ॥

पथि पांसुपरिक्लिष्टं मुखं कीदृग्भविष्यति । तिष्ठ तिष्ठ नृपश्रेष्ठ ! स्वधर्ममनुपालय
आनृशंस्यं परो धर्मः क्षत्रियाणां विशेषतः । किं दारैः किं सुतैर्नाथ धनैर्धान्यैरथापि वा

सर्वमेतत् परित्यज्य छायाभूता वयं तव ।
हा नाथ ! हा महाराज ! हा स्वामिन् ! किं जहासि नः ॥ ५४ ॥

यत्र त्वं तत्र हि वयं तत्सुखं यत्र वै भवान् । नगरं तद्भवान् यत्र स स्वर्गो यत्र नो नृपः
इति पौरवचः श्रुत्वा राजा शोकपरिप्लुतः । अतिष्ठत् स तदा मार्गे तेषामेवानुकम्पया

विश्वामित्रोऽपि तं दृष्ट्वा पौरवाक्याकुलीकृतम् ।
रोषामर्षविवृत्ताक्षः समागम्य वचोऽब्रवीत् ॥ ५७ ॥

धिक् त्वां दुष्टसमाचारमनृतं जिह्मभाषितम् । मम राज्यं च दत्त्वाथ पुनः प्राकर्ष्टुमिच्छसि

इत्युक्तः परुषंतेन गच्छामीति सवेपथुः । ब्रुवन्नेवं ययौ शाघ्रमाकर्षन्दयितां करे
कर्षतस्तां ततो भार्यांसुकुमारींश्रमातुराम् । सहसादण्डकाग्रेनताड़यामासकौशिकः

तां तथा ताडितां दृष्ट्वा हरिश्चन्द्रो महीपतिः ।
गच्छामीत्याह दुःखार्तो नान्यत्किञ्चिदुदाहरत् ॥ ६१ ॥
अथ विश्वे तदा देवाः पञ्च प्राहुः कृपालवः ।
विश्वामित्रः सुपात्रोऽयं लोकान् कान् समवाप्स्यति ॥ ६२ ॥

येनाऽयं यज्वनां श्रेष्ठःस्वराज्यादवरोपितः । कस्य वा श्रद्धयापूतंसुतंसोमंमहाध्वरे

पीत्वा वयं प्रयास्यामो मुदं मन्त्रपुरःसरम् ॥ ६३ ॥

पक्षिण ऊचुः ।

इति तेषां वचःश्रुत्वा कौशिकोऽतिरुषान्वितः ।
शशाप तान् मनुष्यत्वं सर्वे यूयमवाप्स्यथ ॥ ६४ ॥

प्रसादितंच तैः प्राह पुनरेवमहामुनिः । मानुषत्वेऽपि भवतां भवित्रीनैव सन्ततिः
न दारसङ्ग्रहश्चैव भविता न च मत्सरः । कामक्रोधविनिर्मुक्ताभविष्यथ सुराः पुनः
ततोऽवतेरुरंशैः स्वैर्देवास्ते कुरुवेश्मनि । द्रौपदीगर्भसम्भूताः पञ्च वै पाण्डुनन्दनाः
एतस्मात्कारणात्पञ्च पाण्डवेया महारथाः । नदारसङ्ग्रहंप्राप्ताःशापात्तस्यमहामुनेः
एतत्ते सर्वमाख्यातं पाण्डवेयकथाश्रयम् । प्रश्नंचतुष्टयंगीतंकिमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे द्रौपदेयोत्पत्तिवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अष्टमोऽध्यायः

हरिश्चन्द्रोपाख्यानवर्णनम्

जैमिनिरुवाच

भवद्भिरिदमाख्यातं यथाप्रश्नमनुक्रमात्। महत् कौतूहलमस्ति हरिश्चन्द्रकथांप्रति
अहो महात्मना तेन प्राप्तं दुःखमनुत्तमम्। कच्चित् सुखमनुप्राप्त तादृगेव द्विजोत्तमा

पक्षिण ऊचु

विश्वामित्रवचः श्रुत्वा राजा मन्दं ययौ शनैः। शैब्ययाऽनुगतो दुःखी भार्यया बालपुत्रया
स गत्वा वसुधापालो दिव्यां वाराणसीं पुरीम्। नेयं मनुष्यभोग्येति शूलपाणिपरिग्रह
जगाम पद्भ्यां दुःखार्तः सह पत्न्याऽनुकूलया। पुरीप्रवेशे ददृशे विश्वामित्रमुपस्थितम्
तं दृष्ट्वा समनुप्राप्तं विनयावनतोऽभवत्। प्राह चैवाञ्जलिं कृत्वा हरिश्चन्द्रो महामुनिम्
इमे प्राणा सुतश्चायमियं पत्नी मुने मम। येन ते कृत्यमस्त्याशु तद्गृहाणार्घ्यमुत्तमम्
यच्चाऽन्यत् कार्यमस्माभिस्तदनुज्ञातुमर्हसि ॥ ८॥

विश्वामित्र उवाच

पूर्ण स मासो राजर्षे दीयतां ममदक्षिणा। राजसूयनिमित्तं हि स्मर्यते स्ववचो यदि

हरिश्चन्द्र उवाच

ब्रह्मन्नद्यैवसम्पूर्णोमासोऽम्लानतपोधन। तिष्ठत्येतद्दिनार्धं यत्तत् प्रतीक्षस्व माचिरम्

विश्वामित्र उवाच

एवमस्तुमहाराज आगमिष्याम्यहं पुन। शापं तव प्रदास्यामि नचेदद्य प्रदास्यसि

पक्षिण ऊचु

इत्युक्त्वा प्रययौ विप्रो राजा चाऽचिन्तयत्तदा।
कथमस्मै प्रदास्यामि दक्षिणा या प्रतिश्रुता ॥ १२ ॥

कुतः पुष्टानि मित्राणि कुतोऽर्थः साम्प्रतं मम। प्रतिग्रह प्रदुष्टो मे नाहं याचामि कथम्

किमु प्राणान् विमुञ्चामि कां दिशं याम्यकिञ्चनः।
यदि नाशं गमिष्यामि अप्रदाय प्रतिश्रुतम् ॥ १४ ॥
ब्रह्मस्वहृत्कृमिःपापो भविष्याम्यधमाधमः। अथवाप्रेष्यतांयास्येवरमेवात्मविक्रयः

पक्षिण ऊचुः

राजानं व्याकुलंदीनं चिन्तयानमधोमुखम्। प्रत्युवाच तदा पत्नीबाष्पगद्गदयागिरा
त्यज चिन्तां महाराज!स्वसत्यमनुपालय। श्मशानवद्वर्जनायोनरः सत्यबहिष्कृतः
नातः परतरं धर्मं वदन्ति पुरुषस्य तु। यादृशं पुरुषव्याघ्र! स्वसत्यपरिपालनम्
अग्निहोत्रमधीतं वा दानाद्याश्चाखिलाः क्रियाः।
भजन्ते तस्य वैफल्यं यस्य वाक्यमकारणम् ॥ १६ ॥
सत्यमत्यन्तमुदितं धर्मशास्त्रेषुधीमताम्। तारणायानृतं तद्वत्पातनायाकृतात्मनाम्
सप्ताश्वमेधानाहृत्य राजसूयञ्च पार्थिवः। कृतिर्नामच्युतःस्वर्गादसत्यवचनात्सकृत्
राजन्! जातमपत्यं मे इत्युक्त्वाप्ररुरोदह। बाष्पाम्बुप्लुतनेत्रान्तामुवाचेदंमहीपतिः

हरिश्चन्द्र उवाच

विमुञ्च भद्रे! सन्तापमयंतिष्ठति बालकः। उच्यतांवक्तुकामासियद्वात्वंगजगामिनि

पत्न्युवाच

राजन्!जातमपत्यं मे सतांपुत्रफलाःस्त्रियः। समांप्रदायवित्तेनदेहिविप्रायदक्षिणाम्

पक्षिण ऊचुः

एतद्वाक्यमुपश्रुत्य ययौमोहंमहीपतिः। प्रतिलभ्यचसञ्ज्ञांसविललापाऽतिदुःखितः
महद्दुःखमिदं भद्रे! यत्त्वमेवं ब्रवीषि माम्।
किन्तवस्मितसंलापा मम पापस्य विस्मृताः ॥ २६ ॥
हा हा! कथं त्वया शक्यं वक्तुमेतत् शुचिस्मिते!।
दुर्वाच्यमेतद्वचनं कर्तुं शक्नोम्यहं कथम् ॥ २७ ॥
इत्युक्त्वा सनरश्रेष्ठोधिग्धिगित्यसकृद्ब्रुवन्। निपपातमहीपृष्ठेमूर्च्छयाभिपरिप्लुतः
शयानं भुवि तं दृष्ट्वा हरिश्चन्द्रं महीपतिम्। उवाचेदं सकरुणं राजपत्नी सुदुःखिता

पन्युवाच

हामहाराज'कम्येदमपथ्यानमुपस्थितम् । यच्चनिपतितोभूमौराज्ञ्चान्तरणोचित
येन कोटचग्रगोवित्त विशालामपर्जितम् । सपत्पृथिवानाथोभूर्मान्वपितिमेपति
शक्य कि तवानेन हृतदेव'महाक्षिता । यदिन्द्रोपेन्द्रतुल्योऽयवीत प्रस्थापर्नादशाम्
इत्युक्त्वा मापितुर्भोपामृच्छिताननिपपानह । मत्तं तु यमहामारेणासहोमनिर्पाडिता
सीतयापतितौभूमावनायौपिनरौशिशु । दृष्टारुदन्तपुथाविष्ट प्राहराक्यहुटु स्वित
तात तात ददस्याम्रमस्याम्य भाजन दह । अुम्म बल्घता आतातिजिह्वाग्रशुष्यते तथा

पक्षिण ऊचु

सयतहिमग्रन्ववैवातोविश्वामित्रोमहातपा । दृष्टातुनहरिश्चन्द्रपतितनभुविमूर्च्छितम्

स पारिणा समभ्युक्ष्य राजानमिदमब्रवीत ।
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ राजेन्द्र! ता दद्म्येष्टदक्षिणाम् ॥ ३७ ॥

ऋण धारयतो दु लमहन्यहनि वर्द्धते । आप्याव्यमान तदा हिमशीतेन वारिणा
अवाप्य चेतना राजा विश्वामित्रमवेक्ष्य च । पुनर्मोह समापेदसचक्रोधययौमुनि
स समाश्वास्य राजान वाक्यमाह द्विजोत्तम । दीयतादक्षिणाशेषमयदिधर्ममवेक्षसे
सत्येनाऽर्क प्रतपति सत्येतिष्ठतिमेदिनी । सत्यञ्चोक्तपरो धर्म स्वर्ग सत्येप्रतिष्ठित
अश्वमेधसहस्र च सत्यञ्च तुलया धृतम् । अश्वमेधसहस्राद्धि सत्यमेव विशिष्यते
अथवा किं ममैतेन साम्ना प्रोक्तेन कारणम् । अनार्ये पापसङ्कल्पे क्रूरेचान्नृतवादिनि

त्वयि राज्ञि प्रभवति सद्भाव श्रूयतामयम् ।
अत्र मे दक्षिणा राजन्न दास्यति भवान् यदि ॥ ४४ ॥
अस्ताचल प्रयातेऽर्के शप्स्यामि त्वा ततो ध्रुवम् ।
इत्युक्त्वा स ययौ विप्रो राजा चासीद्भयातुर ॥ ४५ ॥
का दिशभूतोऽधमो निस्वो नृशसधनिनार्दित ।
मायपाम्य नृप- प्राहेद क्रियता वचन मम ॥ ४६ ॥

ना शापानलनिर्दग्ध पञ्च वमुपयास्यसि । स तयाचोद्यमानस्तुराजाप त्यापुन पुन

प्राह भद्रे करोम्येष विक्रयं तव निर्घृणः । नृशंसैरपियत्कर्त्तुं नशक्यंतत्करोम्यहम्
यदिमे शक्यतेवाणी वक्तुमीदृक् सुदुर्वचः । एवमुक्त्वाततोभार्यांगत्वानगरमातुरः
बाष्पापिहितकण्ठाक्षस्ततो वचनमब्रवीत् ॥ ४९ ॥

राजोवाच

भोभो नागरिकाःसर्वेश्रृणुध्वंवचनंमम । किं मांपृच्छथकस्त्वंभोनृशंसोऽहममानुषः
राक्षसो वाऽतिकठिनस्ततः पापतरोऽपिवा ।
विक्रेतुं दयितां प्राप्तो यो न प्राणांस्त्यजाम्यहम् ॥ ५१ ॥
यदि वः कस्यचित् कार्यं दास्या प्राणेष्टया मम ।
स ब्रवीतु त्वरायुक्तो यावत् सन्धारयाम्यहम् ॥ ५२ ॥

पक्षिण ऊचुः

अथ वृद्धो द्विजः कश्चिदागत्याह नराधिपम् । समर्पयस्व मे दासीमहं क्रेता धनप्रदः
अस्ति मे वित्तमस्तोकंसुकुमारीचमेप्रिया । गृहकर्मनशक्नोति कर्त्तुमस्मात्प्रयच्छमे
कर्मण्यतावयोरूपशीलानां तव योषितः । अनुरूपमिदं वित्तं गृहाणार्पय मेऽबलाम्
एवमुक्तस्य विप्रेण हरिश्चन्द्रस्य भूपतेः । व्यदीर्यत मनोदुःखान्नचैनंकिञ्चिदब्रवीत्
ततः स विप्रो नृपतेर्वल्कलान्ते दृढं धनम् । बद्ध्वा केशेष्वथादायनृपपत्नीमकर्षयत्
रुरोद (रोहिताश्वोऽपि) रहिताश्वोऽपि दृष्ट्वा कृष्टां तु मातरम् ।
हस्तेन वस्त्रमाकर्षन् काकपक्षधरः शिशुः ॥ ५८ ॥

राजपत्न्युवाच

मुञ्चाऽऽर्य मुञ्च तावन्मां यावत् पश्याम्यहं शिशुम् ।
दुर्लभं दर्शनं तात पुनरस्य भविष्यति ॥ ५९ ॥
पश्यैहि वत्स ! मामेवं मातरं दास्यतां गताम् ।
मां मास्प्राक्षीः राजपुत्र अस्पृश्याहं तवाऽधुना ॥ ६० ॥
ततः स बालःसहसादृष्ट्वाकृष्टान्तुमातरम् । समभ्यधावदम्बेतिरुदन्सास्राविलेक्षण
तमागतं द्विजः क्रेतावालमभ्याहनत्पदा । वदंस्तथापिसोऽम्बेतिनैवामुञ्चतमातरम्

राजपत्न्युवाच

प्रसादं कुरु मे नाथ कीर्णाक्ष्येमप्रबालकम् । कीतापिताहमयतोधिनैनंकार्यसाधिका
इत्थं ममाल्पभाग्याया प्रसादसुमुखोभव । मां संयोजयबालेन वत्सेनेवपयस्विनीम्

ब्राह्मण उवाच

गृह्यतां वित्तमेतत्ते दीयतां बालको मम । स्त्रीपुंसोर्धर्मशास्त्रज्ञैः कृतमेव हि वेतनम्

शतं सहस्रं लक्षञ्च कोटिमूल्यं तथा परैः ॥ ६५ ॥

पक्षिण ऊचुः

तथैव तस्य तद्वित्तं बद्ध्वोत्तरपटे ततः । प्रगृह्य बालकं मात्रा सहैकस्थमबन्धयत्
नीयमानां तु तां दृष्ट्वा भार्यां पुत्रं च पार्थिव । विललाप सुदुःखार्तो निःश्वस्योष्णं पुनः पुनः
या न वायुर्न चादित्यो नेन्दुर्न च पृथग्जनः । दृष्टवन्तः पुरा पत्नी सेयं दासीत्वमागता
सूर्यवंशप्रसूतोऽयं सुकुमारकराङ्गुलिः । सम्प्राप्तो विक्रयं बालो धिङ्मामस्तु सुदुर्मतिम्
हा प्रिये ! हा शिशो ! वत्स ! ममानार्यस्य दुर्नयैः ।
दैवाधीनां दशां प्राप्तो न मृतोऽस्मि तथापि धिक् ॥ ७० ॥

पक्षिण ऊचुः

एवं विलपतो राज्ञः स विप्रोऽन्तरधीयत । वृक्षगेहादिभिस्तुङ्गैस्तावादाय त्वरान्वितः
विश्वामित्रस्ततः प्राप्तो नृपं वित्तमयाचत । तस्मै समर्पयामास हरिश्चन्द्रोऽपि तद्धनम्
तद्वित्तं स्तोकमालोक्य दारविक्रयसम्भवम् ।
शोकाभिभूतं राजानं कुपितः कौशिकोऽब्रवीत् ॥ ७३ ॥
क्षत्रबन्धो ! ममेमां त्वं सदृशीं यज्ञदक्षिणाम् । मन्यसे यदि तत्क्षिप्रं पश्य त्वमेव बलं परम्
तपसोऽत्र सुतप्तस्य ब्राह्मण्यस्यामलस्य च । मत्प्रभावस्य चोग्रस्य शुद्धस्याध्ययनस्य च
अन्यां दास्यामि भगवन् ! कालः कश्चित् प्रतीक्ष्यताम् ।
साम्प्रतं नास्ति विक्रीता पत्नी पुत्रश्च बालकः ॥ ७८ ॥

विश्वामित्र उवाच

चतुर्भागः स्थितो योऽयं दिवसस्य नराधिप ! । एष एव प्रतीक्ष्यो मे वक्तव्यं नोत्तरं त्वया

पक्षिण ऊचुः

तमेवमुक्त्वा राजेन्द्रं निष्ठुरंनिर्घृणंवचः। तदादाय धनं तूर्णं कुपितः कौशिकोययौ

विश्वामित्रे गते राजा भयशोकाब्धिमध्यगः।

सर्वाकारं विनिश्चित्य प्रोवाचोच्चैरधोमुखः॥ ७६॥

वित्तक्रीतेनयोह्यर्थीमयाप्रेष्येणमानवः। सब्रवीतु त्वरायुक्तो यावत्तपति भास्करः

अथाजगाम त्वरितो धर्मश्चण्डालरूपधृक्। दुर्गन्धोविकृतोरूक्षःश्मश्रुलोदन्तुरोघृणी

कृष्णो लम्बोदरः पिङ्गरूक्षाक्षः परुषाक्षरः। गृहीतपक्षिपुञ्जश्च शवमाल्यैरलङ्कृतः

कपालहस्तो दीर्घास्यो भैरवोऽतिवदन् मुहुः।

श्वगणाभिवृतो घोरो यष्टिहस्तो निराकृतिः॥ ८३॥

चण्डाल उवाच

अहमर्थीत्वयाशीघ्रंकथयस्वात्मवेतनम्। स्तोकेनबहुना वाऽपि येन वै लभ्यतेभवान्

पक्षिण ऊचुः

तं तादृशमथालक्ष्यक्रूरदृष्टिं सुनिष्ठुरम्। वदन्तमतिदुःशीलंकस्त्वमित्याह पार्थिवः

चण्डाल उवाच

चण्डालोऽहमिहाख्यातःप्रवीरेतिपुरोत्तमे। विख्यातोवध्यवधकोमृतकम्बलहारकः

हरिश्चन्द्र उवाच

नाहं चण्डालदासत्वमिच्छेयं सुविगर्हितम्। वरंशापाग्निनादग्धोनचण्डालवशंगतः

पक्षिण ऊचुः

तस्यैवं वदतः प्राप्तोविश्वामित्रस्तपोनिधिः। कोपामर्षविवृत्ताक्षःप्राहचेदंनराधिपम्

विश्वामित्र उवाच

चण्डालोऽयमनल्पं ते दातुंवित्तमुपस्थितः। कस्मान्नदीयतेमह्यमशेषायज्ञदक्षिणा

हरिश्चन्द्र उवाच

भगवन्! सूर्यवंशोत्थमात्मानं वेद्मि कौशिक!।

कथं चण्डालदासत्वं गमिष्ये वित्तकामुकः॥ ९०॥

विश्वामित्र उवाच

चण्डालवित्तत्यमात्मविक्रयजं मम । नप्रदास्यसि कालेन शापन्त्वामित्वामसंशयम्

पक्षिण ऊचु

धर्मस्ततो राजा चिन्ताविश्वनर्जाविश । प्रसीदेति वदन् पादावृषेर्जग्राह विह्वल

दासोऽस्म्यार्तोऽस्मि भीतोऽस्मि त्वद्भक्तश्च विशेषत ।

कुरु प्रसादं विप्रर्षे ! कष्टश्चण्डालसङ्कर ॥ ९३ ॥

वित्तशेषेण सर्वकर्मकरो वश । तवैव मुनिशार्दूल ! प्रेष्यश्चित्तानुवर्तक ॥ [illegible]

विश्वामित्र उवाच

प्रेष्यो मम भवान् चण्डालायतनो मया । दासमावमनुप्राप्तो दत्तो वित्तार्बुदेन वै

पक्षिण ऊचु

मुनै तस्मिन् श्वपाकोऽहृष्टमानस । विश्वामित्राय तद्द्रव्यं दत्त्वा बद्ध्वा नरेश्वरम्

प्रहारसम्भ्रान्तमनाकुलेन्द्रियम् । इष्टबन्धुवियोगार्तमनयन्निजपत्तनम्

श्चन्द्रस्ततो राजा वसंश्चण्डालपत्तने । प्रातर्मध्याह्नसमये सायञ्चैतदगायत ॥

र्दीनमुखा दृष्ट्वा बालं दीनमुखं पुर । मां स्मरत्यसुखाविष्टा मोक्षयिष्यति नौ नृप

उपात्तवित्तो विप्राय दत्त्वा वित्तमतोऽधिकम् ।

न सा मां मृगशावाक्षी वेत्ति पापतरं कृतम् ॥ १०० ॥

वनाश्च सुहृन्नाशो भार्यातनयविक्रय । प्राप्ता चण्डालता चेयमहो दुःखपरम्परा

स निवसन्नित्यं सस्मारदयितं सुतम् । भार्याञ्चात्मसमाविष्टां हृतसर्वस्व आतुर

यविवश काले स मृतचेलापहारक । हरिश्चन्द्रोऽभवद्राजा श्मशाने तद्वशानुग

चण्डालेनानुशिष्टश्च मृतचैलापहारिणा । शवागमनमन्विच्छन्निह तिष्ठ दिवानिशम्

राज्ञेऽपि देयश्च षड्भागा तु शव प्रति । त्रयस्तु मम भागा स्युर्द्वौ भागौ तव वेतनम्

प्रतिसमादिष्टो जगाम शवमन्दिरम् । दिशां तु दक्षिणायत्र वाराणस्यां स्थितं तदा

शान घोरस्वनाद शिवाशतसमाकुलम् । शवमौलिसमाकीर्णं दुर्गन्धं बहुधूमकम्

चभूतवेतालडाकिनीयक्षसङ्कुलम् । गृध्रगोमायुसङ्कीर्णं श्ववृन्दपरिवारितम्

अस्थिसङ्घातसङ्कीर्णं महादुर्गन्धसङ्कुलम् । नानामृतसुहृन्नादरौद्रकोलाहलायुतम्

हा पुत्र ! मित्र ! हा बन्धो ! भ्रातर्वत्स ! प्रियाद्य मे ।
हा पते ! भगिनि! मातर्हा मातुल ! पितामह ! ॥ ११० ॥
मातामह ! पितः ! पौत्र ! क्व गतोऽस्यैहि बान्धव ! ।
इत्येवं वदतां यत्र ध्वनिः संश्रूयते महान् १११ ॥
ज्वलन्मांसवसामेदच्छमच्छमितसङ्कुलम् ॥ ११२ ॥
अर्द्धदग्धाःशवाःश्यामा विकसद्दन्तपङ्क्तयः ।
हसन्तीवाग्निमध्यस्थाः कायस्येयं दशा त्विति ॥ ११३ ॥

अग्नेश्चटचटाशब्दो वायसामस्थिपङ्क्तिषु । बान्धवाक्रन्दशब्दश्चपुक्कसेषु प्रहर्षजः
गायतां भूतवेतालपिशाचगणरक्षसाम् । श्रूयते सुमहान् घोरःकल्पान्तइव निःस्वनः
महामहिषकारीषगोशकृद्राशिसङ्कुलम् । तदुत्थभस्मकूटैश्च वृतंसास्थिभिरुन्नतैः ॥
नानोपहारस्रग्दीपकाकविक्षेपकालिकम् । अनेकशब्दबहुलं श्मशानं नरकायते ॥

सवह्निगर्भैरशिवैः शिवारुतैर्निनादितं भीषणरावगह्वरम् ।
भयं भयस्याप्युपसञ्जनैर्भृशं श्मशानमाक्रन्दविरावदारुणम् ॥

स राजा तत्र सम्प्राप्तो दुःखितः शोचनोद्यतः ॥ ११८ ॥
हा भृत्या मन्त्रिणो विप्राः क्व तद्राज्यं विधे ! गतम् ॥ ११९ ॥
हा शैव्ये ! पुत्र ! हा बाल ! मां त्यक्त्वा मन्दभाग्यकम् ।
विश्वामित्रस्य दोषेण गताः कुत्रापि ते मम ॥ १२० ॥
इत्येवं चिन्तयंस्तत्र चण्डालोक्तं पुनः पुनः ।
मलिनो रूक्षसर्वाङ्गः केशवान् गन्धवान् ध्वजी ॥ १२१ ॥
लकुटी कालकल्पश्च धावंश्चापि ततस्ततः ।
अस्मिन् शवइदं मूल्यं प्राप्तं प्राप्स्यामि चाऽप्युत ॥ १२२ ॥

इदंममइदंराज्ञोमुख्यचण्डालके त्विदम् । इतिधावन्दिशोराजाजीवन्योन्यन्तरं गतः
जीर्णकर्पटसुग्रन्थिकृतकन्थापरिग्रहः । चिताभस्मरजोलिप्तमुखबाहूदराङ्घ्रिकः ॥

नानामेदोवसामज्जलिप्तपाण्यङ्गुलि श्वसन् । नानाशवोदनकृताहारतृप्तिपरायण ॥
तदीयमाल्यसंश्लेषकृतमस्तकमण्डन । न रात्रौ न दिवा शेते हेति प्रवदन् मुहु
एवं द्वादशमासास्तु नीता शतसमोपमा ।
स कदाचिन्नृपश्रेष्ठ श्रान्तो बन्धुवियोगवान् ॥ १२७ ॥
निद्राभिभूतोऽकस्मान्नो निश्चेष्ट सुप्त एव च । तत्रापि शयनीये स दृष्टवानद्भुतं महत् ॥
श्मशानाभ्यासयोगेन दैवस्य बलवत्तया । अन्यदेहेनदत्त्वा तु गुरवे गुरुदक्षिणाम्
तदा द्वादशवर्षाणि दु खदानात्तुनिष्कृति । आत्मानं सदृदर्शाथ पुल्कसीगर्भसम्भवम्
तत्रस्थश्चाऽप्यसौ राजा सोऽचिन्तयदिदं तदा ।
इतो निष्क्रान्तमात्रो हि दानधर्मं करोम्यहम् ॥ १३१ ॥
अनन्तरं सजातस्तु तदापुल्कसबालक । श्मशानमृतससंस्कारकरणेषु सदोद्यत ॥
मासेतु सप्तमे वर्षे श्मशानेऽथ मृतो द्विज । आनीतोबन्धुभिर्दृष्टस्तेनसत्राधनोगुणी
मूल्यार्थिना तु तेनाऽपि परिभूतास्तु ब्राह्मणाः ।
ऊचुस्ते ब्राह्मणास्तत्र विश्वामित्रस्य चेष्टितम् ॥ १३४ ॥
पापिष्ठमशुभं कर्म कुरु त्वं पापकारक' । हरिश्चन्द्र'पुराराजा विश्वामित्रेण पुल्कस'
कृत पुण्यविनाशेन ब्राह्मणस्यापकारत । यदा न क्षमतेतेषांते स शप्तो रुषा तदा
गच्छत्वं नरकं घोरमधुनैव नराधम' । इत्युच्यमाने वचने स्वप्नेऽन्धि' स नृपस्तदा
अपश्यद्यमदूतान् वैपाशहस्तानमपायदान् । तैं सङ्गृहीतमात्मानं नीयमानतदाबलात्
पश्यति स्मभृशं खिन्नो हामात'पितरधमे । पपातद्यिस्सनरके तैलद्रोण्यां निपातित
क्रकचै पाट्यमानस्तु क्षुरधाराभिरप्यध । अन्धे तमसिदु'पार्त पूयशोणितभोजन
सप्तवर्षं मृतात्मानं पुल्कसत्वे ददर्श स । दिनदिनतु नरके दह्यते पच्यतेऽन्यतः ॥
छिद्यते क्षोभ्यतेऽन्यत्र मार्यते पात्यतेऽन्यत ।
दार्यते दीप्यतेऽन्यत्र शीतवाताहतोऽन्यत ॥ १४२ ॥
एकं दिनं वर्षशतप्रमाणं नरकेऽभवत् । तथा वर्षशतं तत्र धावितं नरके भटै ॥
ततो निपातितो भूमौ विष्टभी श्वा व्यजायत ।

घान्ताशी शीतदग्धश्च मासमात्रे मृतोऽपि सः ॥ १४४ ॥
अथापश्यत् खरं देहं हस्तिनं वानरं पशुम् ।
छागं विड़ालं कङ्कं च गामविं पक्षिणं कृमिम् ॥ १४५ ॥
मत्स्यं कूर्मंवराहञ्चश्वाविधं कुक्कुटंशुकम् । शारिकांस्थावरांश्चैवसर्पमन्यांश्चदेहिनः
दिवसेदिवसे जन्म प्राणिनः प्राणिनस्तदा । अपश्यद्दुःखसन्तप्तोदिनं वर्षशतं तथा
एवं वर्षशतं पूर्णं गतं तत्र कुयोनिषु । अपश्यच्च कदाचित् सराजाततस्वकुलोद्भवम्
तत्र स्थितस्यतस्यापि राज्यंद्यूतेनहारितम् । भार्याहृताच पुत्रश्चसचैकाकीवनंगतः
तत्रापश्यत् ससिंहंवैव्यादितास्यं भयावहम् । विभक्षयिषुसायातंशरभेणसमन्वितम्
पुनश्च भक्षितः सोऽपि भार्य्यां शोचितुमुद्यतः ।
हा शैव्ये ! क्व गतास्यद्य मामिहापास्य दुःखितम् ॥ १५१ ॥
अपश्यत् पुनरेवापिभार्य्यां स्वांसहपुत्रकाम् । त्रायस्वत्वंहरिश्चन्द्र!किंद्यूतेनतवप्रभो
पुत्रस्ते शोच्यतां प्राप्तोभार्यया शैव्ययासह । सनापश्यत् पुनरपिधावमानः पुनःपुनः
अथापश्यत् पुनरपि स्वर्गस्थःसनराधिपः । नीयते मुक्तकेशीसादीना विवसनाबलात्
हाहावाक्यं प्रमुञ्चन्ती त्रायस्वेत्यसकृत्स्वना ।
अथापश्यत् पुनस्तत्र धर्मराजस्य शासनात् ॥ १५५ ॥
आक्रन्दन्त्यन्तरिक्षस्थाआगच्छेहनराधिप! । विश्वामित्रेणविज्ञप्तोयमोराजंस्तवार्थतः
इत्युक्त्वा सर्पपाशैस्तु नीयतेबलवद्भिभुः । श्राद्धदेवेनकथितं विश्वामित्रस्य चेष्टितम्
तत्रापि तस्य विकृतिर्नाधर्मोत्था व्यवर्द्धत ।
एताः सर्वादशास्तस्य याः स्वप्ने सम्प्रदर्शिताः ॥ १५८ ॥
सर्वास्तास्तेन सम्भुक्त्वा यावद्वर्षाणि द्वादश । अतीतेद्वादशेवर्षेनीयमानोभटैर्बलात्
यमं सोऽपश्यदाकारादुवाच च नराधिपम् ।
विश्वामित्रस्य कोपोऽयं दुर्निवार्यो महात्मनः ॥ १६० ॥
पुत्रस्यतेमृत्युमपिप्रदास्यति सकौशिकः । गच्छत्वंमानुषं लोकंदुःखशेषंचभुङ्क्ष्वचै
गतस्य तत्र राजेन्द्र! श्रेयस्तव भविष्यति ॥ १६१ ॥

व्यतीते द्वादशे वर्षे दुःखस्यान्ते नराधिप । अन्तरिक्षाच्च पतितो यमदूतैः प्रणोदितः
पतितो यमलोकाच्च विबुद्धो भयसम्भ्रमात् । अहो कष्टमिति ध्यात्वा क्षारेणाक्षारसेचनम्
स्वप्ने तु यन्मया दृष्टं दुःखस्यान्तो नोपलभ्यते । स्वप्ने दृष्टं मया यत्तु किन्तु मे द्वादश समा
गता इत्यपृच्छदुत्तस्थौ पुक्कसान् सुसम्भ्रमात् । नेत्यूचुः केचित्तत्रस्था एवमेवापरेऽब्रुवन्
श्रुत्वा तु दुःखी तत्र राजा देवान् शरणमीयिवान् ।
स्वस्ति कुर्वन्तु मे देवाः शैब्याया बालकस्य च ॥ १६६ ॥
नमो धर्माय महते नमः कृष्णाय वेधसे । परावराय शुद्धाय पुराणायाव्ययाय च ॥
नमो बृहस्पते तुभ्यं नमस्ते वासवाय च । एवमुक्त्वा स राजा तु पुक्कसकर्मणि
शवानां मूल्यकरणे पुनर्नष्टस्मृतिर्यथा । मलिनो जटिलः कृष्णो लकुटी विह्वलो नृप
नैव पुत्रो न भार्या तु तस्य वै स्मृतिगोचरे । नष्टोत्साहो राज्यनाशाच्छ्मशाने निवसंस्तदा
अथाजगाम स्वसुतं मृतमादाय लापिनी । भार्या तस्य नरेन्द्रस्य सर्पदष्टं हि बालकम्
हा वत्स हा सुत शिशो इत्येवं वदती मुहुः । कृशा विवर्णा विमना पांसुध्वस्तशिरोरुहा

राजपत्न्युवाच

हा राजन्नद्य बालं त्वं पश्यसीमं महीतले । रममाणं पुरा दृष्टं दष्टं दुष्टाहिना मृतम्
तस्या विलापशब्दं तमाकर्ण्य नराधिप । जगाम त्वरितोऽत्रैव भविता मृतकम्बल
स तां रोरुदतीं भार्यां नाभ्यजानात्तु पार्थिव । चिरप्रवाससन्तप्तां पुनर्जातामिवाबलाम्
सापि तं चारुकेशान्तं पुरा दृष्ट्वा जटालकम् । नाभ्यजानान्नृपसुता शुष्कवृक्षोपमं नृपम्
सोऽपि कृष्णपटे बालं दृष्ट्वाशीविषपीडितम् । नरेन्द्रलक्षणोपेतं चिन्तामाप नरेश्वर
तस्यास्य चन्द्रबिम्बाभं सुभ्रु रम्यं समुन्नसम् ।
नीलाः केशाः कुञ्चिताश्च समा दीर्घास्तरङ्गिणः ॥ १७८ ॥
राजीवनेत्रयुगलो बिम्बोष्ठपुटसम्भृत । वक्षः विस्तीर्णं किन्तु दीर्घाभ्यां दीर्घबाहुक
चतुर्लेखं करोमि स्वयमयुक् चैवपवत । शिरालुपादो गम्भीरः सूक्ष्मं पद्म त्रिवली धर
अहो कष्टं नरेन्द्रस्य कस्याप्येतत्कुले शिशु । आनीतः कृतान्तेन कामप्याशां दुरात्मना
एवं दृष्ट्वा हि मे बालं मातुरुत्सङ्गशायिनम् ।

स्मृतिमभ्यागतो बालो रोहितास्यो (श्वो) ऽब्जलोचनः ॥ १८२ ॥
सोऽप्येतामेव मे वत्सो वयोऽवस्थामुपागतः ।
नीतो यदि न घोरेण कृतान्तेनात्मनो वशम् ॥ १८३ ॥

राजपत्न्युवाच

हा वत्स! कस्य पापस्य अपध्यानादिदं महत् । दुःखमापतितं घोरं यस्यान्तो नोपलभ्यते
हा नाथ ! राजन् ! भवता मामनाश्वास्य दुःखिताम् ।
क्वापि सन्तिष्ठता स्थाने विश्रब्धं स्थीयते कथम् ॥ १८५ ॥
राज्यनाशः सुहृत्यागो भार्यातनयविक्रयः । हरिश्चन्द्रस्य राजर्षेः किं विधे! न कृतं त्वया
इति तस्या वचः श्रुत्वा राजा स्वस्थानतश्च्युतः ।
प्रत्यभिज्ञाय दयितां पुत्रञ्च निधनं गतम् ॥ १८७ ॥
कैषा नाम गृहे युक्ता मम योषिद्वरा भवेत् ।
बालश्च स मृतः कः स्यादितिराजा विचारयन् ॥ १८८ ॥
कष्टं शैव्येयमेषा हि स बालोऽयमितीरयन् । रुरोद दुःखसन्तप्तो मूर्च्छामभिजगाम च
सा च तं प्रत्यभिज्ञाय तामवस्थामुपागतम् । मूर्च्छिता निपपातार्त्ता निश्चेष्टा धरणीतले
चेतः संप्राप्य राजेन्द्रो राजपत्नी च तौ समम् । विलेपतुः सुसन्तप्तौ शोकभारावपीडितौ

राजोवाच

हा वत्स! सुकुमारं ते स्वक्षिभ्रूनासिकालकम् । पश्यतो मे मुखं दीनं हृदयं किं न दीर्य्यते
तात! तातेति मधुरं ब्रुवाणं स्वयमागतम् । उपगुह्य वदिष्येऽकं वत्स! वत्सेति सौहृदा
कस्य जानुप्रणीतेन पिङ्गेन क्षितिरेणुना । ममोत्तरीयमुत्सङ्गं तथाङ्गं मलमेष्यति
अङ्गप्रत्यङ्गसम्भूतो मनोहृदयनन्दनः ।
मया कुपित्रा हा वत्स विक्रीतो येन वस्तुवत् ॥ १९५ ॥
हृत्वा राज्यमशेषं मे सबान्धवधनं महत् । दैवाहिना नृशंसेन दष्टो मे तनयस्ततः ॥
अहं दैवाहिदष्टस्य पुत्रस्याननपङ्कजम् । निरीक्षन्नपि घोरेण विषेणान्धीकृतोऽधुना
एवमुक्त्वा तमादाय बालकं बाष्पगद्गदः । परिष्वज्य च निश्चेष्टो मूर्च्छामभिजगाम च

राजपत्न्युवाच

अथ स पुरुषव्याघ्र स्वरैर्वैवोपलक्ष्यते । विद्वज्जनमनश्चन्द्रो हरिश्चन्द्रो न संशय
तथास्य नासिका तुङ्गा अग्रतोऽधोमुख गता ।
दन्ताश्च मुकुलप्रख्या ख्यातकीर्तेर्महात्मन ॥ २०० ॥
श्मशानमागत कस्मादयमेष स नरेश्वर । अपहाय पुत्रशोकं सापश्यत् पतितं पतिम्
प्रहृष्टा विस्मिता दीना भर्तृपुत्राधिपीडिता ।
वीक्षन्ती सा ततोऽपश्यद् भर्तुर्दण्डं जुगुप्सितम् ॥ २०२ ॥
श्वपाकार्हं ततो मोह जगामायतलोचना । प्राप्य चेतश्च शनकै सगद्गदमभाषत ॥
धिक् त्वां दैवातिकरुण निर्मर्यादं जुगुप्सितम् ।
येनायममरप्रख्यो नीतो राजा श्वपाकताम् ॥ २०४ ॥
राज्यनाश सुहृत्त्याग भार्यातनयविक्रयम् ।
प्रापयित्वाऽपि नो मुक्तश्चाण्डालोऽयं कृतो नृप ॥ २०५ ॥
हा राजन् [1]जातसन्तापामित्थ मा धरणीतलात् ।
उत्थाप्य नाद्य पर्यङ्कमारोहेति किमुच्यते ॥ २०६ ॥
नाद्य पश्यामि ते छत्र भृङ्गारमथवा पुन । चामरव्यजनञ्चापि कोऽयं विधिविपर्यय
यस्याग्रे व्रजत पूर्वं राजानो भृत्यतागता । स्वोत्तरीयैरकुर्वंस्ते नीरजस्कमहीतलम्
सोऽयं कपालसंलग्नघटीघटनिरन्तरे । मृतनिर्माल्यसूत्रान्तलग्नकेशे सुदारुणे ॥
वसानिस्यन्दसंशुष्कमहीपृष्ठकमण्डिते । भस्माङ्गारार्द्धदग्धास्थिमज्जसङ्घट्टभीषणे
गृध्रगोमायुनादार्तनष्टक्षुद्रविहङ्गमे । चिताधूमाततिरुचा नीलीकृतदिगन्तरे ॥
कुणपास्वादनमुदा सम्प्रहृष्टनिशाचरे । चरत्यमेध्ये राजेन्द्र श्मशाने दु खपीडित
एवमुक्त्वा समाश्लिष्य कण्ठ राज्ञो नृपात्मजा ।
कष्टशोकशताधारा विललापाऽऽर्तया गिरा ॥ २१३ ॥

राजपत्न्युवाच

राजन् [1] स्वप्नोऽथ तथ्य वा यदेतन्मन्यते भवान् ।

तत् कथ्यतां महाभाग! मनो वै मुह्यते मम ॥ २१४ ॥
यद्येतदेवं धर्मज्ञ ! नास्ति धर्मे सहायता। तथैव विप्रदेवादिपूजने पालने भुवः
नास्ति धर्मः कुतः सत्यमार्जवं चानृशंसता। यत्र त्वंधर्मपरमःस्वराज्यादवरोपितः
इति तस्या वचः श्रुत्वा निःश्वस्योष्णं सगद्गदम्।
कथयामास तन्वङ्ग्या यथा प्राप्ता श्वपाकता ॥ २१७ ॥
रुदित्वा सापि सुचिरं निःश्वस्योष्णञ्च दुःखिता।
स्वपुत्रमरणं भीरुर्यथावृत्तं न्यवेदयत् ॥ २१८ ॥
श्रुत्वा राजा तदा वाक्यं निपपात महीतले।
मृतस्य पुत्रस्य तथा जिह्वया लेलिहन् मुखम् ॥ २१९ ॥

राजोवाच

यमस्य भिक्षां याचावः कृपणौ पुत्रगृद्धनौ।
तस्माच्छीघ्रं व्रजावोऽद्य पुत्रो यत्रप्रियोगतः ॥ २२० ॥
प्रिये!नरोचयेदीर्घकालंक्लेशमुपासितुम् । नात्मायत्तश्चतन्वङ्गिपश्यमेमन्दभाग्यताम्
चण्डालेनाननुज्ञातः प्रवेक्ष्ये ज्वलनं यदि। चण्डालदासतां यास्येपुनरप्यन्यजन्मनि
नरके च पतिष्यामिकीटकःकृमिभोजनः। वैतरण्यांमहापूयवसासृक्स्नायुपिच्छिले
असिपत्रवने प्राप्य च्छेदं प्राप्स्यामि दारुणम्।
तापं प्राप्स्यामि वा प्राप्य महारौरवरौरवौ ॥ २२४ ॥
मग्नस्य दुःखजलधौ पारः प्राणवियोजनम्।
एकोऽपि बालको योऽयमासीद्वंशकरः सुतः ॥ २२५ ॥
मम दैवाम्बुवेगेनमग्नःसोऽपिबलीयसा। कथंप्राणान्विमुञ्चामिपरायत्तोऽस्मिदुर्गतः
अथवा नार्तिनाक्लिष्टोनरःपापमवेक्षते। तिर्यक्त्वेनास्तितद्दुःखंनासिपत्रवनेतथा
वैतरण्यां कुतस्तादृग् यादृशं पुत्रविप्लवे। सोऽहं सुतशरीरेण दीप्यमाने हुताशने
निपतिष्यामितन्वङ्गि!क्षन्तव्यंकुरुतं मम। अनुज्ञाताव्रगच्छत्वंविप्रवेश्मशुचिस्मिते
मम वाक्यञ्च तन्वङ्गि!निबोधादृतमानसा।

यदि दत्तं यदि हुतं गुरवो यदि तोषिताः ॥ २३० ॥
परत्र सङ्गमो भूयात् पुत्रेण सह च त्वया । इह लोके कुतस्त्वेतद्भविष्यति ममेप्सितम्
त्वया सह मम श्रेयो गमनं पुत्रमार्गणे । यन्मया हसता किञ्चिद्रहस्ये च शुचिस्मिते
अश्लीलमुक्तं तत् सर्वं क्षन्तव्यं मम याचतः ।
राजपत्नीति गर्वेण नावज्ञेयः स ते द्विजः ।
सर्वयत्नेन ते तोष्यः स्वामिदैवतवच्छुभे ॥ २३३ ॥

राजपत्न्युवाच

अहमप्यत्र राजर्षे दीप्यमाने हुताशने । दुःखभारासहा चैव सह यास्यामि वै त्वया
सह स्वर्गं च नरकं सहैवावां हि भुङ्क्ष्यावहे ।
श्रुत्वा राजा तदोवाच एवमस्तु पतिव्रते ॥ २३५ ॥

पक्षिण ऊचुः

ततः कृत्वा चितां राजा आरोप्य तनयं स्वकम् । भार्यया सहितश्चासौ बद्धाञ्जलिपुटस्तदा
चिन्तयन् परमात्मानमीशं नारायणं हरिम् । हृत्कोटरगुहासीनं वासुदेवं सुरेश्वरम्
अनादिनिधनं ब्रह्म कृष्णं पीताम्बरं शुभम् ॥ २३७ ॥
तस्य चिन्तयमानस्य सर्वे देवाः सवासवाः ।
धर्मं प्रमुखतः कृत्वा समाजग्मुस्त्वरान्विताः ॥ २३८ ॥
आगम्य सर्वे प्रोचुस्ते भो भो राजन् शृणु प्रभो । अयं पितामहः साक्षाद्धर्मश्च भगवान् स्वयम्
साध्याश्च विश्वे मरुतो लोकपालाः सचारणाः ।
नागाः सिद्धाः सगन्धर्वा रुद्राश्चैव तथाऽश्विनौ ॥ २४० ॥
एते चान्ये च बहवो विश्वामित्रस्तथैव च । विश्वत्रयेण यो मित्रं कर्तुं न शक्तितः पुरा
विश्वामित्रस्तु ते मैत्रीमिष्टं चाहर्तुमिच्छति ।
आरुरोह ततः प्रभो धर्मं शक्रोऽथ गाधिजः ॥ २४२ ॥

धर्म उवाच

मा राजन् साहसं कार्षीर्धर्मोऽहं त्वामुपागतः ।

तितिक्षादमसत्याद्यैः स्वगुणैः परितोषितः॥ २४३ ॥

इन्द्र उवाच

हरिश्चन्द्र! महाभाग ! प्राप्तः शक्रोऽस्मि तेऽन्तिकम् ।

त्वया सभार्यपुत्रेण जिता लोकाः सनातनाः ॥ २४४ ॥

आरोह त्रिदिवंराजन्! भार्यापुत्रसमन्वितः । सुदुष्प्रापं नरैरन्यैर्जितमात्मीयकर्मभिः

पक्षिण ऊचुः

ततोऽमृतमयं वर्षमपमृत्युविनाशनम् । इन्द्रः प्रासृजदाकाशाच्चितास्थानगतः प्रभुः

पुष्पवर्षञ्च सुमहद्देवदुन्दुभिनिस्वनम् । ततस्ततो वर्त्तमाने समाजे देवसङ्कुले ॥

समुत्तस्थौ ततः पुत्रोराज्ञस्तस्यमहात्मनः । सुकुमारतनुः सुस्थःप्रसन्नेन्द्रियमानसः

ततो राजा हरिश्चन्द्रः परिष्वज्य सुतं क्षणात् ।

सभार्यः सश्रिया युक्तो दिव्यमाल्याम्बरान्वितः ॥ २४६ ॥

सुस्थःसम्पूर्णहृदयो मुदा परमया युतः । बभूव तत्क्षणादिन्द्रो भूयश्चैनमभाषत ॥

सभार्यस्त्वंसपुत्रश्चप्राप्स्यसेसद्गतिपराम् । समारोहमहाभाग!निजानांकर्म्मणांफलैः

हरिश्चन्द्र उवाच

देवराजाननुज्ञातः स्वामिनाश्वपचेन वै । अगत्वानिष्कृतितस्य नारोक्ष्येऽहंसुरालयम्

धर्म उवाच

तवैनं भाविनं क्लेशमवगम्यात्ममायया । आत्मा श्वपाकतांनीतोदर्शितंतच्चचापलम्

इन्द्र उवाच

प्रार्थ्यतेतत्परंस्थानं समस्तैर्मनुजैर्भुवि । तदारोह हरिश्चन्द्र!स्थानंपुण्यकृतांनृणाम्

हरिश्चन्द्र उवाच

देवराज!नमस्तुभ्यं वाक्यञ्चैतन्निबोध मे । प्रसादसुमुखं यत्त्वां ब्रवीमिप्रश्रयान्वितः

मच्छोकमग्नमनसः कोशलानगरे जनाः । तिष्ठन्तितानपोह्याद्यकथंयास्याम्यहंदिवम्

ब्रह्महत्यागुरोर्घातोगोवधःस्त्रीवधस्तथा । तुल्यमेभिर्महापापं भक्तत्यागेऽप्युदाहृतम्

भजन्तं भक्तमत्याज्यमदुष्टं त्यजतःसुखम् । नेहनामुत्रपश्यामि तस्माच्छक्र!दिवंव्रज

शुक्र उवाच

हरिश्चन्द्रसमो राजा न भूतो न भविष्यति ।
यश्चैतच्छ्रृणुयाद् भक्त्या नैरन्तर्येण मानवः ॥ २७५ ॥
तेन वेदापुराणानि सर्वैमन्त्राः सुसङ्ग्रहाः । वुष्णाःस्युःपुष्करेतीर्थेप्रयागेसिन्धुसागरे
देवागारे कुरुक्षेत्रे वाराणस्यां विशेषतः । विपुवद्ग्रहणेचैव यत्फलं जपतो लभेत्
तत्फलं द्विगुणं चैव संयतात्मा शृणोति यः ।
श्रुत्वा तु पूजयेद् भक्त्या पुराणज्ञं द्विजोत्तमम् ॥ २७८ ॥
गोभूहिरण्यवस्त्रैश्च तथैवाऽन्नेन जैमिने! । येनैवं यत्कृतंपुण्यंतच्छक्यं नमयोदितुम्
अहो तितिक्षामाहात्म्यमहोदानफलंमहत् । यदागतोहरिश्चन्द्रः पुरींश्चेन्द्रत्वमाप्तवान्

पक्षिण ऊचुः

एतत्ते सर्वमाख्यातं हरिश्चन्द्रविचेष्टितम् ।
यः शृणोति सुदुःखार्त्तः स सुखं महदाप्नुयात् ॥ २८१ ॥
स्वर्गार्थी प्राप्नुयात् स्वर्गं पुत्रार्थी पुत्रमाप्नुयात् ।
भार्य्यार्थी प्राप्नुयाद्भार्य्यां राज्यार्थी राज्यमाप्नुयात् ।
अतःपरं कथाशेषः श्रूयतां मुनिसत्तम ! ॥ २८२ ॥
विपाको राजसूयस्य पृथिवीक्षयकारणम् । तद्विपाकनिमित्तश्चयुद्धमाडिवकं महत्

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे हरिश्चन्द्रोपाख्यानवर्णनंनामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

——:※:——

नवमोऽध्यायः

आडिबकयुद्धवर्णनम्

पक्षिण ऊचुः

राज्यच्युते हरिश्चन्द्रे गते च त्रिदशालयम्। निश्चक्राम महातेजा जलवासात्पुरोहित

वशिष्ठो द्वादशाब्दान्ते गङ्गातोयोषितो मुनि ।

शुश्राव च समस्तं तु विश्वामित्रविचेष्टितम् ॥ २ ॥

हरिश्चन्द्रस्य नाशं च राज्ञश्चोदारकर्मण । चण्डालसंप्रयोगं च भार्यातनयविक्रयम् ॥

स श्रुत्वा सुमहाभाग प्रीतिमानवनीपतौ । चकार कोपं तेजस्वी विश्वामित्रमृषिं प्रति

वशिष्ठ उवाच

मम पुत्रशतं तेन विश्वामित्रेण घातितम् । तत्रापि नाभवत्क्रोधस्तादृशो यादृशोऽद्य मे

श्रुत्वा नराधिपमिमं स्वराज्यादवरोपितम् । महात्मानं महाभागं देवब्राह्मणपूजकम्

यस्मात् स सत्यवाक् शान्त शत्रावपि विमत्सर ।

अनागाश्चैव धर्मात्मा अप्रमत्तो मदाश्रय ॥ ३ ॥

सपत्नीभृत्यपुत्रस्तु प्रापितोऽन्त्यां दशां नृप ।

स राज्याच्च्यावितोऽनेन बहुशश्च विलीकृत ॥ ८ ॥

तस्माद् दुरात्मा ब्रह्मद्विड् प्राज्ञानामवरोपित ।

मच्छापोपहतो मूढ स बकत्वमवाप्स्यति ॥ ९ ॥

पक्षिण ऊचु

श्रुत्वा शापं महातेजा विश्वामित्रोऽपि कौशिक ।

त्वमप्याडिर्भवस्वेति प्रतिशापमयच्छत ॥ १० ॥

अन्योन्यशापात्तौ प्राप्तौ तिर्यक्त्वं परमद्युती ।

वशिष्ठ स महातेजा विश्वामित्रश्च कौशिक ॥ ११ ॥

अन्यजातिसमायोगं गतावप्यमितौजसौ । युयुधातेऽतिसंरब्धौमहाबलपराक्रमौ
योजनानां सहस्रे द्वे प्रमाणेनाडिरुच्छ्रितः । यन्नवत्यधिकं ब्रह्मन् सहस्रत्रितयं बकः
तौ तु पक्षप्रहाराभ्यामन्योन्यस्योरुविक्रमौ । प्रहरन्तौ भयंतीव्रंप्रजानांचक्रतुस्तदा

विधूय पक्षाणि बको रक्तोद्वृत्ताक्षिराहनत् ।
आर्डि सोऽप्युन्नतग्रीवो बकं पद्भ्यामताडयत् ॥ १५ ॥

तयोः पक्षानिलापास्ताःप्रपेतुर्गिरयो भुवि । गिरिप्रपाताभिहताचकम्पे च वसुन्धरा
क्ष्मा कम्पमाना जलधीनुद्वृत्ताम्भ्रूंश्चकार च । ननामचैकपार्श्वेनपातालगमनोन्मुखी

केचिद्गिरिनिपातेन केचिदम्भोधिवारिणा ।
केचिन्महीसञ्चलनात् प्रययुः प्राणिनः क्षयम् ॥ १८ ॥

इतिसर्वं परित्रस्तंहाहाभूतमचेतनम् । जगदासीत्सुसम्भ्रान्तंपर्यस्तक्षितिमण्डलम्

हा वत्स ! हा कान्त ! शिशो ! प्रयाह्येषोऽस्मि संस्थितः ।
हा प्रिये ! कान्त ! शैलोऽयं पतत्याशु पलायताम् ॥ २० ॥

इत्याकुलीकृते लोके सन्त्रासविमुखे तदा । सुरैः परिवृतःसर्वैराजगाम पितामहः

प्रत्युवाच च विश्वेशस्तावुभावतिकोपितौ ।
युद्धं वां विरमत्वेतल्लोकाः स्वास्थ्यं व्रजन्तु च ॥ २२ ॥

शृण्वन्तावपितौवाक्यंब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः । कोपामर्षसमाविष्टौयुयुधातेनतस्थतुः

ततः पितामहो देवस्तं दृष्ट्वा लोकसङ्क्षयम् ।
तयोश्च हितमन्विच्छन् तिर्यग्भावमपानुदत् ॥ २४ ॥

ततस्तौ पूर्वदेहस्थौ प्राह देवःप्रजापतिः । व्युदस्ते तामसे भावेवशिष्टकौशिकर्षभौ

जहि वत्स ! वशिष्ठ ! त्वं त्वञ्च कौशिकसत्तम !।
तामसं भावमाश्रित्य ईदृग्युद्धं चिकीर्षितम् ॥ २६ ॥

राजसूयविपाकोऽयं हरिश्चन्द्रस्य भूपतेः । युवयोर्विग्रहश्चाऽयं पृथिवीक्षयकारकः
नचापि कौशिकश्रेष्ठस्तस्यराज्ञोऽपराध्यते । स्वर्गप्राप्तिकरोब्रह्मन्नुपकारपदेस्थितः
तपोविघ्नस्य कर्त्तारौ कामक्रोधवशं गतौ । परित्यजत भद्रं वो ब्रह्म हिप्रचुरंबलम्

एवमुक्तौ ततस्तेन लज्जितौ तावुभावपि । क्षमयामासतुः प्रीत्या परिष्वज्य परस्परम्

ततः सुरैर्वन्द्यमानो ब्रह्मा लोकं निजं ययौ ।

वशिष्ठोऽप्यात्मनः स्थानं कौशिकोऽपि स्वमाश्रयम् ॥ ३१ ॥

एतदाडिबकयुद्धं हरिश्चन्द्रकथा तथा । कथयिष्यन्ति ये मर्त्याः सम्यक् श्रोष्यन्ति चैव ये

तेषां पापापनोदं तु श्रुतं ह्येव करिष्यति । नचैव विघ्नकार्याणि भविष्यन्ति कदाचन

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे आडिबकयुद्धवर्णनं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दशमोऽध्यायः

पितापुत्रसम्वादवर्णनम्

जैमिनिरुवाच

संशयं द्विजशार्दूला प्रभूतं ममपृच्छतः । आविर्भावतिरोभावौ भूतानां यत्र संस्थितौ

कथं सञ्जायते जन्तुः कथं वा स विवर्द्धते । कथं चोदरमध्यस्थस्तिष्ठत्यङ्गनिपीडितः

निष्क्रान्तिश्चोदरात्प्राप्य कथं वा वृद्धिमृच्छति । उत्क्रान्तिकाले चैव पश्चिह्नैर्येन वियुज्यते

कृत्स्नशो मृतस्तथाप्नोति उभे सुकृतदुष्कृते ।

कथं तत्र च तथा तस्य फलं सम्पादयत्युत ॥ ४ ॥

कथं [illegible] जीयते तत्र पिण्डीभूत इवाशये । स्त्रीकोष्ठे यत्र जीर्यन्ते भुक्तानि सुगुरूण्यपि

भक्ष्याणि तत्र नो जन्तुर्जीर्यते कथमल्पकः ॥ ५ ॥

कथं मोक्षः स सर्वस्य कर्मणः सुकृतस्य वै ॥ ६ ॥

एतन्मे ब्रूत सकलं सन्देहोक्तिविवर्जितम् । तदेतत्परमं गुह्यं यत्र मुह्यन्ति जन्तवः

पक्षिण ऊचुः

प्रश्नभारोऽयमतुलस्त्वयाऽस्मासु निवेशितः ।

दुर्वाच्यः सर्वभूतानां भावाभावसमाश्रितः ॥ ८ ॥

तंशृणुष्व महाभाग !यथा प्राह पितुः पुरा। पुत्रः परमधर्म्मात्मा सुमतिर्नामनामतः
ब्राह्मणो भार्गवः कश्चित् सुतमाह महामतिः। कृतोपनयनंशान्तंसुमतिंजडरूपिणम्
वेदानधीस्व सुमते! यथानुक्रममादितः। गुरुशुश्रूषणे व्यग्रो भैक्षान्नकृतभोजनः
ततो गार्हस्थ्यमास्थाय चेष्ट्वायज्ञाननुत्तमान्। इष्टमुत्पाद्यापत्यमाश्रयेथा वनंततः
वनस्थश्चततोवत्स!परिव्राट् निष्परिग्रहः। एवमाप्स्यसितद्ब्रह्मयत्रगत्वानशोचसि

पक्षिण ऊचुः

इत्येवमुक्तोबहुशोजडत्वान्नाऽऽहकिञ्चन। पिताऽपितंसुबहुशः प्राहप्रीत्या पुनः पुनः
इति पित्रा सुतस्नेहात्प्रलोभिमधुराक्षरम्। सचोद्यमानोबहुशः प्रहस्येदमथाब्रवीत्
तातैतद्बहुशोऽभ्यस्तं यत्त्वयाऽद्योपदिश्यते।
तथैवान्यानि शास्त्राणि शिल्पानि विविधानि च ॥ १६ ॥
जन्मनामयुतंसाग्रंममस्मृतिपथं गतम्। उत्पन्नज्ञानबोधस्य वेदैः किं मेप्रयोजनम्?
निर्वेदाः परितोषाश्चक्षयवृद्ध्युदये रताः।
शत्रुमित्रकलत्राणां वियोगाः सङ्गमास्तथा।
मातरो विविधा दृष्टाः पितरो विविधास्तथा ॥ १८ ॥
अनुभूतानि सौख्यानि दुःखानिचसहस्रशः। बान्धवाबहवःप्राप्ताःपितरश्चपृथग्विधाः
विण्मूत्रपिच्छिले स्त्रीणां तथा कोष्ठे मयोषितम्।
पीडाश्च सुभृशं प्राप्ता रोगाणां च सहस्रशः ॥ २० ॥
गर्भदुःखान्यनेकानि बालत्वे यौवने तथा। वृद्धतायांतथाप्तानि तानिसर्वाणिसंस्मरे
ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्राणाञ्चापियोनिषु। पुनश्च पशुकीटानांमृगाणामथपक्षिणाम्
तथैव राजभृत्यानां राज्ञाञ्चाहवशालिनाम्। समुत्पन्नोऽस्मि गेहेषुतथैवतव वेश्मनि
भृत्यतां दासताञ्चैव गतोऽस्मि बहुशो नृणाम्।
स्वामित्वमीश्वरत्वञ्च दरिद्रत्वं तथा गतः ॥ २४ ॥
हतं मया हतश्चान्यैर्हतं मे घातितं तथा। दत्तं ममान्यैरन्येभ्यो मया दत्तमनेकशः ॥
पितृमातृसुहृद्भ्रातृकलत्रादिकृतेन च [illegible]ऽसक्तस्तथा [illegible]

एवं संसारचक्रेऽस्मिन् भ्रमताताऽऽत सङ्कटे। ज्ञानमेतन्मया प्राप्तं मोक्षसम्प्राप्तिकारणम्

विज्ञाते यत्र सर्वोऽयमृग्यजुःसामसञ्ज्ञितः।

क्रियाकलापो विगुणो न सम्यक् प्रतिभाति मे ॥ २८ ॥

तस्मादुत्पन्नबोधस्य वेदैः किं मे प्रयोजनम्। गुरुविज्ञानतृप्तस्य निरीहस्य सदात्मनः

षड्प्रकारक्रियादुःखसुखहर्षरसैश्च यत्। गुणैश्च वर्जितं ब्रह्म तत्प्राप्स्यामि परं पदम्

हर्षं भयोद्वेगक्रोधामर्षं जरान्तुरम्। विज्ञाता स्वमृगप्राहि सद्भुपाशशताकुलाम्

तस्मात् यास्याम्यहं तात त्यक्त्वेमां दुःखसन्ततिम्।

त्रयीधर्ममधर्माढ्यं किं पापफलसन्निभम् ॥ ३२ ॥

पक्षिण ऊचुः

तस्यैतद्वचनं श्रुत्वा हर्षविस्मयगद्गदम्। पिता प्राह महाभागः स्वसुतं हृष्टमानसः

पितोवाच

किमेतद्वदसे वत्स! कुतस्ते ज्ञानसम्भवः। येन ते जडता पूर्वमिदानीञ्च प्रबुद्धता

किन्नु शापविकारोऽयं मुनिदेवकृतस्तव। यत्ते ज्ञानं तिरोभूतमाविर्भावमुपागतम्

पुत्र उवाच

शृणु तात! यथावृत्तमभवन्मम यत्सुखदम्। यश्चाहमासमन्यस्मिन् जन्मन्यस्मात्परं तु यत्

अहमासं पुरा विप्रो न्यस्तात्मा परमात्मनि। आत्मविद्याविचारेषु परां निष्ठामुपागतः

ततन योगयुक्तस्य सततोभ्याससत्क्रमात्।

सत्सयोगात् स्वस्वभावाद्वु विचारविधिशोधनात् ॥ ३८ ॥

तस्मिन्नेव परा प्रीतिर्मम्भासीत् सुव्रत सदा। आचार्यतावसम्प्राप्तः शिष्यसन्देहहृत्तमः

ततः कालेन महता ऐकान्तिकमुपागतः। अज्ञानादरसद्भावो विपन्नश्च प्रमादतः ॥ ४०

उत्क्रान्तिकालादारभ्य स्मृतिलोपो न मेऽभवत्।

यावदब्दगतं चैव जन्मना स्मृतिमागतम् ॥ ४१ ॥

पूर्वाभ्यासेन तेनैव सोऽहं तात! जितेन्द्रियः। यतिष्यामि तथा कर्तुं न भविष्येय यथा पुनः

ज्ञानदानफलं ह्येतद्यज्जातिस्मरणं मम। नह्येतत् प्राप्यते तात! त्रयीधर्माश्रितैर्नरैः

सोऽहं पूर्वाश्रमादेव निष्ठाधर्ममुपाश्रितः ।
एकान्तित्वमुपागम्य यतिष्यास्यात्ममोक्षणे ॥ ४४ ॥
तद्ब्रूहि त्वं महाभाग ! यत्ते सांशयिकं हृदि ।
एतावतापि ते प्रीतिमुत्पाद्यानृण्यमाप्नुयाम् ॥ ४५ ॥

पक्षिण ऊचुः

पिता प्राह ततः पुत्रं श्रद्दधत्तस्य तद्वचः । भवता यद्वयंपृष्टाःसंसारग्रहणाश्रयम्

पुत्र उवाच

शृणु तात! यथा तत्त्वमनुभूतं मयाऽसकृत् । संसारचक्रमजरं स्थितिर्यस्यनविद्यते
सोऽहं वदामि ते सर्वं तवैवानुज्ञया पितः! ।
उत्क्रान्तिकालादारभ्य यथा नान्यो वदिष्यति ॥ ४८ ॥
उष्माप्रकुपितःकायेतीव्रवायुसमीरितः । भिनत्तिमर्मस्थानानि दीप्यमानोनिरिन्धनः
उदानो नामपवनस्ततश्चोद्‌र्ध्वं प्रवर्त्तते । भुक्तानामम्बुभक्ष्याणामधोगतिनिरोधकृत्
ततो येनाम्बुदानानि कृतान्यन्नरसास्तथा । दत्ताः सतस्यआह्लादमापदिप्रतिपद्यते
अन्नानियेन दत्तानि श्रद्धापूतेन चेतसा । सोऽपि तृप्तिमवाप्नोतिविनाप्यन्नेन वै तदा
येनानृतानिनोक्तानि प्रीतिभेदःकृतोनच । आस्तिकःश्रद्दधानश्च ससुखंमृत्युमृच्छति
देवब्राह्मणपूजायां ये रता नाऽनसूयवः । शुक्ला वदान्या ह्रीमन्तस्ते नराःसुखमृत्यवः
योनकामान्नसंरम्भान्नद्वेषाद्धर्ममुत्सृजेत् । यथोक्तकारीसौम्यश्चससुखं मृत्युमृच्छति
अवारिदायिनो दाहं क्षुधाञ्चानन्नदायिनः ।
प्राप्नुवन्ति नराः काले तस्मिन् मृत्यावुपस्थिते ॥ ५६ ॥
शीतं जयन्तिधनदास्तापं चन्दनदायिनः । प्राणघ्नीं वेदनांकष्टांये चानुद्वेगकारिणः
मोहाज्ञानप्रदातारः प्राप्नुवन्ति महद्भयम् । वेदनाभिरुग्राभिःप्रपीड्यन्तेऽधमा नराः
कूटसाक्षी मृषावादी यश्चासदनुशास्तिवै । ते मोहमृत्यवः सर्वेयथा वेदविनिन्दकाः
विभीषणाःपूतिगन्धाःकूटमुद्गरपाणयः । आगच्छन्तिदुरात्मानोयमस्यपुरुषास्तदा
प्राप्तेषु दृक्पथं तेषु जायते तस्य वेपथुः । क्रन्दत्यविरतं सोऽथ [illegible]

सास्य वागस्फुटा तात ! पञ्चवर्णा विभाव्यते ।

दृष्टिश्च भ्राम्यते श्वासाच्छ्वासाच्छुष्यत्यथाननम् ॥ ६२ ॥

ऊर्ध्वश्वासान्वित सोऽथदृष्टिमग्नसमन्वित ।तत सवेदनाविष्टस्त्वच्छरीरं विमुञ्चति वाय्वग्रसारी तद्रूप देहमन्यत् प्रपद्यते । तत्कर्मजं यातनार्थं न मातृपितृसम्भवम्

तत्प्रमाणवयोवस्थासंस्थानै प्राग्भव यथा ॥ ६४ ॥

ततो दूतो यमस्याशुपाशैर्बध्नाति दारुणै । दण्डप्रहारसम्भ्रान्तकरतैर्दक्षिणादिशम् कुशकण्टकवल्मीकशङ्कुपाषाणकर्कशे । तथा प्रदीप्तज्वलने च खिच्छयभ्रशतोत्कटे प्रदीप्तादित्यतप्ते च दह्यमाने तदशुभि । कृष्यते यमदूतैश्चाशिवसन्नादभीषणै विकृष्यमाणस्तैर्घोरैर्भक्ष्यमाण शिवाशतै । प्रयातिदारुणे मार्गे पापकृमा यमक्षयम् छत्रोपानत्प्रदातारो ये च वस्त्रप्रदा नरा । ते यान्ति मनुजामार्गं तं सुखेनतथान्नदा

विमानै सोऽन्यलैर्यान्ति भूमिदानप्रदा नरा ।

एव क्लेशाननुभवन्नवश पापपीडित । नीयते द्वादशाहेन धर्मराजपुरंनर । कलेवरे दह्यमाने महान्तं दाहमृच्छति । ताड्यमाने तथैवासि छिद्यमानेचदारुणाम् क्लिद्यमाने चिरतर जन्तुर्दुःखमवाप्नुते । स्वेनकर्मविपाकेन देहान्तरगतोऽपि सन्

तत्र यद्बान्धवास्तोय प्रयच्छन्ति तिलै सह ।

यच्च पिण्ड प्रयच्छन्ति नीयमानस्तदश्नुते ॥ ७२ ॥

तैलाभ्यङ्गोबान्धवानामङ्गसंवाहनञ्चयत् । तेनचाप्यायतेजन्तुर्यच्चाश्नन्तिसबान्धवा

भूमौ स्वपद्भिर्नात्यन्त क्लेशमाप्नोति बान्धवै ।

दान ददद्भिश्च यथा जन्तुराप्याय्यते मृत ॥ ७१ ॥

नीयमान स्वक गेह द्वादशाह स पश्यति । उपभुङ्क्तेनयाद्दत्ततोयपिण्डादिकभुवि द्वादशाहात्परं घोरमावासं भीषणाकृतिम् । याम्य पश्यत्यथोजन्तु कृष्यमाण पुरतत गतमात्रोऽतिरक्ताक्ष भिन्नाञ्जनचयप्रभम् । मृत्युकालान्तकादीनामध्येपश्यतिवैयमम् दंष्ट्राकरालवदन भ्रुकुटिदारुणाकृतिम् । विरूपैर्भीषणैर्वक्रैर्वृतं व्याधिशतैं प्रभुम् दण्डासक्त महाबाहुं पाशहस्तसुभैरवम् । तन्निर्दिष्टततोयातिगतिंजन्तु शुभाशुभाम्

रौरवे कूटसाक्षी तु याति यश्चानृती नरः । तस्य स्वरूपं गदतो रौरवस्यनिशामय
योजनानां सहस्रे द्वे रौरवो हि प्रमाणतः । जानुमात्रप्रमाणश्चततः श्वभ्रःसुदुस्तरः
तत्राङ्गारचयोपेतं कृतश्च धरणीसमम् । जाज्वल्यमानस्तीव्रेणतापिताङ्गारभूमिना
तन्मध्ये पापकर्माणं विमुञ्चन्तियमानुगाः । सदह्यमानस्तीव्रेण वह्निना तत्र धावति
पदे पदे च पादोऽस्य शीर्यते जीर्यते पुनः । अहोरात्रेणोद्धरणं पादन्यासंचगच्छति
एवंसहस्रमुत्तीर्णो योजनानांविमुच्यते । ततोऽन्यत्पापशुद्ध्यर्थंतादृङ्निरयमृच्छति
ततः सर्वेषु निस्तीर्णः पापीतिर्य्यक्त्वमश्नुते । कृमिकीटपतङ्गेषुश्वापदेमशकादिषु
गत्वा गजद्रुमाद्येषु गोष्वश्वेषु तथैव च । अन्यासु चैव पापासुदुःखदासुच योनिषु
मानुष्यंप्राप्यकुब्जोवाकुत्सितोवामनोऽपिवा । चण्डालपुल्कसाद्यासुनरोयोनिषुजायते
अवशिष्टेन पापेन पुण्येन च समन्वितः । ततश्चारोहणीं जातिं शूद्रवैश्यनृपादिकाम्
विप्रदेवेन्द्रताश्चापि कदाचिदवरोहणीम् । एवं तु पापकर्माणो नरकेषु पतन्त्यधः
यथा पुण्यकृतो यान्ति तन्मेनिगदतःशृणु । तेयमेनविनिर्दिष्टां यान्तिपुण्यांगतिंनराः
प्रगीतगन्धर्वगणाः प्रनृत्ताप्सरसां गणाः । हारनूपुरमाधुर्यशोभितान्युत्तमानि च

प्रयान्त्याशु विमानानि नानादिव्यस्रगुज्वलाः ।
तस्माच्च प्रच्युता राज्ञामन्येषाञ्च महात्मनाम् ॥ ६४ ॥
जायन्ते च कुले तत्र सद्वृत्तपरिपालकाः ।
भोगान् सम्प्राप्नुवन्त्युग्रांस्ततोयान्त्यूर्द्ध्वमन्यथा ॥ ६५ ॥

अवरोहणीञ्च सम्प्राप्य पूर्ववद्यान्ति मानवाः । एतत्ते सर्वमाख्यातंयथाजन्तुर्विपद्यते
अतः शृणुष्व विप्रर्षे ! यथा गर्भं प्रपद्यते ॥ ६६ ॥

इतिश्रीमार्कण्डेयपुराणेपितापुत्रसम्वादेजीवगतिवर्णनंनाम दशमोऽध्यायः ॥ १०॥

एकादशोऽध्यायः

गर्भस्थजन्तोरवस्थावर्णनम्

पुत्र उवाच

निषेकं मानवं स्त्रीणां बीजं योन्यन्तरागतम् । विमुक्तमात्रो नरकात्स्वर्गाद्वापि प्रपद्यते तेनाभिभूतं तत्स्थैर्यं याति बीजद्वयं स्थिरं । कललत्वं बुद्बुदत्वं ततः पेशित्वमेव च पेश्यां यथागुर्वीजं स्यादङ्कुरस्तद्वदुच्यते । अङ्गानाञ्च तथोत्पत्तिः पञ्चानामनुभागशः उपाङ्गान्यङ्गुलीनेत्रनासास्यश्रवणानि च । प्ररोहमङ्गिनाङ्गेभ्यो यान्ति तेभ्यस्तथा नखादिकम्

त्वचि रोमाणि जायन्ते केशाश्चैव ततः परम् ।
समं नखुद्धिमायाति नैनयोद्भवकोशकम् (१°) ॥ ५ ॥
नारिकेलफलं यद्वत् सकोशं वृद्धिमृच्छति ।
तद्वत् प्रयात्यसौ वृद्धिं स कोशोऽधोमुखः स्थितः ॥ ६ ॥
तले तु जानुपार्श्वाभ्यां करौ न्यस्य स वर्धते ।
अङ्गुष्ठौ चोपरि न्यस्तौ जान्वोरग्रे तथाङ्गुली ॥ ७ ॥

जानुपृष्ठतयानेत्रे जानुमध्येन नासिका । स्फिचौ पार्ष्णिद्वयस्थे च बाहुजङ्घे बहिः स्थिते

एवं वृद्धिं क्रमाद्याति जन्तुः स्त्रीगर्भसंस्थितः ।
अन्यसत्त्वोदरे जन्तोर्यथा रूपं तथा स्थितिः ॥ ९ ॥
काठिन्यमग्निना याति भुक्तपीतेन जीवति ।
पुण्यापुण्याश्रयमयी स्थितिर्जन्तोस्तथोदरे ॥ १० ॥

नाडी चाप्यायनी नाम नाभ्यां तस्य निबध्यते । स्त्रीणां तथान्त्रसुषिरे सा निबद्धोपजायते क्रामन्ति भुक्तपीतानि स्त्रीणां गर्भोदरे यया । तैराप्यायितदेहोऽसौ जन्तुर्वृद्धिमुपैति वै स्मृतीस्तस्य प्रयान्त्यस्य बह्व्यः संसारभूमयः । ततो निर्वेदमायाति पीड्यमानस्ततस्ततः पुनर्नैवं करिष्यामि मुक्तमात्र इहोदरात् । तथा तथा यतिष्यामि गर्भं नाप्स्याम्यहं यथा

इतिं चिन्तयते स्मृत्वा जन्मदुःखशतानि वै। यानिपूर्वानुभूतानि दैवभूतानियानिवै
ततः कालक्रमाज्जन्तुः परिवर्त्तत्यधोमुखः। नवमे दशमे वापि मासि सञ्जायते ततः

निष्क्राम्यमाणो वातेन प्राजापत्येन पीड्यते।
निष्क्राम्यते च विलपन् हृदि दुःखनिपीड़ितः॥ १७॥
निष्क्रान्तश्चोदरान्मूर्च्छामसह्यां प्रतिपद्यते।
प्राप्नोति चेतनां चाऽसौ वायुस्पर्शसमन्वितः॥ १८॥

ततस्तंवैष्णवीमायासमास्कन्दतिमोहिनी। तयाविमोहितात्मासौज्ञानभ्रंशमवाप्नुते
भ्रष्टज्ञानो वालभावं ततो जन्तुः प्रपद्यते। ततः कौमारकावस्थां यौवनं वृद्धतामपि
पुनश्चमरणंतद्वज्जन्मचाप्नोतिमानवः। ततःसंसारचक्रेऽस्मिन् भ्राम्यतेघटियन्त्रवत्
कदाचित् स्वर्गमाप्नोतिकदाचिन्निरयंनरः। नरकञ्चैवस्वर्गञ्चकदाचिच्च मृतोऽश्नुते
कदाचिदत्रैव पुनर्जातःस्वं कर्म सोऽश्नुते। कदाचिद्भुक्तकर्माचमृतः स्वल्पेनगच्छति
कदाचिदल्पैश्चततोजायतेऽत्रशुभाशुभैः। स्वर्लोकेनरकेचैव(वापि)भुक्तप्रायोद्विजोत्तम
नरकेषु महद्दुःखमेतद्यत् स्वर्गवासिनः। दृश्यन्तेतात!मोदन्ते पात्यमानाश्च नारकाः
स्वर्गेऽपि दुःखमतुलं यदारोहणकालतः। प्रभृत्यहं पतिष्यामीत्येतन्मनसि वर्त्तते
नारकांश्चैव सम्प्रेक्ष्य महद्दुःखमवाप्यते। एतां गतिमहं गन्तेत्यहर्निशमनिर्वृतः॥
गर्भवासे महद्दुःखं जायमानस्ययोनितः। जातस्य वालभावे च वृद्धत्वे दुःखमेव च

कामेर्ष्याक्रोधसम्बन्धं यौवनं चाऽतिदुःसहम्।
दुःखप्राया वृद्धता च मरणे दुःखमुत्तमम्॥ २६॥

कृष्यमाणस्य याम्यैश्च नरकेषु चपात्यतः। पुनश्च गर्भो जन्माऽथ मरणं नरकस्तथा

एवं संसारचक्रेऽस्मिन् जन्तवो घटियन्त्रवत्।
भ्राम्यन्ते प्राकृतैर्वन्धैर्वद्ध्वा वध्यन्ति चासकृत्॥ ३१॥

नास्तितात!सुखं किञ्चिदत्रदुःखशताकुले। तस्मान्मोक्षाययतताकथंसेव्यामयात्रयी

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे पितापुत्रसंवादे जन्मस्थितिसंसारदुःखवर्णनं नाम
एकादशोऽध्यायः॥ ११॥

द्वादशोऽध्याय

महारौरवादिनरकाणामवस्थावर्णनम्

पितोवाच

साधु पुत्र ! त्वयाख्यातं संसारगहनं परम् । आश्रयज्ञानसंपूर्णं समाश्रित्य महाफलम्
तत्रैते नरकाः सर्वे यथा वै रौरवस्तथा । वर्णितास्तान् समाचक्ष्व विस्तरेण महामते

पुत्र उवाच

रौरवस्ते समाख्यातः प्रथमं नरको मया । महारौरवसंज्ञं तु शृणुष्व नरकं पितः
गोभूम्यागमनेष्वे च अभक्ष्यभक्षणे रताः । मित्रद्रोहकराश्चैव स्वामिविश्रम्भघातकाः
परस्वरक्ताश्चैव स्वदारपरिवर्जिनः । मानभङ्गकरा ये च तडागारामभेदकाः ॥ ५ ॥

एतेऽन्ये च दुराचारा दह्यन्ते तत्र किङ्करैः ।

योजनानां सहस्राणि सप्तपञ्च समन्ततः । तत्र ताम्रमयी भूमिरधस्तस्य हुताशनः
तत्तापतप्ता सा सर्वा प्रोद्यदिन्दुसमप्रभा । विभाति सुमहाघोरा दर्शनस्पर्शनादिषु
तस्यां बद्धकराभ्यां च पद्भ्यां चैव यमानुगैः । मुच्यते पापकृन्मध्ये लुठ्यमानः स गच्छति
काकैर्बकैर्वृकोलूकैर्वृश्चिकैर्मशकैस्तथा । भक्ष्यमाणस्तथा गृध्रैर्द्रुतं मार्गे विकृष्यते
दह्यमानः पितर्मातर्भ्रातस्तातेति चाकुलः । वदत्यसकृदुद्विग्नो न शान्तिमधिगच्छति
एवं तस्मान्नरैर्मोक्षो ह्यतिकालेनवाप्यते । वर्षायुतायुतैः पापं यैः कृतं दुष्टबुद्धिभिः
तथान्यस्तु तमो नाम सोऽतिशीतः स्वभावतः । महारौरववद्दीर्घस्तथातितमसावृतः
गोवधश्च कृतो येन भ्रातृणा ज्ञात एव च । अथ बालघाती च नीयते शीतसङ्कटे ॥
शीतार्तास्तत्र धावन्तो नराश्च तमसि स्थिते । परस्परं समासाद्य परिरभ्याश्रयन्ति च

दन्तास्तेषां च भज्यन्ते शीतार्तिपरिकम्पिताः ।
क्षुत्तृष्णाप्रबलास्तत्र तथैवान्येऽप्युपद्रवाः ॥ १५ ॥
हिमखण्डवहो वायुर्भिनत्त्यस्थीनि दारुणः ।

मज्जासृग्गलितं तस्मादश्नुवन्ति क्षुधान्विताः ॥ १६ ॥

लेलिह्यमाना भ्राम्यन्ते परस्परसमागमे। एवंतत्रापि सुमहान् क्लेशस्तमसि मानवैः

प्राप्यते ब्राह्मणश्रेष्ठ! यावद्दुष्कृतसंक्षयः। निकृन्तनइति ख्यातस्ततोऽन्योनरकोत्तमः

तस्मिन् कुलालचक्राणि भ्राम्यन्त्यविरतं पितः!।

अदृष्टं दृष्टवद् ब्रूयादश्रुतं श्रुतमेव च ॥ १६

एकाक्षरं गुरुं यस्तुदुराचारो न मन्यते। न शृणोतिगुरोर्वाक्यं शास्त्रवाक्यंतथैवच

एते पापा दुराचारास्तत्रतैर्यमपूरुषैः।

तेष्वारोप्य निकृन्त्यन्ते कालसूत्रेण मानवाः ॥ २१ ॥

यमानुगाङ्गुलिस्थेन आपादतलमस्तकम्। नचैषां जीवितभ्रंशो जायते द्विजसत्तम!

छिन्नानि तेषांशतशः खण्डान्यैक्यं व्रजन्तिच। एवंवर्षसहस्राणिछिद्यन्तेपापकर्मिणः

तावद्यावदशेषं वै तत्पापं हि क्षयं गतम्। अप्रतिष्ठश्च नरकं शृणुष्व गदतो मम

यत्रस्थैर्नारकैर्दुःखमसह्यमनुभूयते। स्वधर्मरतविप्राणां विघ्नं यस्तु समाचरेत्

सबद्धैर्दारुणैःपाशैर्नीयते चक्रमङ्कुरैः। तान्येव तत्र चक्राणि घटीयन्त्राणिचान्यतः

दुःखस्य हेतुभूतानि पापकर्मकृतां नृणाम्।

चक्रेष्वारोपिताः केचिद् भ्राम्यन्ते तत्र मानवाः ॥ २७ ॥

यावद्वर्षसहस्राणि नतेषांस्थितिरन्तरा। घटीयन्त्रेषु चैवान्यो बद्धस्तोये यथा घटी

भ्राम्यन्ते मानवा रक्तमुद्गिरन्तःपुनःपुनः। अन्त्रैर्मुखविनिष्क्रान्तैर्नेत्रैरस्त्रविलम्बिभिः

दुःखानि तेप्राप्नुवन्ति यान्यसह्यानि जन्तुभिः। असिपत्रवनंनामनरकंशृणु चापरम्

योजनानां सहस्रं योऽज्वलदग्न्यास्तृतावनिः।

ब्रह्मचारिव्रतानाञ्च तपसां विघ्नमाचरेत् ॥ ३१ ॥

असिपत्रवनंयान्ति ये सदोद्वेगकारिणः। तप्ताः सूर्यकरैश्चण्डैर्यत्रातीवसुदारुणैः

प्रपतन्ति सदा तत्र प्राणिनो नरकौकसः। तन्मध्येचवनं रम्यं स्निग्धपत्रंविभाव्यते

पत्राणि तत्र खड्गानां फलानि द्विजसत्तम!।

श्वानश्च तत्र सबलाः स्वनन्त्ययुतशोभिताः ॥ ३४ ॥

महाबलवन्तो महादंष्ट्रा व्याघ्राश्च भयानकाः । ततस्तद्वनमालोक्य शिशिरच्छायमग्रतः
प्रयान्ति प्राणिनस्तत्र तीव्रतृट् (तृड्ताप) परिपीडिताः ।
हा मातर्हा तात ! इति क्रन्दन्तोऽतीव दुःखिताः ॥ ३६ ॥
दह्यमानाङ्घ्रियुगला धरणीस्थेन वह्निना । तेषां गतानां तत्रासिपत्रपाती समीरणः
प्रवाति तेन पात्यन्ते तेषां खड्गास्तथोपरि । ततः पतन्ति ते भूमौ ज्वलत्पावकसञ्चये
लेलिह्यमाने चान्यत्र ज्वालाढ्ये च महीतले । सारमेयास्ततः शीघ्रं शातयन्ति शरीरतः
तेषामङ्गानि रुदतामघघातायभीषणाः । असिपत्रवनं तात मयैतत् कीर्तितं तव
अतः परं भीमतरं तप्तकुम्भं निबोध मे । समन्ततस्तप्तकुम्भा वह्निज्वालासमावृताः
ज्वलदग्निचयोद्वृत्ततैलायश्चूर्णपूरिताः । तेषु दुष्कृतकर्माणो याम्यैः क्षिप्ता ह्यधोमुखाः
कृत्स्नैर्द्रुमशास्त्राणि ये चान्ये तीर्थसूचकाः ।
भुक्तभोगास्तु यो नारीमिच्छमाणः प्रिया शुभाम् ॥ ४३ ॥
अहृष्टामपि कोपेन त्यजते मूढचेतनः ।
ते समानीय पच्यन्ते लोहकुम्भेषु शीघ्रतः ॥ ४४ ॥
क्वाथ्यन्ते विस्फुटद्गात्रा ज्वलन्मज्जजलाविलाः ।
स्फुटत्कपालनेत्रास्थिच्छिद्यमाना विभीषणैः ॥ ४५ ॥
गृध्रैरुत्पाट्य मुच्यन्ते पुनस्तेष्वेव वेगितैः ।
पुनः सिमसिमायन्ते तैलेनैक्यं व्रजन्ति च ॥ ४६ ॥
द्रवीभूतैः शिरोगात्रस्नायुमांसत्वगस्थिभिः । ततो याम्यैर्नरैराशु दर्व्या घट्टनघट्टिताः
कृतावर्ते महातैले मथ्यन्ते पापकर्मिणः । एष ते विस्तरेणोक्तस्तप्तकुम्भो मया पितः !

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे पितापुत्रसंवादे महारौरवादिनरकाख्यान
वर्णनं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

—— * ——

त्रयोदशोऽध्यायः

सुमतिपुत्रस्यस्वानुभूतनरकप्राप्तिक्लेशवर्णनम्

पुत्र उवाच

अहंवैश्यकुले जातो जन्मन्यस्मात्तुसप्तमे । समतीते गवां रोधं निपाने कृतवान् पुरा

विपाकात्कर्मणस्तस्य नरकं भृशदारुणम् ।

सम्प्राप्तोऽग्निशिखाघोर (नाथ) मयोमुखखगाकुलम् ॥ २ ॥

यन्त्रपीडनगात्रासृक्प्रवाहोद्भूतकर्दमम् । विशस्यमानदुष्कर्मितन्निपातरवाकुलम्

पात्यमानस्यमे तत्र साग्रं वर्षशतंगतम् । महातापार्तितप्तस्य तृष्णादाहान्वितस्यच

तत्राह्लादकरः सद्यः पवनःसुखशीतलः । करम्भवालुकाकुम्भमध्यस्थे वै समागतः

तत्सम्पर्कादशेषाणां नाभवद्यातना नृणाम् ।

मम चापि यथा स्वर्गे स्वर्गिणां निर्वृतिः परा ॥ ६ ॥

किमेतदिति चाह्लादविस्तारस्तिमितेक्षणैः । दृष्टमस्माभिरासन्नं नररत्नमनुत्तमम्

याम्यश्च पुरुषो घोरो दण्डहस्तोऽशनिप्रभः । पुरतो दर्शयन्मार्गमित एहीति चागथ

ततस्ते जन्तवः सर्वे मत्वा तद्दर्शनात्सुखम् ।

ऊचुः प्राञ्जलयो भूपं क्षणमात्रं स्थिरो भव ॥ ९ ॥

त्वद्गात्रसङ्गीपवनो ह्यस्माकंसुखकारकः । ततोऽसौनरकाभ्याशे उपविष्टःकृपान्वितः

पुरुषः स तदा दृष्ट्वा यातनाशतसङ्कुलम् । नरकं प्राह तं याम्यं किङ्करं कृपयान्वितः

पुरुष उवाच

भोयाम्यपुरुषाचक्ष्वकिं मयादुष्कृतंकृतम् । येनेदं यातनाभीमंप्राप्तोऽस्मिनरकंपरम्

विपश्चिदिति विख्यातो जनकानामहंकुले । जातो विदेहविषयेसम्यङ्मनुजपालकः

चातुर्वर्ण्यंस्वधर्मस्थं कृत्वा संरक्षितं मया । धर्मतो धर्मकल्पेन मनुनाऽत्र यथा पुरा

यज्ञैर्मयेष्टं बहुभिर्धर्मतः पालिता मही । नोत्सृष्टश्च संग्रामो ह्यतिथिर्विमुखो न च

राजोवाच

याम्यामि देवानुचर ! यत्र त्वं मां नयिष्यसि ।
किञ्चित् पृच्छामि तन्मे त्वं यथावद्वक्तुमर्हसि ॥ ८ ॥

वज्रतुण्डास्त्वमी काकाः पुंसां नयनहारिणः । पुनःपुनश्चनेत्राणितद्वदेषांभवन्तिहि
किंकर्म कृतवन्तश्च कथयैतज्जुगुप्सितम् । हरन्त्येषांतथाजिह्वां जायमानांपुनर्नवाम्
करपत्रेण पाट्यन्ते कस्मादेतेऽति दुःखिताः ।
करम्भवालुकास्वेते पच्यन्ते तैलगोचराः ॥ ११ ॥

अयोमुखैः खगैश्चैते कृष्यन्ते किंविधावद । धिक्छिन्नदेहवन्धार्त्तिमहारावविराविणः
अयश्चञ्चुनिपातेन सर्वाङ्गक्षतदुःखिताः । किमेतेऽनिष्टकर्त्तारस्तुद्यन्तेऽहर्निशं नराः
एताश्चान्याश्च दृश्यन्ते यातनाः पापकर्मिणाम् । येन कर्मविपाकेनतन्ममोद्देशतो वद

यमकिङ्कर उवाच

यन्मां पृच्छसिभूपाल! पापकर्मफलोदयम् । तत्तेऽहं सम्प्रवक्ष्यामिसंक्षेपेणयथातथम्
पुण्यापुण्ये हिपुरुषः पर्यायेण समश्नुते । भुञ्जतश्चक्षयं यातिपापं पुण्यमथापि वा
नतुभोगादृते पुण्यं पापम्वा कर्म मानवः । पापकंवापुनात्याशुक्षयोभोगात्प्रजायते
परित्यजति भोगाच्च पुण्यापुण्ये निबोध मे ।
दुर्भिक्षाद्देव दुर्भिक्षं क्लेशात् क्लेशं भयाद्भयम् ॥ १८ ॥
मृतेभ्यः प्रमृतायान्ति दरिद्राः पापकर्मिणः ।
गतिं नानाविधां यान्ति जन्तवःकर्मबन्धनात् ॥ १९ ॥
उत्सवादुत्सवं यान्ति स्वर्गात् स्वर्गं सुखात् सुखम् ।
श्रद्दधानाश्च दान्ताश्च धनदाः शुभकारिणः ॥ २० ॥

व्यालकुञ्जरदुर्गाणि सर्पचौरभयानि तु । हताः पापेन गच्छन्तिपापिनः किमतःपरम्
सुगन्धिमाल्यसद्वस्त्रसाधुयानासनाशनाः ।
स्तूयमानाः सदा यान्ति पुण्यैः पुण्याटवीष्वपि ॥ २२ ॥

अनेकशतसाहस्रजन्मसञ्चयसञ्चितम् । पुण्यापुण्यं नृणां तद्वत्सुखदुःखाङ्कुरोद्भवम्

यथा बीजं हि भूपाल ! फलानि समपेक्षते ।
पुण्यापुण्ये तथा कालदेशान्यकर्मकारकम् ॥ २५ ॥

स्वल्पं पापं एवं तु सादेशकालोपपादितम् । पादन्यासकृतं दुःखं कण्टकोत्थं प्रयच्छति तत् प्रभूततरं शूलं शङ्कुकीलकसम्भवम् । दुःखं यच्छति तद्वच्च शिरोरोगादि दुःसहम् अपथ्याशनशीतोष्णश्रमतापादिकारकम् । तथान्योन्यमपेक्षन्ते पापानि फलसङ्गमे

एवं महान्ति पापानि दीर्घरोगादिविविधाम् ।
तद्वच्छस्त्राग्निरक्षार्तिबन्धनादिफलाय वै ॥ २८ ॥
स्वल्पं पुण्यं शुभं गन्धं देवता सम्प्रयच्छति ।
स्पर्शं वाप्यथवा शब्दं रसं रूपमथापि वा ॥ २९ ॥

चिरानुबन्धं तद्वच्च महान्तमपि कल्पनम् । एवञ्च सुखदुःखानि पुण्यापुण्योद्भवानि वै भुञ्जानोऽनेकसंसारसम्भवानीह तिष्ठति । जातिदेशावस्थानि ज्ञानाज्ञानफलानि च

तिष्ठन्ति तत्र दुःखानि चिह्नमात्रेण चात्मनि ।
वपुषा मनसा वाचा न कदाचित् क्वचिन्नर ॥ ३२ ॥

अकुर्वन् पापकं कर्म पुण्यं चाप्युपतिष्ठते । यथा प्राप्नोति पुरुषो सुखदुःखमथापि वा प्रभूतमथवा स्वल्पं विभिन्नाकारि चेतसः । यावता तस्य पुण्यं वा पापं वाप्यपचेतरत्

उपभोगात् क्षयं याति भुज्यमानमिवाशनम् ।
एवमेते महापापं यातनाभिरहर्निशम् ॥ ३४ ॥

क्षपयन्ति नरा घोरं नरकान्तर्विवर्तिनः । तथैव राजन् पुण्यानि स्वर्गलोकेऽमरैः सह गन्धर्वसिद्धाप्सरसां गीताद्यैरुपभुञ्जते । देवत्वे मानुषत्वे च तिर्यक्त्वे च शुभाशुभम्

पुण्यपापोद्भवं भुङ्क्ते सुखदुःखोपलक्षणम् ।
यच्च पृच्छसि मां राजन् यातनाः पापकर्मिणाम् ।
केन केनेति पापेन तत् ते वक्ष्याम्यशेषतः ॥ ३८ ॥

दुष्टेन चक्षुषा दृष्टा परदारा नराधमैः । मानसेन च दुष्टेन परद्रव्यं च सस्पृहैः ॥ वज्रतुण्डाः खगास्तेषां हरन्त्येते विलोचने । पुनः पुनश्च सम्भूतिरक्ष्णोस्तेषां भवत्यथ

यावतोऽक्षिनिमेषांस्तुपापमेभिर्नृभिःकृतम् । तावद्वर्षसहस्राणिनेत्रार्त्तिप्राप्नुवन्त्युत
असच्छास्त्रोपदेशास्तुयैर्दत्तायैश्चमन्त्रिताः । सम्यग्दृष्टेर्विनाशायरिपूणामपिमानवैः
यैः शास्त्रमन्यथा प्रोक्तं यैरसद्वागुदाहृता । वेददेवद्विजादीनां गुरोर्निन्दाच यैः कृता
हरन्ति तेषां जिह्वाश्चजायमानाःपुनः पुनः । तावतोवत्सरानेतेवज्रतुण्डाःसुदारुणाः

मित्रभेदं तथा पित्रा पुत्रस्य स्वजनस्य च ।
यज्वोपाध्याययोर्मात्रा सुतस्य सहचारिणः ॥ ४५ ॥

भार्यापत्योश्च ये केचिद्भेदं चक्रुर्नराधमाः । त इमे पश्यपाट्यन्ते करपत्रेणपार्थिव!
परोपतापका ये च ये चाह्लादनिषेधकाः । तालवृन्तानिलस्थानचन्दनोशीरहारिणः
प्राणान्तिकं ददुस्तापमदुष्टानाञ्च येऽधमाः । करम्भवालुकासंस्थास्तइमेपापभागिनः

भुङ्क्ते श्राद्धं तु योऽन्यस्य नरोऽन्येन निमन्त्रितः ।
दैवे वाऽप्यथवा पैत्र्ये स द्विधा कृष्यते खगैः ॥ ४६ ॥
मर्माणि यस्तु साधूनामसद्वाग्भिर्निकृन्तति ।
तमिमे तुदमानास्तु खगास्तिष्ठन्त्यवारिताः ॥ ५० ॥

यः करोतिचपैशुन्यमन्यवागन्यथामतिः । पाट्यतेहिद्विधाजिह्वातस्येत्थंनिशितैःक्षुरैः
मातापित्रोर्गुरूणाञ्च येऽवज्ञां चक्रुरुद्धताः । त इमे पूयविण्मूत्रगर्त्तेमज्जन्त्यधोमुखाः
देवतातिथिभूतेषु भृत्येष्वभ्यागतेषु च । अभुक्तवत्सु येऽश्नन्ति तद्वत्पित्रग्निपक्षिषु
दुष्टास्ते पूयनिर्यासभुजःसूचीमुखास्तु ते । जायन्तेगिरिवर्ष्माणःपश्यैतेयादृशानराः
एकपङ्क्त्या तु ये विप्रमथवेतरवर्णजम् । विषमं भोजयन्तीह विड्भुजस्त इमेयथा
एकसार्थप्रयातं येनिःस्वमर्थार्थिनंनरम् । अपास्यस्वान्नमश्नन्तितइमेश्लेष्मभोजिनः
गोब्राह्मणाग्नयःस्पृष्टायैरुच्छिष्टैर्नरेश्वर !। तेषामेतेऽग्निकुम्भेषुलेलिह्यन्त्याहिताःकराः

सूर्येन्दुतारका दृष्टा यैरुच्छिष्टैस्तु कामतः ।
तेषां याम्यैर्नरैर्नेत्रे न्यस्तो वह्निः समिध्यते ॥ ५८ ॥
गावोऽग्निर्जननी विप्रो ज्येष्ठभ्राता पिता स्वसा ।
जामयो गुरवो वृद्धा यैः स्पृष्टास्तु पदा नृभिः ॥ ५९ ॥

वज्रदंष्ट्रमयश्चञ्चैर्भिद्यन्तेऽतीवदारुणैः ।
मध्ये निपात्यन्ते श्वानैस्तथा भीमैर्विदार्यते ॥ १० ॥
पापानां वर्षतां तत्र देहानाञ्च यानि वै ।
भूतानि वैरनिर्यातनैस्तेषां दीर्घकालिकम् ॥ ११ ॥

[illegible] भुवि मनुष्याणां निपातितानाम् । तत्र वै परपक्षपाततः [illegible]
[illegible] बहुकालं भवाम्बुनिधौ । [illegible]
[illegible] पुनः पुनः । [illegible]

वै प्राणैर्वियुज्यन्ते देहास्तस्य पुनः ।
मध्यम्या विश्वगताया आमध्यान्तम्पर्यन्तिमि ॥ १५ ॥

[illegible] पुनः पुनर्भवे [illegible]
[illegible]

दत्त्वा करवां च वक्त्रे द्विजातये प्रयच्छति ।
स्थितं भेदस्य द्विज पातयति प्रयाति ॥ १८ ॥

[illegible] पुरिष्ठविभागम् । [illegible]
[illegible] । [illegible]

शारालानाह्न पाच्यमानि हीमान उत्कोचजीविनः ।
तप्तेष्वेवं पच्यन्ताहामि पीडयते समस्तिन्ते ॥ २० ॥

[illegible] ये प्रयच्छन्ति पापकर्म कृतं मया । ते [illegible] पापकर्मिणः
[illegible] बध्यन्ते । [illegible]
[illegible] । [illegible] परदारगुप्सये

तथैव वञ्चनं गैरिकास्वसैः परस्य शाल्मलिम् ।
आरोपिता विभिन्नाङ्गाः प्रभूतासृक्स्रावाविलाः ॥ २१ ॥
मूषायामपि पश्यैतान् ध्मायमानान् यमानुगैः ।
पुरुषैः पुण्यपालाः परदाराघमर्षिणः ॥ २२ ॥

उपाध्यायमधः कृत्वा स्तब्धो योऽध्ययनं नरः ।
गृह्णाति शिल्पमथवा सोऽप्येवं शिरसा शिलाम् ॥ ७७ ॥
बिभ्रत् क्लेशमवाप्नोति जनमार्गेऽतिपीडितः ।
क्षुत्क्षामोऽहर्निशं भारपीडाव्यथितमस्तकः ॥ ७८ ॥

मूत्रश्लेष्मपुरीषाणि यैरुत्सृष्टानि वारिणि । त इमे श्लेष्मविण्मूत्रदुर्गन्धनरकंगताः

परस्परञ्च मांसानि भक्षयन्ति क्षुधान्विताः ।
भुक्तं नातिथ्यविधिना पूर्वमेभिःपरस्परम् ॥ ८० ॥

अपविद्धास्तु यैर्वेदा वह्नयश्चाहिताग्निभिः । तइमेशैलश्रृङ्गाग्रात्पात्यन्तेऽःधपुनःपुनः
पुनर्भूपतयोजीर्णायावज्जीवन्तिये नराः । इमे कृमित्वमापन्नाभक्ष्यन्तेऽत्रपिपीलिकैः
नीचप्रतिग्रहादानायाजनान्नित्यसेवनात् । पाषाणमध्यकीटत्वं नरः सततमश्नुते

पश्यतो भृत्यवर्गस्य मित्राणामतिथेस्तथा ।
एको मिष्टान्नभुग् भुङ्क्ते ज्वलदङ्गारसञ्चयम् ॥ ८४ ॥

वृकैर्भयङ्करैः पृष्ठंनित्यमस्योपभुज्यते । पृष्ठमांसं नृपंतेन यतो लोकस्यभक्षितम्
अन्धोऽथ वधिरोमूकोभ्राम्यतेऽयंक्षुधातुरः । अकृतज्ञोऽधमःपुंसामुपकारेषुवर्त्तताम्
अयं कृतघ्नो मित्राणामपकारी सुदुर्मतिः । तप्तकुम्भेनिपतितोविलपन्यातिशोषणम्
करम्भवालुकां तस्मात्ततो यन्त्रावपीडनम् । असिपत्रवनंतस्मात् करपत्रेणपाटनम्
कालसूत्रे तथा च्छेदमनेकाश्चैव यातनाः । प्राप्य निष्कृतिमेतस्मान्नवेद्मिकथमेष्यति

श्राद्धेसङ्गतिनो विप्राः समुपेत्य परस्परम् ।
दुष्टा हि निःसृतं फेनं सर्वाङ्गेभ्यः पिबन्ति वै ॥ ९० ॥

सुवर्णस्तेयी विप्रघ्नः सुरापो गुरुतल्पगः । अधश्चोर्द्ध्वञ्चदीप्ताग्नौदह्यमानाःसमन्ततः

तिष्ठन्त्यब्दसहस्राणि सुबहूनि ततः पुनः ।
जायन्ते मानवाः कुष्ठक्षयरोगादिचिह्निताः ॥ ९२ ॥

मृताः पुनश्च नरकं पुनर्जाताश्चतादृशम् । व्याधिमृच्छन्तिकल्पान्तपरिमाणंनराधिप
गोघ्नो न्यूनतरं याति नरकेऽथ त्रिजन्मनि । तथोपपातकानाञ्च सर्वेषामितिनिश्चयः

नरकप्रच्युता यान्ति यैर्यैर्विहितपातकैः ।
प्रयान्ति योनिजातानि तन्मे निगदतः शृणु ॥ ६५ ॥

इतिश्री मार्कण्डेयपुराणे यमकिङ्करसंवादे स्वकृतकर्मभुक्तिवर्णननाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

पञ्चदशोऽध्यायः

दुष्कृत्यप्रभावान्नानादुष्टयोनिजननवर्णनम्

यमकिङ्कर उवाच

पतिताश्प्रतिगृह्यार्थं खरयोनिं व्रजेद्द्विज । नरकात्प्रतिमुक्तस्तु कृमि पतितयाजकः
उपाध्यायव्यलीकं तु कृत्वा श्वा भवति द्विज ।
तज्जायां मनसा वाञ्छन् तद्द्रव्यं चाप्यसंशयम् ॥ २ ॥
गर्द्दभो जायते जन्तु पित्रोश्चाप्यवमानकः । मातापितरावाक्रुश्यसारिकासम्प्रजायते
भ्रातृ पत्न्यवमन्ता च कपोतत्व प्रपद्यते । तामेव पीडयित्वा तु कच्छपत्वम्प्रपद्यते
भर्तृ पिण्डमुपाश्नन् यस्तदिष्टं ॥ निषेवते । सोऽपि मोहसमापन्नोजायतेवानरोमृत
न्यासापहर्त्ता नरकाद्विमुक्तो जायते कृमि । असूयकश्च नरकान्मुक्तो भवतिराक्षसः
विश्वासहन्ता ■ नरो मीनयोनौ प्रजायते ।
धान्यं यवास्तिलान्माषान् कुलत्थान् सर्षपांश्चणान् ॥ ७ ॥
कलायान् कलमान्मुद्गान् गोधूमानतसीस्तथा ।
शस्यान्यन्यानि वा हृत्वा मोहाज्जन्तुरचेतन ॥ ८ ॥
सञ्जायते महावक्त्रो मूषिको बभ्रुसन्निभ । परदाराभिमर्षात्तु वृकोघोरोऽभिजायते
श्वा शृगालो वको गृध्रो व्याल कङ्कस्तथा क्रमात् ।
भ्रातृभार्य्यां च दुर्बुद्धिर्यो धर्षयति पापरत् ॥ १० ॥

पुंस्कोकिलत्वमाप्नोति स चापि नरकाच्च्युतः।
सखिभार्यां गुरोर्भार्यां राजभार्याञ्च पापकृत् ॥ ११ ॥
प्रधर्षयित्वा कामात्मा शूकरो जायते नरः। यज्ञदानविवाहानां विघ्नकर्त्ताभवेत्कृमिः
पुनर्द्दाता तु कन्यायाः कृमिरेवोपजायते । देवतापितृविप्राणामदत्त्वायोऽन्नमश्नुते
प्रमुक्तो नरकात्सोऽपिवायसः सम्प्रजायते। ज्येष्ठं पितृसमं चापिभ्रातरंयोऽवमन्यते
नरकात्सोऽपि विभ्रष्टः क्रौञ्चयोनौप्रजायते। शूद्रश्चब्राह्मणींगत्वाकृमियोनौप्रजायते
तस्यामपत्यमुत्पाद्यकाष्ठान्तःकीटकोभवेत्। शूकरःकृमिकोमद्गुश्चण्डालश्चप्रजायते
अकृतज्ञोऽधमःपुंसां विमुक्तोनरकान्नरः। कृतघ्नः कृमिकः कीटःपतङ्गोवृश्चिकस्तथा
मत्स्यस्तु वायसः कूर्मः पुक्कशो जायते ततः।
अशस्त्रं पुरुषं हत्वा नरः सञ्जायते खरः ॥ १८ ॥
कृमिः स्त्रीवधकर्त्ता च बालहन्ता च जायते।
भोजनं चोरयित्वा तु मक्षिका जायते नरः ॥ १९ ॥
तत्राऽप्यस्ति विशेषो वै भोजनस्य शृणुष्व तत्।
हत्वाऽन्नन्तु स मार्जारो जायते नरकाच्च्युतः ॥ २० ॥
तिलपिण्याकसंमिश्रमन्नंहत्वातुमूषकः। घृतं हत्वाच नकुलःकाकोमद्गुरजामिषम्
मत्स्यमांसापहृत्काकः श्येनोमेषोमिषापहृत्।
चीरीवाकस्त्वपहृते लवणे दधनि कृमिः ॥ २२ ॥
चोरयित्वा पयश्चापि बलाका सम्प्रजायते। यस्तुचोरयते तैलं तैलपायी स जायते
मधुहृत्वानरो दंशोऽपूपंहृत्वापिपीलिका। चोरयित्वातुहविष्यान्नंजायतेगृहगोधकः
आसवञ्चोरयित्वा तु तित्तिरित्वमवाप्नुयात्।
अयो हृत्वा तु पापात्मा वायसः सम्प्रजायते ॥ २५ ॥
पात्रेकांस्येऽपिहारीतः कपोतोरौप्यभाजने। हृत्वातुकाञ्चनंभाण्डंकृमियोनौप्रजायते
कौशेयं चोरयित्वा चक्रवाकत्वमृच्छति। कोषकारश्चकौषेये हृतेवस्त्रेऽभिजायते
दुकूलेशार्ङ्गकः पापो हृतेचैवांशुके शुकः। श्लक्ष्णंचैवाविकं हृत्वावस्त्रं क्षौमञ्च जायते

कार्पासिके हृते क्रौञ्चो धान्यहर्त्ता वायसस्तथा । मयूरो वर्णकान्हृत्वा शाकपत्रञ्जार

जीवञ्जीवकतां याति रक्तवस्त्रापहृन्नरः ।

छुछुन्दरिः शुभान् गन्धान्वासो हृत्वा शशो भवेत् ॥ ३० ॥

षण्ढः पलालहरणात् काष्ठहृद् घुणकीटकः । पुष्पापहृद्दरिद्रश्च पङ्गुर्यानापहृन्नर शाकहर्ता च हारीतस्तोयहर्ता च चातकः । भूमिहृन्नरकान् गत्वा रौरवादीन्सुदारुण तृणगुल्मलतावल्लित्वक्सारतरुता क्रमात् । प्राप्याक्षीणाल्पपापस्तु नरो भवति वै त

वृषस्य वृषणौ छित्त्वा षण्ढत्वमाप्नुयान्नरः ।

परिहृत्य तथा भूयो जन्मनामेकविंशतिः ॥ ३४ ॥

कृमिः कीटः पतङ्गोऽथ पक्षी तोयचरो मृगः ।

गोत्वं प्राप्य च चाण्डालपुल्कसादि जुगुप्सितम् ॥ ३५ ॥

पङ्ग्वन्धो बधिरः कुष्ठी यक्ष्मणा चापि पीडितः । मुखरोगाक्षिरोगैश्च गुदरोगैश्च बाध्य अपस्मारी च भवति शूद्रत्वं च स गच्छति । एष एव क्रमो दृष्टो गोसुवर्णापहारिण विद्यापहारिणां चैव निष्क्रयभ्रंशिना गुरोः । जायामन्यस्य पुरुष परस्यै प्रतिपादय प्राप्नोति षण्ढतां मूढो यानतस्य परिच्युत । य करोति नरो होममसमिद्धे विभावस

सोऽजीर्णव्याधिदुःखार्तो मन्दाग्निः सम्प्रजायते ।

परनिन्दा कृतघ्नत्वं परमर्मावघट्टनम् ॥ ४० ॥

नैष्ठुर्यं निर्घृणत्वञ्च परदारोपसेवनम् । परस्वहरणाशौच देवतानाञ्च कुत्सनम् निकृत्या वञ्चनं नृणां कार्पण्यञ्च नृणां वधः । यानि च प्रतिषिद्धानि तत्प्रवृत्तिश्च सन्तत उपलक्ष्याणि जानीयान्मुक्तानां नरकादनु । दया भूतेषु संवादः परलोकप्रतिक्रि सत्यं भूतहितार्थोक्तिर्वेदप्रामाण्यदर्शनम् । गुरुदेवर्षिसिद्धर्षिपूजनं साधुसङ्ग

सत्क्रियाभ्यसनं मैत्रीमिति बुध्येत पण्डितः ।

अन्यानि चैव सद्धर्मक्रियाभूतानि यानि च ॥ ४५ ॥

स्वर्गच्युतानां लिङ्गानि पुरुषाणामपापिनाम् । एतदुद्देशतो राजन्भवत कथितं म स्वकर्मफलभोक्तॄणां पुण्यानां पापिनां तथा । तदेह्यन्यत्र गच्छामो दृष्टं सर्वं त्वयाधु

त्वया दृष्टो हि नरकस्तद्देहान्यत्र गम्यताम् ॥ ४८ ॥

पुत्र उवाच

ततस्तमग्रतः कृत्वा स राजागन्तुमुद्यतः । ततश्चसर्वैरुत्क्रुष्टं यातनास्थायिभिर्नृभिः

प्रसादंकुरु भूपेति तिष्ठ तावन्मुहूर्त्तकम् । त्वदङ्गसङ्गीपवनो मनो ह्लादयते हि नः ॥

परितापञ्च गात्रेषु पीडाबाधाश्च कृत्स्नशः । अपहन्तिनरव्याघ्र! दयां कुरुमहीपते

एतच्छ्रुत्वा वचस्तेषां तं याम्यपुरुषं नृपः ।

पप्रच्छ कथमेतेषामाह्लादो मयि तिष्ठति ॥ ५२ ॥

किं मया कर्म तत्पुण्यं मर्त्यलोके महत्कृतम् । आह्लाददायिनी दृष्टिर्येनेयं तदुदीरय

यमपुरुष उवाच

पितृदेवातिथिप्रेष्यशिष्टेनान्नेन ते तनुः । पुष्टिमभ्यागता यस्मात्तद्गतञ्च मनो यतः

ततस्त्वद्गात्रसंसर्गी पवनो ह्लाददायकः । पापकर्मकृतोराजन्! यातना न प्रबाधते

अश्वमेधादयोयज्ञास्त्वयेष्टाविधिवद्यतः । ततस्त्वद्दर्शनाद्याम्या यन्त्रशस्त्राग्निवायसाः

पीडनच्छेददाहादिमहादुःखस्यहेतवः । मृदुत्वमागता राजन्! तेजसोपहतास्तव

राजोवाच

न स्वर्गे ब्रह्मलोके वा तत्सुखं प्राप्यतेनरैः । यदार्त्तजन्तुनिर्वाणदानोत्थमितिमेमतिः

यदि मत्सन्निधावेतान् यातना न प्रबाधते ।

ततो भद्रमुखाऽत्राहं स्थास्ये स्थाणुरिवाचलः ॥ ५९ ॥

यमपुरुष उवाच

एहि राजेन्द्र!गच्छामि निजपुण्यसमार्जितान् ।

भुङ्क्ष्व भोगानपास्येह यातनाः पापकर्मणाम् ॥ ६० ॥

राजोवाच

तस्मान्न तावद् यास्यामि यावदेते सुदुःखिताः ।

मत्सन्निधानात्सुखिनो भवन्ति नरकौकसः ॥ ६१ ॥

धिक् तस्यजीवितंपुंसःशरणार्थिनमातुरम् । योनार्त्तमनुगृह्णाति वैरिपक्षमपि ध्रुवम्

यज्ञदानतपांसीह परत्र च न भूतये । भवन्ति तस्य यस्यार्त्तपरित्राणे न मानस
नरस्य यस्य कठिनं मनोबालातुरादिषु । वृद्धेषु च न तं मन्ये मानुषं राक्षसो हि
एतेषां सन्निकर्षात्तु यदग्निपरितापजम् । तथोग्रगन्धजं चापि दुःखं नरकसम्भव
क्षुत्पिपासाभवं दुःखं यच्च मूर्च्छाकरं महत् । विनाशमेति तद्ब्रह्मन् मन्ये स्वर्गसुखात्प

प्राप्स्यन्त्यार्ता यदि सुखं बहवो दुःखिते मयि ।
किन्नु प्राप्तं मया न स्यात्तस्मात्त्वं व्रज मा चिरम् ॥ ६७ ॥

यमपुरुष उवाच

एष धर्मश्च शक्रश्च त्वां नेतुं समुपागतौ ।
अवश्यमस्माद्गन्तव्यं तस्मात् पार्थिव ! गम्यताम् ॥ ६८ ॥

धर्म उवाच

नयामि त्वामहं स्वर्गं त्वयाहं सम्यगुपासितः । विमानमेतदारुह्य माविलम्बस्व गम्यता

राजोवाच

नरके मानवा धर्म ! पीड्यन्तेऽत्र सहस्रशः ।
त्राहीति चार्ताः क्रन्दन्ति मामतो न व्रजाम्यहम् ॥ ७० ॥

इन्द्र उवाच

कर्मणा नरकप्राप्तिरेतेषां पापकर्मिणाम् । स्वर्गस्त्वयापि गन्तव्यो नृप ! पुण्येन कर्मण

राजोवाच

यदि जानासि धर्म ! त्वं त्वं वा शक्र ! शचीपते ! । मम यावत्प्रमाणं तु शुभं तद्वक्तुमर्ह

धर्म उवाच

अब्बिन्दवो यथाम्भोधौ यथा वा दिवि तारकाः ।
यथा वा वर्षतो धारा गङ्गायां सिकता यथा ॥ ७३ ॥

असङ्ख्येया महाराज ज्ञानायोनिपुन्नस्तव । तथा तवापि पुण्यस्य सङ्ख्या नैवोपपद्य
अनुकम्पामिमामद्य नारकेष्विह कुर्वतः । तदेव शतसाहस्रं सङ्ख्यामुपगतं तव
तद्गच्छ त्वं नृपश्रेष्ठ ! तद्भोक्तुममरालयम् । एतेऽपि पापं नरके क्षपयन्तु स्वकर्मजम्

राजोवाच

कथं स्पृहां करिष्यन्ति मत्सम्पर्केषु मानवाः ।
यदि मत्सन्निधावेषामुत्कर्षो नोपजायते ॥ ७७ ॥
तस्मात् यत् सुकृतं किञ्चिन्ममाऽस्ति त्रिदशाधिप !।
तेन मुच्यन्तु नरकात् पापिनो यातनां गताः ॥ ७८ ॥

इन्द्र उवाच

एवमूर्ध्वतरंस्थानंत्वयावाप्तंमहीपते! । एतांश्चनरकात्पश्यविमुक्तान् पापकारिणः

पुत्र उवाच

ततोऽपतत् पुष्पवृष्टिस्तस्योपरि महीपतेः ।
विमानञ्चाऽधिरोप्यैनं स्वर्लोकमनयद्धरिः ॥ ८० ॥
अहंचान्ये च ये तत्रयातनाभ्यःपरिच्युताः । स्वकर्मफलनिर्दिष्टंततोजात्यन्तरंगताः
एवमेते समाख्याता नरका द्विजसत्तम! ।
येन येन च पापेन यां यां योनिमुपैति वै ॥ ८२ ॥
तत्तत् सर्वं समाख्यातं यथादृष्टं मया पुरा । पुरानुभवजं ज्ञानमवाप्य कथितं तव॥
अतः परं महाभाग! किमन्यत् कथयामि ते ॥ ८३ ॥
इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे पितापुत्रसम्वादे नरकोद्धारवर्णनंनाम

षोडशोऽध्याय.

पुत्रेणपित्रेमोक्षमार्गशिक्षणवर्णनम्

पितोवाच

कथितंमेत्वयावत्स संसारस्यव्यवस्थितम् । स्वरूपमतिहेयस्यघटीयन्त्रवदव्ययम्
तदेवमेतद्खिलं मयावगतमीदृशम् । किं मया यत्कर्तव्यमेवमस्मिन् व्यवस्थिते ॥

पुत्र उवाच

यदिमद्वचनं तात श्रद्धास्यविशङ्कित । तत्परित्यज्यगार्हस्थ्यं वानप्रस्थपरो भव
तमनुष्ठायविधिवद्विहायाग्निपरिग्रहम् । आत्मन्यात्मानमाधाय निर्द्वन्द्वो निष्परिग्रह
एकान्तशालीवश्यात्मा भवभिक्षुरतन्द्रित । तत्र योगपरोभूत्वाबाह्यस्पर्शविवर्जित
तत प्राप्स्यसि तं योगं दुःखसंयोगभेषजम् । मुक्तिहेतुमनौपम्यमनाख्येयमसङ्गितम्
तत् संयोगाच्च ते योगो भूयो भूतैर्भविष्यति ॥ ६ ॥

पितोवाच

वत्स योगममाऽऽचक्ष्वमुक्तिहेतुमतः परम् । येनभूतै पुनर्भूतोनेदृग्दुःखमवाप्नुयाम्
यत्रासक्तिपरस्यात्मा ममसंसारबन्धनै । नैतियोगमयोगोऽपि तं योगमधुना वद
संसारादित्यतापार्त्तिविप्लुष्यद्देह (हि) मानसम् ।
ब्रह्मज्ञानाम्बुशीतेन सिञ्च मां वाक्यवारिणा ॥ ६ ॥
अविद्याकृष्णसर्पेण दष्टं तद्विषपीडितम् । स्ववाक्यामृतपानेन मां जीवयपुनर्मृतम्
पुत्रदारगृहक्षेत्रममत्वनिगडार्दितम् । मां मोचयेष्टसद्भावविज्ञानोद्घाटनैस्त्वरन् ॥

पुत्र उवाच

शृणुतात यथायोगो दत्तात्रेयेणधीमता । अलर्कायपुराप्रोक्त सम्यक्पृष्टेनविस्तरात्

पितोवाच

दत्तात्रेय सुत कस्यकथंवायोगमुक्तवान् । कश्चालर्को महाभागो योयोगपरिपृष्टवान्

पुत्र उवाच

कौशिको ब्राह्मणः कश्चित् प्रतिष्ठानेऽभवत् पुरे।
सोऽन्यजन्मकृतैः पापैः कुष्ठरोगातुरोऽभवत्॥ १४॥
तं तथा व्याधितं भार्या पतिं देवमिवार्च्चयत्।
पादाभ्यङ्गाङ्गसंवाहस्नानाच्छादनभोजनैः॥ १५॥

श्लेष्ममूत्रपुरीषासृक्प्रवाहक्षालनेन च। रहश्चैवोपचारेण प्रियसम्भाषणेन च॥
सततं पूज्यमानोऽपिसदातीवविनीतया। अतीवतीव्रकोपत्वान्निर्भर्त्सयतिनिष्ठुरः
तथापिप्रणता भार्यातममन्यतदैवतम्। तं तथाप्यतिवीभत्सं सर्वश्रेष्ठममन्यत

अचङ्क्रमणशीलोऽपि स कदाचिद्द्विजोत्तमः।
प्राहभार्यां नयस्वेति त्वं मां तस्या निवेशनम्॥ १६॥

यासा वेश्यामया दृष्टाराजमार्गे गृहोषिता। तां मां प्रापयधर्मज्ञे! सैव मे हृदि वर्त्तते
दृष्टा सूर्योदये बाला रात्रिश्चेयमुपागता। दर्शनानन्तरं सा मे हृदयान्नापसर्पति॥ २१
यदि साचारुसर्वाङ्गीपीनश्रोणिपयोधरा। नोपगूहतितन्वङ्गी!तन्मांद्रक्ष्यसिवैमृतम्
वामः कामोमनुष्याणां बहुभिःप्रार्थ्यतेचसा। ममाशक्तिश्च गमनेसङ्कुलंप्रतिभातिमे
तत्तदावचनं श्रुत्वाभर्तुः कामातुरस्य सा। तत्पत्नीसत्कुलोत्पन्ना महाभागापतिव्रता
गाढ़ंपरिकरंबद्ध्वाशुल्कमादायचाधिकम्। स्कन्धेभर्त्तारमादायजगाममृदुगामिनी

निशि मेघास्तृते व्योम्नि चलद्विद्युत्प्रदर्शिते।
राजमार्गे प्रियं भर्त्तुश्चिकीर्षन्ती द्विजाङ्गना॥ २६॥

पथि शूले तथाप्रोतमचोरंचोरशङ्कया। माण्डव्यमतिदुःखार्त्तमन्धकारेऽथ सद्विजः

पत्नीस्कन्धे समारूढश्चालयामास कौशिकः।
पादावमर्षणात् क्रुद्धो माण्डव्यस्तमुवाच ह॥ २८॥

येनाहमेवमत्यर्थं दुःखितश्चालितः पदा। दशांकष्टामनुप्राप्तः स पापात्मा नराधमः
सूर्यादयेऽवशःप्राणैर्वियोक्ष्यति नसंशयः। भास्करालोकमात्रेवसविनाशमवाप्स्यति
तस्यभार्याततः श्रुत्वा तं शापमतिदारुणम्। प्रोवाच व्यथितासूर्योनैवोदयमुपेष्यति

ततः सूर्योदयाभावादभवत् सन्तता निशा । बह्न्यहःप्रमाणानि ततो देवा भयं ययुः

नि स्वाध्यायवषट्कारस्वधास्वाहाविवर्जितम् ।

कथं नु खल्विदं सर्वं न गच्छेत् संक्षयं जगत् ॥ ३३ ॥

अहोरात्रव्यवस्थाया विना मासर्तुसंक्षयः । तत्संक्षयात्त्वयने ज्ञायेते दक्षिणोत्तरे विना चायनविज्ञानात् कालः संवत्सरः कुतः । सर्वं सर्वं विनानास्य न कालज्ञानप्रवर्तते पतिव्रतावचनान्नोद्गच्छति दिवाकरः । सूर्योदयविनैव स्नानदानादिका क्रिया नाग्नेर्विहरणं चैव क्रतूनामपि लभ्यते । न कालेन विनाशेषं च यज्ञादिकाः क्रिया नश्यन्ति सर्वभूतानि तमोभूते चराचरे । नैवाप्यायनमस्माकं विना होमेन जायते

वयमाप्यायिता मर्त्यैर्यज्ञभागैर्यथोचितैः ।

वृष्ट्यादिनानुगृह्णीमो मर्त्यान् शस्यादिसिद्धये ॥ ३९ ॥

निष्पादितास्वोषधीषु मर्त्या यज्ञैर्यजन्ति नः ।

तेषां वयं प्रयच्छामः कामान् यज्ञादिपूजिताः ॥ ४० ॥

अधो हि वर्षाम वयं मर्त्याश्चोर्ध्वप्रवर्षिणः । तोयवर्षेण हि वयं हविर्वर्षेण मानवाः

येऽस्माकं न प्रयच्छन्ति नित्यनैमित्तिकीः क्रियाः ।

क्रतुभागं दुरात्मानः स्वयं चा (घा) श्नन्ति लोलुपाः ॥ ४२ ॥

विनाशाय वयं तेषां तोयसूर्याग्निमारुतान् । क्षितिं च संदूषयाम पापानामपकारिणाम् दुष्टतोयादिभोगेन तेषां दुष्कृतकर्मिणाम् । उपसर्गाः प्रवर्तन्ते मरणाय सुदारुणाः

ये त्वस्मान् प्रीणयित्वा तु भुञ्जते शेषमात्मना ।

तेषां पुण्यान् वयं लोकान् विदधाम महात्मनाम् ॥ ४५ ॥

(तेषां पुण्यतमांल्लोकान् वितरामो महात्मनाम् ।)

तन्नास्ति सर्वमेवैतद् विनैषां व्युष्टिसंस्थितिम् ।

कथं नु दिनसर्गः स्यादन्योन्यमवदन् सुराः ॥ ४६ ॥

तेषामेव समेतानां यज्ञव्युच्छित्तिशङ्किनाम् । देवानां वचनं श्रुत्वा प्राह देवः प्रजापतिः तेजः परं तेजसैव तपसा च तपस्तथा । प्रशाम्यत्यमरास्तस्माच्छृणुध्वं वचनं मम

पतिव्रतायामादात्म्यान्नोद्गच्छतिदिवाकरः। तस्यचानुदयाद्धानिर्मर्त्यानांभवतांतथा
तस्मात् पतिव्रतामत्रेरनसूयां तपस्विनीम्। प्रसादयत वै पत्नीं भानोरुदयकाम्यया

पुत्र उवाच

तैःसाप्रसादिता गत्वा प्राहेष्टं व्रियतामिति। अयाचन्त दिनं देवाभवत्विति यथापुरा

अनसूयोवाच

पतिव्रताया माहात्म्यं न हीयेत कथन्त्विति।

सम्मान्य तस्मात्तां साध्वीमहः (तथाप्रेष्याम्यहं) स्रक्ष्याम्यहं सुराः ॥५२
यथा पुनरहोरात्रसंस्थानमुपजायते। यथा च तस्याःस्वपतिर्न साध्व्यानाशमेष्यति

पुत्र उवाच

एवमुक्त्वासुरांस्तस्या गत्वा सामन्दिरंशुभा। उवाचकुशलंपृष्ट्वा धर्मंभर्त्तुस्तथात्मनः

अनसूयोवाच

कच्चिन्नन्दसि कल्याणि! स्वभर्त्तुर्मुखदर्शनात (सुखदायिनी)।

कच्चिच्चाखिलदेवेभ्यो मन्यसेऽभ्यधिकं पतिम् ॥ ५१ ॥

भर्तृशुश्रूषणादेवमया प्राप्तं महत् फलम्। सर्वकामफलावाप्तिः प्रत्यूहाः परिवर्त्तिताः
पञ्चर्णानि मनुष्येण साध्वि! देयानि सर्वदा। तथात्मवर्णधर्मेणकर्त्तव्यो धनसञ्चयः
प्राप्तश्चार्थस्ततः पात्रेविनियोज्योविधानतः। सत्यार्जवतपोदानैर्दयायुक्तोभवेत्सदा
क्रियाश्च शास्त्रनिर्दिष्टा रागद्वेषविवर्जिताः। कर्त्तव्याअन्वहंश्रद्धापुरस्कारेणशक्तितः

स्वजातिविहितानेवं लोकानाप्नोति मानवः।

क्लेशेन महता साध्वि! प्राजापत्यादिकान् क्रमात् ॥ ६० ॥

स्त्रियस्त्वेवं समस्तस्यनरैर्दुःखार्जितस्यवै। पुण्यस्यार्द्धापहारिण्यःपतिशुश्रूषयैवहि

नास्ति स्त्रीणां पृथग्यज्ञो न श्राद्धं नाप्युपोषितम्।

भर्तृशुश्रूषयैवैतान् लोकानिष्टान् व्रजन्ति हि ॥ ६२ ॥

तस्मात् साध्वि! महाभागे! पतिशुश्रूषणं प्रति।

त्वया मतिः सदा कार्या यतो भर्त्ता परा गतिः ॥ ६३ ॥

यद्वेदेभ्यो यच्च विप्रादिभ्यः सुखं दुर्लभमवाप्नोति ।
तस्याः पत्युः शुश्रूषया नारी भुङ्क्ते मद्गृहेऽपि ॥ ६४ ॥

पुत्र उवाच

तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा प्रतिपूज्य पतिव्रताम् । अनसूयापि विप्राणी इदमाह वचः

धन्यासि त्वं परं गुणैस्तदसि देवि सुव्रतिनी ।
यद्भर्तृनिकटस्थासि ! धन्या सर्वगुणा पुन ॥ ६६ ॥

आज्ञापयेनममार्गेण भामिनि पतिव्रतामतिः । सर्वाणि कार्याणि यत्तत्रैव तव च
पतिव्रतावादिह कर्तव्य एव यतस्त्वमसि । आदौ गुणवत्याश्च पतिव्रतायाश्च हि देवता
त्वं सर्वं ब्रूहि महाभागे ! प्रार्थना मम सम्प्रति ।
भार्याया किन्नु कर्तव्यमस्माकं त्वयैवाऽपि वा शुभे ॥ ६६ ॥

अनसूयोवाच

यत्त्वया महेन्द्रेण मानुषाणां च तु निशा । स्वधर्मवचनाद्भर्तुर्दिनमनिरूपणा
चान्तेऽहर्निशामन्या यथापरपितरपिण्डनाम् । अहर्नाशं मायानार्गच्छेत्सुतो मम
दिनाभावात् समस्तानामभावो यागकर्मणाम् ।
तदभावात् सुरा पुष्टिं नोपयान्ति तपस्विनि ! ॥ ७२ ॥
अहर्धेर्य समुच्छेदात्पुष्टेः सर्वकर्मणाम् । तदुच्छेदादमानुष्या जगदुच्छेदमेष्यति
तस्मादिच्छसि चेद्देवि जगदुद्धर्तुमापदः । प्रसीद साध्वि लोकानां पूर्ववद्वर्ततां रविः

ब्राह्मण्युवाच

माण्डव्येन महाभागे शप्तो भर्ता ममेश्वरः । सूर्योदये विनाशं त्वं प्राप्स्यसीत्यतिमन्युना

अनसूयोवाच

यदि वा रोचते भद्रे ! तन्मद्वचनादहम् । करोमि पूर्ववद्देहं भर्तारं च नवं तव ॥
मया हि सर्वं पार्श्वेणां माहात्म्यं वरवर्णिनि ! पतिव्रतानामाराध्य मितिसम्मानयामिते

पुत्र उवाच

तथेत्युक्ते तया सूर्यमाजुहाव तपस्विनी । अनसूयाऽर्घ्यमुद्यम्य दशरात्रे तदा निशि

ततो विवस्वान् भगवान्फुल्लपद्मारुणाकृतिः । शैलराजानमुदयमारुरोहोरुमण्डलः
समनन्तरमेवास्या भर्त्ता प्राणैर्व्ययुज्यत । पपात च महीपृष्ठे पतन्तं जगृहे च सा

अनसूयोवाच

नविषादस्त्वयाभद्रे !कर्त्तव्यःपश्यमेवलम् । पतिशुश्रूषयावाप्तं तपसः किञ्चिरेण(ते)मे
यथाभर्तृसमंनान्यमपश्यं पुरुषं क्वचित् । रूपतःशीलतोवुद्ध्यावाङ्माधुर्यादिभूषणैः
तेनसत्येन विप्रोऽयं व्याधिमुक्तःपुनर्युवा । प्राप्नोतुजीवितंभार्यासहायःशरदांशतम्
यथाभर्तृसमं नान्यमहं पश्यामि दैवतम् । तेन सत्येन विप्रोऽयं पुनर्जीवत्वनामयः
कर्मणा मनसा वाचा भर्त्तुराराधनंप्रति । यथाममोद्यमो नित्यंतथायंजीवतां द्विजः

पुत्र उवाच

ततोविप्रःसमुत्तस्थौव्याधिमुक्तःपुनर्युवा । स्वभाभिर्भासयन्वेश्मवृन्दारकइवाजरः
ततोऽपतत् पुष्पवृष्टिर्देववाद्यानि सस्वनुः । लेभिरे च मुदं देवाअनसूयामथाऽब्रुवन्

देवा ऊचुः

वरंवृणीष्वकल्याणिदेवकार्यंमहत्कृतम् । आदित्योदयसद्भावाद्वरंवरयसुव्रते !।
त्वया यस्मात्ततो देवा वरदास्ते तपस्विनि !॥ ८६ ॥

अनसूयोवाच

यदि देवाः प्रसन्ना मे पितामहपुरोगमाः । वरदा वरयोग्या च यद्यहं भवतां मता
तद्यान्तु मम पुत्रत्वं ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः । योगंच प्राप्नुयां भर्तृसहिता क्लेशमुक्तये

पुत्र उवाच

एवमस्त्वितितांदेवाब्रह्मविष्णुशिवादयः । प्रोक्ताजग्मुर्यथान्यायमनुमान्यतपस्विनीम्
इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे पितापुत्रसम्वादे अनसूयावरप्राप्तिवर्णनंनाम
षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ *

---

* इतःपरंमोहमयीस्थ वेङ्कटेश्वरयन्त्रालयमुद्रितपुराणग्रन्थे सप्तदशाष्टादशाध्यायौ षोडशेऽस्मिन्नध्यायेऽन्तर्भावंप्रापितौ मुद्रितौतत्वानुसन्धित्सुभिःसुधीभिरवलोकनीयम् ।

सप्तदशोऽध्यायः

दत्तात्रेयोत्पत्तिवर्णनम्

पुत्र उवाच

तत्र काले बहुतिथे द्वितीयो ब्रह्मणः सुतः । स्वभार्यां भगवानत्रिरनसूयामपश्यत

ऋतुस्नातां सुचार्वङ्गीं लोभनीयोत्तमाकृतिम् ।

सकामो मनसा भेजे स मुनिस्तामनिन्दिताम् ॥ २ ॥

तस्याभिपश्यतस्तां (अभिध्यायत) वै विकारो योऽभ्यजायत ।

तमेवोवाह पवनस्तिर्यगूर्ध्वं च वेगवान् ॥ ३ ॥

ब्रह्मरूपञ्च शुक्लाभं पतमानं समन्ततः । सोमरूपं रजोपेतं दिशस्तं जगृहुर्दश ॥

स सोमो मानसो जज्ञे तस्यामत्रेः प्रजापतेः । पुत्रः समस्तसत्वानामायुराराधव

तुष्टेन विष्णुनाप्यत्रेर्दत्तात्रेयो महामना । स्वशरीरात्समुत्पाद्य सत्वोद्रिक्तो द्विजोत्तम

दत्तात्रेय इति ख्यातः सोऽनुसूयास्तनं पपौ ।

विष्णुरेवाऽवतीर्णोऽसौ द्वितीयोऽत्रेः सुतोऽभवत् ॥ ७ ॥

सप्ताहात्प्रच्युतो मातुरुदरात्कुपितो यतः । हैहयेन्द्रमुपावृत्तमपराध्यन्तमुद्धतम् ॥

दृष्ट्वात्रौ कुपितः सद्यो दग्धुकामः सहैहयम् । गर्भवासमहायासदुःखामर्षसमन्वितः

दुर्वासास्तमसोद्रिक्तो रुद्रांशः समजायत । इति पुत्रत्रयं तस्या जज्ञे ब्रह्मेशवैष्णवम्

सोमो ब्रह्माभवद्विष्णुर्दत्तात्रेयोऽभ्यजायत । दुर्वासाः शङ्करो जज्ञे वरदानाद्दिवौकसाम्

सोमः स्वरश्मिभिः शीतैर्वीरुधौषधिमानवान् ।

आप्याययन् सदा स्वर्गे वर्तते स प्रजापतिः ॥ १२ ॥

दत्तात्रेयः प्रजा पाति दुष्टदैत्यनिबर्हणात् । शिष्टानुग्रहकृच्चापि ज्ञेयोंऽशः स तु वैष्णवः

निर्दहत्यवमन्तारं दुर्वासा भगवानजः । रौद्रं समाश्रित्य वपुर्दृष्ट्वोग्रो वाग्भिरुद्धतः ॥

सोमत्वं भगवानत्रिः पुनश्चक्रे प्रजापतिः । दत्तात्रेयोऽपि विषयान्योगस्थो बुभुजे हरिः

दुर्वासाः पितरं हित्वा मातरं चोत्तमं व्रतम् ।
उन्मत्ताख्यं समाश्रित्य परिबभ्राम मेदिनीम् ॥ १६ ॥

मुनिपुत्रवृतोयोगीदत्तात्रेयोऽप्यसङ्गिताम् । अभीप्स्यपमानःसरसिनिममज्जचिरंप्रभुः
तथापि तं महात्मानमतीव प्रियदर्शनम् । तत्यजुर्न कुमारास्ते सरसस्तीरमाश्रिताः
दिव्ये वर्षशते पूर्णे यदातेनत्यजन्तितम् । ततःप्रीत्यासरसस्तीरंसर्वेमुनिकुमारकाः

ततो दिव्याम्बरधरां सुरूपां सुनितम्बिनीम् ।
नारीमादाय कल्याणीमुत्ततार जलान्मुनिः ॥ २० ॥
स्त्रीसन्निकर्षाद्यद्येते परित्यक्ष्यन्ति मामिति ।
मुनिपुत्रास्ततो योगे स्थास्यामीति विचिन्तयन् ॥ २१ ॥

तथापि ते मुनिसुता न त्यजन्ति यदामुनिम् । ततः सहतयानार्यामद्यपानमथापिबत्
सुरापानरतं तेन सभार्यं तत्यजुस्ततः । गीतवाद्यादि वनिताभोगसंसर्गदूषितम् ॥

मन्यमाना महात्मानं तया सह बहिष्क्रियम् ।
नावाप दोषं योगीशो वारुणीं स पिबन्नपि ॥ २४ ॥
अन्तावसायिवेश्मान्तर्मातरिश्वावसन्निव ।
सुरां पिबन्सपत्नीकस्तपस्तेपे स योगवित् ॥
योगीश्वरश्चिन्त्यमानो योगिभिर्मुक्तिकाङ्क्षिभिः ॥ २५ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे दत्तात्रेयोत्पत्तिवर्णनंनामसप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

अष्टादशोऽध्यायः

दत्तात्रेयमहिमवर्णनम्

पुत्र उवाच

कस्यचित्त्वथ कालस्य कृतवीर्यात्मजोऽर्जुनः ।
कृतवीर्ये दिवं याते मन्त्रिभिः सपुरोहितैः ॥ १ ॥
पौरैश्चाऽऽत्माभिषेकार्थं समाहूतोऽब्रवीदिदम् ।
नाहं राज्यं करिष्यामि मन्त्रिणो नरकोत्तरम् ॥ २ ॥

यदर्थं गृह्यते शुल्कं तदनिष्पाद्यम् वृथा । पण्यानां द्वादशं भागं भूपालाय वणिग्जनः
दत्त्वाऽऽरक्षिभिर्मार्गे रक्षितो याति दस्युतः ।
गोपाश्च घृततक्रादेः षड्भागं च कृषीवलाः ॥ ४ ॥

दत्त्वाऽन्यद्यदि भूपेभ्यो भवेत्तत्तोऽधिकम् । पण्यादीनामशेषाणां वणिजो गृह्णतस्ततः
अग्निहोत्रं तपः सत्यं वेदानां चानुपालनम् । आतिथ्यं वैश्वदेवं च इष्टमित्यभिधीयते
वापीकूपतडागानि देवतायतनानि च । अन्नप्रदानमर्थिभ्यः पूर्तमित्यभिधीयते ॥
इष्टापूर्तविनाशाय तद्राज्ञश्चौरधर्मिणः ।
यद्यन्यैः पाल्यते लोकस्तद्वृत्त्यन्तरसंश्रितः ॥ ८ ॥

गृह्णतो बलिषड्भागं नृपतेर्नरको ध्रुवम् । निरूपितमिदं राज्ञः पूर्वैर्रक्षणवेतनम् ॥
अरक्षंश्चौरतामेति राजा नरकमश्नुते । तस्माद्यदि तपस्तप्त्वा प्राप्तो योगित्वमीप्सितम्
भुवः पालनसामर्थ्ययुक्त एकोऽस्मि पार्थिवः । पृथिव्यां शस्त्रभृत्स्वन्यः स्यादहं चैव हि संयुत
ततो भविष्ये नाऽन्यं करिष्ये पापमात्मनि ॥ १२ ॥

पुत्र उवाच

तस्य तदाशयं ज्ञात्वा मन्त्रिमध्ये स्थितोऽब्रवीत् ।
गर्गो नाम महाबुद्धिर्मुनिमुख्यो वयोऽधिकः ॥ १३ ॥

भक्त्या तु कृपयाविष्टस्तं तोषयितुमर्हति ॥ १० ॥

यद्येवं कर्तुकामस्त्वं राज्यं सम्यक् प्रशासितुम् ।

ततः शृणुष्व मे वाक्यं कुरुष्व च नृपात्मज !॥ ११ ॥

दत्तात्रेयं महाभागं सह्यद्रोणीकृताश्रमम् । तमाराधय भूपाल पाति यो भुवनत्रयम्

योगयुक्तं महाभागं सर्वत्र समदर्शिनम् । विष्णोरंशं जगद्धातुरवतीर्णं महीतले ॥

यमाराध्य सहस्राक्षः प्राप्तवान्पदमात्मनः । हृतं दुरात्मभिर्दैत्यैर्जघान च दितेःसुतान्

अर्जुन उवाच

कथमाराधितो देवैर्दत्तात्रेयः प्रतापवान् । कथञ्चापहृतं दैत्यैरिन्द्रत्वं प्राप वासवः

गर्ग उवाच

देवानां दानवानाञ्च युद्धमासीत्सुदारुणम् । दैत्यानामीश्वरे जम्भेदेवानाञ्चशचीपतौ

तेषाञ्च युध्यमानानां दिव्यः संवत्सरो गतः ।

ततो देवाः पराभूता दैत्या विजयिनोऽभवन् ॥ १७ ॥

विप्रचित्तिमुखैर्देवा दानवैस्ते पराजिताः । पलायनकृतोत्साहा निरुत्साहाद्विषज्जये

बृहस्पतिमुपागम्य दैत्यसैन्यवधेप्सवः । अमन्त्रयन्तसहितावालखिल्यैस्सहर्षिभिः

बृहस्पतिरुवाच

दत्तात्रेयं महात्मानमत्रेः पुत्रं तपोधनम् । विकृताचरणं भक्त्या सन्तोषयितुमर्हथ

सवो दैत्यविनाशाय वरदो दास्यते वरम् । ततो हनिष्यथसुरासहितादैत्यदानवान्

गर्ग उवाच

हन्तुं शक्ता न सन्देहो दत्तात्रेयप्रसादतः ।

इत्युक्तास्ते तदा जग्मुर्दत्तात्रेयाश्रमं सुराः ।

ददृशुश्च महात्मानं तं ते लक्ष्म्या समन्वितम् ॥ २२ ॥

उद्गीयमानं गन्धर्वैः सुरापानरतं मुनिम् । ते तस्य गत्वाप्रणतिमवदन्साध्यसाधनम्

चक्रुः स्तवं चोपजह्रुर्भक्ष्यभोज्यस्रगादिकम् ।

तिष्ठन्तमनुतिष्ठन्ति यान्तं यान्ति दिवौकसः ॥ २४ ॥

आराधयामासुरप स्थिनास्तिष्ठन्तमासने । सम्प्राहप्रणतान्देवान्दत्तात्रेयः किमिष्यते
मत्तो भवद्भिर्येनेय शुश्रूषा क्रियते मम ॥ २५ ॥

देवा ऊचु

दानवैर्मुनिशार्दूल ! जम्भाद्यैर्भुर्भुवादिकम् ।
हृतं त्रैलोक्यमाक्रम्य क्रतुभागाश्च कृत्स्नशः ॥ २६ ॥
तद्वधे कुरु बुद्धिं त्वं परित्राणाय मोऽनघ ! ।
त्वत्प्रसादादभीप्साम पुनः प्राप्तं त्रिविष्टपम् ॥ २७ ॥

दत्तात्रेय उवाच

मद्यासक्तोऽहमुच्छिष्टोनचैवाहजितेन्द्रियः । कथमिच्छथमत्तोऽपिदेवा शत्रुपराभयम्

देवा ऊचु

अनघस्त्वं जगन्नाथ न लेपस्तवविद्यते । विद्याक्षालनशुद्धान्तर्निविष्टज्ञानदीधिते !

दत्तात्रेय उवाच

सत्यमेतत्सुराविद्यामस्तिसमदर्शिन । अस्यास्तुयोषित सङ्गादहमुच्छिष्टतागतः
स्त्रीसम्भोगो हि दोषाय सातत्येनोपसेवित । एवमुक्तास्ततोदेवा पुनर्वचनमब्रुवन्

देवा ऊचु

अनघेयं द्विजश्रेष्ठ ! जगन्माता न दुष्यति ।
यास्ता विद्या तव विभो ! सर्वज्ञस्य हृदिस्थिता ॥ ३२ ॥

न दुष्यति जगन्नाथ ! तथेयमपवर्गिणी । यथांशुमालासूर्यस्य द्विजचण्डालसङ्गिनी

गर्ग उवाच

एवमुक्तस्ततोदेवैर्दत्तात्रेयोऽब्रवीदिदम् । प्रहस्यत्रिदशान्सर्वान् यद्येतद्भवता मतम्
तदाहूयासुरान् सर्वान् युद्धायसुरसत्तमाः । इहानयतमद्दृष्टिगोचरं मा विलम्ब्यताम्
मद्दृष्टिपातहुतभुक् प्रक्षीणबलतेजस । येननाशमशेषास्ते प्रयान्ति मम दर्शनात् ॥

गर्ग उवाच

तस्यतद्वचन श्रुत्वा दैवैर्दैत्या महाबला । आह्वायसमाहूता जग्मुर्देवगणाश्रमम्

ते हन्यमाना दैतेयैर्देवाःशीघ्रं भयातुराः । दत्तात्रेयाश्रमं जग्मुः समेताः शरणार्थिनः
तमेव विविशुर्दैत्याः कालयन्तो दिवौकसः । ददृशुश्चमहात्मानं दत्तात्रेयं मदालसम्

वामपार्श्वस्थितामिष्टामशेषजगतां शुभाम् ।
भार्य्याञ्चास्य सुचार्वङ्गीं लक्ष्मीमिन्दुनिभाननाम् ॥ ४० ॥
नीलोत्पलाभनयनां पीनश्रोणिपयोधराम् ।
सुदतीं मधुराभाषां सर्वैर्योषिद्गुणैर्युताम् ॥ ४१ ॥

तेतां दृष्ट्वाग्रतो दैत्याःसाभिलाषामनोभवम् । नशेकुरुद्धतंधैर्यान्मनसा वोढुमातुराः

त्यक्त्वा देवान् स्त्रियं तां तु हर्तुकामा हतौजसः ।
प्रेरितास्तेन पापेन संसक्तास्ते ततोऽब्रुवन् ॥ ४३ ॥

स्त्रीरत्नमेतत्त्रैलोक्ये सारं नोयदि वै भवेत् । कृतकृत्यास्ततःसर्वइतिनोभावितंमनः

तस्मात् सर्वे समुत्क्षिप्य शिविकायां सुरार्दनाः ।
आरोप्य स्वमधिष्ठानं नयाम इति निश्चिताः ॥ ४५ ॥

गर्ग उवाच

सानुरागास्ततस्ते तु प्रोक्त्वेत्थं परस्परम् ।
तस्य तां योषितं साध्वीं समुत्क्षिप्य स्मरार्दिताः ॥ ४६ ॥
शिविकायां समारोप्य सहिता दैत्यदानवाः ।
शिरःसु शिविकां कृत्वा स्वस्थानाभिमुखं ययुः ॥ ४७ ॥
दत्तात्रेयस्ततोदेवान् विहस्येदमथाऽब्रवीत् ।
दिष्ट्या वर्द्धथ (च हन्त) दैत्यानामेषा लक्ष्मीः शिरोगता ।
सप्तस्थानान्यतिक्रान्त्या नवमन्यमुपैष्यति ॥ ४८ ॥

देवा ऊचुः

कथयस्वजगन्नाथ ! केषुस्थानेष्ववस्थिता । पुरुषस्य फलंकिंवाप्रयच्छत्यथनश्यति

दत्तात्रेय उवाच

नृणां पदे स्थिता लक्ष्मीर्निलयं सम्प्रयच्छति ।

सवक्त्योश्च संस्थिता वस्त्रे तथा नानाविध वस्तु ॥ ५० ॥
कलत्रसुगृहस्थाक्रोडस्थापत्यदायिनी । मनोरथान् पूरयतिपुरुषाणांहृदिस्थिता
लक्ष्मीसंस्थिता श्रेष्ठा कण्ठस्था कण्ठभूषणम् ।
अभीष्टबन्धुदारैश्चतथाश्लेष प्रवासिभि ॥ ५२ ॥
सुष्टानुवाक्यलावण्यमाज्ञामवितथांतथा । मुखस्थिताकवित्वञ्चयच्छत्युदधिसम्भवा
शिरोगता सन्त्यजति ततोऽन्य याति चाश्रयम् ।
सेयं शिरोगता चैतान् (दैत्यान्) परित्यक्ष्यति साम्प्रतम् ॥ ५४ ॥
प्रगृह्याऽस्त्राणि वध्यन्तां तस्मादेते सुरारय ।
न भेतव्यं भृशस्चैते मयातितेजस कृता । परदाराभिमर्शाच्च दग्धपुण्याहतौजस
तस्मादेते विहन्यन्तां भवद्भिरविशङ्कितैः ।

गर्ग उवाच

ततस्तैर्विविधैरस्त्रैर्वध्यमाना सुरारय ।
मूर्ध्नि लक्ष्म्या समाक्रान्ता विनेशुरिति न श्रुतम् ॥ ५६ ॥
लक्ष्मीश्चोत्पत्य सम्प्राप्ता दत्तात्रेय महामुनिम् ।
स्तूयमानासुरैः सर्वैर्दैत्यनाशात् मुदान्विते ॥ ५७ ॥
प्रणिपत्य ततो देवा दत्तात्रेयं मनीषिणम् ।
जयकृष्ण जगन्नाथ ! दैत्यान्तक ! हर प्रभो ! ॥ ५८ ॥
नारायणाच्युतानन्त ! वासुदेवाक्षयाजर !।
त्वत्प्रसादात्पुनः लक्ष्मी राज्यं सम्पन्ननाशन !।
शार्ङ्गधन्वाब्जपाणे भक्तानां नित्यवत्सल !॥ ५९ ॥
(इतिस्तुत्वा नाकपृष्ठं यथापूर्वं गता सुरा)
नाकपृष्ठमनुप्राप्ता यथापूर्वं गतज्वरा ॥ ६० ॥
तथा त्वमपि राजेन्द्र 'यदीच्छसियथेप्सितम् । प्राप्तुमैश्वर्यमतुलन्तूर्णमाराधयस्वतम्
इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे दत्तात्रेयमाहात्म्यवर्णननामाष्टादशोऽध्याय ॥ १८ ॥

एकोनविंशोऽध्यायः

कार्त्तवीर्यार्जुनकृतदत्तात्रेयोपासनवर्णनम्

पुत्र उवाच

इत्यृषेर्वचनं श्रुत्वा कार्त्तवीर्यो नरेश्वरः। दत्तात्रेयाश्रमंगत्वा तं भक्त्या समपूजयत्

पादसम्वाहनाद्येन मध्वाद्याहरणेन च। स्रक्चन्दनादिगन्धाम्बुफलाद्यानयनेन च

तथान्नसाधनैस्तस्य उच्छिष्टापोहनेन च। परितुष्टो मुनिर्भूपं तमुवाच तथैव सः

यथैवोक्ताः पुरा देवा मद्यभोगादिकुत्सनम्।

स्त्री चेयं मम पार्श्वस्थेत्येतद्भोगाच्च कुत्सितम्॥ ४॥

तद्दैवाहं न मामेवमुपरोद्धुं त्वमर्हसि। अशक्तमुपकाराय शक्तमाराधयस्व भोः॥

जड़ उवाच

तेनैवमुक्तो मुनिना स्मृत्वागर्गवचश्चनत्। प्रत्युवाचप्रणम्यैनं कार्त्तवीर्यार्जुनस्तदा

अर्जुन उवाच

(देवस्त्वं हि पुराणो यः स्वां मायां समुपाश्रितः)

किं मां मोहयसे देव! स्वांमायांसमुपाश्रितः। अनघस्त्वंतथैवेयंदेवीसर्वभवारणिः

इत्युक्तः प्रीतिमान् देवोभूयस्तं प्रत्युवाच ह। कार्त्तवीर्यमहाभागंवशीकृतमहीतलम्

वरं वृणीष्व गुह्यं मे यत् त्वया समुदीरितम्।

तेन तुष्टिः परा जाता त्वय्यद्य मम पार्थिव!॥ ६॥

ये च मां पूजयिष्यन्ति गन्धमाल्यादिभिर्नराः।

मांसमद्योपहारैश्च मिष्टान्नैश्चाऽऽज्यसंयुतैः॥ १०॥

लक्ष्मीसमेतं गीतैश्चब्राह्मणानां तथार्च्चनैः। वाद्यैर्मनोरमैर्वीणावेणुशङ्खादिभिस्तथा

तेषामहं परां तुष्टिं पुत्रदारधनादिकम्। प्रदास्याम्यवधूतश्चहनिष्याम्यवमन्यताम्

स त्वं वरय भद्रं ते वरं यन्मनसेच्छसि। प्रसादसुमुखस्तेऽहं गुह्यनामप्रकीर्त्तनात्

कार्त्तवीर्य उवाच

यदि देव ! प्रसन्नस्त्वं तत्प्रयच्छर्द्धिमुत्तमाम् । यया प्रजाः पालयेऽहं न चाधर्ममवाप्नुयाम्
परानुस्मरणे ज्ञानमप्रतिद्वन्द्वतां रणे । सहस्रमन्तमिच्छामि बाहूनां लघुतागुणम् ॥
असङ्गा गतयः सन्तु शैलाकाशाम्बुभूमिषु । पातालेषु च सर्वेषु वधश्चाप्यधिकान्नरात्
तथोन्मार्गप्रवृत्तस्य सन्तु सन्मार्गदेशिकाः ।
सन्तु मेऽतिथयः श्लाघ्या वित्तदाने तथाक्षये ॥ १७ ॥
अनष्टद्रव्यता राष्ट्रे ममानुस्मरणेन च । त्वयि भक्तिर्ममैवास्तु नित्यमव्यभिचारिणी

दत्तात्रेय उवाच

यत्रैते कीर्त्तिताः सर्वे तान्वरान्नृप अवाप्स्यसि । मत्प्रसादाच्च भविता चक्रवर्त्तित्वमैश्वरम्

(पुत्र) जड उवाच

प्रणिपत्य ततस्तस्मै दत्तात्रेयाय सोऽर्जुनः । आनाय्य प्रकृतीः सम्यगभिषेकमगृह्णत
आगताश्चापि गन्धर्वास्तथैवाप्सरसां गणाः ।
ऋषयश्च वसिष्ठाद्या मेर्वाद्याः पर्वतास्तथा ॥ २१ ॥
गङ्गाद्याः सरितः सर्वाः समुद्राश्च तथा । प्लक्षाद्याश्च तथा वृक्षा दिशा वै वासवादयः
वासुकिप्रमुखा नागाश्चाभिषेकाय आगताः । तार्क्ष्याद्याः पक्षिणश्चैव पौरजानपदास्तथा
सम्भाराः सम्भृताः सर्वे दत्तात्रेयप्रसादतः । अभ्यषिच्यत तैर्विप्रैर्ब्रह्मादिभिः सह
नारायणेनाभिषिक्तो दत्तात्रेयस्वरूपिणा । समुद्रैश्च नदीभिश्च ऋषिभिश्चाभिषेचितः
आघोषयामास तदा स्थितो राज्ये स हैहयः ।
दत्तात्रेयात् परामृद्धिमवाप्यातिबलान्वितः ॥ २६ ॥
अद्यप्रभृति यः शस्त्रं मामृतेऽन्यो ग्रहीष्यति । हन्तव्यः स मया दस्युः परहिंसारतोऽपि वा
इत्याज्ञप्ते ततो राष्ट्रे कश्चिदायुधधृङ् नरः । तमृते पुरुषव्याघ्रं बभूवोरुपराक्रमम् ॥
स एव ग्रामपालोऽभूत् पशुपालः स एव च । क्षेत्रपालः स एवासीद् द्विजातीनां च रक्षिता
तपस्विनां पालयिता सार्थपालश्च सोऽभवत् ।
दस्युव्यालाग्निशस्त्रादिभयेष्वब्धौ निमज्जताम् ॥ ३० ॥

अन्यासुचैव मग्नानामापत्सुपरवीरहा। स एव संस्मृतः सद्यः समुद्धर्त्ताऽभवन्नृणाम्
अनष्टद्रव्यता चासीत्तस्मिन् शासतिपार्थिवे। तेनेष्टं बहुभिर्यज्ञैः समाप्तवरदक्षिणैः॥
तेनैवच तपस्तप्तं संग्रामेष्वतिचेष्टितम्। तस्यर्द्धिमतिमानञ्च दृष्ट्वाप्राहाङ्गिरा मुनिः॥

न नूनं कार्त्तवीर्यस्य गतिं यास्यन्ति पार्थिवाः।
यज्ञैर्दानैस्तपोभिर्वा संग्रामे चाऽतिचेष्टितैः॥ ३४॥
दत्तात्रेयाद्दिने यस्मिन् सम्प्राप्तर्द्धिं नरेश्वरः।
तस्मिंस्तस्मिन् दिने यागं दत्तात्रेयस्य सोऽकरोत्॥ ३५॥

तत्रैव चप्रजाः सर्वास्तस्मिन्नहनि भूपतेः। तस्यर्द्धिपरमां दृष्ट्वा यागञ्चक्रुःसमाधिना
इत्येतत्तस्य माहात्म्यं दत्तात्रेयस्य धीमतः। विष्णोश्चराचरगुरोरनन्तस्यमहात्मनः
प्रादुर्भावाः पुराणेषु कथ्यन्ते शार्ङ्गधन्वनः। अनन्तस्याप्रमेयस्य शङ्खचक्रगदाभृतः

एतस्य परमं रूपं यश्चिन्तयति मानवः।
स सुखी स च संसारात् समुत्तीर्णोऽचिराद्भवेत्॥ ३६॥

सदैव वैष्णवानाञ्च भक्त्याहंसुलभोऽस्मि भोः। इत्येवंयस्यवैवाचस्तंकथं नाश्रयेज्जनः
अधर्मस्य विनाशायधर्माचारार्थमेव च। अनादिनिधनोदेवः करोतिस्थितिपालनम्
तथैव जन्म चाख्यातमलर्कं कथयामि ते। तयाच योगः कथितोदत्तात्रेयेण तस्यवै

पितृभक्तस्य राजर्षेरलर्कस्य महात्मनः॥ ४२॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे दत्तात्रेयोपाख्यानवर्णनंनामैकोनविंशोऽध्यायः॥ १९॥

विंशोऽध्यायः

शत्रुजिदुपाख्याने कुवलयाश्वीयवर्णनम्

(पुत्र) जड उवाच

प्रागभूत्स महावीर्यः शत्रुजिन्नाम पार्थिवः । तुतोष यस्य यज्ञेषु सोमाप्यायितधीः पुरन्दरः ॥
तस्यात्मजो महावीर्यो बभूवारिविदारणः ।
बुद्धिविक्रमलावण्यैर्गुरुशक्राश्विभिः समः ॥ २ ॥
स समानवयोबुद्धिसत्त्वविक्रमचेष्टितैः । नृपपुत्रो नृपसुतैर्नित्यमास्ते समावृतः ॥
कदाचिच्छास्त्रसम्भारविवेककृतनिश्चयः । कदाचित् काव्यसंलापगीतनाटकसम्भवैः
तथैवाक्षविनोदैश्च शस्त्रास्त्रविनयेषु च ।
योग्यानि गजनागाश्वस्यन्दनाभ्यासतत्परः ॥ ५ ॥
रेमे नरेन्द्रपुत्रोऽसौ नरेन्द्रतनयैः सह । यथैव हि दिवा तद्वद्रात्रावपि मुदा युतः ॥
तेषां सुक्रीडतां तत्र द्विजभूपविशां सुताः । समानवयसः प्रीत्यारन्तुमायान्त्यनेकशः
कस्यचित्त्वथ कालस्य नागलोकान्महीतलम् ।
कुमारावागतौ नागौ पुत्रावश्वतरस्य तु ॥ ८ ॥
ब्रह्मरूपप्रतिच्छन्नौ तरुणौ प्रियदर्शनौ । तौ तैर्नृपसुतैः सार्द्धं तथैवान्यैर्द्विजन्मभिः
विनोदैर्विविधैस्तत्र तस्थतुः प्रीतिसंयुतौ । सर्वे च ते नृपसुतास्ते च ब्रह्मविशां सुताः
नागराजात्मजौ तौ च स्नानसंवाहनादिकम् ।
वस्त्रगन्धानुसंयुक्ताश्चक्रुर्भोगभुजि क्रियाम् ॥ ११ ॥
अहन्यहन्यनुप्राप्तौ तौ नागकुमारकौ । आजग्मतुर्मुदा युक्तौ प्रीत्या सूनोर्महीपतेः
स च ताभ्यां नृपसुतः परं निर्वाणमाप्तवान् । विनोदैर्विविधैर्हास्यसंलापादिभिरेव च
विना ताभ्यां न बुभुजे न सस्नौ न पपौ मधु । न रराम न जग्राह शास्त्राण्यात्मगुणवृद्धये
रसातले च तौ रात्रिं विना तेन महात्मना ।

निःश्वासपरमौ नीत्वा जग्मतुस्तं दिने दिने ॥ १९ ॥

मर्त्यलोके पराप्रीतिर्भवतोः केनपुत्रकौ । सहेति पप्रच्छ पिता तावुभौ नागदारकौ

दृष्टयोरत्र पाताले बहूनि दिवसानि मे । दिवा रजन्यामेवोभौ पश्यामि प्रियदर्शनौ

जड उवाच

इति पित्रा स्वयंपृष्टौ प्रणिपत्य कृताञ्जली । प्रत्यूचतुर्महाभागावुरगाधिपतेः सुतौ

पुत्रावूचतुः

पुत्रःशत्रुजितस्तात ! नाम्नाख्यातऋतध्वजः । रूपवानार्जवोपेतः शूरो मानीप्रियंवदः

अनावृत (पृष्ट) कथोवाग्मी विद्वान् मैत्रो गुणाकरः ।

मान्यमानयिता धीमान् श्रीमान् विनयभूषणः ॥ २० ॥

तस्योपचारसम्प्रीतिसम्भोगापहृतं मनः । नागलोकेभुवोलोकेन रतिं विन्दते पितः

तद्वियोगेन नस्तात! निशापातालशीतलाम् । परितापायतत्सङ्गादाह्लादायरविर्दिवा

पितोवाच

पुत्रः पुण्यवतोधन्यःसयस्यैवंभवद्विधैः । परोक्षस्यापिगुणिभिःक्रियतेगुणकीर्तनम्

सन्ति शास्त्रविदोऽशीलाः सन्ति मूर्खा सुशीलिनः ।

शास्त्रशीले समं मन्ये यस्मिन् धन्यतरं तु तम् ॥ २४ ॥

यस्य मित्रगुणान् मित्राण्यमित्राश्च पराक्रमम् ।

कथयन्ति सदा सत्सु पुत्रवांस्तेन वै पिता ॥ २५ ॥

तस्योपकारिणः कच्चिद्भवद्भ्यामभिवाञ्छितम् ।

किञ्चिन्निष्पादितं वत्सौ! परितोषाय चेतसः ॥ २६॥

सधन्योजीवितंतस्यतस्य जन्मसुजन्मनः । यस्यार्थिनोनविमुखामित्रानर्थेच दुर्बलः

मद्गृहे यत्सुवर्णादि रत्नंवाहनमासनम् । यच्चान्यत्प्रीतयेतस्यतद्देयमविशङ्कया

धिक् तस्य जीवितं पुंसो मित्राणामुपकारिणाम् ।

प्रतिरूपमकुर्वन् यो जीवामीत्यवगच्छति ॥ २९ ॥

उपकारंसुहृद्वर्गे योऽपकारंच शत्रुषु । नृमेघो वर्षति प्राज्ञस्तस्येच्छन्ति सदोन्नतिम्

पुत्रावूचतु

किं तस्यह तस्यस्यवनुंशयेन केनचित् । यस्यमयापिभोगहेसर्वकामे समर्पिता यानि रत्नानि तद्गृहे पाताले तानि न पुनः । पादनासनयानानिभूषणान्यम्बराणि धिष्ठानं तव यथास्ति तदन्यत्र न विद्यते । प्राणानामप्यमी तात ! सर्वस्तेदेहगम एव तत्त्यागिनि वर्तस्यममाध्यंतया भोगनम् । हिरण्यगर्भगोविन्दशर्वादीनांमध्यगाहे

पितोवाच

तथापि श्रोतुमिच्छामि तस्य यत्कार्यमुत्तमम् ।
असाध्यमथवा साध्यं किं वाऽसाध्यं विपश्चिताम् ॥ ३१ ॥

इत्यथममरशस्य तस्पृच्छ्यस्य मानवा । प्रयान्ति चाप्त्रिलांयान्सहृदयेष्वपसायिन

नाऽधिष्ठानं तथाऽगम्यं नाऽप्राप्यं दिवि चेह वा ।
उद्यतानां मनुष्याणां यतचित्तेन्द्रियात्मनाम् ॥ ३७ ॥

योजनानामसहस्राणिगच्छन्पातिपिपीलिका । अगच्छन्वैनतेयोऽपिपादमेकनगच्छति श्रूयते च परमोच्चं स्थानं यत् प्राप्तवान् ध्रुवः । उत्तानपादनृपतेः पुत्रस्तन्भूमिगोचरः तत्कथ्यतां महाभाग ! कार्यवान्येनपुत्रकौ । सम्भूपाल्पुत्र साधुर्येनानृण्यमवाप धाम

पुत्रावूचतु

तेनाख्यानमिदं तात ! नृपपुत्रेण महात्मना । कौमारके यथा तस्य वृत्त सद्वृत्तशालिनः

तस्य (तन्तु) शत्रुजितं तात ! (तात)पूर्वं कश्चिद् द्विजोत्तम ।
गालवोऽभ्यागमद्धीमान् गृहीत्वा तुरगोत्तमम् ॥ ४२ ॥
प्रत्युवाच च राजानं समुपेत्याऽऽश्रम मम ।
कोऽपि दैत्याधमो राजन् ! विध्वंसयति पापकृत् ॥ ४३ ॥

तत्तद्रूपं समास्थाय सिंहेभवनचारिणाम् । अन्येषाञ्चाल्पकायानामहर्निशमकारणात् समाधिध्यानयुक्तस्य मौनव्रतरतस्य च । तथाकरोतिविघ्नानियथा नेच्छामिपार्थिव दग्धु कोपाग्निनासद्य समर्थस्त्वहमनु । दुःखार्जितस्यतपसोव्ययमिच्छामिपार्थिव एकदातुमयाराजन्नतिनिर्विण्णचेतसा । तत्क्लेशितेननिश्वासोनिरीक्ष्यासुरमुज्झित

ततोऽम्बरतलात् सद्यः पतितोऽयं तुरङ्गमः ।
वाक् चाऽशरीरिणी प्राह नरनाथ ! शृणुष्व तत् ॥ ४८ ॥

अश्रान्तः सकलं भूमेर्वलयं तुरगोत्तमः । समर्थः क्रान्तुमर्केण तवायं प्रतिपादितः
पातालाम्बरतोयेषु न चास्य विहतागतिः । समस्तदिक्षुव्रजतो न भङ्गः पर्वतेष्वपि
यतो भूवलयं सर्वमश्रान्तोऽयंचरिष्यति । ततःकुवलयोनाम्नाख्यातिंलोकेप्रयास्यति
क्लिश्यत्यहर्निशं पापो यश्च त्वां दानवाधमः । तमप्येनं समारुह्यद्विजश्रेष्ठ!हनिष्यति
शत्रुजिन्नामभूपालस्तस्य पुत्रऋतध्वजः । प्राप्यैतदश्वरत्नञ्च ख्यातिमेतेन यास्यति

सोऽहं त्वां समनुप्राप्तस्तपसो विघ्नकारिणम् ।
तं निवारय भूपाल ! भागभाङ्नृपतिर्यतः ॥ ५४ ॥

तदेतदश्वरत्नं ते मया भूप ! निवेदितम् । पुत्रमाज्ञापयतथा यथाधर्मो न लुप्यते ॥
स तस्य वचनाद्राजा तं वै पुत्रमृतध्वजम् । तमश्वरत्नमारोप्य कृतकौतुकमङ्गलम्
अप्रेषयत धर्मात्मा गालवेन समं तदा । स्वमाश्रमपदं सोऽपि तमादाय ययौ मुनिः

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे पितापुत्रसम्वादे कुवलयाश्वीयवर्णनं नाम
विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

एकविंशोऽध्यायः

नागराजतत्पुत्रसम्वादेऋतध्वजविक्रमवर्णनम्

पितोवाच

गालवेनसमं गत्वा नृपपुत्रेणतेन यत् । कृतंतत्कथ्यतांपुत्रौ! विचित्रायुवयोः कथाः

पुत्रावूचतुः

स गालवाश्रमे रम्ये तिष्ठन्गोपालनन्दनः । सर्वविघ्नोपशमनं चकार ब्रह्मवादिनाम्
वीरं कुवलयाश्वं तं वसन्तं गालवाश्रमे । मदावलेपोपहतो नाजानाद्दानवाधमः ॥ २

ततस्तं गालवं विप्रं सन्ध्योपासनतत्परम् । शौकरं रूपमास्थाय प्रधर्षयितुमागतम्
मुनिशिष्यैरथोत्क्रुष्टे शीघ्रमारुह्य तं हयम् । अन्वधावदसौ तं वै नृपपुत्रः शरासनी
आजघान च बाणेन चन्द्रार्धाकारवर्चसा । आकृष्य बलवच्चापञ्चारुचित्रोपशोभितम्

नाराचाभिहतः शीघ्रमात्मत्राणपरो मृगः ।
गिरिपादपसम्बाधां सोऽन्वधावन्महाटवीम् ॥ ७ ॥

तमन्वधावद्वेगेन तुरगोऽसौ मनोजवः । चोदितो राजपुत्रेण पितुरादेशकारिणा ॥
अतिक्रम्याऽथ वेगेन योजनानि सहस्रशः । धरण्या विवृते गर्ते निपपात लघुक्रमः
तस्यानन्तरमेवाऽश्वः सोऽप्यश्वी नृपतेः सुतः । निपपात महागर्ते तिमिरौघसमावृते

ततो नादृश्यत मृगः स तस्मिन् राजसूनुना ।
प्रकाशञ्च स पातालमपश्यत्तत्र पार्थिवः ॥ ११ ॥

ततोऽपश्यत् स सौवर्णप्रासादशतसङ्कुलम् । पुरन्दरपुरप्रख्यं पुरं प्राकारशोभितम्

तत् प्रविश्य स नापश्यत्तत्र कञ्चिन्नरं पुरे ।
भ्रमता च ततो दृष्टा तत्र योषित्त्वरान्विता ॥ १३ ॥
सा पृष्टा तेन तन्वङ्गी प्रस्थिता कस्य वा ।
नोवाच किञ्चित् प्रासादमारुरोह च भामिनी ॥ १४ ॥

सोऽप्यश्वमेकतो बद्ध्वा तामेवानुससार वै । विस्मयोत्फुल्लनयनो निःशङ्को नृपतेः सुतः

ततोऽपश्यत् सुविस्तीर्णे पर्यङ्के सर्वकाञ्चने ।
निषण्णां कन्यकामेकां कामयुक्तां रतीमिव ॥ १६ ॥
विस्पष्टेन्दुमुखीं सुभ्रूं पीनश्रोणिपयोधराम् ।
बिम्बाधरोष्ठीं तन्वङ्गीं नीलोत्पलविलोचनाम् ॥ १७ ॥
रक्ततुङ्गनखीं श्यामां मृद्वीं ताम्रकराङ्घ्रिकाम् ।
करभोरुं सुदशनां नीलसूक्ष्मस्थिरालकाम् ॥ १८ ॥

तां दृष्ट्वा चारुसर्वाङ्गीमनङ्गागलतामिव । सोऽमन्यत पार्थिवसुतस्तां रसातलदेवताम्
सा च दृष्ट्वैव तं बाला नीलकुञ्चितमूर्धजम् । पीनोरुस्कन्धबाहुं तमस्तमदनं शुभा

उत्तस्थौ च महाभागा चित्तक्षोभमवाप सा।
लज्जाविस्मयदैन्यानां सद्यस्तन्वी वशं गता ॥ २१ ॥
कोऽयंदेवोनुयक्षो वा गन्धर्वो वोरगोऽपिवा। विद्याधरो वासंप्राप्तःकृतपुण्यरतिर्नरः
एवंविचिन्त्यबहुधानिःश्वस्य च महीतले। उपविश्यततोभेजे सामूर्च्छांमदिरेक्षणा
सोऽपि कामशराघातमवाप्यनृपतेः सुतः। तांसमाश्वासयामास न भेतव्यमितिब्रुवन्
साच स्त्री यातदादृष्टा पूर्वं तेनमहात्मना। तालवृन्तमुपादाय पर्य्यवीजयदाकुला ॥ २
समाश्वास्य तदा पृष्टा तेन सम्मोहकारणम्।
किञ्चिल्लज्जान्विता बाला तस्याः सख्यं न्यवेदयत् ॥ २६ ॥
साचास्मै कथयामास नृपपुत्राय विस्तरात्। मोहस्य कारणं सर्वं तद्दर्शनसमुद्भवम्
यथा तया समाख्यातं तद्वृत्तान्तञ्च भामिनी ॥ २७ ॥

सख्यु (स्त्र्यु) रुवाच

विश्वावसुरिति ख्यतो दिवि गन्धर्वराट् प्रभो!।
तस्येयमात्मजा सुभ्रूर्नाम्ना ख्याता मदालसा ॥ २८ ॥
वज्रकेतोः सुतश्चोग्रोदानवोऽरिविदारणः। पातालकेतुर्विख्यातः पातालान्तरसंश्रयः
तेनेयमुद्यानगता कृत्वा मायां तमोमयीम्। अपहृत्य मया हीना बालानीतादुरात्मना
आगामिन्यां त्रयोदश्यामुद्वक्ष्यतिकिलासुरः। सतुनार्हतिचार्वङ्गींशूद्रोवेदश्रुतीमिव
अतीते च दिने बालामात्मव्यापादनोद्यताम्।
सुरभिः प्राह नायं त्वां प्राप्स्यते दानवाधमः ॥ ३२ ॥
मर्त्यलोकमनुप्राप्तं यएनं भेत्स्यते शरैः। सते भर्त्ता महाभागे! अचिरेण भविष्यति
अहं चास्याः सखी नाम्ना कुण्डलेति मनस्विनी।
सुता विन्ध्यवतः पत्नी वीर! पुष्करमालिनः ॥ ३४ ॥
हते भर्त्तरि शुम्भेन तीर्थात्तीर्थमनुव्रता। चरामि दिव्यया गत्या परलोकार्थमुद्यता
पातालकेतुर्दुष्टात्मावाराहंवपुरास्थितः। केनापिविद्धोबाणेन मुनीनांत्राणकारणात्
तथाहं तत्त्वतोऽन्विष्यत्वरितासमुपागता। सत्यमेव सकेनापिताडितोदानवाधमः

इत्यग्रमुख्यांसमगमन् कारणं यच्छुश्रूषनम् । त्वयि विज्ञातिमिच्छामि दर्शनादेव मानद
देवपुत्रोऽसि किं वा त्वमादित्यगुणवानिति । मार्यावान्यप्यविदितादेनपिद् महानय
एतन्मन्नृपात्मजोऽसौ महाननिमिषमानत । यावद्रोषश्च मन्यद्भुतु गर्भेपोषमोऽस्यते
त्वन्मम्या हृदयं यान्ति भर्ता यस्यो भविष्यति ।
यापर्ध्रायमनो दुःखं सुरभ्या नान्यथा वचः ॥ ५१ ॥
अहं त्वस्याः प्रभो ! प्रीत्या दुःखितास्त्र समागता ।
प्रभो विशेषो नैवाऽस्ति त्वमर्थाभिरुद्दृतवो ॥ ५२ ॥
यदेतामिमां धीरं पतिमाप्नोति शोभना । ततस्तपस्यहं कुर्यामिर्यसिकेनचेतसा
त्व पुत्रोपाविमर्थमामसस्योऽप्रमशमनं । देवोऽस्योऽनुगम्यर्च यतन विस्रतेऽपिया
नक्षत्रमानुगणतिर्मेद्रमातुरं वपुः । तस्यमात्याहि कथितं यथैवाऽपितथ मया
कुवलयाश्व उवाच
यन्मांपृच्छसि भद्रे कस्त्वविद्यामागत । तच्छृणुष्वामलप्रज्ञे कथयाम्यादितस्तव
शत्रुजित पुत्र पिता सम्प्रेषित शुभे । मुनिरक्षार्थमुद्दिश्य गाल्याश्रममागत ॥
कुर्वतो मम रक्षां मुनीनां धर्मचारिणाम् ।
विघ्नार्थमागत कोऽपि शौकरं रूपमास्थितः ॥ ५८ ॥
मया स विद्धोबाणेनचन्द्रार्धाकारवर्चसा । अपक्रान्तोऽतिवेगेन तमन्वनुगतोहयी
पपात सहसा गर्ते समाश्वोऽश्वसमाकृ । सोऽहमश्व समारूढस्तमस्येष परिभ्रमन्
प्रकाशमासादितवान् दृष्टा चागता मया । पृष्टयाश्च न मे किञ्चिद्दत्तवत्यारुत्तमुत्तरम्
त्वां चैवानुप्रविष्टोऽहमिमप्रासादमुत्तमम् । इत्येतत् कथितं सत्यं न देवोऽहं न दानवः
न पन्नगो न गन्धर्वं किन्नरो वा शुचिस्मिते । समस्तायूज्यपक्षाचे देवायामसकुण्डले
मनुष्योऽस्मि विशङ्का ते न कर्त्तव्याऽत्र कर्हिचित् ॥ ७३ ॥
पुत्रावूचतु
ततः प्रहृष्टा सा तन्व्यासखीवदनमुत्तमम् । लज्जाजडं चाक्षमाणा किञ्चिन्नोवाच भामिनी
सा सखी पुनरप्येन प्रहृष्टा प्रत्युवाच ह । यथावत् कथितनेन सुरम्या वचनानुगम्
२

कुण्डलोवाच

वीर!सत्यमसन्दिग्धं भवताभिहितंवचः। नान्यत्रहृदयंत्वस्या दृष्ट्वास्यैंव्यंप्रयास्यति
चन्द्रमेवाधिकाकान्तिःसमुपैतिरविप्रभा। भूतिर्धन्यंधृतिर्धीरंक्षान्तिरभ्येतिचोत्तमम्

त्वयैव विद्धोऽसंदिग्धं स पापो दानवाधमः।
सुरभिः सा गवां माता कथं मिथ्या वदिष्यति॥ ५८॥

तद्धन्येयंसभाग्या चत्वत्सम्बन्धंसमेत्यवै। कुरुष्ववीर!यत्कार्यं विधिनैवसमाहितम्

पुत्रावूचतुः

परवानहमित्याह राजपुत्रः सतां पितः!। साचतंचिन्तयामास तुम्बुरुं तत्कुले गुरुम्
सचापितत्क्षणात्प्राप्तःप्रगृहीतसमित्कुशः। मदालसायाःसंप्रीत्याकुण्डलागौरवेणच

प्रज्वाल्य पावकं हुत्वा मन्त्रवित् कृतमङ्गलाम्।
वैवाहिकविधिं कन्यां प्रतिपाद्य यथागतम्॥ ६२॥

जगाम तपसेधीमान् स्वमाश्रमपदं तदा। साचाहतां सखींबालांकृतार्थास्मिवरानने
संयुक्काममुना दृष्ट्वा त्वामहं रूपशालिनीम्। तपस्तप्स्येऽहमतुलं निर्व्यलीकेनचेतसा
तीर्थाम्बुधौतपापा च भवित्री नेदृशीयथा। तंचाह राजपुत्रं सा प्रश्रयावनता तदा॥

गन्तुकामा निजसखीस्नेहविक्लवभाषिणी।

कुण्डलोवाच

पुम्भिरप्यमितप्रज्ञो नोपदेशो भवद्विधे। दातव्यः किमुत स्त्रीभिरतोनोपदिशामिते

किं त्वस्यास्तनुमध्यायाः स्नेहाकृष्टेन चेतसा।
त्वया विश्रम्भिता चास्मि स्मारयाम्यरिसूदन!॥ ६७॥
भर्त्तव्या रक्षितव्या च भार्या हि पतिना सदा।
धर्मार्थकामसंसिद्ध्यै भार्या भर्त्तुः सहायिनी॥ ६८॥

यदा भार्या च भर्त्ता च परस्परवशानुगौ। तदा धर्मार्थकामानांत्रयाणामपिसङ्गतम्
कथं भार्यामृते धर्ममर्थं वापुरुषः प्रभो!। प्राप्नोति काममथवातस्यांत्रितयमाहितम्
तथैव भर्त्तारमृते भार्या धर्मादिसाधने। न समर्था त्रिवर्गोऽयं दाम्पत्यंसमुपाश्रितः

देवतापितृभृत्यानामतिथीनाञ्च पूजनम् । न पुंभि शक्यते कर्त्तुं मृते भार्यां नृपात्मज
प्राप्तोऽपि चार्थो मनुजैरानीतोऽपि निजं गृहम् ।
क्षयमेति विना भार्यां कुभार्याश्रयेऽपि वा ॥ ७३ ॥
कामस्तु तस्य नैवास्ति प्रत्यक्षेणोपलक्ष्यते । दम्पत्योः सहधर्मेण त्रयीधर्ममवाप्नुयात्
पुत्राणां योनिरन्या वै नान्यतो भार्यया विना ।
पितृन्पुत्रैस्तथैवान्नसाधनैरतिथीश्वर । पूजाभिरमरांस्तद्वत् साध्वीं भार्यां नरोऽपि
स्त्रियाश्चापि विना भर्त्रा धर्मकामार्थसन्ततिः ।
नैव तस्मात्त्रिवर्गोऽयं दाम्पत्यमधिगच्छति ॥ ७६ ॥
एतन्मयोक्तं युवयोर्गच्छामि च यथेप्सितम् । वर्द्धस्वमनया सार्द्धं धनपुत्रसुखायुष
पुत्राय्.घतु
इत्युक्त्वा सा परिष्वज्य स्वसखीं तं नमस्य च ।
जगाम दिव्यया गत्या यथाभिमतमात्मनः ॥ ७८ ॥
सोऽपि शत्रुजित पुत्रस्तामारोप्य तुरङ्गमम् । निष्क्रान्तुकाम पातालाद्विज्ञातो दनुसम्भवै
ततस्तै सहसोत्कृष्टं ह्रियते ह्रियतेऽति वै । कन्यारत्नमथ प्राप्तं दिव पातालकेतुनः
ततः परिघनिस्त्रिंशगदाशूलशरायुधम् । दानवानां बलं प्राप्तं सह पातालकेतुना ।
तिष्ठ तिष्ठेति जल्पन्तस्ते तदा दानवोत्तमाः ।
शरवर्षैस्तथा शूलैर्ववृषुर्नृपनन्दनम् ॥ ८२ ॥
स च शत्रुजितः पुत्रस्तदस्त्राण्यतिवीर्यवान् ।
चिच्छेद शरजालेन प्रहसन्निव लीलया ॥ ८३ ॥
क्षणेन पातालतलमसिशक्तिऋष्टिसायकैः । छिन्नैः सञ्छन्नमभवत्तत्त्वष्टजशरोत्करैः
ततोऽस्य त्वाष्ट्रमादाय चिक्षेप प्रति दानवान् । तेन ते दानवाः सर्वे सह पातालकेतुना
ज्वालामालातितीव्रेण स्फुरद्दस्थिचया कृताः ।
निर्दग्धाः कापिलं तेजः समासाद्येव सागराः ॥ ८५ ॥
ततः स राजपुत्रोऽभिनिहत्यासुरसत्तमान् । स्त्रीरत्नेन समं तेन समागच्छत्पितुः पुरम्

प्रणिपत्य च तत् सर्वं सतु पित्रेन्यवेदयत्। पातालगमनंचैवकुण्डलायाश्चदर्शनम्
तद्वन्मदालसाप्राप्तिं दानवैश्चापि सङ्गरम। वधश्च तेषामस्त्रेण पुनरागमनं तथा॥
इतिश्रुत्वापिता तस्य चरितंचारुचेतसः। प्रीतिमानभवच्चेदंपरिष्वज्याहचात्मजम्
सत्पात्रेण त्वया पुत्र! तारितोऽहं महात्मना। भयेभ्योमुनयस्त्रातायेनसद्धर्मचारिणः
मत्पूर्वैः ख्यातमानीतं मया विस्तारितं पुनः।
पराक्रमवता वीर! त्वया तद्वहुलीकृतम्॥ ९२॥
यदुपात्तं यशः पित्रा धनं वीर्यमथापि वा। तन्न हापयते यस्तुस नरोमध्यमःस्मृतः
तद्वीर्यादधिकं यस्तु पुनरन्यत्स्वशक्तितः। निष्पादयति तंप्राज्ञाःप्रवदन्तिनरोत्तमम्
यः पित्रा समुपात्तानि धनवीर्ययशांसि वै। न्यूनतां नयतिप्राज्ञास्तमाहुःपुरुषाधमम्
तन्मया ब्राह्मणत्राणं कृतमासीद्यथा त्वया। पातालगमनं यच्च यच्चासुरविनाशनम्
एतदप्यधिकं वत्स तेन त्वंपुरुषोत्तमः। तद्धन्योऽस्म्यथ वानत्वमहमेवगुणाधिकम्
त्वां पुत्रमीदृशं प्राप्य श्लाघ्यः पुण्यवतामपि।
न स पुत्रकृतां प्रीतिं मन्ये प्राप्नोति मानवः॥ ९८॥
पुत्रेण नातिशयितो यः प्रज्ञादानविक्रमैः। धिग्जन्म तस्ययःपित्रालोकेविज्ञायतेनरः
यः पुत्रात् ख्यातिमभ्येति तस्य जन्म सुजन्मनः।
आत्मना ज्ञायते धन्यो मध्यः पितृपितामहैः॥ १००॥
मातृपक्षेण मात्रा च ख्यातिमेति नराधमः। तत् पुत्रधनवीर्यैस्त्वं विवर्द्धस्वसुखेनच
गन्धर्वतनया चेयं मा त्वया वै वियुज्यताम्। इतिपित्रावहुविधंप्रियमुक्तःपुनः पुनः
परिष्वज्य स्वमावासं सभार्यः स विसर्जितः। स तयाभार्ययासार्द्धं रेमेतत्रपितुःपुरे
अन्येषु च तथोद्यानवनपर्वतसानुषु। श्वश्रूश्वशुरयोः पादौ प्रणिपत्य च सा शुभा॥
प्रातः प्रातस्ततस्तेन प्रणिपत्य (सहरेमे) सुमध्यमा॥ १०४॥
इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे कुवलयाश्वीये मदालसापरिणय-
वर्णनंनामैकविंशोऽध्यायः॥ २१॥

द्वाविंशोऽध्यायः

मदालसाप्राणवियोगवर्णनम्

पुत्रा ऊचुः

ततः काले बहुतिथे गते राजा पुनः सुतम् । प्राह गच्छाशु विप्राणां त्राणाय चर मेदिनी
अश्वमेनं समारुह्य प्रातः प्रातर्दिने दिने । आबाधा द्विजमुख्यानामन्वेष्टव्या सदैव हि

दुर्वृत्ताः सन्ति शतशो दानवाः पापयोनयः (पापबुद्धयः) ।

तेभ्यो न स्याद्यथा बाधा मुनीनां त्वं तथा कुरु ॥ ३ ॥

स यथोक्तस्तदा पित्रा तथाचक्रे नृपात्मजः । परिक्रम्य महीं सर्वां ववन्दे चरणौ पितुः
अहन्यहन्यनुप्राप्ते पूर्वाह्णे नृपनन्दन । ततश्च शेषं दिवसं तया रेमे सुमध्यया ॥ ५ ॥
एकदा तु चरन् सोऽथ ददर्श यमुनातटे । पातालकेतोरनुजं तालकेतुं कृताश्रमम् ।

मायावी दानवः सोऽथ मुनिरूपं समास्थितः ।

स प्राह राजपुत्रं तं पूर्ववैरमनुस्मरन् ॥ ७ ॥

राजपुत्र ! ब्रवीमि त्वां तत्कुरुष्व यदिच्छसि । भवतेप्रार्थनाभङ्गः काय सत्यप्रतिश्रव !
यक्ष्ये यज्ञेन धर्माय कर्तव्याश्च तथेष्टयः । चितयस्तत्र कर्तव्या नास्ति दक्षिणा यतः

ततः प्रयच्छ मे वीर ! हिरण्यार्थं स्वभूषणम् ।

यदेतत् कण्ठलग्नं ते रक्ष चेमं ममाऽऽश्रमम् ॥ १० ॥

यावदन्तर्जले देवं वरुणं यादसां पतिम् । वैदिकैर्वारुणैर्मन्त्रैः प्रजानां पुष्टिहेतुकैः

अभीष्टूय त्वरायुक्तः समभ्येमीतिवादिनम् ।

तं प्रणम्य ततः प्रादात् स तस्मै कण्ठभूषणम् ॥ १२ ॥

प्राह चैनं भवान् यातु निर्व्यलीकेन चेतसा । स्थातव्यमितावदत्रैव त्वयाश्रमसमीपतः
तावदेतन्महाभाग ! यावदागमनं मम । न तेऽत्र कश्चिदाबाधां करिष्यति मयि स्थिते
विश्रब्धश्चाश्रमं विप्र चर त्वं ! कुरुष्व त्वं (त्वमुनिश्रेष्ठ कुरुष्व च) मनोगतम् ॥ १४ ॥

पुत्रावूचतुः

एवमुक्तस्ततस्तेन स ममज्ज नदीजले। ररक्ष सोऽपि तस्यैव मायाविहितमाश्रमम्
गत्वाजलाशयात्तस्मात्तालकेतुश्च तत्परम्। मदालसायाःप्रत्यक्षमन्येषांचैतदुक्तवान्

तालकेतुरुवाच

वीरःकुवलयाश्वोऽसौ ममाश्रमसमीपतः। केनापिदुष्टदैत्येनकुर्वन्रक्षां तपस्विनाम्

युध्यमानो यथाशक्ति निघ्नन् ब्रह्मद्विषो युधि।
मायामाश्रित्य पापेन भिन्नः शूलेन वक्षसि॥ १८॥

म्रियमाणेन तेनेदं दत्तं मे कण्ठभूषणम्। प्रापितश्चाग्निसंयोगं स वने शूद्रतापसैः
कृतार्तहेषाशब्दो वै त्रस्तः साश्रुविलोचनः। नीतःसोऽश्वश्चतेनैव दानवेनदुरात्मना
एतन्मया नृशंसेन दृष्टं दुष्कृतकारिणा। यदत्रानन्तरं कृत्यं कुरुष्वोत्तरकालिकम्

हृदयाश्वासनञ्चैतद् गृह्यतां कण्ठभूषणम्।
नास्माकं हि सुवर्णेन कृत्यमस्ति तपस्विनाम्॥ २२॥

पुत्रावूचतुः

इत्युक्त्वोत्सृज्य तद्भूमौ स जगाम यथागतम्।
निपपात जनः सोऽथ शोकार्त्तो मूर्च्छयाऽऽतुरः॥ २३॥

तत्क्षणात्चेतनांप्राप्यसर्वास्तान्नृपयोषितः। राजपत्न्यश्चराजाचविलेपुरतिदुःखिताः

मदालसा तु तद्दृष्ट्वा तदीयं कण्ठभूषणम्।
तत्याजाऽऽशु प्रियान् प्राणान् श्रुत्वा च निहतं पतिम्॥ २५॥

ततः पुरो महाक्रन्दः पौराणां भवनेष्वभूत्। यथैव तस्य नृपतेः स्वगेहे समवर्तत

राजा च तां मृतां दृष्ट्वा विना भर्त्रा मदालसाम्।
प्रत्युवाच जनं सर्वं विमृष्य स्वस्थमानसः॥ २७॥
न रोदितव्यं पश्यामि भवतामात्मनस्तथा।
सर्वेषामेव सञ्चिन्त्य सम्बन्धानामनित्यताम्॥ २८॥
किन्नु शोचामि तनयं किन्नु शोचाम्यहं स्नुषाम्।

गर्भक्लेशः स्त्रियोमन्येसाफल्यं भजतेतदा।
यदारिविजयी वा स्यात् सङ्ग्रामे वा हतः सुतः ॥ ४५ ॥

पुत्रावूचतुः

ततः स राजा संस्कारंपुत्रपत्नीमलम्भयत्। निर्गम्यचवहिःस्नातोददौपुत्रायचोदकम्
तालकेतुश्च निर्गम्य तथैव यमुनाजलात्। राजपुत्रमुवाचेदं प्रणयान्मधुरं वचः॥
गच्छ भूपालपुत्र! त्वं कृतार्थोऽहं कृतस्त्वया।
कार्यं चिराभिलषितं (वाञ्छितं तु कृतं कार्यं) त्वय्यत्राऽविचले स्थिते ॥ ४८ ॥
वारुणं यज्ञकार्यञ्च जलेशस्य महात्मनः। तन्मयासाधितंसर्वंयन्ममासीदभीप्सितम्
प्रणिपत्य स तं प्रायाद्राजपुत्रः पुरं पितुः। समारुह्य तमेवाश्वं सुपर्णानिलविक्रमम्
इतिश्रीमार्कण्डेयपुराणेकुवलयाश्वीयेमदालसाप्राणवियोगवर्णनंनामद्वाविंशोऽध्यायः

——:*:——

त्रयोविंशोऽध्यायः

कुवलयाश्वपातालगमनवर्णनम्

पुत्रावूचतुः

स राजपुत्रःसम्प्राप्यवेगादात्मपुरं ततः। पित्रोर्ववन्दिषुः पादौ दिदृक्षुश्चमदालसाम्
ददर्श जनमुद्विग्नमप्रहृष्टमुखं पुरः। पुनश्च विस्मिताकारं प्रहृष्टवदनं ततः॥ २ ॥
अन्यमुत्फुल्लनयनं दिष्ट्यादिष्ट्येति वादिनम्।
परिष्वजन्तमन्योन्यमतिकौतूहलान्वितम् ॥ ३ ॥
स राजपुत्रो मित्रं तमुत्फुल्लनयनं शुभम्। आलिलङ्ग तदा काले सौहृदेन परेण च
ततः पौरास्तदाऽऽलोक्य दिष्ट्यादिष्ट्येति वादिनः॥
चिरं जीवोरुकल्याण! हतास्ते परिपन्थिनः।
पित्रोः प्रह्लादय मनस्तथास्माकमकण्टकम् ॥ ५ ॥

पुत्रावूचतुः

इत्येवमादिभिः पौरैः पुरः पृष्ठे च संवृतः । तत्क्षणप्रभवानन्दः प्रविवेश पितुर्गृहम्

पिता चैनं परिष्वज्य माता चाऽन्ये च बान्धवाः ।
चिरंजीवेति कल्याण ददुस्तस्मै तदाशिषः ॥ ६ ॥
प्रणिपत्य ततः सोऽपि किमेतदिति विस्मितः ।
पप्रच्छ पितरं तातः सोऽस्मै सम्यक् तदुक्तवान् ॥ ७ ॥

समाकर्ण्य तां मृतां भार्यां हृदयेष्टां मदालसाम् । पितरौ च पुरो दृष्ट्वा लज्जाशोकाब्धिमध्यगः

चिन्तयामास सा बाला मां श्रुत्वा निधनं गतम् ।
तत्याज जीवितं साध्वी धिङ्मां निष्ठुरमानसम् ॥ ९ ॥

नृशंसोऽहमनार्योऽहं विना तां मृगलोचनाम् । मत्कृते निधनं प्राप्तां यज्जीवाम्यतिनिर्घृणः

पुनः स चिन्तयामास परिसंस्तभ्य मानसम् ।
मोहोद्गममपास्याऽऽशु (स्थैर्यं) निःश्वस्योच्छ्वस्य चाऽऽतुरः ॥ ११ ॥
मृतेति सा मन्निमित्तं त्यजामि यदि जीवितम् ।
किं मयोपकृतं तस्याः श्लाघ्यमेतत्तु योषिताम् ॥ १२ ॥

यदि रोदिमि चार्तोऽहं हा प्रियेति वदन्मुहुः । तथाप्यश्लाघ्यमेतन्नो वयं हि पुरुषाः किल

ततः शोकजडो दीनो भार्याहीनोऽपमानितः । विपक्षस्य भविष्यामि ततः परिभवास्पदम्

मयारिशातनं कार्यं तथा शुश्रूषणं पितुः । जीवितं तस्य चायत्तं सन्त्याज्यं तत्कथं मया

किन्त्वत्र मन्ये कर्तव्यस्त्यागो भोगस्य योषितः ।
स चापि नोपकाराय तन्वङ्ग्याः किन्तु सर्वथा ॥ १६ ॥
मया नृशंस्यं कर्तव्यं नोपकारापकारि च ।
या मदर्थेऽत्यजत् प्राणांस्तदर्थेऽल्पमिदं मम ॥ १७ ॥

पुत्रावूचतुः

इति कृत्वा मतिं सोऽथ निष्पाद्योदकदानिकम् ।
क्रियाश्चानन्तरं कृत्वा प्रत्युवाच ऋतध्वजः ॥ १८ ॥

ऋतध्वज उवाच

यदि सा मम तन्वङ्गी न स्याद्भार्या मदालसा।
अस्मिन् जन्मनि नाऽन्या मे भवित्री सहचारिणी॥
ामृतेमृगशावाक्षींगन्धर्वतनयामहम्। न भोक्ष्येयोषितंकाञ्चिदितिसत्यंमयोदितम्
सद्धर्मचारिणीं पत्नीं तां मुक्त्वा गजगामिनीम्।
काञ्चिन्नाङ्गीकरिष्यामीत्येतत् सत्यं मयोदितम्॥ २१॥

पुत्रावूचतुः

परित्यज्य च स्त्रीभोगान् तात! सर्वांस्तया विना।
क्रीडन्नास्ते समं तुल्यैर्वयस्यैः शीलसम्पदा॥ २२॥
एतत्तस्य परंकार्यंतात! तत्केन शक्यते । कर्तुमत्यन्तदुष्प्राप्यमीश्वरैःकिमुतेतरैः

जड (पुत्र) उवाच

इतिवाक्यंतयोःश्रुत्वा चिमर्षमगमत्पिता। विमृष्यचाहतौ पुत्रौ नागराट्प्रहसन्निव

नागराडश्वतर उवाच

यद्यशक्यमिति ज्ञात्वा न करिष्यन्ति मानवाः।
कर्मण्युद्यमनुद्योगहान्याहानिस्ततः परम्॥ २५॥
आरभेत नरःकर्म स्वपौरुषमहापयन्। निष्पत्तिः कर्मणांदैवे पौरुषे च व्यवस्थिता
तस्मादहंतथायत्नंकरिष्येपुत्रकावितः। तपश्चर्यांसमास्थाययथैतत्साध्यतेऽचिरात्

जड (पुत्र) उवाच

एवमुक्त्वास नागेन्द्रः प्लक्षावतरणंगिरेः। तीर्थंहिमवतो गत्वा तपस्तेपे सुदुश्चरम्
तुष्टावचाग्भिरिष्टाभिस्तत्रदेवींसरस्वतीम्। तन्मनानियताहारोभूत्वात्रिषवणाप्लुतः

अश्वतर उवाच

जगद्धात्रीमहंदेवीमारिराधयिषुःशुभाम्। स्तोष्येप्रणम्यशिरसाब्रह्मयोनिंसरस्वतीम्
सदसद्देवि! यत्किञ्चिन्मोक्षवच्चार्थवत्पदम्।
तत्सर्वंत्वय्यसंयोगं योगवद्देवि! संस्थितम्॥ ३१॥

त्वमक्षरं परं देवि! यत्रसर्वं प्रतिष्ठितम् । अक्षरं परमं देवि! संस्थितं परमाणुवत्
अक्षरं परमं ब्रह्म विश्वञ्चैतत् क्षरात्मकम् । दारुण्यवस्थितो वह्निर्भौमाश्च परमाणवः

तथा त्वयि स्थितं ब्रह्म जगच्चेदमशेषतः ।

ॐकाराक्षरसंस्थानं यत्तु देवि! स्थिरास्थिरम् ॥ ३४ ॥

तत्रमात्रात्रयं सर्वमस्ति यद्देवि नास्ति च । त्रयोलोकास्त्रयोवेदास्त्रैविद्यं पावकत्रयम्

त्रीणिज्योतींषि वर्णाश्च त्रयो धर्मागमास्तथा ।

त्रयो गुणास्त्रयः शब्दास्त्रयो वेदास्तथाश्रमाः ॥ ३६ ॥

त्रयः कालास्तथावस्था पितरोऽहर्निशादयः । एतन्मात्रात्रयंदेवि! तवरूपंसरस्वति

विभिन्नदर्शिनामाद्या ब्रह्मणो हि सनातनाः ।

सोमसंस्था हविःसंस्था पाकसंस्थाश्च सप्त याः ॥ ३८ ॥

तास्त्वदुच्चारणाद्देवि! क्रियन्तेब्रह्मवादिभिः । अनिर्देश्यतथाचान्यदर्द्धमात्राश्रितंपरम्
अविकार्यक्षयंदिव्यं परिणामविवर्जितम् । तवैतत्परमं रूपं यन्न शक्यं मयोदितुम्

न चास्ये न च तज्जिह्वा ताल्वोष्ठादिभिरुच्यते ।

इन्द्रोऽपि वसवो ब्रह्मा चन्द्रार्कौ ज्योतिरेव च ॥ ४१ ॥

विश्वावासं विश्वरूपं विश्वेशं परमेश्वरम् ।

सांख्यवेदान्तवादोक्तं बहुशाखास्थिरीकृतम् ॥ ४२ ॥

अनादिमध्यनिधनं सदसन्न सदेव यत् । एकन्त्वनेकं नाप्येकं भवभेदसमाश्रितम्

अनाख्यं षड्गुणाख्यञ्च वर्गाख्यं त्रिगुणाश्रयम् ।

नानाशक्तिमतामेकं शक्तिवैभविकं परम् ॥ ४४ ॥

सुखासुखमहासौख्यरूपंत्वयिविभाव्यते । एवंदेवि!त्वयाव्याप्तंसकलंनिष्कलञ्चयत्

अद्वैतावस्थितं ब्रह्म यच्च द्वैते व्यवस्थितम् ॥ ४५ ॥

येऽर्था नित्या ये विनश्यन्ति चान्ये ये वा स्थूला ये च सूक्ष्माऽतिसूक्ष्माः ।
ये वा भूमौ येऽन्तरिक्षेऽन्यतो वा तेषां तेषां त्वत्त एवोपलब्धिः ॥ ४६ ॥
यच्चाऽमूर्तं यच्चमूर्तं समस्तं यद्वा भूतेष्वेकमेकञ्च किञ्चित् ।

यद्विव्येऽस्ति क्ष्मातले खेऽन्यतो वा त्वत्सम्बन्धं त्वत्स्वरैर्व्यंञ्जनैश्च ॥ ४७ ॥

जड उवाच

एवं स्तुता तदादेवीविष्णोर्जिह्वासरस्वती । प्रत्युवाच महात्मानं नागमश्वतरं ततः

सरस्वत्युवाच

वरंतेकम्बलभ्रातः प्रयच्छाम्युरगाधिप! । तदुच्यतां प्रदास्यामि यत्ते मनसि वर्तते

अश्वतर उवाच

सहायंदेहिदेवि!त्वं पूर्वकम्बलमेव मे । समस्तस्वरसम्बन्धमुभयोः सम्प्रयच्छ च

सरस्वत्युवाच

सप्तस्वराग्रामरागाः सप्तपन्नगसत्तम! । गीतकानि च सप्तैव तावतीश्चापि मूर्च्छनाः

तालाश्चैकोनपञ्चाशत्तथा ग्रामत्रयञ्चयत् । एतत्सर्वं भवान्गाता कम्बलश्च तथानघ !

ज्ञास्यसे मत्प्रसादेन भुजगेन्द्र! परं तथा । चतुर्विधं पदं तालं त्रिःप्रकारं लयत्रयम्

यतित्रयं तथा तोद्यं मया दत्तं चतुर्विधम् । एतद्भवान्मत्प्रसादात्पन्नगेन्द्रापरञ्चयत्

अस्यान्तर्गतमायत्तं स्वरव्यञ्जनसम्मितम् । तदशेषंमयादत्तं भवतः कम्बलस्य च

तथानान्यस्यभूर्लोकेपातालेचापिपन्नग! । प्रणेतारौ भवन्तौचसर्वस्यास्यभविष्यतः

पाताले देवलोके च भूर्लोके चैव पन्नगौ ॥ ५६ ॥

जड उवाच

इत्युक्त्वासा तदादेवीसर्वजिह्वासरस्वती । जगामादर्शनंसद्यो नागस्यकमलेक्षणा

तयोश्च तद्यथावृत्तं भ्रात्रोः सर्वमजायत । विज्ञानमुभयोरग्र्यं पदतालस्वरादिकम्

ततःकैलासशैलेन्द्रशिखरस्थितमीश्वरम् । गीतकैः सप्तभिर्नागौतन्त्रीलयसमन्वितौ

आरिराधयिषू देवमनङ्गाङ्गहरं हरम् । प्रचक्रतुः परं यत्नमुभौ संहतवाक्कलौ ॥ ६० ॥

प्रातर्निशायां मध्याह्ने सन्ध्ययोश्चापि तत्परौ ।

तयोः कालेन महता स्तूयमानो वृषध्वजः ॥ ६१ ॥

तुतोषगीतकैस्तौ च प्राहेशो गृह्यतां वरः । ततः प्रणम्याश्वतरः कम्बलेन समं तदा

व्यज्ञापयन्महादेवं शितिकण्ठमुमापतिम् । यदि नौ भगवान् प्रीतोदेवदेवस्त्रिलोचनः

त्वमक्षरं परं देवि यत्र सर्वं प्रतिष्ठितम् । अक्षरं परमं देवि ! संस्थितं परमाणुवत्
अक्षरं परमं ब्रह्म विश्वञ्चैतत् क्षरात्मकम् । दारुण्यवस्थितो वह्निर्भौमाश्च परमाणवः
तथा त्वयि स्थितं ब्रह्म जगच्चेदमशेषतः ।
ओंकाराक्षरसंस्थानं यत्तु देवि ! स्थिरास्थिरम् ॥ ३४ ॥
तत्र मात्रात्रयं सर्वमस्ति यद्देवि नास्ति च । त्रयो लोकास्त्रयो वेदास्त्रैविद्यं पावकत्रयम्
त्रीणि ज्योतींषि वर्णाश्च त्रयो धर्मागमास्तथा ।
त्रयो गुणास्त्रयः शब्दास्त्रयो वेदास्तथाश्रमाः ॥ ३६ ॥
त्रयः कालास्तथावस्थाः पितरोऽहर्निशादयः । एतन्मात्रात्रयं देवि ! तव रूपं सरस्वति
विभिन्नदर्शिनामाद्या ब्रह्मणो हि सनातनाः ।
सोमसंस्था हविःसंस्थाः पाकसंस्थाश्च सप्त याः ॥ ३८ ॥
तास्त्वदुच्चारणाद्देवि ! क्रियन्ते ब्रह्मवादिभिः । अनिर्देश्यं तथा चान्यदर्द्धमात्रान्वितं परम्
अविकार्यक्षयं दिव्यं परिणामविवर्जितम् । तवैतत्परमं रूपं यन्न शक्यं मयोदितुम्
न चास्ये न च तज्जिह्वा ताल्वोष्ठादिभिरुच्यते ।
इन्द्रोऽपि वसवो ब्रह्मा चन्द्रार्कौ ज्योतिरेव च ॥ ४१ ॥
विश्वावासं विश्वरूपं विश्वेशं परमेश्वरम् ।
सांख्यवेदान्तवादोक्तं बहुशाखास्थिरीकृतम् ॥ ४२ ॥
अनादिमध्यनिधनं सदसन्न सदेव यत् । एकं त्वनेकं नाप्येकं भवभेदसमाश्रितम्
अनाख्यं षड्गुणाख्यञ्च वर्गाख्यं त्रिगुणाश्रयम् ।
नानाशक्तिमतामेकं शक्तिवैभविकं परम् ॥ ४४ ॥
सुखासुखमहासौख्यरूपं त्वयि विभाव्यते । एवं देवि ! त्वया व्याप्तं सकलं निष्कलञ्च यत्
अद्वैतावस्थितं ब्रह्म यच्च द्वैते व्यवस्थितम् ॥ ४५ ॥
येऽर्था नित्या ये विनश्यन्ति चान्ये ये वा स्थूला ये च सूक्ष्मातिसूक्ष्माः ।
ये वा भूमौ येऽन्तरिक्षेऽन्यतो वा तेषां तेषां त्वत्त एवोपलब्धिः ॥ ४६ ॥
यच्चाऽमूर्तं यच्च मूर्तं समस्तं यद्वा भूतेष्वेकमेकञ्च किञ्चित् ।

तावाह नृपपुत्रोऽसौ नन्विदं भवतोर्गृहम् ॥ ७६ ॥
धनवाहनवस्त्रादि यन्मदीयं तदेववाम् । यस्य वां वाञ्छितं धनं रत्नमथापि वा ॥
तद्दीयतां द्विजसुतौ यदिवां प्रणयोमयि । एताचनाहं दैवेन वञ्चितोऽस्मिदुरात्मना
यद्भवद्भ्यांममत्वंनोमदीयेक्रियनां गृहे । यदिवांमत्प्रियंकार्यमनुग्राह्योऽस्मिवांयदि
तद्धने मम गेहेष ममत्वमनुकल्प्यताम् । युवयोर्यन्मदीयं तन्मामकं युवयोः स्वकम्
एतत् सत्यं विजानीतं युवां प्राणा बहिश्वराः ।
पुनर्नवं विभिन्नार्थं वक्तव्यं द्विजसत्तमौ ! ॥ ८४ ॥
मत्प्रसादपरौ प्रीत्या शापितौ हृदयेन मे । ततःस्नेहार्द्रवदनौ तावुभौ नागनन्दनौ ॥
ऊचतुर्नृपतेः पुत्रंकिञ्चित्प्रणयकोपितौ । ऋतध्वज! न सन्देहो यथैवाहभवानिदम्
तथैव वास्मन्मनसि नात्र चिन्त्यमतोऽन्यथा ।
किन्त्वावयोः स्वयं पित्रा प्रोक्तमेतन्महात्मना ॥ ८७ ॥
द्रष्टुं कुवलयाश्वं तमिच्छामीति पुनः पुनः ।
ततः कुवलयाश्वोऽसौ समुत्थाय वरासनात् ॥
यथाह तातेति वदन् प्रणाममकरोद् भुवि ॥ ८८ ॥

कुवलयाश्व उवाच

धन्योऽहमतिपुण्योऽहं कोऽन्योऽस्ति सदृशो मया ।
यत्तातो मामभिद्रष्टुं करोति प्रवणं मनः ॥ ८९ ॥
तदुत्तिष्ठतगच्छामस्तामाज्ञां क्षणमप्यहम् ।
नातिक्रान्तुमिहेच्छामि पद्भ्यां तस्य शपाम्यहम् ॥ ९० ॥

जड उवाच

एवमुक्त्वाययौसोऽथसहताभ्यांनृपात्मजः । प्राप्तश्चगोमतींपुण्यांनिर्गत्यनगराद्बहिः
तन्मध्येनययुस्ते वैनागेन्द्रनृपनन्दनाः । मेनेच राजपुत्रोऽसौपारे तस्यास्तयोर्गृहम्
ततश्चाकृष्य पातालं ताभ्यां नीतोनृपात्मजः । पातालेददृशेचोभौस पन्नगकुमारकौ
फणामणिकृतोद्योतौ व्यक्तस्वस्तिकलक्षणौ ।

ततो यथाभिलषितं वरमेनं प्रयच्छ नौ । मृतां कुवलयाश्वस्य पत्नीं देव ! मदालसा
तेनैव वयसा सद्यो दुहितृत्वं प्रयातु मे । जातिस्मरा यथा पूर्वं तद्वत्कान्तिसमन्विता
योगिनी योगमाता च मद्गृहे जायतां भव !॥ ६५ ॥

महादेव उवाच

यथोक्तं पन्नगश्रेष्ठ! सर्वमेतद्भविष्यति । मत्प्रसादादसन्दिग्धं शृणु चेदं भुजङ्गम !
श्राद्धे तु समनुप्राप्ते मध्यमं पिण्डमात्मना । भक्षयेथाः फणिश्रेष्ठ! शुचिः प्रयतमानसः

भक्षिते तु ततस्तस्मिन् श्वसतो मध्यमात् फणात् ।
समुत्पत्स्यति कल्याणी तथारूपा यथामृता ॥ ६८ ॥
कामञ्चैवमभिध्याय कुरु त्वं पितृतर्पणम् ।
तत्क्षणादेव सा सुभ्रूः श्वसतो मध्यमात् फणात् ॥ ६९ ॥
(त्वयचेष्टोपमुक्तात तत सर्वं भविष्यति ।)
समुत्पत्स्यति कल्याणी तथारूपा यथा मृता ।
एतच्छ्रुत्वा ततस्तौ तु प्रणिपत्य महेश्वरम् ॥ ७० ॥

रसातले पुनः प्राप्तौ परितोषसमन्वितौ । तथाच कृतवान् श्राद्धे समागते कम्बलानुजः
पिण्डञ्च मध्यमं तद्वद्यथावदुपभुक्तवान् । तञ्चाभिध्यायतः कामं ततः सा तनुमध्यमा

जज्ञे निःश्वसतस्तस्मात्तद्रूपा मध्यमात् फणात् ।
न चापि कथयामास कस्यचित्स भुजङ्गमः ॥ ७२ ॥

अन्तर्गृहे तां सुदतीमभिगुप्तामधारयत् । तौ चानुदिनमागत्य पुत्रौ नागपतेः सुखम्
ऋतध्वजेन सहितौ चिक्रीडातेऽमराविव । एकदा तु सुतौ प्राह नागराजो मुदान्वितः
यन्मया पूर्वमुक्तं तु क्रियते किं न तत्तथा । स राजपुत्रो युवयोरुपकारी ममान्तिकम्
कस्मान्नानीयते वत्सावुपकाराय मानदः । एवमुक्तौ ततस्तेन पित्रा स्नेहवता तु तौ

गत्वा तस्य पुरं सख्युः रेमाते तेन धीमता ।
ततः कुवलयाश्वं तौ कृत्वा किञ्चित्कथान्तरम् ॥ ७८ ॥
ऊचतुः प्रश्रयोपेतं स्वगेहगमनं प्रति ।



समेत्य तैरात्मजभूपनन्दनैर्महोरगाणामधिपः स सत्यवाक्।
मुदान्वितोऽन्नानि म गूनि चात्मवान् यथोपयोगं बुभुजे स भोगभु (भा) क् ॥

इति मार्कण्डेयपुराणे मदालसोपाख्यानेकुवलयाश्वपातालगमन
वर्णनंनामत्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

——:*:——

चतुर्विंशोऽध्यायः

मदालसाप्राप्तिवर्णनम्

पुत्रोवाच

कृताहारं महात्मानमधिपं पवनाशिनाम्। उपासाञ्चक्रिरे पुत्रौ भूपालतनयास्तथा
कथाभिरनुरूपाभिः स महात्माभुजङ्गमः। प्रीतिं सञ्जनयामास पुत्रसख्युरुवाच च
तव भद्र! सुखं ब्रूहि गेहमभ्यागतस्य यत्। कर्त्तव्यमुत्सृजाशङ्कां पितरीव सुतोमयि
रजतं वा सुवर्णं वा वस्त्रं वाहनमासनम्। यद्वाभिमतमत्यर्थं दुर्लभं तद्वृणुष्वमाम्

कुवलयाश्व उवाच

तव प्रसादाद्भगवन्! सुवर्णादि गृहेमम। पितुरस्तिमसाध्यापिनकिञ्चिनकार्यमीदृशम्
ताते वर्षसहस्राणि शासतीमां वसुन्धराम्। तथैवत्वयिपातालं नमे याञ्चोन्मुखंमनः
तेऽन्यर्थांश्च सुपुण्याश्च येषांपितरिजीवति। तृणकोटिसमंचित्तंतारुण्याच्छिन्नकोटिषु
मित्राणि तुल्यशीलानि तद्वद्देहमनामयम्। जनिताधिपतेवित्तंयौवनंकिन्तुनास्तिमे
वासत्वर्गेऽन्यणां याञ्चाप्रवणं जायते मनः। सत्यदैन्यकथं याञ्चां मम जिह्वा करिष्यति

येषं न चिन्त्यं धनं किञ्चिन्मम गेहेऽस्ति नास्ति वा।
पितृबाहुतरुच्छायां संश्रिताः सुखिनो हि ते ॥ १० ॥
ये तु बाल्यात्प्रभृत्येव विना पित्रा कुटुम्बिनः।
ते सुखास्वादविभ्रंशान्मन्ये धात्रैव वञ्चिताः ॥ ११ ॥

वयं त्वत्प्रसादेन धनरत्नादिसञ्चयान्। पितृभक्ताः प्रयच्छामः कामतो नित्यमर्थिनाम्

विलोक्य तौ सुरूपाङ्गौ विस्मयोत्फुल्ललोचन ॥ ९४ ॥

विहस्य चाब्रवीत् प्रेम्णा साधुभो द्विजसत्तमौ । कथयामासतुस्तौ च पितरं पन्नगेश्वरम् शान्तमश्वतरं नाम माननीयं दिवौकसाम् । रमणीयं ततोऽपश्यत् पातालं स नृपात्मज कुमारैस्तरुणैर्वृद्धैरुरगैरुपशोभितम् । तथैव नागकन्याभि क्रीडन्तीभिरितस्तत चारुकुण्डलहाराभिस्ताराभिरिव गां यथा । गीतशब्दैस्तथान्यत्र वीणावेणुस्वनानुगै मृदङ्गपणवानोद्य हारिवेश्मशताकुलम् । वीक्षमाण स पाताल ययौ शत्रुजित सुत सह ताभ्यामभीष्टाभ्या पन्नगाभ्यामरिन्दम । तत प्रविश्य ते सर्वे नागराजनिवेशनम् ददृशुस्ते महात्मानमुरगाधिपतिं स्थितम् । दिव्यमाल्याम्बरधरं मणिकुण्डलभूषणम् स्वच्छमुक्ताफललताहारिहारोपशोभितम् । केयूरिणं महाभागमासने सर्वकाञ्चने मणिविद्रुमवैदूर्यजालान्तरितरूपके । सताभ्यां दर्शितस्ताभ्यां तातोऽस्मात्प्रसादिति धारं कुवलयाश्वोऽयमित्येवासौ निवेदित । ततोऽनन्नाम चरणौ नागेन्द्रस्य ऋतध्वज समुत्थाप्य बलाद्गाढं नागेन्द्र परिषस्वजे । मूर्ध्नि चैनमुपाघ्राय चिरं जीवेत्युवाच स रिहन्तामित्रवर्गांश्च पित्रोशुश्रूषणं कुरु । वत्स धन्यस्य कथ्यन्ते परोक्षस्यापि ते गुणा भवतो मम पुत्राभ्यामसामान्या निवेदिता । त्वमेवानेन सर्वेंधाम नोधाक्कायचेष्टितै जीवितं गुणिनं श्लाघ्यं जीवन्नेव मृतोऽगुणी । गुणवानिवृतिं पित्रो शत्रूणां हृदयज्वरम्

करोत्यात्महितं कुर्वन् विश्वासञ्च महाजने ।

देवता पितरो विप्रा मित्रार्थिविभवादय ॥ १०९ ॥

यान्धवाश्च तथेच्छन्तिजीवितं गुणिनश्चिरम् । परिवादनिवृत्तानां दुर्गतेषु दयावताम्

गुणिनां सफलं जन्म संश्रितानां विपद्गतेः ॥ ११० ॥

उवाच

एवमुक्त्वा सत पारं पुत्रावेदमथाऽब्रवीत् । पूजां कुवलयाश्वस्य कर्तुकामो भुजङ्गम स्नानादिकर्म कृत्वा सर्वमेव यथाक्रमम् । मधुपानादिसम्भोगमाहारञ्च यथेप्सितम् तत कुवलयाश्वेन हृदयोत्सवभूतया । कथयास्वल्पकं कालं स्थास्यामोहृष्टचेतस अनुमेने च तन्मौनी वच शत्रुजित सुत । तथा चकार नृपति पन्नगानामुदारधी

तातास्य पत्नी दयिता श्रुत्वेमं विनिपातितम् ।
अत्यजद्दयिता प्राणान् विप्रलब्धा दुरात्मना ॥ २७ ॥

नापि कृतवैरेण दानवेन कुबुद्धिना । गन्धर्वराजस्य सुता नाम्ना ख्याता मदालसा

कृतज्ञोऽयं ततस्तात! प्रतिज्ञां कृतवानिमाम् ।
नान्या भार्या भवित्रीति वर्जयित्वा मदालसाम् ॥ २९ ॥

द्रष्टुं तां चारुसर्वाङ्गीमयं वीरो ऋतध्वजः ।
तात! वाञ्छति यद्येतत् क्रियते तत्कृतं भवेत् ॥ ३० ॥

अश्वतर उवाच

मूर्तैर्वियोगिनोयोगस्तादृशैरेव तादृशः । कथमेतद्विना स्वप्नोमायांवाशम्बरोदिताम्

जड (पुत्र) उवाच

प्रणिपत्य भुजङ्गेशं पुत्रः शत्रुजितस्ततः । प्रत्युवाच महात्मानं प्रेमलज्जासमन्वितः

मायामयीमप्यधुना मम तातो मदालसाम् । यदिदर्शयते मन्ये परं कृतमनुग्रहम्

अश्वतर उवाच

तस्मात् पश्येह वत्स! त्वं मायाश्चेद्द्रष्टुमिच्छसि ।
अनुग्राह्यो भवान् गेहं बालोऽप्यभ्यागतो गुरुः ॥ ३४ ॥

जड (पुत्र) उवाच

आनयामास नागेन्द्रो गृहगुप्तांमदालसाम् । तेषांसम्मोहनार्थायजजल्पचततःस्फुटम्

दर्शयामास च तदा राजपुत्राय तां शुभाम् । सेयंनवेति ते भार्या राजपुत्र! मदालसा

जड (पुत्र) उवाच

स दृष्टा तां तदा तन्वींतत्क्षणात्विगतत्रपः । प्रियेतितामभिमुखंययौवाचमुदीरयन्
निवारयामास च तं नागः सोऽश्वतरस्त्वरन् ॥ ३७ ॥

अश्वतर उवाच

मायेयं पुत्र माऽस्प्राक्षीः प्रागेवकथितंतव । अन्तर्द्धानमुपैत्याशुमायासंस्पर्शनादिभिः

ततः पपात मेदिन्यां स तु मूर्च्छापरिप्लुतः ।

तत्सर्वमिह सम्प्राप्तं यद्दृष्टं प्रियगल्तव । मच्चूडामणिना स्पृष्टं यच्चाङ्गस्पर्शमात्तवान्

जड (पुत्र) उवाच

इत्येवं प्रसन्न वाक्यमुक्तं पन्नगसत्तम । प्राह राजसुत प्रीत्या पुत्रयोरुपकारिणम् ॥

नाग उवाच

यदि रत्नसुवर्णादि मत्तोऽवाप्तुंमनेमन । यच्चान्यन्मनसः प्रीत्यै तद्ब्रूहि त्वं ददाम्यहम्

कुवलयाश्व उवाच

भगवंस्त्वत्प्रसादेन प्रार्थितस्य गृहे मम । सर्वमस्ति विशेषेण सम्प्राप्त तव दर्शनात् ॥

कृतकृत्योऽस्मि चैतेन सफलं जीवितञ्च मे । यद्भूसस्पर्शमितस्त्वाच देवस्य मानुषः

ममोत्तमाङ्गे त्वत्पादरजसा यदिहास्पदम् । कृतं तेनैव न प्राप्तं किं मया पन्नगेश्वर!

यदि त्ववश्य दातव्यो वरो मम यथेप्सित । त पुण्यकर्मसंस्कारो हृदयान्माप्यपैतु मे

सुवर्णमणिरत्नादि वाहनं गृहमासनम् । स्त्रियोऽन्नपानं पुत्राश्च चारुमाल्यानुलेपनम्

एते च विविधा कामा गीतवाद्यादिकञ्च यत् ।

सर्वमेतन्मम मत फलं पुण्यवनस्पते ॥ २१ ॥

तस्मादादरेण तन्मूलं कार्यो यत्न कृतात्मना ।

कर्त्तव्य पुण्यसक्ताना न किञ्चिद्भुवि दुर्लभम् ॥ २२ ॥

अश्वतर उवाच

एव भविष्यति प्राज्ञ ! तव धर्माश्रिता मति ।

सत्यञ्चैतत् फलं सर्वं धर्मस्योक्तं यथा त्वया ॥ २३ ॥

तथाऽप्यवश्य मद्गेहमागतेन त्वयाऽधुना । ग्राह्यं यन्मानुषैर्लोके दुष्प्राप मयतोमतम्

जड (पुत्र) उवाच

तस्यैतद्वचन श्रुत्वा स तदा नृपनन्दन । मुखावलोकनं चक्रे पन्नगेश्वरपुत्रयो ॥ २४ ॥

ततस्तौ प्रणिपत्योभौ राजपुत्रस्य यन्मतम् ।

तत्पितु सकलं पार्श्वे कथयामासतु स्फुटम् ॥ २५ ॥

पुत्रावूचतु

काननेषु च रम्येषु तथैवोपवनेषु च। पुण्यक्षयं वाञ्छमाना सापि कामोपभोगतः
सहतेनातिकान्तेन रेमे रम्यासु भूमिषु। ततः कालेन महता शत्रुजित् स नराधिपः

सम्यक् प्रशास्य वसुधां कालधर्ममुपेयिवान्।
ततः पौरा महात्मानं पुत्रं तस्य ऋतध्वजम् ॥ ७ ॥
अभ्यषिञ्चन्त राजानमुदाराचारचेष्टितम्।
सम्यक् पालयतस्तस्य प्रजाः पुत्रानिवौरसान् ॥ ८ ॥

मदालसायाः सञ्जज्ञे पुत्रःप्रथमजस्ततः। तस्यचक्रे पितानाम विक्रान्त इति धीमतः
तुतुषुस्तेन वैभृत्याजहास च मदालसा। सा वै मदालसा पुत्रं बालमुत्तानशायिनम्

उल्लापनच्छलेनाऽऽह रुदमानमवैस्वरम् ॥ १० ॥

शुद्धोऽसि रे तात! न तेऽस्तिनाम कृतं हि ते कल्पनयाऽधुनैव।
पञ्चात्मकं देहमिदं तवैतन्नैवास्य त्वं रोदिषि कस्य हेतोः ॥ ११ ॥
न वा भवान्रोदिति वै स्वजन्मा शब्दोऽयमासाद्य महीशसूनुम्।
विकल्प्यमाना विविधा गुणास्तेऽगुणाश्च भौताः सकलेन्द्रियेषु ॥ १२ ॥
भूतानि भूतैः परिदुर्बलानि वृद्धिं समायान्ति यथेह पुंसः।
अन्नाम्बुदानादिभिरेव कस्य न तेऽस्ति वृद्धिर्न च तेऽस्ति हानिः ॥ १३ ॥
त्वं कञ्चुके शीर्यमाणे निजेऽस्मिंस्तस्मिंश्च देहे मूढतां मा व्रजेथाः।
शुभाशुभैः कर्मभिर्देहमेतन्मदादिमूढैः कञ्चुकस्तेऽपिनद्धः ॥ १४ ॥
तातेति किञ्चित्तनयेति किञ्चिदम्बेति किञ्चिद्दयितेति किञ्चित्।
ममेति किञ्चिन्न ममेति किञ्चित् त्वं भूतसङ्घं बहुमानयेथाः ॥ १५ ॥
दुःखानि दुःखोपशमाय भोगान् सुखाय जानाति विमूढचेताः।
तान्येव दुःखानि पुनःसुखानि जानात्यविद्वान् सुविमूढचेताः ॥ १६ ॥
हासोऽस्थिसन्दर्शनमक्षियुग्ममत्युज्ज्वलं तर्जनमङ्गनायाः।
कुचादिपीनं पिशितं घनं तत् स्थानं रतेः किं नरकं न योषित् ॥ १७ ॥
यानं क्षितौ यानगतश्च देहं देहेऽपि चान्यः पुरुषो निविष्टः।

प्रियेति वदन् सोऽथ चिन्तयामास भामिनीम् ॥ ३९ ॥
मोहो ममाऽय नो वेति नाऽलं प्रत्ययवानहम् ।
अहो स्नेहोऽस्य नृपतेममोपयच्छल मन । येनायप्रातनोऽरीणा विनाशस्त्रेणपातित
मायेति (ममेति) दर्शिताऽनेन मिथ्या मायेति यत्स्फुटम् ।
यावद्वसुनेजसा भूमेरक्षाशस्य च चेष्टया ॥ ४१ ॥

पुत्र उवाच

तत कुवलयाश्व त समाश्वास्यभुजङ्गम । कथयामास ततसर्वं मृतसञ्जीवनादिकम्
तत प्रहृष्ट प्रतिलभ्य कान्ता प्रणम्य नाग निजगाम सोऽथ ।
सुशोभमान स्वपुर तमभ्यमाकह्य सञ्चिन्तितमभ्युपेतम् ॥ ४३ ॥
शृणुयाद्भक्तिपूर्वं यो नैरन्तर्येण मानव । येऽयोपफल तन प्राप्त वै भुविदुर्लभम्
सम्प्राप्नोति सुख नित्य सर्वकामसमन्वित ।
लोकेऽस्य दुर्लभ तस्य नास्ति किञ्चिन्न विद्यते ॥ ४५ ॥
इति श्रीमार्कण्डेयपुराण मदालसाप्रासिवर्णन नाम चतुर्विंशोऽध्याय ॥ २४ ॥

पञ्चविंशोऽध्याय

कुवलयाश्वीयेऋतध्वजस्यराज्याभिषेकवर्णनम्

अड उवाच

आगम्यस्वपुर सोऽथपित्रो सवमशेषत । कथयामासनन्वङ्गी यथा प्राप्ता पुनमृ ता
ननामसाधचरणौश्वश्रूश्वशुरयो शुभा । स्वजनञ्च यथापूर्वं चन्दनाश्लेषणादिभि
पूजयामास तन्वङ्गी यथान्यायं यथावय ।
ततो महोत्सवो जज्ञे पौराणां तत्र वै पुरे ॥ ३ ॥
ऋतध्वजश्च सुचिरं तयारेमेसुमध्यया । निर्झरेषु च शैलाना निम्नगापुलिनेषु च ॥

मदालसोवाच

मयाज्ञाभवतःकार्य्या महाराज!यथात्थमाम्। तथा नामकरिष्यामिचतुर्थस्यसुतस्यते

अलर्क इति धर्मज्ञः ख्यातिंलोकेप्रयास्यति। कनीयानेष तेपुत्रो मतिमांश्चभविष्यति

पुत्र उवाच

तच्छ्रुत्वानाम पुत्रस्यकृतं मात्रा महीपतिः। अलर्क इत्यसम्बद्धं प्रहस्येदमथाब्रवीत्

राजोवाच

भवत्या यदिदं नाममत्पुत्रस्य कृतं शुभे!। किमीदृशमसम्बद्धमर्थः कोऽस्यमदालसे!

मदालसोवाच

कल्पनेयं महाराज!कृतासा व्यवहारिकी। तत्कृतानां तथानाम्नांशृणुभूप!निरर्थताम्

वदन्ति पुरुषाः प्राज्ञाव्यापिनं पुरुषंयतः। क्रान्तिश्च गतिरुद्दिष्टादेशाद्देशान्तरन्तु या

सर्वगोन प्रयातीति व्यापी देहेश्वरोयतः। ततो विक्रान्तसञ्ज्ञेयं मता मम निरर्थका

सुबाहुरिति यासंज्ञाकृतान्यस्य सुतस्यते। निरर्थासाप्यमूर्त्तत्वात् पुरुषस्यमहीपते!

पुत्रस्ययत् कृतं नाम तृतीयस्यारिमर्दनः। मन्ये तदप्यसम्बद्धंशृणुचाप्यत्र कारणम्

एक एव शरीरेषु सर्वेषु पुरुषो यदा। तदास्यराजन्! कः शत्रुःको वा मित्रमिहेष्यते

भूतैर्भूतानिमृद्यन्तेअमूर्त्तो मृद्यते कथम्। क्रोधादीनांपृथग्भावात् कल्पनेयंनिरर्थका

यदि संव्यवहारार्थमसन्नाम प्रकल्प्यते। नाम्नि कस्मादलर्काख्ये नैरर्थ्यं भवतोमतम्

जड उवाच

एवमुक्तस्तयासाधुमहिष्यासमहीपतिः। तथेत्याहमहाबुद्धिर्दयितां सत्यवादिनीम्

तञ्चापिसा सुतं सुभ्रूर्यथापूर्वसुतांस्तथा। प्रोवाच बोधजननं तामुवाच सपार्थिवः

करोषि किमिदं मूढे ! मम भावाय सन्ततेः। दुष्टावबोधदानेन यथापूर्वं सुतेषु मे ॥

यदि ते मत्प्रियं कार्यं यदिग्राह्यंवचोमम। तदेनं तनयं मार्गे प्रवृत्तेः सन्नियोजय ॥

कर्ममार्गःसमुच्छेदंमेवंदेवि!गमिष्यति। पितृपिण्डनिवृत्तिश्च नैवंसाध्वि!भविष्यति

पितरो देवलोकस्थास्तथा तिर्यक्त्वमागताः।

तद्वन्मनुष्यतां याता भूतवर्गे च संस्थिताः ॥ २६ ॥

ममत्वबुद्धिर्न तथा यथा स्वे देहेऽतिमात्रं बत मूढतैषा ॥ १८ ॥
त्यजधर्ममधर्मं च उभे सत्यानृते त्यज । उभेसत्यानृतेत्यक्त्वा येन त्यजसितत्त्यज
इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेमदालसोपाख्यानवर्णननाम पञ्चविंशोऽध्याय ॥ २५ ॥

षड्विंशोऽध्यायः

अलर्काय प्रवृत्तिमार्गानुशासनम्

जड उवाच

वर्द्धमान सुत सा तु राजपत्नीदिने दिने । तमुल्लापादिना बोधमनयन्निर्ममात्मकम
यथायथ बलं लेभे यथा लेभे मतिं पितु । तथातथात्मबोधञ्च सोऽध्यापमातृभाषितै
इत्थं तया स तनयो जन्मप्रभृति बोधित ।
चकार न मतिं प्राज्ञो गार्हस्थ्य प्रति निर्मम ॥ ३ ॥
द्वितीयोऽस्या सुतोजज्ञेतस्यनामाकरोत्पिता । सुबाहुरयमित्युक्तेसाजहासमदालसा
तमप्येव यथापूर्वं बाल्यमुल्लापनादिना । प्राह बाल्यात्सत्रप्राप्तया बोध महामति
तृतीय तनय जात स राजा शत्रुमर्दनम् । यदाह तेन सा सुभ्रूर्जहासातिचिर पुन
तथैव सोऽपि तन्वङ्ग्या बाल्यत्वादेव बोधित ।
क्रियाश्चकार निष्कामो न किञ्चिदुपकारकम् ॥ ७ ॥
चतुर्थस्यसुतस्यार्थचिकार्षुर्नामभूमिप । ददर्शनाशुभाचारामीषद्धासा मदालसाम्
तामाह राजा हसतीं किञ्चित् कौतूहलान्वित ॥ ८ ॥

राजोवाच

नियमाणेसरन्नास्ति कथ्यताहास्यकारणम् । विक्रान्तश्चसुबाहुश्चतथान्यःशत्रुमर्दन
शोभनानीतिनामानि मयामन्येकृतानिवै । योग्यानिक्षत्रबन्धूना शौर्यादोपयुतानिच
असन्त्येतानिचेद्भद्रे यदितेमनसि स्थितम् । तदस्यक्रियता नामचतुर्थस्यसुतस्यमे

मदालसोवाच

मयाज्ञाभवतःकार्य्या महाराज!यथात्थमाम्। तथा नामकरिष्यामिचतुर्थस्यसुतस्यते
अलर्क इति धर्मज्ञः ख्यातिंलोकेप्रयास्यति। कनीयानेप तेपुत्रो मतिमांश्चभविष्यति

पुत्र उवाच

तच्छ्रुत्वानाम पुत्रस्यकृतं मात्रा महीपतिः। अलर्क इत्यसम्बद्धं प्रहस्येदमथाब्रवीत्

राजोवाच

भवत्या यदिदं नाममत्पुत्रस्य कृतं शुभे!। किमीदृशमसम्बद्धमर्थः कोऽस्यमदालसे!

मदालसोवाच

कल्पनेयं महाराज!कृतासा व्यवहारिकी। तत्कृतानां तथानाम्नांश्रृणुभूप!निरर्थताम्
वदन्ति पुरुषाः प्राज्ञाव्यापिनं पुरुषंयतः। क्रान्तिश्च गतिरुद्दिष्टादेशाद्देशान्तरन्तु या
सर्वगोन प्रयातीति व्यापी देहेश्वरोयतः। ततो विक्रान्तसञ्ज्ञेयं मता मम निरर्थका
सुबाहुरिति यासंज्ञाकृतान्यस्य सुतस्यते। निरर्थासाप्यमूर्त्तत्वात् पुरुषस्यमहीपते!
पुत्रस्ययत् कृतं नाम तृतीयस्यारिमर्दनः। मन्ये तदप्यसम्बद्धंश्रृणुचाप्यत्र कारणम्
एक एव शरीरेपु सर्वेपु पुरुषो यदा। तदास्यराजन्! कः शत्रुःको वा मित्रमिहेष्यते
भूतैर्भूतानिमृद्यन्तेऽमूर्त्तो मृद्यते कथम्। क्रोधादीनांपृथग्भावात् कल्पनेयंनिरर्थका
यदि संव्यवहारार्थमसन्नाम प्रकल्प्यते। नाम्नि कस्मादलर्काख्ये नैरर्थ्यं भवतोमतम्

जड उवाच

एवमुक्तस्तयासाधुमहिष्यासमहीपतिः। तथेत्याहमहाबुद्धिर्दयितां सत्यवादिनीम्
तञ्चापिसा सुतं सुभ्रूर्यथापूर्वसुतांस्तथा। प्रोवाच वोधजननं तामुवाच सपार्थिवः
करोपि किमिदं मूढे! मम भावाय सन्ततेः। दुष्टाववोधदानेन यथापूर्वं सुतेपु मे॥
यदि ते मत्प्रियं कार्यं यदिग्राह्यंवचोमम। तदेनं तनयं मार्गे प्रवृत्तेः सन्नियोजय॥
कर्ममार्गःसमुच्छेदंमेवंदेवि!गमिष्यति। पितृपिण्डनिवृत्तिश्च नैवंसाध्वि!भविष्यति
पितरो देवलोकस्थास्तथा तिर्यक्त्वमागताः।
तद्वन्मनुष्यतां याता भूतवर्गे च संस्थिताः॥ २६॥

अपुण्यदानमपुण्याश्च भुञ्जानान् तृट्परिप्लुतान् ।
पिण्डोदकप्रदानेन नरः कर्मण्यवस्थितः ॥ ३० ॥

सदाप्याययते शुभ्रं तद्वद्देवातिथीनपि । देवैर्मनुष्यैः पितृभिः प्रेतैर्भूतैः सगुह्यकैः वयोभिः कृमिकीटैश्च नर एवोपजीव्यते । तस्मात्त्वं वत्स पुत्रमेतत्कार्यं क्षत्रयोनिभिः ऐहिकामुष्मिकफलं तत्सम्यक् प्रतिपादय । तेनैवमुक्ता सा भर्त्रा वरनारी मदालसा अलर्कं नाम तनयमुवाचोल्लापवादिना । पुत्र ! वर्द्धस्व मद्भर्तुर्मनो नन्दय कर्मभिः ॥

मित्राणामुपकाराय दुर्हृदां नाशनाय च ॥ ३४ ॥

धन्योऽसि रे यो वसुधामशत्रुरेकश्चिरं पालयिताऽसि पुत्र ! ।
तत्पालनादस्तु सुखोपभोगो धर्मात् फलं प्राप्स्यसि चामरत्वम् ॥ ३५ ॥
धरामरान् पर्वसु तर्पयेथाः समीहितं बन्धुषु पूरयेथाः ।
हितं परस्मै हृदि चिन्तयेथा मनः परस्त्रीषु निवर्तयेथाः ॥ ३६ ॥
सदा मुरारिं हृदि चिन्तयेथास्तद्ध्यानतोऽन्तःषडरीञ्जयेथाः ।
मायां प्रबोधेन निवारयेथा ह्यनित्यतामेव विचिन्तयेथाः ॥ ३७ ॥
अर्थागमाय क्षितिपाञ्जयेथा यशोऽर्जनायार्थमपि व्ययेथाः ।
परापवादश्रवणाद्बिभीथा विपत्समुद्राज्जनमुद्धरेथाः ॥ ३८ ॥
यज्ञैरनेकैर्विबुधानजस्रमर्थैर्द्विजान् प्रीणय संश्रितांश्च ।
स्त्रियश्च कामैरतुलैश्चिराय युद्धैश्चारींस्तोषयितासि वीर ! ॥ ३९ ॥
बालो मनो नन्दय बान्धवानां गुरोस्तथाज्ञाकरणैः कुमारः ।
स्त्रीणां युवा सत्कुलभूषणानां वृद्धो वने वत्स ! वनेचराणाम् ॥ ४० ॥
राज्यं कुर्वन् सुहृदो नन्दयेथाः साधून् रक्षंस्तात ! यज्ञैर्यजेथाः ।
दुष्टान्निघ्नन् वैरिणश्चाजिमध्ये गोविप्रार्थे वत्स ! मृत्युं व्रजेथाः ॥ ४१ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे पुत्रायमदालसानुशासनवर्णनं नाम
षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥ *

---

* मोहमय्यां धनेट्टूगेश्वरमुद्रणालये प्रकाशितेऽत्र पुराणे द्वयोरध्याययोरैक्यम् ।

सप्तविंशोऽध्यायः

पुत्रायनृपनीतिविषयेराज्यतन्त्रानुशासनम्

जडउवाच

एवमुल्लाप्यमानस्तु सतु मात्रा दिने दिने। ववृधे वयसाबालोबुद्ध्याचालर्कसञ्ज्ञितः
सकौमारकमासाद्य ऋतध्वजसुतस्ततः। कृतोपनयनः प्राज्ञः प्रणिपत्याऽऽह मातरम्
मया यदत्र कर्त्तव्यमैहिकामुष्मिकाय वै। सुखाय यद् तत् सर्वं प्रश्रयावनतस्य मे॥
ममार्थं चैव धर्मार्थं प्रजानां चैव यद्धितम्। श्रेयसे यच्च तत्सर्वं प्रजारञ्जनमादितः॥

मदालसोवाच

वत्स! राज्येऽभिषिक्तेन प्रजारञ्जनमादितः। कर्त्तव्यमविरोधेन स्वधर्मस्य महीभृता
व्यसनानिपरित्यज्यसप्तमूलहराणिवै। आत्मारिपुभ्यः संरक्ष्योवहिर्मन्त्रविनिर्गमात्

अष्टधा नाशमाप्नोति सुचक्रात् स्यन्दनाद्यथा।
तथा राजाऽप्यसन्दिग्धं वहिर्मन्त्रविनिर्गमात्॥ ७॥

दुष्टादुष्टांश्च जानीयादमात्यानविदोषतः। चरैश्चरास्तथा शत्रोरन्वेष्टव्याः प्रयत्नतः॥
विश्वासो न तुकर्तव्योराज्ञामित्राप्तबन्धुषु। कार्ययोगादमित्रेऽपिविश्वसीतनराधिपः
स्थानवृद्धिक्षयज्ञेन षाड्गुण्यगुणिनात्मना। भवितव्यं नरेन्द्रेण न कामवशवर्त्तिना

प्रागात्मा मन्त्रिणश्चैव ततो भृत्या महीभृता।
जेयाश्चानन्तरं पौरा विरुध्येत ततोऽरिभिः॥ ११॥
यस्त्वेतानविजित्यैव वैरिणो विजिगीषते।
सोऽजितात्मा जितामात्यः शत्रुवर्गेण बाध्यते॥ १२॥

तस्मात्कामादयःपूर्वंजेयाः पुत्र!महीभुजा। तज्जयेहिजयोऽवश्यं राजानश्यतितैर्जितः
कामः क्रोधश्चलोभश्च मदोमानस्तथैव च। हर्षश्च शत्रवो ह्येतेविनाशायमहीभृताम्

कामप्रसक्तमात्मानं स्मृत्वा पाण्डुं निपातितम्।

निवर्तयेत्तथा क्रोधादनुह्राद हतात्मजम् ॥ १५ ॥
हतमैल तथालोभान्मदाद्वेनं द्विजैर्हतम् । मानादनायुष पुत्रं हतं हर्षात् पुरञ्जयम् ॥
एभिर्जितैर्जितं सर्वं मरुत्तेन महात्मना । स्मृत्वा विवर्जयेद्देतान्दोषान्स्वीयान्महीपतिः
काककोकिलभृङ्गाणां मृगव्यालशिखण्डिनाम् ।
हंसकुक्कुटलोहानां शिक्षेत चरितं नृप ॥ १८ ॥
कौशिकस्य क्रियां कुर्यात् विपक्षे मनुजेश्वर । चेष्टां पिपीलिकानाञ्च काले भूप प्रदर्शयेत्
ज्ञेयाग्निविस्फुलिङ्गानां बीजचेष्टा च शाल्मले । चन्द्रसूर्यस्वरूपेण नीत्यर्थे पृथिवीक्षिता
बन्धकीपद्मशरभशूलिकागुर्विणीस्तनात् । प्रज्ञा सामेन भेदेन प्रदानेन च पार्थिव ॥
दण्डेन च प्रकुर्वीत नीत्यर्थं पृथिवीक्षिता ।
प्रज्ञा नृपेण चादेया तथा गोपालयोषितः ॥ २२ ॥
शक्रार्कयमसोमानां तद्वद्वायोर्महीपतिः । रूपाणि पञ्च कुर्वीत महीपालनकर्मणि ॥
यथेन्द्रश्चतुरो मासान् तोयोत्सर्गेण भूगतम् । आप्याययेत्तथा लोकं परिहारैर्महीपतिः
मासानष्टौ यथा सूर्यस्तोयं हरति रश्मिभिः ।
सूक्ष्मेणैवाभ्युपायेन तथा शुल्कादिकं नृप ॥ २५ ॥
यथा यमः प्रियद्वेष्ये प्राप्तकाले नियच्छति । तथा प्रियाप्रिये राजा दुष्टादुष्टे समो भवेत्
पूर्णेन्दुमालोक्य यथा प्रीतिमान् जायते नरः । एवं यत्र प्रजाः सर्वा निर्वृतास्तच्छशिव्रतम्
मारुतः सर्वभूतेषु निगूढश्चरते यथा । एवं नृपश्चरेच्चारैः पौरामात्यादिबन्धुषु ॥ २८
न लोभाद्वा न कामाद्वा नार्थाद्वा यस्य मानसम् ।
यथाऽन्यैः कृष्यते वत्स ! स राजा स्वर्गमृच्छति ॥ २९ ॥
उत्पथग्राहिणो मूढान्स्वधर्माच्चलतो नरान् । यः करोति निजे धर्मे स राजा स्वर्गमृच्छति
वर्णधर्मा न सीदन्ति यस्य राष्ट्रे तथाऽऽश्रमाः ।
वत्स ! तस्य सुखं प्रेत्य परत्रेह च शाश्वतम् ॥ ३१ ॥
एतद्राज्ञः परं कृत्यं तथैतत् सिद्धिकारकम् । स्वधर्मस्थापनं नृणां चाल्यते यत्कुबुद्धिभिः
पालनेनैव भूतानां कृतकृत्यो महीपतिः । सम्यक्पालयिता भागं धर्मस्याप्नोति यत्ततः

एवमाचरतेराजाचातुर्वर्ण्यस्य रक्षणे। स सुखीविहरत्येष शक्रस्यैति सलोकताम्

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे पुत्रायनृपनीतिविषयेराज्यतन्त्रानुशासनवर्णनं
नाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

अष्टाविंशोऽध्यायः

वर्णाश्रमधर्मवर्णनेपुत्रानुशासनम्

जड (पुत्र) उवाच

तन्मातुर्वचनं श्रुत्वा सोऽलर्कोमातरंपुनः। पप्रच्छ वर्णधर्मांश्च धर्मान्ये चाश्रमेषु च

अलर्क उवाच

कथितोऽयं महाभागे! राज्यतन्त्राश्रितस्त्वया।
धर्मं तमहमिच्छामि श्रोतुं वर्णाश्रमात्मकम् ॥ २ ॥

मदालसोवाच

दानमध्ययनं यज्ञो ब्राह्मणस्यत्रिधामतः। नान्यश्चतुर्थोधर्मोऽस्तिधर्मस्तस्यपदंविना

याजनाध्यापनेशुद्धेतथापूतप्रतिग्रहः। एषासम्यक्समाख्यातात्रिविधाचास्यजीविका

दानमध्ययनंयज्ञःक्षत्रियस्याप्ययं त्रिधा। धर्मःप्रोक्तःक्षितेरक्षा शस्त्राजीवश्चजीविका

दानमध्ययनं यज्ञो वैश्यस्यापि त्रिधैव सः।
वाणिज्यं पाशुपाल्यञ्च कृषिश्चैवाऽस्य जीविका ॥ ६ ॥
दानं यज्ञोऽथ शुश्रूषा द्विजातीनां त्रिधा मया।
व्याख्यातः शूद्रधर्मोऽपि जीविका कारुकर्म (जा) च ॥ ७ ॥
तद्वद् द्विजातिशुश्रूषा पोषणं क्रयविक्रयौ (यैः)।
वर्णधर्मास्त्विमे प्रोक्ताः श्रूयन्तां चाश्रमाश्रयाः ॥ ८ ॥

यावत्तु नोपनयनं क्रियते वै द्विजन्मनः। कामचेष्टोक्तिभक्ष्यस्तु तावद्भवति पुत्रक
कृतोपनयनः सम्यक् ब्रह्मचारी गुरोर्गृहे। वसेत्तत्रास्य धर्मोऽयं कथ्यते तं निबोध मे
स्वाध्यायोऽथाग्निशुश्रूषा स्नानं भिक्षाटनं तथा। गुरोर्निवेद्य तच्चाद्यमनुज्ञातेन सर्वद
गुरोः कर्मणि सोद्योगः सम्यक् प्रीत्युपपादनम्। तेनाहूतः पठेच्चैव तत्परो नान्यमानस

एकं द्वौ सकलान् वापि वेदान् प्राप्य गुरोर्मुखात्।
अनुज्ञातोऽथ वन्दित्वा दक्षिणां गुरवे ततः ॥ १४ ॥
गार्हस्थ्याश्रमकामस्तु गृहस्थाश्रममावसेत्।
वानप्रस्थाश्रमं वापि चतुर्थं स्वेच्छयाऽऽत्मनः ॥ १५ ॥

तत्रैव वा गुरोर्गेहे द्विजो निष्ठामवाप्नुयात्। गुरोरभावे तत्पुत्रे तच्छिष्ये तत्सुतं विन
शुश्रूषुर्निरभिमानो ब्रह्मचर्याश्रमं वसेत्। उपावृत्तस्ततस्तस्मात् गृहस्थाश्रमकाम्य

ततोऽसमानर्षिकुलां तुल्यां भार्यामरोगिणीम्।
उद्वहेन्न्यायतोऽव्यङ्गां गृहस्थाश्रमकारणात् ॥ १८ ॥
स्वकर्मणा धनं लब्ध्वा पितृदेवातिथींस्तथा।
सम्यक् सम्प्रीणयेद्भक्त्या पोषयेदाश्रितांस्तथा ॥ १९ ॥
भृत्यात्मजान् जामयोऽथ दीनान्ध (पि) पतितानपि।
यथाशक्त्याऽन्नदानेन वयांसि पशवस्तथा ॥ २० ॥

एष धर्मो गृहस्थस्य ऋतावभिगमस्तथा। पञ्चयज्ञविधानं तु यथाशक्त्या न हापयेत्
पितृदेवातिथिज्ञातिभुक्तशेषं स्वयं नरः। भुञ्जीत च समं भृत्यैर्यथाविभवमादृतः।
एष तूद्देशतः प्रोक्तो गृहस्थस्याश्रमो मया। वानप्रस्थस्य धर्मांस्ते कथयाम्यवधार्यताम्
अपत्यसन्ततिं दृष्ट्वा प्राज्ञो देहस्य चानतिम्। वानप्रस्थाश्रमं गच्छेदात्मनः शुद्धिकारणात्
तत्रारण्योपभोगश्च तपोभिश्चात्मकर्षणम्। भूमौ शय्या ब्रह्मचर्यं पितृदेवातिथिक्रिया
होमस्त्रिषवणस्नानं जटावल्कलधारणम्। योगाभ्यासः सदा चैव वन्यस्नेहनिषेवणम्
इत्येष पापशुद्ध्यर्थमात्मनश्चोपकारकः। वानप्रस्थाश्रमस्तस्माद्भिक्षोस्तु परमोऽपर

चतुर्थस्य स्वरूपं तु श्रूयतामाश्रमस्य मे।

यः स्वधर्मोऽस्य धर्मज्ञैः प्रोक्तस्तात! महात्मभिः ॥ २८ ॥

सर्वसङ्गपरित्यागोब्रह्मचर्यमकोपिता। यतेन्द्रियत्वमावासे नैकस्मिन्वसतिश्चिरम्

अनारम्भस्तथाहारो भैक्षान्नेनैककालिना (भिक्षान्नं चैककालिकम्)।

आत्मज्ञानावबोधेच्छा तथा चात्मावलोकनम् ॥ ३० ॥

चतुर्थे त्वाश्रमे धर्मोमयाऽयं ते निवेदितः। सामान्यमन्यवर्णानामाश्रमाणाञ्चमेश्रृणु

सत्यं शौचमहिंसा च अनसूया तथा क्षमा।

आनृशंस्यमकार्पण्यं सन्तोषश्चाप्रमोगुणः ॥ ३२ ॥

एते सङ्क्षेपतः प्रोक्ता धर्मा वर्णाश्रमेषुने। एतेषुच स्वधर्मेषु स्वेषु तिष्ठेत् समन्ततः

यश्चोल्लङ्घ्य स्वकं धर्मं स्ववर्णाश्रमसञ्ज्ञितम्।

नरोऽन्यथा प्रवर्त्तेत स दण्ड्यो भूभृतोभवेत् ॥ ३४ ॥

येच स्वधर्मसन्त्यागात् पापंकुर्वन्ति मानवाः। उपेक्षतस्तान्नृपतेरिष्टापूर्त्तं प्रणश्यति

तस्माद्राज्ञा प्रयत्नेन सर्वे वर्णाः स्वधर्मतः।

प्रवर्त्तन्तोऽन्यथा दण्ड्याः स्थाप्याश्चैव स्वकर्मसु ॥ ३६ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे पुत्रानुशासने वर्णाश्रमधर्मवर्णनं

नामाष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

एकोनत्रिंशोऽध्यायः

गार्हस्थ्यकृत्यानांसमुपदेशवर्णनम्

अलर्क उवाच

यत् कार्यं पुरुषाणाञ्च गार्हस्थ्यमनुवर्त्तताम्।

बन्धश्च स्यादकरणे क्रियाया यस्य चोच्छ्रितिः ॥ १ ॥

उपकाराय यन्नृणां यच्चवर्ज्यं गृहे सताम्। यथाच क्रियतेतन्मेयथावत् पृच्छतो वद

[illegible]

[illegible] ([illegible]) [illegible] ।

[illegible] ॥ ३ ॥

[illegible] । [illegible]

[illegible] च ।

[illegible] ॥ ५ ॥

[illegible] । [illegible]

[illegible] । [illegible]

[illegible] । [illegible]

[illegible] ! ।

[illegible] ॥ ६ ॥

[illegible] । [illegible] ॥

[illegible] । [illegible]

[illegible] । [illegible]

[illegible] ॥ १३ ॥

[illegible] । [illegible]

[illegible] । [illegible]

तस्मात् [illegible] । [illegible]

तस्मात् स्नात्वा शुचिर्भूत्वा देवर्षिपितृतर्पणम् ।

[illegible] कुर्यात् समाहितः ॥ १९ ॥

[illegible] । ततोऽग्नेस्तर्पणं कुर्याद् [illegible]

[illegible] । [illegible]

प्राच्यां शक्राय याम्यायां यमाय बलिमाहरेत् ।

प्रतीच्यां वरुणायाथ सोमायोत्तरतो बलिम् ॥ २० ॥

दद्याद्धात्रेविधात्रे चवलिद्वारे गृहस्यतु । अर्य्यम्णेऽथ वहिर्दद्याद्गृहेभ्यश्चसमन्ततः

नक्तञ्चरेभ्यो भूतेभ्यो वलिमाकाशतोहरेत् ।

पितृणां निर्वपेच्चैव दक्षिणाभिमुखस्थितः ॥ २२ ॥

गृहस्थस्तत्परो भूत्वा सुसमाहितमानसः । ततस्तोयमुपादाय तेषामाचमनाय वै

स्थानेषु निक्षिपेत् प्राज्ञस्तास्ताउद्दिश्यदेवताः । एवंगृहवलिंकृत्वागृहेगृहपतिःशुचिः

आप्यायनाय भूतानां कुर्यादुत्सर्गमादरात् ।

श्वभ्यश्च श्वपचेभ्यश्च वयोभ्यश्चावपेद्भुवि ॥ २५ ॥

वैश्वदेवंहिनामैतत् सायंप्रातरुदाहृतम् । आचम्यच ततः कुर्यात्प्राज्ञोद्वारावलोकनम्

मुहूर्त्तस्याष्टमं भागमुदीक्ष्योऽप्यतिथिर्भवेत् । अतिथिंतत्र सम्प्राप्तमन्नाद्येनोदकेन च

सम्पूजयेद्यथाशक्ति गन्धपुष्पादिभिस्तथा ।

नमित्रमतिथिं कुर्यान्नैकग्रामनिवासिनम् ॥ २८ ॥

अज्ञातकुलनामानं तत्कालसमुपस्थितम् । वुभुक्षुमागतं श्रान्तं याचमानमकिञ्चनम्

ब्राह्मणंप्राहुरतिथिंसपूज्यःशक्तितोवुधैः । नपृच्छेद्गोत्रचरणंस्वाध्यायञ्चापिपण्डितः

शोभनाशोभनाकारं तं मन्येत प्रजापतिम् ।

अनित्यं हि स्थितो यस्मात्तस्मादतिथिरुच्यते ॥ ३१ ॥

तस्मिंस्तृप्ते नृयज्ञोत्थादृणान्मुच्येद् गृहाश्रमी ।

तस्याअदत्त्वा तुयो भुङ्क्ते स्वयं किल्विषभुङ्नरः ॥ ३२ ॥

सपापं केवलं भुङ्क्ते पुरीषञ्चान्यजन्मनि । अतिथिर्यस्य भग्नाशोगृहात्प्रतिनिवर्त्तते

स दत्त्वा दुष्कृतं तस्मै पुण्यमादाय गच्छति ।

अप्यम्वुशाकदानेन यच्चाप्यश्नाति स स्वयम् ॥ ३४ ॥

पूजयेत्तु नरः शक्त्या तेनैवातिथिमादरात् । कुर्याच्चाहरहः श्राद्धमन्नाद्येनोदकेन च ॥

पितॄनुद्दिश्य विप्रांश्च भोजयेद्विप्रमेव वा । अन्नस्याग्रं तदुद्धृत्यब्राह्मणायोपपादयेत्

भिक्षाञ्च याचितां दद्यात् परिव्राड्व्रह्मचारिणाम् ।

ग्रासप्रमाणा भिक्षा स्यादग्रं ग्रासचतुष्टयम् ॥ ३७ ॥

श्वमे चतुर्गुणं प्राहुर्हन्तकारं द्विजोत्तमाः । भोजनं हन्तकारं वाग्रं भिक्षामथापि वा

अदत्त्वा न भोक्तव्यं यथाविभवमात्मनः ।

पूजयित्वाऽतिथीन् विप्रान् ज्ञातीन् बन्धूंस्तथार्थिनः ॥ ३९ ॥

विकलान् बालवृद्धांश्च भोजयेच्चातुरांस्तथा ।

वाञ्छते क्षुत्परीतात्मा यश्चान्योऽप्यकिञ्चनः ॥ ४० ॥

कुटुम्बिना भोजनीयः समर्थोऽपि विभवे सति । श्रीमन्तं ज्ञातिमासाद्य यो ज्ञातिरवसीदति

सीदता यत् कृतं तेन तत्पापं स समश्नुते । सायं चैव विधिः कार्यः सूर्योढमथातिथिम्

पूजयेच्च यथाशक्ति शयनासनभोजनैः । एवमुद्वहतस्तात ! गार्हस्थ्यं भारमाहितम्

स्कन्धं विधाता देवाश्च पितरश्च महर्षयः । श्रेयोऽभिवर्षिणः सर्वे तथैवातिथिबान्धवाः

पशुपक्षिगणास्तुष्टा ये चान्ये सूक्ष्मकीटकाः । गाथाश्चात्र महाभाग ! स्वयमत्रिरगायत

ताः शृणुष्व महाभाग ! गृहस्थाश्रमसंस्थिताः ।

देवान् पितॄंश्चातिथींश्च तद्वत् सम्पूज्य बान्धवान् ॥ ४६ ॥

आमयश्च गुरुश्चैव गृहस्थोऽपि विभवे सति । श्वभ्यश्च श्वपचेभ्यश्च वयोभ्यश्चावपेद्भुवि

वैश्वदेवं हि नामैतत् कुर्यात् सायं तथा दिवे ।

मांसमन्नं तथा शाकं गृहे यच्चोपसाधितम् ॥

न च तत् स्वयमश्नीयाद्विधिवद्यन्न निर्वपेत् ॥ ४८ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे मदालसोपदेशवर्णनं नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

त्रिंशोऽध्यायः

नैमित्तिकादिश्राद्धकल्पवर्णनम्

मदालसोवाच

नित्यं नैमित्तिकंचैव नित्यनैमित्तिकंतथा । गृहस्थस्य तुयत्कर्म तन्निशामयपुत्रक!
पञ्चयज्ञश्रितंनित्यं यदेतत् कथितंतव । नैमित्तिकं तथैवान्यत् पुत्रजन्मक्रियादिकम्
नित्यनैमित्तिकं ज्ञेयं पर्वश्राद्धादि पण्डितैः । तत्र नैमित्तिकं वक्ष्ये श्राद्धमभ्युदयंतव
पुत्रजन्मनि यत्कार्यं जातकर्म समं नरैः । विवाहादौचकर्त्तव्यंसर्वंसम्यक्क्रमोदितम्

पितरश्चात्र सम्पूज्याः ख्याताः नान्दीमुखास्तु ये ।
पिण्डांश्च दधिसंमिश्रान्दद्याद्यवसमन्वितान् ॥ ५ ॥
उदङ्मुखः प्राङ्मुखो वा यजमानः समाहितः ।
वैश्वदेवविहीनन्तत्केचिदिच्छन्ति मानवाः ॥ ६ ॥
युग्माश्चात्र द्विजाः कार्यास्ते च पूज्याः प्रदक्षिणम् ।
एतन्नैमित्तिकं वृद्धौ तथान्यच्चौर्ध्वदेहिकम् ॥ ७ ॥

मृताहनि च कर्त्तव्यमेकोद्दिष्टं शृणुष्व तत् । दैवहीनंतथैकाऽर्घ्यंतथैवैकपवित्रकम्
आवाहनं न कर्त्तव्यमग्नौ करणवर्जितम् । प्रेतस्य पिण्डमेकञ्च दद्यादुच्छिष्टसन्निधौ
तिलोदकंचापसव्यंतन्नामस्मरणान्वितम् । अक्षय्यममुकस्येति स्थानेविप्रविसर्जने

अभिरम्यतामिति ब्रूयाद् ब्रूयुस्तेऽभिरताः स्मह ।
प्रतिमासं भवेदेतत्कार्यमावत्सरं नरैः ॥ ११ ॥

अथ संवत्सरे पूर्णे यदा वा क्रियतेनरैः । सपिण्डीकरणंकार्यं तस्यापिविधिरुच्यते
तत्रापि दैवरहितमेकार्घैकपवित्रकम । नैवाग्नौ करणं तत्र तच्चावाहनवर्जितम् ॥

अपसव्यञ्च तत्रापि भोजयेदयुजो द्विजान् ।
विशेषस्तत्र चान्योऽस्ति प्रतिमासं क्रियाधिकः ॥ १४ ॥

तं कथ्यमानमेकाग्रो मद्वचस्त्वं निशामय ।
तिलगन्धोदकैर्युक्तं तत्र पात्रचतुष्टयम् ॥ १५ ॥

कुर्य्यात्पितॄणां त्रितयमेकं प्रेतस्य पुत्रक । पात्रत्रये प्रेतपात्रमर्घ्यं श्रेष प्रसेचयेत् ।
ये समाना इति जपन् पूर्ववच्छेषमाचरेत् । स्त्रीणामप्येवमेवैतदेकोद्दिष्टमुदाहृतम्
सपिण्डीकरणं तासां पुत्राभावे न विद्यते । प्रतिसंवत्सरं कार्यमेकोद्दिष्टं नरैः स्त्रिया
मृताहनि यथान्यायं नृणां यद्वदिहोदितम् । पुत्राभावे सपिण्डास्तु तदभावे सहोदकाः

मातुः सपिण्डा ये च स्युर्ये च मातुः सहोदकाः ।
कुर्युरेनं विधिं सम्यगपुत्रस्य सुतासुतः ॥ २० ॥
कुर्युर्मातामहायैवं पुत्रिकातनयास्तथा ।
द्व्यामुष्यायणसंज्ञास्तु मातामहपितामहात् ॥ २१ ॥

पूजयेयुर्यथान्यायं श्राद्धैर्नैमित्तिकैरपि । सर्वाभावे स्त्रियः कुर्युः स्वभर्तॄणाममन्त्रकम्

तदभावे [illegible] नृपतिः कारयेत् स्वकुटुम्बिना ।
तज्जातीयैर्नरैः सम्यग् दाहाद्याः सकलाः क्रियाः ॥ २३ ॥
सर्वेषामेव वर्णानां बान्धवो नृपतिर्यतः ।
एतास्ते कथिता वत्स नित्यनैमित्तिका क्रियाः ॥ २४ ॥
क्रिया श्राद्धाश्रयामन्यां नित्यनैमित्तिकीं शृणु ।
दर्शस्तत्र निमित्तं वै कालश्चन्द्रक्षयात्मकः ।
नित्यतां नियतः कालस्तस्याः संसूचयत्यथ ॥ २५

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे मदालसोपाख्यानेऽलर्कानुशासने गार्हस्थ्यकथने
नैमित्तिकादिश्राद्धकल्पवर्णनं नाम त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

एकत्रिंशोऽध्यायः

पार्वणश्राद्धकल्पवर्णनम्

मदालसोवाच

सपिण्डीकरणाद्दूर्ध्वं पितुर्यः प्रपितामहः । सतुलेपभुजोयातिप्रलुप्तःपितृपिण्डतः
तेषामन्यश्चतुर्थो यः पुत्रलेपभुजान्नभुक् । सोऽपि सम्बन्धतो हीनमुपभोगं प्रपद्यते
पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः । पिण्डसम्बन्धिनो ह्येते विज्ञेया पुरुषास्त्रयः
लेपसम्बन्धिनश्चान्ये पितामहपितामहात् । प्रभृत्युक्तास्त्रयस्तेषां यजमानश्च सप्तमः

इत्येष मुनिभिः प्रोक्तः सम्बन्धः साप्तपौरुषः ।
यजमानात्प्रभृत्यूर्ध्वमनुलेपभुजस्तथा ॥ ५ ॥
ततोऽन्ये पूर्वजाः सर्वे ये चान्ये नरकौकसः ।
ये च तिर्यक्त्वमापन्ना ये च भूतादिसंस्थिताः ॥ ६ ॥
तान् सर्वान् यजमानो वै श्राद्धं कुर्वन् यथाविधि ।
समाप्यायथते वत्स ! येन येन शृणुष्व तत् ॥ ७ ॥

अन्नप्रकिरणं यत्तु मनुष्यैः क्रियते भुवि । तेन तृप्तिमुपायान्तियेपिशाचत्वमागता
यदम्बुस्नानवस्त्रोत्थं भूमौ पतति पुत्रक । तेन ते तरुतांप्राप्तास्तेषांतृप्तिःप्रजायते

यास्तु गात्राम्बुकणिकाः पतन्ति धरणीतले ।
ताभिराप्यायनं तेषां ये देवत्वं कुले गताः ॥ १० ॥
उद्धृतेष्वथ पिण्डेषु याश्चान्नकणिका भुवि ।
ताभिराप्यायनं प्राप्ता ये तिर्यक्त्वं कुले गताः ॥ ११ ॥
ये वा दग्धाः कुले बालाः क्रियायोग्या ह्यसंस्कृताः ।
विपन्नास्तेऽन्नविकिरसम्मार्जनजलाशिनः ॥ १२ ॥

भुक्त्वा चाचामतां यच्च जलंयच्चाङ्घ्रिसेचने । ब्राह्मणानांतथैवान्येतेनतृप्तिंप्रयान्तिवै

पिशाचत्वमनुयाता कृमिकीटत्वमेव ये ॥ १३ ॥
एव यो यजमानस्ययश्चतेषाद्विजन्मनाम् । कश्चिज्जलान्नविक्षेप शुचिरुच्छिष्टएवषा
तेन तेन कुले तत्र तत्तद्योन्यन्तरं गता ।
प्रयान्त्याप्यायन वत्स सम्यक्श्राद्धक्रियावताम् ॥ १५ ॥
अन्यायोपार्जितैरर्थैर्यच्छ्राद्ध क्रियते नरै.। तृप्यन्ते तेन चाण्डालपुक्कसाद्यासुयोनिषु
एवमाप्यायन वत्स ! बहूनामिह बान्धवैः ।
श्राद्ध कुर्वद्भिरन्नाम्बु (शाकैरपिहि) बिन्दुक्षेपेण जायते ॥ १७ ॥
तस्माच्छ्राद्ध नरो भक्त्या शाकैरपि यथाविधि ।
कुर्वीत कुर्वत श्राद्ध कुले कश्चिन्न सीदति ॥ १८ ॥
तस्य कालानहं वक्ष्ये नित्यनैमित्तिकात्मकान् ।
विधिना येन च नरै: क्रियते तन्निबोध मे ॥ १९ ॥
कार्यं श्राद्धममावास्या मासि मास्युडुपक्षये ।
तथाऽष्टकास्वप्यवश्य मिच्छाकालान्निबोध मे ॥ २० ॥
विशिष्टब्राह्मणप्राप्तौ सूर्येन्दुग्रहणेऽयने । विषुवेरविसङ्क्रान्तौव्यतीपाते च पुत्रक !
श्राद्धार्हद्रव्यसम्प्राप्तौ तथादुःस्वप्नदर्शने । जन्मर्क्षग्रहपीडासु श्राद्ध कुर्वीत चेच्छया
विशिष्ट श्रोत्रियो योगी वेदविज्ज्येष्ठसामग ।
त्रिणाचिकेत त्रिमधुस्त्रिसुपर्ण षडङ्गवित् ॥ २२ ॥
त्रिणाचिकेत श्रुतवान विहतव्रतकारक ।
दौहित्रऋत्विग्जामातृस्वस्रीया श्वशुरस्तथा ।
पञ्चाग्निकर्मनिष्ठश्च तपोनिष्ठोऽथ मातुल ॥ २४ ॥
मातापितृपरश्चैव शिष्यसम्बन्धिबान्धवा । एतेद्विजोत्तमाःश्राद्धेसमस्ताःकेतनक्षमाः
अवकीर्णीतथारोगीन्यूनेचाङ्गेतथाधिके । पौनर्भवस्तथाकाण कुण्डोगोलोऽपुत्रक!
मित्रध्रुक् कुनखी क्लीब श्यावदन्ता निराकृति ।
अभिशस्तस्तु तातेन पिशुन सोमविक्रयी ॥ २७ ॥

कन्यादूषयितावैद्योगुरुपित्रोस्तथोज्झकः। भृतकाध्यापकोमित्रःपरपूर्वापतिस्तथा
वेदोज्झोऽथाग्निसन्त्यागी वृषलीपतिदूषितः।
तथाऽन्ये च विकर्मस्था वर्ज्याःपैत्रेषु वै द्विजाः ॥ २६ ॥
निमन्त्रयेत पूर्वेद्युः पूर्वोक्तान्द्विजसत्तमान्। दैवेनियोगेपित्र्येचतांस्तथैवोपकल्पयेत्
तैश्च संयतिभिर्भाव्यं यश्च श्राद्धं करिष्यति।
श्राद्धं दत्त्वा च भुक्त्वा च मैथुनं योऽनुगच्छति ॥ ३१ ॥
पितरस्तु तयोर्मासं तस्मिन् रेतसि शेरते।
गत्वा च योषितं श्राद्धे यो भुङ्क्ते यश्च गच्छति ॥ ३२ ॥
रेतोमूत्रकृताहारास्तन्मासं पितरस्तयोः। तस्मात्तु प्रथमं कार्यं प्राज्ञेनोपनिमन्त्रणम्
अप्राप्तौ तद्दिने चापि वर्ज्या योषित्प्रसङ्गिनः।
भिक्षार्थमागतान् वाऽपि काले संयमिनो यतीन् ॥ ३४ ॥
भोजयेत् प्रणिपाताद्यैः प्रसाद्य यतमानसः। यथैवशुक्लपक्षाद्वैपितृणामसितः प्रियः
तथापराह्णः पूर्वाह्णात्पितृणामतिरिच्यते। संपूज्यस्वागतेनैतानभ्युपेतान् गृहेद्विजान्
पवित्रपाणिराचान्तानासनेषूपवेशयेत्। पितृणामयुजः कामं युग्मान्देवेद्विजोत्तमान्
एकैकं वापितृणाञ्च देवानाञ्च स्वशक्तितः। तथामातामहानाञ्चतुल्यंवावैश्वदेविकम्
पृथक् तयोस्तथा चान्ये केचिदिच्छन्ति मानवाः।
प्राङ्मुखान्दैवसङ्कल्पान् पैत्र्यान् कुर्यादुदङ्मुखान् ॥ ३६ ॥
तथैवमातामहानांविधिरुक्तोमनोषिभिः। विष्टरार्थेकुशानदत्त्वापूज्यचार्घ्यादिनाबुधः
पवित्रकादि वै दत्त्वा तेभ्योऽनुज्ञामवाप्य च।
कुर्यादावाहनं प्राज्ञो देवानां मन्त्रतो द्विजः ॥ ४१ ॥
यवाम्भोभिस्तथा चार्घ्यं दत्त्वा वै वैश्वदेविकम्।
गन्धमाल्याम्बु धूपञ्च दत्त्वा सम्यक् सदीपकम् ॥ ४२ ॥
अपसव्यं पितृणाञ्चसर्वमेवोपकल्पयेत्। दर्भांश्च द्विगुणानदत्त्वातेभ्योऽनुज्ञामवाप्यच
मन्त्रपूर्वं पितृणाञ्च कुर्य्यादावाहनं बुधः। अपसव्यं तथा चार्घ्यंयवार्थेच तथातिलैः

ततस्तदन्नं भुञ्जीत सह भृत्यादिभिर्नरः। एवं कुर्वीतधर्मज्ञः श्राद्धं पित्र्यं समाहितः
यथा वा द्विजमुख्यानां परितोषोऽभिजायते।
त्रीणि श्राद्धे पवित्राणि दौहित्रं कुत (तु) पस्तिलाः॥ ६३॥
वर्ज्यानिवाहुर्विप्रेन्द्र कोपोऽध्वगमनंत्वरा। राजतञ्च तथा पात्रं शस्तंश्राद्धेषु पुत्रक!
रजतस्य तथा कार्यं दर्शनं दानमेव वा। राजतेहिस्वधादुग्धा पितृभिः श्रूयतेमही
तस्मात् पितृणां रजतमभीष्टं प्रीतिवर्द्धनम्॥ ६५॥
इतिश्रीमार्कण्डेयपुराणेऽलर्कानुशासने पार्वणश्राद्धकल्पवर्णनंनाम
एकत्रिंशोऽध्यायः॥ ३१॥

द्वात्रिंशोऽध्यायः

श्राद्धकल्पवर्णनम्

मदालसोवाच

अतःपरं शृणुष्वेमं पुत्रभक्त्यायदाहृतम्। पितृणांप्रीतयेयद्वावर्ज्यं वा प्रीतिकारकम्
मासंपितृणांतृप्तिश्चहविष्यान्नेनजायते। मासद्वयंमत्स्यमांसैस्तृप्तियान्तिपितामहाः
त्रीन्मासान् हारिणं मांसं विज्ञेयंपितृतृप्तये।
चतुर्मासांस्तु पुष्णाति शशस्य पिशितं पितॄन्॥ ३॥
शाकुनं पञ्च वै मासान् षण्मासान् शूकरामिषम्।
छागलं सप्त वै मासानैणेयञ्चाष्टमासिकीम्॥ ४॥
करोति तृप्तिं नववै रुरोर्मांसं न संशयः। गवयस्यामिषंतृप्तिं करोति दशमासिकम्
तथैकादशमासांस्तु औरभ्रं पितृतृप्तिदम्। सम्वत्सरंतथा गव्यं पयः पायसमेव वा
वार्ध्रीणसामिषंलौहंकालशाकंतथामधु। दौहित्रामिषमन्यच्चयच्चान्यत्स्वकुलोद्भवैः
अनन्तां वै प्रयच्छन्ति तृप्तिं गौरीसुतस्तथा।

पितॄणां नात्र सन्देहो गयाश्राद्धञ्च पुत्रक ॥ ८ ॥
श्यामाकराजश्यामाकौ तद्वच्चैव प्रसातिकाः ।
नीवाराः पौष्कलाश्चैव धान्यानां पितृतृप्तये ॥ ९ ॥
यवव्रीहिसगोधूमतिलमुद्गाः ससर्षपाः । प्रियङ्गवः कोविदारा निष्पावाश्चातिशोभनाः
वर्ज्या मर्कटकाः श्राद्धे राजमाषास्तथाणवः । विप्रुषी मसूराश्च श्राद्धकर्मणि गर्हिताः
लशुनं गृञ्जनं चैव पलाण्डुं पिण्डमूलकम् । करम्भाद्यानि चान्यानि हीनानि रसवर्णतः
गान्धारिकामलाबूनि लवणान्यूषराणि च । आरक्ता ये च निर्यासाः प्रत्यक्षलवणानि च
वर्ज्यान्येतानि वै श्राद्धे यच्च वाचा न शस्यते ।
उत्कोचात् प्राप्तं पतितात्समुपार्जितम् ॥ १४ ॥
अन्यायकन्याशुल्कोत्थं द्रव्यञ्चात्र विगर्हितम् ।
दुर्गन्धि फेनिलञ्चाम्बु तथैवाल्पतरोदकम् ॥ १५ ॥
न लभेद्यत्र गौस्तृप्तिं नक्तं यच्चाप्युपाहृतम् । यन्न सर्वापसृष्टं यच्चाभोज्यनिपानजम्
तद्वर्ज्यं सलिलं तात सदैव पितृकर्मणि । मार्गमाविकमौष्ट्रञ्च सर्वमैकशफञ्च यत्
माहिषञ्चामरञ्चैव धेन्वा गोश्चाप्यनिर्दशम् ।
पित्रर्थं मे प्रयच्छन्ते पुत्रा यच्चाप्युपाहृतम् ॥ १८ ॥
वर्जनीयं सदा सद्भिस्तत्पय श्राद्धकर्मणि । वर्ज्या जन्तुमती रूक्षा क्षितिः प्लुष्टा तथाग्निना
अनिष्टदुष्टशब्दोग्रदुर्गन्धा चात्र कर्मणि । कुलापमानकाः श्राद्धे स्यापुत्र्य कुलहिंसकाः
नग्नाः पातकिनश्चैव हन्युः श्राद्धं पितृक्रियाम् । अपुमानपविद्धश्च कुक्कुटो ग्रामशूकरः
श्वा चैव हन्ति श्राद्धानि यातुधानाश्च दर्शनात् ।
तस्मात्सुसंवृतो दद्यात्तिलैश्चावकिरन्महीम् ॥ २२ ॥
एवं रक्षा भवेच्छ्राद्धे कृता तात तयोरपि । शावसूतकसंस्पृष्टं दीर्घरोगिभिरेव च ॥
पतितैर्मलिनैश्चैव न पुष्णाति पितामहान् । वर्जनीयं तथा श्राद्धे रजस्वलाया दर्शनम्
मुण्डशौण्डसमाभ्यासो यजमानेन चादरात् । केशकीटावपन्नं च तथा श्वभिरवेक्षितम्
पूतिपर्युषितं चैव वार्त्ताकाभिषवास्तथा । वर्जनीयानि वै श्राद्धे यच्च वस्त्रानिलाहतम्

श्रद्धया परया दत्तं पितृणां नामगोत्रतः । यदाहारास्तु ते जातास्तदाहारत्वमेति तत्
तस्माच्छ्रद्धावता (युत) पात्रे यच्छस्तं (यच्छत्वं) पितृकर्मणि ।
यथावच्चैव दातव्यं पितृणां तृप्तिमिच्छता ॥ २८ ॥
योगिनश्च सदा श्राद्धे भोजनीया विपश्चिता ।
योगाधारा हि पितरस्तस्मात्तान् पूजयेत् सदा ॥ २९ ॥
ब्राह्मणानां सहस्रेभ्यो योगी त्वग्राशनो यदि ।
यजमानञ्च भोक्तृंश्च नौरिवाऽम्भसि तारयेत् ॥ ३० ॥
पितृगाथास्तथैवात्र गीयन्ते ब्रह्मवादिभिः । या गीताः पितृभिः पूर्वमैलस्यासीन्महीपतेः
कदा नः सन्ततावग्र्यः कस्यचिद्भविता सुतः ।
यो योगिभुक्तशेषान्नो भुवि पिण्डं प्रदास्यति ॥ ३२ ॥
गयायामथवा पिण्डं खड्गमांसं महाहविः । कालशाकं तिलाढ्यं वा कृसरं मासतृप्तये
वैश्वदेव्यञ्च सौम्यञ्च खड्गमांसं परं हविः । विषाणवर्ज्यं खड्गाप्त्या आसूर्यञ्चाश्नुवामहे
दद्याच्छ्राद्धं त्रयोदश्यां मघासु च यथाविधि ।
मधुसर्पिःसमायुक्तं पायसं दक्षिणायने ॥ ३५ ॥
तस्मात्सम्पूजयेत् भक्त्या स्वपितॄन् पुत्र! मानवः (यतमानसः) ।
कामानभीप्सन् सकलान् पापाच्चात्मविमोचनम् ॥ ३६ ॥
वसून्रुद्रांस्तथादित्यान्नक्षत्रग्रहतारकाः । प्रीणयन्ति मनुष्याणां पितरः श्राद्धतर्पिताः
आयुः प्रज्ञां धनं विद्यां स्वर्गं मोक्षं सुखानि च ।
प्रयच्छन्ति तथा राज्यं पितरः श्राद्धतर्पिताः ॥ ३८ ॥
एतत्ते पुत्र! कथितं श्राद्धकर्म यथोदितम् ।
काम्यानां श्रूयतां वत्स! श्राद्धानां तिथिकीर्तनम् ॥ ३९ ॥
इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेऽलर्कानुशासने श्राद्धकल्पवर्णनं
नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

काम्यश्राद्धफलवर्णनम्

मदालसोवाच

प्रतिपद्धनलाभाय द्वितीया द्विपदप्रदा। वरार्थिना तृतीया तु चतुर्थी शत्रुनाशिनी

श्रिय प्राप्नोति पञ्चम्या षष्ठ्या पूज्यो भवेन्नर

गाणाधिपत्यं (राजाधिपत्यं) सप्तम्यामष्टम्या वृद्धिमुत्तमाम् ॥ २ ॥

स्त्रियो नवम्या प्राप्नोति दशम्या पूर्णकामताम् ।

वेदांस्तथाप्नुयात् सर्वानेकादश्या क्रियापर ॥ ३ ॥

द्वादश्या जयलाभञ्च प्राप्नोति पितृपूजक । प्रजामेधापशु वृद्धि स्वातन्त्र्यपुष्टिमुत्तमाम्

दीर्घमायुरथैश्वर्यं कुर्वाणस्तु त्रयोदशीन् । अवाप्नोति न सन्देह श्राद्ध श्रद्धापरो नर

यथासम्भाषिताशेषश्राद्धस्वरूप समन्वित । युवान पितरो यस्य मृता शस्त्रेण वा हता

तेन कार्यं चतुर्दश्या तेषा तृप्तिमभीप्सता । श्राद्धं कुर्वन्नमावास्यायत्नेन पुरुष शुचि

सर्वान्कामानवाप्नोति स्वर्गञ्चानन्त्यमश्नुते। कृत्तिकासु पितॄनर्च्य स्वर्गमाप्नोति मानव

अपत्यकामो रोहिण्या सौम्ये चौजस्विता लभेत् ।

शौर्यमार्द्रासु चाप्नोति क्षेत्रादि च पुनर्वसौ ॥ ६ ॥

पुष्टि पुष्ये सदाऽभ्यर्च्य आश्लेषासु वरान् सुतान् ।

मघासु स्वजनश्रैष्ठ्य सौभाग्य फल्गुनीषु च ॥ १० ॥

प्रदानशीलो भवति साप यश्चोत्तरासु वै । प्रयाति श्रेष्ठता सत्सु हस्ते श्राद्धप्रदो नर

रूपयुक्तश्च चित्रासु तथाऽपत्यान्यवाप्नुयात् ।

वाणिज्यलाभदा स्वातिर्विशाखा पुत्रकामदा ॥ १२ ॥

कुर्वंतश्चानुराधासु ता दद्युश्चक्रवर्तिताम् । आधिपत्यञ्च ज्येष्ठासु मूले चारोग्यमुत्तमम्

श्रवणे च शुभान् लोकान् धनिष्ठासु धनं महत् ॥ १४ ॥
वेदवित्त्वमभिजिति भिषक्सिद्धिन्तु वारुणे ।
अजाविकं प्रोष्ठपदे विद्यागावस्तथोत्तरे ॥ १५ ॥
रेवतीषु तथा कुप्यमश्विनीषुतुरङ्गमान् । श्राद्धं कुर्वंस्तथाप्नोतिभरणीष्वायुरुत्तमम्
तस्मात्काम्यानि कुर्वीत ऋक्षेष्वेतेषु तत्त्ववित् ॥ १६ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेऽलर्कानुशासनेकाम्यश्राद्धफलवर्णनं नाम
त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥

चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

मदालसालर्कसम्वादेसदाचारवर्णनम्

मदालसोवाच

एवं पुत्र!गृहस्थेनदेवताःपितरस्तथा । सम्पूज्या हव्यकव्याभ्यामन्नेनातिथिबान्धवाः
भूतानि भृत्याः सकलाः पशुपक्षिपिपीलिकाः ।
भिक्षवो याचमानाश्च ये चान्ये वसता गृहे ॥ २ ॥
सदाचारवता तातसाधुनागृहमेधिना । पापंभुङ्क्तेसमुलङ्घ्यनित्यनैमित्तिकीःक्रियाः

अलर्क उवाच

कथितं मे त्वयामातर्नित्यंनैमित्तिकञ्चयत् । नित्यनैमित्तिकञ्चैवत्रिविधंकर्मपौरुषम्
सदाचारमहं श्रोतुमिच्छामिकुलनन्दिनि !। यत्कुर्वन् सुखमाप्नोतिपरत्रेहच मानवः

मदालसोवाच

गृहस्थेन सदा कार्यमाचारपरिपालनम् । न ह्याचारविहीनस्य सुखमत्रपरत्र वा
यज्ञदानतपांसीह पुरुषस्य न भूतये । भवन्ति यः सदाचारं समुल्लङ्घ्य प्रवर्त्तते ॥
दुराचारो हि पुरुषो नेहायुर्विन्दते महत् ।कार्योयत्नःसदाचारेआचारोहन्त्यलक्षणम्

तस्य स्वरूपं वक्ष्यामि सदाचारस्य पुत्रक ।
तन्ममैकमना (समाहितमना) श्रुत्वा तथैव परिपालय ॥ १० ॥
त्रिवर्गसाधने यत्नः कर्तव्यो गृहमेधिना । तत्संसिद्धौ गृहस्थस्य सिद्धिरत्र परत्र च
पादेनार्थस्य पारत्र्यं कुर्यात्सञ्चयमात्मवान् ।
अर्धेन चात्मभरणं नित्यनैमित्तिकान्वितम् ॥ ११ ॥
पादञ्चात्मार्थमायस्य मूलभूतं विवर्धयेत् । एवमाचरतः पुत्र अर्थः साफल्यमर्हति ॥
तद्वत्पापनिषेधार्थं धर्मः कार्यो विपश्चिता । परत्रार्थं तथैवान्यः कामोऽत्रैव फलप्रदः
प्रत्यवायभयात्कामस्तथान्यश्चाविरोधवान् ।
द्विधा कामोऽपि गदितस्त्रिवर्गस्याविरोधतः ॥ १४ ॥
परम्परा (परस्परा) नुबन्धांश्च सर्वानेतान् विचिन्तयेत् ।
विपरीतानुबन्धांश्च धर्मादींस्तान् शृणुष्व मे ॥ १५ ॥
धर्मो धर्मानुबन्धार्थो धर्मो नात्मार्थबाधकः । उभाभ्यां च द्विधा कामस्तेन तौ च द्विधा पुनः
ब्राह्मे मुहूर्ते बुध्येत धर्मार्थौ चापि चिन्तयेत् ।
उत्थायावश्यकं कृत्वा कृतशौचः समाहितः ।
समुत्थाय तथाऽऽचम्य प्राङ्मुखो नियतः शुचिः ॥ १७ ॥
पूर्वां सन्ध्यां सनक्षत्रां पश्चिमां सदिवाकराम् ।
उपासीत यथान्यायं नैनां जह्यादनापदि ॥ १८ ॥
असत्प्रलापमनृतं वाक्पारुष्यं च वर्जयेत् । असच्छास्त्रमसद्वादमसत्सेवां च पुत्रक
सायं प्रातस्तथा होमं कुर्वीत नियतात्मवान् । नोद्यन्तमस्तं बिम्बमुदीक्षेत विवस्वतः
केशप्रसाधनादर्शदन्तधावनमञ्जनम् । पूर्वाह्ण एव कार्याणि देवतानां च तर्पणम् ॥
ग्रामावसथतीर्थानां क्षेत्राणां चैव वर्त्मनि । विण्मूत्रं नानुतिष्ठेत न कृष्टे न च गोव्रजे
नग्नां परस्त्रियं नेक्षेन्न पश्येदात्मनः शकृत् । उदक्यादर्शनस्पर्शौ वर्ज्यौ सम्भाषणं तथा
नाप्सु मूत्रं पुरीषं वा मैथुनं वा समाचरेत् । नाधितिष्ठेच्छकृन्मूत्रकेशभस्मकपालिकाः
तुषाङ्गारास्थिशीर्णानि रज्जुवस्त्रादिकानि च ।

नाधितिष्ठेत्तथा प्राज्ञः पथि चैवं तथा (पत्राणिवा) भुवि ॥ २५ ॥

पितृदेवमनुष्याणां भूतानाञ्चतथार्चनम्। कृत्वा विभवतःपश्चाद्गृहस्थोभोक्तुमर्हति

प्राङ्मुखोदङ्मुखोवाऽपि स्वाचान्तो वाग्यतः शुचिः।

भुञ्जीतान्नञ्च तच्चित्तो ह्यन्तर्जानुः सदा नरः ॥ २७ ॥

उपघातामृते दोषं नान्यस्योदीरयेद्बुधः। प्रत्यक्षलवणं वर्ज्यमन्नमत्युष्णमेव च

न गच्छन्न च तिष्ठन् वै विण्मूत्रोत्सर्गमात्मवान्।

कुर्वीत नैव चाचामन् यत्किञ्चिदपि भक्षयेत् ॥ २६ ॥

उच्छिष्टो नालपेत्किञ्चित्स्वाध्यायञ्च विवर्जयेत्।

गां ब्राह्मणं तथा चाग्निं स्वमूर्द्धानञ्च न स्पृशेत् ॥ ३० ॥

न च पश्येद्रविं नेन्दुं ननक्षत्राणि कामतः। भिन्नासनं तथाशय्यांभाजनञ्चविवर्जयेत्

गुरूणामासनं देयमभ्युत्थानादिसत्कृतम्। अनुकूलं तथालापमभिवादनपूर्वकम् ॥

तथानुगमनं कुर्यात्प्रतिकूलं न सञ्जपेत्। नैकवस्त्रश्च भुञ्जीत नकुर्याद्देवतार्चनम् ॥

न वाहयेद्द्विजाग्र्याग्नौ मेहं कुर्वीत बुद्धिमान्।

स्नायीत न नरो नग्नो न शयीत कदाचन ॥ ३४ ॥

न पाणिभ्यामुभाभ्याञ्च कण्डूयेत शिरस्तथा।

न चाभीक्ष्णं शिरः स्नानं कार्य्यं निष्कारणं नरैः ॥ ३५ ॥

शिरः स्नातश्च तैलेन नाङ्गं किञ्चिदपि स्पृशेत्।

अनध्यायेषु सर्वेषु स्वाध्यायञ्च विवर्जयेत् ॥ ३६ ॥

ब्राह्मणानिलगोसूर्य्यान्न मेहेत कदाचन। उदङ्मुखो दिवा रात्रावुत्सर्गं दक्षिणामुखः

आवाधासु यथाकामं कुर्य्यान्मूत्रपुरीषयोः। दुष्कृतं न गुरोर्ब्रूयात्क्रुद्धं चैनंप्रसादयेत्

परिवादं न शृणुयादन्येषामपि कुर्वताम्। पन्था देयो ब्राह्मणानांराज्ञोदुःखातुरस्यच

विद्याधिकस्यगुर्विण्याभारार्त्तस्ययवीयसः।मूकान्धबधिराणाञ्चमत्तस्योन्मत्तकस्यच

पुंश्चल्याः कृतवैरस्य वालस्य पतितस्य च। देवालयं चैत्यतरुंतथैवचचतुष्पथम्

विद्याधिकं गुरुं देवं बुधःकुर्य्यात्प्रदक्षिणम्। उपानद्वस्त्रमाल्यादिधृतमन्यैर्नधारयेत्

उपवीतमलङ्कारं करकञ्चैव वर्जयेत् । प्रशस्तानि च कर्माणि कुर्वाणादीर्घजीविन

चतुर्दश्यां तथाऽष्टम्यां पञ्चदश्यांञ्च पर्वसु ॥
तैलाभ्यङ्गं तथा भोगं योषितश्च विवर्जयेत् ।
न क्षिप्तपादजङ्घश्च प्राज्ञस्तिष्ठेत्कदाचन ॥ ४४ ॥
न चापि विक्षिपेत्पादौ पादं पादेन नाक्रमेत् ।
मर्माभिघातमाक्रोशं पैशुन्यञ्च विवर्जयेत् ॥ ४५ ॥

दम्भाभिमानतीक्ष्णानिनकुर्वीतविचक्षण ।मूर्खोन्मत्तव्यसनिनोविरूपान्मायिनस्तथा

न्यूनाङ्गांश्चाधिकाङ्गांश्च नोपहासैर्विदूषयेत् ।
परस्य दण्डं नोद्यच्छेच्छिक्षार्थं पुत्रशिष्ययोः ॥ ४७ ॥
तद्वन्नोपविशेत्प्राज्ञ पादेनाऽऽकृष्य चासनम् ।
संयावं कृसरं मांसं नात्मार्थमुपसाधयेत ॥ ४८ ॥
सायं प्रातश्च भोक्तव्यं कृ वा चातिथिपूजनम् ।
प्राङ्मुखोदङ्मुखो वापि वाग्यतो दन्तधावनम् ॥ ४९ ॥

कुर्वीत सततं व त्स ! वर्जयेद्वर्ज्यवीरुध ।नोदक्शिरा स्वपेज्जातुनच प्रत्यक्शिरानर शिरस्यगस्त्यमाख्यायशयीताऽथपुरन्दरम् । नतुगन्धवतीष्वप्सुस्नायीतनतथानिशि उपरागे परं स्नानमृते दिनमुदाहृतम् । अपमृज्याञ्चवास्नातोगात्राण्यम्बरपाणिभि नचापि धूनयेत्केशान् वाससी न च धूनयेत् । नानुलेपनमादद्यादस्नात कर्हिचिद्बुध

नचापि रक्तवासा स्याच्चित्रासितधरोऽपिवा ।
न च कुर्याद्विपर्यासं वाससोर्नापि भूषणे ॥ ५४ ॥

वर्जयेञ्च विदशं वस्त्रमत्यन्तोपहतञ्च यत् । केशकीटावपन्नञ्च श्वभिरवेक्षितम् श्ववलीढावपन्नञ्च सारोद्धरणदूषितम् । पृष्ठमांसं वृथामांसं वर्जयेन्मांसञ्च पुत्रक ! ॥

न भक्षयीत सततं प्रत्यक्षलवणानि च ।
वर्ज्यं चिरोषितं पुत्र ! भक्त पर्युषितञ्च यत् ॥ ५७ ॥

पिष्टसाकेक्षुपयसां विकारान्नृपनन्दन ! । तथामांसविकाराश्चते न वर्ज्याश्चिरोषिता

उद्यास्तमने भानोःशयनञ्च विवर्जयेत्। नास्नातोनैव सम्विष्टो न चैवान्यमना नरः
न चैवशयनेनोर्व्यामुपविष्टो न शब्दवत्। न चैकवस्त्रो न वदन् प्रेक्षतामप्रदाय च
भुञ्जीत पुरुषःस्नातः सायं प्रातर्यथाविधि। परदारानगन्तव्याः पुरुषेण विपश्चिता
इष्टापूर्तायुषां हन्त्री परदारगतिर्नृणाम्। न हीदृशमनायुष्यं लोके किञ्चन विद्यते
यादृशं पुरुषस्येह परदाराभिमर्षणम्। देवार्चनाग्निकार्याणि तथा गुर्वभिवादनम्
कुर्वीत सम्यगाचम्य तद्वदन्नभुजिक्रियाम्। अफेनाभिरगन्धाभिरद्भिरच्छाभिरादरात्

आचामेत् पुत्र! पुण्याभिः प्राङ्मुखोदङ्मुखोऽपि वा।
अन्तर्जलादावसथाद्वल्मीकान्मूषिकस्थलात्॥ ६५॥

कृतशौचावशिष्टाश्च वर्जयेत् पञ्चवैमृदः। प्रक्षाल्यहस्तौपादौचसमभ्युक्ष्यसमाहितः
अन्तर्जानुस्तथाचामेत्त्रिश्चतुर्वा पिबेदपः। परिमृज्यद्विरास्यान्तं खानिमूर्द्धानमेवच
सम्यगाचम्य तोयेन क्रियांकुर्वीत वै शुचिः। देवतानामृषीणाञ्चपितृणांचैव यत्नतः
समाहितमना भूत्वा कुर्वीत सततं नरः। क्षुत्वा निष्ठीव्य वासश्चपरिधायाचमेद्बुधः
क्षुतेऽवलीढे वान्ते च तथानिष्ठीवनादिषु। कुर्यादाचमनंस्पर्शं गोपृष्ठस्यार्कदर्शनम्
कुर्वीतालम्भनं चापि दक्षिणश्रवणस्य वै। यथाविभवतोह्येतत्पूर्वाभावे ततः परम्
अविद्यमाने पूर्वोक्ते उत्तरप्राप्तिरिष्यते। न कुर्याद्दन्तसङ्घर्षं नात्मनोदेहताडनम्॥

स्वप्नाध्ययनभोज्यानि सन्ध्ययोश्च विवर्जयेत्।
सन्ध्यायां मैथुनञ्चाऽपि तथा प्रस्थानमेव च॥ ७३॥

पूर्वाह्णे तात! देवानांमनुष्याणांच मध्यमे। भक्त्या तथापराह्णेच कुर्वीत पितृपूजनम्

शिरःस्नातश्च कुर्वीत दैवं पैत्र्यमथापि वा।
प्राङ्मुखोदङ्मुखो वापि श्मश्रुकर्म च कारयेत्॥ ७५॥
व्यङ्गिनीं वर्जयेत् कन्यां कुलजामपि (अकुलां) रोगिणीम्।
विकृतां पिङ्गलाञ्चैव वाचाटां सर्वदूषिताम्॥ ७६॥

अव्यङ्गींसौम्यनासाञ्चसर्वलक्षणलक्षिताम्। तादृशीमुद्वहेत्कन्यांश्रेयःकामोनरःसदा
उद्वहेत् पितृमात्रोश्च सप्तमीं पञ्चमीं तथा। रक्षेद्दारान्त्यजेदीर्ष्यां दिवाचस्वप्नमैथुने

परोपतापकं कर्म जन्तुपीडाञ्च वर्जयेत् । उदक्याः सर्ववर्णानां वर्ज्या रात्रिचतुष्टयम्
स्त्रीजन्मपरिहारार्थं पञ्चमीमपि वर्जयेत् । ततः षष्ठ्यां व्रजेद्रात्र्यां ज्येष्ठायुग्मासु पुत्रक!
पर्वाण्यपि वर्जयेच्चैव ऋतुकालेऽपि योषितः । तस्माच्चैवं नरो गच्छेद्युग्मासु पुत्रक

युग्मा सुपुत्रा आयन्ते स्त्रियोऽयुग्मासु रात्रिषु ।
तस्माद्युग्मासु पुत्रार्थी संविशेत सदा नरः ॥ ८१ ॥
विधर्मिणोऽहि पूर्वाह्ने सन्ध्याकाले च षण्ढका (षण्ढका) ।
क्षुरकर्मणि चान्ते च स्त्रीसम्भोगे च पुत्रक ! ॥ ८२ ॥

स्नायीत चैलवान् प्राज्ञ कटभूमिमुपेत्य च । देववेदद्विजातीनां साधुसत्यमहात्मनाम्
गुरोः पतिव्रतानाञ्च तथा यज्ञितपस्विनाम् । परिवादं न कुर्वीत परिहासञ्च पुत्रक!

कुर्वतामविनीतानां न श्रोतव्यं कथञ्चन ।
देवपित्र्यातिथेयाश्च क्रियाः कुर्वीत वै बुधः ॥ ८७ ॥
स्वाध्यायञ्चापि कुर्वीत यथाशक्त्यात्र तन्द्रितः ।
नोत्कृष्टाभ्यामनयोर्नापकृष्टस्य चाचरेत् ॥ ८८ ॥

न चामङ्गल्यवेशः स्यान्न चामङ्गल्यवाग्भवेत् । धवलाम्बरसम्वीतः सितपुष्पविभूषितः
नोद्धतोन्मत्तमूढैश्च नाविनीतैश्च पण्डितः । गच्छेन्मैत्रीं न चाशीलैर्न चौर्यादिदूषितैः

न चातिव्ययशीलैश्च न लुब्धैर्नापि वैरिभिः ।
नानृतैश्च तथा मूर्खैः सहासीत कदाचन ।
नवन्धकीभिर्न न्यूनैर्बन्धकीपतिभिस्तथा ॥ ८९ ॥
सार्द्धं न चलिभिः कुर्याच्च न्यूनैर्न निन्दितैः ।
सयशङ्किभिर्नित्यं न च दैवपरैर्नरैः ॥ ९० ॥

कुर्वीत साधुभिर्मैत्रीं सदाचारावलम्बिभिः । प्राज्ञैरपिशुनैः शक्तैः कर्मण्युद्योगभागिभिः
सुहृद्दीक्षितभूपालस्नातकश्वशुरैः सह । ऋत्विगादीन् षडर्घार्हानर्चयेच्च गृहागतान्

वेदविद्यावतस्नातैः सहासीत सदा बुधः ॥

यथाविभवतः पुत्र द्विजान्संवत्सरोषितान् । अर्चयेन्मधुपर्केण यथाकालमतन्द्रितः

तिष्ठेच्च शासने तेषां श्रेयस्कामो द्विजोत्तमः ।
न च तान् विवदेद्धीमानाक्रुष्टश्चापि तैः सदा ॥ ६४ ॥
सम्यगगृह्यार्चनं कृत्वा यथास्थानमनुक्रमात् ।
सम्पूजयेत्ततो वह्निं दद्याच्चैवाहुतीः क्रमात् ॥ ६५ ॥
प्रथमां ब्रह्मणे दद्यात् प्रजानां पतयेततः । तृतीयाञ्चैवगुह्येभ्यः कश्यपाय तथापराम्
ततोऽनुमतयेदत्वा दद्याद्गृहबलिन्ततः । पूर्वाख्यातंमयायत्ते नित्यकर्मक्रियाविधौ
वैश्वदेवं ततःकुर्याद्बलयस्तत्र मे शृणु । यथास्थानविभागन्तुदेवानुद्दिश्य वै पृथक्
पर्जन्याय धरित्रीणां (पर्जन्याद्भ्योधरित्र्यैच) दद्याच्च मणिके त्रयम्
ततो धातुर्विधातुश्च दद्याद् द्वारेगृहस्य तु ।
वायवे च प्रतिदिशं दिग्भ्यः प्राच्यादितः क्रमात् ॥ १०० ॥
ब्रह्मणेचान्तरीक्षाय सूर्यायच तथाक्रमम् । विश्वेभ्यश्चैवदेवेभ्यो विश्वभूतेभ्य एव च
उषसे भूतपतये दद्याच्चोत्तरतस्ततः । स्वधानमइतीत्युक्त्वा पितृभ्यश्चाऽपि दक्षिणे
कृत्वाऽपसव्यं वायव्यां यक्ष्मैतत्तेति भाजनात् ।
अन्नावशेषमिच्छन् वै तोयं दद्याद्यथाविधि ॥ १०३ ॥
ततोऽन्नाग्रं समुद्धृत्य हन्तकारोपकल्पनम् ।
यथाविधि यथान्यायं ब्राह्मणायोपपादयेत् ॥ १०४ ॥
कुर्यात् कर्माणि तीर्थेन स्वेन स्वेन यथाविधि ।
देवादीनां तथा कुर्याद् ब्राह्म्येणाऽऽचमनक्रियाम् ॥ १०५ ॥
अङ्गुष्ठोत्तरतो रेखा पाणेर्यादक्षिणस्यतु । एतद्ब्राह्म्यमितिख्यातं तीर्थमाचमनायवै
तर्जन्यङ्गुष्ठयोरन्तः पैत्र्यं तीर्थमुदाहृतम् । पितृणांतेनतोयादिदद्यान्नान्दीमुखादृते
अङ्गुल्यग्रेतथादैवं तेनदिव्यक्रियाविधिः । तीर्थं कनिष्ठिकामूले कायं तेन प्रजापतेः
एवमेभिः सदातीर्थैर्देवानांपितृभिःसह । सदाकार्याणिकुर्वीतनान्यत्तीर्थेनकर्हिचित्
ब्राह्म्येणाचमनं शस्तं पित्र्यं पैत्र्येण सर्वदा । देवतीर्थेनदेवानांप्राजापत्यं निजेन च
नान्दीमुखानां कुर्वीत प्राज्ञःपिण्डोदकक्रियाम् ।

प्राजापत्येन तीर्थेन यच्च किञ्चित् प्रजापते ॥ १११ ॥
युगपज्जलमग्निञ्च बिभृयान्न विचक्षण । गुरुदेवान् प्रति तथा न च पादौ प्रसारयेत्
नावक्षोतधयन्तीं गां जलं नाञ्जलिनापिबेत् । शौचकालेषु सर्वेषुगुरुष्वल्पेषुवा पुन
न विलम्बेत शौचार्थं नमुखेनानलं धमेत् । तत्रपुत्रनवस्तव्यं यत्र नास्ति चतुष्टयम्
ऋणप्रदाता वैद्यश्च श्रोत्रिय सजलानदी । जितामित्रोनृपोयत्र बलवान् धर्मतत्पर
तत्र नित्यवसेत्प्राज्ञ कुत कुनृपतौ सुखम् । यत्राप्रधृष्योनृपतियत्रशस्यवती मही
पौरा सुसयता यत्रसततन्यायवर्तिन । यत्रामत्सरिणो लोकास्तत्रवास सुखोदय
यस्मिन्कृषीवलाराष्ट्रे प्रायशोनातिभोगिन । यत्रौषधान्यशेषाणिवसेत्तत्रविचक्षण
तत्र पुत्र न वस्तव्यं यत्रैतस्त्रितय सदा । जिगीषु पूर्ववैरश्च जनश्च सततोत्सव
वसेन्नित्यं सुशीलेषु सहवासिषु पण्डित ।
इत्येतत् कथितं पुत्र मया ते हितकाम्यया ॥ १२० ॥
इतिश्रीमार्कण्डेयपुराणेऽलर्कानुशासने सदाचाराध्यायवर्णननाम
चतुस्त्रिंशोऽध्याय ॥ ३४ ॥

पञ्चत्रिंशोऽध्याय.

वर्ज्यावर्ज्यवर्णनम्

मदालसोवाच

अत पर शृणुष्व वत्सर्वाज्यप्रतिक्रियाम् । भोज्यमन्नपयु षितस्नेहाक्तं चिरसभृतम्
अस्नेहाश्चापि गोधूमयवगोरसविक्रिया ।
शशक कच्छपो गोधा श्वावित्खड्गोऽथ पुत्रक ॥ २ ॥
भक्ष्या ह्येते तथावर्ज्यौ ग्रामशूकरकुक्कुटौ । पितृदेवादिशेषश्चश्राद्धेब्राह्मणकाम्यया
प्रोक्षितञ्चौषधार्थञ्च खादन्मांस न दुष्यति ।

शङ्खाश्मस्वर्णरूप्याणां रज्जूनामथ वाससाम् ॥ ४ ॥
शाकमूलफलानाञ्च तथाविदलचर्मणाम् । मणिवज्रप्रवालानां तथा मुक्ताफलस्य च
गात्राणाञ्च मनुष्याणामम्बुना शौचमिष्यते ।
पात्राणां चमसानां च वारिणा शुद्धिरिष्यते ॥ ६ ॥
ताम्रायःकांस्यरैत्यानां त्रपुषः शीशकस्य च ।
शौचं यथार्थं कर्तव्यं क्षाराम्लोदकवारिणा ।
तथायसानां तोयेन ग्राव्णः सङ्घर्षणेन च ॥ ७ ॥
सस्नेहानाञ्चभाण्डानांशुद्धिरुष्णेनवारिणा । सूर्पधान्याजिनानाञ्चमुसलोलूखलस्यच
संहतानाञ्चवस्त्राणांप्रोक्षणात्सञ्चयस्यच । वल्कलानामशेषाणामम्बुमृच्छौचमिष्यते
तृणकाष्ठौपधीनाञ्च प्रोक्षणाच्छुद्धिरिष्यते ।
आविकानां समस्तानां केशानाञ्चापि मेध्यता ॥ १० ॥
सिद्धार्थकानां कल्केन तिलकल्केन वा पुनः । साम्बुना तात भवतिउपघातवतांसदा
तथा कार्पासिकानाञ्च विशुद्धिर्जलभस्मना ।
दारु (नाग) दन्तास्थिशृङ्गाणां तक्षणाच्छुद्धिरिष्यते ॥ १२ ॥
पुनः पाकेन भाण्डानांपार्थिवानाञ्च मेध्यता । शुचिर्भैक्षंकारुहस्तःपण्यंयच्चप्रसारितम्
योषिन्मुखं वालमुखमात्मवृद्धमुखं तथा ।
रथ्यागतमविज्ञातं दासमार्गादिनाहृतम् । वाक्प्रशस्तंचिरातीतमनेकान्तरितंलघु ॥
अतिप्रभूतं वालञ्चवृद्धातुरविचेष्टितम् । कर्मान्ताङ्गारशालाश्चस्तनन्धयसुताःस्त्रियः
शुचिन्यश्च तथैवापः स्रवन्त्योऽगन्धवुद्वुदाः ।
भूमिर्विशुध्यते कालाद्दाहमार्ज्जनगोक्रमैः ॥
लेपादुल्लेखनात्सेकाद्वेश्मसंमार्जनार्चनात् । केशकीटावपन्नेऽन्ने गोघ्रातेमक्षिकान्विते
मृदम्बुभस्मना तात! प्रोक्षितव्यं विशुद्धये ।
औदुम्बराणामम्लेन क्षारेण त्रपुसीसयोः ॥ १८ ॥
भस्माम्बुभिश्च कांस्यानां शुद्धिः प्लावोद्रवस्य च ।

अमेध्याक्तस्य मृत्तोयैर्गन्धापहरणेन च ॥ १९ ॥
अन्येषाञ्चैव तद्द्रव्यैर्वर्णगन्धापहारतः ।
चाण्डालैरन्त्यजैश्चैव म्लेच्छैरस्पृश्यजातिभि ॥ २० ॥

स्पृष्टमक्षालितं धान्यमनर्हं सर्वकर्मणि । द्रोणादधस्तु यद्धान्यं तस्यार्थं विधिरुच्यते
द्रोणादूर्ध्वं तु यद्धान्यं प्रोक्षणादेव शुद्ध्यति । रथ्यासु पतितं धान्यं दृष्ट्वा यत्नेन चान्वयेत्

उद्धृत्य मूर्ध्ना चाद्याद्धर्मो नश्यति चान्यथा ।
शुचि गोतृप्तिकृत्तोयं प्रकृतिस्थं महीगतम् ॥ २३ ॥
तथा मांसञ्च चण्डालक्रव्यादादिनिपातितम् ।
रथ्यागतञ्च चैलादि तात ! वातात्शुचि स्मृतम् ॥ २४ ॥

रजोऽग्निरश्वो गौश्छाया रश्मयः पवनो मही । विप्रुषो मक्षिकाद्याश्च दुष्टसङ्गाददोषिणः

अजाश्वौ मुखतो मेध्यौ न गोर्वत्सस्य चाननम् ।
मातुः प्रस्रवणे मेध्यं शकुनिः फलपातने ॥ २६ ॥

आसनं शयनं यानं नावः पथितृणानि च । सोमसूर्यांशुपवनैः शुध्यन्ते तानि पण्यवत्
रथ्याप्रसरणे स्नाने क्षुत्पानाशनकर्मसु । आचामेत यथान्यायं वासो विपरिधाय च ॥
स्पृष्टानामस्पृश्यसंसर्गैर्विरथ्याकर्दमाम्भसाम् । पक्वेष्टकचितानाञ्च मेध्यता वायुसङ्गमात्
प्रभूतोपहतादन्नादग्रमुद्धृत्य सन्त्यजेत् । शेषस्य प्रोक्षणं कुर्यादाचम्याद्भिस्तथा मृदा
उपवासस्त्रिरात्रन्तु दुष्टभक्ष्याशिनो भवेत् । अज्ञाते ज्ञानपूर्वन्तु तद्दोषोपशमेन तु

उदक्याश्वशृगालादीन् सूतिकान्त्यावसायिनः ।
स्पृष्ट्वा स्नायीत शौचार्थं तथैव मृतहारिणः ॥ ३२ ॥
नारं स्पृष्ट्वास्थि सस्नेहं स्नात्वा शुद्ध्यति मानवः ।
आचम्यैव तु निःस्नेहं गामालभ्यार्कमीक्ष्य वा ॥ ३३ ॥

न लङ्घयेत्तथैवासृक्ष्ठीवनोद्वर्तनानि च । नोद्यानादौ विकालेषु प्राज्ञस्तिष्ठेत्कदाचन ॥

न चालपेज्जनद्विष्टां वीरहीनां तथा स्त्रियम् ।
गृहादुच्छिष्टविण्मूत्रपादाम्भांसि क्षिपेद्बहिः ॥ ३५ ॥

पञ्चपिण्डाननुधृत्य न स्नायात् परवारिणि। स्नायीतदेवखातेषुगङ्गाह्रदसरित्सु च
देवतापितृसच्छास्त्रयज्ञमन्त्रादिनिन्दकैः। कृत्वातुस्पर्शनालापंशुद्ध्येतार्कावलोकनात्
अवलोक्य तथोदक्यामन्त्यजं पतितं शवम्।
विधर्मिसूतिकाषण्डविवस्त्रान्त्यावसायिनः॥ ३८॥
सूतनिर्यातकांश्चैव परदाररतांश्च ये। एतदेव हि कर्तव्यं प्राज्ञैः शोधनमात्मनः॥
अभोज्यं (अभोज्य) सूतिकाषण्डमार्जाराखुश्वकुक्कुटान्।
पतिताविद्धचण्डालमृतहारांश्च धर्मवित्॥ ४०॥
संस्पृश्यशुध्यतेस्नानादुदक्याग्रामशूकरौ। तद्वच्चसूतिकाशौचदूषितौपुरुषावपि॥
अतःपरं श्रृणुष्व त्वं स्त्रीधर्मान्नु विस्तरात्। उदुम्बरे वसेन्नित्यंभवानीसर्वदेवता
ततःसाप्रत्यहं पूज्यागन्धपुष्पाक्षतादिभिः। अशून्यादेहलीकार्याप्रातःकालेविशेषतः
यस्य शून्या भवेत्सा तु शून्यं तस्य कुलं भवेत्।
पादस्य स्पर्शनं तत्र असम्पूज्य च लङ्घनम्॥ ४४॥
कुर्वन्नरकमाप्नोति तस्मात्तत्परिवर्जयेत्। प्रातःकालेस्त्रिया कार्यं गोमयेनानुलेपनम्
प्रत्यहं सदने तस्मान्नैव दुःखानि पश्यति। स्पृशन्ति रश्मयोयस्यगृहंसम्मार्जनादृते
भवन्ति विमुखास्तस्य पितरो देवमातरः।
निशायाः पश्चिमे यामे धान्यसंस्करणादिकम्॥ ४७॥
कुरुते या तु मोहेन वन्ध्या जन्मनि जन्मनि।
सन्ध्याकाले तु सम्प्राप्ते मार्जनं न करोति या॥ ४८॥
भर्तृहीना भवेत्सा तु निःस्वा जन्मनि जन्मनि।
अकृतस्वस्तिकां या तु कामलिप्तां च मेदिनीम्॥ ४९॥
तस्याःस्त्रिया विनश्यन्ति वित्तमायुर्यशस्तथा।
मार्जनी चुल्लिका छीषद् दृषदश्चोपलं तथा॥ ५०॥
नाक्रमेदङ्घ्रिणाजातु पुत्रदारधनक्षयात्। उलूखलं च मुसलं तथाचैव तु दर्पणम्
पदाक्रमणात्पापीयान्नाप्नोत्युत्तमतां गतिम्। भिन्नासनं योगपट्टं तथैव मृगचर्म च

कृष्णाधिकं तथा सातं धनयेत्सुव्रतान् गृही ।
दक्षिणाभिमुखो यस्तु विदिक् सम्मुख एव च ॥ ५३ ॥
केशान् संस्पृशन् मर्त्यो धननाशं च विन्दति ।
अनूढस्तु न कुर्वीत भुक्त्वा दन्तविशोधनम् ॥ ५४ ॥
पादुकारोहणं चैव तिलैश्चापि सतर्पणम् । न जीवत्पितृकः कुर्यात्पंकक्षोत्तरीयकम्
दर्शश्राद्धं न कुर्वीत दशान्मानं कथञ्चन । पादुकारोहणं चैव योगपट्टकमेव च ॥ ५६ ॥
न जीवत्पितृकः कुर्याद् गयाश्राद्धमथैव च । दीपभाण्डमषीछायाविभीतककुरण्डजा
वर्जनीया सदा पुंसा यदिच्छायनुमिच्छति । अधोवस्त्रेण यो वायु कुरुते शिरसि त्रिशं
स्यात्तेन चमकृपाभ्यां कुम्भं तस्य नश्यति ॥ ५८ ॥

अलर्क उवाच

भवत्या कथिता भाष्या य एव श्रुतिकाद्य ।
धर्मान्वो ज्ञातुमिच्छामि तत्त्वतो वक्ष्यामि ॥ ५९ ॥

मदालसोवाच

अश्नन्ति मासमन्देहं यावको कन्यकावता । तानुभौ स्त्रियदुर्कौ तयोरन विगर्हितम्
त्रयोर्युञ्जीत काले नाश्नाति न ददाति च ।
पितृद्वयोगनाशात षण्ड न परिगीयते ॥ ६१ ॥
दम्भार्थं यज्ञ यत्र तप्यते च तपश्चया । न पश्च मिदेत्पुंस समागोऽरपशुवोतुधै
विभव सति मेधाति न ददाति जुहोति च ।
तस्मादुत्तानुमन्यार्थं भुक्त्वा कृच्छ्रेण शुद्ध्यति ॥ ६३ ॥
समागतानां मर्त्यानां पञ्चपानं समाश्रयेत् ।
तस्माद्दुः कुरुकुरु दयान्नतान्याऽप्यवं विगर्हितम् ॥ ६४ ॥
स्वधर्मं च समुत्सृज्य परधर्मं समाश्रयेत् । अनापदि स विद्वद्भिः पतित परिकीर्तित
देवत्यागी गुरुत्यागी गुरुणान्युरुषकन्यया । गोब्राह्मणस्त्रीघपातृदर्पण प्रचक्षते
येषां कुलं न वेदोऽस्ति न शास्त्रं नैव च व्रतम् ।

ते नग्नाः कीर्त्तिताः सद्भिस्तेषामन्नं विगर्हितम् ॥ ६७ ॥
आशाकर्त्तस्त्वदाता च दाता च प्रतिषेधकः ।
शरणागतं यस्त्यजति स चाण्डालो नरोऽधमः ॥ ६८ ॥
यो वान्धवैः परित्यक्तः साधुभिर्ब्राह्मणैरपि ।
कुण्डाशी यश्च तस्याऽन्नं भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥ ६६ ॥
यो नित्यकर्मणो हानिं कुर्यान्नैमित्तिकस्य च ।
भुक्त्वाऽन्नं तस्यशुद्ध्यैच त्रिरात्रोपोषितो नरः ॥ ७० ॥
यस्य चानुदिनं हानिर्गृहे नित्यस्य कर्मणः ।
यश्च ब्राह्मणसन्त्यक्तः किल्विषी स नराधमः ॥ ७१ ॥

नित्यस्यकर्मणोहानिं नकुर्वीत कदाचन । तस्य त्वकरणे वन्धः केवलं मृतजन्मसु
दशाहंब्राह्मणस्तिष्ठेद्दानहोमादिवर्जितः । क्षत्रियो द्वादशाहञ्च वैश्यो मासार्द्धमेव च

शूद्रस्तु मासमासीत निजकर्मविवर्जितः ।
रोगग्रहादिविधिना नित्यकर्मविविच्युतः ॥ ७४ ॥
पादकृच्छ्रं ततः कृत्वा गां दत्वाशुद्धिमाप्नुयात् ।
ततः परं निजं कर्म कुर्युः सर्वं यथोदितम् ॥ ७५ ॥

प्रेताय सलिलं देयं वहिर्गेहाच्च गोत्रिकैः । प्रथमेऽह्नि चतुर्थे च सप्तमे नवमे तथा
भस्मास्थिचयनंकार्यंचतुर्थेगोत्रिकैर्दिने । ऊर्द्धवं सञ्चयनात्तेषामङ्गस्पर्शोविधीयते

सोदकैस्तु क्रियाः सर्वाः कार्याःसञ्चयनात्परम् ।
स्पर्श एव सपिण्डानां मृताहनि तथोभयोः ॥ ७८ ॥

वृक्षाहिगोदंष्ट्रिशस्त्रतोयोद्बन्धनवह्निषु । विषप्रपातादिमृते प्रायो नाशकयोरपि
बाले देशान्तरस्थे च तथाप्रव्रजितेमृते । सद्यः शौचमथान्यैश्च त्र्यहमुक्तमशौचकम्
नैवोर्ध्वदेहिकंकार्यं नच कार्योदकक्रिया । गर्भस्रावे तदेवोक्तं पूर्णकालेन शुद्ध्यति
ब्राह्मणानामहोरात्रं क्षत्रियाणांदिनत्रयम् । पञ्चात्रमपिवैश्यानांशूद्राणांद्वादशाहिकम्

सपिण्डानां सपिण्डस्तु मृतेऽन्यस्मिन्मृतो यदि ।

पूर्वाशौचसमाख्याते कार्यास्तस्यत्र दिने क्रिया ॥ ८३ ॥
एष एवविधिर्दृष्टो जन्मन्यपिहि सूतके । सपिण्डानासपिण्डेषुयथायत्सोदकेषु च
जाते पुत्रे पितु स्नान सचैलन्तु विधीयते ।
मृते हि सर्वबन्धूनामित्याह भगवान् भृगु ।
तत्रापि यदि चान्यस्मिन् जाते जायेत चापर ॥ ८० ॥
तत्रापिशुद्धिरुद्दिष्टा पूर्वजन्मवतो दिनै । दशद्वादशमासार्धमाससड्ख्यैर्दिनैर्गतै
स्वा स्वा कर्मक्रिया कुर्युं सर्वे वर्णा यथाविधि ।
प्रेतमुद्दिश्य कर्त्तव्यमेकोद्दिष्ट तत परम् ॥ ८७ ॥
सपिण्डीकरणं चैव कार्यमाब्दस्यान्तरे । तत पितृत्वमापन्ने दर्शपूर्णादिभिस्त्रिभि
प्रीणयॅस्तस्य कर्तव्य यथाश्रुतिनिदर्शनम् ॥ ८८ ॥
दानानिचैव देयानि ब्राह्मणेभ्यो मनीषिभि । यद्यदिष्टतम लोके यच्चापि दयित गृहे
तत्तद्गुणवते देय तदेवाऽक्षयमिच्छता ॥ ८६ ॥
प्रेतंप्रेत समुद्दिश्य भूमिधेन्वादिकस्वयम् । दद्यादेनास्यसम्प्रीता पितर सन्तिपुत्रक
पूर्णेस्तु दिवसै स्पृष्ट्वा सलिल वाहनायुधम् ॥ ९० ॥
प्रतोददण्डौ च तथा सम्यग्वर्णा कृतक्रिया । स्ववर्णधर्मनिर्दिष्टमुपादानतथाक्रिया
कुर्यु समस्ता शुचिन परत्रेह च भूतिदा ।
अध्येतव्या त्रयी नित्य भवितव्य विपश्चिता ॥ ९२ ॥
धर्मतो धनमाहार्य यष्टव्यश्चाऽपियत्नत । यच्चापिकुर्वतोनात्मा जुगुप्सामेतिपुत्रक
तत्कर्त्तव्यमशङ्केन यत्र गोप्य महाजने । एवमाचरतो वत्स ! पुरुषस्य गृहे सत
धर्मार्थकामसम्प्राप्त्या परत्रेह च शोभनम् ॥ ९५ ॥
इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेऽलर्कानुशासने वर्ज्यावर्ज्यवर्णनंनाम
पञ्चत्रिंशोऽध्याय ॥ ३५ ॥

———

षट्त्रिंशोऽध्यायः

मदालसोपाख्याने पुत्रायोपदेशवर्णनम्

जड(पुत्र) उवाच

स एवमनुशिष्टःसन् मात्रासम्प्राप्ययौवनम्। ऋतध्वजसुतश्चक्रे सम्यग्दारपरिग्रहम्

पुत्रांश्चोत्पादयामास यज्ञैश्चाप्ययजद्विभुः। पितुश्चसर्वकालेपुचकाराऽऽज्ञानुपालनम्

ततःकालेनमहता सम्प्राप्य चरमं वयः। चक्रेऽभिषेकं पुत्रस्य तस्य राज्ये ऋतध्वजः

भार्यया सह धर्मात्मा यियासुस्तपसे वनम्।

अवतीर्णो महारक्षो महाभागो महीपतिः॥ ४॥

मदालसा च तनयं प्राहेदं पश्चिमं वचः। कामोपभोगसंसर्ग प्रहाणाय सुतस्य वै॥

मदालसोवाच

यदादुःखमसह्यं ते प्रियबन्धुवियोगजम्। शत्रुबाधोद्भवं वापि चित्तनाशात्मसम्भवम्

भवेत्तत् कुर्वतोराज्यं गृहधर्मावलम्बिनः। दुःखायतनभूतो हि ममत्वालम्बनो गृही

तदास्मात् पुत्र! निष्कृष्य मद्दत्तादङ्गुलीयकात्।

वाचयन्ते शासनं पट्टे सूक्ष्माक्षरनिवेशितम्॥ ८॥

जड (पुत्र) उवाच

इत्युक्त्वाप्रददौतस्मैसौवर्णंसाङ्गुलीयकम्। आशिषश्चापियायोग्याःपुरुषस्यगृहेसतः

ततःकुवलयाश्वोऽसौसाचदेवी मदालसा। पुत्राय दत्त्वा तद्राज्यं तपसे काननं गतौ

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे मदालसोपाख्यानवर्णनंनाम षट्त्रिंशोऽध्यायः॥ ३६॥

सप्तत्रिंशोऽध्यायः

आत्मविवेकवर्णनम्

जड (पुत्र) उवाच

सोऽप्यलर्को यथान्यायं पुत्रवन्मुदिताः प्रजाः ।
पालयामास धर्मात्मा स्वे स्वे कर्मण्यवस्थिताः ॥ १ ॥

दुष्टेषु दण्डं शिष्टेषु सम्यक् च परिपालनम् । कुर्वन्परां मुदं लेभे इयाज च महामखैः
अजायन्त सुताश्चास्य महाबलपराक्रमाः । धर्मात्मानो महात्मानो विमार्गपरिपन्थिनः
चकारार्थं स धर्मेण धर्ममर्थेन वा पुनः । तयोश्चैवाविरोधेन बुभुजे विषयानपि ॥
एवं बहूनि वर्षाणि तस्य पालयतो महीम् । धर्मार्थकामसक्तस्य जग्मुरेकमहर्यथा

वैराग्यं नाऽस्य भवने भुञ्जतो विषयान् प्रियान् ।
न चाप्यलमभूत्तस्य धर्मार्थोपार्जनं प्रति ॥ ६ ॥

तं तथा भोगसंसक्तमप्रमत्तमजितेन्द्रियम् । सुबाहुर्नाम शुश्राव भ्राता तस्य वनेचरः
तं बुबोधयिषुः सोऽथ चिरं ध्यात्वा महीपतिः । तद्वैरिसंश्रयं तस्य श्रेयोऽमन्यत भूपतेः
ततः स काशिभूपालमुदीर्णबलवाहनम् । स्वराज्यं प्राप्तुमागच्छदुपद्भुरा शरणं कृती
सोऽपि चक्रे बलोद्योगमलर्कं प्रति पार्थिवः । दूतं च प्रेषयामास राज्यमस्मै प्रदीयताम्
सोऽपि नैच्छत्तदा दातुमाज्ञापूर्वं स्वधर्मवित् । प्रत्युवाचाग्रजं दूतमलर्कः काशिभूभुजं

मामेवाभ्येत्य हार्देन याचतां राज्यमग्रजः ।
नाक्रान्त्या संप्रदास्यामि भयेनाऽल्पामपि क्षितिम् ॥ १२ ॥

सुबाहुरपि नो याच्ञां चकार मतिमांस्तदा । न धर्मः क्षत्रियस्यैति याच्ञा वीर्यधनो हि सः
ततः समस्तसैन्येन काशीशः परिवारितः । आक्रान्तुमभ्यगाद्राष्ट्रमलर्कस्य महीपतेः
अनन्तरैश्च सामन्तैरभ्येत्य तदनन्तरम् । नैवामन्यतमैर्भूत्यैः समाक्रम्यानयद्वशम्
पालांश्चक्रे वशे दपिकान्वशी

कांश्चिच्चोपप्रदानेन कांश्चिद्भेदेन पार्थिवान्।
साम्नैवान्यान् वशं निन्ये निभृतास्तस्य येऽभवन्॥ १७॥

ततःसोऽल्पबलो राजा परचक्रावपीडितः। कोषक्षयमवापोच्चैःपुरञ्चारुध्यतारिणा
इत्थं सम्पीड्यमानस्तु क्षीणकोषोदिनेदिने। विषादमागात्परमंव्याकुलत्वञ्चचेतसः
आर्त्तिसपरमांप्राप्यतत्संसाराङ्गुरीयकम्। यदुद्दिश्य पुरा प्राह माता तस्य मदालसा

ततः स्नातः शुचिर्भूत्वा वाचयित्वा द्विजोत्तमान्।
निष्क्राम्य शासनं तस्माद्ददृशे प्रस्फुटाक्षरम्॥ २१॥

तत्रैव लिखितंमात्रावाचयामास पार्थिवः। प्रकाशपुलकाङ्गोऽसौ प्रहर्षोत्फुल्ललोचनः

सङ्गः सर्वात्मना त्याज्यः स चेत्त्यक्तुं न शक्यते।
स सद्भिः सह कर्त्तव्यः सतां सङ्गो हि भेषजम्॥ २३॥
कामः सर्वात्मना हेयो हातुञ्चेच्छक्यते न सः।
मुमुक्षां प्रति तत्कार्यं सैव तस्याऽपि भेषजम्॥ २४॥

वाचयित्वातु बहुशोनृणांश्रेयःकथंत्विति। मुमुक्षयेतिनिश्चित्यसाचतत्सङ्गतोयतः
ततः ससाधुसम्पर्कंचिन्तयन्पृथिवीपतिः। दत्तात्रेयंमहाभागमगच्छत्परमार्त्तिमान्
त समेत्य महात्मानमकल्मषमसङ्गिनम्। प्रणिपत्याभिसम्पूज्य यथान्यायमभाषत
ब्रह्मन्!कुरुप्रसादंमे शरण्यःशरणार्थिनाम्। दुःखापहारं कुरुमेदुःखार्त्तस्यातिकामिनः

दत्तात्रेय उवाच

दुःखापहारमद्यैव करोमितवपार्थिव!। सत्यं ब्रूहि किमर्थं ते दुःखंतत् पृथिवीपते!

कस्य त्वं कस्य वा दुःखं तत्त्वमेवं विचार्यताम्।
अङ्गान्यङ्गी निरङ्गं च सर्वाङ्गानि विचिन्तय॥ ३०॥

जड (पुत्र) उवाच

इत्युक्तश्चिन्तयामाससराजातेनधीमता। त्रिविधस्यापिदुःखस्यस्थानमात्मानमेवच
सविमृश्यचिरं राजा पुनःपुनरुदारधीः। आत्मानमात्मनाधीरः प्रहस्येदमथाब्रवीत्
नाहमुर्वीनसलिलंनज्योतिरनिलोनच। नाकाशंकिन्तु शारीरं समेत्य सुखमिष्यते॥

न्यूनातिरिक्तता याति यच्चक्रेऽस्मिन् सुखासुखम् ।
यद्धिन्यात्मम चित्त स्यादन्यस्येऽपि हित मयि ॥ ३८ ॥

निश्चयभूतसद्भावे न्यूनाधिक्यात्कुतोऽभवत् । तथा च ममताख्यकोऽपि विशेषेणोपलभ्यते तस्माद्भावमिन्द्रियेभ्यो तुर्यांशो चापश्यत । तथैवभूतसद्भावं शारीरं किं सुखासुखम् मनस्यवस्थितं दुःखं सुखं वा मानसञ्च यत् । यतस्ततो न मे दुःखसुखं वा नाहं मन नाहङ्कारो न च मनो बुद्धिर्नाहं यतस्ततः । अन्तःकरणजं दुःखं पारक्यं मम तत्कथम्

नाहं शरीरं न मनो यतोऽहं पृथक्शरीरान्मनसस्तथाऽहम् ।
तस्मात्तु चेतस्यथवाऽपि देहे सुखानि दुःखानि च किं ममाऽत्र ॥ ३९ ॥
वाञ्छत्यस्य पाञ्चभौतिकोऽस्य देहस्य चेत् पञ्चमय न राशिः ।
गुणप्रवृत्त्या मम किन्तु तत्र नास्त्येव स चाऽहमतः शरीरतोऽन्य ॥ ४० ॥
न यस्य दन्तादिकमस्त्यहं मांसं न चाऽस्थीनि शिराविभागः ।
कं तस्य नागाश्वरथादिकोषैः स्वल्पोऽपि सम्बन्ध इहाऽस्ति पुंसः ॥ ४१ ॥
तस्मान्न मेऽस्ति न मेऽस्ति दुःखं न मे सुखं नापि पुरं न कोशम् ।
न चाऽश्वनागादि बलं न तस्य नाऽन्यस्य वा कस्यचिद्वा ममाऽस्ति ॥ ४२ ॥
यथा घटा कुम्भकमण्डलुस्थमाकाशमेकं बहुधा हि दृष्टम् ।
तथा सुबाहुः स च काशिराजो मन्ये च देहेषु शरीरभेदैः ॥ ४३ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे पितापुत्रसम्वादे आत्मविवेचनं नाम
सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

अष्टत्रिंशोऽध्यायः

अलर्कद्वारादत्तात्रेयसमीपेपरमार्थचिन्तनविषयकप्रश्नकरणम्

जड (पुत्र) उवाच

दत्तात्रेयं ततोविप्रं प्रणिपत्य स पार्थिवः। प्रत्युवाच महात्मानं प्रश्रयावनतोवचः
सम्यक्प्रपश्यतो ब्रह्मन्! ममदुःखं न किञ्चन। असम्यग्दर्शिनोमग्नाःसर्वदैवासुखार्णवे
यस्मिन् यस्मिन्ममासक्ता (ममत्वेन) बुद्धिःपुंसः प्रजायते।
ततस्ततः समादाय दुःखान्येव प्रयच्छति ॥ ३ ॥
मार्जारभक्षिते दुःखं यादृशं गृहकुक्कुटे। न तादृङ्ममताशून्ये कलविङ्केऽथ मूषिके
सोऽहं न दुःखी न सुखी यतोऽहं प्रकृतेः परः।
यो भूताभिभवो भूतैः सुखदुःखात्मको हि सः ॥ ५ ॥

दत्तात्रेय उवाच

एवमेतन्नरव्याघ्र! यथैतद्व्याहृतंत्वया। ममेतिमूलंदुःखस्यनममेतिच निर्वृतेः (तिः
मत्प्रश्नादेव ते ज्ञानमुत्पन्नमिदमुत्तमम्। ममेति प्रत्ययो येन क्षिप्तः शाल्मलितूलवत्
अहमित्यङ्कुरोत्पन्नोममेतिस्कन्धवान् महान्। गृहक्षेत्रोच्चशाखाश्चपुत्रदारादिपल्लव
धनधान्यमहापत्रो नैककालप्रवर्द्धितः। पुण्यापुण्याग्रपुष्पश्च सुखदुःखमहाफल
तत्रमुक्तिपथ (अपवर्गपथ) व्यापी मूढसम्पर्कसेचनः।
विधित्साभृङ्गमालाढ्यो कृत्यज्ञानमहातरुः ॥ १० ॥
संसाराध्वपरिश्रान्ता ये तच्छायां समाश्रिताः।
भ्रान्तिज्ञानसुखाधीनास्तेषामात्यन्तिकं कुतः ॥ ११ ॥
यैस्तुसत्सङ्गपाषाणशितेन ममतातरुः। छिन्नो विद्याकुठारेण तेगतास्तेन वर्त्मना
प्राप्यब्रह्मवनं शीतं नीरजस्कमकण्टकम्। प्राप्नुवन्तिपरांप्राज्ञानिर्वृतिं वृत्तिवर्जित
भूतेन्द्रियमयं स्थूलं न त्वं राजन्न चाप्यहम्।

न तन्मात्र मया चार्व्यं नैवान्त करणात्मकौ ॥ १५ ॥
तथापश्यामिराजेन्द्रो प्रधानमिदमावयो । यत परोद्दिश्येत्र सङ्घातो हि गुणात्मक
मशकोदुम्बरेषीकामुञ्जमत्स्याम्भमायथा । एक वैऽपिपृथग्भावस्तथाक्षेत्रात्मनोर्नृप

अलर्क उवाच

भगवस्त्वत्प्रसादेन ममाविर्भूतमुत्तमम् । ज्ञान प्रधानविच्छित्ति विवेककरणीदृशम्
किन्त्वत्र विषयाक्रान्त स्थैर्यपन्थ न चेतसि ।
॥ चापि वेद्मि मुच्येय कथ प्रकृतिबन्धनात् ॥ १८ ॥
कथनभूयां भूयश्च कथ निर्गुणतामियाम् । कथ च ब्रह्मणैकत्व व्रजेय शाश्वतेन वै
तन्मेयोगतपाब्रह्मन्'प्रणतायाभियाचते । सम्यगाचक्ष्वमहाभाग'सत्सङ्गोह्युपकृन्नृणाम्
इतिश्रीमार्कण्डेयपुराणे पितापुत्रसम्वादे दत्तात्रेयालर्कसम्वादे प्रश्नाध्यायवर्णन नामाऽष्टत्रिंशोऽध्याय ॥ ३८ ॥



एकोनचत्वारिंशोऽध्याय

योगाध्यायवर्णनम्

दत्तात्रेय उवाच

ज्ञानपूर्वोवियोगो योऽज्ञानेन सहयोगिन । सामुक्तिर्ब्रह्मणाचैक्यमनैक्य प्राकृतैर्गुणै
योगे च शक्तिर्विदुषा येन श्रेय पर भवेत् ।
मुक्तिर्योगात्तथायोग सम्यग्ज्ञानान्महीपते ।
ज्ञान तु खोद्भव (सङ्गदोषोद्भव) दु ख ममत्वासक्तचेतसाम् ॥ २ ॥
तस्मात्सङ्ग प्रयत्नेनमुमुक्षु सन्त्यजेन्नर । सङ्गाभावेममेत्यस्या ख्यातेर्हानि प्रजायते
निर्ममत्व सुखायैव वैराग्याद्दोषदर्शनम् । ज्ञानादेव च वैराग्य ज्ञान वैराग्यपूर्वकम्
तद्गृह यत्र वसतिस्तद्भोज्य येन जीवति । यन्मुक्तये तदेवोक्त ज्ञानमज्ञानमन्यथा

उपभोगेनपुण्यानामपुण्यानाञ्च पार्थिव! । कर्त्तव्यानाञ्च नित्यानामकामकरणात्तथा
असञ्चयादपूर्वस्य क्षयात्पूर्वार्जितस्य च । कर्मणोवन्धमाप्नोतिशारीरंन(ब)पुनःपुनः

कर्मणा मोक्षमाप्नोति वैपरीत्येन तस्य तु ।
एतत्ते कथितं राजन्! योगं चेमं निबोध मे ।
यं प्राप्य ब्रह्मणो योगी शाश्वतान्नान्यतां व्रजेत् ॥ ८ ॥

प्रागेवात्माऽऽत्मना जेयोयोगिनांसहिदुर्जयः । कुर्वीततज्जयेयत्नंतस्योपायंश्रृणुष्वमे

प्राणायामैर्दहेद्दोषान् धारणाभिश्च किल्बिषम् ।
प्रत्याहारेण विषयान् ध्यानेनानीश्वरान् गुणान् ॥ १० ॥

यथापर्वतधातूनां दोषाद्दह्यन्ति धाम्यताम् । तथेन्द्रियकृतादोषादह्यन्तेप्राणनिग्रहात्

प्रथमं साधनं कुर्यात् प्राणायामस्य योगवित् ।
प्राणापाननिरोधस्तु प्राणायाम उदाहृतः ॥ १२ ॥

लघुमध्योत्तरीयाख्यःप्राणायामस्त्रिधोदितः । तस्यप्रमाणंवक्ष्यामितदलर्क!श्रृणुष्वमे
लघुर्द्वादशमात्रस्तु द्विगुणःसतुमध्यमः । त्रिगुणाभिस्तुमात्राभिरुत्तमःपरिकीर्त्तितः

निमेषोन्मेषणे मात्राकालो लघ्वक्षरस्तथा ।
प्राणायामस्य सङ्ख्यार्थं स्मृतो द्वादशमात्रिकः ॥ १५ ॥

प्रथमेन जयेत् खेदं मध्यमेन च वेपथुम् । विषादं हि तृतीयेन जयेद्दोषाननुक्रमात्
मृदुत्वंसेव्यमानस्तुसिंहशार्दूलकुञ्जराः । यथायान्तितथाप्राणोवश्योभवतियोगिनः

वश्यं मत्तं यथेच्छातो नागं नयति हस्तिपः ।
तथैव योगी सच्छन्दः प्राणं नयति साधितम् ॥ १८ ॥
यथा हि साधितः सिंहो मृगान् हन्ति न मानवान् ।
तद्वन्निषिद्धपवनः किल्बिषं न नृणां तनुम् ॥ १६ ॥

तस्माद्युक्तः सदा योगीप्राणायामपरोभवेत् । श्रूयतांमुक्तिफलदंतस्यावस्थाचतुष्टयम

ध्वस्तिः प्राप्तिस्तथा संवित् प्रसादश्च महीपते! ।
स्वरूपं श्रृणु चैतेषां कथ्यमानमनुक्रमात ॥ २१ ॥

कर्मणामिष्टदुष्टानां जायते फलसद्गुणः । चेतसोऽपकषायत्वं यत्र सा व्याप्तिरुच्यते
ऐहिकामुष्मिकान् कामान् लोभमोहात्मकान् स्वयम् ।
निरुध्यास्ते सदा योगी प्राप्तिः सा सार्वकालिकी ॥ २३ ॥
अतीतानागतानर्थान् विप्रकृष्टतिरोहितान् । विजानातीन्दुसूर्यर्क्षग्रहाणां ज्ञानसम्पदा
तुल्यप्रभावस्तु यदा योगी प्राप्नोति सम्पदम् ।
तदा संविदिति ख्याता प्राणायामस्य संस्थितिः ॥ २५ ॥
यान्ति प्रसादं येनाऽस्य मनः पञ्च च वायवः ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थाश्च स प्रसाद इति स्मृतः ॥ २६ ॥
शृणुष्व च महीपाल प्राणायामस्य लक्षणम् ।
युञ्जतश्च सदा योगं यादृग्विहितमासनम् ॥२७ ॥
पद्ममर्द्धासनञ्चापि तथा स्वस्तिकमासनम् । आस्थाय योगं युञ्जीत कृत्वा च प्रणवं हृदि
समः समासनो भूत्वा संहृत्य चरणावुभौ । संवृतास्यस्तथैवोरू सम्यग्विष्टभ्य चाग्रतः
पार्ष्णिभ्यां लिङ्गवृषणावस्पृशन् प्रयतः स्थितः ।
किञ्चिदुन्नामितशिरा दन्तैर्दन्तान्न संस्पृशन् ॥ ३० ॥
संपश्यन्नासिकाग्रं स्वं दिशश्चानवलोकयन् । रजसा तमसो वृत्तिं सत्त्वेन रजसस्तथा
संछाद्य निर्मले सत्त्वे स्थितो युञ्जीत योगवित् ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यः प्राणादीन्मन एव च ॥ ३२ ॥
निगृह्य समवायेन प्रत्याहारमुपक्रमेत् । यस्तु प्रत्याहरेत्कामान् सर्वाङ्गानीव कच्छपः
सदाऽऽत्मरतिरेकस्थः पश्यत्यात्मानमात्मनि ।
स बाह्याभ्यन्तरं शौचं निष्पाद्याकण्ठनाभितः ॥ ३४ ॥
पूरयित्वा बुधो देहं प्रत्याहारमुपक्रमेत् । प्राणायामा दश द्वौ च धारणा साभिधीयते
द्वे धारणे स्मृते योगे योगिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ।
तथा वै योगयुक्तस्य योगिनो नियतात्मनः ॥ ३६ ॥
एवं दोष[illegible]पृथक्

व्योमादिपरमाणूंश्चतथात्मानमकल्मषम् । इत्थं योगी यताहारःप्राणायामपरायण

जितां जितां शनैर्भूमिमारोहेत यथा गृहम् ।

दोषान् व्याधींस्तथा मोहमाक्रान्ता भूरनिर्जिता ॥ ३९ ॥

विवर्द्धयति नारोहेत्तस्माद्भूमिमनिर्जिताम् ।

प्राणानामुपसंरोधात् प्राणायाम इति स्मृतः ॥ ४० ॥

धारणेत्युच्यते चेयंधार्यतेयन्मनोयया । शब्दादिभ्यः प्रवृत्तानियदक्षाणियतात्मभि

प्रत्याह्रियन्ते योगेन प्रत्याहारस्ततःस्मृतः । उपायश्चात्रकथितोयोगिभिःपरमर्षि

येन व्याध्यादयो दोषा न जायन्ते हि योगिनः ।

यथा तोयार्थिनस्तोयं यन्त्रनालादिभिः शनैः ॥ ४३ ॥

आपिबेयुस्तथा वायुं पिबेद्योगीजितश्रमः । प्राङ्नाभ्यां हृदयेचात्रतृतीयेचतथोर

कण्ठे मुखे नासिकाग्रेनेत्रभ्रूमध्यमूर्द्धसु । किञ्चतस्मात्परस्मिंश्चधारणापरमास्मृ

दशैता धारणाः प्राप्य प्राप्नोत्यक्षरसाम्यताम् ।

नाध्मातः क्षुधितः श्रान्तो न च व्याकुलचेतनः ॥ ४६ ॥

युञ्जीत योगंराजेन्द्रयोगी सिद्ध्यर्थमादृतः । नातिशीतेनचोष्णेवैनद्वन्द्वेनानिलात

कालेष्वेतेषु युञ्जीत न योगं ध्यानतत्परः । सशब्दाग्निजलाभ्यासेजीर्णगोष्ठेचतुष

शुष्कपर्णचये नद्यां श्मशाने ससरीसृपे । सभये कूपतीरे वा चैत्यवल्मीकसञ्च

देशेष्वेतेषु तत्त्वज्ञो योगाभ्यासं विवर्जयेत् । सत्त्वस्यानुपपत्तौचदेशकालंविवर्ज

नासतो दर्शनं योगे तस्मात्तत्परिवर्जयेत् । देशानेताननादृत्य मूढत्वाद्यो युनक्ति

विघ्नाय तस्य वै दोषा जायन्तेतन्निबोधमे । बाधिर्यंजडतालोपःस्मृतेर्मूकत्वमन्

ज्वरश्चजायतेसद्यस्तत्तदज्ञानयोगिनः । प्रमादाद्योगिनोदोषायद्येतेस्युश्चिकित्सि

तेषां नाशाय कर्त्तव्यं योगिनां तन्निबोध मे ।

स्निग्धां यवागूमत्युष्णां भुक्त्वा तत्रैव धारयेत् ॥ ५४ ॥

वातगुल्मप्रशान्त्यर्थमुदावर्त्ते तथोदरे । यवागूं वापि पवनं वायुग्रन्थिप्रतिश

तद्वत्कम्पे महाशैलं स्थि

विघाते धवसो वार्धं वाधिर्यं श्रवणेन्द्रियम् ॥ ५६ ॥
यथैवाऽऽम्रफलं ध्यायेत् तृष्णार्त्तो रसनेन्द्रिये ।
यस्मिन् यस्मिन् रुजा देहे तस्मिंस्तदुपकारिणीम् ॥ ५७ ॥
धारयेद्धारणामुष्णे शीतां शीते च दाहिनीम् ।
कीलं शिरसि सन्धाय काष्ठं काष्ठेन ताडयेत् ॥ ५८ ॥
लुप्तस्मृतेः स्मृतिं सद्यो योगिनस्तेन जायते ।
द्यावापृथिव्यौ वायवग्नी व्यापिनावपि धारयेत् ॥ ५९ ॥
अमानुषात्सत्वजाद्वा बाधास्त्वेताश्चिकित्सिता (बाधास्त्विति चिकित्सितम्)।
अमानुष सत्वमन्तर्योगिनं प्रविशेद्यदि ॥ ६० ॥
वाय्वग्निधारणेनैन देहसंस्थं विनिर्दहेत् । एवं सर्वात्मना रक्षा कार्या योगविदा नृप !
धर्मार्थकाममोक्षाणां शरीरसाधनयतः । प्रवृत्तिलक्षणाख्यानाद्योगिनो विस्मयात्तथा
विज्ञानं विलयं याति तस्माद्गोप्याः प्रवृत्तयः ॥ ६२ ।
अलौल्य (अलौल्य) मारोग्यमनिष्ठुरत्वं गन्धः शुभो मूत्रपुरीषमल्पम् ।
कान्तिः प्रसादः स्वरसौम्यता च योगप्रवृत्ते प्रथमं हि चिह्नम् ॥ ६३ ॥
अनुरागं जनो याति परोक्षे गुणकीर्त्तनम् । न बिभ्यति च सत्त्वानि सिद्धेर्लक्षणमुत्तमम्
शीतोष्णादिभिरत्युग्रैर्यस्य बाधा न विद्यते ।
न भीतिमेति चान्येभ्यस्तस्य सिद्धिरुपस्थिता ॥ ६५ ॥
इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे अलर्कोपाख्याने योगाध्यायवर्णननामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

चत्वारिंशोऽध्यायः

योगसिद्धिवर्णनम्

दत्तात्रेय उवाच

उपसर्गाः प्रवर्तन्ते दृष्टे ह्यात्मनियोगिनः। ये तांस्ते सम्प्रवक्ष्यामि समासेननिबोधमे

काम्याः क्रियास्तथा कामान् मानुषानभिवाञ्छति।
स्त्रियो दानफलं विद्यां मायां कुप्यं धनं दिवम्॥ २॥

देवत्वममरेशत्वं रसायनचयःक्रियाः। मरुत्प्रपतनं यज्ञं जलाग्न्यावेशनन्तथा॥ ३॥

श्राद्धानां सर्वदानानां फलानि नियमास्तथा।
तथोपवासात्पूर्त्ताच्चदेवताभ्यर्चनादपि॥ ४॥

तेभ्यस्तेभ्यश्चकर्मभ्य उपसृष्टोऽभिवाञ्छति। चित्तमित्थंवर्तमानंयत्नाद्योगीनिवर्तयेत

ब्रह्मसङ्गि मनः कुर्वन्नुपसर्गात्प्रमुच्यते। उपसर्गैर्जितैरेभिरुपसर्गास्ततः पुनः॥ ६।

योगिनः सम्प्रवर्तन्ते सात्त्वराजसतामसाः। प्रातिभःश्रावणोदैवोभ्रमावर्त्तौतथापरौ

पञ्चैते योगिनां योगविघ्नाय कटुकोदयाः।
वेदार्थाः काव्यशास्त्रार्थाः विद्याशिल्पान्यशेषतः॥ ८॥

प्रतिभान्ति यदस्येति प्रातिभः स तु योगिनः।
शब्दार्थानखिलान् वेत्ति शब्दं गृह्णाति चैव यत्॥ ६॥

योजनानां सहस्रेभ्यः श्रावणः सोऽभिधीयते।
समन्ताद्वीक्षते चाष्टौ स यदा देवतोपमः (देवयोनयः)॥ १०॥

उपसर्गन्तमप्याहुर्दैवमुन्मत्तवद्बुधाः। भ्राम्यते यन्निरालम्बं मनो दोषेणयोगिनः

समस्ताचारविभ्रंशाद्‍ भ्रमःसपरिकीर्तितः। आवर्तइव तोयस्यज्ञानावर्त्तो यदाकुलः

नाशयेच्चित्तमावर्त उपसर्गः स उच्यते। एतैर्नाशितयोगास्तु सकला देवयोनयः॥

उपसर्गैर्महाघोरैरावर्त्तन्तेपुनः पुनः। प्रावृत्या कम्बलं शुक्लं योगी तस्मान्मनोमयम्

शरीरमण्डले दृष्टा गुरुज्ञान ततो हि यत् ।
ज्ञानपूर्वोऽपि यो योगो ज्ञातव्यो वै विपश्चिता ॥ १५ ॥
चिन्तयेत्परमं ब्रह्मकृत्वा तन्मयचमन । योगयुक्त सदा योगीलघ्वाहारोजितेन्द्रिय
सूक्ष्मास्तु धारणा सप्तभूराद्यामूर्ध्निधारयेत् । धरित्रींधारयेद्योगीतत्सौक्ष्म्यप्रतिपद्यते
आ मान मन्यते चोर्वी तद्गन्धञ्च जहाति स ॥
तथैवाप्सु रस सूक्ष्म तद्वद्रूपञ्च तेजसि ॥ १८ ॥
स्पर्शं वायौ तथा तद्वद्बिभ्रतस्तस्य धारणाम् ।
व्योम्न सूक्ष्मा प्रवृत्तिञ्च शब्द तद्वज्जहाति स ॥ १९ ॥
मनसा सर्वभूताना मनस्याविशते यदा । मानसीं धारणा बिभ्रन्मन सूक्ष्मञ्चजायते
तद्वद्बुद्धिमशेषाणा सत्त्वानामेत्य योगवित् ।
परित्यजति सम्प्राप्य बुद्धिसौक्ष्म्यमनुत्तमम् ॥ २१ ॥
परित्यजतिसूक्ष्माणिसप्त वैतानियोगवित् ।सम्यग्विज्ञाययोऽलर्कतस्यावृत्तिर्नविद्यते
एतासा धारणाना तु सप्ताना सौक्ष्ममात्मवान् ।
दृष्ट्वा दृष्ट्वा तत सिद्धि त्यक्त्वा त्यक्त्वा परा व्रजेत् ॥ २३ ॥
यस्मिन् यस्मि श्च कुरुते भूते राग महीपते ।
तस्मि स्तस्मिन् समासक्ति सम्प्राप्य स विनश्यति ॥ २४ ॥
तस्माद्विदि त्वा सूक्ष्माणि ससक्तानि परस्परम् ।
परित्यजति यो देही स पर प्राप्नुयात् पदम् ॥ २५ ॥
एतान्येव तु सन्धायसप्तसूक्ष्माणिपार्थिव । भूतादीनाविनाशोऽत्रसद्भावज्ञस्यमुक्तये
गन्धादिषु समासक्ति सम्प्राप्य स विनश्यति ।
पुनरावर्त्तते भूप स ब्रह्मापरमानुषम् ॥ २७ ॥
सप्तैता धारणा योगी समतीत्य यदिच्छति ।
तस्मिस्तस्मिंल्लय सूक्ष्मे भूते याति नरेश्वर ॥ २८ ॥
देवानामसुराणाञ्चा गन्धर्वोरगरक्षसाम् । देहेषु लयमायाति सङ्गनाप्नोतिचक्कचित्

णिमा लघिमा चैव महिमा प्राप्तिरेवच । प्राकाम्यञ्च तथेशित्वंवशित्वञ्चतथापरम्
यत्रकामावशायित्वंगुणानेतांस्तथैश्वरान् । प्राप्नोत्यष्टौनरव्याघ्रपरंनिर्वाणसूचकान्

सूक्ष्मात्सूक्ष्मतमोऽणीयान् शीघ्रत्वं लघिमागुणः ।
महिमाशेषपूज्यत्वात्प्राप्तिर्नाप्राप्यमस्य यत् ॥ ३२ ॥
प्राकाम्यमस्य व्यापित्वादीशित्वञ्चेश्वरो यतः ।
वशित्वाद्वशिमा नाम योगिनः सप्तमो गुणः ॥ ३३ ॥
यत्रेच्छास्थानमप्युक्तं यत्र कामावशायिता ।
ऐश्वर्यकारणैरेभिर्योगिनः प्रोक्तमष्टधा ॥ ३४ ॥

क्तसंसूचकं भूप! परं निर्वाणमात्मनः । ततो न जायते नैववर्द्धतेनविनश्यति ॥
पे क्षयमवाप्नोति परिणामं न गच्छति । छेदंक्लेदं तथादाहंशोषंभूरादितोनच ॥
वर्गादवाप्नोतिशब्दाद्यैः ह्रियते नच । नचास्यसन्तिशब्दाद्यास्तद्भोक्तातैर्नयुज्यते
याहि कनकं खण्डमपद्रव्यवदग्निना । दग्धदोषं द्वितीयेन खण्डेनैक्यं व्रजेन्नृप
विशेषमवाप्नोति तद्वद्योगाग्निनायतिः । निर्दग्धदोषस्तेनैक्यं प्रयातिब्रह्मणा सह
थाग्निरग्नौ सङ्क्षिप्तः समानत्वमनुव्रजेत् । तदाख्यस्तन्मयोभूतो न गृह्येत विशेषतः

परेण ब्रह्मणा तद्वत् प्राप्यैक्यं दग्धकिल्बिषः ।
योगी याति पृथग्भावं न कदाचिन्महीपते! ॥ ४१ ॥

था जलंजलेनैक्यं निक्षिप्तमुपगच्छति । तथात्मासाम्यमभ्येतियोगिनःपरमात्मनि
इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे योगिसिद्धिर्नामाऽध्यायवर्णनंनाम चत्वारिंशोऽध्यायः ॥

एकचत्वारिंशोऽध्यायः

योगिपरिचर्यायामयमनियमादिवर्णनम्

मदालसोवाच

भगवन्! योगिनश्चर्यां श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ।
ब्रह्मवर्त्मन्यनुसरन् यथा योगी न सीदति ॥ १ ॥

दत्तात्रेय उवाच

मानापमानौ यावेतौ प्रीत्युद्वेगकरौ नृणाम् ।
तावेव विपरीतार्थौ योगिनः सिद्धिकारकौ ॥ २ ॥

मानापमानौ यावेतौ तावेवाहुर्विषामृते । अपमानोऽमृतं तत्र मानस्तु विषमं विषम्
चक्षुःपूतं न्यसेत्पादं वस्त्रपूतं जलं पिबेत् । सत्यपूतां वदेद्वाणीं बुद्धिपूतं च चिन्तयेत्
आतिथ्यश्राद्धयज्ञेषु देवयात्रोत्सवेषु च । महाजनं च सिद्ध्यर्थं न गच्छेद्योगवित्क्वचित्
व्यस्ते विधूमे व्यङ्गारे सर्वस्मिन् भुक्तवज्जने । अटेत योगविद्भैक्ष्यं न तु तेष्वेव नित्यशः
यथैवमवमन्यन्ते जनाः परिभवन्ति च । तथा युक्तश्चरेद्योगी सतां धर्मं न दूषयन्
भैक्ष्यं चरेद् गृहस्थेषु यायावरगृहेषु च । श्रेष्ठा तु प्रथमा चेति वृत्तिरस्योपदिश्यते
अथ नित्यं गृहस्थेषु शालीनेषु चरेद्यतिः । श्रद्दधानेषु दान्तेषु श्रोत्रियेषु महात्मसु
अत ऊर्ध्वं पुनश्चापि अदुष्टापतितेषु च । भैक्ष्यचर्या विवर्णेषु जघन्या वृत्तिरिष्यते
भैक्ष्यं यवागूं तक्रं वा पयो यावकमेव वा । फलं मूलं प्रियङ्गुं वा कणपिण्याकसक्तवः

इत्येते च शुभाहारा योगिनः सिद्धिकारकाः ।
तत् प्रयुञ्ज्यान्मुनिर्भक्त्या परमेण समाधिना ॥ १२ ॥
अपः पूर्वं सकृत् प्राश्य तूष्णीं भूत्वा समाहितः ।
प्राणायेति ततस्तस्य प्रथमा ह्याहुतिः स्मृता ॥ १३ ॥

अपानाय द्वितीया तु समानायेति चापरा । उदानाय चतुर्थी स्याद्व्यानायेति च पञ्चमी

प्राणायामैःपृथक्कृत्वाशेषंभुञ्जीतकामतः। अपः पुनःसकृत्प्राश्य आचम्यहृदयंस्पृशेत्
स्तेयं ब्रह्मचर्यञ्च त्यागोलोभस्तथैव च। व्रतानि पञ्चभिक्षूणामहिंसापरमाणि वै
अक्रोधोगुरुशुश्रूषाशौचमाहारलाघवम्। नित्यस्वाध्यायइत्येतेनियमाःपञ्चकीर्त्तिताः
सारभूतमुपासीत ज्ञानंयत्कार्यसाधकम्। ज्ञानानां बहुतायेयं योगविघ्नकरी हि सा
इदं ज्ञेयमिदंज्ञेयमिति यस्तृषितश्चरेत्। अपि कल्पसहस्रेषु नैवज्ञेयमवाप्नुयात्

त्यक्तसङ्गो जितक्रोधो लघ्वाहारो जितेन्द्रियः।
विधाय बुद्ध्या द्वाराणि मनो ध्याने निवेशयेत्॥ २०॥

शून्येष्वेवावकाशेषु गुहासु च वनेषु च। नित्ययुक्तः सदायोगी ध्यानंसम्यगुपक्रमेत्
वाग्दण्डः कर्मदण्डश्चमनोदण्डश्चतेत्रयः। यस्यैतेनियतादण्डाःसत्रिदण्डीमहायतिः
र्वमात्ममयं यस्य सदसज्जगदीदृशम्। गुणागुणमयंतस्य कःप्रियः कोनृपाऽप्रियः

विशुद्धबुद्धिः समलोष्ट्र (ष्ठ) काञ्चनः समस्तभूतेषु च तत् समाहितः।
स्थानं परं शाश्वतमव्ययञ्च परं (यतिर्हि) हि मत्वा न पुनः प्रजायते॥ २४॥
वेदाच्छ्रेष्ठाः सर्वयज्ञक्रियाश्च यज्ञाज्जप्यं ज्ञानमार्गश्च जप्यात्।
ज्ञानाद्ध्यानं सङ्गरागव्यपेतं तस्मिन्प्राप्ते शाश्वतस्योपलब्धिः॥ २५॥
समाहितो ब्रह्मपरोऽप्रमादी शुचिस्तथैकान्तरतिर्यतेन्द्रियः।
समाप्नुयाद्योगमिमं महात्मा विमुक्तिमाप्नोति ततः स्वयोगतः॥ २६॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे योगिचर्याध्यायवर्णनंनामैकचत्वारिंशोऽध्यायः॥ ४१॥

———:#:———

द्विचत्वारिंशोऽध्यायः

ॐकारमाहात्म्यवर्णनम्

दत्तात्रेय उवाच

एवं यो वर्तते योगी सम्यग्योगव्यवस्थितः । न स व्यावर्तितुं शक्यो जन्मान्तरशतैरपि
दृष्ट्वा च परमात्मानं प्रत्यक्षं विश्वरूपिणम् । विश्वपादशिरोग्रीवं विश्वेशं विश्वभावनम्
तत्प्राप्तये महत्पुण्यमोमित्येकाक्षरं जपेत् । तदेवाध्ययनं तस्य स्वरूपं शृण्वतः परम्
अकारश्च तथोकारो मकारश्चाक्षरत्रयम् । एता एव त्रयो मात्राः सात्त्वराजसतामसाः

निर्गुणा योगिगम्याऽन्या चार्द्धमात्रोर्ध्वसंस्थिता ।
गान्धारीति च विज्ञेया गान्धारस्वरसंश्रया ॥ ७ ॥

पिपीलिकागतिस्पर्शा प्रयुक्ता मूर्ध्नि लक्ष्यते । यथाप्रयुक्तओङ्कार प्रतिनिर्याति मूर्द्धनि

तथोङ्कारमयो योगी त्वक्षरे त्वक्षरो भवेत् ।

प्राणो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म वेध्यमनुत्तमम् । अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत्

ओमित्येतत्त्रयो वेदास्त्रयो लोकास्त्रयोऽग्नय ॥ ८ ॥

विष्णुर्ब्रह्मा हरश्चैव ऋक्सामानि यजूंषि च । मात्राः सार्द्धाश्च तिस्रश्च विज्ञेयाः परमार्थतः
तत्र युक्तस्तु यो योगी स तल्लयमवाप्नुयात् । अकारस्त्वथ भूर्लोक उकारश्चोच्यते भुवः
सव्यञ्जनो मकारश्च स्वर्लोकः परिकल्प्यते । व्यक्ता तु प्रथमा मात्रा द्वितीयाऽव्यक्तसंज्ञिता
मात्रा तृतीया चिच्छक्तिरर्द्धमात्रा परं पदम् । अनेनैव क्रमेणैता विज्ञेया योगभूमयः

ओमित्युच्चारणात् सर्वं गृहीतं सदसद्भवेत् ।
ह्रस्वा तु प्रथमा मात्रा द्वितीया दैर्घ्यसंयुता ॥ १२ ॥

तृतीया च प्लुतार्द्धाख्या वचसः सा न गोचरा । इत्येतदक्षरं ब्रह्म परमोङ्कारसंज्ञितम्
यस्तु वेद नरः सम्यक् तथा ध्यायति वा पुनः । संसारचक्रमुत्सृज्य त्यक्तत्रिविधबन्धनः
प्राप्नोति ब्रह्मणि लयं परमे परमात्मनि । अक्षीणकर्मबन्धश्च ज्ञात्वा मृत्युमरिष्टतः ॥

उत्क्रान्तिकाले संस्मृत्य पुनर्योगित्वमृच्छति ।
तस्मादसिद्धयोगेन सिद्धयोगेन वा पुनः ।
ज्ञेयान्यरिष्टानि सदा येनोत्क्रान्तौ न सीदति ॥ १७ ॥

इतिश्रीमार्कण्डेयपुराणेयोगधर्मओङ्काराध्यायवर्णनं नाम द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥

त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः

मृत्युज्ञानकरारिष्टवर्णनम्

दत्तात्रेय उवाच

अरिष्टानि महाराज! शृणु वक्ष्यामि तानि ते ।
येषामालोकनान्मृत्युं निजं जानाति योगवित् ॥ १ ॥
देवमार्गं ध्रुवं शुक्रं सोमच्छायामरुन्धतीम् ।
यो न पश्येन्न जीवेत् स नरः सम्वत्सरात्परम् ॥ २ ॥
अरश्मिबिम्बं सूर्य्यस्य वह्निं चैवांशुमालिनम् ।
दृष्ट्वैकादशमासात् तु नरो नोर्द्ध्वं तु जीवति ॥ ३ ॥
वान्तेमूत्रपुरीषेच यःस्वर्णंरजतं तथा । प्रत्यक्षं कुरुतेस्वप्ने जीवेत्स दशमासिकम्
दृष्ट्वा प्रेतपिशाचादीन् गन्धर्वनगराणिच । सुवर्णवर्णान् वृक्षांश्चनवमासान्सजीवति
स्थूलः कृशःकृशःस्थूलो योऽकस्मादेव जायते ।
प्रकृतेश्च निवर्तेत तस्यायुश्चाष्टमासिकम् ॥ ६ ॥
खण्डंयस्यपदंपाष्ण्यांपादस्याग्रेचवाभवेत् । पांशुकर्दमयोर्मध्येसप्तमासान्सजीवति
गृध्रः कपोतः काकोलो वायसो वापि मूर्द्धनि ।
क्रव्यादो वा खगो नीलः षण्मासायुःप्रदर्शकः ॥ ८ ॥
हन्यते काकपङ्क्तीभिःपांशुवर्षेणवानरः । स्वांच्छायामन्यथादृष्ट्वाचतःपञ्चसजीवति

अनभ्रे विद्युतं दृष्ट्वा दक्षिणां दिशमाश्रिताम् ।
रात्राविन्द्रधनुश्चापि जीवितं द्वित्रिमासिकम् ॥ १० ॥
घृते तैले तथादर्शे तोये वा नात्मनस्तनुम् । यः पश्येदशिरस्कां वा मासादूर्ध्वं न जीवति
यस्य बस्तसमो गन्धो गात्रे शवसमोऽपि वा ।
तस्यार्द्धमासिकं ज्ञेयं योगिनो नृप जीवितम् ॥ १२ ॥
यस्य वै स्नातमात्रस्य हृत्पादमवशुष्यते । पिबतश्च जलं शोषो दशाहं सोऽपि जीवति
सम्भिन्नो मारुतो यस्य मर्मस्थानानि कृन्तति ।
हृष्यते नाम्बुसंस्पर्शात् तस्य मृत्युरुपस्थितः ॥ १४ ॥
ऋक्षवानरयानस्थो गायन् यो दक्षिणां दिशम् ।
स्वप्ने प्रयाति तस्यापि न मृत्युः कालमिच्छति ॥ १५ ॥
रक्तकृष्णाम्बरधरा गायन्ती हसती च यम् । दक्षिणाशां नयेन्नारी स्वप्ने सोऽपि न जीवति
नग्नं क्षपणकं स्वप्ने हसमानं महाबलम् । एकं सम्प्रेक्ष्य वल्गन्तं विद्यान्मृत्युमुपस्थितम्
आमस्तकतलाद्यस्तु निमग्नं पङ्कसागरे । स्वप्ने पश्यत्यथात्मानं स सद्यो म्रियते नरः
केशाङ्गारांस्तथा भस्म भुजङ्गान्निर्जलां नदीम् । दृष्ट्वा स्वप्ने दशाहात्तु मृत्युरेकादशे दिने
करालैर्विकटैः कृष्णैः पुरुषैरुद्यतायुधैः । पाषाणैस्ताडितः स्वप्ने सद्यो मृत्युं लभेन्नरः
सूर्योदये यस्य शिवा क्रोशन्ती याति सम्मुखम् । विपरीतं परीतं वा स सद्यो मृत्युमृच्छति
यस्य वै भुक्तमात्रस्य हृदयं बाधते क्षुधा । जायते दन्तघर्षश्च स गतायुर्न संशयः
दीपगन्धं न यो वेत्ति त्रस्यत्यह्नि तथा निशि । नात्मानं परनेत्रस्थं वीक्षते न स जीवति
शक्रायुधं चार्द्धरात्रे दिवा ग्रहगणं तथा । दृष्ट्वा मन्येत संक्षीणमात्मजीवितमात्मवित्
नासिका वक्रतामेति कर्णयोर्नमनोन्नती । नेत्रञ्च वामं स्रवति यस्य तस्यायुरुद्गतम्
आरक्ततामेति मुखं जिह्वा वा श्यामतां यदा । तदा प्राज्ञो विजानीयान्मृत्युमासन्नमात्मनः
उष्ट्ररासभयानेन यः स्वप्ने दक्षिणां दिशम् ।
प्रयाति तं च जानीयात् सद्यो मृत्युं न संशयः (नरेश्वर!) ॥ २७ ॥
पिधाय कर्णौ निर्घोषं न शृणोत्यात्मसम्भवम् ।

नश्यते चक्षुषोर्ज्योतिर्यस्य सोऽपि न जीवति ॥ २८ ॥

पततोयस्यवैगर्तेस्वप्नेद्वारंपिधीयते । न चोत्तिष्ठतियः श्वभ्रात्तदन्तं तस्य जीवितम्

ऊर्द्ध्वा च दृष्टिर्न च सम्प्रतिष्ठा रक्ता पुनः सम्परिवर्तमाना ।
मुखस्य चोष्मा शुषिरञ्च नाभेः शंसन्ति पुंसामपरं शरीरम् ॥ ३० ॥

स्वप्नेऽग्निं प्रविशेद्यस्तु न च निष्क्रमते पुनः ।
जलप्रवेशादपि वा तदन्तं तस्य जीवितम् ॥ ३१ ॥

यश्चाभिहन्यते दुष्टैर्भूतैरात्रावथोदिवा । समृत्युंसप्तरात्र्यन्ते नरः प्राप्नोत्यसंशयम्

स्ववस्त्रममलं शुक्लं रक्तं पश्यत्यथाऽसितम् ।
यः पुमान् मृत्युमासन्नं तस्यापि हि विनिर्दिशेत् ॥ ३३ ॥

स्वभाववैपरीत्यन्तुप्रकृतेश्च विपर्ययः । कथयन्ति मनुष्याणां सदासन्नौयमान्तकौ

येषांविनीतः सततं येऽस्यपूज्यतमामताः । तानेव चावजानाति तानेवचविनिन्दति

देवान्नार्चयतेवृद्धान्गुरून्विप्रांश्चनिन्दति । मातापित्रोर्नसत्कारंजामातृणांकरोतिच

योगिनांज्ञानविदुषामन्येषाञ्च महात्मनाम् । प्राप्ते तु कालेपुरुषस्तद्विज्ञेयं विचक्षणैः

योगिनां सततं यत्नादरिष्टान्यवनीपते ।
सम्वत्सरान्ते तज्ज्ञेयं फलदानि दिवानिशम् ॥ ३८ ॥

विलोक्याविशदाचैषां फलपङ्क्तिःसुभीषणा । विज्ञायकार्योमनसिसचकालोनरेश्वर

ज्ञात्वाकालं च तं सम्यगभयस्थानमाश्रितः ।
युञ्जीत योगी कालोऽसौ यथा नास्याफलो भवेत् ॥ ४० ॥

दृष्ट्वाऽरिष्टं तथा योगी त्यक्त्वा मरणजं भयम ।
तत्स्वभावं तदालोक्य काले यावत्युपागतम् (कालोयावद्विपाकदः)॥

तस्य भागे तथैवाह्नो योगं युञ्जीत योगवित् ।
पूर्वाह्णे चापराह्णे च मध्याह्ने चापि तद्दिने ॥ ४२ ॥

यत्रवा रजनीभागे तदरिष्टं निरीक्षितम् । तत्रैव तावद्युञ्जीतयावत् प्राप्तं हि तद्दिनम्

ततस्त्यक्त्वा भयं सर्वं जित्वा तं कालमात्मवान् ।

तत्रैवावसथे स्थित्वा यत्र धा स्थैर्यमात्मन ॥ ४४ ॥
युञ्जीत योगं निर्जित्य त्रीन् गुणान् परमात्मनि ।
तन्मयश्चात्मना भूत्वा चिद्वृत्तिमपि सन्त्यजेत् ॥ ४५ ॥
तत परमनिर्वाणमतीन्द्रियमगोचरम् । यद्बुद्धेर्यन्नचाख्यातु शक्यते तत् समश्नुते
एतत् सर्वं समाख्याततथालर्क यथार्थवत् । प्राप्स्यसेयेनतद्ब्रह्म सक्षेपात्तन्निबोधमे
शशाङ्करश्मिसयोगाच्चन्द्रकान्तमणि पय ।
समुत्सृजति नायुक्त सोपमा योगिन स्मृता ॥ ४८ ॥
यथार्करश्मिसयोगादर्ककान्तो हुताशनम् ।
आविष्करोति नैक सन्नुपमा साऽपि योगिन ॥ ४९ ॥
पिपीलिकाऽऽखुनकुलगृहगोधाकपिञ्जला ।
वसन्ति स्वामिवद् गेहे ध्वस्ते यान्ति ततोऽन्यत ॥ ०॥
दु खन्तुस्वामिनोध्वसेतस्ययेषा नकिञ्चन । चेशमनोयत्रराजेन्द्र सोपमायोगसिद्धये
मृद्देहिकाल्पदेहापि मुखाग्रे याप्यणीयसा । करोति मृद्भारचयमुपदेश स योगिन
पशुपक्षिमनुष्याद्यै पत्रपुष्पफलान्वितम् । वृक्षविलुप्यमानतु दृष्ट्वासिध्यन्तियोगिन
रुरुशावविषाणाग्रमालक्ष्य तिलकाकृतिम् ।
सह तेन विवर्द्धन्तं योगी सिद्धिमवाप्नुयात् ॥ ५४ ॥
द्रवपूर्णमुपादाय पात्रमारोहतो भुव । तुङ्गमङ्गविलोक्योच्चैर्विज्ञात किं नयोगिना
सवस्वे जीवनायाल मिखाते पुरुषस्य या ।
चेष्टा सा तत्त्वतो ज्ञात्वा योगिन कृतकृत्यता ॥ ५६ ॥
तद्गृह यत्र वसति तद्भोज्य येन जीवति । येन सम्पद्यतेचार्थस्तत्सुखममताऽत्रका
अभ्यर्थितोऽपि ते कार्य्यं करोति करणैर्यथा ।
तथा बुध्यादिभिर्योगी पारक्यै साधयेत्परम् ॥ ५८ ॥

जड उवाच

तत प्रणम्यात्रिपुत्रमलर्कं स महीपति । प्रश्रयावनतो वाक्यमुवाचातिमुदान्वितः

अलर्क उवाच

दिष्ट्यादैवैरिदं ब्रह्मन्! पराभिभवसम्भवम्। उपपादितमत्युग्रं प्राणसन्देहदं भयम्

दिष्ट्याकाशिपतेर्भूरिबलसम्पत्पराक्रमः। यदुच्छेदादिहायातः सत्युष्मत्सङ्गदोमम

दिष्ट्या मन्दबलश्चाहं दिष्ट्या भृत्याश्च मे हताः।

दिष्ट्या कोपः क्षयं यातो दिष्ट्याऽहं भीतिमागतः॥ ६२॥

दिष्ट्या त्वत्पादयुगलं मम स्मृतिपथं गतम्।

दिष्ट्या त्वदुक्तयः सर्व्वा मम चेतसि संस्थिताः॥ ६३॥

दिष्ट्याज्ञानंममोत्पन्नं भवतश्चसमागमात्। भवताचैवकारुण्यंदिष्ट्याब्रह्मन्!कृतंमम

अनर्थोऽप्यर्थतां याति पुरुषस्य शुभोदये। तथेदमुपकाराय व्यसनं सङ्गमात्तव॥

सुबाहुरुपकारी मे स च काशिपतिः प्रभो!।

तयोःकृतेऽहंसम्प्राप्तो योगीश!भवतोऽन्तिकम्॥ ६६॥

सोऽहं तवप्रसादाग्निनिर्दग्धाज्ञानकिल्बिषः। तथायतिष्येयेनेदृङ्नभूयांदुःखभाजनम्

परित्यजिष्ये गार्हस्थ्यमार्त्तिपादपकाननम्।

त्वत्तोऽनुज्ञां समासाद्य ज्ञानदातुर्म्महात्मनः॥ ६८॥

दत्तात्रेय उवाच

गच्छ राजेन्द्र! भद्रं ते यथा ते कथितं मया। निर्ममोनिरहङ्कारस्तथा चर विमुक्तये

जड उवाच

एवमुक्तः प्रणम्यैनमाजगाम त्वरान्वितः। यत्रकाशिपतिर्भ्रातासुबाहुश्चास्यसोऽग्रजः

समुत्पत्य महाबाहुं सोऽलर्कःकाशिभूपतिम्। सुबाहोरग्रतोवीरमुवाच प्रहसन्निव

राज्यकामुक! काशीश! भुज्यतां राज्यमूर्जितम्।

तथा च रोचते तद्वत् सुबाहोः सम्प्रयच्छ वा॥ ७२॥

काशिराज उवाच

किमलर्क! परित्यक्तं राज्यं ते संयुगंविना। क्षत्रियस्यनधर्मोऽयंभवांश्चक्षत्त्रधर्मवित्

निर्जितामात्यवर्गस्तुत्यक्त्वामरणजंभयम्। सन्दधीतशरंराजालक्ष्यमुद्दिश्यवैरिणम्

तं जित्वा नृपतिर्भोगान् यथाभिलषितान् वरान् ।
भुञ्जीत परमं सिद्ध्यै यतेत च महामते ॥ ७१ ॥

अलर्क उवाच

यवलोऽत्राश्चर्यादि ममाभ्यासीन्नन पुरा । साम्प्रतविपरीतार्थं मृदुवाक्यैश्च काशिप
यथाच मौक्तिकः सद्भ्यन्यवदन्तःकरणं नृपान् ।
गुणान्तु सकलांस्तद्वदौषधेष्वेव जन्तुषु ॥ ७७ ॥
विच्छिन्दितरेक यथायं यदा नान्योऽस्ति कश्चन ।
तदा का नृपते ! प्रजाभिर्बन्धुमृत्यता ॥ ७८ ॥
तन्मया दुःखनाशाय त्वद्भयोद्यमुपागतम् । दत्तात्रेयप्रसादेन ज्ञानं प्राप्तं नरेश्वर ॥
निर्जितेन्द्रियवर्गस्तु त्यक्त्वा सङ्गमशेषतः । मनो ब्रह्मणि सन्धाय तत्प्राप्तौ यतनो ऽथ
समस्थमन्यसाम्निबुध्यै दत्त किंचिन्न विद्यते ।
इन्द्रियाणि च संयम्य मन सिद्धि नियच्छति ॥ ८१ ॥
सोऽहं न तेऽरिन ममाऽसि शत्रुः सुबाहुरेषो न ममापकारी ।
दृष्टं मयात्मन्निदं यथान्या मन्विष्यतां भूप रिपुस्त्वयाऽन्यः ॥ ८२ ॥
इत्थं स तेनाभिहितो नरेन्द्रो हृष्टः समुत्थाय ततः सुबाहुः ।
दिष्ट्येति तं भ्रातरमभिनन्द्य काशीश्वरं वाक्यमिदं बभाषे ॥ ८३ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेऽलर्कोपाख्यानपर्यवसानं नाम त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४३॥

चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः

सुबाहुनाकाशिराजायस्वसाहाय्यकरणार्थंप्रार्थितायस्वकीयकनिष्ठभ्रातृ-बोधलम्बनायसमुद्यमवर्णनम्

सुबाहुरुवाच

यदर्थंनृपशार्दूल! त्वामहं शरणं गतः । तन्मयासकलंप्राप्तं यास्यामि त्वं सुखी भव

काशिराज उवाच

किं निमित्तंभवान्प्राप्तोनिष्पन्नोऽर्थश्चकस्तव । सुबाहो!तन्ममाचक्ष्वपरंकौतूहलंहिमे

समाक्रान्तमलर्केण पितृपैतामहं महत् । राज्यं देहीतिनिर्जित्य त्वयाहमभिचोदितः

ततोमयासमाक्रम्यराज्यमस्यानुजस्यते । एतत्तेयत्समानीतंतद्भुङ्क्ष्वस्वकुलोचितम्

सुबाहुरुवाच

काशिराज!निबोधत्वं यदर्थमयमुद्यमः । कृतोमयाभवांश्चैव कारितोऽत्यन्तमुद्यमम्

भ्राताममायंग्राम्येषुशक्तोभोगेषु तत्त्ववित् । विमूढांबोधयन्तौचभ्रातरावग्रजौ मम

तयोर्मम च यन्माता बाल्येस्तन्यंयथामुखे । तथावबोधोचितस्ततःकर्णयोरवनीपते

तयोर्मम च विज्ञेयाः पदार्था ये मता नृभिः
प्रकाश्यं मनसो नीतास्ते मात्रा नास्य पार्थिव ! ॥ ८ ॥

यथैकमर्थयातानामेकस्मिन्नवसीदति । दुःखंभवति साधूनां तथाऽस्माकं महीपते!

गार्हस्थ्यमोहमापन्ने सीदत्यस्मिन्नरेश्वर !।
सम्बन्धिन्यस्य देहस्य बिभ्रति भ्रातृकल्पनाम् ॥ १० ॥

ततो मया विनिश्चित्य दुःखाद्वैराग्यभावना ।
भविष्यतीत्यस्य भवानित्युद्योगाय संश्रितः ॥ ११ ॥

तदस्य दुःखाद्वैराग्यं सम्बोधादवनीपते! । समुद्भूतं कृतंकार्यंभद्रंतेऽस्तुव्रजाम्यहम्

उक्ता महात्मनानेन दत्त्वा तन्मातया स्वकम् ।
अन्यत्तर्तीगुणैर्वाने वाक्यं वर्णितं पार्थिव ॥ १४ ॥

पितार्थं गमिता सर्वं सुखं न प्राप्य दुर्लभम् । इतं नवापि चिन्तयित्वान्त्ये निद्रोत्सुक

उत्तिष्ठते सोऽहमत्र स्वजनो बान्धव सुहृत् ।
नैवेन्द्रं न नरं कञ्चे नैरिन्द्रिया विफला हि मे ॥ १५ ॥
सुहृदि स्वजने बन्धौ समर्थे कोऽत्यनीदृशि ।
धर्मार्थकाममोक्षाणां तत्त्वात्मे तत्र न स्वयी ॥ १६ ॥
तस्मात् त्वत्प्रसादं नृप ! मया कार्यं महत् इदम् ।
स्वस्ति तेऽस्तु गमिष्यामि काननामय सत्तम ॥ १७ ॥

काशिराज उवाच

उत्पन्नस्य यथाप्राप्तोऽत्र भ्रातुर्गोमहान् । समोऽस्यात्मवर्धं न करोति महात्मवान्
धर्मार्थामतानद्धिमद्भोगम्नोपम । तस्मात्त्वमर्थप्रापृष्टमयनत्तामनुब्रति

सुबाहुरुवाच

धर्मार्थकाममोक्षाख्यं पुरुषार्थचतुष्टयम् । तत्र धर्मार्थकामास्ते सकला हीयतेऽपरः
तते संक्षेपतो यद्वै तदिदं त्वमनः शृणु । श्रुत्वा चम्ननवलोकयमैषाः श्रेयमेतुर
मनैतिमन्ययोमूर' सकार्योऽद्मितिश्वया । मन्यते लोक्यमयौऽहिमांमोनेनितामय

कल्पदर्शिति मन्त्रे धर्मिण्यालोक्य स्वयात्मना ।
बहूल्लगनमलोकयमात्मोकयात्मविशु ॥ २१ ॥

सम्यक्प्रदिविशीनमसविचारमवेननम् । व्यक्ताव्यक्तं स्वयात्मं धीरनायामहतिम्पुन
पनम्निहोय विलनैविकतनयित्मेयया । ममाम्मनयाम्मविजनयम्योत्स्यमितिमुहवा
सोऽहं मयंगतो नृप' लोकसंव्यवहारत । मयैरमुण्यते सर्वं स्वयनृपोऽयमाम्यदम्

एवमुक्त्वा ययौ धीमान् ' सुबाहुः काशिभूमिपम् ।
काशिराजोऽपि सम्पूज्य सोऽलर्कं स्वपुरं ययौ ॥ २४ ॥

अलर्कोऽपि सुतंस्थैमममिविच्यनराधिपम् । वनंजगाम समस्तसर्वसङ्गस्त्वसिद्धये

ततः कालेन महता निर्द्वन्द्वो निष्परिग्रहः । प्राप्ययोगर्द्धिमतुलां परंनिर्वाणमाप्तवान्
पश्यन् जगदिदं सर्वं सदेवासुरमानुषम् । पाशैर्गुणमयैर्बद्धं बध्यमानञ्च नित्यशः
पुत्रादि भ्रातृपुत्रादिस्वपारक्यादिभावितैः । आकृष्यमाणंकरणैर्दुःखार्त्तंभिन्नदर्शनम्
अज्ञानपङ्कगर्भस्थमनुद्धारं महामतिः । आत्मानञ्च समुत्तीर्णं गाथामेतामगायत ॥
अहोकष्टंयदस्माभिः पूर्वंराज्यमनुष्ठितम् । इतिपश्चान्मयाज्ञातंयोगान्नास्तिपरंसुखम्

जड़ (पुत्र) उवाच

तातैनं त्वं समातिष्ठ मुक्तये योगमुत्तमम् । प्राप्स्यसेयेनतद्ब्रह्मयत्रगत्वा नशोचसि
ततोऽहमपि यास्यामि किं यज्ञैः किं जपेन मे । कृतकृत्यस्यकरणंब्रह्मभावायकल्पते
त्वत्तोऽनुज्ञामवाप्याहं निर्द्वन्द्वो निष्परिग्रहः ।
प्रयतिष्ये तथा मुक्तौ यथा यास्यामि निर्वृतिम् ॥ ३९ ॥

पक्षिण ऊचुः

एवमुक्त्वा स पितरं प्राप्यानुज्ञां ततश्च सः । ब्रह्मन् !जगाममेधावीपरित्यक्तपरिग्रहः
सोऽपितस्यपितातद्वत्क्रमेणसुमहामतिः ।वानप्रस्थंसमास्थायचतुर्थाश्रममभ्यगात्
तत्रात्मजं समासाद्य हित्वा बन्धं गुणादिकम् ।
प्राप सिद्धिं परां प्राज्ञस्तत्कालोपात्तसन्मतिः ॥ ३६ ॥
एतत्तेकथितंब्रह्मन् !यत्पृष्टाभवतावयम् । सुविस्तरंयथावच्चकिमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि
यश्चैतच्छृणुयाद्विप्र!पठेद्वासुसमाहितः । यदश्वमेधावभृथस्नातःप्राप्नोति वै फलम्
सफलं तदवाप्नोति श्रुत्वैव मुनिसत्तम! ॥ ४२ ॥
एतत्संसारभ्रमणपरित्राणमनुत्तमम् । अलर्कात्रेयसम्वादमशुभान्मुच्यतेनरः ॥ ४३
इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे पितापुत्रसम्वादे जडोपाख्याने चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥

पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः

जैमिनिनापक्षिभ्यःप्रकृतसृष्टिप्रपञ्चस्थितिप्रमृतिज्ञानायप्रश्नकरणम्

जैमिनिरुवाच

यथेमत्कथयाख्यातं भवद्भिर्द्विजसत्तमाः । प्रवृत्तिश्चनिवृत्तिश्च द्विविधंकर्मवैदिकम्
पितृप्रसादेन भवताज्ञानमीदृशम् । येनतिर्यक्त्वमप्येतत् प्राप्यमोहस्तिरस्कृत

धन्या भवन्तः संसिद्ध्यै प्रागवस्थास्थितयत ।
भवतां विषयोद्भूतैर्यन्मोहैश्चाल्यते मन ॥ ३ ॥

न्या भगवतानेनमार्कण्डेयेन धीमता । भवन्तो वैसमाख्याताः सर्वसन्देहहृत्तमाः

संसारेऽस्मिन्मनुष्याणां भ्रमतामतिसङ्कटे ।
भवद्विधै सम सङ्गो जायते न तपस्विनाम् ॥ ५ ॥

द सङ्गमासाद्य भवद्भिर्ज्ञानदृष्टिभि । न स्याद्‌गतार्थस्तन्मन्ये नमेऽन्यत्रकृतार्थता
ते च निवृत्ते धर्मपथाश्रितकर्मणि । मतिमल्लामलामस्यैयथाज्ञात्यणस्यफल्यथित्
स्यनुग्रहपर्ता मयि बुद्धिर्द्विजोत्तमा । भवता तन्समाख्यातुमर्हतेदमशेषत ॥
मेतत्समुद्भूत जगत्स्थावरजङ्गमम् । कथञ्चप्रलयकाले पुनर्यास्यति सत्तमा
श्च वंशाद्देवर्षिपितृभूतादिसम्भवा । मन्वन्तराणि चकथं वंशानुचरितञ्च यत्

यावत्य सृष्टयश्चैव यावन्त प्रलयास्तथा ।
यथा कल्पविभागश्च या च मन्वन्तरस्थिति ॥ ११ ॥

यथा च क्षितिसंस्थानं यत्प्रमाणञ्च वै भुव ।
यथास्थितिसमुद्राद्रिनिम्नगा काननानि च ॥ १२ ॥

भूर्लोकादिस्वर्लोकानां गणं पातालसंश्रय ।
गतिस्तथाऽर्कसोमादिग्रहर्क्षज्योतिषामपि ॥ १३ ॥

श्रुमिच्छामहं सर्वमेतदाभूतसंप्लवम् । उपसंहृतेच यच्छेषं जगत्यस्मिन्भविष्यति

पक्षिण ऊचुः

प्रश्नभारोऽयमतुलो यस्त्वया मुनिसत्तम ॥ पृष्टस्तं ते प्रवक्ष्यामस्तच्छृणुष्वेह जैमिने
मार्कण्डेयेन कथितं पुरा क्रौष्टुकये यथा । द्विजपुत्राय शान्ताय व्रतस्नाताय धीमते
मार्कण्डेयं महात्मानमुपासीनं द्विजोत्तमैः । क्रौष्टुकिः परिपप्रच्छ यदेतत्पृष्टवान्प्रभो
तस्य चाकथयत्प्रीत्या यन्मुनिर्भृगुनन्दनः । तत्ते प्रकथयिष्यामः शृणु त्वं द्विजसत्तम

प्रणिपत्य जगन्नाथं पद्मयोनिं पितामहम् ।
जगद्योनिं स्थितं सृष्टौ स्थितौ विष्णुस्वरूपिणम् ।
प्रलये चान्तकर्त्तारं रौद्रं रुद्रस्वरूपिणम् ॥ १६ ॥

मार्कण्डेय उवाच

उत्पन्नमात्रस्य पुरा ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः । पुराणमेतद्वेदाश्च मुखेभ्योऽनुविनिःसृताः
पुराणसंहिताश्चक्रुर्बहुला: परमर्षयः । वेदानां प्रविभागश्च कृतस्तैस्तु सहस्रशः ॥
धर्मज्ञानञ्च वैराग्यमैश्वर्यञ्च महात्मनः । तस्योपदेशेन विना नहि सिद्धं चतुष्टयम् ॥२२
वेदान्सप्तर्षयस्तस्माज्जगृहुस्तस्य मानसाः । पुराणं जगृहुश्चाद्या मुनयस्तस्य मानसाः

भृगोः सकाशाच्च्यवनस्तेनोक्तञ्च द्विजन्मनाम् ।
ऋषिभिश्चापि दक्षाय प्रोक्तमेतन्महात्मभिः ॥ २४ ॥
दक्षेण चापि कथितमिदमासीत्तदा मम ।
तत्तुभ्यं कथयाम्यद्य कलिकल्मषनाशनम् ॥ २५ ॥

सर्वमेतन्महाभाग श्रूयतां मे समाधिना । यथाश्रुतं मया पूर्वं दक्षस्य गदतो मुने ॥
प्रणिपत्य जगद्योनिमजमव्ययमाश्रयम् । चराचरस्य जगतो धातारं परमं पदम् ॥
ब्रह्माणमादिपुरुषमुत्पत्तिस्थितिसंयमे । यत्कारणमनौपम्यं यत्र सर्वं प्रतिष्ठितम्
तस्मै हिरण्यगर्भाय लोकतन्त्राय धीमते । प्रणम्य सम्यग्वक्ष्यामि भूतवर्गमनुत्तमम्
महदाद्यं विशेषान्तं सवैरूप्यं सलक्षणम् । प्रमाणैः पञ्चभिर्गम्यं स्रोतोभिः षड्भिरन्वितम्

पुरुषाधिष्ठितं नित्यमनित्यमिव च स्थितम् ।
तच्छ्रूयतां महाभाग! परमेण समाधिना ॥ ३१ ॥

प्रधानं कारणं यत्तदव्यक्ताख्यंमहर्षय । यदाहु प्रकृतिसूक्ष्मानित्यासदसदात्मिकाम्
ध्रुवमक्षय्यमजरममेयं नान्यसश्रयम् । गन्धरूपरसैर्हीनशब्दस्पर्शविवर्जितम् ॥ ३३॥
अनाद्यन्तजगद्योनिस्त्रिगुणप्रभवाप्ययम् । असाम्प्रतमविज्ञेयब्रह्माग्रे समवर्त्तत ॥ ३४ ।
प्रलयस्यानु तेनेदं व्याप्तमासीदशेषत । गुणसाम्यात्ततस्तस्मात्क्षेत्रज्ञाधिष्ठितान्मुने
गुणभावाद्दृश्यमानात्सर्गकाले तत पुन । प्रधानंतत्त्वमुद्भूतमहान्तंतत्समावृणोत्
यथाबीजत्वचा तद्वदव्यक्तेनावृतो महान् । सात्त्विकोराजसश्चैव तामसश्चत्रिधोदित
ततस्तस्मादहङ्कारस्त्रिविधो वै व्यजायत ।
वैकारिकस्तैजसश्च भूतादिश्च स तामस ॥ ३८ ॥
महता चावृत सोऽपि यथाऽव्यक्तेन वै महान् ।
भूतादिस्तु विकुर्वाण शब्दतन्मात्रकन्तत ॥ ३९ ॥
ससर्जशब्दतन्मात्रादाकाश शब्दलक्षणम् । आकाशशब्दमात्रन्तुभूतादिश्चावृणोत्तत
स्पर्शतन्मात्रमेवेह जायते नात्र सशय । बलवाञ्जायतेवायुस्तस्य स्पर्शगुणो मत
वायुश्चापि विकुर्वाणो रूपमात्र ससर्ज ह । ज्योतिरुत्पद्यतेवायोस्तद्रूपगुणमुच्यते
स्पर्शमात्रस्तु वैवायूरूपमात्रसमावृणोत् । ज्योतिश्चापिविकुर्वाणरसमात्रससर्जह
सम्भवन्ति ततो ह्यापश्चासन् वै ता रसात्मिका ।
रसमात्र ताह्यापो रूपमात्र समावृणोत् ॥ ४४ ॥
आपश्चापिविकुर्वत्योगन्धमात्रससर्जिरे । सङ्घातोजायतेतस्मात्तस्यगन्धोगुणोमत
तस्मिंस्तस्मिंस्तु तन्मात्र तेन तन्मात्रता स्मृता ।
अविशेषवाचकत्वादविशेषास्ततश्च ते ॥ ४६ ॥
नशान्तानापि घोरास्तेनमूढाश्चाविशेषत । भूततन्मात्रसर्गोऽयमहङ्कारात्तुतामसात्
वैकारिकादहङ्कारात्सत्त्वोद्रिक्तात्तु सात्त्विकात् ।
वैकारिक स सर्गस्तु युगपत्सम्प्रवर्त्तत ॥ ४८ ॥
बुद्धीन्द्रियाणिपञ्चैवपञ्चकर्मेन्द्रियाणि च । तैजसानीन्द्रियाण्याहुर्देवावैकारिकादश
एकादशं मनस्तत्र दृवा वैकारिका स्मृता ।

शबरुवाच

निषेधश्च कृतः पूर्वं सर्व्वं सत्ये प्रतिष्ठितम् । सत्येनतपते सूर्यःसत्येन ज्वलतेऽनलः

सत्येन तिष्ठत्युदधिर्वायुः सत्येन वाति हि ।
सत्येन पच्यते सस्यं गावः क्षीरं स्रवन्ति च ॥ ९९ ॥
सत्याधारमिदं सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम् ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन सत्यं सत्येन पालयेत् ॥ १०० ॥
देवकार्यं तु मे मुक्त्वा नाऽन्या बुद्धिः प्रवर्त्तते ।
गृहाण राज्ञि! पुष्पाणि कुरु पूजां गदाभृतः ॥ १०१ ॥
श्रूयते हिजवाक्यैस्तु न दोषो विद्यते क्वचित् ।
कुशाः शाकं पयो मत्स्या गन्धाः पुष्पाक्षता दधि ॥
मांसं शय्याऽऽसनं धानाः प्रत्याख्येया न वारि च ॥ १०२ ॥

राज्ञ्युवाच

ारामोपहृतं पुष्पमारण्यं पुष्पमेव च । क्रीतं प्रतिग्रहे लब्धं पुष्पमेवं चतुर्विधम् ॥
तमं पुष्पमारण्यं गृहीतं स्वयमेव च । मध्यमं फलमारामे त्वधमं क्रीतमेव च ॥

प्रतिग्रहेण यल्लब्धं निष्फलं तद्विदुर्बुधाः ॥ १०४ ॥

पुरोहित उवाच

हाणराज्ञि! पुष्पाणिकुरुपूजां गदाभृतः । उपकारःप्रकर्त्तव्योऽव्यपदेशेन कर्हिचित्

ईश्वर उवाच

श्रीफलानि सपद्मानि दत्तानि शबरेण तु ।
गृहीत्वा तानि राज्ञी सा पूजाञ्चक्रे सुशोभनाम् ॥ १०६ ॥

ापाजागरणञ्चक्रेश्रुत्वापौराणिकींकथाम् । शबरस्तुततोभार्यामिदं वचनमब्रवीत्

दीपार्थं गृह्यतां स्नेहो यथालाभेन सुन्दरि !।
कृत्वा दीपं ततस्तौ तु कृत्वा पूजां हरेः शुभाम् ॥ १०८ ॥

ाक्रतुर्जागरंरात्रौध्यायन्तो धरणीधरम् । ततः प्रभातसमये दृष्ट्वास्नानोत्सुकं जनम्

स्नाति ये शूलभेदे तु देवनद्यातथाऽपरे। सरस्वत्या नरा केचिन्मार्कण्डस्यहदेऽपरे
चक्रतीर्थं गताश्चन्ये स्नानं केचिद्विधानतः।
शुध्यन्ते जना सर्वे स्नात्वा देवशिलोपरि ॥ १११ ॥
श्राद्धं चक्रे प्रयत्नेनश्रद्धयापूतचेतसा। तान्दृष्ट्वा शबरो दिव्ये पिण्डाश्चक्रेप्रयत्नतः
भानुमत्या तथा भर्त्तुः पिण्डनिर्वपणं कृतम्।
अनिन्द्या भोजिता विप्रा दम्भमात्सर्यवर्जिता ॥ ११३ ॥
हविष्यान्नैस्तथा भक्त्या शर्करामधुसर्पिषा। पायसेनतु मध्येन कृताम्नेनविशेषतः
भोजयित्वा तथा राज्ञी ददौ दानं यथाविधि।
पादुकोपानहौ छत्रं शय्या गोवृषमेव च ॥ ११५ ॥
विविधानि च दानानि हेमरत्नधनानि च। चक्रतीर्थेमहाराजकपिलायप्रयच्छति
पृथ्वी तेन भवेद्दत्ता सशैलवनकानना ॥ ११६ ॥

उत्तानपाद उवाच

यानि यानि च दानानि शस्तानि जगतीपते।
तानि सर्वाणि देवेश कथयस्व प्रसादतः ॥ ११७ ॥

ईश्वर उवाच

तिलप्रदः प्रजामिष्टां दीपदश्चक्षुरुत्तमम्। भूमिदः स्वर्गमाप्नोति दीर्घमायुर्हिरण्यदः
गृहदो रोगरहितो रूप्यदो रूपवान्भवेत्। वासोदश्चन्द्रसालोक्यमश्वसायुज्यमश्वदः
वृषदस्तु श्रियंपुष्टां गोदाताच त्रिविष्टपम्। यानशय्याप्रदो भार्यामैश्वर्यमभयप्रदः
धान्यदः शाश्वतं सौख्यं ब्रह्मदो ब्रह्म शाश्वतम्।
वार्यन्नपृथिवीवासस्तिलकाञ्चनसर्पिषाम् ॥ १२१ ॥
सर्वेषामेव दानानां ब्रह्मदानं विशिष्यते। येनयेन हि भावेन यद्यद्दानं प्रयच्छति ॥
तेनतेन स्वभावेन प्राप्नोतिप्रतिपूजितम्। दृष्ट्वा दानानिसर्वाणिराज्ञीदत्तानियानिच
उवाच शबरो भार्या यत्तच्छृणु नरेश्वर। पुराणं पठितं भद्रे ब्राह्मणैर्वेदपारगैः ॥
श्रुतश्च तन्मया सर्वं दानधर्मफलं शुभम्। पूर्वजन्मार्जितं पापं स्नानदानव्रतादिभिः

शरीरं दुस्त्यजं मुक्त्वा लभते गतिमुत्तमाम् ।
संसारसागरादुद्धीतः सत्यं भद्रे! वदामि ते ॥ १२६ ॥
अनेकानि च पापानि कृतानि बहुशो मया ।
घातिता जन्तवो भद्रे निर्दग्धाः पर्वताः सदा ॥ १२७ ॥
तेन पापेन दग्धोऽहं दारिद्र्यं न निवर्त्तते ।
तीर्थावगाहनं पूर्वं पापेन न कृतं मया ॥ १२८ ॥
तेनाऽहं दुःखितो भद्रे !दारिद्र्यमनिवर्त्तकम् ।
मातुर्गृहं प्रयाहि त्वं त्यज स्नेहं ममोपरि ॥
नगशृङ्गं समारुह्य मोक्तुमिच्छाम्यहं तनुम् ॥ १२९ ॥

शबर्युवाच

मात्रा पित्रा न मे कार्यं नाऽपि स्वजनबान्धवैः ।
या गतिस्तव जीवेश! सा ममापि भविष्यति ॥ १३० ॥
न स्त्रीणामीदृशो धर्मो विना भर्त्रा स्वजीवितम् ।
श्रूयन्ते बहवो दोषा धर्मशास्त्रेष्वनेकधा ॥ १३१ ॥
पारणं कुरुभोजेन्द्रव्रतंयेननंनश्यति । यत्तेऽभिवाञ्छितं किञ्चिद्धिष्णवेकर्त्तुमर्हसि
भार्याया वचनं श्रुत्वा मुमुदे शबरस्ततः ।
गृहीत्वा श्रीफलं शीघ्रं होमं कृत्वा यथाविधि ॥ १३३ ॥
सर्वदेवान्नमस्कृत्य भुक्तोऽपि च तया सह ।
चैत्र्यां तु विषुवं ज्ञात्वा तस्थौ तत्र दिनत्रयम् ॥ १३४ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे रेवाखण्डे सगङ्गावतरणव्याधवाक्योपदेशकथनपूर्वकंदानादिफलवर्णनं नाम षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥

सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्याय

व्याघ्रसर्गभञ्जनवर्णनम्

ईश्वर उवाच

भानुमतीद्विजान्भोज्य बुभुजेभुक्तशेषम् । भुक्त्वा सुसुखमास्थायतदनपरिणाम्य
नर्मोदया ततो गत्वा मदनारत्यतिथौ तदा ।
मार्कण्डस्य ह्रदे स्नात्वाऽऽनच्य देव गुहाशयम् ॥ २ ॥
कृतोपवासनियमा स्नापयित्वा महेश्वरम् । पञ्चामृतसुगन्धैश्च धूपदीपनिवेद्यनै
भावयद्विविधै पुष्पैर्नैवेद्यैश्च सुशोभितै ।
क्षपाजागरण कृत्वा श्रुत्वा पौराणिकीं कथाम् ॥ ४ ॥
नृत्यगीतैस्तथास्तोत्रैर्ध्यायीदेवमहेश्वरम् । अत्रयित्वारितसर्वदेवस्याऽप्रेयथाविधि
चातुर्वर्ण्यसुता सर्वे भोजिता भवरिच्छदा ।
चतुर्दश्या दिन यावत्सम्पूज्य वृषभध्वजम् ॥ ६ ॥
शङ्खवादित्रभेरीभि पटहध्वनिनादितम् । क्षपाजागरण कृत्वा प्रभूतजनसङ्कुलम्
नृत्यगीतैस्तथा स्तोत्रै प्ररिता सा निशा तदा ।
प्रभाते भोजिता विप्रा पायसैर्मधुसर्पिषा ॥ ८ ॥
दत्त्वा दानानि विप्रेभ्य शक्त्या वित्तानुसारत ।
भवयित्वा महापुण्ये सुगन्धैश्चन्दनेन च ॥ ६ ॥
विधिरै सक्ष्मवस्त्रैश्च देव सम्पूज्यवेष्टित । चन्द्रमाल्यमालैश्चबहुदीपसमुज्ज्वलै
पक्वान्नैर्विविधैर्भक्ष्यै सुवृत्तैर्मोदकादिभि । यतस्तेब्राह्मणा सर्वेवेदाध्ययनतत्परा
त एव कात्यायन्क पञ्चक नाम नामत ।
आदित्यस्य दिन त्वच तिथि पञ्चदशी तथा ॥ १२ ॥
त्वाष्ट्रमेव न नक्षत्र सक्रान्तिर्विषुवतथा ।

व्यतीपातस्तथा योगः करणं विष्टिरेव च ॥ १३ ॥

पद्मकंनाम पर्वैतदयनादिष्वनुगुणम् । अत्र दत्तं हुतं जप्तं सर्वं भवति चाऽक्षयम् ॥

ते द्विजा भानुमत्याऽथ शूलभेदं गताः सह ।

ददृशुः शवरं कुण्डे भार्यया सह संस्थितम् ॥ १५ ॥

ऐशानीं स दिशंगत्वा पर्वते भृगुमूर्द्धनि । पतितुं च समारूढोभार्ययासहपार्थिव

भानुमत्युवाच

तिष्ठतिष्ठ महासत्त्व शृणुष्ववचनंमम । किमर्थंत्यजसि प्राणानद्यापित्वंयुवाभवान्

कः सन्तापः क उद्वेगः किं दुःखं व्याधिरेव च ।

शिशुः संदृश्यसेऽद्याऽपि कारणं कथ्यतामिदम् ॥ १८ ॥

शवर उवाच

कारणं नास्ति मे किञ्चिन्न दुःखं किञ्चिदेव तु ।

संसारभयभीतोऽहं नान्याः बुद्धिः प्रवर्त्तते ॥ १९ ॥

दुःखेनलभ्यतेयस्मान्मानुष्यंजन्मभाग्यतः । मानुष्यंजन्मचासाद्ययोनधर्मंसमाचरेत्

स गच्छेन्निरयं घोरमात्मद्रोपेण सुन्दरि ॥

तस्मात्पतितुमिच्छामि तीर्थेऽस्मिन्पापनाशने ॥ २१ ॥

राज्युवाच

अद्यापि वर्त्तते कालो धर्मस्योपार्जनेतव । कृतापकृतकर्माचे व्रतदानैर्विशुद्ध्यति ॥

अहं दास्यामि धान्यं वा वासांसि द्रविणं बहु ।

नित्यमाचर धर्मं त्वं ध्यायन्नित्यं महेश्वरम् ॥ २३ ॥

शवर उवाच

नैवाहं कामये वित्तं न धान्यं वस्त्रमेव च ।

यो यस्यैवान्नमश्नाति स तस्याऽश्नाति किल्बिषम् ॥ २४ ॥

राज्युवाच

कन्दमूलफलाहारो भ्रमित्वा भैक्ष्यमुत्तमम् । अवगाह्यसुतीर्थानि सर्वपापैःप्रमच्यसे

ततो विमुक्तपापस्तु यत्किञ्चित्कुरुते शुचि ।
कर्मणा तेन पूतस्त्वं सद्गतिं प्राप्स्यसि ध्रुवम् ॥ २८ ॥

शबर उवाच

अस्मद्यमयात्यक्तप्राणेभ्योऽपिमहत्तरम् । सत्यं न लोपयेद्देवि निश्चिताऽश्रमतिर्मम
प्रसादं क्रियतां देवि क्षमस्वाऽद्य जनैः सह । सर्वोत्तरीयवस्त्रेणमयम्यात्मानमुद्धत

भार्यया सहितो व्याधो हरिं ध्यात्वा पपात ह ।
नगाग्रात्पतितो यावद्गतजीवो नराधिप ॥ २९ ॥
चूर्णीभूतौ हि तौ दृष्ट्वा कुण्डस्योपरि भूमिप ।
त्रिमुहूर्ते गते काले शबरो भार्यया सह ॥ ३० ॥
दिव्यं विमानमारूढो गतश्चानुत्तमां गतिम् ॥ ३१ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे रेवाखण्डे व्याधस्वर्गगमनवर्णननाम सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५७ ॥

अष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

शूलभेदतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

उत्तानपाद उवाच

अथातो देवदेवेश भानुमत्यकरोच्च किम् । एतं मे संशयो देव कथयस्व प्रसादतः ॥

ईश्वर उवाच

चिन्तयित्वा मुहूर्तं सा गता कुण्डस्य सन्निधौ ।
दृष्ट्वा कुण्डस्य माहात्म्यं राज्ञी हर्षेण पूरिता ॥ २ ॥
विप्रान्वहून्समाहूय पूजयामास तत्क्षणात् ।

दत्त्वा तु विधिवद्दानं ब्राह्मणेभ्यो नृपात्मज !॥ ३ ॥
निश्चयंपरमंकृत्वास्थिताशान्तेनचेतसा । ततःसम्पूज्यविधिवत्पितॄन्देवान्नराधिप
क्षपयित्वापक्षमेकंमधुमासस्यसास्थिता ।अमावास्यांततोराज्ञीगतापर्वतसन्निधौ
नगश्रृङ्गं समारुह्यकृत्वामुकुलितौ करौ । विज्ञाप्य ब्राह्मणान्सर्वानिदं वचनमब्रवीत्

मम माता पिता भ्राता ये चान्ये सखिबान्धवाः ।
क्षमापयित्वा सर्वांस्तान्वचनं मम कथ्यताम् ॥ ७ ॥
त्वत्पुत्री शूलभेदे तु तपः कृत्वा स्वशक्तितः ।
विसृज्य चैव साऽऽत्मानं तस्मिंस्तीर्थे दिवं ययौ ॥ ८ ॥

ब्राह्मणा ऊचुः

सन्देशंकथयिष्यामस्त्वयोक्तंशोभनव्रते ।मातापितृभ्यांसुश्रोणिमातेभूऽदत्रसंशयः
ततोविसृज्यताँल्लोकान्स्थिताःपर्वतमूर्द्धनि ।अथोत्तरीयवस्त्रेणगाढंबद्ध्वापुनःपुनः

ततश्चिक्षेप साऽऽत्मानमेकचित्ता नराधिप !।
नगार्द्धे पतिता यावत्तावद्दृष्टाः सुराङ्गनाः ॥ ११ ॥
भोभो वत्से महाभागे! भानुमत्यतितापसि ।
दिव्यं विमानमारुह्य कैलासम्प्रतिगम्यताम् ॥ १२ ॥
ततः सा पश्यतां तेषां जनानां त्रिदिवं गता ॥ १३ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इति ते कथितः सर्वः शूलभेदस्यविस्तरः । यःश्रुतःशङ्करात्पूर्वमृषिदेवसमागमे ॥
यइदं पठतेभक्त्यातीर्थेदेवकुलेऽपिवा । स मुच्यते महापापादपिजन्मशतार्जितात्
ब्रह्महाच सुरापीच स्तेयी च गुरुतल्पगः । गोघातीस्त्रीविघातीचदेवब्रह्मस्वहारकः

स्वामिद्रोही मित्रघाती तथा विश्वासघातकः ।
परन्यासापहारी च परनिक्षेपलोपकः ॥ १७ ॥
रसभेदी तुलाभेदी तथा वार्द्धुषिकस्तु यः ।
यः कन्याविघ्नकर्त्ता च तथा विक्रयकारकः ॥ १८ ॥

परभार्यां भ्रातृभार्यां गौ स्नुषाकन्यका तथा । अभिगामीपरद्वेषीतथाधर्मप्रदूषक
मुच्यन्ते सर्वे एवैते शूलभेदप्रभावत ॥ २० ॥
य इदंश्रावयेच्छ्राद्धे विप्राणामुवनानृप । मुदं प्रयान्ति संहृष्टा पितरस्तस्यसर्वश
यश्चेदं शृणुयाद्भक्त्या पठ्यमानं नरोवशी ।
स मुक्त सर्वपापेभ्य सर्वकल्याणमाप्नुयात् ॥ २२ ॥
इद यशस्यमायुष्यमिदं पावनमुत्तमम् । पठतांशृण्वतां नृणामायु श्रीर्विधिवर्द्धं
इति कथितमिदं हि शूलभेदस्य पुण्य महिम न हि मनुष्यै श्रूयते यत्सपापै ।
मदनरिपुतडित्या वाग्यकूलस्थितस्य प्रवरदुरितवन्हीश्चैत्वंद्राख्यरूपम् ॥२
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्या संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्
रेवाखण्डे शूलभेदतीर्थमाहात्म्यवर्णननामाष्टपञ्चाशत्तमोऽध्याय ॥ ५८ ॥

शूलभेदमाहात्म्यं समाप्तम्

एकोनषष्टितमोऽध्यायः

पुष्करिण्यामादित्यतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

तत पुष्करिणीं गच्छेत्सर्वपापप्रणाशिनीम् ।
श्रुते यस्या प्रभावे तु सर्वपापै प्रमुच्यते ॥ १ ॥
रेवाया उत्तरे कूले तीर्थं परमशोभनम् । यत्राऽस्ते सर्वदा देवो वेदमूर्तिर्दिवाक
कुरुक्षेत्रं यथापुण्य सार्वकामिकमुत्तमम् । इद तीर्थं तथा पुण्यं सर्वकामफलप्रद
कुरुक्षेत्रे यथावृद्धिर्दानस्य जगतीपते । पुष्करिण्यांतथा नाऽत्र यद्दत्तं नाऽत्रसंश
यवमेक तु यो दद्यात्सौवर्णं मस्तके नृप ।

पुष्करिण्यां तथा स्थानं यथा स्थानं नरे स्मृतम् ॥ ५ ॥
सूर्यग्रहे तु यः स्नात्वा दद्याद्दानं यथाविधि ।
हस्त्यश्वरथरत्नादि गृहं गाश्च युगन्धरान् ॥ ६ ॥
सुवर्णंरजतं वाऽपि ब्राह्मणेभ्योददाति यः । त्रयोदशदिनं यावत्त्रयोदशगुणम्भवेत्
तिलमिश्रेण तोयेन तर्प्पयेत्पितृदेवताः । द्वादशाब्दं भवेत्प्रीतिस्तत्र तीर्थे महीपते!
यस्तत्र कुरुते श्राद्धं पायसैर्मधुसर्पिषा । श्राद्धदो लभते स्वर्गं पितॄणां दत्तमक्षयम्
अक्षतैर्बदरैर्बिल्वैरिङ्गुदैर्वा तिलैः सह । अक्षयं फलमाप्नोति तस्मिंस्तीर्थे न संशयः
तत्र स्नात्वा तु यो देवं पूजयेच्च दिवाकरम् ।
आदित्यहृदयं जप्त्वा पुनरादित्यमर्चयेत् ॥
स गच्छेत्परमं लोकं त्रिदशैरपि वन्दितम् ॥ ११ ॥
ऋचमेकां जपेद्यस्तु यजुर्वासामएव च । स समग्रस्य वेदस्य फलमाप्नोति वै नृप
यस्त्र्यक्षरं जपेन्मन्त्रं ध्याधमानो दिवाकरम् ।
आदित्यहृदयं जप्त्वा मुच्यते सर्वपातकैः ॥ १३ ॥
यस्तत्र विधिवत्प्राणांस्त्यजते नृपसत्तम ।
स गच्छेत्परमं स्थानं यत्र देवो दिवाकरः ॥ १४ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
रेवाखण्डे पुष्करिण्यामादित्यतीर्थमाहात्म्यवर्णनं
नामैकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥ ५६ ॥

षष्टितमोऽध्यायः

आदित्येश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

भूयोऽन्यद् प्रवक्ष्यामि आदित्येश्वरमुत्तमम् । सर्वदुःखहरं पार्थ सर्वविघ्नविनाशनम्
आयुःश्रीवर्धनं नित्यं पुत्रदं स्वर्गदं शिवम् । यस्य तीर्थस्य चान्यानि तीर्थानि कुरुनन्दन
नालभन्त श्रियं नाके मर्त्ये पातालगोचरे ।
कुरुक्षेत्रं गया गङ्गा नैमिषं पुष्करं तथा ॥ ३ ॥
वाराणसी च केदारं प्रयागं रुद्रनन्दनम् । महाकालं सहस्राक्षं शुक्लतीर्थं नृपोत्तम
रवितीर्थस्य सर्वाणि कलां नार्हन्ति षोडशीम् ।
रवितीर्थे हि यद्वृत्तं तच्छृणुष्व नृपोत्तम ॥ ५ ॥
स्नेहात्ते कथयिष्यामि यादृशं वेनातिपीडितः । शृणुष्व तु महाराज सर्वतस्तो निष्ठामहाँजसः
श्रुतं मे रुद्रसान्निध्ये नन्दिस्कन्दगणैः सह ।
पार्वत्या पृच्छ शम्भुश्च रवितीर्थस्य यत्फलम् ॥ ७ ॥
शम्भुना च यदाख्यातं गिरिजायाः ससम्भ्रमम् ।
तत्सर्वमेकचित्तेन रुद्रोद्गीतं श्रुतं मया ॥ ८ ॥
ततोऽहं सम्प्रवक्ष्यामि शृणुष्व यत्नेन पाण्डव । दुर्भिक्षोपहता विप्रा नर्मदां तु समाश्रिताः
उद्दालको वशिष्ठश्च माण्डव्यो गौतमस्तथा ।
याज्ञवल्क्योऽथ गर्गश्च शाण्डिल्यो गालवस्तथा ॥ १० ॥
नाचिकेतो विभाण्डश्च वालखिल्यादयस्तथा ।
शातातपश्च शङ्खश्च जैमिनिर्गोभिलस्तथा ॥ ११ ॥
[illegible] । तीर्थयात्राप्रसङ्गेन नर्मदायाः समन्ततः

जम्बीरैरङ्गुनैःकुब्जैःशर्मकेशरकिंशुकैः । तस्मिंस्तीर्थमहापुण्ये सुगन्धिकुसुमाकुले
पुन्नागनारिकेलैश्च खदिरैः कल्पपादपैः । अनेकश्वापदाकीर्णं मृगमार्जारसङ्कुलम् ॥
ऋक्षहस्तिसमाकीर्णं चित्रकैश्चोपशोभितम् । प्रविष्टाऋषयः सर्वे वनेपुष्पसमाकुले

वनान्ते च स्त्रियो दृष्ट्वा रक्ता रक्ताम्बरान्विताः ।
रक्तमाल्यानुशोभाढ्या रक्तचन्दनचर्चिताः ॥ १७ ॥
रक्ताभरणसंयुक्ताः पाशहस्ताभयावहाः ।
तासां समीपगा दृष्टाः कृष्णजीमूतसन्निभाः ॥ १८ ॥
महाकाया भीमवक्त्राः पाशहस्ता भयावहाः ।
अनावृष्ट्युपमा दृष्ट्वा आतुराः पिङ्गलोचनाः ॥ १९ ॥
दीर्घजिह्वा करालास्या तीक्ष्णदंष्ट्रा दुरासदा ।
वृद्धानारी कुरुश्रेष्ठ दृष्टाऽन्या ऋषिपुङ्गवैः ॥ २० ॥
ततः समीपगा वृद्धा तस्य वृन्दस्य भारत !।
स्वाध्यायनिरता विप्रा दृष्टास्तैः पापकर्मभिः ॥ २१ ॥
ऊचुस्ते तु समूहेन ब्राह्मणांस्तपसि स्थितान् ।
अस्माकं स्वामिनः सर्वे तिष्ठन्ते तीर्थमध्यतः ॥
ते प्रस्थाप्या महाभागाः सर्वथैव त्वरान्विताः ॥ २२ ॥

तच्छ्रुत्वा वचनं तेषांसर्वेचैवत्वरान्विताः । जग्मुस्तेनर्मदाकक्षंदृष्ट्वारेवांद्विजोत्तमाः

ततः केचित्स्तुवन्त्यन्ये जय देवि! नमोऽस्तु ते ॥ २४ ॥
नमोऽस्तु ते सिद्धगणैर्निषेविते! नमोऽस्तु ते सर्वपवित्रमङ्गले !।
नमोऽस्तु ते विप्रसहस्रसेविते! नमोऽस्तु रुद्राङ्गसमुद्भवे! वरे !॥ २५ ॥
नमोऽस्तु ते सर्वपवित्रपावने! नमोऽस्तु ते देवि! वरप्रदे! शिवे !।
नमामि ते शीतजले! सुखप्रदे! सरिद्वरे! पापहरे! विचित्रिते !॥ २६ ॥
अनेकभूतौघसुसेविताङ्गे !गन्धर्वयक्षोरगपाविताङ्गे !।
महागजौघैर्महिषैर्वराहैरापीयसे ऽम्महोर्मिमाले !॥ २७ ॥

नमामि ते सर्ववरे सुखप्रदे विमोचयास्मानवपाशबद्धान् ॥ २८ ॥
भ्रमन्ति तावन्नरकेषु मर्त्या यावत्तवाम्भो नहि संश्रयन्ति ।
स्पृष्ट्वा करैश्चन्द्रमसो रवेश्चेत्तद्देवि दद्यात्परमं पदं तु ॥ २९ ॥
अनेकसंसारभयार्दितानां पापैरनेकैरभिवेष्टितानाम् ।
गतिस्त्वमम्भोजसमानवक्त्रे द्वन्द्वैरनेकैरभिसम्वृतानाम् ॥ ३० ॥
नद्यश्च पूता विमला भवन्ति त्वां देवि सम्प्राप्य न संशयोऽत्र ।
तु सातुराणामभयं ददासि शिवैरनेकैरभिपूजिताऽसि ॥ ३१ ॥
विपन्नदेहाश्च निमग्नदेहा भ्रमन्ति तावन्नरकेषु मर्त्याः ।
महाघनध्वस्तनरङ्गभङ्गं जलं न यावत्तव संस्पृशन्ति ॥ ३२ ॥
म्लेच्छाः पुलिन्दास्तथ यातुधाना पिबन्ति येऽम्भस्तव देवि पुण्यम् ।
तेऽपि प्रमुच्यन्ति भयाच्च घोरात्किमत्र विप्रा भवपाशभीताः ॥ ३३ ॥
सरांसि नद्यः क्षयमभ्युपेता घोरे युगेऽस्मिन्कलिनावसृष्टे ।
त्वं भ्राजसे देवि जलौघपूर्णा दिवीव नक्षत्रपथे च गङ्गा ॥ ३४ ॥
तव प्रसादाद्वरदे विशिष्टे कालं यथेमं परिपालयित्वा ।
यास्याम मोक्षं तव सुप्रसादाद्वयं यथा त्वं कुरु नः प्रसादम् ॥ ३५ ॥
त्वामाश्रिता ये शरणं गताश्च गतिस्त्वमम्बेव पितेव सुतान् ।
त्वत्पालिता याव दिमं सुघोरं कालं त्वनावृष्टिहतं क्षिपाम ॥ ३६ ॥
एवंस्तुता तदा देवी नर्मदा सरितां वरा । प्रत्यक्षा सा परामर्शित्राह्मणानां युधिष्ठि

श्रीमार्कण्डेय उवाच

पठन्ति [illegible] स्तोत्रमिदं नरेन्द्र शृण्वन्ति भक्त्या परया प्रशान्ताः ।
ते यान्ति रुद्रं वृषसंयुतेन यानेन दिव्याम्बरभूषिताङ्गाः ॥ ३७ ॥
ये स्तोत्रमेतत्सततं जपन्ति स्नात्वा च तोयेन तु नर्मदायाः ।
तस्योऽन्तकाले सरिदुत्तमेयं गतिं विशुद्धामचिराद्ददाति ॥ ३८ ॥
प्रातः समुत्थाय तथा शयानो यः कीर्तयेतानुदिनं स्तवेन्द्रम् ।

देहक्षयं स्वे सलिले ददाति समाश्रयं तस्य महानुभाव !॥ ४० ॥
पापैर्विमुक्ता दिवि मोदमानाः सम्भोगिनश्चैव तु नान्यथा च ॥ ४१ ॥
प्रसन्नानर्मदादेवीस्त्रोत्रेणाऽनेनभारत। जलेनाप्यायितान्विप्रान्दक्षिणापथवाहिनी
अमृतत्वं तु चो दद्मि योगिभिर्यन्नगम्यते। दुर्लभं यत्सुरैःसर्वैर्मत्प्रसादाल्लभिष्यथ
इति ते ब्राह्मणाराजल्लँब्ध्वा वरमनुत्तमम्। गमिष्यन्तःप्रीतचित्तादद‍ृशुश्चित्रमद्भुतम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

दृष्टास्तैः पुरुषाःपार्थनर्मदातटसंस्थिताः। स्नानदेवार्चनासक्ताःपञ्चएवमहाबलाः
ते दृष्टा ब्राह्मणैः सर्व्वैर्वेदवेदाङ्गपारगैः। सम्पृष्टास्तैर्महाराज यथा तदवधारय॥

विप्रा ऊचुः

वनान्ते स्त्रीयुगं दृष्ट्वा महारौद्रं भयावहम्। वृद्धाश्चपुरुषास्तत्रपाशहस्ताभयावहाः
दुर्धर्षा दुर्निरीक्ष्याश्च इतश्चेतश्च,चञ्चलाः। व्याहरन्तःशुभांवाचं न तत्रगतिरस्तिवै
अपरस्परयोः सर्वे निरीक्षन्तः पुनः पुनः।
तैस्तु तद्वचनं प्रोक्तं तत्सर्वं कथ्यतामिति ॥ ४६ ॥
अस्माकं;पुरुषाः पञ्च तिष्ठन्ति तत्र सत्तमाः।
ते प्रस्थाप्या महाभागाः सर्वथैव त्वरान्विताः ॥ ५० ॥
अथ ते पुरुषाः पञ्च श्रुत्वा वाक्यमिदं शुभम्।
परस्परं निरीक्षन्तो वदन्ति च पुनः पुनः ॥ ५१ ॥
क्व ते कस्य कुतो याताः किमुक्तं तैर्भयावहैः ॥ ५२ ॥

पुरुषा ऊचुः

तीर्थावगाहनंसर्वैः पूर्वदक्षिणपश्चिमैः। उत्तरैश्चकृतंभवत्या न पापं तैर्व्यपोहितम्
निष्पापाश्चाथ सञ्जातास्तीर्थस्याऽस्य प्रभावतः।
शृण्वन्तु ऋषयः सर्वे वह्निकालोपमा द्विजाः ॥ ५४ ॥
पातकानि च घोराणि यान्यचिन्त्यानि देहिनाम्।
पापिष्ठेन तु चैकेन गुरुदारा निषेविता ॥ ५५ ॥

हलघाऽन्येनमिश्रस्वंसुवर्णंच घनन्तथा । ब्रह्महत्यामहारौद्राकृत्वाघाऽन्येनपातकम्
सुरापानं ॥ धान्यस्य मत्रातं धाप्यकामेन ।
गोवध्या धाप्यकामेन कृता वैश्येन पापिना ॥ ५७ ॥
अकामतोऽपि सर्वेषां पातकानि नराधिप ।
ब्राह्मणानां तु ते श्रुत्वा वाक्यं तद्विस्मयान्विताः ॥ ५८ ॥
सद्यस्यनष्टाजातपापिष्ठागनरत्मश । तीर्थस्याऽस्यप्रभावेणनर्मदाया प्रभावत
। ऋषिस्पातकानां तु प्रवेशाधाऽवजायते । एवं सञ्चिन्त्यनैमर्यादापिष्ठाधपरस्परम्
विभमानु स्मृनस्तैस्तु विचिन्त्य हृदये हरिम् ।
स्नात्वा रेवाजले पुण्ये तर्पिता पितृदेवता ॥ ६१ ॥
नत्वा तु भास्करं देवं हृदि ध्यात्वा जनार्दनम् ।
प्रदक्षिण तु स मपत्या ज्वलन्तं जातवेदसम् ॥ ६२ ॥
पतिता पाण्डवश्रेष्ठ पापोद्विग्ना महीपते ।
सात्त्विकीं वासना कृत्वा त्यक्त्वा रजस्तमस्तथा ॥ ६३ ॥
इत ते पापके नर्मदायाउत्तरे तटे । विमानस्थास्तदादृष्टाब्राह्मणैस्तैर्युधिष्ठिर
आश्चर्यमतुलं दृष्टमृषिभिर्नर्मदातटे । तदाप्रभृति ते सर्वे रागद्वेषविवर्जिताः ॥६५॥
रविर्तीर्थं द्विजाःपुण्य सेवन्ते मोक्षकाङ्क्षया ।
तीर्थस्याऽस्य च यत्पुण्यं तच्छृणुष्व नराधिप ॥ ६६ ॥
पीडितो वृद्धभावेन भक्त्या प्रीतो नरेश्वर ।
उद्देश कथयिष्यामि द्विकोशाभ्यन्तरे स्थितं ॥ ६७ ॥
कुरुक्षेत्र यथा पुण्य रवितीर्थ श्रुत मया । ईश्वरेण पुराख्यात षण्मुखस्य नराधिप
श्रुतं रुद्राच्च तैः सर्वैरिह तत्र समीपग ।

ईश्वर उवाच

रातपडग्रहणे प्राप्ते ये मज्जन्ति षडानन । रवितीर्थे कुरुक्षेत्रे तुल्यमेतत्फलं लभेत् ॥
स्नाने दाने तथा जप्ये होमे चैव विशेषत ।

कुरुक्षेत्रे समं पुण्यं नाऽत्र कार्या विचारणा ॥ ७० ॥
ग्रामे वा यदि वाऽरण्ये पुण्या सर्वत्रनर्मदा । रवितीर्थेविशेषेण रेवा पुण्यफलप्रदा
षष्ठ्यां सूर्यदिने भक्त्या व्यतीपाते च वैधृतौ ।
सङ्क्रान्तौ ग्रहणेऽमायां ये व्रजन्ति जितेन्द्रियाः ॥ ७२ ॥
कामक्रोधैर्विमुक्ताश्चरागद्वेषैस्तथैवच । उपोष्यपरया भक्त्या देवस्याऽग्रेनराधिप
रात्रौजागरणं कृत्वा दीपंदेवस्यबोधयेत् । कथां वै वैष्णवींपार्थ वेदाभ्यसनमेवच
ऋग्वेदं वा यजुर्वेदं सामवेदमथर्वणम् । ऋचमेकां जपेद्यस्तु स वेदफलमाप्नुयात्
गायत्र्या च चतुर्वेदफलमाप्नोति मानवः । प्रभाते पूजयेद्विप्रानन्नदानहिरण्यतः ॥
भूमिदानेन वस्त्रेण अन्नदानेन शक्तितः । छत्रोपानहशय्यादि गृहदानेनपाण्डव! ॥
ग्रामधूर्वहदानेन गजकन्याहयेन च । विद्याशकटदानेन सर्वेषामभयं भवेत् ॥ ७८॥
शत्रुश्च मित्रतां याति विषं चैवाऽमृतं भवेत् ।
ग्रहा भवन्ति सुप्रीताः प्रीतस्तस्य दिवाकरः ॥ ७६ ॥
एतत्ते सर्वमाख्यातंरवितीर्थफलंनृप । ये शृण्वन्ति नराभक्त्या रवितीर्थफलंशुभम्
तेऽपि पापविनिर्मुक्ता रविलोके वसन्ति हि । गोदानेनचयत्पुण्यं यत्पुण्यंभृगुदर्शने
केदार उदकं पीत्वा तत्पुण्यं जायते नृणाम् ।
अब्दमश्वत्थसेवायां तिलपात्रप्रदो भवेत् ॥ ८२ ॥
तत्फलं समवाप्नोति आदित्येश्वरकीर्त्तनात् ।
श्रुते यस्य प्रभावे न जायते यन्नृपात्मज !॥ ८३ ॥
तत्सर्वंकथयिष्यामिभक्त्यातव महीपते । पापानिचप्रलीयन्तेभिन्नपात्रेयथाजलम्
तीर्थस्याऽभिमुखोनित्यंजायतेनाऽत्रसंशयः । गुह्याद्गुह्यतरंतीर्थंकथितंतवपाण्डव
पापिष्ठानां कृतघ्नानां स्वामिमित्रावघातिनाम् ।
तीर्थाऽख्यानं शुभं तेषां गोपितव्यं सदा बुधैः ॥ ८६ ॥
इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
रेवाखण्डे आदित्येश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनंनाम षष्टितमोऽध्यायः ॥६०॥

द्विषष्टितमोऽध्यायः

करोडीश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेन्नराजेन्द्रकरोडीश्वरमुत्तमम् । यत्र वै निहतास्तात दानवाःसपदानुगाः
इन्द्रादिदेवैः संहृष्टैः सततं जयबुद्धिभिः । तेषां ये पुत्रपौत्राश्च पूर्ववैरमनुस्मरम् ॥

क्रुद्धैर्दैवसमूहैश्च दानवा निहता रणे ।
तेषां शिरांसि संगृह्य सर्वे देवाः सवासवाः ॥ ३ ॥
निक्षिप्य नर्मदातोये बन्धुभावमनुस्मरम् ।
तत्र स्नात्वा सुराः सर्वे स्थापयित्वा उमापतिम् ॥ ४ ॥

इन्द्रेणसहिताःसर्वेऽपूजयँल्लोकसिद्धये । हृष्टचित्ताःसुराःसर्वे जग्मुराकाशमण्डलम्

दानवानां महाभाग सूदिता कोटिरुत्तमा ।
तदाप्रभृति तत्तीर्थं करोडीति महीतले ॥ ६ ॥
विख्यातं तु तदा लोके पापघ्नं पाण्डुनन्दन ॥
अष्टम्यां च चतुर्दश्यामुभौ पक्षौ च भक्तितः ।
उपोष्य शूलिनश्चाग्रे रात्रौ कुर्वीत जागरम् ॥ ७ ॥

सत्कथापाठसंयुक्तो वेदाध्यनसंयुतः । प्रभाते विमले प्राप्ते पूजयेत्त्रिदशेश्वरम् ॥
पञ्चामृतेन संस्नाप्य श्रीखण्डेन च गुण्ठयेत् । शस्तैः पल्लवपुष्पैश्च पूजयेत्तु प्रयत्नतः
बहुरूपंजपन्मन्त्रंदक्षिणाशांव्यवस्थितः । यथोक्तेन विधानेन नाभिमात्रेजलेक्षिपेत्

तिलाञ्जलिं तु प्रेताय दक्षिणाशामुपस्थितः ।
श्राद्धं तत्रैव विप्राय कारयेद्विजितेन्द्रियः ॥ ११ ॥

विषमैरग्रजातैश्च वेदाध्ययनतत्परैः । गोहिरण्येन सम्पूज्य ताम्बूलैर्भोजनैस्तथा ॥

भूषणैःपादुकाभिश्च ब्राह्मणान्पाण्डुनन्दन ।

अन्नं कोटिगुणं तस्य नात्र कार्या विचारणा ॥ १३ ॥
तस्मिंस्तीर्थे तु यः कश्चित्त्यजेद्देहं विधानतः ।
तस्य भवति यत्पुण्यं तच्छृणुष्व नराधिप ॥ १४ ॥
यावदस्थीनि तिष्ठन्ति मर्त्यस्य नर्मदाजले ।
तावद्वसति धर्मात्मा शिवलोके सुदुर्लभे ॥ १५ ॥
ततः कालाच्च्युतस्तस्मादिह मानुषतां गतः ।
कोटीधनपति धर्मात्मा जायते राजपूजितः ॥ १६ ॥
ंधर्मसमायुक्तो मेधावी बीजसुन्दरः । जिह्वाग्रो वसुधापृष्ठे दीर्घायुर्मानवो भवेत्
तस्मात्तु नर्मदातीरे गत्वा नृपोत्तम ॥ करोटीश्वरमभ्यर्च्य प्राप्नोति परमां गतिम्
स्थपन्तयमि शङ्करादिभिर्देवैर्मुनिभिस्तथा । पितृदेवैस्तथा सर्वैः स्थापितस्त्रिदशेश्वर
रेवाया उत्तरे कूले लोकानां हितकाम्यया ।
मातयो मनिस्मयुतः प्रासादे कारयेत्तु यः ॥ २० ॥
स्मिंस्तीर्थे नरश्रेष्ठ गच्छन्ति समयाप्नुयात् । व्यासोपात्तधनैर्नैरदाम्यापाणैर्दर्भैः
ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैः शूद्रैः स्त्रीभिश्च शक्तितः ।
तेऽपि यान्ति नरा लोके शाङ्करं सुरपूजितं ॥ २२ ॥
य शृणोति सदा भक्त्या माहात्म्यं कीर्तनं नृप ।
तस्य पापं प्रणश्येत षण्मासाभ्यन्तरं च यत् ॥ २३ ॥
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमे रेवाखण्डे
करोटीश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनंनाम द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥

त्रिषष्टितमोऽध्याय·

कुमारेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततोगच्छेत्तुराजेन्द्र! कुमारेश्वरमुत्तमम्। प्रसिद्धं सर्वतीर्थानामगस्त्येश्वरसन्निधौ

षण्मुखेन पुरा तात! सर्वपातकनाशनम्।
आराध्य परया भक्त्या सिद्धिः प्राप्ता नराधिप ! ॥ २ ॥
देवसैन्याधिपो जातः सर्वशत्रुनिबर्हणः।
उग्रतेजा महात्माऽसौ सञ्जातस्तीर्थसेवनात् ॥ ३ ॥

तदाप्रभृतितत्तीर्थंसञ्जातं नर्मदातटे। तत्रतीर्थे तु यो गत्वा एकचित्तो जितेन्द्रियः
कार्त्तिकस्य चतुर्दश्यामष्टम्यांचविशेषतः। स्नापयेद्गिरिजानाथंदधिदुग्धेनसर्पिषा
गीतं तत्रप्रकर्त्तव्यं पिण्डदानं यथाविधि। ब्राह्मणैःश्रोत्रियैःपार्थषट्कर्मनिरतैःशुभैः
यत्किञ्चिद्दीयते तत्र अक्षयं पाण्डुनन्दन। सर्वतीर्थमयंतीर्थं निर्मितं शिखिना नृप
एतत्तेसर्वमाख्यातं कुमारेश्वरजं फलम्। कुमारदर्शनात्पुण्यं प्राप्यते पाण्डुनन्दन!

मृतः स्वर्गमवाप्नोति सत्यमीश्वरभाषितम् ॥ ६ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराणे एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
कुमारेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनंनाम त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥



चतुःषष्टितमोऽध्यायः

अगस्त्येश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र तीर्थं परमशोभनम् । मराणापापनाशायअगस्त्येश्वरमुत्तमम्
तत्रस्नात्वा नरोराजन्मुच्यते ब्रह्महत्यया । कार्त्तिकस्यतुमासस्यकृष्णपक्षेचतुर्दशी
घृतेन स्नापयेत्तु देवं समाधिस्थो जितेन्द्रिय ।
एकविंशतिकुलोपेतो न च्यवेदीश्वरालयात् ॥ ३ ॥
धन चोपानहौ छत्र दद्याच्च घृतकम्बलम् । भोजन चैव सर्वपासवं कोटिगुण भवेत्
इति श्रीस्कान्दे महापुराणे एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
अगस्त्येश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णननाम चतुःषष्टितमोऽध्याय ॥ ६४ ॥

———

पञ्चषष्टितमोऽध्यायः

आनन्देश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततोगच्छेत्तु राजेन्द्र आनन्देश्वरमुत्तमम् । रुद्रस्य परमानन्दो यत्रजातो युधिष्ठिर
तत्तीर्थं कथयिष्यामि सर्वपापक्षय करम् ॥ १ ॥

युधिष्ठिर उवाच

आनन्दश्चैव सञ्जातो रुद्रस्य द्विजसत्तम । कथयतामेवतत्सर्वंसङ्क्षेपात्सहबान्धवैः

श्रीमार्कण्डेय उवाच

कथयामि नृपश्रेष्ठ आनन्देश्वरमुत्तमम् । दानवानांवधं कृत्वा देवदेवोमहेश्वर ॥

पूजितो दैवतैः सर्वैः किन्नरैर्यक्षपन्नगैः । आनन्दसंयुतो देवो ननर्त वृषवाहनः ॥
भैरवं रूपमास्थाय गौर्याधार्ङ्गसंस्थितः । भूतवेतालकङ्कालैर्भैरवैर्भैरवो वृतः ॥
ननर्त नर्मदातीरे दक्षिणे पाण्डुनन्दन ! । तुष्टैर्मरुद्गणैः सर्वैः स्थापितः कमलासनः
तदाप्रभृति तत्तीर्थमानन्देश्वरमुच्यते । अष्टम्यां च चतुर्दश्यां पौर्णमास्यां नराधिप
विधिवत्त्वार्च्चयेद्देवं सुगन्धेन विलेपयेत् । ब्राह्मणान्पूजयेत्तत्र यथाशक्त्या युधिष्ठिर
गोदानं तत्र कर्त्तव्यं वस्त्रदानं शुभावहम् । वसन्तस्य त्रयोदश्यां श्राद्धं तत्रैव कारयेत्
इङ्गुदैर्बदरैर्बिल्वैरक्षतैश्च जलेन वा । प्रेतानां कारयेच्छ्राद्धमानन्देश्वर उत्तमे ॥ १०॥
आनन्दिता भवेयुस्ते यावदाभूतसम्प्लवम् । सन्ततेर्वं न विच्छेदः सप्तजन्मसु जायते
आनन्दो हि भवेत्तेषां प्रतिजन्मनि भारत ॥ ११ ॥
इति श्रीस्कान्दे महापुराणे काशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
आनन्देश्वरमाहात्म्यवर्णनं नाम पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥

षट्षष्टितमोऽध्यायः

मातृतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र! मातृतीर्थमनुत्तमम् । सङ्गमस्य समीपस्थं नर्मदादक्षिणे तटे
मातरस्तत्र राजेन्द्र! सञ्जाता नर्मदा तटे । उमार्द्धनारिर्देवेशो व्यालयज्ञोपवीतधृक्
उवाच योगिनीवृन्दं कष्टं कष्टमहो हर । अजेयाः सर्वदेवानां त्वत्प्रसादान्महेश्वर ॥
तीर्थमत्र विधानेन प्रख्यातं वसुधातले ।
एवं भवतु योगिन्य इत्युक्त्वाऽन्तरधाच्छिवः ॥ ४ ॥

श्रीमार्कण्डेय उवाच

तत्र तीर्थे तु यो भक्त्या नवम्यां नियतः शुचिः ।

उपोष्य परया भक्त्या पूजयेन्मातृगोघरम् ॥ ५ ॥

तस्यस्तुमांतर प्रीताप्रीतोऽयंनृपवाहन । वन्ध्यायामृतवत्सायाअपुत्रायायुधिष्ठिर
स्नापनधारभेत्तत्र मन्त्रशास्त्रविदुत्तम । सहिरण्येन कुम्भेन पञ्चरत्नफलान्वित
स्नापयेत्पुत्रकामायां कांस्यपात्रेण देशिक ।
पुत्र सा लभते नारी धीर्यवन्त गुणान्वितम् ॥ ८ ॥
योयं काममभिध्यायेत्तत मलभते नृप । मातृतीर्थात्परंतीर्थं न भूत न भविष्यति
इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्या संहितायांपञ्चमेऽयन्तीखण्डे
मातृतीर्थमाहात्म्यवर्णननाम षट्षष्टितमोऽध्याय ॥ ६६ ॥

सप्तषष्टितमोऽध्यायः

लुङ्केश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

तस्यैवानन्तरं तात जन्मध्ये व्यवस्थितम् ।
लुङ्केश्वरमितिख्यातं सुरासुरनमस्कृतम् ॥ १ ॥
इदंतीर्थं महापुण्यं नानाश्चर्यं महीतले । अस्यतीर्थस्यमाहात्म्यशृण्वत्किरणभावेन
आसीत्पुरामहापापी रागशोकस्वर्वित । वाल्मृष्ट इतिख्यात सुतोमतसुतस्य च
गङ्गातटं समाश्रित्य चचार विपुलं तप ॥
अधोमुखोऽपि संस्थित्वाऽपिबद्धूममहर्निशम् ॥ ५ ॥
ततश्चानन्तरं देवस्त्रिपुरंतोमयासह । दृष्ट्वा च पार्वती तत्र तु तपस्युग्रेतपस्थितम्
पप्रच्छ महादेव धूमाशी तिष्ठत तप । प्रभो तं कुर्म्याऽवरेहि तीर्थ वर विभो
ईश्वर उवाच
यत्त्वं पृच्छसे देवि मनाभ्यन्तर प्रिये । स्वकार्यं न सदाचिन्त्यं परकार्यं चिन्तयेत्

मूर्खस्त्रीबालशत्रूणां यश्छन्देनाऽनुवर्त्तते । व्यसने पतते घोरे सत्यमेतद्धुर्दारितम्

देव्युवाच

भार्ययाऽभ्यर्थितो भर्त्ता कारणं बहु भाषते ।
लघुत्वं याति सा नारी एवं शास्त्रेषु पठ्यते ॥ ९ ॥
प्राणत्यागं करिष्यामि यदि मां त्वं न मन्यसे ।
पार्वत्या प्रेरितो देवो गतोऽसौ दानवं प्रति ॥ १० ॥

ईश्वर उवाच

किमर्थं पिबसेधूमं किमर्थंतप्यसेतपः । किं दुःखंकिंनुसन्तापोवदकार्यमभीप्सितम्
युवा त्वं दृश्यसेऽद्यापिवर्षविंशतिरेवच । तदाचक्ष्व हि मे सर्वं तपसः कारणंमहत्

दानव उवाच

अचला दीयतां भक्तिर्मम स्थैर्य्यं तवोपरि । अपरं वर्षसाहस्रं निर्विघ्नं मेगतंविभो
दिवसानां सहस्रे द्वे पूर्णे त्वत्तपसा मम ॥ १४ ॥

ईश्वर उवाच

याचयाऽभीप्सितंकार्यंतुष्टोऽहं तव सुव्रत । देवस्यवचनंश्रुत्वाचिन्तयामासदानवः
किं नाकं याचयाम्यद्य किमद्य सकलां महीम् ।
एवं सञ्चिन्तयामास कामबाणेन पीडितः ॥ १६ ॥

दानव उवाच

यदि तुष्टोऽसि मे देव वरं दास्यसि मे प्रभो ।
संग्रामैस्तु न तुष्टोऽहं बलं नास्तीति किञ्च न ॥ १७ ॥
यस्य मूर्द्धन्यहंदेवपाणिनासमुपस्पृशे । देवदानवगन्धर्वोभस्मसाद्यातु तत्क्षणात्

ईश्वर उवाच

यत्त्वया चिन्तितं किञ्चित्तत्सर्वं सफलं तव । उत्तिष्ठ गच्छशीघ्रंत्वंभवनंप्रतिदानव

दानव उवाच

स्थीयतां देवदेवेश! यावज्ज्ञास्यामि ते वरम् ।

नारद उवाच

देवदानवसिद्धानां गन्धर्वोरगरक्षसाम्। सर्वेषामेव देवेशो हरते ध्रुवमापदम्॥
असंभाव्यं न वक्तव्यंमनसापि न चिन्तयेत्। ईदृशीनैवबुद्ध्यामिआपदंचविभोतव

ईश्वर उवाच

गच्छ नारद शीघ्रं त्वं यत्र देवो जनार्द्दनः। विदितं च त्वया सर्वं यत्कृतंदानवेनतु
अवध्यो दानवो ह्येष सेन्द्रैरपि मरुद्गणैः। गत्वा तु केशवं देवं निवेदय महामुने !॥

नारद उवाच

न तु गच्छाम्यहं देव सुप्तः क्षीरोदधौसुखी। केशवःप्रेरणे ह्येषामादेशोदीयतांप्रभो
मात्रा स्वस्रा दुहित्रा वा राजानं च तथा प्रभुम्।
गुरुं चैवाऽदितः कृत्वा शयानं न प्रबोधयेत्॥ ४३॥

ईश्वर उवाच

यदि कश्चिदगारेषु वह्निरुत्पद्यते महान्। निधनंयान्ति तत्रस्था यद्बुद्ध्येरन्नसूरयः

नारद उवाच

शीघ्रं गच्छ महादेवआत्मानं रक्ष सुप्रभो। गच्छाम्यहं न सन्देहो यत्रदेवोजनार्द्दनः
ततो नन्दिमहाकालौ स्तम्भहस्तौ भयानकौ।
जघ्नतुर्दानवं तत्र मुद्गरादिभिरायुधैः॥ ४६॥
त्रयोऽपि च महाकायाः सप्ततालप्रमाणकाः।
न शमो जायते तेषां युध्यतां च परस्परम्॥ ४७॥
ततश्चानन्तरंविप्रोऽगच्छत्तंकेशवं प्रति। सुप्तं क्षीरार्णवेऽपश्यच्छेषपर्यङ्कसंस्थितम्
लक्ष्म्या पादयुगं गृह्य ऊरूपरि निवेशितम्।
अप्सरोगीयमानं तु भक्त्याऽऽनम्य च केशवम्॥ ४९॥
अद्य मे सफलंजन्मजीवितंचसुजीवितम्। उत्थापयस्वदेवेशंलक्ष्मित्वमविशंकिता
नारदस्यवचः श्रुत्वा पदाङ्गुष्ठं व्यमर्द्दयत्। नारदस्तिष्ठतेद्वारिउत्तिष्ठमधुसूदन
देवोऽपि नारदं दृष्ट्वापरंहर्षमुपागतः। स्वागतं तु मुनिश्रेष्ठ ! सुप्रभाताऽद्यशर्वरी॥

नारद उवाच

अद्य मे सफलं देवप्रभात तवदर्शनात् । कुशलं च न देवानां शीघ्रमुत्तिष्ठगम्यताम्

श्रीविष्णुरुवाच

मत्वा यन्दृश्य रद्रश्च ये धाम्ने तु मदृणा । आपद कारणयच्चतत्त्वमाख्यातुमर्हसि

नारद उवाच

दानवेन महार्तान्म नरान्तम सुदारुणम् । रुद्रेण च वरो दत्तोभस्मत्वं मनसेप्सितम्

परदानयन्नैव ■ दय हन्तुमर्हति । ईदृशा चेष्टिन भास्या नीतो देवोऽमरैः सह ॥

नारदस्य वच श्रुत्वा नगामस्मुनिर्हरिः । दृष्ट्वा देवस्तमीशानगच्छन्तदिशमुत्तराम्

दृष्ट्वा देव च रुद्राऽय परिप्यज्य पुन पुन । नमस्कृत्य जगन्नाथ देव च मधुसूदन

विष्णुरुवाच

भयस्य कारण देव' कथ्यता च महेश्वर । देवदानवयक्षाणां प्रेरयेय यमाल्यम् ॥

स्थाने च कृतो धर्मो युष्माकञ्च महेश्वर ।

छित्वा शिरस्तथाङ्गानि इन्द्रियाणि न मवाय ॥ ६० ॥

ईश्वर उवाच

नास्ति सौख्यं ■ मृत्यु नास्ति सौख्य च रोगिषु ।

पराधीने न सौख्य तु स्त्रीजिते च विशेषत ॥ ६१ ॥

स्त्रीजितेन मया विष्णो' वरो दत्तस्तु दानवे ।

यस्य मूर्ध्नि न्यसेत्पाणि स भवेद्भस्मपुञ्जवत् ॥ ६२ ॥

अनेयश्चामरश्चैव मया हा च स केशव '। हन्तुमिच्छतिमा पापउपायस्तथविधने

विष्णुरुवाच

गच्छन्तु अमरा सर्व युष्माभि महाशङ्कर । उपाय सञ्चयाम्यथ यथार्थदानवस्यच

रेवायाश्च तटे तिष्ठ देव त्वममरैः सह । कालक्षेपो न कर्तव्योगम्यतात्वरितम्प्रभो

दक्षिणा यत्र गङ्गा च रेवा चैव महानदी ।

यत्र यत्र च दृश्येन प्राचीचैव सरस्वती ॥ ६६ ॥

तत्समं च महातीर्थं न मर्त्ये चैव दृश्यते । स्नानं ये तत्र कुर्वन्ति दानञ्चैव तु भक्तितः
सप्तजन्मकृतं पापं नश्यते नात्र संशयः । एतत्तीर्थं महापुण्यं सर्वपातकनाशनम् ॥

गम्यतां तत्र देवेश! लुङ्केशं त्वं सहामरैः ।
विष्णोस्तु वचनादेव प्रविष्टो ह्रदमुत्तमम् ॥ ६१ ॥

रतिं सुमहतीञ्चक्रे सह तत्र मरुद्गणैः । ततश्चानन्तरं देवो मायां कृत्वा ह्यनेकधा ॥
वसन्तमासं संसृज्य उद्यानवनशोभितम् । अशोकैर्बकुलैश्चैव ब्रह्मवृक्षैः सुशोभनैः ॥

श्रीवृक्षैश्च कपित्थैश्च शिरीषै राजचम्पकैः ।
श्रीफलैश्च तथा तालैः कदम्बोदुम्बरैस्तथा ॥ ७२ ॥

अश्वत्थादिद्रुमैश्चैव नानावृक्षैरनेकशः । नानापुष्पैःसुगन्धाढ्यं भ्रमरैश्चनिनादितम्

तस्मिन्मध्ये महावृक्षो न्यग्रोधश्च सुशोभनः ।
बहुपक्षिसमायुक्तः कोकिलारावनादितः ॥ ७४ ॥
कृष्णेन च कृतं तस्मिन्कन्यारूपं च तत्क्षणात् ।
न तस्याः सदृशी कन्या त्रैलोक्ये सचराचरे ॥ ७५ ॥
अन्याश्च कन्यकाः सप्त सुरूपाः शुभलोचनाः ।
दिव्यरूपधराः सर्वा दिव्याभरणभूषिताः ॥ ७६ ॥
पुमांसमभिकाङ्क्षन्त्यो यथैकः कामयेत्स्त्रियः ।
मौक्तिकै रत्नमाणिक्यैर्वैडूर्यैश्च सुशोभनैः ॥ ७७ ॥

कामहारैश्च वंशैश्च बद्धो हिन्दोलकः कृतः । आरूढाश्च महाकन्या गायन्ते सुस्वरं तदा

मारुतः शीतलो वाति वनं स्पृष्ट्वा सुशोभनम् ।
वातेन प्रेरितो गन्धो दानवो घ्राणपीडितः ॥ ७९ ॥

ततः कुसुमगन्धेन विस्मयं परमं गतः । आघ्राय चेदृशं पुण्यं न दृष्टं न श्रुतं मया

वने चिन्तयतः किञ्चिद्ध्वनिगीतं सुशोभनम् ।
गीतस्य च ध्वनिं श्रुत्वा मोहितो मायया हरेः ॥ ८१ ॥
व्याधस्यैव महाकूटे पतन्ति च यथा मृगाः ।

कालस्पृष्ट (कालपृष्ठ) स्तथा कृष्णे पतितश्च नराधिप ॥ ८२ ॥
दृष्ट्वा कन्या च तां दैत्यो मूर्च्छया पतितो भुवि ।
पतितेन तु दुष्टेन कन्या धरातले स्थिता ॥ ८३ ॥
आस्यं दृष्ट्वा तु नारीणां पुनः कामेन पीडितः ।
गृहीत्वा हेमदण्डं तु ता पातयितुमिच्छति ॥ ८४ ॥

कन्योवाच

मा मानुस्पर्शाय त्वं हि कुमार्यहं कुलोत्तम ॥
भो मुञ्चमुञ्च मा शीघ्रं यावद्गच्छाम्यहं गृहम् ॥ ८५ ॥

दानव उवाच

अहं विवाहमिच्छामि त्वयासहसुशोभने । मुहूर्ते मङ्गले रात्रौ भवत्येवंनसंशयः

कन्योवाच

पितारक्षति कौमार्ये भर्त्ता रक्षतियौवने । पुत्रोरक्षतिवृद्धत्वे न स्त्रीस्वातन्त्र्यमर्हति

न स्वातन्त्र्य ममैवास्ति उत्पन्नाऽहं महत्कुले ।
याच्यस्तु मत्पिता भ्राता मातापि हि तथैव च ॥ ८८ ॥

दानव उवाच

यदि मा नेच्छसे त्वय स्वातन्त्र्यं नावलम्बसे ।
ममापि च तदा हत्या सत्यं च शुभलोचने ॥ ८९ ॥

कन्योवाच

विश्वासो नैव कर्तव्यो यादृशो तादृशो नरे ।
नराः स्त्रीषु विचित्राश्च लम्पटाः काममोहिताः ॥ ९० ॥
परिणीय मा त्वं हि भुङ्क्ष्व भोगान्मया सह ।
जन्मनाशो भवेत्पश्चात्त्व नान्यो भवेन्मम ॥ ९१ ॥
ब्राह्मणी क्षत्रिणी वैशी शूद्री यावत्तथैव च ।
द्वितीयो न भवेद्भर्त्ता एकाकी चेह जन्मनि ॥ ९२ ॥

दानव उवाच

यत्त्वया गदितं वाक्यं तन्मया धारितं हृदि ।
प्रत्ययं मे कुरुष्वाऽद्य यत्ते मनसि रोचते ॥ ९३ ॥

कन्योवाच

जानीष्व गोपकन्यां मां क्रीडामि सखिभिः सह ।
अस्मत्कुलेषु यद्दिव्यं तत्कुरुष्व यथाविधि ॥ ९४ ॥
न तद्दिव्यं कुलेऽस्माकं विषं कोशं न तत्तुला ।
गोपान्वयेषु सर्वेषु हस्तः शिरसि दीयते ॥ ९५ ॥
कामान्धेनैव राजेन्द्र! निक्षिप्तो मस्तके करः ।
तत्क्षणाद्भस्मसाद्भूतो दग्धस्तृणचयो यथा ॥ ९६ ॥
केशवोपरिदेवैस्तुपुष्पवृष्टिः शुभाकृता । हृष्टाःसर्वेऽगमन्देवास्वस्थानंविगतज्वराः
क्षीरोदं केशवोऽगच्छत्कालपृष्ठे निपातिते । यइदंश्रणुयाद्भक्त्याचरितंदानवस्यच
स जयी जायते नित्यं शङ्करस्य वचोयथा ।
एतस्मात्कारणाद्राजँल्लिङ्गेश्वर (लुङ्केश्वर) मितिश्रुतम् ॥ ९९ ॥
लीनं च पातकं यस्मात्स्नानमात्रेण नश्यति ।
त्वगस्थिशोणितं मांसं मेदस्नायुस्तथैव च ॥ १०० ॥
मज्जाशुक्रगतंपापं नश्यते जन्मकोटिजम् । लुङ्केश्वरे महाराज तोयं पिबति भक्तितः
त्रिभिःप्रसृतिमात्राभिः पापं याति सहस्रधा ।
विशेषेण चतुर्दश्यामुभौ पक्षौ तु चाष्टमी ॥ १०२ ॥
उपोष्य यो नरो भक्त्या पितृणां पाण्डुनन्दन !।
उद्धृतास्ते सर्वे नारकीयाःपितामहाः ॥ १०३ ॥
काकिणीं चैव यो दद्याद्ब्राह्मणेवेदपारगे । तेन दानफलंसर्वंकुरुक्षेत्रादिकं च यत्
प्राप्तं तु नान्यथा राजञ्छङ्करो वदते त्विदम् ।
स्पर्शलिङ्गमिदं राजञ्छङ्करेण तु निर्मितम् ॥ १०५ ॥

स्पर्शमात्रे मनुष्याणामुद्वासोऽभिजायते। तेन दानफलसर्वं कुरुक्षेत्रादिकच यत्

एतस्मात्कारणाद्राजेँल्लोकपालाश्च रक्षकाः।

दुर्गा च रक्षणे सृष्टा चतुर्हस्तधरा शुभा ॥ १०१ ॥

धनदो लोकपालेशो रक्षकश्चेश्वरस्य च। रक्षति च सदा कालं महद्व्यापाररूपतः ॥

पुत्रभ्रातृत्वमारूपं स्वामिसम्बन्धरूपिभिः। लुङ्केश्वर नराजेन्द्र देवैर्नाऽद्यापि मुच्यते

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे रेवाखण्डे लुङ्केश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम सप्तषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६७ ॥

अष्टषष्टितमोऽध्याय

धनदतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

धनदस्य तु तत्तीर्थं ततो गच्छेद्युधिष्ठिर। नर्मदादक्षिणे कूले सर्वपापक्षयङ्करम् ॥

सर्वतीर्थफलं तत्र प्राप्यते नात्र संशयः। चैत्रमासत्रयोदश्यां शुक्लपक्षे जितेन्द्रियः

उपोष्य परया भक्त्या रात्रौ कुर्वीत जागरम्।

पञ्चामृतेन राजेन्द्र! स्नापयेद्धनदं बुधः ॥ २ ॥

दीपं घृतेन दातव्यं गीतं वाद्यश्च कारयेत्। प्रभाते पूजयेद्विप्रानात्मनः श्रेय इच्छति

प्रतिग्रहसमर्थाश्च विद्यासिद्धान्तवादिनः।

धौतस्मार्त्तक्रियायुक्तान्परदारपराङ्मुखान् ॥ ५ ॥

पूजयेद्गोहिरण्येन वस्त्रोपानहभोजनैः। छत्रशय्याप्रदानेन सर्वपापक्षयो भवेत् ॥

त्रिजन्मजनितं पापं धनदस्य प्रभावतः। स्वर्गदं दुर्विनीतानां विनीतानां च मोक्षदम्

अन्नदं च दरिद्राणां भवेज्जन्मनि जन्मनि। कुलीनत्वदुःखदानि स्वभायाज्ञायते नरे

व्याधिध्वंसो भवेत्तेषां नर्मदोदकसेवनात्।

धनदस्य तु यस्तीर्थे विद्यादानं प्रयच्छति ॥ ९ ॥
स याति भास्करे लोके सर्वव्याधिविवर्जिते ।
देवद्रोणीं च तत्रैव स्वशक्त्या पाण्डुनन्दन !॥ १० ॥
ये प्रकुर्वन्ति भूयिष्ठां रेवाया दक्षिणे तटे । तेयान्ति शाङ्करे लोकेसर्वदुःखविवर्जिते
इति श्रीस्कान्दे महापुराणएकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायांपञ्चमेऽवन्तीखण्डे
रेवाखण्डे धनदतीर्थमाहात्म्यवर्णनंनामाष्टषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६८ ॥

एकोनसप्ततितमोऽध्यायः

मङ्गलेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेत्तुराजेन्द्रमङ्गलेश्वरमुत्तमम् । स्थापितंभूमिपुत्रेणलोकानांहितकाम्यया
तोषितः परया भक्त्या शङ्करः शशिशेखरः ।
चतुर्द्दश्यां गुरुर्देवः प्रत्यक्षो मङ्गलेश्वरः ॥ २ ॥
ब्रूहि पुत्र! वरं शुभ्रं तत्ते दास्यामि मङ्गल !॥ ३ ॥

मङ्गल उवाच

प्रसादं कुरु मे शम्भो प्रतिजन्मनि शङ्कर । त्वदङ्गस्वेदसम्भूतो ग्रहमध्येवसाम्यहम्
त्वत्प्रसादेन ईशान पूज्योऽहं सर्वदैवतैः । कृतार्थोह्यद्य सञ्जातस्तव दर्शनभाषणात्
स्थानेऽस्मिन्देवदेवेश मम नाम्ना महेश्वरः । एवं भवतुतेपुत्रेत्युक्त्वाचान्तरधीयत
मङ्गलोऽपि महात्मा वै स्थापयित्वा महेश्वरम् ।
आत्मयोगबलेनैव शूलिनाऽपूजयत्ततः । ७ ॥
सर्वदुःखहरंलिङ्गं नाम्नावै मङ्गलेश्वरम् । तत्र तीर्थेतु वैराजन्ब्राह्मणान्प्रीणयेत्सुधीः
सपत्नीकान्नृपश्रेष्ठ चतुर्थ्यङ्गारके व्रते । पत्नीभर्त्तारसंयुक्तं विद्वांसं श्रोत्रियं द्विजम्

घृतान्ने चैव गोधूमैर्यं शिवमुद्दिश्य दीयते ।
प्रीयतां [illegible] महादेव सपत्नीको वृषध्वज ॥ १० ॥
वस्त्रयुग्म प्रदातव्यंलोहित पाण्डुनन्दन । धूर्वही रक्तवर्णौ च शुभ्रं कृष्ण तथैव च
छत्र शय्या शुभा चैव रक्तमाल्यानुलेपनम् ।
दातव्यं पाण्डवश्रेष्ठ विशुद्धेनान्तरात्मना ॥ १२ ॥
चतुर्थ्यान्तु तथाऽष्टम्या पक्षयो शुक्लकृष्णयो ।
श्राद्ध तथैव कर्त्तव्यं वित्तशाठ्येन वर्जित ॥ १३ ॥
प्रेता भवन्तिसुप्रीता युगमेक महीपते । अपुत्रो जायते यस्य प्रतिजन्म नृपोत्तम
तस्य तीर्थस्य भावेन सर्वाङ्गरुचिरो नृप । मङ्गलमयने यदीनाऽशुभं विद्यते क्वचित्
भक्त्या च कीर्त्तयेन्नित्य तस्य पापं व्यपोहति ॥ १६ ॥
इति श्रीस्कान्दे महापुराणे एकाशीतिसाहस्र्या ंसहितायाम्पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
रेवाखण्डे मङ्गलेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णननामैकोननमतितमोऽध्याय ॥ ६९ ॥

सप्ततितमोऽध्याय

रवितीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

रेवाया उत्तरे कूले तीर्थं परमशोभनम् । रविणा निर्मित पार्थ सर्वपापक्षयङ्करम्
स्थापितेन भास्करस्तत्र तिष्ठत चोत्तरे तटे ।
सर्वव्याधिहर पु सा नर्मदाया व्यवस्थित ॥ २ ॥
षष्ठ्यांसप्तम्यांतपश्चाष्टम्यांचचतुर्दशीम् । स्नानय कारयेन्मर्त्य श्राद्धमनेषु भक्तित
तस्य पापक्षय पार्थ सूर्यलोके महीयते ॥ ३ ॥
तत स्वर्गाच्च्युत सोऽपि जायते विमले कुले ।

धनाढ्योव्याधिनिर्मुक्तो जीवेज्जन्मनि जन्मनि ॥ ४ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराणएकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे रेवाखण्डे रवितीर्थमाहात्म्यवर्णनंनाम सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७० ॥

एकसप्ततितमोऽध्यायः

कामेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

कामेश्वरंततश्चान्यच्छृणु पाण्डवसत्तम । सिद्धोयत्रगणाध्यक्षोगौरीपुत्रोमहाबलः

तत्रतीर्थे तु यो भक्त्या भक्तियुक्तो जितेन्द्रियः ।

पञ्चामृतेन संस्नाप्य धूपनैवेद्यपूजनैः ॥ २ ॥

प्रसाद्यजगतामीशं सर्वपापः प्रमुच्यते । अष्टम्यां मार्गशीर्षस्यतत्र स्नात्वायुधिष्ठिर

यो येन यजते तत्र स तं काममवाप्नुयात् ॥ ४ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराणे एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे रेवाखण्डे कामेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनंनामैकसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७१ ॥

द्विसप्ततितमोऽध्यायः

मणिनागेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र मणिनागेश्वरं शुभम् । उत्तरे नर्मदाकूले सर्वपापक्षयङ्करम् ॥
स्थापितं मणिनागेन लोकानां हितकाम्यया ॥ १ ॥

युधिष्ठिर उवाच

आशीविषेण सर्पेण ईश्वरः स्थापितः कथम् ।
क्षुद्रः सर्वस्य लोकस्य भयदो विषदारुणः ॥ २ ॥
कथयस्व तात मे सर्वं पातकघ्नं पापनाशनम् । मम सन्तापदं दुःखं दुर्योधनसमुद्भवम्
क्षणमीक्षोद्भवं रौद्रं दुःखं पाञ्चालीसमुद्भवम् ।
तव वक्त्राम्बुजोद्भवं प्लावितं निर्वृतिं गतम् ॥ ४ ॥
श्रुत्वा तव मुखोद्गीता कथा वै पापनाशिनीम् ।
अयुक्तमिदमस्माकं द्विजा क्लेशो न शाम्यति ॥ ५ ॥
अथवाप्राप्स्यते तात विद्यादानस्य यत्फलम् । तत्फलं प्राप्यमनित्यं कथाश्रवणतोऽधर

श्रीमार्कण्डेय उवाच

यथा यथा त्वं नृप भाषसे च तथा तथा मे सुखमेति भारती ।
शैथिल्यता वा जरयान्वितस्य स्वल्सौहृदं नश्यति नैव तात ॥
शृणुष्व तस्मात्सह बान्धवैश्च कथामिमां पापहरां प्रशस्ताम् ॥ ७ ॥
कथयामि यथावृत्तमितिहासं पुरातनम् ॥ ८ ॥
कथितं पूर्वतो वृत्तं पारम्पर्येण भारत ॥ ९ ॥
द्वे भार्ये कश्यपस्य रास्तासंवलोकेष्वनुत्तमे । गरुत्मन्तं च विनताऽसूत कद्रूरहानथ
सन्तोषेण च ते तात तिष्ठतः कश्यपे गृहे । कद्रूश्च विनतानाम द्वेषं चक्रिरे सदा

ताभ्यां सार्द्धं क्रीडते च कश्यपोऽपि प्रजापतिः ।
ततस्त्वेकदिने प्राप्ते आश्रमस्था शुभानना ॥ १२ ॥

उच्चैःश्रवं हयं दृष्ट्वा मनोवेगसमन्वितम् । पश्यपश्य हि तन्वङ्गीहयंसर्वत्रपाण्डुरम्
धावमानमविश्रान्तंजवेनमनसोपमम् । तं दृष्ट्वासहसाघाऽश्वमीर्ष्याभावेनचाब्रवीत् ।

कद्रूरुवाच

ब्रूहिभद्रेसहस्रांशोरश्वःकिंवर्णकोभवेत् । अहंब्रवीमि कृष्णोऽयं त्वं किं वदसितद्वद

विनतोवाच

पश्यसे ननु नेत्रैश्च कृष्णंश्वेतं न पश्यसि । असत्यभाषणाद्भद्रे यमलोकंगमिष्यसि
सत्यानृते तु वचने पणस्तव ममैव तु । सहस्रं चैव वर्षाणां दास्यहं तव मन्दिरे ॥

असत्या यदि मे वाणी कृष्ण उच्चैःश्रवा यदि ।
तदाऽहं त्वद्गृहे दासी भवामि सर्पमातृके ॥ १८ ॥

दिउच्चैश्रवाःश्वेतोऽहंदासीचतवैवतु । एवं परस्परंताभ्यां सम्वादोऽयंव्यवर्द्धत

आश्रमेषु गता बाला रात्रौ चिन्तापरा स्थिता ।
बन्धुवर्गस्य कथितं समस्तं तद्विचेष्टितम् ॥ २० ॥

पुत्राणांकथितंपार्थपणश्चैवमयाकृतम् । हाहाकारःकृतःसर्पैःश्रुत्वामात्रापणंकृतम्
तादासीनसन्देहःश्वेतोभास्करवाहनः। उच्चैःश्रवाहयःश्वेतोनकृष्णोविद्यतेक्वचित्

कद्रूरुवाच

यथाऽहंनभवेदासीतत्कार्यंच विचिन्त्यताम् । विशध्वंरोमकूपेषुह्युच्चैःश्रवहयस्यतु
एकं मुहूर्त्तमात्रं तु यावत्कृष्णःस दृश्यते । क्षणमात्रेणचैकेन दासीसा भवते मम

दासीं कृत्वा तु तां तन्वीं विनतां सत्यगर्विताम् ।
ततः स्वस्थानगाः सर्वे भविष्यथ यथासुखम् ॥ २५ ॥

सर्पा ऊचुः

यथात्वंजननीचाम्बसर्वेषांभुवि पूजिता । तथासाऽपिविशेषेण वश्चिन्त्यानमातरः

माता च पितृभार्या च मातृमाता पितामही ।

कर्मणा मनसा वाचा हितं तासां समाचरेत् ॥ २७ ॥
मातरस्तेन वाक्येन क्रुद्धाः कालानलोपमाः । मम वाक्यमकुर्वाणा ये केचिद्भुवि पन्नगाः ॥
हव्यवाहमुखे सर्वे ते यास्यन्त्यविचारितम् । मातुस्तद्वचनं श्रुत्वा सर्वे चैव भुजङ्गमाः ॥
कश्चित्प्रविष्टो रोमेषु उच्चैःश्रवहयस्य च । नष्टाः केचिद्दशदिशः कद्रूशापभयात्तत ॥
केचिद्गङ्गाजले मग्नाः केचिन्नष्टाः सरस्वतीम् ।
केचिन्महोदधौ लीनाः प्रविष्टा विन्ध्यकन्दरे ॥ ३१ ॥
आश्रित्य नर्मदातोये मणिनागोत्तमो नृप । तपश्चचार विपुलमुत्तरे नर्मदातटे ॥
मातृशापभयात्पार्थ ध्यायते कामनाशनम् ।
अच्छेद्यमप्रतर्क्यं च विनाशोत्पत्तिवर्जितम् ॥ ३३ ॥
वायुभक्षः शतं साग्रं तदर्धं रविवीक्षकः । एवं ध्यानरतस्यैव प्रत्यक्षस्त्रिपुरान्तकः ॥
साधुसाधुमहाभाग सत्यवांस्तु भुजङ्गम । त्वया भक्त्या गृहीतोऽहं प्रीतस्तेऽद्य रगेश्वर ॥
वरं याचय मे क्षिप्रं यत्ते मनसि वर्तते ॥ ३५ ॥

मणिनाग उवाच

मातृशापभयान्नाथ स्थितोऽहं नर्मदातटे । त्वत्प्रसादेन मे नाथ मातृशापो भवेद्वृथा ॥

ईश्वर उवाच

हव्यवाहमुखं वत्स न प्राप्स्यसि ममाज्ञया ।
मम लोके निवासश्च तव पुत्र भविष्यति ॥ ३७ ॥

मणिनाग उवाच

अत्र स्थाने महादेव स्थीयतामंशमात्रतः । सहस्रांशेन भागेन स्थीयतां नर्मदातटे ॥
उपकाराय लोकानां मम नाम्नैव शङ्कर ॥ ३८ ॥

ईश्वर उवाच

स्थापयस्व परं लिङ्गमाज्ञया मम पन्नग । इत्युक्त्वान्तर्हितो देवो जगाम ह्युमया सह ॥

मार्कण्डेय उवाच

तत्रतीर्थे ये गत्वा शुचिप्रयतमानसाः । पञ्चम्यां वाथ चतुर्दश्यामष्टम्यां शुक्लकृष्णयोः

अर्चयन्ति सदा पार्थ नोपसर्पन्ति ते ममम् ।
दध्ना च मधुना चैव घृतेन क्षीरयोगतः ॥ ४१ ॥
स्नापयन्ति विरूपाक्षमुमादेहार्धधारिणम् । कामाङ्गदहनं देवमथासुरनिषूदनम् ॥
स्नाप्यमानञ्च ये भक्त्या पश्यन्ति परमेश्वरम् ।
ते यान्ति च परे लोके सर्वपापविवर्जिते ॥ ४३ ॥
श्राद्धं येतेषु ये पार्थ चाष्टम्यां पञ्चमीषु च । ब्राह्मणैश्चसदायोग्यैर्वेदपाठकचिन्तकैः
स्वदारनिरतैः श्लक्ष्णैः परदारविवर्जितैः । षट्कर्मनिरतैस्तात शूद्रप्रेषणवर्जितैः
खञ्जाश्च दर्दु राः षण्ढा वार्द्धु ष्याश्च कुशीवलाः ।
भिन्नवृत्तिकराः पुत्र! नियोज्या न कदाचन ॥ ४६ ॥
वृषली मन्दिरे यस्य महिषीं यस्तु पालयेत् ।
स विप्रो दूरतस्त्याज्यो व्रते श्राद्धे नराधिप !॥ ४७ ॥
काणाण्डुषण्ढाश्च मण्डाश्च वेदपाठविवर्जिताः ।
नते पूज्या द्विजाः पार्थ! मणिनागेश्वरे शुभे ॥ ४८ ॥
यदीच्छेदूर्ध्वगमनमात्मनः पितृभिः सह ।
सर्वाङ्गरुचिरां धेनु यो दद्यादग्रजन्मने ॥ ४९
स याति परमं लोकं यावदाभूतसंप्लवम् ।
ततः स्वर्गाच्च्युतः सोऽपि जायते विमले कुले ॥ ५० ॥
ये पश्यन्ति परं भक्त्या मणिनागेश्वरं नृप !।
न तेषां जायते वंशे पन्नगानां भयं नृप !॥ ५१ ॥
पन्नगः शङ्कते तेषां मणिनागप्रदर्शनात् । सौपर्णरूपिणस्ते वै दृश्यन्ते नागमण्डले
फलानि चैवदानानांश्रृणुष्वाऽथनृपोत्तम । अन्नंसंस्कारसंयुक्तं ये ददन्तेनरोत्तमाः
तोयं शय्यां तथा छत्रं कन्यां दासीं सुभाषिणीम् ।
पात्रे देयं यतो राजन्यदीच्छेच्छ्रेय आत्मनः ॥ ५४ ॥
सुरभीणि च पुष्पाणि गन्धवस्त्राणि दापयेत् ।

दीपं धान्यं गृहं शुभ्रं सर्वोपस्करसंयुतम् ॥ ५१ ॥
येऽददन्नेपरं भक्त्या ते व्रजन्ति त्रिविष्टपम् । मणिनागे नृपश्रेष्ठ यश्चदानप्रदीयते
तस्य दानस्य भावेन स्वर्गे वासो भवेद्ध्रुवम् ।
पातकानि प्रणश्यन्ति आमपात्रे यथा जलम् ॥ ५७ ॥
नर्मदातोयसंसिद्धभोज्य विप्रेश्वरातिथ । सोऽपिपापैर्विनिर्मुक्त क्रीडते देवतैः सह
ततः स्वर्गच्युतानां हि लक्षणं प्रवदाम्यहम् ।
दीर्घायुषो नीरोगाश्च पुत्रधनवन्त सुशोभना ॥ ५९ ॥
सर्वव्याधिविनिर्मुक्ता सुतभृत्यैः समन्विता ।
त्यागिनो भोगसंयुक्ता धर्माख्यानरता सदा ॥ ६० ॥
देवद्विजगुरोर्भक्तास्तीर्थसेवापरायणा ।
मातापितृपरा नित्यं द्रोहकार्यविवर्जिता ॥ ६१ ॥
एभिरेवगुणैर्युक्ता येनरा पाण्डुनन्दन । सत्यलोकस्य गतास्ते याना स्वर्गवासं प्रयान्ति
सर्वतीर्थवरं तीर्थं मणिनागं नृपोत्तम । तीर्थाख्यानमिदं पुण्यं यश्चैवशृणुयादपि
सोऽपि पापैर्विनिर्मुक्त शिवलोके महीयते । न विप्रमते तेषां विचरन्ति यथेच्छया
भाद्रपदा च यत्सृष्ट्वापुण्यं सूर्यस्यदर्शने । तत्फलं समवाप्नोति आख्यानश्रवणेन तु

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
रेवाखण्डे मणिनागेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णननाम द्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७२ ॥

त्रिसप्ततितमोऽध्यायः

गोपारेश्वरमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

नर्मदादक्षिणे कूले तीर्थं परमशोभनम्। सर्वपापहरं पार्थ! गोपारेश्वरमुत्तमम्
गोदेहान्निःसृतं लिङ्गं पुण्यं भूमितले नृप!॥ १॥

युधिष्ठिर उवाच

गोदेहान्निः सृतं कस्माल्लिङ्गं पापक्षयङ्करम्।
दक्षिणे नर्मदाकूले मणिनागसमीपतः॥
संक्षेपात्कथ्यतां विप्र! गोपारेश्वरसम्भवम्॥ २॥

श्रीमार्कण्डेय उवाच

कामधेनुस्तपस्तत्र पुरा पार्थ चकार ह। ध्यायते परया भक्त्या देवदेवं महेश्वरम्
तुष्टस्तस्या जगन्नाथःकपिलायामहेश्वरः। निःसृतो देहमध्यात्तुअच्छेद्यःपरमेश्वरः
तुष्टो देवि! जगन्मातः कपिले परमेश्वरि। आराधनं कृतंयस्मात्तद्वदाऽऽशुशुभानने

सुरभ्युवाच

लोकानामुपकाराय सृष्टाऽहं परमेष्ठिना।
लोककार्याणि सर्वाणि सिद्ध्यन्ति मत्प्रसादतः॥ ६॥
लोकाः स्वर्गं प्रयास्यन्ति मत्प्रसादेन शङ्कर!।
तीर्थे त्वं भव मे शम्भो! लोकानां हितकाम्यया॥ ७॥
तथेति भगवानुक्त्वा तीर्थे तत्रावसन्मुदा।
तदाप्रभृति तत्तीर्थं विख्यातं वसुधातले।
स्नानेनैकेन राजेन्द्र! पापसङ्घं व्यपोहति॥ ८॥
गोपारेश्वरगोदानं यस्तु भक्त्या च कारयेत्।

योग्ये द्विजोत्तमे देया योग्या धेनुः सकाञ्चना ॥

सवत्सा तरुणी शुभ्रा चतुर्क्षीरासवस्त्रका । कृष्णपक्षे चतुर्दश्यामष्टम्यावाप्रदापयेत्
सर्वेषुचैव मासेषुकार्त्तिके चविशेषतः । दापयेत्परयाभक्त्या द्विजेस्वाध्यायतत्परे
विधिना चप्रदद्याद्योविधिनायस्तुगृह्णते । तावुभौपुण्यकर्माणौप्रेक्षकःपुण्यभाजनम्
पिण्डदानप्रकुर्याच प्रेतानामक्तिसंयुतः । पिण्डेनैकेनराजेन्द्र प्रेतायान्तिपरागतिम्
भक्त्या प्रणाम रुद्रस्य ये कुर्वन्ति दिनेदिने । तेषांपापंप्रलीयेतभिन्नपात्रेजलं यथा
तत्र तीर्थे तुयो राजन्वृषभ च समुत्सृजेत् । पितरश्चोद्धृतास्तेनशिवलोकेमहीयते

युधिष्ठिर उवाच

वृषोत्सर्गे कृते तात फलं यज्जायते नृणाम् । तत्सर्वंकथयस्वाशु प्रयत्नेन द्विजोत्तम

श्रीमार्कण्डेय उवाच

सर्वलक्षणसम्पूर्णे वृषे चैव तु यत्फलम् । तदहं सम्प्रवक्ष्यामि शृणुष्व धर्मनन्दन ॥

कार्त्तिके चैव वैशाखे पूर्णिमायां नराधिप ।

रुद्रस्य सन्निधौ भूत्वा शुचिः स्नातो जितेन्द्रियः ॥ १८ ॥

वृषस्यैवसमुत्सर्गं कारयेत्तीर्थमाहरः । सान्निध्येकारयेत्सुम्बवत्सोवहिलकाःशुभाः
कृत्वा ॥ विप्रमुत्थाय सर्वलक्षणसंयुतः । प्रीयतांचमहादेवो ब्रह्मा विष्णुर्महेश्वरः
वृषभे रोमसङ्ख्या या सर्वाङ्गेषु नराधिप । तावद्वर्षप्रमाणं तु शिवलोके महीयते
शिवलोके वसित्वा ॥ पश्चान्मर्त्येषु जायते । कुले महतिसम्भूतिर्धनधान्यसमाकुले

नीरोगो रूपवांश्चैव विद्याढ्यः सत्यवाक्शुचिः ।

गोपारेश्वरमाहात्म्यं मया ख्यातं युधिष्ठिर ॥

गोदेहान्निःसृतं लिङ्गं नर्मदादक्षिणे तटे ॥ २३ ॥

इति श्रीस्कान्देमहापुराणएकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
रेवाखण्डे गोपारेश्वरमाहात्म्यवर्णननाम त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७३ ॥

चतुःसप्ततितमोऽध्यायः

गौतमेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

रेवाया उत्तरे कूले तीर्थं परमशोभनम्। सर्वपापहरं मर्त्ये नाम्ना वै गौतमेश्वरम्

स्थापितं गौतमेनैव लोकानां हितकाम्यया।

स्वर्गसोपानरूपं तु तीर्थं पुंसां युधिष्ठिर !॥ २ ॥

तत्र गच्छ परंभक्त्यायत्रदेवोजगद्गुरुः। पातकस्यविनाशार्थं स्वर्गवासप्रदस्तथा

सौभाग्यवर्द्धनंतीर्थं जयदं दुःखनाशनम्। पिण्डदानेन चैकेन कुलानामुद्धरेत्त्रयम्

यत्किञ्चिद्‌ दीयते भक्त्या स्वल्पं वा यदि वा बहु।

तत्सर्वं शतसाहस्रमाज्ञया गौतमस्य हि ॥ ५ ॥

तीर्थानां परमं तीर्थं स्वयं रुद्रेण भाषितम् ॥ ६ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे रेवाखण्डे गौतमेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनंनाम चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७४ ॥

पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः

शङ्खचूडतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

नर्मदादक्षिणे कूले तीर्थं परमशोभनम् । शङ्खचूडस्य नाम्ना वै प्रसिद्धं भूमिमण्डले
शङ्खचूड स्वयं तत्र ह्यस्थित पाण्डुनन्दन । वैनतेयभयात्पार्थ सुखद नर्मदातटे
तत्र तीर्थे तु यो भक्त्या शुचिर्भूत्वा समाहित ।
स्नापयेच्छङ्खचूडं तु क्षीरक्षौद्रेण सर्पिषा ॥ ३ ॥
रात्रौजागरणकुर्याद्देवस्याग्रे नराधिप । पञ्चिभक्तेनसपूज्यब्राह्मणाञ्छसितव्रतान्
गोप्रदाने द्विजेन्द्रोऽय सर्वपापक्षयङ्कर ॥ ४ ॥
तस्मिस्तीर्थे तु य पार्थ सर्पदंशात्प्रमुच्यते । सयातिपरमलोकं शङ्करस्यवचोयथा
इति श्रीस्कान्दे महापुराणएकाशीतिसाहस्र्या संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
रेवाखण्डे शङ्खचूडतीर्थमाहात्म्यवर्णननाम पञ्चसप्ततितमोऽध्याय ॥ ७५ ॥

षट्सप्ततितमोऽध्याय

पारेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततोगच्छेत्तु राजेन्द्र पारेश्वरमनुत्तमम् । पराशरो महात्मा वै नर्मदायास्तटे शुभे
तपश्चचार विपुल पुत्रार्थं पाण्डुनन्दन । हिमवद्दुहिता तेन गौरी नारायणी नृप
तोषिता परया भक्त्यानर्मदोत्तरके तटे । तस्य तुष्टा महादेवी शङ्करार्द्धाङ्गधारिणी
भोभोऋषिवर श्रेष्ठ तुष्टाऽहं तव भक्तित । वरं याचयमेविप्र पराशर महामते ॥

पराशर उवाच

परितुष्टाऽसि मे देवियदिदेयोवरोमम । देहि पुत्रं भगवतिसत्यशौचगुणान्वितम्

वेदाभ्यसनशीलं हि सर्वशास्त्रविशारदम् ।

तीर्थं चाऽत्र भवेद् देवि! सन्निधानवरेण तु ॥ ८ ॥

लोकोपकारहेतोश्च स्थीयतां गिरिनन्दिनि !। पराशराभिधानेन नर्मदादक्षिणेतटे

श्रीदेव्युवाच

एवं भवतु ते विप्र! तत्रैवान्तरधीयत । पराशरोमहात्मावै स्थापयामास पार्वतीम्

शङ्करं स्थापयामास सुरासुरनमस्कृतम् । अच्छेद्यमप्रतर्क्यं च देवानां तुदुरासदम्

पराशरो महात्मा वै कृतार्थो ह्यभवन्नृप !॥ १० ॥

तत्र तीर्थे तु यो भक्त्या शुचिः प्रयतमानसः ।

स्त्र्यथवा पुरुषो वाऽपि कामक्रोधविवर्जितः ॥ ११ ॥

माघे चैत्रेऽथ वैशाखेश्रावणे नृपनन्दन !। मासिमार्गशिरे चैव शुक्लपक्षे तुसर्वदा

तत्र गत्वा शुभे स्थाने नर्मदादक्षिणे तटे ॥ १३ ॥

उपोष्य परया भक्त्या व्रतमेतत्समाचरेत् ।

रात्रौ जागरणं कृत्वा दीपदानं स्वशक्तितः ॥ १४ ॥

गीतं नृत्यं तथा वाद्यं कामक्रोधविवर्जितः ।

प्रभाते विमले प्राप्ते द्विजाः पूज्याः स्वशक्तितः ॥ १५ ॥

संपूज्य ब्राह्मणान्पार्थ धनदानहिरण्यतः । वस्त्रेण छत्रदानेनशय्याताम्बूलभोजनैः

प्रीणयेन्नर्मदातीरे ब्राह्मणाञ्छंसितव्रतान् । श्राद्धं कार्यं नृपश्रेष्ठआमैः पक्वैर्जलेनच

स्त्रीणां चैव तुशूद्राणामामश्राद्धं प्रशस्यते । आमंचतुर्गुणंदेयं ब्राह्मणानांयुधिष्ठिर

वेदोक्तेनविधानेन द्विजाः पूज्याः प्रयत्नतः । हस्तमात्रैः कुशैश्चैवतिलैश्चैवाक्षतैर्नृप

विप्रा उदङ्मुखाः कार्याः स्वयं वै दक्षिणामुखः ।

दर्भेषु निक्षिपेदन्नमित्युच्चार्य द्विजाग्रतः ॥ २० ॥

प्रेता यान्तु परेलोके तीर्थस्याऽस्य प्रभावतः । पापं मेप्रशमं यातुएतुवृद्धिं शुभंसदा

वृद्धिं यातु सदा यशो ज्ञानिवर्गो द्विजोत्तम । एवमुच्चार्य विप्राय दानं देयं स्वशक्तितः
गोभूतिलहिरण्यादि पात्रे यत्नस्वशक्तितः । दातव्यं पाण्डवश्रेष्ठ पारेश्वरवराश्रमे
ये शृण्वन्ति परं भक्त्या मुच्यन्ते सर्वपातकैः ॥ २५ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे रेवाखण्डे पारेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णननाम षट्सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७६ ॥

सप्तसप्ततितमोऽध्यायः

भीमेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

भीमेश्वरं ततो गच्छेत्सर्वपापक्षयङ्करम् । सेवितं ऋषिसङ्घैश्च भीमसेनवरं शुभम् ॥
तत्र तीर्थे तु यः स्नात्वा सोपवासो जितेन्द्रियः ।
जपेदेकाक्षरं मन्त्रमूर्ध्वबाहुर्दिवाकरे ॥ २ ॥

तस्य जन्मार्जितं पापं तत्क्षणादेव नश्यति । सप्तजन्मार्जितं पापं गायत्र्या नश्यते ध्रुवम् दशभिर्जन्मभिर्जातं शतेन तु पुराकृतम् । सहस्रेण त्रिजन्मोत्थं गायत्री हन्ति किल्बिषम् द्विविधं लौकिकं चापि आर्ष्यं जन्म नरेश्वर । तत्क्षणाद्दहते सर्वं तृणं तूलं यथानलः न देवत्वमाश्रित्य कदाचित्पापमाचरेत् । अज्ञानान्नश्यते क्षिप्रं नोत्तरं तु कदाचन तत्र तीर्थे तु यो दानं शक्तिमाश्रित्य चाचरेत् । तदक्षय्यफलं सर्वं जायते पाण्डुनन्दन

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे रेवाखण्डे भीमेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णननाम सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७७ ॥

अष्टसप्ततितमोऽध्यायः

नारदेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेत्तु राजेन्द्रनारदेश्वरमुत्तमम् । तीर्थानां परमं तीर्थं निर्मितं नारदेन तु ॥

युधिष्ठिर उवाच

नारदेन मुनिश्रेष्ठ कस्मात्तीर्थं विनिर्मितम् । एतदाख्याहिमे सर्वंप्रसन्नोयदिसत्तम!

श्रीमार्कण्डेय उवाच

परमेष्ठिसुतः पार्थ!नारदो मुनिसत्तमः । रेवायाश्चोत्तरे कूले तपस्तेन पुरा कृतम् ॥

नवनाडीनिरोधेन काष्ठावत्यां गतेन च । तोषितः पशुभर्त्ता वै नारदेन युधिष्ठिर !

ईश्वर उवाच

तुष्टोऽहं तव विप्रेन्द्र! योगिनाथ अयोनिज !। वरंप्रार्थय मे वत्स यत्ते मनसिवर्त्तते

नारद उवाच

त्वत्प्रसादेन मे शम्भो योगश्चैव प्रसिध्यतु । अचलातेभवेद्भक्तिः सर्वकालं ममैव तु

स्वेच्छाचारी भवे देव वेदवेदाङ्गपारगः । त्रिकालज्ञोजगन्नाथगीतज्ञोऽहं सदा भवे

दिनेदिने यथा युद्धं देवदानवमानुषैः । पातालेमर्त्यलोके वा स्वर्गे वाऽपि महेश्वर

पश्येयं त्वत्प्रसादेन भवन्तं पार्वतीं तथा । तीर्थं लोकेषुविख्यातं सर्वपापक्षयङ्करम्

ईश्वर उवाच

एवं नारद! सर्वं तु भविष्यति न संशयः । चिन्तितंमत्प्रसादेर्नासद्धयतेनात्रसंशयः

स्वेच्छाचारो भवेर्वत्स स्वर्गे पातालगोचरे।
मर्त्ये वा भ्रम वै योगिन्न केनाऽपि निवार्यसे ॥ ११ ॥
सप्त स्वरास्त्रयो ग्रामा मूर्च्छनाश्चैकविंशतिः ।
ताना एकोनपञ्चाशत्प्रसादान्मे तव ध्रुवम् ॥ १२ ॥

मम प्रियङ्कर दिव्य नृत्यगीत भविष्यति। कलि च पश्यसे नित्य देवदानवकिन्नरैः त्वत्तीर्थं भूतले पुण्य म प्रसादाद्भविष्यति। वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञो ह्यगेरज्ञानकोविद ॥

एकस्त्वमसि नि सङ्गो मत्प्रसादेन नारद ॥ १४ ॥

इत्युक्त्वान्तर्दधे देवो नारदस्तत्र शूलिनम्।

स्थापयामास राजेन्द्र सर्वसत्त्वोपकारकम् ॥ १५ ॥

पृथिव्यामुत्तम तीर्थं निर्मितं नारदेन तु। तत्र तीर्थे नृपश्रेष्ठ यो गच्छेद्विजितेन्द्रिय

मासि भाद्रपदे पार्थ कृष्णपक्षे चतुर्दशी।

उपोष्य परया भक्त्या रात्रौ कुर्वीत जागरम् ॥ १७ ॥

छत्र तत्र प्रदातव्य ब्राह्मणे शुभलक्षणे। शक्तितस्तु हुता येषै तेषा श्राद्ध प्रदापयेत् ॥

ते यान्ति परम लोक पिण्डदानप्रभावत ॥ १८ ॥

कपिलातत्प्रदातव्यापितॄनुद्दिश्यभारत। इत्युच्चार्यद्विजेदेव्यायान्तु ते परमागतिम्

अस्य श्राद्धस्य भावेन ब्राह्मणस्यप्रसादत। नमदातोयभावेनन्यायार्जितधनस्यच

तेषा चैव प्रभावेण प्रेता यान्तु परा गतिम् ॥ २० ॥

इत्युच्चार्य द्विजे देया दक्षिणा च स्वशक्तित।

हविष्यान्न विशालाक्षि द्विजाना चैव दापयेत् ॥ २१ ॥

दीपं भक्त्या प्रदातव्य नृत्य गीत च कारयेत्।

अथात्र तेन वै सर्व य करोतीश्वरात्मिने ॥ २२ ॥

स याति रुद्रसान्निध्यमिति रुद्र स्वयं जगौ।

विद्यादानेन चैकेन अक्षया गतिमाप्नुयात् ॥ २३ ॥

धूवहास्तत्रदातव्याभूमि सस्यवती नृप। चित्रभानु शुभैर्मन्त्रै प्रीणयेत्तत्रभक्तित

आज्येन सुप्रभूतेन होमद्रव्येणभारत। ये यजन्ति सदा भक्त्या त्रिकालनृत्यमेवच

तीर्थे नारदनामाख्ये रेवायाश्चोत्तरे तटे। चित्रभानुमुखादेवा सर्वदेवमयो ह्यग्नि

अग्निना प्रीणिता सर्वे तस्मात्प्रीत्योस्म हुताशन।

---

* प्रीतय —प्रीणनीय —इत्यर्थ।

पूजिते हव्यवाहे तु दारिद्र्यं नैव जायते ॥ २७ ॥
धनेन विपुला प्रीतिर्जायते प्रतिजन्मनि । कुलीनाश्च सुवेषाश्च सर्वकालं धनेन तु
प्लवो नदीनां पतिरङ्गनानां राजा च सद्वृत्तरतः प्रजानाम् ।
धनं नराणामृतवस्तरूणां गतं गतं यौवनमानयन्ति ॥ २९ ॥
धनदत्वं धनेशेन तस्मिंस्तीर्थे ह्युपार्जितम् । यमेनच यमत्वं हि इन्द्रत्वंचैववज्रिणा
अन्यैरपि महीपालैः पार्थिवत्वमुपार्जितम् ।
नारदेश्वरमाहात्म्याद्ध्रुवो निश्चलतां गतः ॥ ३१ ॥
सर्वतीर्थवरं तीर्थं निर्मितं नारदेन तु । पृथिव्यां सागरान्तायां रेवायाश्चोत्तरे तटे
तद्वरं सर्वतीर्थानां महापातकनाशनम् ॥ ३२ ॥
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
रेवाखण्डे नारदेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनंनामाष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥७८॥

एकोनाशीतितमोऽध्यायः

दधिस्कन्दमधुस्कन्दतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र! तीर्थद्वयमनुत्तमम् । दधिस्कन्दंमधुस्कन्दं सर्वपापक्षयङ्करम्
दधिस्कन्दे नरः स्नात्वा यस्तु दद्याद्द्विजे दधि ।
उपतिष्ठेत्ततस्तस्य सप्तजन्मनि भारत !॥ २ ॥
न व्याधिर्न जरा तस्य न शोको नैव मत्सरः ।
दशचन्द्रशतं यावज्जायते विमले कुले ॥ ३ ॥
मधुस्कन्देऽपि मधुना मिश्रितान्यस्तिलान्ददेत् ।
नाऽसौ वैवस्वतं देवं पश्येद्वै जन्मसप्ततिम् ॥ ४ ॥

मधुनासह सम्मिश्र पिण्डयस्तुप्रदापयेत् । तस्यपीत्रप्रपौत्रेभ्योदारिद्यनैवजायते
दधिमि 'सहसमिश्र पिण्ड यस्तु प्रदापयेत् ।
तस्मिंस्तीर्थे नर स्नात्वा विधिवद्दक्षिणामुख ॥ ६ ॥
पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामह ।
द्वादशाब्दानि तुष्यन्ति नाऽत्र कार्या विचारणा ॥ ७ ॥
इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे रेवाखण्डे दधिस्कन्दमधुस्कन्दतीर्थमाहात्म्यवर्णन नामैकोनाशीतितमोऽध्याय ॥ ७९ ॥

अशीतितमोऽध्यायः

नन्दिकेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र नन्दिकेश्वरमुत्तमम् । यत्रसिद्धो महानन्दीतत्तेसर्वंवदाम्यहम्
रेवाया पुरत कृत्वा पुरा नन्दीगणेश्वर । तपस्तप्त्वत्रयं कुर्वंस्तीर्थात्तीर्थंजगाम ह
दधिस्कन्द मधुस्कन्द यावत्स्थित्वा तु गच्छति ।
तावत्तुष्टो महादेवो नन्दिनाथमुवाच ह ॥ ३ ॥
ईश्वर उवाच
भोभो प्रसन्नो नन्दीश वरवृणुयथेप्सितम् । तपसातेनतुष्टोऽह तीर्थयात्राकृतेन ते ॥
नन्दीश्वर उवाच
न चाऽहं कामये वित्त न चाऽह कुलसन्ततिम् ।
मुक्त्वा न कामये काम तव पादाम्बुजात्परम् ॥ ५ ॥
कृमिकीटपतङ्गेषु तिर्यग्योनि गतस्य वा ।

जन्म जन्मान्तरेऽप्यस्तु भक्तिस्त्वयि ममाऽचला ॥ ६ ॥
तथेत्युक्त्वा महादेवः परया कृपया नृप !।
गृहीत्वा तं करे सिद्धं जगाम निलयं हरः ॥ ७ ॥
तस्मिंस्तीर्थे तु यः स्नात्वा भक्त्या त्र्यक्षं प्रपूजयेत् ।
अग्निष्टोमस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोति मानवः ॥ ८ ॥
तत्र तीर्थे तु यः स्नात्वा प्राणत्यागं करोति चेत् ।
शिवस्याऽनुचरो भूत्वा मोदते कल्पमक्षयम् ॥ ९ ॥
ततः कालेन महता जायते विमले कुले । वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञो जीवेच्च शरदां शतम्
एतत्तेकथितंतात!तीर्थमाहात्म्यमुत्तमम् । दुर्लभं मर्त्यसञ्ज्ञस्य सर्वपापक्षयंकरम्
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
रेवाखण्डे नन्दिकेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नामाशीतितमोऽध्यायः ॥८०॥

एकाशीतितमोऽध्यायः

वरुणेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेन्महाराज वरुणेश्वरमुत्तमम् । यत्र सिद्धो महादेवो वरुणो नृपसत्तम
पिण्याकशाकपर्णैश्च कृच्छ्रचान्द्रायणादिभिः ।
आराध्य गिरिजानाथं ततः सिद्धिं परां गतः ॥ २ ॥
तत्र तीर्थे तु यः स्नात्वा सन्तर्प्य पितृदेवताः ।
पूजयेच्छङ्करं भक्त्या स याति परमां गतिम् ॥ ३ ॥
कुण्डिकांवर्द्धनीं वाऽपि महद्वा जलभाजनम् । अन्नेनसहितंपार्थतस्यपुण्यफलंशृणु
यत्फलं लभतेमर्त्यःसत्रेद्वादशवार्षिके ।।तत्फलंसमवाप्नोतिनाऽत्रकार्याविचारणा
सर्वेषामेव दानानामन्नदानं परंस्मृतम् । सद्यःप्रीतिकरंतोयमन्नंच नृपसत्तम !॥ ६॥

तत्र तीर्थे मृतानां तु नराणां भावितात्मनाम् ।
वरुणस्य पुरे वासो यावदाभूतसंप्लवम् ॥ ७ ॥
पश्चात्पूर्णे ततः काले मर्त्यलोके प्रजायते । अन्नदानप्रदो नित्यं जीवेद्वर्षशतं नरः ॥
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
रेवाखण्डे वरुणेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णननामैकाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८१ ॥

द्व्यशीतितमोऽध्यायः

दधिस्कन्दादिपञ्चतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेन्महीपाल वह्नितीर्थमनुत्तमम् । यत्र सिद्धो महातेजास्तपः कृत्वा हुताशनः
सर्वभक्ष्यः कृतो योऽसौ दण्डके मुनिना पुरा ।
नर्मदातटमाश्रित्य पूतो जातो हुताशनः ॥ २ ॥
तत्र तीर्थे तु यः स्नात्वा पूजयित्वा महेश्वरम् ।
अग्निप्रवेशं कुरुते स गच्छेदग्निसाम्यताम् ॥ ३ ॥
भक्त्या स्नात्वा तु यस्तत्र तर्पयेत्पितृदेवताः ।
अग्निष्टोमस्य यज्ञस्य फलमाप्नोत्यसंशयम् ॥ ४ ॥
तस्यैवाऽनन्तरं राजन्कौबेरं तीर्थमुत्तमम् । कुबेरो यत्र संसिद्धो यक्षाणामधिपः पुरा
तत्र तीर्थे नरः स्नात्वा समभ्यर्च्य जगद्गुरुम् ।
उमया सहितं भक्त्या सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ६ ॥
तत्र तीर्थे तु यः स्नात्वा दद्याद्विप्राय काञ्चनम् ।
नाभिमात्रे जले तिष्ठन् लभेतार्बुदं फलम् ॥ ७ ॥
दधिस्कन्दे मधुस्कन्दे नन्दीशे वरुणालये ।

आग्नेये यत्फलंतात स्नात्वा तत्फलमाप्नुयात् ॥ ८ ॥
ते वन्द्या मानुषे लोके धन्याःपूर्णमनोरथाः । यैस्तुदृष्टंमहापुण्यंनर्मदातीर्थपञ्चकम्
ते यान्ति भास्करे लोके परमे दुःखनाशने । भास्करादैश्वरेलोकेचैश्वरादनिवर्त्तकेः
नीयतेसपरेलोकेयावदिन्द्राश्चतुर्द्दश । ततःस्वर्गाच्च्युतोमर्त्यो राजाभवतिधार्मिकः
सर्वरोगविनिर्मुक्तोभुनक्तिसचराचरम् । विष्णुश्च देवता येषांनर्मदातीर्थसेविनाम्
अखण्डितप्रतापास्ते जायन्ते नाऽत्र संशयः ।
गङ्गा कनखले पुण्या कुरुक्षेत्रे सरस्वती ॥ १३ ॥
ग्रामे वा यदिवाऽरण्ये पुण्यासर्वत्रनर्मदा । रेवातीरेवसेन्नित्यं रेवातोयंसदापिबेत्
स स्नातः सर्वतीर्थेषुसोमपानंदिनेदिने । गङ्गाद्याःसरितःसर्वाःसमुद्राश्चसरांसिच
कल्पान्ते सङ्क्षयं यान्ति न मृता तेन नर्मदा ॥ १५ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराणएकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायां पञ्चमेऽवन्ताखण्डे रेवाखण्डे दधिस्कन्दादिपञ्चतीर्थमाहात्म्यवर्णनंनाम द्व्यशीतितमोऽध्यायः

त्र्यशीतितमोऽध्यायः

हनूमन्तेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेन्महाराज तीर्थं परमशोभनम् । ब्रह्महत्याहरं प्रोक्तं रेवातटसमाश्रयम् ॥
हनूमताभिधं ह्यत्र विद्यते लिङ्गमुत्तमम् ॥ १ ॥

युधिष्ठिर उवाच

हनूमन्तेश्वरं नाम कथं जातं वदस्व मे । ब्रह्महत्याहरं तीर्थं रेवादक्षिणसंस्थितम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

साधुसाधु महाबाहो! सोमवंशविभूषण !।

गुह्याद् गुह्यतरं तीर्थं नाख्यातं कस्यचिन्मया ॥ ३ ॥
तव स्नेहात्प्रवक्ष्यामि पीडितो वार्द्धकेन तु । पूर्वं जातं महद्युद्धं रामरावणयोरपि
पुलस्त्यो ब्रह्मणः पुत्रो विश्रवास्तस्य वै सुतः ।
रावणस्तेन संजातो दशास्यो ब्रह्मराक्षसः ॥ ५ ॥
त्रैलोक्यविजयीभूतः प्रसादाच्छूलिनः स च ।
गीर्वाणा विजिताः सर्वे रामस्य गृहिणी हृता ॥ ६ ॥
वारितः कुम्भकर्णेन सीता मोचय मोचय । विभीषणेन वै पापो मन्दोदर्या पुनः पुनः
त्वं जितः कार्तवीर्येण रेणुकेयेन सोऽपि च । स रामो राममद्रेण तस्य सङ्ख्ये कथं जयः
रावण उवाच
वानरैश्च नरैर्ऋक्षैर्वराहैश्च निरायुधैः । देवासुरसमूहैश्च न जितोऽहं कदाचन ॥
श्रीमार्कण्डेय उवाच
सुग्रीवहनुमद्भ्यां च कुमुदेनाङ्गदेन च । वानरैरन्यैः सहायैश्च रामचन्द्रेण वै जितः
रामचन्द्रेण पौलस्त्यो हतः सङ्ख्ये महाबलः । वनभङ्गहताः शूरा समं जम्बुमालिना च
रावणस्य सुतो जघ्ने हनुमानक्षकुमारकः । आयामोरक्षसां भीमं सपिष्टो वानरेण तु
एवं रामायणे वृत्ते सीतामोक्षे कृते सति । अयोध्यां तु गते रामे हनुमान्स महाकपिः
कैलासाख्यं गतः शैलं प्रणामाय महेशितुः ।
तिष्ठतिष्ठेत्यसौ प्रोक्तो नन्दिना वानरोत्तमः ॥ १४ ॥
ब्रह्महत्यायुतस्त्वं हि राक्षसानां वधेन हि । मेरवस्य समानूनं नद्रष्टव्यस्त्वया कपे
हनुमानुवाच
नन्दिनाथं हरं पृच्छ पातकस्योपशान्तिदम् ।
पापोऽहं प्लवगो यस्मात्सञ्जातं कारणान्तरात् ॥ १६ ॥
नन्द्युवाच
रुद्रदेहोद्भवाः किं ते न श्रुता भूतले स्थिता । श्रवणाज्जन्मजनितं द्विगुणं कीर्तनाद्व्रजेत्
त्रिंशज्जन्मार्जितं पापं न श्येद्रेवावगाहनात् । तस्मात्त्वं नर्मदातीरं गत्वाचर तपो महत्

गन्धवाहसुतोऽप्येवंनन्दिनोक्तंनिशम्य च । प्रयातोनर्मदातीरमौर्व्यादक्षिणसङ्गमम्
दध्यौ सुदक्षिणे देवं विरूपाक्षंत्रिशूलिनम् । जटामुकुटसंयुक्तंव्यालयज्ञोपवीतिनम्
भस्मोपचितसर्वाङ्गं डमरुस्वरनादितम् । उमार्द्धाङ्गहरंशांतंगोनाथासनसंस्थितम्
वत्सरान्सुबहून्यावदुपासाञ्चक्र ईश्वरम् । तावत्तुष्टो महादेव आजगामसहोमया
उवाच मधुरां वाणीं मेघगम्भीरनिस्वनाम् ।
साधुसाध्वित्युवाचेशः कष्टं वत्स त्वया कृतम् ॥ २३ ॥
नचपूर्वंत्वयापापंकृतंरावणसङ्क्षये । स्वामिकार्यरतस्त्वंहिसिद्धोऽसिममदर्शनात्
हनुमांश्च हरं दृष्ट्वा उमार्द्धाङ्गहरं स्थितम् ।
साष्टाङ्गं प्रणयोऽवोचज्जय शम्भो! नमोऽस्तु ते ।
जयाऽन्धकविनाशाय जय गङ्गाशिरोधर !॥ २५ ॥
एवं स्तुतो महादेवो वरदो वाक्यमब्रवीत् । वरं प्रार्थय मे वत्स प्राणसम्भवसम्भव

श्रीहनूमानुवाच

ब्रह्मरक्षोवधाज्जाता मम हत्या महेश्वर । न पापोऽहंभवेदेव युष्मत्सम्भाषणेक्षणात्

ईश्वर उवाच

नर्मदातीर्थमाहात्म्याद्धर्मयोगप्रभावतः । मन्मूर्त्तिदर्शनात्पुत्र निष्पापोऽसिनसंशयः
अन्यच्च ते प्रयच्छामि वरं वानरपुङ्गव !। उपकारायलोकानां नामानितव मारुते
हनूमानञ्जनिसुतोवायुपुत्रोमहाबलः । रामेष्टःफाल्गुनोगोत्रःपिङ्गाक्षोऽमितविक्रमः
उदधिक्रमणश्रेष्ठो दशग्रीवस्य दर्पहा । लक्ष्मणप्राणदाता च सीताशोकनिवर्त्तनः
इत्युक्त्वाऽन्तर्दधेदेव! उमयासह शङ्करः । हनूमानीश्वरंतत्र स्थापयामासभक्तितः
आत्मयोगबलेनैव ब्रह्मचर्यप्रभावतः । ईश्वरस्य प्रसादेन लिङ्गं कामप्रदं हि तत् ॥
अच्छेद्यमप्रतर्क्यं च विनाशोत्पत्तिवर्जितम् ॥ ३३ ॥

श्रीमार्कण्डेय उवाच

हनूमन्तेश्वरे पुत्र! प्रत्यक्षप्रत्ययं शृणु । यद्वृत्तं द्वापरस्यादौ त्रेतान्ते पाण्डुनन्दन
सुपर्वा नाम भूपालो बभूव वसुधातले ।

तस्य राज्ञः सदा सौख्यं नरा दीर्घायुषः सदा ॥ ३५ ॥
स पुत्रधनसंयुक्तश्चारोपद्रववर्जितः । शतबाहुर्बभूवाऽस्य पुत्रो भीमपराक्रमः ॥
आसक्तोऽसौ सदा कालं पापधर्मैर्नरेश्वरः ।
अटाट्यत धरा सर्वा पर्वतांश्च वनानि च ॥ ३७ ॥
यथार्थं मृगयूथानामागतो विन्ध्यपर्वतम् ।
तरुजालसमाकीर्णे हस्तियूथसमाचिते ॥ ३८ ॥
सिंहचित्रकशोभाढ्ये मृगवाराहसङ्कुले । क्रीडित्वा सवने राजा नर्मदामागत क्वचित् ॥
हनूमन्तवने प्राप्तः शतक्रोशप्रमाणके । चिञ्चिणावनशोभाढ्ये कदम्बतरुसङ्कुले ॥
निम्बपालाशजम्बीरैः करञ्जखदिरैस्तथा ।
पाटलैर्बदरैर्युक्ते शमीतिन्दुकशोभितम् ॥ ४१ ॥
मृगयूथैः समाच्छन्नं शिखण्डिस्वरनादितम् ।
पारावतचकोराद्यैः समन्तात्स्वरशोभितम् ॥ ४२ ॥
शरत्कालेऽगमद्राजा वहुले चाऽश्विनस्य स ।
वनमध्ये गतोऽद्राक्षीद् भ्रमन्तं पिङ्गलद्विजम् ॥ ४३ ॥
पुस्तिकाकरसंस्थं च पप्रच्छ नृपो द्विजम् ॥ ४४ ॥

शतबाहुरुवाच

एकाकी त्वं वने कस्माद् भ्रमसे पुस्तिकाकर ।
इतस्ततोऽपि संपश्यन्कथयस्व द्विजोत्तम ॥ ४५ ॥

ब्राह्मण उवाच

कान्यकुब्जात्समायातः प्रेषितो राजकन्यया ।
अस्थिक्षेपाय वै राजन्हनूमन्तेश्वरे जले ॥ ४६ ॥

राजोवाच

अस्थिक्षेपो जले कस्माद्धनूमन्तेश्वरे द्विज ।
क्रियते केन कार्येण साश्चर्यं कथ्यतां मम ॥ ४७ ॥

सुपर्वणः सुतो यानं त्यक्त्वा भूमौ प्रणम्य च ।

कृत्वाञ्जलिपुटोभूत्वाब्राह्मणायनरेश्वर ! । समस्तं कथयामासवृत्तान्तंस्वं पुरातनम्

ब्राह्मण उवाच

शिखण्डीनाम राजाऽस्ति कान्यकुब्जे प्रतापवान् ।

अपुत्रोऽसौ महीपालः कन्या जाता मनोरथैः ॥ ४६ ॥

जातिस्मरा शुभाचैङ्गी नर्मदायाः प्रभावतः ।

पित्रा च सैकदा कन्या विवाहाय प्रजल्पिता ॥ ५० ॥

अनित्ये पुत्रि! संसारे कन्यादानं ददाम्यहम् ।

श्वः कृत्यमद्य कुर्वीत पूर्वाह्णे चाऽपराह्णिकम् ॥

न हि प्रतीक्षते मृत्युः कृतं चास्य न चाकृतम् । ॥ ५१ ॥

कन्योवाच

इच्छेयं यत्र काले हि तत्र देया त्वया पितुः ।

पुत्रीवाक्यादसौ राजा विस्मितो वाक्यमब्रवीत् ॥ ५२ ॥

शिखण्ड्युवाच

कथ्यतां मे महाभागे! साश्चर्यं भाषितं त्वया ।

पितुर्वाक्येन सा वाला उत्तमा ह्यागतान्तिकम् ॥ ५३ ॥

कथयामास यद्वृत्तं हनूमन्तेश्वरे नृप । कलापिनी ह्यहं तात युता भर्त्रावसं तदा

रेवौर्व्यासंगमान्तिस्था रेवायादक्षिणेतटे । हनूमन्तवनेपुण्येविक्रीडाहं यदृच्छया

भर्तृयुक्ता च संखुनारजन्यां सरलेनगे । आगतालुब्धकास्तत्र क्षुधार्त्तावनमुत्तमम्

भर्तृयोगयुता पापैर्दृष्टाऽहंवधचिन्तकैः । पाशबन्धंसमादाय बद्धाहं स्वमिनासह

ग्रीवां ते मोटयामासुः पिच्छाच्छोटनकं कृतम् ।

हुताशनमुखे तैस्तु सह कान्तेन लुब्धकैः ॥ ५४ ॥

परिभर्ज्यावयोर्मांसं भक्षयित्वा यथेप्सितः ।

सुप्ताः स्वस्थेन्द्रिया रात्रौ सा गता शर्वरी क्षयम् ॥ ५६ ॥

प्रभाते मासशेषश्च जम्बुकैर्भ्रं भ्रयातिमि ।
मच्छरीरोद्भवं चास्थि स्नायुमांसेन चावृतम् ॥ ६० ॥
गृहीत चार्तिनैकेन चाकाशात्पतित तदा ।
त मांसभक्षण दृष्ट्वा परे पक्षिण आगता ॥ ६१ ॥
दृष्ट्वा पक्षिसमूहं तु अस्थिखण्डं व्यसर्जयत् ।
विहगाना समस्ताना धावतां चैव पश्यताम् ॥ ६२ ॥
पतित नर्मदातोये हनूमन्तेश्वरे नृप । मदीयमस्थिखण्ड च पतित नर्मदाजले ॥६३
तस्यतीर्थस्यपुण्येनजाताऽहपुत्रिका तव । भूपकन्यात्वहजातापूर्णचन्द्रनिभानना
जातिस्मरानरेन्द्रस्यमजाताभवत कुले । तस्माद्विवाहं नेच्छामिममभर्तानृपोत्तम
विपने वर्ततेऽद्यापि शकुन्तमृगजातिषु ।
तस्यास्थिशेष राजेन्द्र तस्मिंस्तीर्थे भविष्यति ॥ ६६ ॥
तत्क्षेपणार्थं वै तात प्रेष्याऽद्य द्विजोत्तमम् । एतत्ते सर्वमाख्यात कारणनृपसत्तम
मद्वर्त्ता विपने स्थाने शकुन्तमृगजातिषु । यदि प्रेरयसे तात कश्चित्त्वं नर्मदातटे
तस्याहं कथयिष्यामि स्थानैश्चिह्नैश्चलक्षितम् ।
शिपपिण्डकाऽप्यहं तत्र ह्याहूतो ह्यवनीपते ॥ ६६ ॥
द्वास्याभिर्विंशतिग्रामान्गच्छत्वं नर्मदातटे । प्रेरणमेप्रतिज्ञातमल्पस्यापीडितैनतु
कन्योवाच
गच्छ त्वं नर्मदापुण्यांसर्वपापक्षयङ्करीम् । आग्नेय्यांसोमनाथस्यहनूमन्तेश्वरपर
अक्षयरोहेन रेवाया विस्तीर्णो वटपादप । करञ्ज कटह्वैव सन्निधाने वटान्य च
न्यग्रोधमूलमाश्रित्ये सूक्ष्माण्यस्थीनि द्रक्ष्यसि ।
समृद्य तानि संगृह्य गच्छ रेवां द्विजोत्तम ॥ [illegible] ॥
आश्विनस्याऽसित पक्षे त्रिपुरारेस्तु वै तिथौ ।
स्नाप्य त्रिशूलिनं भक्त्या रात्रौ त्वं कुरु जागरम् ॥ ७४ ॥
क्षिपे प्रभात तानि त्वं नाभिमात्रजलस्थित ।

इत्युच्चार्य द्विजश्रेष्ठ! विमुक्तिस्तस्य जायताम् ॥ ७५ ॥
क्षिप्त्वाऽस्थीनि पुनः स्नानं कर्तव्यं स्वघनाशनम् ।
एवं कृते तु राजेन्द्र! गतिस्तस्य भविष्यति ॥ ७६ ॥
कथितं कन्यया यच्च तत्सर्वं मुक्तिकारणम् ।
आगतोऽहं नृपश्रेष्ठ! तीर्थेऽत्र दुरितापहे ॥ ७७ ॥
सोऽभिज्ञानंततोदृष्ट्वानीत्वाऽस्थीनिनरेश्वरः! पूर्वोक्तेनविधानेनप्राक्षिपंनर्मदाम्भसि
पुष्पवृष्टिःपपाताऽऽशु साधुसाध्विति पाण्डव !।
विमानं च ततो दिव्यमागतं वर्हिणस्तदा ॥ ७९ ॥
दिव्यरूपधरो भूत्वा गतो नाके कलापवान् ।
एवं तु प्रत्ययं दृष्ट्वा हनूमन्तेश्वरे नृप ॥ ८० ॥
चकारानशनं विप्रः शतबाहुश्च भूपतिः । शोषयामासतुस्तौ स्वमीश्वराराधनेरतौ
ध्यायन्तौ तस्थतुर्देवं शतबाहुद्विजोत्तमौ । मासार्धेनमृतोराजा शतबाहुर्महामनाः
किङ्किणीजालशोभाढ्यं विमानं तत्रचागतम् । साधुसाधुनृपश्रेष्ठविमानारोहणंकुरु

शतबाहुरुवाच

नायामि स्वर्गमार्गात्र विप्रो यावन्न संस्थितः ।
उपदेशप्रदो मह्यं गुरुरूपी द्विजोत्तमः ॥ ८४ ॥

अप्सरस ऊचुः

लोभावृतो ह्ययं विप्रो लोभात्पापस्य संग्रहः ।
हनूमन्तेश्वरे राजन्! ये मृताः सत्त्वमास्थिताः ॥ ८५ ॥
ते यान्ति शाङ्करेलोके सर्वपापक्षयङ्करे । नैवपापक्षयश्चास्य ब्राह्मणस्य नरेश्वर !॥
गृहं च गृहिणीचित्तेब्राह्मणस्य प्रवर्त्तते । शतबाहुस्ततो विप्रमुवाच विनयान्वितः
त्यजमूलमनर्थस्यलोभमेनंद्विजोत्तम । इत्युक्त्वास्वयंयौराजास्वर्गंकन्यासमावृतः
दिनैः कैश्चिद्गतो विप्रः स्वर्गं वैतालिकैर्वृतः ।
वहौ च काशीराजस्य पुत्रस्तीर्थप्रभावतः ॥ ८९ ॥

आत्मानं कन्यया दत्तं पूर्वजन्म व्यचिन्तयन् ।
सा च तं प्रौढमालोक्य पितुराज्ञामवाप्य च ॥
स्वयम्वरे स्वभर्तारं लेभे साध्वी नृपात्मजम् ॥ ८० ॥

श्रीमार्कण्डेय उवाच

एतद्वृत्तान्तमभवत्तस्मिंस्तीर्थे नृपोत्तम । एतस्मात्कारणाभीष्टयताथमैतत्सदाद'
अष्टम्यां चतुर्दश्यां सर्वकालं नरेश्वर । विशेषाच्चादिनैमासि कृष्णपक्षेचतुर्दशी
स्नापयेदीश्वरं भक्त्या क्षीरक्षीरेण सर्पिषा ।
दध्ना च खण्डयुक्तेन कुशतोयेन वै पुनः ॥ ८३ ॥
श्रीखण्डेन सुगन्धेन गुण्ठयेच्च महेश्वरम् । ततः सुगन्धपुष्पैश्च बिल्वपत्रैश्च पूजये
मुचुकुन्दैश्च कुन्दैश्च जातीकाशकुशोद्भवैः । उन्मत्तमुनिपुष्पैश्च पुष्पैस्तत्कालसम्भ
अर्चयेत्परया भक्त्या हनूमन्तेश्वरं शिवम् । पुनः दापयेद्दीपं तैलेन तद्भावत
श्राद्धं च कारयेत्तत्र ब्राह्मणैर्वेदपारगैः । सर्वलक्षणसम्पूर्णैः कुलीनैर्गृहपालकै
तर्पयेद् ब्राह्मणान् भक्त्या वसनान्नहिरण्यतः ।
नरकस्था दिवं यान्तु प्रोच्येति प्रणमेद् द्विजान् ॥ ८८ ॥
पतितान्वर्जयेत् विप्रान्वृषली यस्य गेहिनी । स्ववृषश्चापि दिवस्थवृषैरन्यैर्नृ याथ
वृषलीं तां पितुर्गेहे न शूद्री वृषली भवेत् । ब्रह्महत्या सुरापानं गुरुदारनिषेवणं
सुवर्णहरणन्यासं मित्रद्रोहोद्भवं तथा । नश्यते पातकं सर्वमित्येवं शङ्करोऽब्रवीत्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

वाक्प्रलापेन भो वत्स बहुनोक्तेन किं मया । सर्वपातकसंयुक्तो दद्याद्दानं द्विजन्मं
गोदानञ्च प्रकर्त्तव्यमस्मिंस्तीर्थे विशेषतः ।
गोदानं हि यतः पार्थ सर्वदानाधिकं स्मृतम् ॥ १०२ ॥
मघदेवमया गावः सर्वदेवास्तदात्मका । शृङ्गाग्रेषु महीपाल शक्रो वसति नित्यश
उरः स्कन्दः शिरो ब्रह्मा ललाटे वृषभध्वजः । चन्द्रार्कौ लोचने देवी जिह्वायां च सरस्वती
मरुद्गणाः सदा साध्या यस्या दत्ता नरेश्वर ।

हुङ्कारे चतुरो वेदान्विद्यात्साङ्गपदक्रमान् ॥ १०५ ॥
ऋषयो रोमकूपेषु ह्यसङ्ख्यातास्तपस्विनः ।
दण्डहस्तो महाकायः कृष्णो महिषवाहनः ॥ १०६ ॥
यमः पृष्ठस्थितो नित्यं शुभाशुभपरीक्षकः ।
चत्वारः सागराः पुण्याः क्षीरधाराः स्तनेषु च ॥ १०७ ॥
विष्णुपादोद्भवा गङ्गा दर्शनात्पापनाशिनी ।
प्रस्रावे संस्थिता यस्मात्तस्माद्वन्द्या सदा बुधैः ॥ १०८ ॥
लक्ष्मीश्च गोमये नित्यं पवित्रा सर्वमङ्गला ।
गोमयालेपनं तस्मात्कर्त्तव्यं पाण्डुनन्दन ॥ १०९ ॥
गन्धर्वाप्सरसोनागाः खुराग्रेषु व्यवस्थिताः ।
पृथिव्यां सागरान्तायां यानि तीर्थानि भारत ॥
तानि सर्वाणि जानीयाद्गोर्गव्यं तेन पावनम् ॥ ११० ॥

युधिष्ठिर उवाच

सर्वदेवमयी धेनुर्गीर्वाणाद्यैरलङ्कृता । एतत्कथयमे तात कस्माद्गोषु समाश्रिताः

श्रीमार्कण्डेय उवाच

सर्वदेवमयो विष्णुर्गावो विष्णुशरीरजाः ।
देवास्तद्दुभयात्तस्मात्कल्पिताविविधा जनैः ॥ ११२ ॥
श्वेता वा कपिला वापि क्षीरिणी पाण्डुनन्दन ।
सवत्सा च सुशीला च सितवस्त्राऽवगुण्ठिता ॥ ११३ ॥
कांस्यदोहनिका देया स्वर्णशृङ्गी सुभूषिता ।
हनूमन्तेश्वरस्याऽग्रे भक्त्या विप्राय दापयेत् ॥ ११४ ॥

नियमस्थेनसा देयास्वर्गमानन्त्यमिच्छता । असमर्थाययेदद्युर्विष्णुलोकेप्रयान्तिते
असौलोकेच्युतोराजन्भूतले द्विजमन्दिरे । कुशलोजायतेपुत्रोगुणविद्याधनर्द्धिमान्
सर्वपापहरं तीर्थं हनूमन्तेश्वरंनृप ॥ शृण्वन्विमुच्यते पापाद्वर्णसङ्करसम्भवात् ॥

दूरस्थश्चिन्तयन्पश्यन्मुच्यते नाऽत्र संशयः ॥ ११८ ॥
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
रेवाखण्डे हनुमन्तेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम
त्र्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८३ ॥

चतुरशीतितमोऽध्यायः

कपितीर्थरामेश्वरलक्ष्मणेश्वरकुम्भेश्वरमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
कैलासे पृच्छते भक्त्या षण्मुखाय शिवोदितम् ॥ १ ॥

ईश्वर उवाच

पूर्वं त्रेतायुगे स्कन्द हतो रामेण रावणः । चतुर्दश तदा कोट्यो निहता ब्रह्मरक्षसाम्
हतेषु तेषु वै तत्र रक्षणाय दिवौकसाम् । महानन्दस्तदा जातस्त्रिषु लोकेषु पुत्रक
ततः सीतां समासाद्य समयानरपुङ्गवैः । रामोऽप्ययोध्यामायातो भरतेन कृतोत्सवः
तस्मै समर्पयामास स राज्यं लक्ष्मणाग्रज ॥ ४ ॥
तस्मिन्प्रशासति ततो राज्यं निहतकण्टकम् ।
कृतकार्योऽथ हनुमान्कैलासमगात्पुरा ॥ ५ ॥
ततो नन्दीप्रतीहारो रुद्धाश्रममपि तं कपिम् । नचसङ्गमयामास रुद्रेणाऽघौघहारिणा
तेन पृष्टस्तदा नन्दी किं मया पातकं कृतम् ।
येन रुद्रवपुः पुण्यं न पश्याम्यम्बिकान्वितम् ॥ ७ ॥

नन्द्युवाच

त्वयाऽवतरणं चक्रे [illegible] याऽपि हि कृतं पापमुपभोगेन शाम्यति

हनुमानुवाच

किं मयाऽकारि तत्पापं नन्दिन्देवार्थकारिणा ।
राक्षसाश्च हता दुष्टा विप्रयज्ञाङ्गघातिनः ॥ ९ ॥
ततस्तदालापकुतूहली हरो निजांशभाजं कपिमुग्रतेजसम् ।
उवाच द्वारान्तरदत्तदृष्टिः पुरः स्थितं प्रेक्ष्य कपीश्वरं पुनः ॥ १० ॥

ईश्वर उवाच

गङ्गा गया कपे! रेवा यमुना च सरस्वती । सर्वपापहरा नद्यस्तासु स्नानं समाचर
नर्मदादक्षिणे कूले तीर्थं परमशोभनम् । सोमनाथसमीपस्थं तत्र त्वं गच्छ वानर
तत्र स्नात्वा महापापं गमिष्यति ममाऽऽज्ञया ।
उत्पत्य वेगाद्धनुमाञ्छ्रीरेवादक्षिणे तटे ॥ १३ ॥
जगाम सुमहानादस्तपश्चक्रे सुदुष्करम् । तस्य वै तप्यमानस्य रक्षोवधकृतं तमः
विलीनं पार्थ कालेन कियतेशप्रसादतः । ततो देवैः समं देवस्तत्तीर्थमगमद्धरः ॥
कपिमालिङ्गयामास वरं तस्मैप्रदत्तवान् । अद्यप्रभृति ते तीर्थंभविष्यति न संशयः
कपितीर्थं ततो जातं तस्थौ तत्र स्वयं हरः । हनूमन्तेश्वरोनाम्नासर्वहत्याहरस्तदा
तत्र तीर्थे तु यः स्नात्वा भक्त्या लिङ्गं प्रपूजयेत् ।
सर्वपापानि नश्यन्ति हरस्य वचनं यथा ॥ १८ ॥
तत्राऽस्थीनि विलीयन्ते पिण्डदानेऽक्षया गतिः ।
यत्किञ्चिद्दीयते तत्र तद्धि कोटिगुणं भवेत् ॥ १९ ॥
हनुमानप्ययोध्यायां रामंद्रष्टुमथाऽगमत् । चकार कुशलप्रश्नंस्वस्वरूपंन्यवेदयत्

श्रीराम उवाच

कुर्वतोदेवकार्यं तेममकार्यंच्च कुर्वतः । ततोऽहमपिपापीयांस्तपस्तप्स्याम्यसंशयम्
तत्रैव दक्षिणे कूले रेवायाः पापहारिणि । चतुर्विंशतिवर्षाणि तपस्तेपेऽथराघवः
ज्योतिष्मतीपुरीसंस्थः श्रीरेवास्नानमाचरन् ।

स्थापयामासतुर्लिङ्गं तौ तदा रामलक्ष्मणौ । प्रभावात्सत्यतपसो रेवातीरे महामती
निष्पापनौ तदा वीरौ जग्मतू रामलक्ष्मणौ ॥ २४ ॥
ततस्तदा देवपुरोगमो हरो गतो हि वै पुण्यमुनीश्वरैः सह ।
आगत्य तीर्थं च वरं ददौ तदा निजां कलां तत्र विमुच्य तीर्थे ॥ २५ ॥
मुनिभिः सर्वतीर्थानां क्षिप्तं कुम्भोदकं भुवि ।
एकत्व लिङ्गनामाथ कलाकुम्भस्तथाऽभवत् ॥ २६ ॥
कुम्भेश्वर इति ख्यातस्तदा देवगणार्चितः ।
रामोऽपि पूजयामास तल्लिङ्गं देवसेवितम् ॥ २७ ॥
ततो वरं ददौ देवो रामकीर्त्यभिवृद्धये । चतुर्विंशतिमे वर्षे रामो निष्पापतां गतः
यदा कन्यागतः पङ्गुर्गुरुणा सहितो भवेत् । तद्देवदेवयात्रेयमिति देवा जगुर्मुदा ॥
यथा गोदावरीतीर्थे सर्वतीर्थफलं भवेत् । तथात्र रेवास्नानेन लिङ्गानां दर्शनेन च नाम्
करिष्यन्त्यत्र ये श्राद्धं पितॄणां नर्मदातटे । कुम्भेश्वरसमीपस्थास्तत्फलं शृणु पाण्डुव
यावन्तो रोमकूपाः स्युः शरीरे सर्वदेहिनाम् । तावद्वर्षप्रमाणेन पितॄणामक्षया गतिः
पृथिव्यां देवताः सर्वाः सर्वतीर्थानि यानि तु ।
लभन्ते तत्फलं सर्वा लिङ्गत्रयविलोकनात् ॥ ३३ ॥
अपुत्रो लभते पुत्रं निर्धनो धनमाप्नुयात् । सरोगो मुच्यते रोगाद्वाऽऽत्रकायाधिकारणात्
सिंहराशिगते जीवे यत्स्याद्गोदावरीफलम् ।
तद्द्वादशगुणं स्कन्द कुम्भेश्वरसमीपतः ॥ ३५ ॥
ये जानन्ति न पश्यन्ति कुम्भशम्भुमुमापतिम् ।
नर्मदादक्षिणे कूले तेषां जन्म निरर्थकम् ॥ ३६ ॥
यथा गोदावरीयात्राकृतं रामुनिशासनात् । चतुर्विंशतिमे वर्षे तथैव देवभाषितम्
यावच्चन्द्रश्च सूर्यश्च यावद्वै दिवि तारकाः । तावत्तदक्षयं दानं रेवाकुम्भेश्वरान्तिके
महादानानि देयानि तत्र लोकैर्विचक्षणैः । गोदानं प्रशंसन्ति सौवर्णं राजतं तथा
[illegible] मुच्यते पातकैस्तथा ।

स्नानेन किं पुनः स्कन्द ब्रह्महत्यां व्यपोहति ॥ ४० ॥

तत्र तीर्थेतुयःस्नात्वाश्राद्धं कुर्याद्युधिष्ठिर । एकोत्तरंकुलशतमुद्धरेच्छिवशासनात्

यानि कानि च तीर्थानि चासमुद्रसरांसि च ।

शिवलिङ्गार्चनस्येह कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥ ४२ ॥

एवं देवा वरं दत्त्वाहरीश्वरपुरोगमाः । स्वस्थानमगमन्पूर्वमुक्त्वातन्नामचोत्तमम्

तीर्थस्याऽस्य वरं दत्वा स रामो लक्ष्मणाग्रजः ।

अयोध्यां प्रविवेशाऽसौ निष्पापो नर्मदाजलात् ॥ ४४ ॥

सौवर्णीं च ततः कृत्वा सीतां यज्ञं चकार सः ।

अनुमन्त्र्य मुनींल्लोकान्देवताश्च निजं कुलम् ॥ ४५ ॥

पुरा त्रेतायुगे जातं तत्तीर्थं स्कन्दनामकम् ।

नियमेन ततो लोकैः कर्त्तव्यं लिङ्गदर्शनम् ॥ ४६ ॥

तावत्पापानि देहेषु महापातकजान्यपि । यावन्नप्रेक्षते जन्तुस्तत्तीर्थं देवसेवितम्

ते धन्यास्ते महात्मानस्तेषां जन्म सुजीवितम् ।

ज्योतिष्मतीपुरीसंस्थं ये द्रक्ष्यंति हरं परम् ॥ ४८ ॥

तस्मान्मोहं परित्यज्य जनैर्गन्तव्यमादरात् ।

तीर्थाऽशेषफलावाप्त्यै तीर्थं कुम्भेश्वराह्वयम् ॥ ४९ ॥

मार्कण्डेय उवाच

श्रुत्वेति शम्भुवचसा स षडाननोऽथ नत्वा पितुःपदयुगाम्बुजमादरेण ।

सम्प्राप्य दक्षिणतटं गिरिशात्मजल्याःकीशाग्र्यरामकलशाख्यशिवान् ददर्श

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायांपञ्चमेऽवन्तीखण्डे रेवाखण्डे कपितीर्थरामेश्वरलक्ष्मणेश्वरकुम्भेश्वरमाहात्म्यवर्णनंनाम चतुरशीतितमोऽध्यायः ॥ ८४ ॥

पञ्चाशीतितमोऽध्याय.

सोमनाथतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेत्तु राजेन्द्रनर्मदाया पुरातनम् । ब्रह्महत्याहरतीर्थंवाराणस्यासमहितन्

युधिष्ठिर उवाच

आश्चर्यं कथ्यता ब्रह्मन्यदद्भुतनमद्वातटे । वाराणस्या सम कस्मादेतत्कथयमे प्रभो
निमग्नो दु खससारे हृतराज्यो द्विजोत्तम ।
युष्मद्वाणीजलस्नातो निर्दुःख सह यान्धवैं ॥ ३ ॥

श्रीमार्कण्डेय उवाच

साधुसाधु महाबाहोसोमवशाविभूषण । पृष्टोऽस्मितुल भतीर्थं गुह्याद्गुह्यतरपरम्
आदौ पितामहस्तावत्समस्तजगत प्रभु ।
मनसा तस्य सञ्जाता दशैव ऋषिपुङ्गवाः ॥ ५ ॥
मरीचिमत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्य पुलह क्रतुम् । प्रचेतस वसिष्ठ च भृगु नारदमेव च
अष्टौ प्राचेतस दक्ष महातेजा प्रजापति ।
दक्षस्याऽपि तथा जाता पञ्चाशद् दुहिता स्त्रिय ॥ ७ ॥
ददौ स दश धर्माय कश्यपाय त्रयोदश । तथैव स महाभाग सप्तविंशतिमिन्दवे
रोहिणी नाम या तासामभीष्टा साऽभवद्विधो ।
दोषात्तु कर्मणा कृत्वा शप्तो दक्षेण चन्द्रमा ॥ ६ ॥
क्षयरोग्यभवच्चन्द्रो दक्षस्याथ प्रजापते । सच शापप्रभावेणनिस्तेजाश्चार्थरीपति
गत पितामह सोमो वेपमानोऽमृतांशुमान् ।
पद्मयोने नमस्तुभ्य वेदगर्भ नमोऽस्तु ते ॥
[illegible] ॥ ११ ॥

ब्रह्मोवाच

निस्तेजाः शर्वरीनाथ कलाहीनश्च दृश्यसे । उद्विग्नमानसस्तात सञ्जातश्केनहेतुना

सोम उवाच

दक्षशापेन मे ब्रह्मन्निस्तेजस्त्वंजगत्पते । निर्हारश्चाऽस्यशापस्यकथ्यतांमेपितामह

ब्रह्मोवाच

सर्वत्र सुलभा रेवा त्रिषु स्थानेषु दुर्लभा । ओङ्कारेऽथभृगुक्षेत्रेतथाचैवौर्विसङ्गमे
तत्र गच्छ क्षपानाथयत्र रेवान्तरं तटम् । त्वरितोऽसौ गतस्तत्रयत्ररेवौर्वसङ्गमः

काष्ठावस्थः स्थितः सोमो दध्यौ त्रिपुरवैरिणम् ।
यावद्वर्षशतं पूर्णं तावत्तुष्टोमहेश्वरः ॥ १६ ॥
प्रत्यक्षः सोमराजस्य वृषासन उमापतिः ।
साष्टाङ्गं प्रणिपत्योच्चैर्जय शम्भो! नमोऽस्तुते ॥ १७ ॥
जय शङ्कर! पापहराय! नमोजय ईश्वर ते जगदीश! नमः ।
जय वासुकिभूषणधार! नमो जय शूलकपालधराय नमः ॥ १८ ॥
जय अन्धकदेहविनाश! नमो जय दानववृन्दवधाय नमः ।
जय निष्कलरूप! सकलाय नमो जय काल कामदहाय नमः ॥ १६ ॥
जय मेचककण्ठधराय नमो जय सूक्ष्मनिरञ्जनशब्द! नमः ।
जय आदिरनादिरनन्त! नमो जय शङ्कर! किङ्करमीश भज ॥ २० ॥

एवं स्तुतोमहादेवःसोमराजेनपाण्डव । तुष्टस्तस्य नृपश्रेष्ठ! शिवयाशङ्करोऽब्रवीत्

ईश्वर उवाच

वरं प्रार्थय मे भद्र! यत्ते मनसि वर्त्तते । साधुसाधुमहासत्त्व तुष्टोऽहं तपसा तव

सोम उवाच

दक्षशापेन दग्धोऽहं क्षीणसत्वो महेश्वर । शापस्योपशमं देव कुरु शर्म मम प्रभो !॥

ईश्वर उवाच

तव भक्तिगृहीतोऽहमुमया सह तोषितः ।

[illegible] ॥ ३९ ॥
[illegible] ।
[illegible] ॥
[illegible] ॥ ४० ॥

युधिष्ठिर उवाच

[illegible]

मार्कण्डेय उवाच

[illegible]
[illegible]
[illegible] ॥ ४१ ॥
[illegible]

[illegible] ।
[illegible] ॥ ४२ ॥

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

[illegible] युधिष्ठिर ।
[illegible] ॥ ४३ ॥

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

[illegible] ॥ ४४ ॥

स्त्र्युवाच

सन्देशं श्रूयतां विप्र! यदि गच्छसि सङ्गमे ।
मद्भर्त्ता तिष्ठते तत्र शीघ्रमेव विसर्जय ॥ ४१ ॥
एकाकिनी च ते भार्या तिष्ठते वनमध्यगा । इत्याकर्ण्यगतोविप्र सङ्गमे सुरदुर्लभे
वृक्षच्छायान्वितः कण्वो ब्राह्मणेनाऽवलोकितः ।
उवाच तं प्रति तदा वचनं ब्राह्मणोत्तमः ॥ ४३ ॥

ब्राह्मण उवाच

वनान्तरे मया दृष्टा बाला कमललोचना । रक्ताम्बरधरा तन्वी रक्तचन्दनचर्चिता
रक्तमालया सुशोभाढ्या पाशहस्तामृगेक्षणा ।
वृक्षारूढाऽवदद्वाक्यं मद्भर्त्ताप्रेष्यतामिति ॥ ४५ ॥

कण्व उवाच

कस्मिन्स्थानेतु विप्रेन्द्रविद्यते मृगलोचना । कस्यसाकेनकार्येणत्वंमेनद्वदाशु मे

ब्राह्मण उवाच

सङ्गमादर्द्धकोशे सा उद्यानान्तेहिविद्यते । वचनाद्ब्राह्मणस्यैतानज्ञानापार्थिवेनतु
तदा स कण्वभूपालः स्वकं दूतं समादिशत् ।

कण्व उवाच

गच्छ त्वं पृच्छतां तां काऽऽगता क्व गमिष्यसि ।
प्रेषितस्त्वरितो दूतो गतो नारीसमीपतः ॥ ४८ ॥
वृक्षस्थां ददृशे बालामुवाच नृपसत्तम !।
मन्नाथः पृच्छति त्वां तु काऽसि त्वं क्व गमिष्यसि ॥ ४६ ॥

कन्योवाच

गुरुरात्मवतां शास्ता राजा शास्ता दुरात्मनाम् ।
इह प्रच्छन्नपापानां शास्ता वैवस्वतो यमः ॥ ५० ॥
ब्रह्महत्याचसञ्जाता मृगरूपधरद्विजात् । मयायुक्तोऽपितेराजामुक्तस्तीर्थप्रभावतः

अर्द्धक्रोशान्तरान्मध्ये ब्रह्महत्या न सन्विशेत् ।
सोमनाथप्रसादोऽयं वाराणस्याः समः स्मृतः ॥ ५२ ॥

गच्छन्त्य प्रच्युता राज्ञः शालग्रमत्र न मनाक् । ततोऽभूत्स्वस्तिनःश्रीमद्वेपमानःसुविह्वलः
समस्तकथयामासयद्वृत्तहि पुरातनम् । तस्यवाक्यादसौराजापतितोधरणीतले

सूत उवाच

कस्मात्त्वं शोचसे नाथ पूर्वोपात्तं शुभाशुभम् ।
इत्याकर्ण्य वचस्तस्य राजा वचनमब्रवीत् ॥ ५५ ॥
प्राणत्यागं करिष्यामि सोमनाथसमीपतः ।
शीघ्रमानीयतां वह्निरिन्धनानि बहूनि च ॥ ५६ ॥

आनीय तत्क्षणात्सर्वं भृत्यैस्तद्वचनात्तिभिः । स्नानंकृत्वाशुभेतोयेसङ्गमेपापनाशने
अर्चितं परया भक्त्या सोमनाथो महाप्रभुः ।
त्रिःप्रदक्षिणतः कृत्वा ज्वलन्तं जातवेदसम् ॥ ५८ ॥
प्रविष्टः पुण्यराजाऽसौ हृदि ध्यात्वा जनार्दनम् ।
पीताम्बरधरं देवं जटामुकुटधारिणम् ॥ ५९ ॥

श्रियायुतं सुपर्णस्थं शङ्खचक्रगदाधरम् । सुरारिसूदनं दृष्ट्वा सुगतिर्मे भवत्विति
पपात पुष्पवृष्टिस्तु साधुसाधु नृपात्मज ।
साश्चर्यमतुलं दृष्ट्वा निरीक्ष्य च परस्परम् ॥ ६१ ॥
मृतं तं पावके मूर्तं हृदि ध्यात्वा गदाधरम् ।
विमानस्थास्ततः सर्वे सञ्जाताः पाण्डुनन्दन ॥ ६२ ॥

निष्पापास्तदिवंयाता सोमनाथप्रसादतः । श्लाघ्येमङ्गमेनयध्यायमानेनृपध्वजम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

सोमनाथप्रसादोऽयङ्गुण्यैकमनाविधिम् । अष्टम्यां वा चतुर्दश्यामथवाप्यरनेदिने
चित्रायान्तु त्रयस्यचेत्सूर्यवारेऽपमन्तमी । उपोष्य वानरोभक्त्या यात्रांकुर्वीत नागरम्
पञ्चामृतेन गव्येन स्नापयेत्परमेश्वरम् । श्रीखण्डेन ततो गुग्गुलपुष्पधूपादिकं ददत्

नबोधयेद्दीपंनृत्यंगीतंच कारयेत्।सोमवारे तथाऽष्टम्यांप्रमातेपूजयेद्द्विजान्
जितक्रोधानात्मवतः परनिन्दाविवर्जितान्।
सर्वांश्चिराञ्च्छस्तान् स्वदारपरिपालकान्॥ ६८॥
यत्रीपाठमात्रांश्च विकर्मविरतान्सदा। पुनर्भूर्वृषली शूद्री घरेयुर्यस्य मन्दिरे॥
दूरतोऽसौ द्विजस्त्याज्य आत्मनः श्रेय इच्छता।
हीनाङ्गाऽनतिरिक्तांगान्येषां पूर्वापरं न हि॥ ७०॥
यज्ञे श्राद्धे तथा दाने दूरतस्तान्विवर्जयेत्।
आयसीतरुणीतुल्या द्विजाः स्वाध्यायवर्जिताः॥ ७१॥
आत्मानं सह याज्येन पातयन्ति न संशयः।
शाल्मलीनावतुल्याः स्युः षट्कर्मनिरता द्विजाः॥ ७२॥
तारंचतथाऽऽत्मानंतारयन्तितरन्ति च। श्राद्धंसोमेश्वरेपार्थ!यःकुर्याद्गतमत्सरः
प्रेतास्तस्य हि सुप्रीता यावदाभूतसम्प्लवम्।
अन्नं वस्त्रं हिरण्यं च यो दद्यादग्रजन्मने॥ ७४॥
स यातिशाङ्करेलोक इतिमेसत्यभाषितम्। हयंयोयच्छते तत्र सम्पूर्णंतरुणंसितम्
रक्तं वा पीतवर्णं वा सर्वलक्षणसंयुतम्। कुङ्कुमेन विलिप्ताङ्गावग्रजन्महयावपि॥
स्रग्दामभूषितौ कार्यौ सितवस्त्रावगुण्ठितौ।
अद्भिः प्रदीयतां स्कन्धे मदीये हयमारुह॥ ७७॥
आरूढे ब्राह्मणेब्रूयाद्भास्करःप्रीयतामिति। स यातिशाङ्करंलोकंसर्व्वपापविवर्जितः
उपरागे तु सोमस्य तीर्थं गत्वा जितेन्द्रियः।
सत्यलोकाच्च्युतश्चाऽपि राजा भवति धार्मिकः॥ ७९॥
तस्यवासःसदाराजन्न नश्यति कदाचन। दीर्घायुर्जायते पुत्रो भार्या च वशवर्तिनी
जीवेद्वर्षशतंसाग्रं सर्वदुःखविवर्जितः। सोपवासोजितक्रोधो धेनुं दद्याद्द्विजन्मने
सवत्सां क्षीरसंयुक्तां श्वेतवस्त्रावलोकिताम्।
शबलां पीतवर्णाञ्च धूम्रां वा नीलकर्बुराम्॥ ८२॥

कपिला चा सवत्सां च घण्टाभरणभूषिताम् ।
रूप्यखुरां कांस्यदोहां स्वर्णशृङ्गीं नरेश्वर ॥ ८३ ॥
श्वेतयाघ्रद्भतेयशोरत्नामोमाम्यचाद्दिनी । शथलापीतवर्णाभ दुःखघ्न्यीमसत्रकीर्तिने
कपिलानाशयेत्पाप सप्तजन्मसमुद्भवम् । सत्यलोकमवाप्नोति गोप्रदाता नरेश्वर ॥
पक्षान्तेऽयव्यतीपाते च पूर्णारविसङ्क्रमे । दिनक्षये गजच्छाया ग्रहणेभास्करस्य च
ये मजन्ति महात्मान मद्दमेसुरदुर्लभे । मृदावगुण्ठयित्वागानुघाटमामसङ्गमेविशेन
हृद्यान्तजले आप्यमाणायामोऽयचात्नृप । भायर्जावैष्णर्वाचैयमौरीशैवायद्दुच्छया
तेऽपि पापैः प्रमुच्यन्त इत्येवं शङ्करोऽब्रवीत् ॥ ८८ ॥
जगतीं सोमनाथस्य यस्तु कुर्यात्प्रदक्षिणाम् ।
प्रदक्षिणीकृता तेन ससद्वीपा वसुन्धरा ॥ ८९ ॥
ब्रह्महत्या सुरापानगुरुदारनिषेवणम् । भ्रूणहा स्वर्णहर्ता च मुच्यन्तेनाऽनन्यशय
तीर्थाख्यानमिदं पुण्यं यः शृणोति जितेन्द्रियः ।
व्याधितो मुच्यते रोगी चारोगी सुखमाप्नुयात् ॥ ९१ ॥
यत्ते सन्दर्शते येन शृणु तन्मे युधिष्ठिर ।
नैकोऽपि नृप लोकेऽस्मिन्भ्रूणहत्या सुदुस्त्यजा ॥ ९२ ॥
किन्तु षड्विंशति पार्थ प्राप या क्षणदाकर ।
सोऽपि तीर्थमिदं प्राप्य तपस्तप्त्वा सुदुश्चरम् ॥ ९३ ॥
विमुक्त सर्वपापेभ्य शीतरश्मिरभू मुनी । श्रूयतेनृपर्पौराणीगतयागीनामहर्विभि
र्विङ्ग प्रतिष्ठितःसोकदशाभ्रूणहन भवेत् । यत्नोर्मिङ्गत्रयंसोम स्थापयामासमारत
वैयोरिमङ्गमे हाय द्वितीयभृगुकच्छके । तत सिद्धि परा प्राप्यप्रभासे तृतीयकम्
इति ते कथितं सर्वं तीर्थमाहात्म्यमुत्तमम् ।
धर्म्यं यशस्यमायुष्यं स्वर्ग्यं सद्बुद्धिवर्धनम् ॥ [illegible] ॥
पुत्रार्थी लभते पुत्रान्निष्कामः स्वर्गमाप्नुयात् ।
मुच्यते सर्वपापेभ्यस्तीर्थं कृत्वा परं नृप ॥ ९८ ॥

एतत्ते सर्वमाख्यातं सोमनाथस्य यत्फलम्।
श्रुत्वा पुण्यमवाप्नोति स्नात्वा याऽर्णी नसंशयः ॥ ६६ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराणे एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे रेवाखण्डे सोमनाथतीर्थमाहात्म्यवर्णनंनाम पञ्चाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८५ ॥

षडशीतितमोऽध्यायः

पिङ्गलेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेन्महाराज पिङ्गलावर्त्तमुत्तमम्। सङ्गमस्य समीपस्थं रेवाया उत्तरेतटे
हव्यवाहेन राजेन्द्र! स्थापितः पिङ्गलेश्वरः ॥ १ ॥

युधिष्ठिर उवाच

हव्यवाहेन भगवन्नीश्वरःस्थापितःकथम्। एतदाख्याहि मेसर्वंप्रसादाद्वक्तुमर्हसि

मार्कण्डेय उवाच

शम्भुना ऽनसाराजंस्तर्पितोहव्यवाहनः। प्राप्तलोक्येनरौद्रेणगौर्याक्रीडनचेतसा
हव्यवाहमुखे क्षिप्तं रुद्रेणामिततेजसा। रुद्रस्य रेतसा दग्धस्तीर्थयात्राकृतादरः॥
सागरांश्च नदीर्गत्वाक्रमाद्रेवां समागतः। चचारपरयाभक्त्याध्यानमुग्रं हुताशनः
वायुभक्षः शतं साग्रं यावत्तेपे हुताशनः। तावत्तुष्टो महादेवो वरदो जातवेदसः॥
सन्निधौ समुपेत्याथ वचनं चेदमब्रवीत्॥ ६॥

ईश्वर उवाच

वरं वृणीष्व हव्याश! यत्ते मनसि वर्तते ॥ ७ ॥

वह्निरुवाच

नमस्ते सर्वलोकेश! उग्रमूर्ते नमोऽस्तु ते। रेतसा तव सन्दग्धःकण्ठीजातो महेश्वर

कृपा कुरु महादेव मम रोग विनाशय ॥ ८ ॥

ईश्वर उवाच

हव्यवाह भवारोगो मत्प्रसादाच्च मत्परम् ।
अवनीर्थे कृतस्नान स्वरूप प्रतिपत्स्यसे ॥ ९ ॥

इत्युक्त्वा च महादेवस्तत्रैवान्तरधीयत । अनन्तरहव्यवाह स्नात्वा रेवाजलेश्वरे
तदैवरोगनिर्मुक्तोऽभवद्दिव्यस्वरूपवान् । स्थापयामासदेवेशमग्निः पिङ्गलेश्वरम्
नाम्नालम्पूजयामासगुणवस्तुतिभिर्मुदा । ततोजगामदेवेश स्व देवानां हव्यवाहन
हव्यवाहेन भूपैव स्थापित पिङ्गलेश्वर । जितक्रोधो हि यस्तत्र उपवाससमाचरेत्

अतिरात्रफलं तस्य अन्ते रुद्रत्वमाप्नुयात् ।
गुणान्विताय विप्राय कपिलां तत्र भारत ॥ १४ ॥
अलङ्कृत्य नियतात्मा च शक्त्याऽलङ्कारभूषिताम् ।
य प्रयच्छति राजेन्द्र स गच्छेत्परमां गतिम् ॥ १५ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
रेवाखण्डे पिङ्गलेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णननाम षडशीतितमोऽध्याय ॥ ८६ ॥

सप्ताशीतितमोऽध्याय

ऋणत्रयमोचनतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेन्महीपाल तीर्थं परमशोभनम् । स्थापितमुनिमुख्यैश्च ब्रह्मवंशसमुद्भवै
ऋणमोचनमित्याख्यं रेवातटसमाश्रितम् । यत्रस्नानमनुष्ठाय कन्यानयनिस्तृदेवता

देवे पितृमनुष्येभ्य ऋणमात्मकृत च यत् ।
मुच्यते तत्क्षणान्मर्त्य स्नातो वै नर्मदाजले ॥ ३ ॥

त्यक्तं दुरितं तत्र दृश्यते फलकृपनः । तत्र तीर्थं तु यो राजन्नेकभक्तो जितेन्द्रियः
स्नात्वा दानं च वै दद्याद्वंशं द्विरिलायतिम् ।
ऋणत्रयविनिर्मुक्तो नात्र कार्या विचारणा ॥ ५ ॥
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे रेवाखण्डे
रेवाखण्डेऋणत्रयमोचनतीर्थमाहात्म्यवर्णनंनामसप्ताशीतितमोऽध्यायः ॥ ८७ ॥

अष्टाशीतितमोऽध्यायः

कपिलेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

तस्यैवानन्तरंपार्थ कापिलंतीर्थमाश्रयेत् । स्थापितं कपिलेनैवसर्वपातकनाशनम् ॥ १ ॥
अष्टम्यां च सिते पक्षे चतुर्दश्यां नरेश्वर ॥
स्नापयेत्परया भक्त्या कपिलाक्षीरसर्पिषा ॥ २ ॥
श्रीखण्डेन सुगन्धेन गुण्ठयेत्महेश्वरम् । ततःसुगन्धपुष्पैश्चधूपैश्चनृपसत्तम ॥ ३ ॥
येऽर्चयन्ति जितक्रोधा न ते यान्ति यमालयम् ।
असिपत्रवनं घोरं यमचुल्ली सुदारुणा ॥ ४ ॥
दृश्यते नैव विद्वद्भिः कपिलेश्वरपूजनात् ।
स्नात्वा रेवाजले पुण्ये भोजयेद्ब्राह्मणाञ्छुभान् ॥ ५ ॥
गोप्रदानेन वस्त्रेण तिलदानेन भारत । छत्रशय्या प्रदानेन राजा भवति धार्मिकः ॥ ६ ॥
तीव्रतेजाविशोकश्चजीवत्पुत्रःप्रियम्वदः । शत्रुवर्गोनतस्यस्यात्कदाचित्पाण्डुनन्दन ॥ ७ ॥
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
रेवाखण्डे कपिलेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनंनामाऽष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८८ ॥

एकोननवतितमोऽध्यायः

पूतिकेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र पूतिकेश्वरमुत्तमम् । नर्मदादक्षिणेकूले सर्वपापक्षयङ्करम्
स्थापितं जाम्बवन्तेन लोकानां तु हितार्थिना ।
राजा प्रसेनजिन्नाम तस्या वक्षस्थलान्मणी ॥ २ ॥
समुत्क्षिप्ते तु तेनैव सपूतिरभवद्व्रण । तत्र तीर्थं तपस्तस्या निर्व्रण समजायत
तेन तत्स्थापितं लिङ्गं पूतिकेश्वरमुत्तमम् । यस्तत्रमनुजोभक्त्यास्नायाद्गतमत्सरः
सर्वान्कामानवाप्नोति सम्पूज्य परमेश्वरम् ।
कृष्णाष्टम्यां चतुर्दश्यां सर्वकाल नराधिप ॥
येऽर्चयन्ति सदा देव ते न यान्ति यमालयम् ॥ ५ ॥
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
रेवाखण्डे पूतिकेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नामैकोननवतितमोऽध्यायः ॥८९॥

नवतितमोऽध्यायः

जलशायितीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

रेवायाउत्तरेकूलेवैष्णवं तीर्थमुत्तमम् । जलशायीति वै नाम विख्यातं वसुधातले
दानवानां वधं कृत्वा सुप्तस्तत्र जनार्दनः । चक्रं प्रक्षालितंतत्र देवदेवेन चक्रिणा
सुदर्शनं च निष्पापं रेवाजलसमाश्रयात् ॥ २ ॥

युधिष्ठिर उवाच

चक्रतीर्थं समाचक्ष्व मुनिसङ्घैश्च वन्दितम् ।
विष्णोः प्रभावमतुलं रेवायाश्चैव यत्फलम् ॥ ३ ॥

श्रीमार्कण्डेय उवाच

साधुसाधु महाप्राज्ञ! विरक्तस्त्वं युधिष्ठिर !।
गुह्याद्गुह्यतरं तीर्थं निर्मितं चक्रिणा स्वयम् ॥ ४ ॥
तत्तेहं सम्प्रवक्ष्यामि कथां पापप्रणाशिनीम् ।
आसीत्पुरा महादैत्यस्तालमेघ इति श्रुतः ॥ ५ ॥

तेनदेवा जिताःसर्वेहृतराज्यानराधिप । यज्ञभागान्स्वयंभुङ्क्तेअहंविष्णुर्नसंशयः
धनदस्य हृतं वित्तं हृतः शक्रस्य वारणः । इन्द्राणीं वाञ्छतेपापो ह्यरत्नंरवेरपि
तालमेवभयात्पार्थरविरुद्राःसवासवाः । यमःस्कन्दोजलेशोऽग्निर्वायुर्देवोधनेश्वरः
सवाक्पतिमहेशाश्चनष्टचित्ताःपितामहम् । गतादेवाब्रह्मलोकं तत्र दृष्ट्वापितामहम्
तुष्टुवुर्विविधैः स्तोत्रैर्वागीशप्रमुखाः सुराः । गुणत्रयविभागाय पश्चाद्भेदमुपेयुषे
दृष्ट्वा देवान्निरुत्साहान्विवर्णानवनीपते । प्रसादाभिमुखोदेवः प्रत्युवाचदिवौकसः

ब्रह्मोवाच

स्वागतं सुरसङ्घस्यकान्तिर्नष्टापुरातनी । हिमक्लिष्टप्रभावेणज्योतींषीवमुखानिवः
प्रशमादर्चिषामेतदनुद्गीर्णं सुरायुधम् ।
वृत्रस्य हन्तुः कुलिशं कुण्ठितश्रीव लक्ष्यते ॥ १३ ॥
किं चायमरिदुर्वारः पाणौ पाशः प्रचेतसः ।
मन्त्रेण हतवीर्यस्य फणिनो दैन्यमाश्रितः ॥ १४ ॥

कुबेरस्य मनः शल्यं शंसतीव पराभवम् । अपविद्धगतो वायुर्भग्नशाख इवद्रुमः ॥
यमोऽपि विलिखन्भूमिं दण्डेनास्तमितत्विषा ।
कुरुतेऽस्मिन्नमोघोऽपि निर्वाणालातलाघवम् ॥ १६ ॥
अमी च कथमादित्याः प्रतापक्षतिशीतलाः ।

चिरन्यस्ता इव गता प्रभामालोकनीयताम् ॥ १७ ॥
तदद्भुत यस्मा किमिति प्रार्थयध्वं समागता ।
किमागमनकृत्यं वो ब्रूत निःसंशयं सुरा ॥ १८ ॥
मयि दृष्टिर्हि लोकानां रक्षा युष्मास्वयस्थिता ।
ततो मन्दानिलोद्धूतकमलाकरशोभिना ॥ १९ ॥
गुरुः नेत्रसहस्रेण प्रेरयामास वृत्रहा । स द्विजेन्द्र हरध्वंसु सहस्रनयनाधिकम् ॥
वाचस्पतिरुवाचेदं प्राञ्जलिर्जलशायिनम् ।
युष्मदंशोद्भवस्तात तारकेयो महाबल ॥ २१ ॥
उपतापयते देवान्धूमकेतुरिवोच्छ्रित । तेन देवगणाः सर्वे दुःखिता दानवेन च ॥२२
तारकेयो दैत्यपतिः सर्वान्नो बाधते यतः ।
तस्मात्त्वां शरणं प्राप्ता शरणं नो विधे भव ॥ २३ ॥
ततः प्रसन्नो भगवान्नैवास्नानर्थादश ॥ २४ ॥

ब्रह्मोवाच

तारकेयेण या सृष्टे यन्नी मैन सम सुरा । विनाशमाधवदेवेतस्माद्योमे मैयद्वामय
ततः सुरगणाः सर्वे विरञ्चिप्रमुखा नृप । क्षीरोदप्रस्थिता सर्वे दुःखितास्तमवैरिणः
त्वरिता प्रस्थिता द्रुतं वैशान दृष्टुकाम्यया ।
क्षीरोदं सागरं गत्वाऽस्तुवस्ते जलशायिनम् ॥ २७ ॥

देवा ऊचुः

जगदादिरनादिस्त्वं जगदन्तोऽप्यनन्तकः ।
जगन्मूर्तिरमूर्तिस्त्वं जय गीर्वाणपूजित ॥ २८ ॥
जय क्षीरोदशयन जय लक्ष्म्या सदावृत । जय दानवनाशाय जय देवकिनन्दन
जय शङ्खगदापाणे जय चक्रधरप्रभो । इति देवस्तुतिं श्रुत्वा प्रबुद्धो जलशाय्यथ
उवाच मधुरां वाणीं मेघगम्भीरनिस्वनाम् ।
किमर्थं बोधितो ब्रह्मन्समर्थैर्यैः सुरासुरैः ॥ ३१ ॥

ब्रह्मोवाच

तालमेघभयात्कृष्ण! सम्प्राप्ता तव मन्दिरम् ।
न वध्यः कस्यचित्पापतालमेघो जनार्दन !॥ ३२ ॥
त्वमेव जहि तं दुष्टं मृत्युं यास्यति नान्यथा ॥ ३३ ॥

श्रीकृष्ण उवाच

स्वस्थानं गम्यतां देवाः स्वकीयां लभत प्रजाम् ।
दुष्टात्मानं हनिष्यामि तालमेघं महाबलम् ॥ ३४ ॥
स्थानं ब्रुवन्तु मे देवा! वसेद्यत्र स दानवः ॥ ३५ ॥

देवा ऊचुः

हिमाचलगुहायां सवसते दानवेश्वरः । चतुर्विंशतिसाहस्रैः कन्याभिःपरिवारितः
तुरङ्गैः स्यन्दनैः कृष्ण! सङ्ख्या तस्य न विद्यते ।
नटा नानाविधास्तत्र असङ्ख्यातगुणा हरे !॥ ३७ ॥
द्विरदाः पर्वताकारा हयाश्च द्विरदोपमाः । महाबलो वसेत्तत्र गीर्वाणभयदायकः
श्रुत्वादेवोवचस्तेषांदेवानामातुरात्मनाम् । अचिन्तयद्गरुत्मन्तंशत्रुसङ्घविनाशनम्
चक्रं करेण संगृह्य गदाचक्रधरः प्रभुः । शार्ङ्गं च मुशलं सीरं करैर्गृह्य जनार्दनः ॥
आरूढः पक्षिराजेन्द्रं वधार्थं दानवस्य च । दानवस्य पुरेपेतुरुत्पाता घोररूपिणः
गोमायुर्गृध्रमध्ये तु कपोतैः सममाविशत् । विनापातेनतस्यैव ध्वजदण्डःपपातह
सर्पमूषकयोर्युद्धं तथा केसरिनागयोः । उन्मार्गाःसरितस्तत्रावहन्रक्तविमिश्रिताः
अकालतरुपुष्पाणि दृश्यन्ते स्म समन्ततः ॥ ४३ ॥
ततः प्राप्तोजगन्नाथो हिमवन्तंनगेश्वरम् । पाञ्चजन्यश्च सहसा पूरितः पुरसन्निधौ
तेन शब्देन महता ह्यारूढो दानवेश्वरः ।
उवाच च तदा वाक्यं तालमेघो महाबलः ॥ ४५ ॥

तालमेघ उवाच

कोऽयं मृत्युवशं प्राप्तो ह्यज्ञात्वा मम विक्रमम्

धुन्धुमाराज्ञया ह्याशु स्वसैन्यपरिवारित ॥ ४८ ॥
बलादानय त बद्ध्वा मसाग्रे बाहुशालिनम् ॥ ४७ ॥

धुन्धुमार उवाच

आनयामि न सदेह सुरोयक्षोऽयकिंकर । स्वस्यन्दने समायुक्तैगजवाजिभटै सह
हृष्टस्ततो जगयोनि सुपर्णस्थो महाबल । शृयतागृह्यतामेवंत्युक्तास्तेनकिंकरा
चतुर्दिशु प्रधावन्त इतश्चेतश्च सर्वत । सुपर्णेनाऽग्निरूपेण दग्धास्ते शलभा यथा
धुन्धुमारोऽपिकृष्णेनशरघातेन ताडित । हतोवक्षस्थले पापोमृतायस्योरथोपरि
हाहाकार तत सर्वे दानवाश्चक्रुरातुरा । तालमेघस्तत क्रुद्धोरथारूढो विनिर्गत
ददर्श केशव पार्थ शङ्खचक्रगदाधरम् ॥ ५२ ॥

तालमेघ उवाच

धन्यै ते दानवा कृष्ण ये हता समरे त्वया ।
हिरण्यकशिपुप्रख्या न पुमासो हि तेऽच्युत ॥ ५३ ॥
इत्युक्त्वा दानव पार्थ ! वर्षयामास सायकै ।
दानवस्य शरान्मुक्तारछेदयामास केशव ॥ ६४ ॥
गरमानवधीत्सैन्यमवध्य यत्सुरासुरै ।
कृष्णेन द्विगुणास्तस्य प्रेषिता स्वशिलीमुखा ॥ ५ ॥
द्विगुण द्विगुणीकृत्य प्रेषयामास दानव ।
तानप्यष्टगुणै कृष्णश्छादयामास सायकै ॥ ५६ ॥
तत क्रुद्धेन दैत्येन ह्याग्नेय बाणमुत्तमम् ॥ ५७ ॥

वारुण प्रेषयामास ह्याग्नेय शमित तत । वारुणेनैववायव्य तालमेघो व्यमर्जय्
सार्पं चैवहृषीकेशोवायव्यस्यप्रशान्तये । नारसिंह नृसिंहोऽपिप्रेषयामासपाण्डव
नारसिंह ततो दृष्ट्वातालमेघोमहायश । उत्तीर्य स्यन्दनाच्छीघ्रगृहीत्वाथखड्गचर्मणी
कृष्ण त्वा प्रेषयिष्यामि यममार्गं सुदारुणम् ।
इत्युक्त्वा दानव पार्थ आगत केशवं प्रति ॥ ६१ ॥

खड्गेनाताडयद्दैत्यो गदापाणिंजनार्द्दनम् । मण्डलाग्रं ततो गृह्य केशवोहृष्टमानसः
जघनोरःस्थले पार्थ तालमेघं महाहवे । जनार्द्दनस्तदा दैत्यंदैत्यो हरिमहन्मृधे ॥
जनार्द्दनस्ततः क्रुद्धस्तालमेघाय भारत !। अमोघं चक्रमादाय मुक्तं तस्यच मूर्द्धनि
निपपातशिरस्तस्यपर्वताश्चचकम्पिरे । समुद्राःक्षुभिताःपार्थनद्यउन्मार्गगामिनीः
पुष्पवृष्टिं ततो देवा मुमुचुः केशवोपरि । अवध्यः सुरसङ्घानां सूदितः केशवत्वया

स्वस्थाश्चैव ततो देवास्तालमेघे निपातिते ।
जनार्द्दनोऽपि कौन्तेय! नर्मदातटमाश्रितः ॥ ६७ ॥

क्षीरोदां नर्मदांमत्वाअनन्तभुजगोपरि । लक्ष्म्यासमन्वितःकृष्णोनिलीनश्चोत्तरेतटे

चक्रं विभीषणं मर्त्ये ज्वालामालासमन्वितम् ।
पतितं नर्मदातोये जलशायिसमीपतः ॥ ६६ ॥

निर्द्धूतकल्मषं जातं नर्मदातोययोगतः । तालमेघवधोत्पन्नं यत्पापं नृपनन्दन !॥
तत्सर्वंक्षालितं सद्योनर्मदाम्भसि भारत !। तदाप्रभृतिलोकेऽस्मिञ्जलशायीमहीपते
चक्रतीर्थं वदन्त्यन्येकेचित्कालाघनाशनम् । विख्यातं भारते वर्षेनर्मदायां महीपते

तत्तीर्थस्य प्रभावोऽयं श्रूयतामवनीपते !।
यथाऽनन्तो हि नागानां देवानां च जनार्द्दनः ॥ ७३ ॥
मासानां मार्गशीर्षोऽस्ति नदीनां नर्मदा यथा ।
मासि मार्गशिरे पार्थ! ह्येकादश्यां सितेऽहनि ॥ ७४ ॥
गत्वा यो मनुजो भक्त्या कामक्रोधविवर्जितः ।
वैष्णवीं भावनां कृत्वा जलेशं तु व्रजेत वै ॥ ७५ ॥

एकभुक्तं च नक्तं चतथैवाऽयाचितं नृप । उपवासं तथा दानंब्राह्मणानांचभोजनम्
करोति च कुरुश्रेष्ठ! नसयातियमालयम् । यमलोकभयाद्भीतायेलोकाःपाण्डुनन्दन
तेपश्यन्तुश्रियःकान्तंनागपर्यंकशायिनम् । गोपीजनसमावृत्तंयोगनिद्रांसमाश्रितम्

विश्वरूपं जगन्नाथं संसारभयनाशनम् ॥ ७८ ॥

स्नापयेत्परया भक्त्याक्षौद्रक्षीरेण सर्पिषा । खण्डेनतोयमिश्रेणजगद्योनिंजनार्द्दनम्

स्नाप्यमान च पश्यन्ति ये लोका गतमत्सरा ।
ते यान्ति परम लोक सुरासुरनमस्कृतम् ॥ ८० ॥

घृतेन बोधयेद्दीपमथवा तैलपूरितम् । रात्रौ जागरण कृत्वा देवस्याग्रे विमत्सरा

ये कथा वैष्णवीं भक्त्या शृण्वन्ति च तपोत्तम ।
ब्रह्महत्यादिपापानि नश्यन्ते नाऽत्र संशय ॥ ८२ ॥
प्रदक्षिणन्ति ये भक्त्या जलशायिजगद्गुरुम् ।
प्रदक्षिणीकृता तैस्तु सप्तद्वीपा वसुन्धरा ॥ ८३ ॥

तत प्रभाते विमले पितृन्सन्तर्पयेज्जले । श्राद्धं च ब्राह्मणैस्तत्र योग्यैः पाण्डवमानद

स्वदारनिरतै शान्तै परदारविवर्जकै । वेदाभ्यसनशीलैश्च स्वकर्मनिरतै शुभै
नित्य यजनशीलैश्च विमत्स्यापरिवारकै ।
श्रद्धया कारयेच्छ्राद्ध यदीच्छेच्छ्रेय आत्मन ॥ [illegible] ॥
ते धन्या मानवे लोके धन्या हि भुवि मानवा ।
ये वसन्ति सदाकाल पादपद्माश्रया हरे ॥ ८७ ॥
जलशाय प्रपश्यन्ति प्रत्यक्ष सुरनायकम् ।
पक्षोपवास पाराक व्रत चान्द्रायण शुभम् ॥ ८८ ॥

मासोपवासमुग्र च षष्ठान्नपक्षमव्रतम् । तत्तत्सर्वतुल्य स्यात्सोऽक्षयागतिमाप्नुयात्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

अत पर प्रवक्ष्यामि तिलधेनोश्च यत्फलम् ।
यथा यस्मिन्यत्र दया दाने तस्या शुभ फलम् ॥ ९० ॥

एतत्कथान्तरपुण्यमपेद्वैपायनात्पुरा । श्रुत हि नैमिषे पुण्ये नारदाद्यैरनेकधा ॥

इद परममायुष्यमङ्गल्यकीर्तिवर्द्धनम् । विप्राणाश्रावयन्विद्वान्स दानन्त्यसमश्नुते

बहुभ्यो नप्रदेयानि गौर्गृह शयनस्त्रिय । विभक्तदक्षिणा ह्येता दातारस्तारयन्ति च

एकमेव प्रदातव्य न बहूना युधिष्ठिर । सा च विक्रयसापधा दहत्यासप्तम कुलम्

तिला श्वेतास्तिला कृष्णास्तिला गोमूत्रसन्निभा ।

तिलानां तु विचित्राणां धेनुं वत्सं च कारयेत् ॥ ९५ ॥
यथालाभा तु सर्वेषां चतुर्द्रोणा तु गौः स्मृता ।
द्रोणस्य वत्सकः कार्यो बहुना वाऽपि कामतः ॥ ९६ ॥
यस्मिन्देशे तु यन्मानं विषये वा विचारितम् ।
तेन मानेन तां कुर्वन्नक्षयं फलमश्नुते ॥ ९७ ॥
सुखपूर्वं शुचौ भूमौ पुष्पधूपाक्षतैस्तथा । कर्णाभ्यांरत्नेदातव्ये दीपौनेत्रद्वये तथा
श्रीखण्डसुरभिस्थाप्यंताभ्यां चैवतुकाञ्चनम् । उद्ध्र्वमधुनतंदेयंकुर्यात्सर्परोमकम्
कम्बलेकम्बलंदद्याच्छ्रोण्यां मधुघृनंतथा । यवसं पायसंदद्याद्घृतं क्षौद्रसमन्वितम्
स्वर्णशृङ्गीरूप्यशिफारुक्मलांगूलसंयुता । रत्नपृष्ठातुदातव्याकांस्यपात्रावदोहिनी
यत्स्याद्बाल्यकृतं पापं यद्वा कृतमजानता ।
वाचा कृतं कर्मकृतं मनसा यद्विचिन्तितम् ॥ १०२ ॥
जले निष्ठीवितं चैव मुशले वापि लङ्घितम् ।
वृषलीगमनञ्चैव गुरुदारनिषेवणम् ॥ १०३ ॥
कन्याया गमनञ्चैव सुवर्णस्तेयमेव च । सुरापानं तथा चान्यत्तिलधेनुःपुनातिहि
अहोरात्रोपवासेनविधिवत्तां विसर्जयेत् । या सा यमपुरेघोरे नदीवैतरणीस्मृता
वालुकाऽयोऽश्मस्थला च पच्यतेयत्रदुष्कृती । अवीचिर्नरकोयत्रयत्रयामलपर्वतौ
यत्र लोहमुखाःकाका यत्र श्वानो भयङ्कराः । असिपत्रवनञ्चैवयत्रसाकूटशाल्मली
तान्सुखेन व्यतिक्रम्य धर्मराजालयं व्रजेत् । धर्मराजस्तु तं दृष्ट्वा सूनृतं वक्तिभारत
विमानमुत्तमं योग्यं मणिरत्नविभूषितम् । अत्रारुह्य नरश्रेष्ठ! प्रयाहि परमां गतिम्
मा च चाटु भटे देहि नैव देहि पुरोहिते ।
मा च काणे विरूपे च न्यूनाङ्गे न च देवले ॥ ११० ॥
अवेदविदुषे नैव ब्राह्मणे सर्वविक्रये । मित्रघ्ने च कृतघ्ने च मन्त्रहीने तथैव च ॥
वेदान्तगाय दातव्या श्रोत्रियाय कुटुम्बिने । वेदान्तगसुते देयाश्रोत्रिये गृहपालके
सर्वाङ्गरुचिरे विप्रे सद्वृत्ते च प्रियम्वदे ।

पूर्णिमायां तु माघस्य कार्त्तिक्यामथ भारत ॥ ११३ ॥
वैशाख्यां मार्गशीर्ष्यां चाऽऽषाढ्यां चैत्र्यामथाऽपि वा ।
अयने विषुवे चैव व्यतीपाते च संक्रमे ॥ ११४ ॥
षडशीतिमुखे पुण्ये छायायां कुञ्जरस्य वा ।
एष ते कथितः कल्पस्तिलधेनोर्मयाऽनघ ॥ ११० ॥
प्रयान्ति वैष्णवं लोकं दत्त्वा पादं यमोपरि ।
प्राणत्यागात्परं लोकं वैष्णवं नात्र संशयः ॥
भित्त्वाऽथ भास्करं यान्ति नाऽत्र कार्या विचारणा ॥ ११६ ॥
एतत्ते सर्वमाख्यातं चक्रतीर्थफलं नृप ।
यच्छ्रुत्वा मानवो भक्त्या सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ११७ ॥

इति श्रीस्कान्दमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
रेवाखण्डे जलशाय्यादितीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम
नवतितमोऽध्यायः ॥ ९० ॥

एकनवतितमोऽध्यायः

चण्डादित्यतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेन्महीपाल तीर्थं परमपावनम् ।
चण्डादित्यं नृपश्रेष्ठ स्थापितं चण्डमुण्डयोः ॥ १ ॥
आस्तां पुरा महादैत्यौ चण्डमुण्डौ सुदारुणौ ।
नर्मदातीरमाश्रित्य चेरतुर्विपुलं तपः ॥ २ ॥
ध्यायन्तौ भास्करं देवं तमोनाशं जगत्त्रये । तुष्टस्तत्तपसा देवः सहस्रांशुरुवाच ह

 

साधुसाध्विति तौ पार्थ नर्मदायाः शुभे तटे । वरं प्रार्थयतौ वीरौ यथेष्टं चेतसेप्सितम्
चण्डमुण्डावूचतुः
अजेयौ सर्वदेवानां भूयास्वावां समाहितौ । सर्वरोगैः परित्यक्तौ सर्वकालं दिवाकर
एवमस्त्विति तौ प्राह भास्करो वारितस्करः ।
इत्युक्त्वान्तर्दधे भानुर्दैत्याभ्यां तत्र भास्करः ॥ ६ ॥
स्थापितः परया भक्त्या तं गच्छेदात्मसिद्धये ।
गीर्वाणांश्च मनुष्यांश्च पितॄंस्तत्राऽपि तर्पयेत् ॥ ७ ॥
स वसेद्भास्करे लोके विरञ्चिदिवसं नृप । घृतेन बोधयेद्दीपं षष्ठ्यां स च नरेश्वर
मुच्यते सर्वपापैस्तु प्रतियाति पुरं रवेः ॥ ८ ॥
उत्पत्तिं चण्डभानोर्यः शृणोति भरतर्षभ । विजयी स सदा नूनमाधिव्याधिविवर्जितः
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे रेवाखण्डे चण्डादित्यतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नामैकनवतितमोऽध्यायः ॥९१॥

द्विनवतितमोऽध्यायः

यमहास्यतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच
ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र यमहास्यमनुत्तमम् । सर्वपापहरं तीर्थं नर्मदातटमाश्रितम् ॥
युधिष्ठिर उवाच
यमहास्यं कथं जातं पृथिव्यां द्विजपुङ्गव ॥ एतत्सर्वं समाख्याहि परं कौतूहलं हि मे
श्रीमार्कण्डेय उवाच
साधुसाधु महाप्राज्ञ पृष्टोऽहं नृपनन्दन । स्नानार्थं नर्मदां पुण्यामागतस्ते पिता पुरा
रजकेन यथा धौतं वस्त्रं भवति निर्मलम् । तथाऽसौ निर्मलो जातो धर्मराजो युधिष्ठिर

स पश्यन्निर्मलं देहं हसन्नोवाच विस्मितः ॥ ५ ॥

यम उवाच

मत्पुरकथमायान्तिमनुजा पापकृ हिता । स्नानेनैकेनरेवाया प्राप्यनेवैष्णवम्पदम्
समर्था ये न पश्यन्ति रेवा पुण्यजलां शुभाम् ।
यान्त्यन्धेस्ते समा ज्ञेया मृते पशुभिरेव वा ॥ ७ ॥
समर्था ये न पश्यन्ति रेवां पुण्यजलां नदीम् ।
एतस्मात्कारणाद्राजन्हसितो लोकशासन ॥ ८ ॥
स्थापयित्वायमस्तत्रदेवस्वर्गंजगाम ह । यमहासेश्वरे राजञ्जितक्रोधोजितेन्द्रिय
विशेषाश्चाऽऽश्विनेमासि कृष्णपक्षे चतुर्दशीम् ।
उपोष्य परया भक्त्या सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ १० ॥
रात्रौ जागरणंकुर्याद्दीपं देवस्य बोधयेत् । मुनेनचैवराजेन्द्र शृणुतत्राऽस्तियत्फलम्
मुच्यते पातकैः सर्वैरगम्यागमनोद्भवैः । अभक्ष्यभक्षणोद्भूतैरपेयापेयजैरपि ॥ १२॥
अवाद्यवाहितैर्यत्स्यादद्दोह्यदोहनैर्यथा । स्नानमात्रेणतत्सर्वंयातिपापान्यनेकधा
यमलोकं न वीक्षेत मनुजः स कदाचन । पितृणां परमं गुह्यमिदं भूमौ नरेश्वर ॥
दद्तामक्षयं सर्वं यमहास्ये न संशय । अमावास्याञ्जितक्रोधोयस्तुपूजयतेद्विजान्
हिरण्यभूमिदानेन तिलदानेन भूयसा । कृष्णाजिनप्रदानेन तिलधेनुप्रदानतः ॥
विधानोक्त द्विजाग्र्याय ये प्रदास्यन्ति भक्तितः ।
हयं वा कुञ्जरं वाऽथ धूम्रौ सीरसुतौ ॥ १७ ॥
कन्यां वसुमतीं गां वा महिषीं वा पयस्विनीम् ।
ददते ये नृपश्रेष्ठ नोपसर्पन्ति ते यमम् ॥ १८ ॥
यमोऽपिभवतिप्रीत प्रतिजन्मयुधिष्ठिर । यमस्यवाहोमहिषो महिष्यस्तस्यमातरः
तासादानप्रभावेणयम प्रीतोभवेद्ध्रुवम् । नाऽसौयममवाप्नोतियदिपापैः समावृत
एतस्मात्कारणाद्दत्तमहिषीदानमुत्तमम् । तस्याःशृङ्गे जल्कायें धूम्रवस्त्रानुवेष्टिता
आयसस्य खुरा कार्यास्ताम्रपृष्ठा सुभूषिताः ।

लवणाचलं पूर्वस्यामाग्नेय्यां गुडपर्वतम् ॥ २२
कार्पासं याम्यभागं तु नवनीतं तु नैर्ऋते ।
पश्चिमे सप्तधान्यानि वायव्ये तन्दुलाः स्मृताः ॥ २३ ॥

सौम्ये तु काञ्चनं दद्यादीशाने घृतमेव च । प्रददौ यमराजो मे प्रीयतामित्युदीरयन्.
इत्युच्चार्य द्विजस्याग्रे यमलोकं महाभयम् । असिपत्रवनं घोरं यमचुल्लीन्सुदारुणा
रौद्रावैतरणी चैव कुम्भीपाको भयावहः । कालसूत्रो महाभीमस्तथायमलपर्वतौ

क्रकचं तैलयन्त्रं च श्वानो गृध्राः सुदारुणाः ।
निरुच्छ्वासा महानादा भैरवो रौरवस्तथा ॥ २७ ॥
एते घोरा याम्यलोके श्रूयन्ते द्विजसत्तम ॥
त्वत्प्रसादेन ते सौम्यास्तीर्थस्याऽस्य प्रभावतः ॥ २८ ॥
दानस्याऽस्य प्रभावेण यमराजप्रसादतः ।
नरकेऽहं न यास्यामि द्विज! जन्मनि जन्मनि ॥ २६ ॥
यमहास्यस्य चाख्यानमिदं शृण्वन्ति ये नराः ।
तेऽपि पापविनिर्मुक्ता न पश्यन्ति यमालयम् ॥ ३० ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे यमहास्यतीर्थमाहात्म्यवर्णनंनाम द्विनवतितमोऽध्यायः ॥ ९२ ॥

त्रिनवतितमोऽध्यायः

कल्होडीतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

तनो गच्छेत्तु राजेन्द्र कल्होडीतीर्थमुत्तमम् ।
विख्यातं भारते लोके गङ्गाया पापनाशनम् ॥ १ ॥
दुर्लभं मनुजै पार्थ रेवातटसमाश्रितम् । प्रार्थिता पापनाशाय ऊषरं पुष्करं तथा
तत्तु तीर्थमिदं पुण्यमित्येवं शूलिनोवच । जाह्नवी पशुरूपेण तत्र रुद्रार्थमागता
अतस्तद्विश्रुतंलोके कल्होडीतीर्थमुत्तमम् । निराहारस्थितस्तत्र पूर्णिमायायुधिष्ठिर
रजस्तमस्तथा क्रोध दम्भ मात्सर्यमेव च ।
यत्नात्त्यजति य पार्थ तेनाप्त मोक्षजं फलम् ॥ ५ ॥
पयसास्नापयेद्देवं त्रिमधुयुक्तं च घृतं तथा । पयोगोसम्भव सद्य स्वर्गस्थाजीवपुत्रियां
कृष्णा तत्ताम्रे पात्रे क्षौद्रेण चैव योजिते ।
ॐ नम श्रीशिवायेति स्नानं देवस्य कारयेत् ॥ ७ ॥
स याति त्रिदशस्थानं नाकस्त्रीभि समावृत ।
यस्तत्र विधिवत्स्नात्वा दानं प्रेतेषु यच्छति ॥ ८ ॥
शुक्ला गा दापयेत्तत्र प्रीयन्ता मे पितामहा । ब्राह्मणेश्रोत्रियसम्पन्नेस्वदारनिरतेसदा
सवत्सा घण्टासंयुक्ता हिरण्योपरि संस्थिताम् ।
सत्त्वयुक्तो ददद्राजञ्छाम्भव लोकमाप्नुयात् ॥ १० ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्या संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे रेवाखण्डे कल्होडीतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम त्रिनवतितमोऽध्याय ॥९३॥

———

चतुर्नवतितमोऽध्यायः

नन्दिकेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

तस्यैवानन्तरंराजन्नन्दितीर्थं व्रजेच्छुभम् । सर्वपापहरंपुंसां नन्दिनानिर्मितम्पुरा
पापौघहतजन्तूनां मोक्षदं नर्मदातटे । अहोरात्रोपितो भूत्वा नन्दिनाथे युधिष्ठिर
पञ्चोपचारपूजायामर्चयेन्नन्दिकेश्वरम् । रत्नानि चैव विप्रेभ्यो यो दद्याद्धर्मनन्दन!

स याति परमं स्थानं यत्र वासः पिनाकिनः ।
सर्वसौख्यसमायुक्तोऽप्सरोभिः सह मोदते ॥ ४ ॥

इति श्रीस्कान्देमहापुराणएकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायांपञ्चमेऽवन्तीखण्डे
रेवाखण्डे नन्दिकेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम
चतुर्नवतितमोऽध्यायः ॥ ९४ ॥

पञ्चनवतितमोऽध्यायः

नारायणीतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र! बदर्याश्रममुत्तमम् । सर्वतीर्थवरं पुण्यं कथितं शम्भुना पुरा

यश्चैव भारतस्यार्थे तत्र सिद्धः किरीटभृत् ।
भ्राता ते फाल्गुनो नाम विद्धयेनं नरदैवतम् ॥ २ ॥

नरनारायणौ द्वौ तावागतौ नर्मदातटे । ध्यानंतस्यैव यो राजन्भक्तिमान्वैजनार्दने
समम्पश्यति सर्वेषु स्थावरेषु चरेषु च । ब्राह्मणं श्वपचं चैव तत्र प्रीतो जनार्द्दनः

पैशाचस्य पदस्य कौन्तेय मयि भाऽऽमनि नान्तरम् ।
नरनारायणाभ्यां हि कृतं बदरिकाश्रमम् ॥ ५ ॥
स्थापितं शङ्करस्तत्र लोकानुग्रहकारणात् ।
त्रिमूर्तिस्थापिते लिङ्गे स्वर्गमार्गानुमुक्तिदम् ॥ ६ ॥
तत्र गत्वा शुचिर्भूत्वा एकरात्रोपवासकृत् ।
रजस्तमस्तथा त्यक्त्वा सात्त्विकं भावमाश्रयेत् ॥ ७ ॥

रात्रौ जागरणं कृत्वामधुमास्याश्विने । मयचाश्च चतुर्दश्यामुमीपसीकरातं

आश्विनस्य विशेषेण कथितं तव पाण्डव ।
स्नापयेत्परया भक्त्या क्षीरेण मधुना सह ॥ ६ ॥

दध्नाशाकरया युक्तं घृतेन समन्दनम् । पञ्चामृतमिदंपुण्यं स्नापयेदुरमभाव

स्नाप्यमानं शिवं भक्त्या वीक्षते यो विमत्सरः ।
तस्य पापं शिवोपास्ते शक्रलोके न संशयः ॥ ११ ॥
शाठ्येनाऽपि नमस्कारः प्रयुक्तः शूलपाणिने ।
संसारमूलबन्धानामुद्वेष्टनकरो हि यः ॥ १२ ॥

तैनार्थीत धूत तन तिनसवमनुष्ठितम् । येनोंनमःशिवायेतिमन्त्राभ्यासःस्थिरीकृ

यः पुनः स्नापयेद् भक्त्या एकभक्तो जितेन्द्रियः ।
तस्याऽपि यत्फलं पार्थ वक्ष्ये तत्क्लेशतस्तव ॥ १४ ॥
पाडितो वृद्धभावेन तव भक्त्या वदाम्यहम् ।
ते यान्ति परमं स्थानं भित्त्वा भास्करमण्डलम् ॥ १५ ॥
संसारे सर्वसौख्यानां निलयास्ते भवन्ति च ।
आश्चर्यं ज्ञातिवर्गाणां धर्माणां निलयास्तु ते ॥ १६ ॥

सन्पन्नाःसर्वकामैस्तेपृथिव्यांपृथिवीपते । श्राद्धतत्रैव यः कुर्यात्तमदोदकमिश्रित
योगैश्च ब्राह्मणैं राजन्कुलीनैर्वेदपारगैः । सुरूपैश्च सुशीलैश्च स्वदारनिरतैः शुभैः
आयदेशप्रसूतैश्च रूपैश्चैव सुरूपिभिः । कारयेत्पिण्डदानं वै भास्करेकुतपस्थि

पितॄणांपरमंलोकंयदीच्छेद्धर्मनन्दन । वर्जयेत्तान्प्रयत्नेन काणान्दुष्टांश्चदाम्भिकान्
पुरुषान्क्रूरषण्ढांश्च ब्राह्मणानां च निन्दकान् ।
एतांश्च वर्जयेद्विप्रान्यदीच्छेच्छ्रेय आत्मनः ॥ २१ ॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेनयोग्यंविप्रंसमाश्रयेत् । नरकान्मोचयेत्प्रेतान्कुम्भीपाकपुरोगमान्
मोक्षो भवति सर्वेषां पितॄणां नृपनन्दन ॥
विप्रेभ्यः काञ्चनं दद्यात्प्रीयतां मे पितामहः ॥ २३ ॥
अन्नं च दापयेत्तत्रभक्त्या वस्त्रं च भारत । गां वृषंमेदिनीं दद्याच्छत्रंशस्तंनृपोत्तम!
स पुमान्स्वर्गमाप्नोति इत्येवं शङ्करोऽब्रवीत् ।
प्राणत्यागं तु यः कुर्याच्छिखिना सलिलेन वा ॥ २५ ॥
अनाशकेन वा भूयः स गच्छेच्छिवमन्दिरम् ।
नरनारायणीतीरे देवद्रोण्यां च यो नृप !॥ २६ ॥
स वसेदीश्वरस्याग्रे यावदिन्द्राश्चतुर्दश ।
पुनः स्वर्गाच्च्युतः सोऽपि राजा भवति वीर्य्यवान् ॥ २७ ॥
सर्व्वैश्वर्यगुणैर्युक्तः प्रजापालनतत्परः । ततः स्मरति तत्तीर्थं पुनरेवाऽऽगमिष्यति
इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
रेवाखण्डे नारायणीतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम
पञ्चनवतितमोऽध्यायः ॥ ९५ ॥

ऐकात्म्य पश्य कौन्तेय' मयि चाऽऽत्मनि नान्तरम् ।
नरनारायणाख्या हि कृत बदरिकाश्रमम् ॥ ५ ॥
स्थापित शङ्करस्तत्र लोकानुग्रहकारणात् ।
त्रिमूर्त्तिस्थापित लिङ्ग स्वर्गमार्गानुमुक्तिदम् ॥ ६ ॥
तत्र गत्वा शुचिर्भूत्वा शकेरात्रोपवासरत्र् ।
रजस्तमस्तथा त्यक्त्वा सात्त्विक भावमाश्रयेत् ॥ ७ ॥

रात्रौ जागरण कृत्वामधुमासाष्टमीदिने । अथवाच चतुर्द्दश्यामुभौपक्षौचकारये

आश्विनस्य विशेषेण कथित तव पाण्डव ।
स्नापयेत्परया भक्त्या क्षीरेण मधुना सह ॥ ९ ॥

दध्नाशर्करया युक्त घृतेन समलङ्कृतम् । पञ्चामृतमिदपुण्य स्नापयेद्वृषभध्वज

स्नाप्यमान शिव भक्त्या वीक्षते यो विमत्सर ।
तस्य पाप विशोपान्ते शक्रलोके न सशय ॥ ११ ॥
शाठ्येनाऽपि नमस्कार प्रयुक्त शूलपाणिने ।
ससारमूलबद्धानामुद्वेष्टनकरो हि य ॥ १२ ॥

तेनाधीत श्रुत तेन तेनसर्वमनुष्ठितम् । येनोंनम शिवायेतिमन्त्राभ्यास स्थिरीकृ

य पुन स्नापयेद्व भक्त्या पकभक्तो जितेन्द्रिय ।
तस्याऽपि यत्फल पार्थ वक्ष्ये तल्लेशतस्तव ॥ १४ ॥
पीडितो वृद्धभावेन तव भक्त्या वदाम्यहम् ।
ते यान्ति परमं स्थान भित्त्वा भास्करमण्डलम् ॥ १५ ॥
ससारे सर्वसौख्याना निलयास्ते भवन्ति च ।
आश्रयं ज्ञातिवर्गाणा धर्माणा निलयास्तु ते ॥ १६ ॥

सम्पन्ना सर्वकामैस्तेपृथिव्यापृथिवीपते । श्राद्धतत्रैव य कुर्यात्नर्मदोदकमिश्रित

योग्यैश्च ब्राह्मणै राजन्कुलीनैर्वेदपारगै । सुरूपैश्च सुशीलैश्च स्वदारनिरतै शुभै

आर्यदेशप्रसूतैश्च स्वरूपैश्चैव सुरूपिभि । कारयेत्पिण्डदान वै भास्करेकुलपस्थिर

पितॄणांपरमंलोकंयदीच्छेद्धर्मनन्दन । वर्जयेत्तान्प्रयत्नेन काणान्दुष्टांश्चदाम्भिकान्
पुरुषान्क्रूरषण्ढांश्च ब्राह्मणानां च निन्दकान् ।
एतांश्च वर्जयेद्विप्रान्यदीच्छेच्छ्रेय आत्मनः ॥ २१ ॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेनयोग्यंविप्रंसमाश्रयेत् । नरकान्मोचयेत्प्रेतान्कुम्भीपाकपुरोगमान्
मोक्षो भवति सर्वेषां पितॄणां नृपनन्दन !।
विप्रेभ्यः काञ्चनं दद्यात्प्रीयतां मे पितामहः ॥ २३ ॥
अन्नं च दापयेत्तत्रभक्त्या वस्त्रं च भारत । गां वृषंमेदिनीं दद्याच्छत्रंशस्तंनृपोत्तम!
स पुमान्स्वर्गमाप्नोति इत्येवं शङ्करोऽब्रवीत् ।
प्राणत्यागं तु यः कुर्याच्छिखिना सलिलेन वा ॥ २५ ॥
अनाशकेन वा भूयः स गच्छेच्छिवमन्दिरम् ।
नरनारायणीतीरे देवद्रोण्यां च यो नृप !॥ २६ ॥
स वसेदीश्वरस्याग्रे यावदिन्द्राश्चतुर्दश ।
पुनः स्वर्गाच्च्युतः सोऽपि राजा भवति वीर्य्यवान् ॥ २७ ॥
सर्व्वैश्वर्यगुणैर्युक्तः प्रजापालनतत्परः । ततः स्मरति तत्तीर्थं पुनरेवाऽऽगमिष्यति

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
रेवाखण्डे नारायणीतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम
पञ्चनवतितमोऽध्यायः ॥ ९५ ॥

सप्तनवतितमोऽध्यायः

व्यासतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततोगच्छेन्महीपालव्यासतीर्थमनुत्तमम् । दुर्ल्लभंमनुजैःपुण्यमन्तरिक्षेव्यवस्थितम्

युधिष्ठिर उवाच

कस्माद्वै व्यासतीर्थं तदन्तरिक्षे व्यवस्थितम् ।
एतदाख्याहि संक्षेपात्त्यज ग्रन्थस्य विस्तरम् ॥ २ ॥

श्रीमार्कण्डेय उवाच

साधुसाधुमहाबाहो धर्मवान्साधुवत्सल । स्वकर्मनिरतः पार्थतीर्थयात्राकृतादरः

दुर्ल्लभं सर्वजन्तूनां व्यासतीर्थं नरेश्वर । पीडितोवृद्धभावेन अकल्पोऽहंनृपात्मज

विसञ्ज्ञो गतवित्तस्तु सञ्जातः स्मृतिवर्जितः ।
गुह्याद् गुह्यतरं तीर्थं नाऽऽख्यातं कस्यचिन्मया ॥ ५ ॥

कलिस्तत्रैव राजेन्द्र न विशेद् व्याससंश्रयात् ।
अन्तरिक्षे तु सञ्जातं रेवायाश्चेष्टितेन तु ॥ ६ ॥

विरिञ्चिर्नैव शक्नोति रेवाया गुणकीर्त्तनम् ।
कथं ज्ञास्याम्यहं तात रेवामाहात्म्यमुत्तमम् ॥ ७ ॥

व्यासतीर्थंविशेषेण लवमात्रं ब्रवीम्यतः । प्रत्यक्षः प्रत्ययो यत्र दृश्यतेऽद्यकलौयुगे

विहङ्गोगच्छतेनैवभिरवाशूलंसुदारुणम् । तस्योत्पत्तिसमासेनकथयामिनृपात्मज

आसीत्पूर्वंमहीपालमुनिर्मान्यःपराशरः । तेनात्युग्रंतपश्चीर्णं गङ्गाम्भसिमहाफलम्

प्राणायामेन सन्तस्थौप्रविष्टोजाह्नवीजले । पूर्णेद्वादशमेवर्षे निष्क्रान्तोजलमध्यतः

भिक्षार्थी सञ्चरेद् ग्रामं नावा यत्रैव तिष्ठति ।
तत्र तेन परा दृष्टा बाला चैव मनोहरा ॥ १२ ॥

ता दृष्ट्वा स च कामार्त उवाच मधुरं तदा।
मां नयस्व पर पारं काऽसि त्व मृगलोचने ॥ १३ ॥
नायामन्द्रे नदीतीरे मम चित्तप्रमाथिनि। एवमुक्ता तु सा तेन प्रणम्यऽर्षिपुङ्गवा
कथयामास धाऽऽत्मानं दृष्ट्वा च काममोहितम्।
कैवर्तानां गृहे दासी कन्याऽहं छिन्नसत्तम ॥ १५ ॥
नावा नरक्षणार्थाय आदिष्टा स्वामिना विभो।
मया विप्रपित्र कृतमदोष क्षन्तुमर्हसि ॥ १६ ॥
एवमुक्तस्तथा सोऽथ क्षणं ध्यात्वाऽब्रवीद्विजम् ॥ १७ ॥
पराशर उवाच
भद्रहामत्रन्याद्वैनपज्ञातामिनन्मयम्। कैवर्तपुत्रिका न त्वराजकन्याऽसिसुन्दरि
कन्योवाच
क पिता कथ्यता ब्रह्मन्कस्या वा हृदरोद्भवा।
कस्मिन्वंशे प्रसूताऽहं कैवर्ततनया कथम् ॥ १९ ॥
पराशर उवाच
कथयामि समस्तं कथया पूर्वमशेषत। वसुनामेतिभूपाल सोमवंशविभूषण ॥
जम्बूद्वीपाधिपो भद्र शत्रूणां भयवर्धन। शतानि सप्तभार्याणां पुत्राणाचदशैवतु
धर्मेण पाल्येल्लोकानीशवत्पूज्यते सदा।
म्लेच्छानामन्यावियेयाश्च क्षीरद्वीपनिवासिन ॥ २२ ॥
तैषामुत्पादनाथाययथावृत्यसागरम्। सयुक्त पुत्रभृत्यैर्धर्षयिष्यमिहति स्थिते
समरते समारब्धम्लेच्छैश्चवसुनासह। जिताम्लेच्छा समस्तास्ते वसुनामृगलोचने
वरदास्ते कृतास्तेन सपुत्रबलवाहना। प्रजाना तस्य साराज्ञा तयमातामृगेक्षणे
प्रवासस्थे महीपाले सञ्जाता सा रजस्वला।
नारीणां तु सदाकाले मन्मथो ह्यधिको भवेत् ॥ २५ ॥
विशेषेण ऋतौ काले भिद्यन्ते कामसायकैः।

मन्मथेन तु सन्तप्ताऽचिन्तयत्सा शुभेक्षणा ॥ २७ ॥
दूतं वै प्रेषयामास वसुराज्ञः समीपतः । आहूतः सत्वरं दूत! गच्छत्वं नृपसन्निधौ
दूत उवाच
परतीरं गतो देवि वसुराजाऽरिशासनः । तत्र गन्तुमशक्येत जलयानैर्विना शुभे
तानि यानानि सर्वाणि गृहीतानि परे तटे ।
दूतवाक्येन सा राज्ञी विषण्णा कामपीडिता ॥ ३० ॥
तत्सखी तामुवाचाऽथ कस्मात्त्वं परितप्यसे ।
स्वलेखः प्रेष्यतां देवि ! शुकहस्ते यथार्थतः ॥ ३१ ॥
समुद्रं लङ्घयित्वा तु शकुन्ता यान्ति सुन्दरि !।
सखिवाक्येन सा राज्ञी स्वस्था जाता नराधिप !॥ ३२ ॥
व्याहृतोलेखकस्तत्रलिखलेखं ममाज्ञया । त्वद्धीनासत्यभामाद्यवसोराजन्नजीवति
ऋतुकालोऽद्यसञ्जातो लिखलेखं तु लेखक !। लिखितेभूर्जपत्रे तु लेखे वै लेखकेनतु
शुकः पञ्जरमध्यस्थ आनीतोऽद्यैव सन्निधौ ॥ ३५ ॥
सत्यभामोवाच
नीत्वालेखं गच्छशीघ्रंवसुराज्ञःसमीपतः । शकुनिःप्रणतोभूत्वागृहीत्वालेखमुत्तमम्
उत्पत्य सहसाराजञ्जगामाऽऽकाशमण्डलम् । ततःपक्षीगतःशीघ्रंवसुराजसमीपतः
क्षिप्ते लेखेशुकेनैव सत्यभामाविसर्जिते । वसुराज्ञा ततो लेखोगृह्यहस्तेऽवधारितः
लेखार्थं चिन्तयित्वातुगृह्यवीर्यं नरेश्वरः । अमोघंपुटिकांकृत्वाप्रतिलेखेनमिश्रितम्
शुकस्य सोऽर्पयामास गच्छराज्ञीसमीपतः । प्रणम्यवसुराजानं वीजंगृह्योत्पपातह
समुद्रोपरि सम्प्राप्तः शुकः श्येनेन वीक्षितः ।
सामिषं तं शुकं ज्ञात्वा श्येनस्तमभ्यधावत ॥ ४१ ॥
हतश्चञ्चुप्रहारेण शुकः श्येनेन भारत! । मूर्च्छया तस्यतद्वीजंपतितंसागराम्भसि
मत्स्येन गिलितंतच्च वीजंवसुमहीपतेः । कन्यामत्स्योदरेजातातेन वीजेन सुन्दरि
प्राप्तोऽसौ लुब्धकैर्मत्स्य आनीतः स्वगृहं ततः ।

यावद्विचारितो मत्स्यस्तावद्दृष्टा त्वमुत्तमे ॥ ४७ ॥
शशिमण्डलसङ्काशा भुवनत्रयसमप्रभा । दृष्ट्वा त्वां हर्षिताः सर्वे कैवर्ता जाह्नवीत
हर्षितास्तेगताः सर्वे प्रधानस्य च मन्दिरम् । कैवर्तकथयामासुर्दाशराजं महाप्रभ
गृहीता तेन तत्पश्चाद्दाशपुत्रेण मृगेक्षणा । भार्यां स्वामाह तन्वङ्गि पाल्यस्व सुतेयम्
तत सा चिन्तयामास पराशरवचस्तदा ।
यत्सुरम्या तु सा तेन कृताऽस्मान् नरेश्वर ॥ ४८ ॥
उवाच साधु मे ब्रह्मन् मत्स्यगन्धोऽनुवर्तते ।
ततस्तेन तु सा बाला दिव्यगन्धाधिवासिता ॥ ४९ ॥
एतायोगबलेनैव ज्वालाचिन्त्या विभावसुम् । कृत्वाथ दक्षिणपर्हिमुक्ताभेनरमोसन्द
जन्यानन्य मध्ये तु कामन्यानाल्यमस्पृशान् ।
ज्ञात्वा कामो सुर चिरं भीता सा धर्मनन्दन ॥ ५१ ॥
हस्तर्नोनमुनाथाऽयदृष्टं त्वलोकमभिधी । मज्जसेकयधीमन्नुयाण पामतोचिता
ततस्तेन क्षणं ध्यात्वा मस्मृता हृदि तामसी ।
आगता तामसी माया यया व्याप्तं चराचरम् ॥ ५३ ॥
तत मायिस्मितानेन कमर्णचतुरञ्जिता । ब्रह्मचर्याभितप्तेनक्षीसौख्यमीडितनतद
तत सा तत्क्षणादेव गर्भभारेणपीडिता । प्रसूताथ कनकाञ्जलिदण्डधारिणम्
कमण्डलुधरं शान्तं मेखलाकटिभूषितम् ।
उत्तरीयकृतान्कन्ध विष्णुमायाविवर्जितम् ॥ ५५ ॥
ततोऽपि शङ्किता पार्थ दृष्ट्वा तं कल्मालकम् ।
वेपमाना ततो बाला जगाम शरणं मुने ॥ ५७ ॥
रक्ष रक्ष मुनिश्रेष्ठ पराशर महामने ॥ जातं मेऽद्भुतं पुत्र कौपीनचर्मवल्कम् ।
दण्डहस्तं जटायुक्तमुत्तरीयविभूषितम् ॥ ५८ ॥

पराशर उवाच ।

मा भैषीः स्वसुते जाते कुमारी त्वं भविष्यसि ।

नाम्ना योजनगन्धेति द्वितीयं सत्यवत्यपि ॥ ५६ ॥
शन्तनुर्नाम राजा यः स ते भर्त्ता भविष्यति ।
प्रथमा महिषी तस्य सोमवंशविभूषणा ॥ ६० ॥
गच्छत्वंस्वाश्रयंशुभ्रे पूर्वरूपेणसंस्थिता । माविषादंकुरुष्वाऽत्रदूष्णं ज्ञानस्यमेवलम्
इत्युक्त्वा प्रययौ विप्रः सा बाला पुत्रमाश्रिता ।
नत्वोचे मातरं भक्त्या साष्टाङ्गं विनयानतः ॥ ६२ ॥
क्षम्यतां मातरुक्तं मे प्रसादः क्रियतामपि । ईश्वराराधने यत्नंकरिष्याम्यहमम्बिके
ततः सा पुत्रवाक्येन विषण्णा वाक्यमब्रवीत् ॥ ६४ ॥

योजनगन्धोवाच

मा त्यक्त्वा गच्छ वत्साद्य मातरं मामनागसम् ।
त्वद्वियोगेन मे पुत्र! पञ्चत्वं भाव्यसंशयम् ॥ ६५ ॥
नास्ति पुत्रसमः स्नेहो नास्ति मातृसमं कुलम् ।
नाऽस्ति सत्यपरो धर्मो नानृतात्पातकं परम् ॥ ६६ ॥
बालभावे मयाजात आधारःकिलजायसे । न मे भर्त्ता नमेपुत्रःपश्यकर्मविडम्बनम्

व्यास उवाच

मा विषादं कुरुष्वान्तः सत्यमेतन्मयेरितम् ।
आपत्कालेऽस्मि ते देवि ! स्मर्त्तव्यः कार्यसिद्धये ॥ ६८ ॥
आपद्भ्यस्तारयिष्यामि श्रूयतां मे दुरुत्तरम् ।
इत्युक्त्वा प्रययौ व्यासः कन्या साऽपि गता गृहम् ॥ ६६ ॥
पराशरसुतस्तत्र विषण्णो वनमध्यतः । त्रेतायुगावसाने तु द्वापरादौ नरेश्वर ॥
व्यासार्थं चिन्तयामासुर्देवाःशक्रपुरोगमाः । आख्यातोनारदेनैवपुत्रःपराशरस्यसः
कैवर्तपुत्रिकाजातो जाह्नुजह्नुसुतातटे । ततोनारदवाक्येन आगताः सुरसत्तमाः
रामः पितामहः शक्रो मुनिसङ्घैः समावृताः ।

पितामहेन वै बालो गर्भाधानादिसंस्कृत ।
द्वैपायनो द्वीपजन्मा पाराशर्य पराशरात् ॥ ७४ ॥
कृष्णांशात्कृष्णनामायं व्यासो वेदान्व्यसिष्यति ।
विरञ्चिनाऽभिषिक्तोऽसौ मुनिसङ्घै पुन पुन ॥ ७५ ॥
व्यासस्य सप्तमेऽब्देषु स्तुत्वा प्रययु सुरा ।
तीर्थयात्रा समारब्धा कृष्णद्वैपायनेन तु ॥ ७६ ॥
गङ्गावगाहितानेन केदारश्च सपुष्कर । गयाच नैमिषं तीर्थं कुरुक्षेत्रं सरस्वती ॥
उज्जयिन्या महाकालं सोमनाथ प्रभासके ।
पृथिव्यां सागरान्तायां ज्ञात्वा यातो महामुनि ॥ ७८ ॥
अमृता नर्मदामासौ रुद्रदेहोद्भवां शुभाम् । साक्षाद्देवमवाप्नोति विपिधान्तिमापद्य
तपश्चारयितुं नर्मदातटमाश्रित । ग्रीष्मपञ्चाग्निमध्यस्थोयवर्षासुस्थण्डिलेशय
माद्रवासाश्च हेमन्ते तिष्ठन्ध्यायी महेश्वरम् ।
स्थाणुवत्स्थमने स्थाप्य ध्यायते परमेश्वरम् ॥ ८१ ॥
सृष्टिमहारकर्तारमच्छेद्य पादं शुभम् । नित्यं सिद्धेश्वरं लिङ्गं पूजयेत्ससमनतपर
भवनात्सिद्धलिङ्गस्य ध्यानयोगप्रभावत । प्रत्यक्ष शङ्करो जात कृष्णद्वैपायनस्य ॥

ईश्वर उवाच

तोषितोऽहं त्वया वत्स वरं वरय शोभनम् ॥ ८४ ॥

व्यास उवाच

यदि तुष्टोऽसि ॥ देव यदि देयो वरो मम । मत्प्रभो नर्मदातीरे स्वयमेवमधिष्ठितम्
अतीतानागतज्ञोऽहं त्वत्प्रसादादुमापते ॥ ८५ ॥

ईश्वर उवाच

एवं भवतु मे पुत्र मत्प्रसादात्संशयम् । त्वयि भक्तिगृहीतोऽहं प्रत्यक्षो नर्मदातटे
सहस्रांशादुमापन प्रत्यक्षोऽहं त्वदाश्रमे । इत्युक्त्वान्तर्दधे देव कैलासनगमुत्तमम्
पश्चात्संप्रहृष्टं जातं कृष्णद्वैपायनस्य च । शास्त्रोक्तेन विधानेन पदीं पारस्वतस्तथा

पुत्रो जातो ह्यपुत्रस्य पराशरसुतस्य च । देवैर्वर्द्धापितः सर्वैर्विरिञ्चेन्द्रपुरोगमैः

पुत्रजन्मन्यथाजग्मुर्वशिष्ठाद्या मुनीश्वराः । तीर्थयात्राप्रसङ्गेन पराशरपुरोगमाः ॥

मन्वत्रिविष्णुहारीतयाज्ञवल्क्योशनोङ्गिराः ।

यमापस्तम्बसम्वर्त्ता कात्यायनबृहस्पती ॥ ९१ ॥

एवमादिसहस्राणिलक्षकोटिशतानिच । सशिष्याश्चमहाभागानर्मदातटमाश्रिताः

व्यासाश्रमे शुभे रम्ये सन्तुष्टा आययुर्नृप ।

दृष्ट्वा तान्सोऽपि विप्रेन्द्रानभ्युत्थानकृतोद्यमः ॥ ९३ ॥

पितुःपूर्वंप्रणम्याऽदौसर्वेषांचयथाविधि । आसनानिददौभक्त्यापाद्यमर्घ्यंयथेप्सित

कृताञ्जलिपुटोभूत्वावाक्यमेतदुवाचह । उद्धतोऽहं नसन्देहोयुष्मत्सम्भाषणार्चनात्

आरण्यानि च शाकानि फलान्यारण्यजानि च ।

तानि दास्यामि युष्माकं सर्वेषां प्रीतिपूर्वकम् ॥ ९६ ॥

न्यमन्त्रयत तान्सर्वान्प्रत्येकं प्रणिपत्य च । ततस्ते प्रणतं दृष्ट्वा कृष्णद्वैपायनंमुनिम्

वर्द्धयित्वा जयाशीर्भिरवलोक्य परस्परम् । पराशरःसमस्तैश्च वीक्षितोमुनिपुङ्गवैः

उत्तरं दीयतां तात कृष्णद्वैपायनस्य च । एवमुक्तस्तु तैः सर्वैर्भगवान्स पराशरः ॥

प्रोवाच स्वात्मजंव्यासमृषीणां यच्चिकीर्षितम् ॥ ९९ ॥

श्रीपराशर उवाच

नेच्छन्ति दक्षिणे कूले व्रतभङ्गभयादथ । भोजनं भोक्तुकामास्ते श्राद्धेचैवविशेषतः

व्यास उवाच

करोमिभगतामुक्तमत्रैवस्थीयतां क्षणम् । यावत्प्रसाद्यसरितं करोमिविधिमुत्तमम्

एवमुक्त्वा शुचिर्भूत्वा नर्मदातटमास्थितः ।

स्तोत्रं जगाद सहसा तन्निबोध नरेश्वर !॥ १०२ ॥

जय भगवति! देवि! नमो वरदे! जय पापविनाशिनि! बहुफलदे !।

जय शुम्भनिशुम्भकपालधरे! प्रणमामि तु देवनरार्त्तिहरे !॥ १०३ ॥

जय चन्द्रदिवाकरनेत्रधरे! जय पावकभूषितवक्त्रवरे !।

जय भैरवदेहनिलीनपरे जय अन्धककालविशोषकरे ॥ १०४ ॥
जय महिषविमर्दिनि शूलकरे जय लोकसमस्तकपापहरे ।
जय देवि पितामहरामनते जय भास्करशक्रशिरोऽवनते ॥ १०५ ॥
जय षण्मुखसायुधईशनुते जय सागरगामिनि शम्भुनुते ।
जय दुःखदरिद्रविनाशकरे जय पुत्रकलत्रविवृद्धिकरे ॥ १०६ ॥
जय देवि समस्तशरीरधरे जय नाकविदर्शिनि दुःखहरे ।
जय व्याधिविनाशिनि मोक्षकरे जय वाञ्छितदायिनि सिद्धवरे ॥ १०७

एतद्व्यासकृतं स्तोत्रं यः पठेच्छिवसन्निधौ । गृहे वा शुद्धभावेन कामक्रोधविवर्जितः
तस्य व्यासो भवेत्प्रीतः प्रीतश्च वृषवाहनः । प्रीता स्याच्च महादेवी सर्वपापक्षयङ्करी

न ते यान्ति यमालोकं यैः स्तुता भुवि नर्मदा ।
पितामहोऽपि सुप्रीतो देवि त्वद्गुणकीर्तनात् ॥ ११० ॥

भावयति नैव न पश्यतु स्वरूपं वेद नर्मदे । कथं गुणानहं देवि त्वन्मायाच्छादितस्तुवे
इति श्रुत्वा स्तुतिं व्यासाद्वाङ्मनःकायकर्मभिः । प्रसन्नाभून्महादेवी तपोधनमनर्घात्

मत्प्रसादेन तुष्टाऽहं भोभो व्यास महामुने ।
यदीच्छसि वरं किञ्चित्तत्ते सर्वं ददाम्यहम् ॥ ११३ ॥

व्यास उवाच

यदि तुष्टासि मे देवि यदि देयो वरो मम । सान्निध्यमुत्तरे कूले मत्प्रार्थनाद्दातुमर्हसि

नर्मदोवाच

अयुक्तयाचितं व्यास विमार्गोऽयं प्रवर्तनम् । इन्द्रचन्द्रै न शक्ता मामुन्मार्गेण प्रवर्तितुम्

याचस्वान्यं वरं पुत्र यत्किञ्चिद्भुवि दुर्लभम् ।
एतच्छ्रुत्वा वचो देव्या व्यासो मूर्च्छां गतस्तदा ॥ ११६ ॥
वृथा क्लेशोऽद्य मे जात इति मत्वा पपात ह ।
धरणी चलिता भद्रा सशैलवनकानना ॥ ११७ ॥
मूर्च्छापन्नं ततो व्यासं दृष्ट्वा देव्या समाश्वसा ।

हाहाकारमुखाः सर्वे तत्राऽऽजग्मुः सहस्रशः ॥ ११८ ॥
व्यासमुत्थापयामासुर्वेदव्यसनतत्परम् ।
ब्राह्मणार्थे च संक्लिष्टो नात्महेतोः सरिद्वरे ॥ ११९ ॥
गवार्थे ब्राह्मणार्थे च सद्यः प्राणान्परित्यजेत् ।
एवं सा नर्मदा प्रोक्ता ब्रह्माद्यैः सुरसत्तमैः ॥ १२० ॥
सुशीतलैस्तं बहुभिश्चवातै रेवाऽभिषिञ्चत्स्वजलेन भीता ।
सञ्चेतनः सत्यवतीसुतोऽपि प्रणम्य देवान्सरितं जगाद ॥ १२१ ॥

व्यास उवाच

तीर्थैः समस्तैः किल सेवनाय फलं प्रदिष्टं मम मन्दभाग्यात् ।
यद्देवि पुण्या विफला ममाशा आरण्यपुष्पाणि यथा जनानाम् ॥ १२२ ॥

नर्मदोवाच

यतो यतो मां हि महानुभाव! निनीषते चित्तमिलातलेऽत्र ।
विन्ध्येन सार्द्धं तव मार्गमद्य यास्याम्यहं दण्डधरस्य पृष्ठे ॥ १२३ ॥

एवमुक्तो महातेजाः व्यासः सत्यवतीसुतः ।
दक्षिणे चालयामास स्वाश्रमस्य सरिद्वराम् ॥ १२४ ॥
दण्डहस्तो महातेजा हुङ्कारमकरोन्मुनिः ।
व्यासहुङ्कारभीता सा चलिता रुद्रनन्दिनी ॥ १२५ ॥

दण्डेन दर्शयन्मार्गं देवीतत्र प्रवर्त्तिता । व्यासमार्गं गता देवी दृष्टाशक्रपुरोगमैः
पुष्पवृष्टि ततोदेवा व्यमुञ्चन्तसहकिङ्करैः । प्रोत्फुल्लनयनाजाताःपराशरमुखाद्विजाः
किं कुर्मो ब्रूहि मे पुत्र ! कर्मणा ते स्म रक्षिताः ॥ १२७ ॥

व्यास उवाच

तपश्च विपुलं कृत्वा दानंदत्त्वा महाफलम् । एतदेवनरैः कार्यंसाधूनांयत्सुखावहम्
यदि तुष्टा महाभागअनुग्राह्योह्यहंयदि । तस्मान्ममाश्रमेसर्वैःस्थीयतांनाऽत्रसंशयः
आतिथ्यं शाकपर्णेन रेवामृतविमिश्रितम् । प्रतिपन्नः समस्तैर्वः पराशरमुखैर्मम

स्यातव्यं स्वाश्रम सर्वैं स्वाया उत्तर तटे ॥ १३० ॥

मार्कण्डेय उवाच

स्नानतर्पणनित्यानि कृतानि द्विजसत्तमैः ।
व्यासकुण्डे तथा सन्ध्या होम सर्वं प्रकल्पित ॥ १३१ ॥
श्रीपर्णैर्बिल्वपत्रैश्च जुहुवानाजैर्दसम् । गौतमो भृगुमाण्डव्यौ नारदो लोमशस्तथा
पराशरस्तथा शङ्ख कौशिकश्च्यवनो मुनि ।
पिप्पलादो वसिष्ठश्च नाचिकेतो महातपा ॥ १३३ ॥
विश्वामित्रोऽप्यगस्त्यश्च उद्दालकयमौ तथा ।
शाण्डिल्यो जैमिनि कण्वो याज्ञवल्क्योशनोऽङ्गिरा ॥ १३४ ॥
शातातपो दधीचिश्च कपिलो गालवस्तथा । जैगीषव्यस्तथा दक्षो भरतो मुद्गलस्तथा
कात्यायनो महातेजा सम्वर्त्त शक्तिरेव च ।
मातृकर्णी भरद्वाजो वाल्मिल्यारुणिस्तथा ॥ १३६ ॥
एवमादिसहस्राणि जुहुवानाजैर्दसम् । अग्नमाकरोत्क्षीणाध्यानयोगपरायणा
एकचित्ता द्विजा यत्र चतुर्होममिक्रिया तदा ।
तत समुत्थित लिङ्ग मोक्षद व्याधिनाशनम् ॥ १३८ ॥
अच्छेद्य परम दिव्यङ्दृष्ट्वा व्यासस्तुतोषु च । पुष्पवृष्टिदुर्देवा आशीर्वादा द्विजोत्तमा
साष्टाङ्ग प्रणतो व्यासो देवं दृष्ट्वा त्रिलोचनम् ।
ब्राह्मणान्पूजयामास शाकमूलफलैन च ॥ १४० ॥
पितृपूय द्विजा सर्वे मोनिना पाण्डुनन्दन ।
आशीर्वादास्तत पुण्यान्दत्त्वा विप्रा ययु पुन ॥ १४१ ॥
तदा प्रभृति तत्तीर्थं व्यासाख्य प्रोच्यते बुधै ॥ १४२ ॥

युधिष्ठिर उवाच

व्यासतीर्थस्य यत्पुण्य तत्सर्वं कथयस्व मे ।
स्नानदानविधान च यस्मिन्काले महाफलम् ॥ १४३ ॥

श्रीमार्कण्डेय उवाच

कथयामिसमस्तंतेभ्रातृभिःसहपाण्डव । कार्त्तिकस्यसितेपक्षेचतुर्दश्यांजितेन्द्रियः
उपोष्य यो नरो भक्त्या रात्रौ कुर्वीत जागरम् ।
स्नापयेदीश्वरं भक्त्या क्षौद्रक्षीरेण सर्पिषा ॥ १४५ ॥
दध्ना च खण्डयुक्तेन कुशतोयेन वै पुनः । श्रीखण्डेन सुगन्धेन गुण्ठयेत्परमेश्वरम्
ततः सुगन्धकुसुमैर्बिल्वपत्रैश्च पूजयेत् । मुचुकुन्देन कुन्देन कुशजातीप्रसूनकैः ॥
उन्मत्तमुनिपुष्पैश्च तथान्यैः कालसम्भवैः । अर्चयेत्परयाभक्त्या द्वीपेश्वरमनुत्तमम्
इक्षुगडुकदानेन तुष्यते परमेश्वरः । गडुकाष्टकदानेन पातकं यात्यहोर्जितम् ॥ १४८
मासार्जितं च नश्येत गडुकाष्टशतेन च । षाण्मासिकं सहस्रेण द्विगुणैरब्दिकंतथा
आजन्मजनितं पापमयुतेन प्रणश्यति । द्विगुणैर्नश्यतेव्याधिस्त्रिगुणैःस्याद्धनागमः
षड्गुणैर्जायते वाग्मी सिद्धस्तद्द्विगुणैस्तथा ।
रुद्रत्वं दशलक्षैश्च जायते नाऽत्र संशयः ॥ १५२ ॥
पौर्णमास्यां नृपश्रेष्ठ! स्नानं कुर्वीतभक्तितः । मन्त्रोक्तेन विधानेनसर्वपापक्षयङ्करम्
वारुणंच तथाग्नेयंब्राह्मयं चैवाक्षयङ्करम् । देवान्पितॄन्मनुष्यांश्चविधिवत्तर्पयेद्बुधः
ऋचा ऋग्वेदजं पुण्यं साम्ना सामफलं लभेत् ।
यजुर्वेदस्य यजुषा गायत्र्या सर्वमाप्नुयात् ॥ १५५ ॥
अक्षरं च जपेन्मन्त्रं सौरं वा शिवदैवतम् । अथवावैष्णवंमन्त्रंद्वादशाक्षरसञ्ज्ञितम्
पूजयेद् ब्राह्मणान्भक्त्या सर्वलक्षणलक्षितान् ।
स्वदारनिरतान्विप्रान्दम्भलोभविवर्जितान् ॥ १५७ ॥
भिन्नवृत्तिकरान्पापान्पतितांञ्छूद्रसेवनान् ।
शूद्रीग्रहणसंयुक्तान्वृषली यस्य मन्दिरे ॥ १५८ ॥
परोक्षवादिनो दुष्टान्गुरुनिन्दापरायणान् । वेदद्वेषणशीलांश्चहैतुकान्बकवृत्तिकान्
ईदृशान्वर्जयेच्छ्राद्धे दाने सर्वव्रतेषु च । गायत्रीसारमात्रोऽपिवरंविप्रःसुयन्त्रितः
नायन्त्रितश्चतुर्वेदी सर्वाशी सर्वविक्रयी । ईदृशान्पूजयेद्विप्रानन्नदानहिरण्यतः

न तेषां जायते शोको न हानिर्न च दुष्कृतम् । प्रथमंपूजयेत्तत्र लिङ्गं सिद्धेश्वरं ततः

यत्र सिद्धो महाभागा व्यासः सत्यवतीसुतः ।

अस्यैव पूजनात्सिद्धो धारासर्पो महामतिः ॥ १७८ ॥

तत्र तीर्थे तु यो राजन्प्राणत्यागं करोति च ।

सूर्यलोकमसौ भित्त्वा प्रयाति शिवसन्निधौ ॥ १७९ ॥

समाःसहस्राणि च सप्त वै जले दशैकमग्नौ पतने च षोडश ।

महाहवे षष्टिरशीति गोग्रहे ह्यनाशके भारत! चाक्षया गतिः ॥ १८० ॥

पिता पितामहश्चैव तथैवप्रपितामहः । वायुभूतं निरीक्षन्ते ह्यागच्छन्तंस्वगोत्रजम्

अस्मद्गोत्रेऽस्ति कः पुत्रो यो नो दद्यात्तिलोदकम् ।

कार्त्तिक्यां च विशेषेण वैशाख्यां वा तथैव च ॥ १८२ ॥

स्वर्गतिं च प्रयास्यामस्तत्र तीर्थोपसेवनात् ।

एतत्ते कथितं सर्वं द्वीपेश्वरमनुत्तमम् ॥ १८३ ॥

यः पठेत्परया भक्त्या शृणुयात्तद्गतो नृप !।

सोऽपि पापविनिर्मुक्तो मोदते शिवमन्दिरे ॥ १८४ ॥

ऊषरं सर्वतीर्थानां निर्मितं मुनिपुङ्गवैः । कामप्रदं नृपश्रेष्ठ! व्यासतीर्थं न संशयः ॥

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे रेवाखण्डे व्यासतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम सप्तनवतितमोऽध्यायः ॥ ९७ ॥

अष्टनवतितमोऽध्यायः

प्रभासतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेत्तु राजेन्द्रप्रभासेश्वरमुत्तमम् । विख्यातंत्रिपुलोकेषुस्वर्गसोपानमुत्तमम्

युधिष्ठिर उवाच

प्रभासं तात! मे ब्रूहि कथंजातंमहाफलम् । स्वर्गसोपानदं द्रश्यंसंक्षेपात्कथयाशुमे

श्रीमार्कण्डेय उवाच

दुर्भगा रविपत्नी च प्रभा नामेति विश्रुता ।
तया चाऽऽराधितः शम्भुरुग्रेण तपसा पुरा ॥ ३ ॥
वायुभक्षा स्थिता वर्षंवर्षंध्यानपरायणा । ततस्तुष्टोमहादेवःप्रभायाःपाण्डुनन्दन

ईश्वर उवाच

कस्मात्त्वंक्लिश्यसे बाले! कथ्यतां यद्विवक्षितम् ।
अहं हि भास्करोऽप्येको नानात्वं नैव विद्यते ॥ ५ ॥

प्रभोवाच

नान्यो दैवः स्त्रियः शम्भो! विना भर्त्रा कथञ्चिद्प्रभो !।
सगुणो निर्गुणो वाऽपि धनाढ्यो वाऽप्यकिञ्चनः ॥ ६ ॥
प्रियो वा यदि वा द्वेष्यःस्त्रीणाम्भर्त्तैव दैवतम् । दुर्भगत्वेनदग्धाहं सखीमध्येसुरेश्वर
भर्त्तुर्यत्दुःखसौख्यास्मि तेन क्लिश्याम्यहं भृशम् ॥ ७ ॥

ईश्वर उवाच

वल्लभा भास्करस्यैव मत्प्रसादाद्भविष्यसि ॥ ८ ॥

पार्वत्युवाच

अप्रमाणं भवद्वाक्यं भास्करोऽपि करिष्यति ।

वृथा क्लेशो भवेदस्याः प्रभायाः परमेश्वर !॥ ६ ॥
उमावाक्यान्महेशान ध्यातस्तिमिरनाशनः ।
आगतो गगनाद्भानुर्नर्मदोत्तररोधसि ॥ १० ॥

भानुरुवाच

आहूतोऽस्मि कथं देव! ह्यवासुरनिषूदन ॥ ११ ॥

ईश्वर उवाच

प्रभां पालय भो भानो! सन्तोषेण परेण हि ॥ १२ ॥

उमोवाच

प्रभायामन्दिरेनित्यंस्थीयतांहिमनाशन । अग्रपत्नीसमस्तानांभार्याणांक्रियतांरवे

भानुरुवाच

एवंदेविकरिष्यामितवाक्यम्वरानने । एतच्छ्रुत्वाप्रभाऽऽहूता प्रत्युवाचमहेश्वरम्

प्रभोवाच

स्वांशेन स्थीयतां देव! मन्मथारे! उमापते !।
एकांशः स्थाप्यतामत्र तीर्थस्योन्मीलनाय च ॥ १५ ॥

श्रीमार्कण्डेय उवाच

सर्वदेवमयं लिङ्गं स्थापितं तत्र पाण्डव! । प्रभासेशइतिख्यातं सर्वलोकेषुदुर्लभम्
अन्यानि यानि तीर्थानि काले तानि फलन्ति वै ।
प्रभासेशस्तु राजेन्द्र सद्यः कामफलप्रदः ॥ १७ ॥
माघमासे सितपक्षे सप्तम्यां च विशेषतः । अश्वं यः स्पर्शयेत्तत्र यथोक्तब्राह्मणेनृप
इन्द्रत्वं प्राप्यते तेन भास्करस्याऽथवा पदम् ।
स्नात्वा परमया भक्त्या दानं दद्याद् द्विजातये ॥ १६ ॥
गोप्रदातालभेत्स्वर्गंसत्यलोकंवरेश्वर । सर्वाङ्गसुन्दरीं शुभ्रां क्षीरिणींतरुणींशुभाम्
सवत्सां घण्टासंयुक्तां कांस्यपात्रावदोहिनीम् ।
ददते ये नृपश्रेष्ठ! न ते यान्ति यमालयम् ॥ २१ ॥

एकोनशततमोऽध्यायः

नागेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततोगच्छेन्महीपालनर्मदादक्षिणे तटे । स्थापितंवासुकीशंतु समस्ताघौघनाशनम्

युधिष्ठिर उवाच

कस्माच्च कारणात्तात रेवाया दक्षिणे तटे ।
वासुकीशः स्थापितो वै विस्तराद्वद मे गुरो !॥ २ ॥

श्रीमार्कण्डेय उवाच

एतत्सर्वं समाख्याय नृत्यं शम्भुश्चकार वै ॥ ३ ॥
श्रमादजायत स्वेदो गङ्गातोयविमिश्रितम् ।
पतन्तमुरगोऽश्नाति हरमौलिविनिर्गतम् ॥ ४ ॥
मन्दाकिनी ततः क्रुद्धा व्यालस्योपरि भारत !।
प्राप्नुह्यजगरत्वं हि भुजङ्ग क्षुद्रजन्तुकः ॥ ५ ॥

वासुकिरुवाच

अनुग्राह्योऽस्मिते पापोदुर्नयोऽहंहराद्वृते । त्रैलोक्यपावनीपुण्यासरित्त्वंशुभलक्षणर
संसारच्छेदनकरीह्यार्त्तानामार्त्तिनाशनी । स्वर्गद्वारेस्थितात्वंहिदयांकुरुमयीश्वरि

गङ्गोवाच

कुरुष्व विपुलं विन्ध्यं तपस्त्वं शङ्करं प्रति ।
ततः प्राप्स्यसि स्वं स्थानं पन्नगत्वं ममाज्ञया ॥ ८ ॥

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततोऽसौ त्वरितो विन्ध्यं नागो गत्वा नगं शुभम् ।
तपस्तप्तुं समारेभे शङ्कराराधनोद्यतः ॥ ९ ॥

नित्यं दध्यौ महादेवं भवसंसारमोचनम् । ततो वर्षशतेपूर्णे उपरुद्धो जगद्गुरुः ॥
आगतस्तत्समीपं तु श्लक्ष्णां वाणीमुदाहरत् ॥ १० ॥
वरं वरय मे वत्स पन्नग त्वं कृपाकर ॥ ११ ॥

वासुकिरुवाच

यदि तुष्टोऽसि मे देव वरं दास्यसि शङ्कर । प्रसादात्तव देवेश भूयान्निष्पापतामम
तीर्थं किञ्चित्समाख्याहि सर्वपापप्रणाशनम् ॥ १२ ॥

ईश्वर उवाच

पन्नगत्वमहाभागादौ गच्छ शुभं तीर्थम् । यास्येतस्यास्तटे पुण्ये स्नानं कुरु यथाविधि
इत्युक्त्वान्तर्दधे देवो वासुकिस्त्वरयान्वितः । रूपेणाऽजगरेणैव प्रविष्टो नर्मदाजलम्
मार्गेण तस्य सञ्जातं जाह्नव्या स्रोत उत्तमम् ।
निर्धूतकल्मषः सर्प सञ्जातो नर्मदाजले ॥ १५ ॥
स्थापितः शङ्करस्तत्र नर्मदायां युधिष्ठिर । ततो नागेश्वरं लिङ्गं प्रसिद्धं पापनाशनम्
अष्टम्यां वा चतुर्दश्यां स्नापयेन्मधुना शिवम् ।
विमुक्तकल्मषः सद्यो जायते नात्र संशयः ॥ १७ ॥
अपुत्रा ये नरा पार्थ स्नानं कुर्वन्ति सङ्गमे ।
ते लभन्ते सुतान्पुत्रान्नागतीर्थोपमान्शुभान् ॥ १८ ॥
श्राद्धं तत्रैव यः कुर्यादुपवासपरायणः । कुलं प्रमोचयेत्प्रेतान्नरकात्पृथिवीनन्दन ॥ १९
सर्पाणां च भयं घोरे ज्ञातिवर्गे न जायते । निर्दोषं नन्दते तस्य कुलं नागप्रसादतः
एतत्ते सर्वमाख्यातं तव स्नेहान्नृपोत्तम ॥ २० ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्ताखण्डे
रेवाखण्डे नागेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णननामैकोनशततमोऽध्यायः ॥ ९९ ॥

शततमोऽध्यायः

मार्कण्डेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेन्महीपाल तीर्थं परमरोचनम्। मार्कण्डेशमिति ख्यातं नर्मदादक्षिणेतटे

उत्तमं सर्वतीर्थानां गीर्व्वाणैर्वन्दितं शिवम्।
गुह्याद् गुह्यतरं पुत्र! नाख्यातं कस्यचिन्मया ॥ २ ॥
स्थापितं तु मया पूर्वं स्वर्गसोपानसन्निभम्।
ज्ञानं तत्रैव मे जातं प्रसादाच्छङ्करस्य च ॥ ३ ॥

अन्यस्तत्रैव यो गत्वा द्रुपदामन्तर्जलेजपेत्। स पातकैरशेषैश्च मुच्यतेपाण्डुनन्दन

वाचिकैर्मानसैश्चैव कर्मजैरपि पातकैः।
पिण्डिकां स्थाप्यचण्डम्य याम्यामाशां स संस्थितः ॥ ५ ॥

योजयेच्छूलिनंभक्त्याद्वात्रिंशद्बहुरूपिणम्। देहपातेशिवं गच्छेदितिमेनिश्चयोनृप
आज्येनबोधयेद्दीपमष्टम्यांनिशिभारत। स्वर्गलोकमवाप्नोति इत्येवं शङ्करोऽब्रवीत्
श्राद्धं तत्रैवयोभक्त्याकुर्व्वीतनृपनन्दन। पितरस्तस्यतृप्यन्तियावदाभूतसम्प्लवम्
इङ्गुदैर्बदरैर्बिल्वैरक्षतेनजलेन वा। तर्प्पयेत्तत्र यो वंश्यानाप्नुयाज्जन्मनः फलम् ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
रेवाखण्डे मार्कण्डेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनंनाम शततमोऽध्यायः ॥१००॥

एकाधिकशततमोऽध्यायः

सङ्कर्षणतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र तीर्थं परमशोभनम् । उत्तरे नर्मदाकूले यज्ञवाटस्य मध्यत
सङ्कर्षणमितिख्यातं पृथिव्यां पापनाशनम् । तपश्चीर्णं पुरा राजन्बलभद्रेणतत्र वै
गीर्वाणा अपि तत्रैव सन्निधीकृपनन्दन ॥ उमयासहित शम्भु स्थितस्तत्रैवकेशवः
बलभद्रेणराजेन्द्रप्राणिनामुपकारत । स्थापित परया भक्त्या शङ्कर पापनाशन
यस्तत्र स्नाति वै भक्त्या जितक्रोधो जितेन्द्रिय ।
एकादश्यां सिते पक्षे मधुना स्नापयेच्छिवम् ॥ ५ ॥
श्राद्ध तत्रैव यो भक्त्या पितृणामथ दापयेत् ।
स याति परम स्थान बलभद्रयथो यथा ॥ ६ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराणएकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे रेवाखण्डे सङ्कर्षणतीर्थमाहात्म्यवर्णननामैकाधिकशततमोऽध्याय ॥ १०१ ॥

द्व्यधिकशततमोऽध्यायः

मन्मथेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

मन्मथेश ततो गच्छेत्सर्वदेवनमस्कृतम् । स्नानमात्राध्वरो राजन्यमलोकनपश्यति
अनपत्या या च नारी स्नायाद्वैपाण्डुनन्दन । पुत्रसाल्मतेपार्थं सत्यसन्धदृढव्रतम्
तत्र स्नात्वा नरोराजञ्छुचि प्रयतमानस ।
१ ।

उपोष्य रजनीमेकां गोसहस्रफलं लभेत् ॥ ३ ॥

कामिकं तीर्थराजं तु तादृशं न भविष्यति । त्रिरात्रं कुरुते राजन् स गोलक्षफलं लभेत्
तत्र नृत्यं प्रकर्त्तव्यं तुष्यते परमेश्वरः । गीतवादित्रनिर्घोषै रात्रौ जागरणेन च ॥

पश्यन्त्यां च महादेवो दृष्टो मे मन्मथेश्वरः ।
किं समर्था यमो रुद्रो भद्रो भद्राणि पश्यति ॥ ६ ॥
कामेन स्थापितः शम्भुरेतस्मात्कामदो नृप !।
सोपानः स्वर्गमार्गस्य पृथिव्यां मन्मथेश्वरः ॥ ७ ॥

विशेषश्चात्रसन्ध्यायांश्राद्धदाने च भारत । अन्नदानेनराजेन्द्र !कीर्त्तितंफलमुत्तमम्

एतत्ते सर्वमाख्यातं तव भक्त्या तु भारत !।
पृथिव्यां सागरान्तायां प्रख्यातो मन्मथेश्वरः ॥ ९ ॥

गोदानं पाण्डवश्रेष्ठत्रयोदश्यांप्रकारयेत् । चैत्रेमासिसितेपक्षे तत्रगत्वाजितेन्द्रियः

रात्रौ जागरणं कृत्वा देवस्याग्रे नृपोत्तम !।
दीपं भक्त्या घृतेनैव देवस्याग्रे निवेदयेत् ॥ ११ ॥
स्त्र्यथवा पुरुषो वाऽपि सममेतत्फलं स्मृतम् ॥ १२ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
रेवाखण्डे मन्मथेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम
द्व्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०२ ॥

एकाधिकशततमोऽध्यायः

सङ्कर्षणतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र तीर्थं परमशोभनम् । उत्तरे नर्मदाकूले यज्ञवाटस्य मध्यत
सङ्कर्षणमिति ख्यातं पृथिव्यां पापनाशनम् । तपश्चीर्णं पुरा राजन्बलभद्रेण तत्र वै
गीर्वाणा अपि तत्रैव सन्निधीनृपनन्दन ।। उमयासहित शम्भु स्थितस्तत्रैव केशव
बलभद्रेण राजेन्द्र भाविना मुपकारत । स्थापित परया भक्त्या शङ्कर पापनाशन

यस्तत्र स्नाति वै भक्त्या जितक्रोधो जितेन्द्रिय ।
एकादश्यां सिते पक्षे मधुना स्नापयेच्छिवम् ॥ ५ ॥
श्राद्धं तत्रैव यो भक्त्या पितृणामथ दापयेत् ।
स याति परमं स्थानं बलभद्रवचो यथा ॥ ६ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
रेवाखण्डे सङ्कर्षणतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नामैकाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०१ ॥

द्व्यधिकशततमोऽध्यायः

मन्मथेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

मन्मथेशं ततो गच्छेत्सर्वदेवनमस्कृतम् । स्नानमात्राद्धरो राजन्यमलोकं न पश्यति
अनपत्या या च नारी स्नायाद्वै पाण्डुनन्दन । पुत्रं सा लभते पार्थ सत्यसन्धं दृढव्रतम्

तत्र स्नात्वा नरो राजञ्छुचि प्रयतमानस ।

उपोष्य रजनीमेकां गोसहस्रफलं लभेत् ॥ ३ ॥
कामिकंतीर्थराजंतु नादृशं न भविष्यति । त्रिरात्रंकुरुतेराजन् स गोलक्षफलंलभेत्
तत्र नृत्यं प्रकर्त्तव्यं तुष्यते परमेश्वरः । गीतवादित्रनिर्घोषै रात्रौ जागरणेन च ॥
एरण्ड्यां च महादेवो दृष्टोमे मन्मथेश्वरः ।
किं समर्था यमो रुष्टो भद्रो भद्राणि पश्यति ॥ ६ ॥
कामेन स्थापितः शम्भुस्तस्मात्कामदो नृप !।
सोपानः स्वर्गमार्गस्य पृथिव्यां मन्मथेश्वरः ॥ ७ ॥
चित्रैश्चात्रसन्ध्यायांश्राद्धदाने च भारत । अन्नदानेनराजेन्द्र !कीर्त्तितंफलमुत्तमम्
एतत्ते सर्वमाख्यातं तव भक्त्या नु भारत !।
पृथिव्यां सागरान्तायां प्रख्यातो मन्मथेश्वरः ॥ ९ ॥
गोदानं पाण्डवश्रेष्ठत्रयोदश्यांप्रकारयेत् । चैत्रेमासिसितेपक्षे तत्रगत्वाजितेन्द्रियः
रात्रौ जागरणं कृत्वा देवस्याग्रे नृपोत्तम !।
दीपं भक्त्या घृतेनैव देवस्याग्रे निवेदयेत् ॥ ११ ॥
स्त्र्यथवा पुरुषो वाऽपि सममेतत्फलं स्मृतम् ॥ १२ ॥

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
रेवाखण्डे मन्मथेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम
द्व्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०२ ॥

— —

एकाधिकशततमोऽध्यायः

मङ्कणतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेत् राजेन्द्र तीर्थं परमशोभनम् । उत्तरे नर्मदाकूले पापक्षयं मध्यत
मङ्कणमिति विख्यातं पृथिव्यां पापनाशनम् । तीर्थानां पुरा राजन्मङ्कणेन च वै
शोधिता यदि तत्रैव सन्निधौ नृपनन्दन । उमया सहितः शम्भुः स्थितस्तत्रैव केशव
यन्मङ्कणराजेन्द्रप्राणिनामुपकारक । स्नाति यः परया भक्त्या शङ्करं पापनाशन

यस्तत्र स्नाति वै भक्त्या जितक्रोधो जितेन्द्रियः ।
एकादश्यां सिते पक्षे मधुना स्नापयेच्छिवम् ॥ ५ ॥
श्राद्धं तत्रैव यो भक्त्या पितॄणामथ दापयेत् ।
स याति परमं स्थानं यत्र रुद्रपदो यथा ॥ ६ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे रेवाखण्डे मङ्कणतीर्थमाहात्म्यवर्णनंनामैकाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०१ ॥

द्व्यधिकशततमोऽध्यायः

मन्मथेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

मन्मथेशं ततो गच्छेत्सर्वदेवनमस्कृतम् । स्नानमात्रान्नरो राजन्यमलोकं न पश्यति
अनपत्या या च नारी स्नायाद्दीपाण्डुनन्दन । पुत्रसाप्नोति पार्थ सत्यसन्धद्दुमतम्
तत्र स्नात्वा नरो राजञ्छुचिः प्रयतमानसः ।

पतन्तं रक्षयेद्विप्र महापातकिनं यदि। महाघोरे गता वापि दुष्टकर्मपितामहाः॥
तद्धरन्ति सुपुत्राश्च वैतरण्यां गतानपि।
पुत्रेण लोकाञ्जयति पौत्रेण परमा गतिः॥ १४॥
अथ पुत्रस्य पौत्रेण प्रगच्छेद्ब्रह्म शाश्वतम्।
नास्ति पुत्रसमो बन्धुरिह लोके परत्र च॥ १५॥
अहश्चमध्यरात्रे च चिन्तयानस्यसर्वदा। शुष्यन्तिममगात्राणि ग्रीष्मेनह्युदकंयथा

अनसूयोवाच

यत्त्वया शोचितं विप्र! तत्सर्वं शोचयाम्यहम्।
तवोद्वेगकरं यच्च तन्मे दहति चेतसि॥ १७॥
येन पुत्रा भविष्यन्ति आयुष्मन्तो गुणान्विताः।
तत्कार्यं च समीक्षस्व येन तुष्येत्प्रजापतिः॥ १८॥

अत्रिरुवाच

तपस्तप्तं मया भद्रे जातमात्रेण दुष्करम्। व्रतोपवासनियमैः शाकाहारेणसुन्दरि
क्षीणदेहस्तु तिष्ठामि ह्यशक्तोऽहंमहाव्रते। तेन शोचामिचात्मानंरहस्यंकथितंमया

अनसूयोवाच

भर्तुः पतिव्रतानारीरतिपुत्रविवर्धिनी। त्रिवर्गसाधनासाच श्लाघ्याचविदुषांजने
जपस्तपस्तीर्थयात्रा मृडेज्यामन्त्रसाधनम्।
देवताराधनं चैव स्त्रीशूद्रपतनानि षट्॥ २२॥
ईदृशं तु महादोषं स्त्रीणां तु व्रतसाधने। वदन्ति मुनयः सर्वे यथोक्तं वेदभाषितम्
अनुज्ञाता त्वया ब्रह्मंस्तपस्तप्स्यामि दुष्करम्।
पुत्रार्थित्वं समुद्दिश्य तोषयामि सुरोत्तमान्॥ २४॥

अत्रिरुवाच

साधुसाधु महाप्राज्ञे ममसन्तोषकारिणि। आज्ञाता त्वं महाभद्रेपुत्रार्थंतपआश्रय
देवतानां मनुष्याणां पितॄणामनृणोभवे। नभार्यासदृशो बन्धुस्त्रिपुलोकेषुविद्यते

तेन देवाः प्रशंसन्ति न भार्यासदृशं सुखम् ।
सन्मुखे सन्मुखाः पुत्राः विलोमे तु पराङ्मुखाः ॥ २७ ॥
तेन भार्यां प्रशंसन्ति सदेवासुरमानुषाः । महासने महाप्राज्ञे सत्रयति शुभेक्षणे
तपश्चरस्व शीघ्रं त्वं पुत्रार्थं तु ममाज्ञया ।
एतद्वाक्यावसाने तु भार्याऽङ्ग प्रणताऽब्रवीत् ॥ २८ ॥
त्वत्प्रसादेन विप्रेन्द्र सर्वान्कामानवाप्नुयाम् ।
हंसलीलागति सा च मृगाक्षी वरवर्णिनी ॥ ३० ॥
नियमस्था ततो भूत्वा सम्प्राप्ता नर्मदां नदीम् ।
शिवस्वेदोद्भवां देवीं सर्वपापप्रणाशिनीम् ॥ ३१ ॥
यस्या दर्शनमात्रेण नश्यते पापसञ्चयः । स्नानमात्रेण वै यस्या अश्वमेधफलं लभेत्
ये पिबन्ति महादेवि श्रद्दधाना पयः स्वयम् ।
पयःपानेन तत्तुल्य नाऽत्र कार्या विचारणा ॥ ३२ ॥
ये स्मरन्ति त्रिसंध्यायां योजनानां शतैरपि । मुच्यन्ते सर्वपापेभ्यो रुद्रलोकं प्रयान्ति ते
नर्मदायाः समीपे तु तावुभौ यावदक्षये । न पश्यन्ति यमं तत्र ये स्नाता वरवर्णिनि
ततस्तु गत्वा कूले एरण्ड्याः सङ्गमे शुभे ।
नियमस्था विशालाक्षी शाकाहारेण सुन्दरि ॥ ३६ ॥
तोषयन्ती शीघ्रं देवमच्युतं स्तोत्रैर्व्रतैस्तथा ।
ग्रीष्मेषु च महादेवि पञ्चाग्निं साधयेत्सती ॥ ३७ ॥
वर्षाकाले चार्द्रवासाश्चान्द्रायणानि च ।
हेमन्ते तु ततः प्राप्ते तोयमध्ये वसेत्सदा ॥ ३८ ॥
प्रातःस्नानं ततः सन्ध्या कुशाद्यैर्वितर्पणम् । देवानामर्चनं कृत्वा होमं कुर्याद्यथाविधि
यतते कन्यकांस्तांस्तान्स्नानजाप्यहुतेन च । एवं वर्षशते प्राप्ते रुद्रविष्णुपितामहाः
सम्प्राप्ता द्विजरूपेण तेऽरण्ड्याः सङ्गमे प्रिये ।
पुनः संस्थितास्तस्या वेदमभ्युदीरन्ति च ॥ ४१ ॥

अनसूया जपं त्यक्त्वा निरीक्ष्य तान्मुहुर्मुहुः ।
उत्थिता सा विशालाक्षी अर्घं दत्त्वा यथाविधि ॥ ४० ॥
अद्य में सफलं जन्म अद्य मे सफलं तपः । दर्शनेन तु विप्राणां सर्वपापैः प्रमुच्यते
प्रदक्षिणं ततः कृत्वा साष्टाङ्गं प्रणताऽब्रवीत् ।
कन्दमूलफलं शाकं नीवाराननपि पावनान् ।
प्रयच्छाम्यहमद्यैव मुनीनां भावितात्मनाम् ॥ ४४ ॥

विप्रा ऊचुः

तपसा तु विचित्रेण तपःसत्येनसुव्रते । तृप्ताः स्म सर्वकामैस्तु सुव्रते तवदर्शनात्
अस्माकंकौतुकं जातंतापसेनव्रतेनय ा । स्वर्गमोक्षसुतस्याऽर्थेतपस्तपसिदुष्करम्

अनसूयोवाच

तपसा सिध्यतेस्वर्गस्तपसापरमागतिः । तपसाचार्थकामौचतपसागुणवान्सुतः
तप एव च मे विप्राः सर्वकामफलप्रदम् ॥ ४७ ॥

विप्रा ऊचुः

तन्वी श्यामा विशालाक्षी स्निग्धाङ्गी रूपसंयुता ।
हंसलीलागतिगमा त्वं च सर्वाङ्गसुन्दरी ॥ ४८ ॥
किं च ते तपसा कार्यमात्मानं शोच्यसे कथम् ॥ ४६ ॥

अनसूयोवाच

यदिरुद्रश्च विष्णुश्च स्वयंसाक्षात्पितामहः । गूढरूपधराः सर्वे तच्चिह्नमुपलक्षये ॥
तस्या वाक्यावसाने तु स्वरूपं दर्शयन्ति ते ।
स्वस्वरूपैः स्थिता देवाः सूर्यकोटिसमप्रभाः ॥ ५१ ॥
चतुर्भुजो महादेवि! शङ्खचक्रगदाधरः । अतसीपुष्पवर्णस्तु पीतवासा जनार्दनः
गरुत्मान्वाहनं यस्यश्रियाचसहितोहरिः । प्रसन्नवदनःश्रीमान्स्वयंरूपोव्यवस्थितः
पीतवासा महादेवि! चतुर्वदनपङ्कजः । हंसोपरि समारूढो ह्यक्षमालाकरोद्यतः ॥
आगतो नर्मदातीरे ब्रह्मा लोकपितामहः ।

योऽसौ सर्वजगद्व्यापी स्वयं साक्षान्महेश्वरः ॥ ५५ ॥
वृषभ ॥ समारूढोदशबाहुसमन्वितः । भस्माङ्गरागशोभाढ्य पञ्चवक्त्रस्त्रिलोचनः
जटामुकुटसंयुक्तः इन्दुचन्द्रार्धशेखरः । एवरूपधरो देवः सर्वव्यापी महेश्वरः ॥ ५७
अनसूया निरीक्ष्यैतान्देवाना दर्शनं परम् । वेपमाना ततः साध्वीसुरान्दृष्ट्वा मुहुर्मुहुः
अनसूयोवाच
किंत्वाकारस्वरूपास्तु विष्णुरुद्रपितामहाः । एतद्वेदितुमिच्छामि ह्यशरस्वय तुमे
ब्रह्मोवाच
आगृह्यकागोऽहवस्त्वा आपद्धेय प्रकीर्तिता । वेदरूपो ह्यहंप्रोक्तो येययामि च भूतले
अहं सर्वाणि बीजानि प्राकम्यव्याप्नुदिते रवौ ।
एतद्वै कारणं सर्वं रहस्यं कथितं परम् ॥ ६१ ॥
विष्णुरुवाच
हेमन्तश्च भवेद्विष्णुर्विश्वरूपधराधरम् । पालनाय चलत्सर्वं विष्णोर्माहात्म्यमुत्तमम्
रुद्र उवाच
ग्रीष्मकालोऽहं प्रोक्तः सर्वभूतक्षयङ्करः । कथयामि च तत्सर्वं रुद्ररूपस्तपस्विनि
एवं ब्रह्मा च विष्णुश्च रुद्रश्चैव महाव्रते । त्रयोदेवास्त्रयः सन्ध्यास्त्रयः कालास्त्रयोऽग्नयः
तथा ब्रह्मा च विष्णुश्च रुद्रश्चैकात्मतां गताः ।
वरं वृणुष्व ते भद्रे यस्त्वया मनसेप्सितम् ॥ ६० ॥
अनुसूयोवाच
धन्या पुण्या ह्यहं लोके श्लाघ्या धन्या च सर्वदा ।
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च प्रसन्नवदना शुभा ॥ ६ ॥
यदि तुष्टास्त्रयो देवा दया कृत्वा ममोपरि ।
अस्मिंस्तीर्थे तु सान्निध्याद्वरदा भवन्तु मे सदा ॥ ६७ ॥
रुद्र उवाच
एवं भवतु तं वाक्यं यत्त्वयाप्रार्थितं शुभे । प्रत्यक्षा वैष्णवीमाया एरण्डीनामनामतः

यस्यादर्शनमात्रेण नश्यतेपापसञ्चयः । चैत्रमासे तु सम्प्राप्तेअहोरात्रोषितो भवेत्
एरण्ड्याः सङ्गमे स्नात्वा ब्रह्महत्यां व्यपोहति ।
रात्रौ जागरणं कुर्यात्प्रभाते भोजयेद् द्विजान् ॥ ७० ॥
यथोक्तेनविधानेनपिण्डंदद्याद्यथाविधि । प्रदक्षिणां ततो दद्याद्धिरण्यं वस्त्रमेव च
रजतं च तथा गावो भूमिदानमथाऽपिवा ।
सर्वं कोटिगुणं प्रोक्तमिति स्वायम्भुवोऽब्रवीत् ॥ ७२ ॥
ये म्रियन्ति नरा देवि! एरण्ड्याः सङ्गमे शुभे । यावद्युगसहस्रंतु रुद्रलोकेवसन्ति ते
अहोरात्रोषितो भूत्वा जपेद्रुद्रांश्च वैदिकान् ।
एकादशैकसञ्ज्ञांश्च स याति परमां गतिम् ॥ ७४ ॥
विद्यार्थी लभते विद्यां धनार्थी लभते धनम् ।
पुत्रार्थी लभते पुत्राँल्लभेत्कामान्यथेप्सितान् ॥ ७५ ॥
एरण्ड्याः सङ्गमे स्नात्वा रेवाया विमले जले ।
महापातकिनो वाऽपि ते यान्ति परमां गतिम् ॥ ७६ ॥

अनसूयोवाच

यदितुष्टास्त्रयोदेवा मम भक्तिप्रचोदिताः । मम पुत्रा भवन्त्वेव हरिरुद्रपितामहाः

विष्णुरुवाच

पूज्या यत्पुत्रतां यान्ति न कदाचित्कृतं मया ।
शुभे ददामि पुत्रांस्ते देवतुल्यपराक्रमान् । रूपवन्तो गुणोपेतान्यज्विनश्चबहुश्रुतान्

अनसूयोवाच

ईप्सितंतच्च दातव्यं यन्मया प्रार्थितंहरे !। नान्यथाचैव कर्त्तव्याममपुत्रैषणा तु या

विष्णुरुवाच

पूर्वं तु भृगुसम्वादे गर्भवासउपार्जितः । । तस्याहं नैवपारंतु नैव पश्यामि शोभने
स्मरमाणः पुरावृत्तं चिन्तयामि पुनः पुनः । एवंसञ्चिन्त्यतेदेवाः पितामहमहेश्वराः
अयोनिजाभविष्यामस्तव पुत्रा वरानने !। योनिवासेमहाप्राज्ञिदेवानैवव्रजन्तिच

सान्निध्यात्सङ्गमे देवि लोकानां तु वरप्रदा ।
वरपदी वैष्णवी माया प्रत्यक्षा त्वं भविष्यसि ॥ ८३ ॥
त्रयो देवा स्थिता पार्थ रेवाया उत्तरे तटे ।
वरप्राप्ता तु सा देवी गता माहेन्द्रपर्वतम् ॥ ८४ ॥

क्षीणाङ्गीशुष्कदेहा च रूक्षकेशा सुदारुणा । कृतयज्ञोपवीतासातपोनिष्ठाशुभेक्षण
शिलातलनिषिण्णोऽसौ दृष्ट कान्तो महायशा ।
दृष्ट्वा चित्तोऽभवद्देवि उत्तिष्ठोत्तिष्ठ साऽब्रवीत् ॥ ८६ ॥

अत्रिरुवाच

साधुसाधु महाप्राज्ञे ह्यनसूये महाव्रते ।
अचिन्त्य गालवादीना वरं प्राप्ताऽसि दुर्लभम् ॥ ८७ ॥

अनसूयोवाच

त्वत्प्रसादेनदेवर्षे वरप्राप्तास्मिदुर्लभम् । तेनदेवा प्रशसन्ति सिद्धाश्चऋषयोऽमला
एवमुक्ता तु सा देवी हर्षेण महता युता । आलोकयेतत कान्तलेनाऽपि शुभदश ना
ईक्षणाच्चैव सधात ललाटे मण्डल शुभम् । नवयोजनसाहस्रमण्डलरश्मिभिवृतम्
कदम्बगोलकाकारत्रिगुण परिमण्डलम् । तस्यमध्ये तु ददेशि पुरुषोदिव्यरूपधृक
हेमवर्णोऽमृतमय सूर्यकोटिसमप्रभ । आद्य पुत्रोऽनसूयाया स्वयसाक्षात्पितामह

चन्द्रमा इतिविख्यात सोमरूपो नृपात्मज ।
इष्टापूर्त च सप्नाति कलाषोडशकेन ॥ ९३ ॥
प्रतिपच्च द्वितीया च तृतीया च महेश्वरि ।
चतुर्थी पञ्चमी चैव अव्यया षोडशी कला ॥ ९४ ॥
चतुर्विधस्य लोकस्य सूक्ष्मो भूत्वा वरानने ।
आप्रीणाति जगत्सर्वं त्रैलोक्य सचराचरम् ॥ ९५ ॥

सर्वे ते ह्युपजीवन्ति हुत दत्त शशिस्थितम् । वनस्पतिगतेसोमे वनवाश्च वरानने
मुञ्जपरगृहे मृदो दहेद्वस्त्रत शुभम् । वनस्पतिगते सोमे यस्तु छिन्द्याद्वनस्पतिन्

तेन पापेन देवेशि! नरा यान्ति यमालयम् ॥ ६७ ॥

वनस्पतिगते सोमे मैथुनं यो निषेवते । ब्रह्महत्यासमं पापं लभते नाऽत्र संशयः ॥

वनस्पतिगते सोमे मन्थानं योऽधिवाहयेत् ।
गावस्तस्य प्रणश्यन्ति याश्च वै पूर्वसञ्चिताः ॥ ९९ ॥
वनस्पतिगते सोमे ह्यध्वानं योऽधिगच्छति ।
भवन्ति पितरस्तस्य तं मासं रेणुभोजनाः ॥ १०० ॥
अमावास्यां महादेवि! यस्तु श्राद्धप्रदो भवेत् ।
अब्दमेकं विशालाक्षि! तृप्तास्तत्पितरो ध्रुवम् ॥ १०१ ॥

हिरण्यं रजतं वस्त्रं यो ददाति द्विजातिषु । सर्वलक्षगुणं देवि लभते नाऽत्रसंशयः
एवं गुणविशिष्टोऽसौ सोमरूपः प्रजापतिः । सञ्जातःप्रथमःपुत्रो ह्यनसूयासुनन्दनः
द्वितीयस्तुमहादेविदुर्वासानामनामतः । सृष्टिसंहारकर्त्ता च स्वयंसाक्षान्महेश्वरः
अग्निमध्यगतोदेवितपस्तपतिदुष्करम् । सोऽपि रुद्रत्वमायातिसम्प्राप्तेभूतविप्लवे

इन्द्रोऽपि शप्तस्तेनैव दुर्वाससा वरानने !।
द्वितीयस्य तु पुत्रस्य सम्भवः कथितो मया ॥ १०६ ॥

दत्तात्रेयस्वरूपेण भगवान्मधुसूदनः । जयद्व्यापी जगन्नाथः स्वयंसाक्षाज्जनार्द्दनः
एते देवास्त्रयः पुत्रा अनसूयाया महेश्वरि । वरदानेन ते देवा ह्यवतीर्णा महीतले
पुत्रप्राप्तिकरंतीर्थं रेवायाश्चोत्तरे तटे । अनसूयाकृतं पार्थ ! सर्वपापक्षयं परम् ॥

श्रीमार्कण्डेय उवाच

आश्चर्यभूतं लोकेऽस्मिन्नर्मदायां पुरातनम् ।
भ्रूणहत्या गतास्तत्र ब्राह्मणस्य नराधिप !॥ ११० ॥

युधिष्ठिर उवाच

इतिहासं द्विजश्रेष्ठ कथयस्व ममाऽनघ । सर्वपापहरंलोके दुःखार्त्तस्यचकथ्यताम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

सुवर्णशिलके ग्रामे गौतमान्वयसम्भवः । कपीचलो महादेवि! भार्यापुत्रसमन्वितः

पमते तत्र गोविन्द सञ्जातो पितुः कुले । पुत्रदारसमोपेतो गृहक्षेत्ररतः सदा ॥
शकटं पूरयित्वा तु काष्ठानामगमद् गृहम् ।
प्रभिन्नानि च काष्ठानि क्षोकार्ता क्षुधयाऽन्वित ॥ ११४ ॥
रिक्तमापन्नतदा पुत्र पितुः शब्दात्समागत ।
न दृष्टवान स पुत्र काष्ठे मध्याह्निकोऽपरा ॥ ११५ ॥
आगमन्त्यचरितो गेहे पिपासार्तो नराधिप ।
शकटं मोच्य मन्दारि सपूर्व रज्जुसंयुतम् ॥ ११६ ॥
आयान्त्यैवयाहृणाचित्ता पगर्यत्तिनी । दृष्टानिपातितपुत्रकाष्ठैर्निर्भिन्नमस्तक
श्रन्तःस्मामा करणं निक्षिप्त कोलिका शिशुम् ।
शुश्रूषते रता माध्वी प्रियस्य च नराधिप ॥ ११८ ॥
मन स्नानादिकं कृत्वा भोजनाच्छयन शुभम् ।
पुत्र पुत्रपना श्रेष्ठा तु स्थापयति सा शनै ॥ ११९ ॥
पदाघातोदितः सुत पुत्र पञ्चत्वमागत । तदा सा दीनवदना रुरोद च मुमोह च
नष्टः त्या नदिन शार्ङ्ग गोविन्दग्रस्तमानस ।
विमिन्नदिति व्योक्त्वा तु पतितो धरणीतले ॥ १२१ ॥
शायनीसुतकेशौतुभूमौनिपतितोनृप । विलपानेघरा नेन्द्रनिश्वासोच्छ्वासितेनच
एक पश्यै ब्राह्मणं पुत्र दृष्ट्वा पतितमातुरम् । सधारयिष्येहृदयं स्फुटितं तव कारणे
स्यक्त मान्न यशो नियमस्तथा कुग्मलतिम् ।
दृष्ट्वा किमनृणीभूतो यास्यामि परमां गतिम् ॥ १२४ ॥
मम वृद्धस्य क्षान्तस्य गतिस्त्वं किल पुत्रक ।
एते मनोरथा सर्वे चिन्तिता चिरश्रा गता ॥ १२५ ॥
इमा तु विकला दीना विहीना सुतबान्धवै ।
रुदन्ती पतिता पाहि मातरं धरणीतले ॥ १२६ ॥
सुत । तेन पुत्र इतिप्रोक्त स्त्वयमेवस्त्वयम्भुवा

अपुत्रस्य गृहं शून्यं दिशः शून्या ह्यबान्धवाः ।
मूर्खस्य हृदयं शून्यं सर्वशून्यं दरिद्रता ॥ १२८ ॥

मृगाऽयं वदतेलोकश्चन्दनंकिल शीतलम् । पुत्रगात्रपरिष्वङ्गश्चन्दनादपि शीतलः
श्मश्रुग्रहणक्रीडन्तंधूलिधूसरिताननम् पुण्यहीनानपश्यन्तिनिजोत्सङ्गसमास्थितम्

दिगम्बरं गतव्रीडं जटिलं धूलिधूसरम् ।
पुण्यहीना न पश्यन्ति गङ्गाधरमिवात्मजम् ॥ १३१
वीणावाद्यस्वरो लोके सुस्वरः श्रूयते किल ।
रुदितं बालकस्यैव तस्मादाह्लादकारकम् ॥ १३२ ॥

मृगपक्षिषु काकेषु पशूनां स्वरयोनिषु । पुत्रं तेषु समस्तेषु वल्लभं ब्रुवते बुधाः ॥

मत्स्याश्चप्रकराश्चैव कूर्मग्राहादयोऽपि वा ।
पुत्रोत्पत्तौ च हृष्यन्ति विपत्तौ यान्ति दुःखिताम् ॥ १३४ ॥

देवगन्धर्वयक्षाश्च हृष्यन्तेपुत्रजन्मनि । पश्चत्वेतेऽपिशोचन्तिमन्दभाग्योऽस्मिपुत्रक
ऋषिमेलापकं चक्रे पुत्रार्थं राघवो नृप । इन्द्रस्थानेस्थितस्तस्यप्रोक्षतेह्यासनंयतः

स्वर्गवासं सुताद्वाह्यं विद्यते न तु पाण्डव ॥
चक्रे दशरथस्तस्मात्पुत्रार्थं यज्ञमुत्तमम् ॥ १३७ ॥
रामोलक्ष्मणशत्रुघ्नौ भरतस्तत्र सम्भवात् ।
कार्त्तवीर्यो जितो येन रामेणाऽमिततेजसा ॥ १३८ ॥

स रामो रामचन्द्रेण अष्टवर्षेण निर्जितः । एकाकिनाहतोवाली प्लवगः शत्रुदुर्जयः
रावणो ब्रह्मपुत्रो यत्त्रैलोक्यं यस्य शङ्कते । हतः स रामचन्द्रेण सपुत्रःसहबान्धवः

एवं पुत्रं विना सौख्यं मर्त्यलोके न विद्यते ।
वंशार्थे मैथुनं यस्य स्वर्गार्थे यस्य भारती ॥ १४१ ॥
मृष्टान्नं ब्राह्मणस्यार्थे स्वर्गं वासं तु यान्ति ते ।
ब्रह्महत्याश्वमेधाभ्यां न परं पापपुण्ययोः ॥ १४२ ॥
पुत्रोत्पत्तिविपत्तिभ्यां न परं सुखदुःखयोः ।

किं ब्रवीर्मामिति भो वत्स' न तु सौख्य सुत विना ॥ १४२ ॥

एव बहुविध दुःख प्रलपित्वापुन पुन । जनैश्चाश्वासितोविप्रो बालगृहाद्बहिर्गत
तत सस्कृत्य त बाल विधिदृष्टेनकर्मणा । समवेतौतुदुःखार्त्तावागतौस्वगृहं पुन
एवगृहागते विप्रेशान्निर्जाता युधिष्ठिर । भूमौ प्रसुप्तो गोविन्द पुत्रशोकेनपीडित

यावन्निरीक्षते भार्या भर्तार दु खपीडितम् ।
कृमिराशिगत सर्व गोविन्द समपश्यत ॥ १४७ ॥
दुःखाद्दु दुःखतरे मग्ना दृष्ट्वा त पातकान्वितम् ।
एव दुःखनिमग्नाया शर्वरी विगता तदा ॥ १४८ ॥
पशुपालस्तु महिषीं मुक्त्वाऽरण्येऽगमद् गृहात् ।
अरण्ये महिषीं सदा रक्षयित्वा गृहागतः ॥ १४६ ॥
विज्ञप्त पशुपालेन गोविन्दो ब्राह्मणोत्तम ।
यावद्गोस्याम्यह स्वामिन्नहिषीस्त्वं च रक्ष से ॥ १५० ॥

तत सत्वरितोविप्रोन्गतामममहिषीप्रति । ततश्चमहिषीपश्येत्पश्चात्क्लेशाभिसन्मुखम्
धावमानश्च विप्रन्तु एरण्डीसद्मे गत । तत प्रविष्टस्तुजले रथैरण्डपोस्तुलगमे

तज्जल पीतमात्र तु त्वरया चातितर्पित ।
अञ्जलमास्सलिलं पीत्वा प्रक्षाल्य नयने शुभे ॥ १५३ ॥

आनगामतत पश्चाद्भुवनदिवसक्षये । भुक्त्वादन्नान्वितोरात्रौगोविन्दशयनयर्यौ
निद्राभिभूत शोकेन धर्मेणैवनुसेदित । पुनस्तस्यार्धरात्रे तु तस्य भार्यायुधिष्ठिर

कृमिभिर्वेष्टित गात्र क्वचित्पश्यत्यवेष्टितम् ।
पुन सा विस्मयाऽविष्टा तस्य भार्या गुणान्विता ॥
उवाच दुःखेन तस्य साध्वमाविष्टचेतसा ॥ १५४ ॥

भार्योवाच

अतीतेपञ्चमेघाहित्विन्धनक्षिपतस्तुते । गृहपश्चाद्गतावालो ह्यज्ञानाद्घातितस्त्वया
मया तन्पातक घोर रहस्य न प्रकाशितम् ।

तेन प्रच्छन्नपापेन दह्यमाना दिवानिशम् ॥ १५८ ॥
न सुखं तव गात्रस्य पश्यामि न हि चात्मनः ।
निद्रा मम शमं याता रतिश्चैव त्वया सह ॥ १५९ ॥
श्रूयते मानवे शास्त्रे श्लोको गीतो महर्षिभिः ।
स्मृत्वा स्मृत्वा तु तं चित्ते परितापो न शाम्यति ॥ १६० ॥
कीर्त्तनान्नश्यते धर्म्मो वर्धतेऽसौ निगूहनात् ।
इह लोके परे चैव पापस्याऽप्येवमेव च ॥ १६१ ॥
एवं सञ्चिन्त्यमानाऽहं स्थिता रात्रौ भयातुरा ।
कृमिराशिगतं त्वां हि कस्याऽहं कथयामि किम् ॥ १६२ ॥
पुनस्त्वंचाऽद्यमेदृष्टोभ्रूणहत्याकृमिश्रितः । कश्चिद्भिन्दन्तितेगात्रंकश्चिन्नष्टाःसमन्ततः
एतत्संस्मृत्य संस्मृत्य विमृशामि पुनः पुनः ।
न जाने कारणं किञ्चित्पृच्छन्त्याः कथयस्व मे ॥ १६४ ॥
तडागं वा सरिद्वाऽपि तीर्थं वा देवतार्च्चनम् ।
यं गतोऽसि प्रभावोऽयं तस्य नाऽन्यस्य मे स्थितम् ॥ १६५ ॥
एवमुक्तस्तुविप्रोऽसौकथयामास भारत । भार्याया यद्दिवावृत्तं शङ्कमानोनृपोत्तम
अद्य[illegible] महिषीसार्थंएरण्डीसङ्गमं गतः । नाभिमात्रे जले गत्वापीतवान्सलिलंबहु
नान्यत्तीर्थं विजानामि सरितं सर एव वा ।
सत्यं सत्यं पुनः सत्यं कथितं तव भामिनि !॥ १६८ ॥
एवं ज्ञात्वा सा सर्वमुपवासकृतक्षणा । सपत्नीको गतस्तत्र सङ्गमे वरवर्णिनि !॥
स्नात्वा तत्र जले रम्ये नत्वा देवं तु भास्करम् ।
स्नापयामास देवेशं शङ्करं चोमया सह ॥ १७० ॥
पञ्चगव्यघृतक्षीरैर्दधिक्षौद्रघृतैर्जलैः । गन्धमाल्यादिधूपैश्च नैवेद्यैश्च सुशोभनैः ॥
पूज्यत्रयीमयंलिङ्गं देवींकात्यायनींशुभाम् । रात्रौजागरणंकृत्वापत्यासहपतिव्रता
ततः प्रभाते विमले द्विजान्सम्पूज्य यत्नतः । गोदानेन हिरण्येन वस्त्रेणान्नेन भारत

गोविन्दं पूजयामास स्वशक्त्या ब्राह्मणान्बहुमान्।
पुनःपापो गृहायात स्वभार्यासहितो नृप ॥ १७५ ॥
एवं यः शृणुते भक्त्या गोविन्दाख्यानमुत्तमम्।
पठते परया भक्त्या श्रूयताम् प्रणश्यति ॥ १७६ ॥
श्रीडने शार्ङ्ग स्नेह यावदाभूतसम्प्लवम्। यच्चैवाप्यमुने मासि मैत्रेया नृपसत्त
नमस्या च मिते पक्षे मोचयात्मो जितेन्द्रिय ।
सान्निध्यं यामनो कृत्वा यो धर्मेच्छिपमन्दिरे ॥ १७७ ॥
ध्यायमाना विश्वार्थ विशुक्लकरसंस्थितम्।
धर्मानुगतिहस्ताग्रं शङ्खचक्रगदाधरम् ॥ १७८ ॥
पक्षिराजसमारूढं त्रैलोक्यवरदायकम्। पितामह ततो ध्यायेद्ब्रह्मरूपं चतुराननम्
मागमं समस्तस्य कमलाकरवासिनम्। योगोपं वमने तत्र विधये स्थानउक्तं
मतः प्रभाते पितृन्तरगम्याच्च नराधिप। ब्राह्मणान्पूजयेद्भक्त्या सर्वदोषविवर्जितान्
मधाययवमसृणान्मषशास्त्रविशारदान्।
घटाम्बामनमाचिन्त्य स्वदारनिरतान्सदा ॥ १८२ ॥
श्राद्धदानेष्वतै याग्यान्ब्राह्मणान्वाण्डुतन्मतं। प्रेतानां पूजन तत्र देवपूर्वं समारभेत्
प्रत्यान्मुख्यन शीघ्रमेण्हया पिण्डतर्पणे ।
स्नानानि तत्र देयानि दानमुख्यानि सर्वदा ॥ १८४ ॥
हिरण्यभूमिकन्याश्च धुर्याहाँ शुभलक्षणौ।
मीनेण माहिनौ पाथ धान्य द्रोणकमण्डल्यया ॥ १८५ ॥
अलङ्कृता सवत्सा च क्षीरिणी तरुणीं सिताम्।
रक्ता वा कृष्णवर्णा वा पाटला कपिला तथा ॥ १८६ ॥
कांस्यदोहनसंयुक्ता रुक्मखुरविभूषणाम्।
स्वर्णशृङ्गीं सवत्सां च ब्राह्मणायोपपादयेत् ॥ १८७ ॥
प्रीयतामे जगन्नाथो हरकृष्णपितामहाः। संसाररक्षणीं देवी सुरभी मां समुद्धरेत

पुत्रार्थं याः स्त्रियःपार्थ! ह्येरण्डीसङ्गमे नृप। स्नाप्यन्तेरुद्रसूक्तैश्चचतुर्वेदोद्भवैस्तथा
चतुर्भिर्ब्राह्मणैःशस्तं द्वाभ्यां योग्यैश्च कारयेत्।
एकेन सार्द्रकुम्भेन दाम्पत्यमभिषेचयेत् ॥ १६० ॥
देवज्ञेनैव चैकेन अथवा सामगेन वा। पञ्चरत्नसमायुक्तं कुम्भे तत्रैव कारयेत्॥
गन्धतोयसमायुक्तं सर्वौषधिविमिश्रितम्। आम्रपल्लवसंयुक्तमश्वत्थमधुकं तथा
गुण्ठितं सितवस्त्रेणसितचन्दनचर्चितम्। सितपुष्पैस्तुसंछन्नंसिद्धार्थकृतमध्यमम्
कांस्यपात्रे तु संस्थाप्य पुत्रार्थी देशिकोत्तमः।
अङ्गलग्नं तु तद्वस्त्रं कटकाभरणं तथा ॥ १९४ ॥
तत्सर्वं मण्डले त्याज्यं सिद्ध्यर्थं चात्मनस्तदा।
प्रणम्य भास्करं पश्चादाचार्यं रुद्ररूपिणम् ॥ १९५ ॥
मधुरं च ततोऽश्नीयाद्देव्याभुवनउत्तमे। फलदानं च विप्राय छत्रं ताम्बूलमेव च
उपानहौ च यानंचसभवेद्दुःखवर्जितः। भास्करे क्रीडतेलोकेयावदाभूतसम्प्लवम्
दानं कोटिगुणं सर्वं शुभं वा यदि वाऽशुभम्।
यथानदीनदाः सर्वे सागरे यान्ति सङ्क्षयम् ॥ १९८ ॥
एवं पापानिनश्यन्तिह्येरण्डीसङ्गमेनृणाम्। समन्ताच्छस्त्रपातेनह्येरण्डीसङ्गमेनृप
भ्रूणहत्यासमं पापं नश्यते शङ्करोऽब्रवीत्।
प्राणत्यागं च यो भक्त्या जातवेदसि कारयेत् ॥ २०० ॥
अनाशकं नृपश्रेष्ठ! जले वा तदनन्तरम्। पञ्चसाहस्रिकं मानं वर्षाणां जातवेदसि
जलेत्रीणिसहस्राण्यनाशकेऽष्टिभुञ्जते। काकाद्यकाःकपोताश्चह्युलूकाःपशवस्तथा
सङ्गमोदकसंस्पृष्टास्ते यान्ति परमां गतिम्।
वृक्षाश्च तत्पदं ज्ञात्वा यां गतिं यान्ति योगिनः ॥ २०३ ॥
एरण्डिका मया देवी दृष्टो मे मन्मथेश्वरः। किंसमर्थोयमोरुष्टोभद्रोभद्राणिपश्यति
मृत्तिकां सङ्गमोद्भूतां ये च गुण्ठन्ति नित्यशः।
भ्रूणहत्यादि पापानि नश्यन्ते नाऽत्र संशयः ॥ २०५ ॥

ततः स्वर्गावतीर्णस्तु जायते विशदे कुले ।
धनधान्यसमोपेतः पुनः स्मरति तज्जलम् ॥ ६ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे रेवाखण्डे सुवर्णशिलातीर्थमाहात्म्यवर्णनंनामचतुरधिकशततमोऽध्यायः ॥

पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः

करञ्जतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

करञ्जाख्ये ततो गच्छेत्सोपवासो जितेन्द्रियः ।
तत्र स्नात्वा तु राजेन्द्र! सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ १ ॥

अर्चयित्वामहादेवंदत्त्वादानंतुभक्तितः । सुवर्णंरजतंवाऽपि मणिमौक्तिकविद्रुमान्
पादुकोपानहौ छत्रं शय्यां प्रावरणानि च । कोटिकोटिगुणंसर्वंजायतेनात्रसंशयः

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे रेवाखण्डेकरञ्जतीर्थमाहात्म्यवर्णनंनाम पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०५ ॥

षडधिकशततमोऽध्यायः

कामदतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

ततो गच्छेन्महीपाल तीर्थं परमशोभनम् । सौभाग्यकरणंदिव्यं नरनारीमनोरमम्
तत्रयादुर्भगानारीनरोवा नृपसत्तम । स्नात्वाऽर्चयेदुमारुद्रौसौभाग्यंतस्यजायते
तृतीयायामहोरात्रं सोपवासो जितेन्द्रियः ।

निमन्त्रयेद् द्विजं भक्त्या सपत्नीकं सुरूपिणम् ॥ ३ ॥
गन्धमाल्यैरलङ्कृत्य धूपदीपादिवासितम् ।
भोजयेत्पायसान्नेन घृतखण्डाद्य भक्तितः ॥ ४ ॥
भोजयित्वा यथान्यायं मन्त्रमेनमुदाहरेत् । प्रीयतां मे महादेव सपत्नीको वृषध्वज
यथा मे दम्पतीनां न वियोगः कदाचन ।
ममाऽपि कन्यया हत्वा तथाऽस्मिन्पति चिन्तयेत् ॥ ६ ॥
एवं कृते ततस्तस्य यत्पुण्यं समुदाहृतम् । तत्तेऽहं प्रवक्ष्यामि यथा देवेन भाषितम्
दौर्भाग्यं दुर्गतिश्चैव दारिद्र्यं शोकबन्धनम् ।
जन्मजन्म सप्तजन्मानि जायते न युधिष्ठिर ॥ ८ ॥
उद्यमाने शिवे पक्षे तृतीयायां विशेषतः ।
नवगम्या वा भक्त्या पञ्चाग्निं साधयेत्सदा ॥ ९ ॥
स्वार्ऽपि पार्वतं सम्मुकुलन गाऽत्रमत्ताय । गुग्गुलं दहते यस्तु विधानेन विवर्जितः
शर्वरं भेक्ष्यम् तोयाशीव मर्मात्पन । तस्मिन्नवसरे विप्रस्य शशानि ज्ञायते यदि
सप्तान प्रत्यक्षमनिर्देश शङ्कराज्ञया ।
निवर्तं स्नानया पार्वत्यर्चा विधिवच्छुभे ॥ १० ॥
ब्राह्मणा ब्राह्मणीं चैव पूजयित्वा यथाविधि ।
वस्त्रालङ्कारकैश्चैव गन्धपुष्पैः सुशोभनैः ॥ ११ ॥
फलपुष्पसमिन्दूरं कुङ्कुमं विनिवेदयेत् । कल्पयेत त्रिवर्णाङ्गी ब्राह्मणीं शिवरूपिणम्
गत्वा प्रदक्षिणं कृत्वा नमस्कृत्य ततः । कङ्कणं कण्ठवेष्टं च कण्ठिकामुद्रिका तथा
सप्तधान्यं तथा चैव भाजने कृष्णाम्बरम् ।
यत्नात्सर्वं तु दातव्यं तस्मिन्तीर्थे ददाति यः ॥ १२ ॥
सप्तजन्मसु सम्पूर्णं प्राप्नुयात्तत्र संशयः ।
सहस्रगुणितं सर्वं तत्र कार्या विचारणा ॥ १३ ॥
शङ्करस्य वचः श्रुत्वा मुक्त्वा पुत्रमम् ।

सौभाग्यं तस्य विपुलं जायते नाऽत्र संशयः ॥ १८ ॥
अपुत्रो लभते पुत्रमधनो धनमाप्नुयात् ।
राजेन्द्र! कामदं तीर्थं नर्मदायां व्यवस्थितम् ॥ १९ ॥

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायांपञ्चमेऽवन्तीखण्डे रेवाखण्डे कामदतीर्थमाहात्म्यवर्णनंनाम षडुत्तरशततमोऽध्यायः ॥१०६॥

सप्ताधिकशततमोऽध्यायः

भण्डारीतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेत राजेन्द्र !भण्डारीतीर्थमुत्तमम् ।
दरिद्रच्छेदकरणं युगान्येकोनविंशतिः ॥ १ ॥
धनदेन तपस्तस्तप्त्वा प्रसन्ने पद्मसम्भवे । तत्रैव स्वल्पदानेन प्राप्तं वित्तस्यरक्षणम्
तत्र गत्वा तु यो भक्त्या स्नात्वा वित्तं प्रयच्छति ।
तस्य वित्तपरिच्छेदो न कदाचिद्भविष्यति ॥ ३ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे रेवाखण्डे भण्डारीतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम सप्ताधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०७ ॥

अष्टाधिकशततमोऽध्याय

रोहिणीसोमनाथतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततोगच्छेन्महीपाल रोहिणीतीर्थमुत्तमम् । विख्यातं त्रिषु लोकेषु सर्वपापहरं परम्

युधिष्ठिर उवाच

रोहिणीतीर्थमाहात्म्य सर्वपापप्रणाशनम् ।
श्रोतुमिच्छामि तत्त्वेन तन्मे त्व वक्तुमर्हसि ॥ २ ॥

श्रीमार्कण्डेय उवाच

तस्मिन्नेकार्णवेघोरे नष्टे स्थावरजङ्गमे । उदधौ च शयानस्य देवदेवस्य चक्रिण
नाभौसमुत्थित पद्म रविमण्डलसन्निभम् । कर्णिकाकेसरोपेत पत्रैश्चसमलङ्कृतम्
तत्र ब्रह्मा समुत्पन्नश्चतुर्वदनपङ्कज । किं करोमीति देवेश आज्ञा मे दीयता प्रभो ।
एवमुक्तस्तु देवेश शङ्खचक्रगदाधर । उवाच मधुरा वाणीं तदा देव पितामहम्

सरस्वत्या महाबाहो लोक कुरु ममाज्ञया ।
भूतग्राममशेषस्य उत्पादनविधिक्षयम् ॥ ७ ॥

एतच्छ [illegible] वचन पद्मनाभस्यभारत । चिन्तयामास भगवान्सर्गनिहितकाम्यया
ब्रह्मणे चिन्तिता प्राज्ञा पुलहस्त्य पुलह क्रतु ।
प्राचेतसो वसिष्ठश्च भृगुर्नारद एव च ॥ ९ ॥
जज्ञे प्राचेतसो दक्षो महातेजा प्रजापति ।
दक्षस्यापि तथा जाता पञ्चाशद्दुहितरोऽनघ ॥ १० ॥

ददौ स दश धर्माय कश्यपाय त्रयोदश । तथैव स महाभाग सप्तविंशतिमिन्दवे ॥

रोहिणीनाम या तासां मध्ये तस्य नराधिप ।
अतिष्ट मवनारीणा भर्तुश्चैव विशेषत ॥ १२ ॥

ततः सा परमं कृत्वा वैराग्यं नृपसत्तम !। आगत्य नर्मदानीरे चचार विपुलं तपः॥
एकरात्रैस्त्रिरात्रैश्च षड्द्वादशभिरेव च । पक्षमासोपवासैश्च कर्शयन्ती कलेवरम् ॥

आराधयन्ती सततं महिषासुरनाशिनीम् ।
देवीं भगवतीं तात! सर्वार्त्तिविनिवारणीम् ॥ १५ ॥
स्नात्वा स्नात्वा जले नित्यं नर्मदायाः शुचिस्मिता ।
ततस्तुष्टा महाभागा देवी नारायणी नृप !॥ १६ ॥

प्रसन्ना ते महाभागे व्रतेन नियमेन च । एतच्छ्रुत्वा तु वचनं रोहिणीशशिनःप्रिया

यथा भवामि न चिरात्तथा भवतु मानदे !।
एवमस्त्विति सा चोक्त्वा भवानी भक्तवत्सला ॥ १८ ॥

स्तूयमाना मुनिगणैस्तत्रैवान्तरधीयत । तदाप्रभृतितत्तीर्थं रोहिणीशशिनःप्रिया
सञ्जाता सर्वकालं तु वल्लभा नृपसत्तम !। तत्रतीर्थे तुयानारीनरोवास्नातिभक्तितः

वल्लभा जायते सा तु भर्त्तुर्वै रोहिणी यथा ।
तत्र तीर्थे तु यः कश्चित्प्राणत्यागं करोति वै ॥ २१ ॥
सप्तजन्मानि दाम्पत्यवियोगो न भवेत्क्वचित् ॥ २२ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराणएकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
रेवाखण्डे रोहिणीसोमनाथतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नामाऽ-
ष्टाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०८ ॥

नवाधिकशततमोऽध्यायः

सेनापुरचक्रतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततोगच्छन्महीपाल चक्रतीर्थमनुत्तमम् । सेनापुरमितिख्यातं सर्वपापक्षयकरम्
सैनापत्याभिषेकाय देवेदेवेन चक्रिणा । आनीतश्च महासेनो देवैः सेन्द्रपुरोगमैः

दानवाना वधार्थाय जयाय च दिवौकसाम् ।

भूमिदानेन विप्रेन्द्रास्तर्पयित्वा यथाविधि ॥ ३ ॥

शङ्खभेरीनिनादैश्च पटहाना च निस्वनैः । वीणावेणुमृदङ्गैश्च झल्लरीस्वरमङ्गलैः ॥
तत श्रुत्वा स्वन घोरं दानवो बलदर्पितः । कस्नाम विघातार्थमभिषेकस्यचागतः
हस्त्यश्वरथपत्त्यौघैः पूरयन्वै दिशो दश । तत्र तेन महद्युद्ध प्रवृत्त किल भारत

शक्त्यृष्टिपाशमुशलैः खड्गैस्तोमरपट्टिशैः ।

भल्लैः कर्णिकनाराचैः कबन्धपटसङ्कुले ॥ ७ ॥

ततस्तु ता शरव्रातैन्य सेना क्षणेन चापच्युतबाणवातैः ।
विध्वस्तहस्त्यश्वरथान्महात्मा जग्राह चक्र रिपुसङ्घनाशन ॥ ८ ॥
उग्रञ्च चक्र निशित भयङ्कर सुरासुराणा च सुदर्शन रणे ।
चकर्त वै यस्य शिरस्तदानी करात्प्रमुक्त मधुघातिनश्च तत् ॥ ९ ॥

त दृष्ट्वा सहसा विप्रमभिषेकषडानन । त्यक्त्वा तु तत्र संस्थानघघारविपुलतप

मुक्त चक्र विनाशाय हरिणा लोकधारिणा ।

छित्वा दानव हत्वा पपात विमले जले ॥ ११ ॥

तदा प्रभृति तत्तीर्थं चक्रतीर्थमिति श्रुतम् ।

सर्वपापविनाशाय निर्मित विश्वमूर्त्तिना ॥ १२ ॥

चक्रतीर्थे तु य स्नात्वा चापूजयेद्भवमच्युतम् । पुण्डरीकस्ययज्ञस्यफलमाप्नोतिमानव

तत्र तीर्थे तु यः स्नात्वा पूजयेद् ब्राह्मणाञ्छुभान् ।
शान्तदान्तजितक्रोधान् स लभेत्कोटिजं फलम् ॥ १४ ॥
तत्र तीर्थे तु यो भक्त्या त्यजते देहमात्मनः ।
विष्णुलोकं मृतो जाति जयशब्दादिमङ्गलैः ॥ १५ ॥
क्रीडयित्वा यथाकामंदेवगन्धर्वपूजितः । इहागत्य च भूयोऽपि जायतेविपुलेकुले
एतत्पुण्यं पापहरं धन्यं दुःखप्रणाशनम् ।
कथितं ते महाभाग! भूयश्चान्यच्छृणुष्व मे ॥ १७ ॥

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायांपञ्चमेऽवन्तीखण्डे रेवाखण्डे सेनापुरे चक्रतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम नवोत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १०९ ॥

दशाधिकशततमोऽध्यायः

धौतपापतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

धौतपापंततोगच्छेन्महापातकनाशनम् । समीपेचक्रतीर्थस्यविष्णुनानिर्म्मितंपुरा
निहतैर्दानवैर्वीरैर्देवदेवो जनार्द्दनः । तत्पापस्य विनाशार्थं दानवान्तोद्भवस्य च
तत्र तीर्थे जितक्रोधश्चचार विपुलं तपः । दुश्चरं मौनमास्थाय ह्यशक्यं देवदानवैः
स्नात्वा दत्त्वा द्विजातिभ्यो दानानि विविधानि च ।
तत्क्षणान्मुक्तपापस्तु गतस्तद्वैष्णवं पदम् ॥ ४ ॥
एवं युक्तस्तु यस्तत्र पापं कृत्वा सुदारुणम् ।
स्नात्वा जप्त्वा विधानेन मुच्यते सर्वपातकैः ॥ ५ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे रेवाखण्डे धौतपापतीर्थमाहात्म्यवर्णनंनामदशोत्तरशततमोऽध्यायः ॥ ११० ॥

एकादशाधिकशततमोऽध्यायः

स्कन्दतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

नर्मदादक्षिणे कूले तीर्थं परमशोभनम् । स्कन्देन निर्मितं पूर्वं तप कृत्वासुदारुणम्

युधिष्ठिर उवाच

स्कन्दस्यचरितं सर्वमाजन्मद्विजसत्तम । तीर्थस्यचविधिपुण्यं कथयस्वयथार्थतः

श्रीमार्कण्डेय उवाच

देवदेवेन वै तत्र तप पूर्वं युधिष्ठिर । चिरमेनसुरै सर्वैरुमादेवी विचारहिता ॥ ३॥

नास्ति सेनापतिः कश्चिद्देवानां सुरसत्तम ।
नीयन्ते दानवैर्घोरैः सर्वे देवाः सवासवाः ॥ ४ ॥
यथा निशा विना चन्द्रं दिवसो भास्करं विना ।
न शोभते मुहूर्तं वै तथा सेना विनायका ॥ ५ ॥

एवमुक्त्वा महादेव परया दययाविभो । सेनानीर्दीयतांकश्चिदित्रपुलर्षेपुविश्रुत

एतच्छ्रुत्वा शुभं वाक्यं देवानां परमेश्वरः ।
कामयान उमां देवीं सस्मार मनसा स्मरम् ॥ ७ ॥
तेन मूर्च्छितसर्वाङ्गः कामरूपो जगद्गुरुः ।
कामयामास रुद्राणीं दिव्यं वर्षशतं किल ॥ ८ ॥

देवराजस्ततो ज्ञात्वा महामैथुनगं हरम् । सम्मन्त्र्य देवतैः सार्द्धं प्रैषयज्जातवेदसम्

तेन गत्वा महादेवः परमानन्दसंस्थितः ।
सहसा तेन दृष्टोऽसौ हाहेत्युक्त्वा समुत्थितः ॥ १० ॥

ततः क्रुद्धा महादेवी शापवाक्यमुवाच ह । वेपमाना महाराज शृणुयत्तेवदाम्यहम्
अद्य यस्मात्सुरैः सर्वैर्याचितापुत्रजन्मनि । रत्यारतिश्चविफलासम्प्रेष्यजातवेदसम्

तस्मात्सर्वे पुत्रहीनाभविष्यन्तिन संशयः। हरेणोक्तस्ततोवह्निरस्माकंबीजमावह
यथा भवति लोकेषु तथा त्वं कर्तुमर्हसि।
मम तेजस्त्वया शक्यं गृहीतुं सुरसत्तम॥
देवकार्यार्थसिद्ध्यर्थं नाऽन्यः शक्तो जगत्त्रये॥ १४॥

अग्निरुवाच

तेजसस्तव मे देवकाशक्तिर्धारणेविभो। करोतिभस्मसात्सर्वंत्रैलोक्यंसचराचरम्

ईश्वर उवाच

उदरस्थेन बीजेन यदि ते जायते रुजा। तदा क्षिपस्व तत्तेजो गङ्गातोये हुताशन
एवमुक्त्वा महादेवो अमोघं बीजमुत्तमम्। हव्यवाहमुखे सर्वं प्रक्षिप्यान्तरधीयत
गते चादर्शनं देवे दह्यमानो हुताशनः। गङ्गातोये विनिक्षिप्य जगामस्वंनिवेशनम्
असहन्ती तु तत्तेजो गङ्गाऽपि सरितांवरा।
शरस्तम्बे विनिक्षिप्य जगामाऽऽशु यथागतम्॥ १६॥
तत्र जातं तु तद् दृष्ट्वा सर्वे देवाः सवासवाः।
कृत्तिकां प्रेषयामासुः स्तन्यं पाययितु तदा॥ २०॥
दृष्ट्वा ता आगताः सर्वा गङ्गागर्भं महामतेः।
षण्मुखैः षण्मुखो भूत्वा पिपासुरपिबत्स्तनम्॥ २१॥
जातकर्मादिसंस्कारान्वेदोक्तान्पद्मसम्भवः। चकारसर्वान्राजेन्द्र विधिदृष्टेनकर्मणा
षण्मुखात्षण्मुखो नाम कार्त्तिकेयस्तु कृत्तिकात्।
कुमारश्च कुमारत्वाद्गङ्गागर्भोऽग्निजोऽपरः॥ २३॥
एवं कुमारः सम्भूतो ह्यनधीत्य स वेदवित्।
शास्त्राण्यनेकानि वेद चचार विपुलं तपः॥ २४॥
देवारण्येषु सर्वेषु नदीषु च नदेषु च। पृथिव्यां यानितीर्थानि समुद्राद्यानिभारत
ततः पर्याययोगेन नर्मदातटमाश्रितः। नर्मदादक्षिणे कूले चचार विपुलं तपः॥ २६
ऋग्यजुःसामविहितं जपञ्जाप्यमहर्निशम्। ध्यायमानोमहादेवं शुचिर्धर्मनिसन्ततः

ततो वर्षसहस्रान्ते पूर्णे देवो महेश्वरः । उमया सहितः काले तदा वचनमब्रवीत्
ईश्वर उवाच
अहं ते वरदस्तात गौरी माता पिता ह्यहम् ।
वरं वृणीष्व यच्चेष्टं त्रिषु लोकेषु दुर्लभम् ॥ २९ ॥
षण्मुख उवाच
यदि तुष्टो महादेवः उमया सह शङ्कर । वृणोमि मातापितरौ गम्यागतिर्मतिर्मम
एतच्छ्रुत्वा शुभं वाक्यं पुत्रस्य वदनाच्च्युतम् ।
तथेत्युक्त्वा तु स्नेहेन प्रेम्णा तं परिषस्वजे ॥ ३१ ॥
ततस्त मूर्ध्न्युपाघ्राय ह्युमयोवाच शङ्करः ॥ ३२ ॥
ईश्वर उवाच
अक्षयश्चाव्ययश्चैव सेनानीस्त्वं भविष्यसि ॥ ३३ ॥
शिखी च ते वाहनं दिव्यरूपो दत्तो मया शक्तिधरस्य सङ्ख्ये ।
सुरासुरादींश्च जयेति चोक्त्वा जगाम कैलासवरं महात्मा ॥ ३४ ॥
गते चाऽदर्शनं देवे तदा स शिखिवाहनः ।
स्थापयित्वा महादेवं जगाम सुरसन्निधौ ॥ ३५ ॥
तदाप्रभृति तत्तीर्थं स्कन्दतीर्थमिति श्रुतम् ।
सर्वपापहरं पुण्यं मर्त्यानां भुवि दुर्लभम् ॥ ३६ ॥
तत्र तीर्थे तु यो राजन्भक्त्या स्नात्वाऽर्चयेच्छिवम् ।
गन्धमाल्याभिषेकैश्च वार्षिकं स लभेत्फलम् ॥ ३७ ॥
स्कन्दतीर्थे तु यः स्नात्वा पूजयेत्पितृदेवताः ।
तिलमिश्रेण तोयेन तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ ३८ ॥
पिण्डदानेनचैकेन विधियुक्तेन भारत । द्वादशाब्दानितुष्यन्तिपितरोनाऽत्रसंशयः
तत्र तीर्थे तु राजेन्द्र शुभं वा यदि वाऽशुभम् । इहलोकेपरेचैवतत्सर्वं जायतेऽक्षयम्
तत्र तीर्थे तु यः कश्चित्प्राणत्यागं करिष्यति ।

शास्त्रयुक्तेन विधिना स गच्छेच्छिवमन्दिरम् ॥ ४१ ॥
कल्पमेकं वसित्वा तु देवगन्धर्वपूजितः। अत्र भारतवर्षे तु जायते विमले कुले ॥
वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञः सर्वव्याधिविवर्जितः। जीवेद्वर्षशतं साग्रं पुत्रपौत्रसमन्वितः ॥
इदं ते कथितं राजन्स्कन्दतीर्थस्य सम्भवम्।
धन्यं यशस्यमायुष्यं सर्वदुःखघ्नमुत्तमम् ॥
सर्वपापहरं पुण्यं देवदेवेन भाषितम् ॥ ४४ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे रेवाखण्डे स्कन्दतीर्थमाहात्म्यवर्णनंनामैकादशोत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १११ ॥

द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः

अङ्गिरसतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र! तीर्थमाङ्गिरसस्य तु। उत्तरे नर्मदाकूले सर्वपापविनाशनम्
पुराऽऽसीदङ्गिरानाम ब्राह्मणोवेदपारगः। पुत्रहेतोर्युगस्याऽर्द्धेमचारचिपुलं तपः
नित्यं त्रिषवणस्नायीजपन्देवंसनातनम्। पूजयंश्चमहादेवं कृच्छ्रचान्द्रायणादिभिः
द्वादशाब्दे ततः पूर्णे तुतोष परमेश्वरः।
वरेण च्छन्दयामास द्विजमाङ्गिरसं वरम् ॥ ४ ॥
वव्रे स तु महादेवं पुत्रं पुत्रवतां वरम्। वेदविद्याव्रतस्नातं सर्वशास्त्रविशारदम्।
देवानां मन्त्रिणं राजन्सर्वलोकेषु पूजितम्।
ब्रह्मलक्ष्म्याः सदावासमक्षयं चाव्ययं सुतम् ॥ ६ ॥
तथाभिलषितःपुत्रः सर्वविद्याविशारदः। भविष्यति न सन्देहश्चैवमुक्त्वाययौहरः
वरैरङ्गिरसश्चाऽपि बृहस्पतिरजायत। यथाऽभिलषितः पुत्रो वेदवेदाङ्गपारगः

जाते पुत्रेऽङ्गिरास्तत्र स्थापयामास शङ्करम् ।
हृष्टतुष्टमना भूत्वा जगामोत्तरपर्वतम् ॥ [illegible] ॥
तत्र चाङ्गिरसे तीर्थे य स्नात्वा पूजयेच्छिवम् ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो रुद्रलोकं स गच्छति ॥ १० ॥
अपुत्रो लभते पुत्रमधनो धनमाप्नुयात् । इच्छते यश्च यं कामं स तं लभतिमान
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
रेवाखण्डेऽङ्गिरसतीर्थमाहात्म्यवर्णननाम द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥११२

त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः

कोटितीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततोगच्छेत्सुराधीशकोटितीर्थमनुत्तमम् । ऋषिकोटिर्गतातत्र परांसिद्धिमुपागता
तत्र तीर्थे तु य स्नात्वा भोजयेद् ब्राह्मणाञ्छुचि ।
एकस्मिन्भोजिते विप्रे कोटिर्भवति भोजिता ॥ २ ॥
तत्र तीर्थे तु य स्नात्वा पूजयेत्पितृदेवता ।
पूजिते तु महादेवे वाजपेयफलं लभेत् ॥ ३ ॥
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
रेवाखण्डेकोटितीर्थमाहात्म्यवर्णननाम त्रयोदशाधिकशततमोऽध्याय ॥११३॥

चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः

अयोनिसम्भवतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र तीर्थं परमशोभनम् । अयोनिजं महापुण्यं सर्वपापप्रणाशनम्

अयोनिजे नरः स्नात्वा पूजयेत्परमेश्वरम् ।
पितृदेवार्च्चनं कृत्वा मुच्यते सर्वकिल्बिषैः ॥ २ ॥
तत्र तीर्थे तु विधिना प्राणत्यागं करोति यः ।
स कदाचिन्महाराज योनिद्वारं न पश्यति ॥ ३ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे रेवाखण्डेऽयोनिसम्भवतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नामचतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥

पञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः

अङ्गारकतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेन्महाराज तीर्थमङ्गारकं परम् । रूपदं सर्वलोकानां विश्रुतं नर्मदातटे

अङ्गारकेण राजेन्द्र! पुरा तप्तं तपः किल ।
अर्बुदं च निखर्वं च प्रयुतं वर्षसङ्ख्यया ॥ २ ॥

ततस्तुष्टो महादेवः परया कृपया नृप । प्रत्यक्षदर्शी भगवानुवाच क्षितिनन्दनम्

वरदोऽस्मि महाभाग दुर्लभं त्रिदशैरपि ।
वरं दास्याम्यहं वत्स ! ब्रूहि यत्ते विवक्षितम् ॥ ४ ॥

अङ्गारक उवाच

तव प्रसादाद्देवेश सर्वलोकमहेश्वर। ग्रहमध्यगतो नित्यं विचरामि नभस्तले ॥२

यावद्धराधरो लोके यावच्चन्द्रदिवाकरौ।
मघो नक्षः समुद्राश्च घरो मे चाऽक्षयो भवेत ॥ ६ ॥
एवमस्त्विति देवेशो दत्त्वा वरमनुत्तमम्।
जगामाऽऽकाशमाविश्य वन्द्यमानः सुरासुरैः ॥ ७ ॥
भूमिपुत्रस्ततस्तस्मिन्स्थापयामास शङ्करम्।
गतः सुरालये लोके ग्रहभावे निवेशितः ॥ ८ ॥

तत्तीर्थेतु स्नात्वा पूजयेत्परमेश्वरम्। हुतहोमो जितक्रोधः सोऽश्वमेधफलंलभेत्

चतुर्थ्यङ्गारके यस्तु स्नात्वा चाभ्यर्चयेद् ग्रहम्।
अङ्गारकं विधानेन सप्तजन्मानि भारत ॥ १० ॥
दशयोजनविस्तीर्णे मण्डले रूपवान्भवेत्।
तत्रैव तु मृतो जन्तुः कामतोऽकामतोऽपि वा ॥
रुद्रस्याऽनुचरो भूत्वा तेनैव सह मोदते ॥ ११ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराणएकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे रेवाखण्डेऽङ्गारकतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम
पञ्चदशोत्तरशततमोऽध्यायः ॥ ११५ ॥

षोडशाधिकशततमोऽध्यायः

पाण्डुतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

पाण्डुतीर्थं ततो गच्छेत्सर्वपापविनाशनम् ।
तत स्नात्वा नरो राजन्! मुच्यते सर्वकिल्बिषैः ॥ १ ॥
तत्र तीर्थे तु यः स्नात्वा दापयेत्काञ्चनं शुचिः ।
भ्रूणहत्यादिपापानि नश्यन्ते नाऽत्र संशयः ॥ २ ॥
पिण्डोदकप्रदानेन वाजपेयफलं लभेत् ।
पितरः पितामहाश्च नृत्यन्ते च प्रहर्षिताः ॥ ३ ॥

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे रेवाखण्डे पाण्डुतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नामषोडशाधिकशततमोऽध्यायः ॥

सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः

त्रिलोचनतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र पुण्यं तीर्थंत्रिलोचनम् । तत्रतिष्ठतिदेवेशःसर्वलोकनमस्कृतः
तत्र तीर्थे तु यः स्नात्वा भक्त्याऽर्चयति शङ्करम् ।
रुद्रस्य भवनं याति मृतो नास्त्यत्र संशयः ॥ २ ॥
कल्पक्षये ततः पूर्णे क्रीडित्वा च इहागतः ।

आचियोगेन तिष्ठेत पूज्यमान शतं समाः॥ ३॥
इति श्रीस्कान्दे महापुराणएकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे रेवाखण्डे त्रिलोचनतीर्थमाहात्म्यवर्णननाम सप्तदशोत्तरशततमोऽध्यायः॥११७॥

अष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः

इन्द्रतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र तीर्थं परमशोभनम्। इन्द्रतीर्थमिति विख्यातं नर्मदादक्षिणे तटे

युधिष्ठिर उवाच

नर्मदादक्षिणे कूले इन्द्रतीर्थं कथम्भवेत्।
श्रोतुमिच्छामि विप्रेन्द्र आदिमध्यान्तविस्तरैः॥ २॥
एतच्छ्रुत्वा तु वचनं धर्मपुत्रस्य धीमतः। कथयामास तद्वृत्तमितिहासम्पुरातनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

विश्वासयित्वा सुचिरं धर्मशत्रुं महाबलम्।
वृत्रं जित्वाऽथ हत्वा तु गच्छमानं शचीपतिम्॥ ४॥
निष्क्रामन्मार्गेण ब्रह्महत्या दुरासदा। अहोरात्रमविश्रान्ता जगामभुवनत्रयम्
यतोयतो ब्रह्महा याति यानेन शोभनम्।
दिशो भागं सुरे सार्द्धं ततो हत्या न मुञ्चति॥ ६॥
ब्रह्महत्यासुरापानस्तेयगुर्वङ्गनागमम्। पातकानामतिर्ह स्यानतु विश्वासघातिनाम्
पापकर्ममुखं दृष्ट्वा स्नानदानैर्विशुध्यति। नारीवापुरुषोवाऽपि नैव विश्वासघातिनः
एवमादीनि चान्यानि शृणु वाक्यानि देवराट्।
वचनं तद्विर्धर्म्महं विशदमगमत्परम्॥ ९॥

त्यक्त्वा राज्यं सुरैः सार्धं जगाम तप उत्तमम् ।
पुत्रदारगृहं राज्यं वसूनि विविधानि च ॥ १० ॥
फलान्येतानिधर्मस्यशोभयन्तिजनेश्वरम् ।फलंधर्मस्यभुञ्जेतिसुहृत्स्वजनबान्धवाः
पश्यतां सर्वमेतेषां पापमेकेन भुज्यते । परं हि सुखमुत्सृज्य कर्शयन्वै कलेवरम् ॥
देवराजो जगामाऽसौ तीर्थान्यायतनानि च ।
गङ्गातीर्थेषु सर्वेषु यामुनेषु तथैव च ॥ १३ ॥
सारस्वतेषु सर्वेषु समुद्रेषु पृथक्पृथक् । नदीषु देवखातेषु तडागेषु सरःसु च ॥
पापं न मुञ्चते सर्वं पश्चाद्देवसमागमे । रेवाप्रभवतीर्थेषु कूलयोरुभयोरपि ॥ १५ ॥
पूजयन्वै महादेवं स्कन्दतीर्थं समासदत् ।
तत्र स्थित्वोपवासैश्च कृच्छ्रचान्द्रायणादिभिः ॥ १६ ॥
कर्शयन्वैस्वकंदेहंनलेभेशर्मवैक्वचित् । ग्रीष्मेपञ्चाग्निमध्यस्थो वर्षासुस्थण्डिलेशयः
आर्द्रवासास्तुहेमन्तेचचारविपुलं तपः । एवं तु तपतस्तस्य इन्द्रस्यविदितात्मनः
वत्सराणां सहस्राणि गतानि दश भारत । ततस्त्वेकादशे प्राप्ते वर्षेतु नृपसत्तम!
सहसा भगवान्देवस्तुतोष परमेश्वरः । तथा ब्रह्मर्षयः सिद्धा ब्रह्मविष्णुपुरोगमाः
तत्राऽऽजग्मुः सुराः सर्वे यत्र देवः शतक्रतुः ।
दृष्ट्वा समागतान्देवानृषींश्चैव महामतिः ॥ २१ ॥
उवाच प्रणतो भूत्वा सर्वदेवपुरोहितः । विदितं सर्वमेतेषां यथा वृत्रवधः कृतः ॥
युष्माकं चाऽऽज्ञया पूर्वं ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ।
तथाऽप्येवं ब्रह्महणं मत्त्वा पापस्य कारिणम् ॥ २३ ॥
भ्रमन्तं सर्वतीर्थेषु ब्रह्महत्या न मुञ्चति ।
न नन्दति जगत्सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥ २४ ॥
यथाविहीनचन्द्रार्कंतथाराज्यमनायकम् । तस्मात्सर्वेसुरश्रेष्ठाविज्ञाप्यंममसम्प्रति
कुर्वन्तु शक्रं निर्दोषं तथा सर्वे महर्षयः । बृहस्पतिमुखोद्गीर्णं श्रुत्वा तद्वचनंशुभम्
ततः प्रोवाच भगवान् ब्रह्मालोकपितामहः । एतत्पापं महाघोरं ब्रह्महत्यासमुद्भवम्

दैवतेभ्योऽथ भूतेभ्यश्चतुर्भागं क्षिपाम्यहम् ।
एवं मुक्त्वाऽक्षिपच्चैनो जलोपरि महामति ॥ २८ ॥
अवगाहनतः पेयाआपो वै नान्यथा बुधैः । धरायामक्षिपद्भागं द्वितीयं पद्मसम्भवः
अभक्ष्या तेन सञ्जाता सदाकालं वसुन्धरा ।
तदर्धमस्त्रं नारीणां क्षिप्तं येऽहि युधिष्ठिर ॥ ३० ॥
निक्षिप्य भगवान्देव पुनरन्यज्जगाद ह । असम्भाष्या त्वसंस्पृश्या तेनजाता रजस्वला
चतुर्दिनानि सा प्राशे पापस्य महतो महात् ।
चतुर्थं तु ततो भागं विभज्य परमेश्वर ॥ ३२ ॥
कृषिगोरक्ष्यवाणिज्ये शूद्रसेवाकरे द्विजे । ततोऽभिनन्दयामासु सर्वेदेवामहव्यय
देवेन्द्र वाग्भिरिष्टाभिर्नर्मदाजलसंस्थितम् । वरेणाच्छन्दयामासततस्तुष्टोमहेश्वरः
वरं दास्यामि देवेश वरं वृणु यथेप्सितम् ॥ ३५ ॥
इन्द्र उवाच
यदितुष्टोऽसि देवेशयदिदेयोवरोमम । अत्र संस्थापयिष्यामि सदासन्निहितोभव
एवमस्त्विति चोक्त्वा स ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ।
जग्मुराकाशमाविश्य स्तूयमाना महर्षिभिः ॥ ३७ ॥
गतेषु देवदेवेषु देवराज शतक्रतु । स्थापयित्वा महादेवं जगाम त्रिदशालयम् ॥
इन्द्रतीर्थे तु यः स्नात्वा तर्पयेत्पितृदेवताः ।
महापातकयुक्तोऽपि मुच्यते सर्वपातकैः ॥ ३९ ॥
इन्द्रतीर्थे तु यः स्नात्वा पूजयेत्परमेश्वरम् ।
सोऽश्वमेधस्य यज्ञस्य पुष्कलं फलमश्नुते ॥ ४० ॥
एतत्ते कथितं सर्वं तीर्थमाहात्म्यमुत्तमम् ।
श्रुतमात्रेण येनैव मुच्यन्ते पातकैर्नराः ॥ ४१ ॥
इति श्रीस्कान्दे महापुराणएकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे रेवाखण्डे इन्द्रतीर्थमाहात्म्यवर्णननामाष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११८ ॥

एकोनविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

कल्होडीतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र कल्होडीतीर्थमुत्तमम् । रेवायाश्चोत्तरेकूले सर्वपापविनाशनम्
हितार्थंसर्वभूतानामृषिभिःस्थापितम्पुरा । तपसातुसमुद्धृत्यनर्मदायांमहाम्भसि
स्नात्वा तु कपिलातीर्थे कपिलां यः प्रयच्छति ।
श्रुत्वा चाऽऽख्यानकं दिव्यं ब्राह्मणाच्छृणु यत्फलम् ॥ ३ ॥
सर्वेषामेव दानानां कपिलादानमुत्तमम् । ब्राह्मणान्वेषितं पूर्वमृषिदेवसमागमे ॥
सद्यः प्रसूतां कपिलां शोभनां यः प्रयच्छति ।
सोपवासो जितक्रोधस्तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ ५ ॥
ससमुद्रगुहा तेन सशैलवनकानना । दत्ता चैव महाबाहो पृथिवी नात्र संशयः ।
वाचिकं मानसंपापंकर्मणायत्पुराकृतम् । नश्यते कपिलां दत्त्वासप्तजन्मार्जितंनृप
भूमिदानं धनं धान्यं हस्त्यश्वकनकादिकम् ।
कपिलादानस्यैकस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥ ८ ॥
तत्र तीर्थे नरः स्नात्वा कपिलां यः प्रयच्छति ।
मृतो विष्णुपुरं याति गीयमानोऽप्सरोगणैः ॥ ६ ॥
यावन्ति तस्या रोमाणि सवत्सायास्तु भारत ! ।
तावद्वर्षसहस्राणि स स्वर्गे क्रीडते चिरम् ॥ १० ॥
ततोऽवकीर्णकालेन त्विह मानुष्यतांगतः । धनधान्यसमोपेतो जायतेविपुलेकुले
वेदविद्याव्रतस्नातः सर्वशास्त्रविशारदः ।
व्याधिशोकविनिर्मुक्तो जीवेच्च शरदां शतम् ॥ १२ ॥
एतत्ते सर्वमाख्यातं कल्होडीतीर्थमुत्तमम् ।

यत्कृत्वा सर्वपापेभ्यो मुच्यते नाऽत्र संशयः ॥ १३ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे रेवाखण्डे स्कन्दोदतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नामैकोनविंशत्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥

विंशाधिकशततमोऽध्यायः

कम्बुकेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि कम्बुकेश्वरमुत्तमम् । हिरण्यकशिपुर्दैत्यो दानवो बलदर्पितः ॥

अवध्यः सर्वलोकानां त्रिषु लोकेषु विश्रुतः ।

तस्य पुत्रो महातेजाः प्रह्लादो नाम नामतः ॥ २ ॥

विष्णुप्रसादाद्लब्ध्वा च तस्य राज्ये प्रतिष्ठितः ।

विरोचनस्तस्य सुतस्तस्याऽपि बलिरेव च ॥ ३ ॥

बलिपुत्रोऽभवद्बाणस्तस्मादपि च शम्बरः ।

शम्बरस्याऽन्वये जातः कम्बुनाममहासुरः ॥ ४ ॥

ज्ञात्वा चिरंगुमयं घोरं महद्भयमुपस्थितम् ।

दानवानां विनाशाय नाऽन्यो हेतुः कदाचन ॥ ५ ॥

स यक्त्वा पुत्रदारांश्च सुहृद्बन्धुपरिग्रहान् । चचार मौनमास्थाय तपः कम्बुर्महामतिः

अक्षसूत्रकरो भूत्वा दण्डी मुण्डश्च मेखली । शाकयावकभक्षश्च वल्कलाजिनसंवृतः

स्नात्वा नित्यं धृतिपरो नर्मदानलमाश्रितः । पूजयंस्तु महादेवमब्दं द चरसहस्रया

ततस्तुतोष भगवान्देवदेवो महेश्वरः । उवाच दानवं काले मेघगम्भीरया गिरा ॥

भो भो कम्बो महाभाग तुष्टोऽहं तव सुव्रत ।

दृष्टं व्रतानां परमं मौनं सर्वार्थसाधनम् ॥ १० ॥

रितं च त्वयालोके देवदानवदुश्चरम्। वरं वृणीष्व भद्रं ते यत्ते मनसि रोचते ॥

कम्बुरुवाच

यदि प्रसन्नो देवेश यदिदेयो वरोमम। अक्षय्यश्चाव्ययश्चैव स्वेच्छयाविचराम्यहम्
दैत्यदानवसङ्घानां संयुगेष्वपलायिता। भयञ्चानन्यत्रविद्येत मुक्त्वादेवंगदाधरम्
तस्याऽहं संयुगे साध्यो येनोपायेन शङ्कर !।
भवामि न सदा कालं तं वदस्व वरं मम ॥ १४ ॥

ईश्वर उवाच

ममसन्निहितोयत्र त्वं भविष्यसिदानव। तत्रविष्णुभयंनास्तिवसात्राविगतज्वरः
तस्यदेवाधिदेवस्य वेदगर्भस्य संयुगे। शङ्खचक्रधरस्येशा नाऽहं सर्वे सुरासुराः ॥
किंपुनर्योद्धिपत्येनंलोकालोकप्रभुं हरिम्। स सुखी वर्त्तते कालं न निमेषं मतं मम
तस्मात्त्वंपरयाभक्त्यासर्वभूतहितेरतः। वसिष्यसिचिरंकालमित्युक्त्वादर्शनंगतः
गतेचाऽदर्शनंदेवे तत्र तीर्थे महामतिः। स्थापयामास देवेशं शिवंशान्तमनामयम्
तस्मिंस्तीर्थेमहादेवंस्थापयित्वादिवंगतः। तदाप्रभृतितत्पार्थकम्बुतीर्थमितिश्रुतम्
विख्यातं सर्वलोकेषु महापातकनाशनम् ॥ २० ॥
कम्बुतीर्थे नरः स्नात्वा विधिनाऽभ्यर्च्य भास्करम्।
ऋग्यजुःसाममन्त्रैश्च स्तूयमानो नृपोत्तम !॥ २१ ॥
तस्य पुण्यं समुद्दिष्टं ब्राह्मणैर्वेदपारगैः। तत्सर्वं तु शृणुष्वाऽद्य ममैव गदतो नृप
ऋग्यजुः सामगीतेषु साङ्गोपाङ्गेषु यत्फलम्।
तत्फलं समवाप्नोति गायत्रीमात्रमन्त्रवित् ॥ २३ ॥
तत्रतीर्थे तुयः स्नात्वा तर्पयेत्पितृदेवताः। पूजयेद्देवमीशानं सोऽग्निष्टोमफलं लभेत्
अकामो वा सकामो वा तत्र तीर्थे कलेवरम्।
यस्त्यजेन्नात्र सन्देहो रुद्रलोकं स गच्छति ॥ २५ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे रेवाखण्डे कम्बुकेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नामविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥

एकत्रिंशदधिशततमोऽध्यायः

चन्द्रहासेसोमतीर्थ माहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततोगच्छेन्महीपाल चन्द्रहासमतःपरम् । यत्रसिद्धिपरा प्राप्तः सोमराजःसुरोत्तमः

युधिष्ठिर उवाच

कथं सिद्धि परा प्राप्तः सोमनाथो जगत्पतिः ।
तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामि कथयस्व ममाऽनघ ॥ २ ॥

श्रीमार्कण्डेय उवाच

पुरा शप्तो मुनीन्द्रेण दक्षेणकिलभारत । असेवनाद्धि दाराणांक्षयरोगीभविष्यसि

उद्वाहितानां पत्नीनां ये न कुर्वन्ति सेवनम् ।
या निष्ठा जायते नृणां तां शृणुष्व नराधिप ॥ ४ ॥
ऋतावृतौ हि नारीणां सेवनाज्जायते सुतः ।
सुतात्स्वर्गश्च मोक्षश्च इत्येवं श्रुतिभाषितम् ॥ ५ ॥

तत्कालोचितधर्मेणत्रेष्टितोरोविपनेत् । तस्यास्तद्रुधिरपाप पितनैकालमाप्सितम्

ततोऽवतीर्णः कालेन या या योनिं प्रयास्यति ।
तस्यां तस्यां स दुष्टात्मा दुर्भगो जायते सदा ॥ ७ ॥
नारीणां तु सदा कामोऽभ्यधिकः परिवर्तते ।
विशेषेण ऋतौ काले पीड्यते कामसायकैः ॥ ८ ॥
परिभूता हि ता भर्त्रा ध्यायन्तेऽन्य पतिं स्त्रियः
ततः पुत्रः समुत्पन्नो हन्ते कुलमुत्तमम् ॥ ६ ॥

स्वर्गस्थास्तेन पितरःपूर्वजास्तेपितामहाः । पतन्तिजातमात्रेणकुलटस्तेनचोच्यते
तेनकर्मविपाकेनक्षयरोग्यभवच्छशी । त्यक्त्वालोकंसुरेन्द्राणां मर्त्यलोकमुपागतः

ततस्तीर्थान्यनेकानि पुण्यान्यायतनानि च ।
भ्रमंश्च नर्मदां प्राप्तः सर्वपापप्रणाशनीम् ॥ १२ ॥
उपवासं च दानानि व्रतानि नियमांस्तथा ।
चचार द्वादशाब्दानि ततो मुक्तः स किल्बिषैः ॥ १३ ॥
स्नापयित्वा महादेवं सर्वपातकनाशनम् । जगाम प्रभया पूर्णः स च लोकमनुत्तमम्
येनैवस्थापितो देवः पूज्यते वर्षसङ्ख्यया । तावद्वर्षसहस्राणि रुद्रलोकेसपूज्यते
तेन देवान्विधानोक्तान्स्थापयन्ति नरा भुवि ।
अक्षयं चाव्ययं यस्मात्कालं भुञ्जन्ति मानवाः ॥ १६ ॥
सोमतीर्थे नरः स्नात्वा पूजयेद्देवमीश्वरम् । न भ्राजते नरोलोके सोमवत्प्रियदर्शनः
चन्द्रहासेतु योगत्वाग्रहणेचन्द्रसूर्ययोः । स्नानंसमाचरेद्भक्त्यामुच्यतेसर्वकिल्बिषैः
तत्र स्नानं च दानं च चन्द्रहासे शुभाऽशुभम् । कृतं नृपवरश्रेष्ठ! सर्वंभवतिचाक्षयम्
ते धन्यास्ते महात्मानस्तेषां जन्म सुजीवितम् ।
चन्द्रहासे तु ये स्नात्वा पश्यन्ति ग्रहणं नराः ॥ २० ॥
वाचिकं मानसं पापं कर्मजं यत्पुराकृतम् । स्नानमात्रेण राजेन्द्र तत्रतीर्थेप्रणश्यति
बहवस्तं न जानन्ति महामोहसमन्विताः । देहस्थमिवसर्वेषां परमानन्दरूपिणम्
पश्चिमे सागरे गत्वा सोमतीर्थे तु यत्फलम् ।
तत्समग्रमवाप्नोति चन्द्रहासे न संशयः ॥ २३ ॥
संक्रान्तौच व्यतीपाते अयने विषुवेतथा । चन्द्रहासे नरःस्नात्वासर्वपापैःप्रमुच्यते
ते मूढास्ते दुराचारास्तेषां जन्म निरर्थकम् ।
चन्द्रहासं न जानन्ति ये रेवायां व्यवस्थितम् ॥ २५ ॥
चन्द्रहासे तु यः कश्चित्संन्यासं कुरुते द्विजः ।
अनिवर्त्तिका गतिस्तस्य सोमलोकान्न संशयः ॥ २६ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
रेवाखण्डे चन्द्रहासतीर्थमाहात्म्यवर्णनंनामैकविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥

द्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

कोहनतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततोगच्छेन्महीपाल कोहनस्येति विश्रुतम् । सर्वपापहरं पुण्यं तीर्थं मृत्युविनाशनम्
पुरा तत्र द्विजः कश्चिद्वेदवेदाङ्गपारगः । पत्नीपुत्रसुहृद्वर्गैः स्वकर्मनिरतोऽभवत् ॥

युधिष्ठिर उवाच

ब्राह्मणस्य तु यत्कर्म उत्पत्तिः क्षत्रियस्य तु ।
वैश्यस्याऽपि च शूद्रस्य तत्सर्वं कथयस्व मे ॥ ३ ॥
धर्मस्यार्थस्य कामस्य मोक्षस्य च परं विधिम् ।
निखिलं ज्ञातुमिच्छामि नान्यो वेत्ता मतिर्मम ॥ ४ ॥

मार्कण्डेय उवाच

उत्पत्तिकारणं ब्रह्मा देवदेवः प्रकीर्तितः । प्रथमं सर्वभूतानां चराचरजगद्गुरुः ॥
द्विजास्तयो मुखाज्जाताः क्षत्रिया बाहुतस्ततः ।
ऊरुदेशाद्वैश्यास्तु शूद्रा पादेभ्यथाऽभवन् ॥ ६ ॥
ततस्त्वन्ये पृथग्वर्णाः पृथग्धर्मान्समाचरन् । पर्यायेणसमुत्पन्ना ह्यनुलोमविलोमतः
तेषां धर्मं प्रवक्ष्यामि श्रुतिस्मृत्यर्थचोदितम् ।
येन सम्यक्कृतेनैव सर्वे यान्ति परां गतिम् ॥ ८ ॥
गतिः र्थान विना भक्तैर्ब्राह्मणैः प्राप्यते नृप ॥
अध्यापयन्यतो वेदान्वेद वाऽपि यथाविधि ॥ ९ ॥
कुलजां रूपसम्पन्नां सर्वलक्षणलक्षिताम् । उद्वाहयेत्ततः पत्नीं गुरुणाऽनुमते ;तदा
ततः स्मार्तं विवाहाग्निं श्रौतं वा पूजयेत्क्रमात् ।
प्रतिग्रहधनो भूत्वा दम्भलोभविवर्जितः ॥ ११ ॥

पञ्चयज्ञविधानानि कारयेद्धि यथाविधि । धनंगच्छेत्ततःपश्चाद्द्वितीयाश्रमसेवनात्
पुत्रेषु भार्यां निक्षिप्य सर्वसङ्गविवर्जितः । इष्टाँल्लोकानवाप्नोति न चेहजायतेपुनः
क्षत्रियस्तु स्थितो राज्ये पालयित्वा वसुन्धराम् ।
शश्वद्धर्ममनाश्चैव प्राप्नोति परमां गतिम् ॥ १४ ॥
वैश्यधर्मो न सन्देहः कृषिगोरक्षणे रतः । सत्यशौचसमोपेतो गच्छते स्वर्गमुत्तमम्
न शूद्रस्यपृथग्धर्मोविहितःपरमेष्ठिना । न मन्त्रोनच संस्कारो न विद्यापरिसेवनम्
न शब्दविद्यासमयो देवताभ्यर्चनानि च । यथा जातेन सततं वर्त्तितव्यमहर्निशम्
स धर्मः सर्ववर्णानां पुरा सृष्टः स्वयम्भुवा ।
मन्त्रसंस्कारसम्पन्नास्त्रयोवर्णा द्विजातयः ॥ १८ ॥
तेषां मतमनादृत्य यदि वर्त्तेत कामतः । स मृतो जायते श्वा वै गतिरूर्ध्वानविद्यते
न तेषां प्रेषणं नित्यं तेषां मतमनुस्मरन् ।
यशोभागी स्वधर्मस्थः स्वर्गभागी स जायते ॥ २० ॥
एवंगुणगणाकीर्णोऽवसद्विप्रःनभारत !। हनस्वेतिहनस्वेतिश्रृणोतिवाक्यमीदृशम्
ततो निरीक्षते चोर्ध्वमधश्चैव दिशो दश ।
वेपमानः स भीतश्च प्रस्खलंश्च पदे पदे ॥ २२ ॥
शृङ्खलायुधहस्तैश्च पाशैश्चैव सुदारुणैः । वेष्टितं महिषारूढं नरं पश्यति सन्मुखम्
कृष्णाञ्जनचयप्रख्यं कृष्णाम्बरविभूषितम् । रक्ताक्षमायतभुजंसर्वलक्षणलक्षितम्
दृष्ट्वा तं तु समायान्तं निरीक्ष्यात्मानमात्मना ।
जपञ्जाप्यं च परमं शतरुद्रीयसंस्तवम् ॥ २५ ॥
ततः प्रोवाच भगवान्यमः संयमनो महान् । श्रृणुवाक्यमतोब्रह्मन्यमोऽहं सर्वजन्तुषु
संहरस्वमहाभागरुद्रजाप्यंसुदुर्भिदम् । येनाऽहंकालपाशैस्त्वां संयमाभिगतव्यथः
तच्छ्रुत्वा निष्ठुरं वाक्यं यमस्य मुखनिर्गतम् ।
महाभयसमोपेतो ब्राह्मणः प्रपलायितः ॥ २८ ॥
तस्यमार्गे गताः सर्वेयमेनसह किङ्कराः । तिष्ठतिष्ठेतितंविप्रमूचुस्तेसोऽप्यधावत

स्मरमाणः परिश्रान्तो हा हतोऽहं दुरात्मभिः ।
रक्ष रक्ष महादेव ! शरणागतवत्सल ! ॥ ३० ॥
एवमुक्त्वाऽपतद्भूमौ लिङ्गमालिङ्ग्य भारत !।
गतसत्त्वः स विप्रेन्द्रः समाश्रित्य सुरेश्वरम् ॥ ३१ ॥
तं दृष्ट्वा पतितं भूमौ देवदेवो महेश्वरः । को हनिष्यति मा भैस्त्वं हुङ्कारमकरोत्तदा
तेन ते किङ्कराः सर्वे यमेन सह भारत !।
हुङ्कारेण गताः सर्वे मेघा वातहता यथा ॥ ३३ ॥
तदाप्रभृति तत्तीर्थं कोहनस्येति विश्रुतम् । सर्वपापहरं पुण्यं सर्वतीर्थेष्वनुत्तमम्
तत्रतीर्थे तु यः स्नात्वा पूजयेत्परमेश्वरम् । अग्निष्टोमस्य यज्ञस्य फलमाप्नोत्यनुत्तमम्
तत्र तीर्थे तु राजेन्द्र ! प्राणत्यागं करोति यः ।
न पश्यति यमं देवमित्येवं शङ्करोऽब्रवीत् ॥ ३६ ॥
अग्निप्रवेशं यः कुर्याज्जले वा नृपसत्तम !। अग्निलोके वसेत्तावद्यावत्कल्पशतत्रयम्
एवं वरुणलोकेऽपि वसित्वा कालमीप्सितम् ।
इहलोकमनुप्राप्तो महाधनपतिर्भवेत् ॥ ३८ ॥
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
रेवाखण्डे कोहनतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम द्वाविंशत्यधिक-
शततमोऽध्यायः ॥ १२२ ॥

त्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

कर्मदेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र कर्मदातीर्थमुत्तमम्। यत्र तिष्ठतिविघ्नेशोगणनाथोमहाबलः

तत्र तीर्थे नरः स्नात्वा चतुर्थ्यां वा ह्युपोषितः।
विघ्नं न विद्यते तस्य सप्तजन्मनि भारत!॥ २॥
तत्र तीर्थे हि यत्किञ्चिद्दीयते नृपसत्तम!।
तदक्षयफलं सर्वं जायते नाऽत्र संशयः॥ ३॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्त्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे रेवाखण्डे कर्मदेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नामत्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः॥

चतुर्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

नर्मदेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेन्महीपाल!नर्मदेश्वरमुत्तमम्। तत्रतीर्थेनरः स्नात्वा मुच्यतेसर्वकिल्बिषैः
अग्निप्रवेशश्चजलेऽथवामृत्युरनाशके। अनिवर्त्तिकागतिस्तस्ययथामेशङ्करोऽब्रवीत्

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्त्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे रेवाखण्डे नर्मदेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नामचतुर्विंशाधिकशततमोऽध्यायः॥

पञ्चत्रिंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

रवितीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेन्महीपाल रवितीर्थमनुत्तमम् । यत्र देवसहस्रांशुस्तप्त्वा दिवंगतः

युधिष्ठिर उवाच

कथं देवो जगद्धाता सर्वदेवनमस्कृतः । तपस्तपति देवेशस्तापसो भास्करो रविः
आराध्यः सर्वभूतानां सर्वदेवैश्च पूजितः । प्रत्यक्षो दृश्यते लोके सृष्टिसंहारकारकः
आदित्यस्य कथं नाम कथं भास्कर उच्यते ।
सर्वमेतत्समासेन कथयस्व ममानघ ॥ ४ ॥

मार्कण्डेय उवाच

महाप्रश्नो महाराज यस्त्वया परिपृच्छितः ।
तत्परं सम्प्रवक्ष्यामि नमस्कृत्य स्वयम्भुवम् ॥ ५ ॥
आसीदिदं तमोभूतमप्रज्ञातमलक्षणम् । अप्रतर्क्यमविज्ञेयं प्रसुप्तमिव सर्वतः ॥ ६
ततस्तेनाण्डं दिव्यं च सप्तपिण्डमनुत्तमम् ।
आकाशात्तु यथैवोल्का सृष्टिहेतोरधोमुखी ॥ ७ ॥
तत्र जातोऽन्तः पुरुषः सजातः सर्वभूषितः ।
स शिवोऽपाणिपादश्च येन सर्वमिदं ततम् ॥ ८ ॥
तस्योत्पन्नस्य भूतस्य तेजोरूपस्य भारत ।
पश्चात्प्रजापतिर्भूय काले कालान्तरेण वै ॥ ९ ॥
अग्निजातः सभूतानामनुष्यासुररक्षसाम् । सर्वदेवाधिदेवश्च आदित्यस्तेन चोच्यते
आर्तो तस्य नमस्कारोऽन्येषां च तदनन्तरम् ।
क्रियन्ते स्वर्गे सर्वैस्तेन सर्वैर्महर्षिभिः ॥ ११ ॥

तिस्रः सन्ध्यास्त्रयो देवाः सान्निध्याः सूर्यमण्डले ।
नमस्कृतेन सूर्येण सर्वे देवाः नमस्कृताः ॥ १२ ॥
न दिवा न भवेद्रात्रिः षण्मासा दक्षिणायनम् ।
अयनं चोत्तरं चाऽपि भास्करेण विना नृप !॥ १३ ॥
स्नानंदानंजपोहोमःस्वाध्यायो देवतार्च्चनम् । न वर्त्ततेविनासूर्यं तेनपूज्यतमोरविः
शब्दगाःश्रुतिमुख्याश्चब्रह्मविष्णुमहेश्वराः । प्रत्यक्षोभगवान्देवो दृश्यतेलोकपावनः
उत्पत्तिः प्रलयस्थानं निधानं बीजमव्ययम् ।
हेतुरेको जगन्नाथो नाऽन्यो विद्येत भास्करात् ॥ १६ ॥
एवमात्मभवंकृत्वाजगत्स्थावरजङ्गमम् । लोकानांतुहितार्थायस्थापयेद्धर्मपद्धतिम्
नर्मदातटमाश्रित्य स्थापयित्वाऽऽत्मनस्तनुम् ।
सहस्रांशु निधिं धाम्नां जगामाऽऽकाशमव्ययम् ॥ १८ ॥
तत्र तीर्थे तु यः स्नात्वा पूजयेत्परमेश्वरम् । सहस्रकिरणंदेवं नाममन्त्रविधानतः
तेन तप्तं हुतं तेन तेन सर्वमनुष्ठितम् । तेन सम्यग्विधानेन सम्प्राप्तं परमम्पदम् ॥
ते धन्यास्ते महात्मानस्तेषां जन्म सुजीवितम् ।
स्नात्वा ये नर्मदातोये देवं पश्यन्ति भास्करम् ॥ २१ ॥
तथादेवस्यराजेन्द्र ये कुर्वन्ति प्रदक्षिणम् । अनन्यभक्त्यासततंत्रिरक्षरसमन्विताः
तेन पूतशरीरास्ते मन्त्रेण गतपातकाः । यत्पुण्यं च भवत्तेषां तदिहैकमनाः शृणु
ससमुद्रगुहा तेन सशैलवनकानना । प्रदक्षिणीकृता सर्वा पृथिवी नाऽत्र संशयः
मन्त्रमूलमिदं सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम् ।
तेन मन्त्रविहीनं तु कार्यं लोके न सिद्ध्यति ॥ २५ ॥
यथा काष्ठमयो हस्ती यथा चर्ममयो मृगः ।
कार्यार्थं नैव सिद्ध्येत तथा कर्म ह्यमन्त्रकम् ॥ २६ ॥
यथा भस्महुतं पार्थ! यथा तोयविवर्जितम् ।
निष्फलं जायते दानं तथा मन्त्रविवर्जितम् ॥ २७ ॥

काष्ठपाषाणलोष्ट्रेषु मृण्मयेषु विशेषत । मन्त्रेणलोकेपूजा ▮ कुर्वन्ति न ह्यमन्त्रत

द्वादशाब्दान्नमस्काराद्भक्त्या यल्लभते फलम् ।
मन्त्रयुक्तनमस्कारात्सद्यस्तल्लभते फलम् ॥ २६ ॥
सङ्क्रान्तौ च व्यतीपाते अयने विषुवे तथा ।
नर्मदाया जले स्नात्वा यस्तु पूजयते रविम् ॥ ३० ॥

द्वादशाब्देन यत्पापमज्ञानज्ञानसञ्चितम् । तत्क्षणान्नश्यते सर्वं वह्निना तु तुष यथा

चन्द्रसूर्यग्रहे स्नात्वा सोपवासो जितेन्द्रिय ।
तत्रादित्यमुख दृष्ट्वा मुच्यते सर्वकिल्बिषै ॥ ३२ ॥

माघमासे तु सम्प्राप्ते सप्तम्यां कृष्णसत्तम । सोपवासोजितक्रोधउपित्वासूर्यमन्दिरे
प्रात स्नात्वा विधानेन दद्यादर्घ्यंदिवाकरे । विधिनामन्त्रयुक्तेनलभेत्पुण्यमुत्तमम्
पितृदेवमनुष्याणा कृत्वाह्यहकतर्पणम् । मन्दिरं देवदेवस्य तत पूजा समाचरेत्
गन्धै पुष्पैस्तथा धूपैर्दीपनैवेद्यशोभनै । पूजयित्वा जगन्नाथ ततो मन्त्रमुदीरयेत्

विष्णु शक्रो यमो धाता मित्रोऽथ वरुणस्तथा ।
विवस्वान्सविता पूषा चण्डांशुर्भग एव च ॥ ३७ ॥

इतिद्वादशनामानि जपन्कृत्वा प्रदक्षिणाम् । यत्फलंलभतेपार्थ तदिहैकमना शृणु

दरिद्रो व्याधितो मूको बधिरो जड एव च ।
न भवेत्सप्तजन्मानि इत्येव शङ्करोऽब्रवीत् ॥ ३६ ॥

एवङ्कृत्वाविधानेनजपन्मन्त्र विचक्षण । आराधयेद्रविभक्त्यायश्रेच्छेत्पुण्यमुत्तमम्
मन्त्रहीना ▮ य कुर्याद्भक्ति देवस्यभारत । सविडम्बतिचात्मानपशुर्नाटपतद्ध्रुवम्
तत्रतीर्थे तु य कश्चित्त्यजते देहमुत्तमम् । सगनस्तन्न देवैस्तुपूज्यमानो महर्षिभि
स्वेच्छया सुचिरकालमिहलोके नृपोभवेत् । पुत्रपौत्रसमायुक्तोहस्त्यश्वरथसङ्कुल

दासीदासशतोपेतो जायते विपुले कुले ॥ ४४ ॥

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यासहितायापञ्चमेऽवन्तीखण्डे रेवाखण्डेरवितीर्थमाहात्म्यवर्णननाम पञ्चविंशत्यधिकशततमोऽध्याय. ॥ १२५ ॥

षड्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

अयोनिप्रभवतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततोगच्छेत्तुराजेन्द्र! परंतीर्थमयोनिजम्। स्नातमात्रो नरस्तत्रनपश्येद्योनिसङ्कटम्
तत्र तीर्थे नरःस्नात्वा पूजयेद्देवमीश्वरम्। अयोनिजोमहादेव! यथात्वं परमेश्वर
तथामोचय मांदेव सम्भवाद्योनिसङ्कटात्। गन्धपुष्पादिधूपैश्चसमुच्येत्सर्वपातकैः

तस्य देवस्य यो भक्त्या कुरुते लिङ्गपूरणम्।
स वसेद्दु देवदेवस्य यावत्सिक्थस्य सङ्ख्यया ॥ ४ ॥

अयोनिजे महादेवं स्नापयेद्गन्धवारिणा। मधुक्षीरेण दध्नावासलभेद्विपुलांश्रियम्

अष्टम्यां च सिते पक्षे असितां वा चतुर्दशीम्।
पूजयित्वा महादेवं प्रीणयेद्गीतवाद्यकैः ॥ ६ ॥
वसेत्स च शिवे लोके ये कुर्वन्ति मनोहरम्।
ते वसन्ति शिवे लोके यावदाभूतसम्प्लवम् ॥ ७ ॥

तस्य देवस्य भक्त्या तुयःकरोतिप्रदक्षिणाम्। विज्ञापयंश्चसततंमन्त्रेणानेनभारत
तस्य यत्फलमुद्दिष्टंपारम्पर्येण मानवैः। सकाशाद्दु देवदेवस्यतच्छृणुष्वसमाधिना

अयोनिजो महादेव ! यथा त्वं परमेश्वर !।
तथा मोचय मां शर्व! सम्भवाद्योनिसङ्कटात् ॥ १० ॥
किं तस्य बहुभिर्मन्त्रैः कण्ठशोषणतत्परैः।
येनोङ्नमः शिवायेति प्रोक्तं देवस्य सन्निधौ ॥ ११ ॥
तेनाऽधीतं श्रुतं तेन तेन सर्वमनुष्ठितम्।
येनोङ्नमः शिवायेति मन्त्राभ्यासः स्थिरीकृतः ॥ १२ ॥

नतत्फलमवाप्नोति सर्वदेवेषु वै द्विजः। यत्फलं समवाप्नोति षडक्षरउदीरणात् ॥

तत्र तीर्थे तु यः स्नात्वा पूजयेच्छिवयोगिनम् ।
द्विजानामयुतं साग्रं सलभेत्फलमुत्तमम् ॥ १५ ॥
अथवा भक्तियुक्तस्तु सेवा दान्ते जितेन्द्रिये ।
सत्कृत्य ददते भिक्षा फलं तस्य ततोऽधिकम् ॥ १६ ॥
यतिहस्तेजलंदद्याद्भिक्षांदत्वापुनर्जलम् । साभिक्षामेरुणातुल्यातज्जलंसागरोपमम् ॥
इति श्रीस्कान्देमहापुराणएकाशीतिसाहस्र्यां संहितायांपञ्चमेऽवन्तीखण्डे रेवाखण्डेऽयोनिप्रभवतीर्थमाहात्म्यवर्णननाम षड्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥

सप्तविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

अग्नितीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

ततोगच्छेत्तु राजेन्द्र अग्नितीर्थमनुत्तमम् ।
तत्र स्नात्वा तु पक्षादौ मुच्यते सर्वकिल्बिषैः ॥ १ ॥
तत्रतीर्थे तु यः कन्यां दद्यात्स्वयमलङ्कृताम् ।
तस्य यत्फलमुद्दिष्टं तच्छृणुष्व नरोत्तम ॥ २ ॥
अग्निष्टोमातिरात्राभ्यां शतशतगुणीकृतम् ।
प्राप्नोति पुरुषो दत्त्वा यथाशक्त्या ह्यलङ्कृताम् ॥ ३ ॥
तस्यां पुत्रप्रपौत्राणां या भवेद्रोमसङ्ख्यतिः ।
स याति तेन मानेन शिवलोके परां गतिम् ॥ ४ ॥
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे रेवाखण्डेऽग्नितीर्थमाहात्म्यवर्णननाम सप्तविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥

अष्टाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

भृकुटेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततोगच्छेत्तु राजेन्द्र! भृकुटेश्वरमुत्तमम्। यत्रसिद्धो महाभागो भृगुः परमकोपनः
तेनवर्षशतं साग्रं तपश्चीर्णं पुराऽनघ। पुत्रार्थं वरयामास पुत्रं पुत्रवतांवरः॥ २॥
वरोदत्तो महाभाग देवेनान्धकघातिना। तत्र तीर्थंतु यः स्नात्वापूजयेत्परमेश्वरम्
अग्निष्टोमस्ययज्ञस्य फलमष्टगुणं लभेत। भृकुटेशं तु यः कश्चिद्घृतेन मधुना सह॥

पुत्रार्थी स्नापयेद्भक्त्या स लभेत्पुत्रमीप्सितम्।
तत्र तीर्थे तु यः स्नात्वा दद्याद्विप्राय काञ्चनम्॥ ५॥
गोदानं वा महीं वाऽपि तस्य पुण्यफलं शृणु॥ ६॥

ससमुद्रगुहा तेन सशैलवनकानना। दत्ता पृथ्वी न सन्देहस्तेन सर्वा नृपोत्तम!॥

तेन दानेन स स्वर्गे क्रीडयित्वा यथासुखम्।
मर्त्ये भवति राजेन्द्रो ब्राह्मणो वा सुपूजितः॥ ८॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे रेवाखण्डे भृकुटेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नामाऽष्टाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः॥

एकोनत्रिंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेन्महीपाल ब्रह्मतीर्थमनुत्तमम्। अन्येषां चैव तीर्थानां परात्परतरं महत्

तत्र तीर्थे [illegible] यः स्नात्वा पूजयेच्छिवयोगिनम् ।
द्विजानामयुतं साग्रं स लभेत्फलमुत्तमम् ॥ १५ ॥
अथवा भक्तियुक्तस्तु तेषां दान्ते जितेन्द्रिये ।
मस्करिण्य ददते भिक्षां फलं तस्य ततोऽधिकम् ॥ १६ ॥
यतिहस्तेजलं दद्याद्भिक्षां दत्त्वा पुनर्जलम् । सा भिक्षा मेरुणा तुल्या तज्जलं सागरोपमम् ।
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
रेवाखण्डेऽयोनिसम्भवतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम षड्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥

सप्तविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

अग्नितीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेत राजेन्द्र अग्नितीर्थमनुत्तमम् ।
तत्र स्नात्वा तु पक्षादौ मुच्यते सर्वकिल्बिषैः ॥ १ ॥
तत्रस्थं तु यः कन्यां दद्यात्स्वयमलङ्कृताम् ।
तस्य यत्फलमुद्दिष्टं तच्छृणुष्व नृपोत्तम ॥ २ ॥
अग्निष्टोमातिरात्राभ्यां शतशतगुणीकृतम् ।
प्राप्नोति पुरुषो दत्त्वा यथाशक्त्या ह्यलङ्कृताम् ॥ ३ ॥
तस्यां पुत्रपौत्राणां या भवेद्रोमसङ्गतिः ।
स याति तेन मानेन शिवलोके परां गतिम् ॥ ४ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
रेवाखण्डेऽग्नितीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम सप्तविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥

त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

देवतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

नर्मदादक्षिणे कूले देवतीर्थमनुत्तमम् । तत्र देवैः समागत्य तोषितः परमेश्वरः ॥१॥

तत्र तीर्थे तु यः स्नात्वा कामक्रोधविवर्जितः ।
स लभेन्नात्र सन्देहो गोसहस्रफलं श्रुतम् ॥ २ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे रेवाखण्डे देवतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१३०॥

एकत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

नागेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

नर्मदादक्षिणे कूले नागतीर्थमनुत्तमम् । यत्र सिद्धा महानागा भये जाते ततोनृप

युधिष्ठिर उवाच

महाभयानांलोकस्यनागानां द्विजसत्तम । कथंजातंभयंतीव्रं येनतेतपसिस्थिताः

भूतं भव्यं भविष्यच्च यत्सुरासुरमानवे । तात ते विदितं सर्वं तेन मे कौतुकं महत्

ममसन्तापजं दुःखंदुर्योधनसमुद्भवम् । तव वक्त्राम्बुजौघेन प्लावितंनिर्वृतिंगतम्

श्रुत्वा तव मुखोद्गीतां कथां पापप्रणाशनीम् ।
भूयोभूयः स्मृतिर्जाता श्रवणे मम सुव्रत !॥ ५ ॥

तत्र तीर्थे सुरश्रेष्ठो ब्रह्मा लोकपितामह । चतुर्णामपिवर्णाना नर्मदातत्माश्रित

वाचिक मानस पाप कर्मज यत्पुराकृतम् ।

तत्क्षालयति देवेशो दर्शनादेव पातकम् ॥ ३ ॥

श्रुतिस्मृत्युदितान्येव तत्र स्नात्वा द्विजपभा ।

प्रायश्चित्तानि कुर्वन्ति नैरा वासस्त्रिविष्टपे ॥ ४ ॥

ये पुन शास्त्रमु त्सृज्यकामलोभप्रपीडिता । प्रायश्चित्तंचदिव्यन्तितर्ते निरयगामिन

स्नात्वाऽद्भी पातकी ब्रह्मण्या तु कीर्तयेद्यम् ।

तस्य तत्क्ष्यने क्षिप्र तम सूर्योदये यथा ॥ ६ ॥

तत्र तीर्थ तु य स्नात्वापूजयेत्पितृदेवता । अग्निष्टोमस्ययज्ञस्यसलभेत्फलमुत्तमम्

तत्र तीर्थे तु यद्दान ब्रह्मोद्दिश्य प्रयच्छति । तदक्षयफल सर्वमित्येव शङ्करोऽब्रवीत्

गायत्रीसारमात्रोऽपित्र य नियतजप । ऋग्यजु सामसहित स भवेनात्रसशय

तत्र तीर्थ तु यो भक्त्या पश्येद्ब सुदुस्त्यजम् ।

अनिवर्त्तिका गतिस्तस्य ब्रह्मलोकान्न सशय ॥ १० ॥

यावदस्थीनि तिष्ठन्ति ब्रह्मतीर्थ च देहिनाम् ।

तावद्वर्षसहस्राणि देवलोके महीयते ॥ ११ ॥

अवतीर्णस्ततो लोके ब्राह्मणो जायते कुले । उत्तम सर्ववर्णाना देवानामिव देवता

विद्यास्थानानि सर्वाणि वेत्ति वेदाङ्गपारग ।

जायते पूजितो लोके राजभि स न सशय ॥ १३ ॥

पुत्रपौत्रसमोपेत सर्वव्याधिविवर्जित । जीवेद्वर्षशतसाग्र ब्रह्मतीर्थप्रभावत ॥

एतत्पुण्यपापहरनाथ ज्ञानवता वरम् । ये पश्यन्ति महात्मानोह्यमृतत्त्वप्रयान्ति ते

इति श्रीस्कान्दे महापुराणएकाशीतिसाहस्र्या संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे रेवाखण्ड ब्रह्मतीर्थमाहात्म्यवर्णन नामैकोनत्रिंशदधिकशततमोऽध्याय ॥१२९॥

दासत्वं प्राप्स्यते त्वं हि पणेनाऽनेन सुव्रते !॥ २० ॥

कद्रूरुवाच

भवेयंनयथादासीतत्कुरुध्वं हि सत्वरम् । विशध्वं रोमकूपेषु तस्याश्वस्यमतिर्मम

क्षणमात्रं कृते कार्ये मा दासी च भवेन्मम ।

ततः स्वस्थोरगाः सर्वे भविष्यथ यथासुखम् ॥ २२ ॥

सर्पा ऊचुः

यथा त्वं जननी देवि! पन्नगानां मता भुवि ।

तथाऽपि सा विशेषेण वञ्चितव्या न कर्हिचित् ॥ २३ ॥

कद्रूरुवाच

ममवाक्यमकुर्वाणायेकेचिद्वैविपन्नगाः । हव्यवाहमुखं सर्वे यास्यन्त्यविनाशिताः

एतच्छ्रुत्वा तु वचनं घोरं मातृमुखोद्भवम् ।

केचित्प्रविष्टा रोमाणि तथाऽन्ये गिरिसंस्थिताः ॥ २५ ॥

केचित्प्रविष्टा जाह्नव्यामन्ये च तपसि स्थिताः ॥ २६ ॥

ततो वर्षसहस्रान्ते तुतोष परमेश्वरः । महादेवो जगद्धाताह्युवाच परया गिरा ॥

भो भोः सर्पा निवर्त्तध्वं तपसोऽस्य महत्फलम् ।

यमिच्छथ ददाम्यद्य नाऽत्र कार्या विचारणा ॥ २८ ॥

सर्पा ऊचुः

कद्रूशापभयाद्भीता देवदेव महेश्वर । तवपार्श्वे वसिष्यामो यावदाभूतसम्प्लवम्

देवदेव उवाच

एकश्चायं महाबाहुर्वासुकिर्भुजगोत्तमः । मम पार्श्वे वसेन्नित्यं सर्वेषां भयरक्षकः

अन्येषां चैव सर्पाणां भयं नाऽस्ति ममाज्ञया ।

आप्लुत्य नर्मदातोये भुजगास्ते च रक्षिताः ॥ ३१ ॥

नास्ति मृत्युभयं तेषां वसध्वं यत्र चेप्सितम् ।

कद्रूशापभयं नास्ति ह्येष मे विस्तरः परः ॥ ३२ ॥

॥ यलेशार्थं द्विजे युक्त न धान्यो जानते फलम् ।
विद्यादानस्य महत धावितस्य सुतस्य च ॥ ६ ॥
एव ज्ञात्वा यथान्याय य प्रश्न पृच्छितो मया ।
कथा तु कथ्यता विप्र दया कृत्वा ममोपरि ॥ ७ ॥

मार्कण्डेय उवाच

यथायथा त्व नृप भाषसे च तथा मया मे सुरमेति भारती ।
धीधिदयभाषाक्षरयाऽन्वितस्य स्वस्तीदृश नश्यति नैव तात ॥ ८ ॥
कथयामि यथावृत्तमितिहास्म पुरातनम् । कथित पूर्वतो वृद्धै पारम्पर्यण भारत
द्वे भार्ये कश्यपस्याऽऽस्ता सर्वगोरेष्वनुत्तमे ।
गरम्भतो वै विनता सपाणा कद्रुरेव च ॥ १० ॥
अन्यमन्दशनात्साक्ष्या कलिकृप व्यवस्थितम् ।
प्रभातकाले राजेन्द्र भास्कराकारकवर्चसम् ॥ ११ ॥
नदृष्ट्वा विनतारूपमश्वमथत्र पाण्डुरम् । अथ ता कद्रूमवोचत्तापदपयपरयधरानने
उर्ध्वं श्रवस माहृश्य पश्य मयत्रपाण्डुरम् । धावमानमविश्रान्त जवेनपवनोपमम्
न दृष्टासहसायान्नमीष्याभावेनमोहिता । कृष्णमस्यातथाऽजल्पत्तयासहसृपोत्तम
विनते त्व मृषा लोके भाषसे कुल्पासनि ।
कृष्ण वैन यद श्वेत नरक यास्यसे परम् ॥ १५ ॥

विनतोवाच

स्थ्याऽनृतं तु वचने पणोऽय ते ममैव तु । सहस्रवत्सरान्दासीभयेय तव वेश्मनि
नथेति तेप्रतिज्ञायरात्रौमन्वास्वक गृहम् । परित्यज्यउभेतेनुक्रोधमूर्च्छितमूर्च्छितं
वन्धुवगमथगत्वा तु कथयामास त पणम् । कद्रूर्विनतया सार्द्धं यद्वृत्तप्रमदालये
नत्क्र त्वा वान्धवा सर्वे कद्रूपुत्रास्तथैव च ।
न मन्यन्ते हित कार्यं कृत माता विगर्हितम् ॥ १६ ॥
आकृष्णा कृष्णतामम्ब कथ गच्छेदयोत्तम ।

दासत्वं प्राप्स्यते त्वं हि पणेनाऽनेन सुव्रते ॥ २० ॥

कद्रूरुवाच

भवेयंनयथादासीतत्कुरुध्वं हि सत्वरम् । विशध्वं रोमकूपेषु तस्याश्वस्यमतिर्मम

क्षणमात्रं कृते कार्ये सा दासी च भवेन्मम ।

ततः स्वस्थोरगाः सर्वे भविष्यथ यथासुखम् ॥ २२ ॥

सर्पा ऊचुः

यथा त्वं जननी देवि! पन्नगानां मता भुवि ।

तथाऽपि सा विशेषेण वञ्चितव्या न कर्हिचित् ॥ २३ ॥

कद्रूरुवाच

ममवाक्यमकुर्वाणायेकेचिद्भुविपन्नगाः । हव्यवाहमुखं सर्वे यास्यन्त्यविचारिताः

एतच्छ्रुत्वा तु वचनं घोरं मातृमुखोद्भवम् ।

केचित्प्रविष्टा रोमाणि तथाऽन्ये गिरिसंस्थिताः ॥ २५ ॥

केचित्प्रविष्टा जाह्नव्यामन्ये च तपसि स्थिताः ॥ २६ ॥

ततो वर्षसहस्रान्ते तुतोष परमेश्वरः । महादेवो जगद्धाताह्युवाच परया गिरा ॥

भो भोः सर्पा निवर्त्तध्वं तपसोऽस्य महत्फलम् ।

यमिच्छथ ददाम्यद्य नाऽत्र कार्या विचारणा ॥ २८ ॥

सर्पा ऊचुः

कद्रूशापभयाद्भीता देवदेव महेश्वर । तवपार्श्वे वसिष्यामो यावदाभूतसम्प्लवम्

देवदेव उवाच

एकश्चायं महाबाहुर्वासुकिर्भुजगोत्तमः । मम पार्श्वे वसेन्नित्यं सर्वेषां भयरक्षकः

अन्येषां चैव सर्पाणां भयं नाऽस्ति ममाज्ञया ।

आप्लुत्य नर्मदातोये भुजगास्ते च रक्षिताः ॥ ३१ ॥

नास्ति मृत्युभयं तेषां वसध्वं यत्र चेप्सितम् ।

कद्रूशापभयं नास्ति ह्येष मे विस्तरः परः ॥ ३२ ॥

एवं दत्त्वा वरं तेषां देवदेवो महेश्वरः ।
जगामाऽऽकाशमाविश्य कैलासं धरणीधरम् ॥ ३३ ॥
गते चादर्शनं देवे वासुकिप्रमुखा नृप । स्थापयित्वा तथा जग्मुर्देवदेवं महेश्वरम्
तत्र तीर्थे तु यः कश्चित्पञ्चम्यामर्चयेच्छिवम् ।
तस्य नागकुलोत्पन्ना न हिंसन्ति कदाचन ॥ ३५ ॥
मृतः कालेन महता तत्तीर्थे नरेश्वर । शिवस्यानुचरो भूत्वा वसेत्कालमसंख्यितम्
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे रेवाखण्डे नागेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नामैकत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१३१॥

द्वात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

आदिवाराहतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेत राजेन्द्र उत्तरे नर्मदातटे । सर्वपापहरं तीर्थं वाराहं नाम नामतः ॥
यत्रस्थो जगद्धाता वाराहं रूपमास्थितः ।
स्थितो लोकहितार्थाय समाराधनतत्परः ॥ २ ॥
तत्र तीर्थे तु यः स्नात्वा पूजयेद्धरणीधरम् ।
गन्धमाल्यैर्विचित्रैश्च पयसा दधि मद्गुडैः ॥ ३ ॥
उपवासपरो भूत्वा द्वादश्यां नृपसत्तम । कृष्णायां पक्षमाणस्तु यो धार्यपिशाचिनः
आगर्भाद्राजसत्ताधिश्चामात्महतोऽनताम् ।
पापं संक्रमते तस्मात्सप्तजन्मान्तरार्जितम् ॥ ५ ॥
ब्राह्मणान्पूजयेद्भक्त्या यथाशक्त्या यथाविधि ।

रात्रौ जागरणं कार्यं कथायां तत्र भारत !॥ ६ ॥
प्रभाते विमले स्नात्वा तत्र तीर्थे जगद्गुरुम् ।
ये पश्यन्ति जितक्रोधास्ते मुक्ताः सर्वपातकैः ॥ ७ ॥
यथा तु दृष्ट्वा भुजगाः सुपर्णं नश्यन्ति मुक्त्वा विषमुग्रतेजः ।
नश्यन्ति पापानि तथैव शीघ्रं दृष्ट्वा मुखं शूकररूपिणस्तु ॥ ८ ॥
नभोगतं नश्यति वान्धकारं दृष्ट्वा रविं देववरं तथैव ।
नश्यन्ति पापानि सुदुस्तराणि दृष्ट्वा मुखं पार्थ! धराधरस्य ॥ ६ ॥
किं तस्य बहुभिर्मन्त्रैर्भक्तिर्यस्य जनार्दने । नमोनारायणायेतिमन्त्रःसर्वार्थसाधकः
एकोऽपि कृष्णस्य कृतः प्रणामो दशाश्वमेधावभृथेन तुल्यः ।
दशाश्वमेधी पुनरेति जन्म कृष्णप्रणामी न पुनर्भवाय ॥ ११ ॥
ध्यायमाना महात्मानो रूपं नारायणं हरेः ।
ये त्यजन्ति स्वकं देहं तत्र तीर्थे जितेन्द्रियाः ॥ १२ ॥
ते गच्छन्त्यमलं स्थानं यत्सुरैरपि दुर्लभम् ।
क्षराक्षरविनिर्मुक्तं तद्विष्णोः परमं पदम् ॥ १३ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
रेवाखण्डे आदिवाराहतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम
द्वात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३२ ॥

त्रयस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

कुवेरादितीर्थचतुष्टयमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेन्महीपाल' पर तीर्थचतुष्टयम् । येषा दर्शनमात्रेण सर्वपापक्षयो भवे
कौबेरवारुणयाम्यवायव्यंभुवन परम् । यत्र सिद्धामहात्मानो लोकपालामहाबल

युधिष्ठिर उवाच

किमर्थं लोकपालैश्च तपश्चीर्णं पुराऽनघ । नर्मदातटमाश्रित्य श्रोतन्मे वक्तुमर्हसि

श्रीमार्कण्डेय उवाच

अधिष्ठानसमिच्छन्तिह्यघ्ननिमते सति । संसारे सवभूताना तृणबिन्दुयदन्थ
कदलासारनि सार मृगतृष्णेव चञ्चले । स्थावरे जङ्गमे सर्वे भूतग्रामे चतुर्विधे

धर्मो माता पिता धर्मो धर्मो बन्धु सुहृत्तथा ।
आधार सर्वभूताना त्रैलोक्ये सचराचरे ॥ ६ ॥

एव ज्ञात्वा ते सर्वे लोकपाला ऊलक्षणा । तपस्तेपुश्चरतुल मारुताहारतत्परा
ततस्तुष्टो महादेव कृतस्यार्द्धे गते तदा । अनुरूपेण राजेन्द्र युगस्य परमेश्वर ।

वरेण च्छन्दयामास लोकपालान्महाबलान् ।
यो यमिच्छति काम वै स त तस्य ददाम्यहम् ॥ ६ ॥

एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य लोकपालाजगद्धिता । वरद प्रार्थयामासुर्देववरमनुत्तमम्

कुबेर उवाच

यदि तुष्टो महादेव' यदि देयोवरो मम । यक्षाणामीश्वरश्चाहभवामिधनदस्त्वति
तत प्रोवाच देवेश यम सयमने रत । तत्र प्रधानो भगवान्भवेय सर्वजन्तुषु ॥१२
वरुणोऽनन्तर प्राह प्रणम्य तु महेश्वरम् । क्रीडेय वारुणे लोके यादोगणसमन्वित

जगादाऽऽशु ततो वायु प्रणम्य तु महेश्वरम् ।

व्यापकत्वं त्रिलोकेषु प्रार्थयामास भारत !॥ १४ ॥

तेषां यदीप्सितं काममुमया सह शङ्करः । सर्वेषांलोकपालानां दत्त्वाचादर्शनंगतः

गते महेश्वरे देवे यथास्थानं तु ते स्थिताः ।

स्थापना च कृता सर्वैः स्वानाम्नैव पृथक्पृथक् ॥ १६ ॥

कुवेरश्च कुवेरेशं यमश्चैव यमेश्वरम् । वरुणो वरुणेशं तु वातो वातेश्वरं नृप ॥ १७

तर्प्पणं विदधुः सर्व्वे मन्त्रैश्च विविधैः शुभैः ।

सर्वे सर्वेश्वरं देव पूजयित्वा यथाविधि ॥ १८ ॥

आह्वयामासुस्तान्विप्रान्सर्वे सर्वेश्वरा इव ।

क्षान्तदान्तजितक्रोधान्सर्वभूताभयप्रदान् ॥ १६ ॥

वेदविद्याव्रतस्नातान्सर्वशास्त्रविशारदान् ।

ऋग्यजुःसामसंयुक्तांस्तथाऽथर्व्वविभूषितान् ॥ २० ॥

चातुर्विध्यं तुसर्वेषांदानंदास्यामगृह्णत । एवमुक्त्वातुसर्वेषां विप्राणांदानमुत्तमः

तत्र स्थाने ददुस्तेषां भूमिदानमनुत्तमम् । यावच्चन्द्रश्चसूर्यश्चयावत्तिष्ठतिमेदिनि

तावद्दानंतुयुष्माकं परिपन्थी न कश्चन । राजावा राजतुल्योवालोकपालैरनुत्तम

दत्तं लोपयते मूढःश्रूयतां तस्ययोविधिः । शोषयेद्धनदोवित्तं तस्य पापस्य भार

शरीरंवरुणोदेवः सन्ततींचसनस्तथा । आयुर्नश्यतितस्याऽऽशुयमःसंयमनोमहा

निःशेषं भस्मसात्कृत्वा हुतभुग्याति भारत !।

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन ब्राह्मणेभ्यो युधिष्ठिर! ॥

भक्तिः कार्या नृपैः सर्वैरिच्छद्भिः श्रेय आत्मनः ॥ २६ ॥

राजा वृक्षो ब्राह्मणास्तस्य मूलं भृत्याः पर्णा मंत्रिणस्तस्य शाखाः

तस्मान्मूलं यत्नतो रक्षणीयं मूले गुप्ते नास्ति वृक्षस्य नाशः ॥ २७ ॥

षष्टिवर्षसहस्राणिस्वर्गेतिष्ठतिभूमिदः । आच्छेत्ताचाऽनुमन्ताचतान्येवनरकेवसे

स्वदत्तां परदत्तां वा पालनीया वसुन्धरा ।

यस्य यस्य यदा भूमिस्तस्य तस्य तदा फलम् ॥ २६ ॥

दपतानामनुस्मानस्यराजानायेऽपिनानृप । पालयिष्यन्ति सततं नित्यामग्निविष्टे
स्यन्ना यादृशा या यथादृष्ट्या युधिष्ठिर ।
मही मर्गक्षिता नित्यं दानाभ्यो योऽनुपालनम् ॥ ३१ ॥
आयुपशा यत् पिनं संततिभाऽक्षयानृप । तेषामविष्यते नूनं ये प्रनापाऽभि रता
ययनुपन्धा नु मान्यपालोकपालान् द्विजोत्तमान् ।
पूजयिष्या विधानेन प्रणिपत्य क्षमापयन् ॥ ३३ ॥
ततस्तु पितृमुख्येषु स्नात्वा तु तत्तु नायका ।
नायपाला भुधायिता पयट मैश्चमारमन ॥ ३४ ॥
अन्वियण्मापनायाद्य यथानोऽभूनपानय । यन्ध्यप्रामसर्वार्थनियुतानाड्वयदि
शार्व स्थानसामाभाम्यामणाययुधिष्ठिर । दरिद्रा मनतंमूलामनेयुधयपुर्ण दान
मनाभृतिन नयप्राह्मणा धनयर्पिता । शापदानण कौरेया संजातानुस्यमानता
नधन पन्नपुत्रन पिता पुत्रपार्थिवम् । मुञ्चनफल कान्मिन्धेयं शङ्करोऽर्पयान्
यथान ना स्नान्यामनुपूनधनशियम् । गन्धधूपनमस्कारै सोऽश्वमेधफलं लभेत्
यमनाथ नृप स्नात्वा मनार्यनियमध्वरम् । सर्वपापैः प्रमुच्येत नात्र कार्या विचारणा
पूणमाम्वाममावाम्या स्नात्वा तु पितृतर्पणम् ।
य करोति तिल स्नान तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ ४१ ॥
सन्तमान्ति तायन पितरश्च पितामहा ।
न्यगरुधा द्वान्शाब्दानि क्रीडन्ति प्रपितामहा ॥ ४२ ॥
धरणशानर स्नात्वा तर्पयित्वा महेश्वरम् । वाजपेयस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोति पुष्कलम्
मृता(न का तमहतालोकयन तेश्वर । सगच्छेत्र यानेन गीयमानोऽप्सरोगणैः
धानश्वर नर स्नात्वा सम्पूज्य च महेश्वरम् ।
तायत क्रतन्यास्मौ लोकपालानवेक्षयन् ॥ ४३ ॥
किं तस्य बहुभिर्यज्ञैरनवा बहुदक्षिणैः । स्नात्वा चतुष्टये लोके अवाप्त जन्मनः फलम्
न त यान्ति महामानस्तत्र जन्म सुजीवितम् ।

नित्यं वसन्ति कौरिल्यां (.कौवेर्याम्) लोकपालान्निमन्त्र्य ये ॥ ४७ ॥
एतत्पुण्यं पापहरं धन्यमायुर्विवर्धनम् । पठतां शृण्वतां चैव सर्वपापक्षयो भवेत्
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
रेवाखण्डे कुवेरादितीर्थचतुष्टयमाहात्म्यवर्णनंनाम
त्रयस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३३ ॥

चतुस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

रामेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

नर्मदादक्षिणे कूले रामेश्वरमनुत्तमम् । तीर्थं पापहरं पुण्यं सर्वदुःखघ्नमुत्तमम् ॥
तत्रतीर्थेतुये स्नात्वापूजयन्तिमहेश्वरम् । महादेवंमहात्मानं मुच्यन्तेसर्वकिल्बिषैः
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायांपञ्चमेऽवन्तीखण्डे
रेवाखण्डे रामेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नामचतुस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥

पञ्चत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

सिद्धेश्वरमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

तस्यैवानंतरं चान्यत्सिद्धेश्वरमनुत्तमम् । तीर्थं सर्वगुणोपेतं सर्वलोकेषु पूजितम्
तत्र तीर्थेतुयः स्नात्वा ह्युमारुद्रंप्रपूजयेत् । वाजपेयस्ययज्ञस्यस लभेत्फलमुत्तमम्
तेन पुण्येन महता मृतः स्वर्गमवाप्नुयात् । अप्सरोगणसंवीतो जयशब्दादिमंगलैः

सहपत्न्यास्ततस्तत्र क्रीडयित्वा यथासुखम् ।
धनधान्यसमोपेते कुले महति जायते ॥ ५ ॥
पूज्यमानो मनुष्यैश्च वेदवेदाङ्गपारगः । व्याधिशोकविनिर्मुक्तो जीवेच्च शरदां शत
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीख
रेवाखण्डे सिद्धेश्वरमाहात्म्यवर्णनं नाम पञ्चत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३५

षट्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

अहल्यातीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेन्महीपाल अहल्येश्वरमुत्तमम् । यत्र सिद्धा महाभागा अहल्या तापसी पु
गौतमो ब्राह्मणश्चासीत्स्नातकश्चैव काश्यप ।
सत्यधर्मसमायुक्तो वानप्रस्थाश्रमे रतः ॥ २ ॥
तस्य पत्नी महाभागा अहल्यानामविश्रुता । रूपयौवनसम्पन्ना त्रिषु लोकेषु विश्रु
तस्यास्त्वप्रतिरूपेण देवराजः शतक्रतुः । मोहितो लोभयामास तदा दृष्ट्वा चलत्सु
आश्रमस्थ वरारोहे देवराजमनिन्दिते । क्रीडस्व मया सार्द्धं त्रिषु लोकेषु पूजि
किं करिष्यसि विप्रेण शौचाचाररतेन तु ।
तपःस्वाध्यायशीलेन क्लिश्यन्तीव सुलोचने ॥ ६ ॥
एवमुक्ता वरारोहा स्त्रीस्वभावात्सुचञ्चला ।
मनसाऽध्याय शक्रं सा कामेन कलुषीकृता ॥ ७ ॥
तस्या विदित्वा तत्सर्वं स देवः पाकशासनः ।
गौतमं वञ्चयामास दुष्टभावेन भावितः ॥ ८ ॥
विदित्वा चान्तरं तस्य गृहीत्वा वेषमुत्तमम् ।

अहल्यां रमयामास विश्वस्तां मन्दिरान्तिके ॥ ६ ॥
क्षणमात्रान्तरे तत्र देवराजस्य भारत । आजगाममुनिश्रेष्ठोमन्दिरं त्वरयाऽन्वितः
आगतं गौतमंदृष्ट्वाभीतभीतःपुरन्दरः । निर्गतः सनतो दृष्ट्वा शक्रोऽयमितिचिन्तयन्
ततः शशाप देवेन्द्रं गौतमः क्रोधमूर्च्छितः ।
अजितेन्द्रियोऽसि यस्मात्त्वं तस्माद्बहुभगो भव ॥ १२ ॥
एवमुक्तस्तु देवेन्द्रस्तत्क्षणादेव भारत ॥ भगानां तु सहस्रे ण तत्क्षणादेव वेष्टितः
त्यक्त्वाराज्यं सुरैः सार्द्धं गतश्रीकोजगाम ह । तपश्चचारविपुलं गौतमेनमहीतले
अहल्याऽपि ततः शप्ता यस्मात्त्वं दुष्टचारिणी ।
प्रेक्ष्य मां रमसे शक्रं तस्मादश्ममयी भव ॥ १५ ॥
गते वर्षसहस्रान्ते रामं दृष्ट्वा यशस्विनम् ।
तीर्थयात्राप्रसङ्गेन धौतपापा भविष्यसि ॥ १६ ॥
एवंगतेतःकालेदृष्ट्वारामेणधीमता । विश्वामित्रसहायेन त्यक्त्वासाऽश्ममयींतनुम्
पूजयित्वा यथान्यायं गतपापा विमत्सरा ।
आगता नर्मदातीरे तीर्थे स्नात्वा यथाविधि ॥ १८ ॥
कृतं चान्द्रायणं मासं कृच्छ्रं चाऽन्यं ततः परम् ।
ततस्तुष्टो महादेवो दत्त्वा वरमनुत्तमम् ॥ १९ ॥
जगामाऽदर्शनंभूयोरेमेचोमापतिश्चिरम् । अहल्यातुगतेदेवे स्थापयित्वाजगद्गुरुम्
अहल्येश्वरनामानं स्वगृहेचागमत्पुनः । तत्र तीर्थे तु यः स्नात्वा पूजयेत्परमेश्वरम्
स मृतः स्वर्गमाप्नोतियत्रदेवोमहेश्वरः । क्रीडयित्वा यथाकामं तत्रलोकेमहातपाः
गते वर्षसहस्रान्ते मानुष्यं लभते पुनः । धनधान्यचयोपेतः पुत्रपौत्रसमन्वितः ॥
वेदविद्याऽऽश्रयो श्रीमाञ्जायते विमले कुले ।
रूपसौभाग्यसम्पन्नः सर्वव्याधिविवर्जितः । जीवेद्वर्षशतं साग्रमहल्यातीर्थसेवनात्
इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
रेवाखण्डेऽहल्यातीर्थमाहात्म्यवर्णनं नामषट्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥

सप्तत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

कर्कटेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

धर्मपुत्र ततो गच्छेत्कर्कटेश्वरमुत्तमम् । उत्तरे नर्मदाकूले सर्वपापक्षयङ्करम् ॥ १ ॥

तत्र स्नात्वा विधानेन यस्तु पूजयते शिवम् ।

अनिवर्तिका गतिस्तस्य रुद्रलोकादसंशयम् ॥ २ ॥

तस्य तीर्थस्य माहात्म्यं पुराणे यच्छ्रुतं मया ।

न तद्वर्णयितुं शक्यं संक्षेपेण यदात्मज ॥ ३ ॥

तत्रतीर्थे तु यः कुर्याच्छिवलिङ्गं शुभाशुभम् । दर्शनात्स्पर्शनात्तस्य महापातकनाशनम्

तत्रतीर्थे तु यः स्नात्वा पश्येत्कर्कटेश्वरम् । सर्वपापविनिर्मुक्तो रुद्रलोके महीयते

तत्रस्थास्तत्र जानन्ति नरा मानववर्जिताः ।

शरीरस्थमिवात्मानं मनसा ज्योतिरव्ययम् ॥ ६ ॥

तत्र तीर्थवरश्रेष्ठे दृष्टा नारायणी पुरा । अश्वत्थस्तपते घोरं तपो दारुणमुत्तमम्

तत्र तीर्थे तु यः स्नात्वा तर्पयेत्पितृदेवताः ।

तस्य ते द्वादशाब्दानि तृप्तिं यान्ति पितामहाः ॥ ८ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे

रेवाखण्डे कर्कटेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम

सप्तत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१३७॥

अष्टत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

शक्रतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेत्पाण्डुपुत्र! शक्रतीर्थमनुत्तमम् । यत्रसिद्धोमहाभागो देवराजः शतक्रतुः
गौतमेन पुरा शप्तं ज्ञात्वा देवाः सुरेश्वरम् । ब्रह्माद्यादेवताःसर्वऋषयश्च तपोधनाः
गौतमं प्रार्थयामासुर्वाक्यैः सानुनयैः शुभैः ।
गतराज्यं गतश्रीकं शक्रं प्रति मुनीश्वर !॥ ३ ॥
इन्द्रेणरहितंराज्यंन कश्चित्कामयेद्द्विज !। देवोवामानवोवाऽपिएतत्तेविदितंप्रभो
तस्यत्वं भगयुक्तस्य दयां कुरु द्विजोत्तम । गतश्चादर्शनंशक्रो दूषितःस्वेनपाप्मना
देवानां वचनं श्रुत्वा गौतमो वेदवित्तमः । तथेति कृत्वा शक्रस्य वरंदातुं प्रचक्रमे
एतद्भगसहस्रं तु पुरा जातं शतक्रतो !। तल्लोचनसहस्रं तु मत्प्रसादाद्भविष्यति ॥७॥
एवमुक्तःसहस्राक्षःप्रणम्यमुनिसत्तमम् । ब्राह्मणांस्तान्महाभागान्नर्मदांप्रत्यगात्ततः
स्नात्वा स विमले तोये संस्थाप्य त्रिपुरान्तकम् ।
जगाम त्रिदशावासं पूज्यमानोऽप्सरोगणैः ॥ ६ ॥
तत्र तीर्थे तु स्नात्वा पूजयेत्परमेश्वरम् । परदाराभिगमनान्मुच्यते पातकान्नरः ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे रेवाखण्डे शक्रतीर्थमाहात्म्यवर्णनंनामाऽष्टत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१३८॥

एकोनचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्याय

सोमतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततोगच्छेन्महाराजसोमतीर्थमनुत्तमम् । यत्रसोमस्तपस्तप्त्वा लक्षमपथमास्थि
तत्र तीर्थे तु य स्नायाद्राघस्य विधिपूर्वकम् ।
कृतजाप्यो रविं ध्यायेत्तस्य पुण्यफल शृणु ॥ २ ॥
ऋग्वेदयजुर्वेदाभ्यां सामवेदेनभारत । जपतो यत्फलंप्रोक्तंगायत्र्याधाऽनतत्फल
तत्र तीर्थे तु यो भक्त्या ब्राह्मणान्भोजयेच्छुचि ।
तत मन्त्रविधानेन कोटिर्भवति भोजिता ॥ ४ ॥
पादुकोपानहौ छत्र वस्त्रकम्बल्याजिन ।
यो दत्त विप्रमुख्याय तस्य तत्कोटिसम्मितम् ॥ ५ ॥
सहस्रतुसहस्राणामन्नंघायस्तुभोजयेत् । एकस्यमन्त्रयुक्तस्यकलांनार्हतिषोडशी
एव तु भोजयेत्सत्रहृत्य वेदपारगम् । शास्त्रान्तगमथाध्वर्यु छन्दोगं चान्महामिग
अग्निहोत्रसहस्रस्य यत्फलं प्राप्यते बुधैः । समतद्वेदविदुषा तीर्थेसोमस्य तत्फ
भोजयेच शत तथा सहस्र लभते नर । एकस्य योगयुक्तस्य तत्फ फययोधि
सन्निरुध्येन्द्रियग्राम यत्रयत्र वसेन्मुनि । तत्र तत्र कुरुक्षेत्र नैमिष पुष्करादि
तस्मात्सर्वप्रय नेनग्रहणेच द्वयोः । सङ्क्रान्तौचव्यतीपातेयोगीभोज्योचिशा
सन्यास कुरुते यस्तुतत्र तीर्थे युधिष्ठिर । विमानेनमहाभाग सयातित्रिदिवन
सोमस्याऽनुचरो भूत्वा तेनैव सह मोदते ॥ १३ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्या संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे रेवाखण्डे सोमतीर्थमाहात्म्यवर्णननामैकोनचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्याय ॥

चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

नन्दाह्रदतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेन्महराज नन्दाह्रदमनुत्तम् । यत्र सिद्धा महाभागा नन्दादेवी वरप्रदा ॥
महिषासुरे महाकाये पुरा देवभयङ्करे । शूलिन्याशूलभिन्नाङ्गे कृते दानवसत्तमे ॥
येनैकादशरुद्राश्चह्यादित्याःसमरुद्गणाः । वसवोवायुना सार्द्धंचन्द्रादित्यौसुरेश्वर
बलिना निर्जितायेनब्रह्मविष्णुमहेश्वराः । सङ्ग्रामे सुमहाघोरेकृते देवभयङ्करे ॥ ४

कृत्वा तत्कदनं घोरं नन्दा देवी सुरेश्वरी ।
यस्मात्स्नाता विशालाक्षी तेन नन्दाह्रदः स्मृतः ॥ ५ ॥

तत्रतीर्थेतुयःस्नात्वानन्दामुद्दिश्यभारत । ददातिदानंविप्रेभ्यःसोऽश्वमेधफलंलभेत्
भैरवं चैव केदारं तथा रुद्रं महालयम् । नन्दाह्रदश्चतुर्थःस्यात्पञ्चमंभुविदुर्लभमम्
वहयन्तं नजानन्ति कामरागसमन्विताः । नर्मदायांह्रदं पुण्यं सर्वपातकनाशनम्
तत्र तीर्थेतु यः स्नात्वानन्दां देवींप्रपूजयेत् । किंतस्यहिमवन्मध्यगमनेनप्रयोजनम्
परमार्थमविज्ञाय पर्यटन्ति तमोवृताः । तेषां समागमे पार्थ श्रमएव हि केवलम्

पृथिव्यां सागरान्तायां स्नानदानेन यत्फलम् ।
तत्फलं समवाप्नोति स्नात्वा नन्दाह्रदे नृप !॥ ११ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे रेवाखण्डे नन्दाह्रदतीर्थमाहात्म्यवर्णनंनाम चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥

———

एकचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

तापेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेन्महीपाल तापेश्वरमनुत्तमम् । यत्रासौ हरिणी सिद्धा व्याधभीता नरेश्वर

जले प्रक्षिप्य गात्राणि ह्यन्तरिक्षं गता नु सा ।

व्याधो विस्मितचित्तस्तु तां मृगीमवलोक्य च ॥ २ ॥

विमुच्य सशरं चापं शरीरेणाथ उत्तमम् । दिव्यं वर्षसहस्रं तु व्याधेनाऽऽवर्तितं तपः

अतीते तु ततः काले परितुष्टो महेश्वरः । वरं ब्रूहि महाव्याध यत्ते मनसि रोचते

व्याध उवाच

यदि तुष्टोऽसि देवेश यदि देयो वरो मम । तव पार्श्वे महादेव वासो मे प्रतिदीयताम्

ईश्वर उवाच

एवं भवतु ते व्याध गन्धर्वगणसेवितः । देवदेवो महादेवस्तुष्टस्तत्रान्तरधीयत

गते चादर्शनं देवे स्थापयित्वा महेश्वरम् ॥ ६ ॥

पूजयित्वा विधानेन गतो व्याधस्ततो दिवम् ।

तदाप्रभृति तत्तीर्थं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ॥ ७ ॥

व्याधस्तु तापसस्तत्र तापेश्वरमिति श्रुतम् । तत्र तीर्थे नृपः स्नात्वा सम्पूजयेन्निराकुलम्

शिवलोकमवाप्नोति प्रमुखात्तु महेश्वर । ये स्नाता नर्मदातोये तीर्थे तापेश्वरे नराः

तापज्वरविमुक्तास्ते नात्र कार्या विचारणा ।

मृतायाः ॥ अनुवृत्त्या मृगायाश्च विवर्जितः ।

स्नानं समाचरेन्नित्यं मनुष्याणां शिवालयम् ॥ १० ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चम आवन्त्यखण्डे रेवाखण्डे तापेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नामैकचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥

द्विचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

रुक्मिणीतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेन्महाराज! रुक्मिणीतीर्थमुत्तमम्।
यत्रैव स्नानमात्रेण रूपवान्सुभगो भवेत् ॥ १ ॥
अष्टम्यां चचतुर्द्दश्यां तृतीयायांविशेषतः। स्नानं समाचरेत्तत्र न चेह जायते पुनः
यःस्नात्वा रुक्मिणीतीर्थे दानं दद्यात्तु काञ्चनम्।
तत्तीर्थस्य प्रभावेण शोकं नाप्नोति मानवः ॥ ३ ॥

युधिष्ठिर उवाच

तीर्थस्याऽस्यकथंजातोमहिमेदृङ्मुनीश्वर। रूपसौभाग्यदंयेन तीर्थमेतद्ब्रवीहिमे

मार्कण्डेय उवाच

कथयामि यथावृत्तमितिहासंपुरातनम्। कथितं पूर्वतो वृद्धैः पारम्पर्येण भारत!
तन्तेहं सम्प्रवक्ष्यामिश‍ृणुष्वैकाग्रमानसः। नगरंकुण्डिनंनामभीष्मकोपरिपातिहि
हस्त्यश्वरथसम्पन्नो धनाढ्योऽतिप्रतापवान्।
स्त्रीसहस्रस्य मध्यस्थः कुरुते राज्यमुत्तमम् ॥ ७ ॥
तस्य भार्या महादेवी प्राणेभ्योऽपि गरीयसी।
तस्यामुत्पादयामास पुत्रमेकं स रुक्मकम् ॥ ८ ॥
द्वितीया तनया जज्ञे रुक्मिणीनामनामतः।
तदाऽशरीरिणी वाचा राजानं तमुवाच ह ॥ ९ ॥
चतुर्भुजाय दातव्याकन्येयं भुवि भीष्मक !। एवं तद्वचनं श्रुत्वा जहर्ष प्रियया सह
ब्राह्मणैः सह विद्वद्भिः प्रविष्टःसूतिकागृहम्।
स्वस्तिकं वाचयित्वाऽस्याश्चक्रे नामेति रुक्मिणी ॥ ११ ॥

यत्र सुपर्णतीर्थं कोकिलनामसद्मारम । ततस्सा रुक्मिणीनामसंज्ञाहार्षं कीर्तितानदा
तत्र साक्षात्स्वयंपादस्पर्शा व्यजायत । पूर्वोक्तं चैव तद्धाक्यमशरीरिणुदीरितम्
स्मृत्वा स्मृत्वाऽस्य नृपतिश्चिन्तयामास भूपतिः ।
कस्मै देया मया बाला मयिनाकअनुसु ज्ञा ॥ १४ ॥
तस्मिन्नेवान्तरे तावद्रुक्मात्पत्नानसमात् । मुख्यधीर्दिवनिर्गत्य दमघोष समागत
प्रविष्टो राजसदनयत्र राजासमर्मात्मक । तं दृष्ट्वाऽऽगतगेहे पूजयामास भूपति
आसन विपुल दत्त्वा समागत्याभिवन्दित । कुशलस्तत्र राजेन्द्र दमघोषश्चियायुत
पुण्याहमद्य सञ्जातमस्य स्वदत्ता सुक । कन्या मदीया राजेन्द्र दमघोषतनयाय
तत्र भु नाय दातव्या वागुवाचाऽशरीरिणी ।
भीष्मकस्य वच श्रुत्वा दमघोषोऽब्रवीदिदम् ॥ १६ ॥
यनुभु नामम नुनश्चिन्तनाकनुचिन्तम । तस्यैव दीयतां कन्या शिशुपालस्य भीष्मक
ममयतद्वचन श्रुत्वा दमघोषस्य भूमिप । भीष्मकेण ततो दत्ता शिशुपालाय रुक्मिणी
प्राप्त मङ्गल मञ्च भीष्मकेणाधिष्ठित । किन्तु दशान्तरेऽपि येयमस्मिन् स्वयमेवजा
निरस्तिरतराम्तु न मय ससारनगुणाकमम् ।
मना यादवयशस्य निर्गत्य यत्कृशार्यी ॥ २३ ॥
निमन्त्रिता समायाता कण्ठिन भीष्मकस्य तु ।
भीष्मकेण यथान्याय पूजितौ तौ यदूत्तमौ ॥ २४ ॥
तत प्रभातसमये रुक्मिणी कामसोहिता ।
सखिभि सहिता याता पूजार्थमम्बिकावने ॥ २५ ॥
सा तत्रापश्यतत्र कृष्ण गोपवेषधर हरिम् । त दृष्ट्वा मोहमापन्ना कामेन कलुषीकृता
कृष्णोऽपि च ता दृष्ट्वा सङ्कर्षणमुवाच ह । स्त्रीरत्नप्रवरतात हर्तव्यमिति मे मति
कृष्णस्य वच श्रुत्वा सङ्कर्षण उवाच ह ।
गच्छ कृष्ण महाबाहो स्त्रीरत्नमाऽऽशु गृह्यताम् ॥ २८ ॥
अह च तव मार्गेण ह्यागमिष्यामि पृष्ठत । दानवाना च सर्वेषा कुर्वंश्चकर्दनंमहत्

सङ्कर्षणमतंप्राप्य केशवः केशिसूदनः। ययौ कन्यांगृहीत्वा तु रथमारोप्य सत्वरम्
निर्गतः सहसा राजन्वेगेनैवाऽनिलो यथा।
हाहाकारस्तदा जातो भीष्मकस्य पुरे महान्॥ ३१॥
निर्गता दानवाःक्रुद्धा वेलाइचमहोदधेः। गर्जन्तःसायुधाःसर्वेधावन्तोरथवर्त्मनि
वलदेवं ततः प्राप्ता रथमार्गाऽनुगामिनम्
तेषां युद्धं बलस्याऽसीत्सर्वलोकक्षयङ्करम्॥ ३३॥
यथा तारामये पूर्वं सङ्ग्रामे लोकविश्रुते।
गदाहस्तो महाबाहुस्त्रैलोक्येऽप्रतिमो बलः॥ ३४॥
हलेनाऽऽकृष्य सहसा गदापातैरपातयत्। अशक्यो दानवैर्हन्तुं बलभद्रो महाबलः
बभञ्ज दानवान्सर्वांस्तथौ गिरिरिवाऽचलः। तं दृष्ट्वा च बलंक्रुद्धंदुर्धर्षं त्रिदशैरपि
भीष्मपुत्रो महातेजा रुक्मीनाम महायशाः।
नराणामतिशूराणामक्षौहिण्या समन्वितः॥ ३७॥
बलभद्रमतिक्रम्य ततो युद्धे निराकरोत्। तद्युद्धं वञ्चयित्वा तु रथमार्गेण सत्वरम्
केशवोऽपि तदा देवो रुक्मिण्या सहितो ययौ।
विन्ध्यं तु लङ्घयित्वाऽग्रे त्रैलोक्यगुरुरव्ययः॥ ३९॥
नर्मदातटमापेदे यत्र सिद्धः पुरा पुनः। अजेयो येन सञ्जातस्तीर्थस्यास्यप्रभावतः
एतस्मात्कारणात्तात योधनीपुरमुच्यते।
रुक्मोऽपि दानवेन्द्रोऽसौ प्राप्तः स्थानमनुत्तमम्॥ ४१॥
प्रत्युवाचाऽच्युतं क्रुद्धस्तिष्ठस्तिष्ठेति मा व्रज।
अद्य त्वां निशितैर्बाणैर्नेष्यामि यमसादनम्॥ ४२॥
एवं परस्परं वीरौ जगर्जतुरुभावपि। तयोर्युद्धमभूद्घोरं तारकाग्निजसन्निभम्॥
चिक्षेपशरजालानिकेशवं प्रतिदानवः। नाऽनुचिन्त्य शरांस्तस्यकेशवः केशिसूदनः
ततो रुक्मोऽथ सङ्क्रुद्धो गृहीत्वा धनुरुत्तमम्।
सायकेन सुतीक्ष्णेन तं बिभेद तदोरसि॥ ४५॥

यावद्ध्रियान्तिलोकेषु महाभूतानि पञ्च च । तावत्तेदिविमोदन्ते मद्वृत्तपरिपालकाः
यस्तुलोपयते मूढोदत्तं चः पृथिवीतले । नरकेतस्यवासःस्याद्यावदाभूतसम्प्लवम्
स्वदत्ता परदत्ता वा पालनीया वसुन्धरा ।
यस्य यस्य यदा भूमिस्तस्य तस्य तदा फलम् ॥ ६४ ॥
स्वदत्तां परदत्तां वा यो हरेत वसुन्धराम् ।
स विष्ठायां कृमिर्भूत्वा पितृभिः सह मज्जति ॥ ६५ ॥
अन्यायेन हृता भूमिरन्यायेन च हारिता । हर्त्ताहारयिताचैवविष्ठायांजायतेकृमिः
षष्टिवर्षसहस्राणि स्वर्गे तिष्ठति भूमिदः ।
आच्छेत्ता चानुमन्ता च तान्येव नरके वसेत् ॥ ६७ ॥
यानीह दत्तानि पुरा नरेन्द्रैर्दानानि धर्मार्थयशस्कराणि ।
निर्माल्यरूपप्रतिमानि तानि को नाम साधुः पुनराददाति ॥ ६८ ॥
एवं तान्पूजयित्वा तु सम्यङ् न्यायेन पाण्डव !।
रुक्मिण्या विधिवत्पाणिं जग्राह मधुसूदनः ॥ ६९ ॥
मुशली च ततः सर्वाञ्जित्वा दानवपुङ्गवान् ।
स्वस्थानमगमत्तत्र कृत्वा कार्यं सुशोभनम् ॥ ७० ॥
अथातौद्वारवत्यां तौकृष्णसङ्कर्षणावुभौ । गच्छमानं तुतं दृष्ट्वा केशवंक्लेशनाशनम्
ब्राह्मणाः सत्यवन्तश्च निर्गताः शंसितव्रताः ।
आगच्छमानांस्तौ वीक्ष्य रथमार्गेण ब्राह्मणान् ॥ ७२ ॥
मुहूर्तं तत्र विश्रम्यकेशवो वाक्यमब्रवीत् । किमागमनकार्यं वोब्रूतसर्वं द्विजोत्तमाः
कुर्वाणाः स्वीयकर्माणि ममकृत्यंतुतिष्ठते । देवस्यवचनं श्रुत्वामुनयोवाक्यमब्रुवन
कल्पकोटिसहस्रेण सत्यभावात्तु वन्दितः ।
दुष्प्राप्योऽसि मनुष्याणां प्राप्तः किं त्यजसे हि नः ॥ ७५ ॥
ब्राह्मणानां वचःश्रुत्वा भगवानिदमब्रवीत् । मथुरायांद्वारवत्यांयोधनीपुर एव च
त्रिकालमागमिष्यामि सत्यं सत्यं पुनः पुनः ।

एव ते ब्राह्मणा श्रुत्वा योधनीपुरमागताः ॥ ७७ ॥

अवतीर्णस्त्रिभागेन प्रादुर्भावेनुमापुरे । एतत्तेकथितं सर्वं तीर्थस्योत्पत्तिकारणम्
भूतभव्य भविष्यञ्चवर्त्तमान तथाऽपरम् । यच्छ्रुत्वासर्वपापेभ्यो मुच्यतेनाऽत्रसंशय
तत्रतीर्थेतुयःस्नात्वापूजयेद्गुहकेशवौ । तेन देवोजगद्धाता पूजितस्त्रिगुणात्मवान्

उपवासीनरो भूत्वा यस्तु कुर्यात्प्रदक्षिणम् ।

मुच्यते सर्वपापेभ्यो नाऽत्र कार्या विचारणा ॥ ८१ ॥

तत्र तीर्थे तु येशूरास्तान्पश्यन्त्यपियेनराः । तेऽपिपापै प्रमुच्यतेब्रह्महत्यासमैरपि
प्रातरुत्थाय ये केचित्पश्यन्ति गुहकेशवौ । तैन ते सदृशा स्युर्ये देवदेवेन चक्रिणा

ते पूज्यास्तेनमस्कार्यास्तेषां जन्म सुजीवितम् ।

ये नमन्ति जगन्नाथ देव नारायण हरिम् ॥ ८४ ॥

तत्र तीर्थे तु यद्दान स्नान देवार्चन नृप । तत्सर्वमक्षय तस्य इत्येव शङ्करोऽब्रवीत्
प्रविश्याग्नौ मृतानांचयत्फलमुदाहृतम् । तच्छृणुष्व नृपश्रेष्ठ प्रोच्यमानमशेषत

विमानेनाऽर्कवर्णेन किङ्किणीजालमालिना ।

आग्नेये भवने तत्र मोदते कालमीप्सितम् ॥ ८७ ॥

जले चैव मृतानां तु योधनीपुरमध्यत । वसन्तिवारुणेलोके यावदाभूतसम्प्लवम्

अनाशके मृतानां तु तत्र तीर्थे नराधिप ।

अनिवर्तिका गतिस्तेषां नाऽत्र कार्या विचारणा ॥ ८६ ॥

तत्र तीर्थ तु यो दद्यात्कपिलादानमुत्तमम् ।

विधानेन तु संयुक्त शृणु तस्याऽपि यत्फलम् ॥ ९० ॥

तावन्तितस्यारोमाणितत्प्रसूतेश्चभारत ।तावन्तिदिविमोदन्तेसर्वकामै सुपूजिता

यावन्ति रोमाणि भवन्ति धेन्वास्तावन्ति वर्षाणि महीयते स ।

स्वर्गाच्च्युतश्चाऽपि ततस्त्रिलोक्यां कुले समुत्पत्स्यति गोमतां स

तत्र तीर्थे तु यो दद्याद्रूप्य काञ्चनमेव वा । काञ्चनेन विमानेनविष्णुलोके महीयते

तस्मिंस्तीर्थे तु यो दद्यात्पादुके वस्त्रमेव च ।

दानस्याऽस्य प्रभावेण लभते स्वर्गमीप्सितम् ॥ ९४ ॥
ऋग्यजुः सामवेदानां पठनाद्यत्फलंभवेत्। तत्रतीर्थेतुराजेन्द्रगायत्र्यातत्फलंलभेत्
प्रयागे यद्भवेत्पुण्यं गयायां च त्रिपुष्करे। कुरुक्षेत्रे तु राजेन्द्र राहुग्रस्ते दिवाकरे
सोमेश्वरे च यत्पुण्यं सोमस्य ग्रहणेतथा। तत्फलं लभतेतत्र स्नानमात्रान्न संशयः
द्वादश्यां तु नरः स्नात्वा नमस्कृत्य जनार्द्दनम्।
उद्धृताः पितरस्तेन अवाप्तं जन्मनः फलम् ॥ ९८ ॥
संक्रांतौचव्यतीपातेद्वादश्यांचविशेषतः। ब्राह्मणंभोजयेदेकं कोटिर्भवतिभोजिता
पृथिव्यां यानि तीर्थानि ह्यासमुद्राणि पाण्डव !।
तानि सर्वाणि तत्रैव द्वादश्यां पाण्डुनन्दन ॥ १०० ॥
तयंयान्तिचदानानि यज्ञहोमबलिक्रियाः। नक्षीयतेमहाराज तत्र तीर्थेतु यत्कृतम्
यद्भूतंयद्भविष्यच्चतीर्थमाहात्म्यमुत्तमम्। कथितंतेमया सर्वं पृथग्भावेन भारत!
इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे रेवाखण्डे रुक्मिणीतीर्थमाहात्म्यवर्णनंनामद्विचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

त्रिचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

योजनेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेन्महाराज योजनेश्वरमुत्तमम्। यत्र सिद्धौ पुरा कल्पेनरनारायणावृभौ
तत्रतीर्थेतपस्तप्त्वासङ्ग्रामे देवदानवैः। जयंप्राप्तौमहात्मानौ नरनारायणावुभौ
पुनस्त्रेतायुगे प्राप्ते तौदेवौ रामलक्ष्मणौ। तत्रतीर्थेपुनः स्नात्वारावणोदुर्जयोहतः
पुनः पार्थ कलौ प्राप्ते तौ देवौबलकेशवौ। वसुदेवकुले जातौ दुष्करं कर्म चक्रतुः
नरकंकालनेमिं च कंसं चाणूरमुष्टिकौ। शिशुपालं जरासन्धं जघ्नतुर्बलकेशवौ॥

चतुश्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

द्वादशीतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेन्महाराजद्वादशीतीर्थमुत्तमम् । क्षरन्तिसर्वदानानिजपहोमबलिक्रियाः
न क्षीयतेतुराजेन्द्रचक्रतीर्थे तु यत्कृतम् । यद्भूतंयद्भविष्यच्च तीर्थमाहात्म्यमुत्तमम्
कथितं तन्मया सर्वं पृथग्भावेन भारत !॥ ३ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्त्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे रेवाखण्डे द्वादशीतीर्थमाहात्म्यवर्णनंनाम चतुश्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

पञ्चचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

शिवतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

ततोगच्छेद्धरापाल!शिवतीर्थमनुत्तमम् । दर्शनाद्यस्यदेवस्यमुच्यते सर्व्वकिल्बिषैः

शिवतीर्थे तु यः स्नात्वा जितक्रोधो जितेन्द्रियः ।
पूजयेत महादेवं सोऽग्निष्टोमफलं लभेत् ॥ २ ॥
तत्र तीर्थे तु यो भक्त्या सोपवासोऽर्च्चयेच्छिवम् ।
अनिवर्तिका गतिस्तस्य रुद्रलोकादसंशयम् ॥ ३ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्त्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे रेवाखण्डे शिवतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम पञ्चचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

शुक्लाम्बरधरोनित्यंनियतःसजितेन्द्रियः। एककालंतुभुञ्जानो मासंतीर्थस्यसन्निधौ
सुवर्णालङ्कृतानां तुकन्यानांशतदानजम्। फलमाप्नोति सम्पूर्णंपितृलोकेमहीयते
पृथिव्यामासमुद्रायांमहाभोगपतिर्भवेत्। धनधान्यसमायुक्तोदाताभवतिधार्मिकः

उपवासी शुचिर्भूत्वा ब्रह्मलोकमवाप्नुयात्।
अस्माहकं समासाद्य यस्तु प्राणान्परित्यजेत्॥ १६॥

कोटिवर्षसहस्राणि रुद्रलोके महीयते। ततःस्वर्गात्परिभ्रष्टः क्षीणकर्मादिवश्च्युतः
सुवर्णमणिमुक्ताढ्ये कुलेजायेत रूपवान्। कृत्वाऽभिषेकविधिना हयमेधफलंलभेत्
धनाढ्यो रूपवान्दक्षोदाताभवतिधार्मिकः। चतुर्वेदेपुयत्पुण्यंसत्यवादिपुयत्फलम्

तत्फलं लभते नूनं तत्र तीर्थेऽभिषेचनात्।
तीर्थानां परमं तीर्थं निर्मितं शम्भुना पुरा॥ २०॥

हृदयेशः स्वयं विष्णुर्जपेद्देवं महेश्वरम्। गन्धर्वाप्सरसश्चैव मरुतो मारुतास्तथा
विश्वेदेवाश्चपितरःसचन्द्राःसदिवाकराः। मरीचिरत्र्यङ्गिरसौपुलस्त्यःपुलहःक्रतुः
प्रचेताश्च वसिष्ठश्च भृगुर्नारद एव च। च्यवनो गालवश्चैव वामदेवो महामुनिः

वालखिल्याश्च गन्धारास्तृणविन्दुश्च जाजलिः।
उद्दालकश्चर्ष्यशृङ्गो वसिष्ठश्च सनन्दनः॥ २४॥
शुकश्चैव भरद्वाजो वात्स्यो वात्स्यायनस्तथा।
अगस्तिर्मित्रावरुणौ विश्वामित्रो मुनीश्वरः॥ २५॥
गौतमश्च पुलस्त्यश्च पौलस्त्यः पुलहः क्रतुः।
सनातनस्तु कपिलो वह्निः पञ्चशिखस्तथा॥ २६॥

अन्येऽपि वहवस्तत्रमुनयःशंसितव्रताः। क्रीडन्ति देवताःसर्व्वऋषयःसतपोधनाः

मनुष्याश्चैव योगीन्द्राः पितरः सपितामहाः।
अस्माहकेऽत्र तिष्ठन्ति सर्वे एव न संशयः॥ २८॥

पितरः पितामहाश्चैवतथैवप्रपितामहाः। येषांदत्तमुपस्थायिसुकृतंवाऽपिदुष्कृतम्
अक्षयं तत्र तत्सर्वं यत्कृतं योधनीपुरे। मातरं पितरं त्यक्त्वा सर्वबन्धुसुहृज्जनात्

षट्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

अस्माहकतीर्थचतुष्टयमाहात्म्यवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

अस्माहक ततो गच्छेत्पितृतीर्थमनुत्तमम् । प्रेतत्वाद्यत्र मुच्यन्ते पिण्डैर्दत्तैश्च पूर्वजा

युधिष्ठिर उवाच

अस्माहकस्य माहात्म्यं कथयस्व ममानघ । स्नानदानेन यत्पुण्यं तथा पिण्डोदकेन च

श्रीमार्कण्डेय उवाच

पुरा कल्पे नृपश्रेष्ठ ऋषिवैधसमागमे । प्रश्न पृष्टो मया तात तथा त्वमनुपृच्छसि

एकत्रसागरा सप्तसप्रयागा सपुष्करा । नास्य सामर्थ्य लभन्ते तेनात्र कार्या विचारणा

सोमनाथं तु विख्यातं यत्सोमेन प्रतिष्ठितम् । तत्र सोमग्रहे पुण्यं तत्पुण्यं लभते नर

मासान्ते पितरो नणा वीक्षन्ते सन्तति स्वकाम् ।
कश्चिदस्मात्कुलेऽस्माकं पिण्डमत्र प्रदास्यति ॥ ६ ॥
प्रपितामहास्तथा दिव्या श्रुतिरेषा सनातनी ।
एव ब्रुवन्ति देवाश्च ऋषयश्च तपोधना ॥ ७ ॥
सकृत्पिण्डोदकेनैव शृणु पार्थिव यत्फलम् ।
द्वादशाब्दानि राजेन्द्र योग भुक्त्वा सुशोभनम् ॥ ८ ॥

युगेयुगे महाराज अस्माहके पितामहा । सर्वदा ह्यवलोकन्त आगच्छन्ति स्वगोत्रजम्

भविष्यति किमस्माकममावास्याप्यमाहके ।
स्नान दान ये कुर्यु पितॄणा तिलतर्पणम् ॥ १० ॥
ते सर्वपापविनिर्मुक्ता सर्वान्कामं ल्लभन्ति वै ।
जलमध्येऽत्र भूपाल अग्नितीर्थं च तिष्ठति ॥ ११ ॥

दर्शनात्तस्य तीर्थस्य पापराशिर्विदीयते । स्नानमात्रेण राजेन्द्र ब्रह्महत्या व्यपोहति

शुक्लाम्बरधरोनित्यंनियतःसजितेन्द्रियः । एककालंतुभुञ्जानो मासंतीर्थस्यसन्निधौ
सुवर्णालङ्कृतानां तुकन्यानांशतदानजम् । फलमाप्नोति सम्पूर्णंपितृलोकेमहीयते
पृथिव्यामासमुद्रायांमहाभोगपतिर्भवेत् । धनधान्यसमायुक्तोदाताभवतिधार्मिकः

उपवासी शुचिर्भूत्वा ब्रह्मलोकमवाप्नुयात् ।
अस्माहकं समासाद्य यस्तु प्राणान्परित्यजेत् ॥ १६ ॥

कोटिवर्षसहस्राणि रुद्रलोके महीयते । ततःस्वर्गात्परिभ्रष्टः क्षीणकर्मादिवश्च्युतः
सुवर्णमणिमुक्ताढ्ये कुलेजायेत रूपवान् । कृत्वाऽभिषेकविधिना हयमेधफलंलभेत्
धनाढ्यो रूपवान्दक्षोदाताभवतिधार्मिकः । चतुर्वेदेषुयत्पुण्यंसत्यवादिषुयत्फलम्

तत्फलं लभते नूनं तत्र तीर्थेऽभिषेचनात् ।
तीर्थानां परमं तीर्थं निर्मितं शम्भुना पुरा ॥ २० ॥

द्येशः स्वयं विष्णुर्जपेद्देवं महेश्वरम् । गन्धर्वाप्सरसश्चैव मरुतो मारुतास्तथा
वेश्वेदेवाश्चपितरःसचन्द्राःसदिवाकराः । मरीचिरत्र्यङ्गिरसौपुलस्त्यःपुलहःक्रतुः
चेताश्च वसिष्ठश्च भृगुर्नारद एव च । च्यवनो गालवश्चैव वामदेवो महामुनिः

वालखिल्याश्च गन्धारास्तृणविन्दुश्च जाजलिः ।
उद्दालकश्चर्ष्यशृङ्गो वसिष्ठश्च सनन्दनः ॥ २४ ॥
शुक्रश्चैव भरद्वाजो वात्स्यो वात्स्यायनस्तथा ।
अगस्तिर्मित्रावरुणौ विश्वामित्रो मुनीश्वरः ॥ २५ ॥
गौतमश्च पुलस्त्यश्च पौलस्त्यः पुलहः क्रतुः ।
सनातनस्तु कपिलो वह्निः पञ्चशिखस्तथा ॥ २६ ॥

अन्येऽपि वहवस्तत्रमुनयःशंसितव्रताः । क्रीडन्ति देवताःसर्व्वऋषयःसतपोधनाः

मनुष्याश्चैव योगीन्द्राः पितरः सपितामहाः ।
अस्माहकेऽत्र तिष्ठन्ति सर्व एव न संशयः ॥ २८ ॥

पितरः पितामहाश्चैवतथैवप्रपितामहाः । येषांदत्तमुपस्थायिसुकृतंवाऽपिदुष्कृतम्
अक्षयं तत्र तत्सर्वं यत्कृतं योधर्नीपुरे । मातरं पितरं त्यक्त्वा सर्वबन्धुसुहृज्जनात्

धनधान्यप्रियान्पुत्रांस्त्यक्त्वा देहं नृपोत्तम । गच्छत्येवायुभूतस्तु शुभाशुभसमन्वितः
सदृश्यः सर्वभूतानां परमात्मा महत्तरः । शुभाऽशुभगतिं प्राप्तः कर्मणा स्वेन पार्थिव

युधिष्ठिर उवाच

शुभाशुभं न बन्धूनां ज्ञायते केन हेतुना । एकः प्रसूयते जन्तुरेक एव प्रलीयते ॥
एको हि भुङ्क्ते सुकृतमेकमेव हि दुष्कृतम् ॥ ३५ ॥

मार्कण्डेय उवाच

एवं त्वयोक्तो नृपते महाप्रश्नः स्मृतो मया ॥ ३६ ॥
पितामहमुखोद्गीतं शृणु ते कथयाम्यहम् । यन्मे पितामहात्पूर्वं पितातच्छ्रुतवान्सदि
न माता न पिता बन्धुः कस्यचिन्न सुहृत्क्वचित् ।
कस्य न ज्ञायते रूपं वायुभूतस्य देहिनः ॥ ३७ ॥
यद्येव न भवेत्तात लोकस्य तु नरेश्वर । अमर्यादं भवेन्नूनं विनश्यति चराचरम् ॥
एवं ज्ञात्वा पुरा राजन्समस्तैर्लोककर्तृभिः ।
मर्यादा स्थापिता लोके यथा धर्मो न नश्यति ॥ ३९ ॥
धर्मे नष्टे मनुष्याणामधर्मोऽभिभवेत्पुनः । ततः स्वधर्मचलनान्नरके गमनं ध्रुवम् ॥
लोको निरङ्कुशः सर्वो मर्यादालङ्घने रतः ।
मर्यादा स्थापिता तेन शास्त्रे धात्रा महर्षिभिः ॥ ४१ ॥
स्नानं दानं जपो होमः स्वाध्यायो देवतार्चनम् ।
पिण्डोदकप्रदानं च तथैवाऽतिथिपूजनम् ॥ ४२ ॥
पितरः पितामहाश्चैव तथैव प्रपितामहाः ।
त्रयो देवाः स्मृतास्तात ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥ ४३ ॥
पूजिते पूजिताः सर्वे तथा मातामहास्त्रयः ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन श्रुतिस्मृत्यर्थनोदितान् ॥ ४४ ॥
धर्मं समाचरन्नित्यं पापपाशेन न लिप्यते । श्रुतिस्मृत्युदितं धर्मं मनसाऽपि न लङ्घयेत्
इह लोके परे चैव यदीच्छेच्छ्रेय आत्मनः ।

पितापुत्रौ सदाप्येकौ विम्बाद्विम्बमिवोद्भृतौ ॥ ४६ ॥
विभक्तौ वाऽविभक्तौ वा श्रुतिस्मृत्यर्थतस्तथा ।
उद्धरेदात्मनात्मानमात्मानमवसादयेत् ॥ ४७ ॥
पिण्डोदकप्रदानाभ्यामृतेपार्थ न संशयः । एवं ज्ञात्वाप्रयत्नेनपिण्डोदकप्रदोभवेत्
आयुर्धर्मौयशस्तेजःसन्ततिश्चैवचवर्द्धते। पृथिव्यांसागरान्तायांपितृक्षेत्राणियानिच
तानि ते सम्प्रवक्ष्यामि येषु दत्तं महाफलम् ।
गयायां पुष्करे ज्येष्ठे प्रयागे नैमिषे तथा ॥ ५० ॥
सन्निहत्यां कुरुक्षेत्रे प्रभासे कुरुनन्दन !। पिण्डोदकप्रदानेन यत्फलं कथितं बुधैः ॥
अस्माहके तदाऽऽप्नोति नर्मदायां न संशयः । तत्र ब्रह्मासुराश्चिव रुद्रश्चउमया सह
इन्द्राद्या देवताः सर्वे पितरोमुनयस्तथा । सागराः सरितश्चैवपर्वताश्चवलाहकाः
तिष्ठन्तिपितरः सर्वे सर्वतीर्थाधिकंततः । स्थिता ब्रह्मशिलातत्रगजकुम्भनिभान्नृप
कलौ न दृश्या भवति प्रधानं यद्गयाशिरः ।
वैशाखे मासि सम्प्राप्तेऽमावास्यां नृपोत्तम !॥ ५५ ॥
व्याप्य सा तिष्ठते तीर्थं गजकुम्भनिभा शिला ।
तच्च गव्यूतिमात्रं हि तीर्थं ततः प्रचक्षते ॥ ५६ ॥
तस्मिन्दिनेतत्रगत्वायस्तुश्राद्धप्रदो भवेत् । पितृणामक्षयातृप्तिर्जायतेशतवार्षिकी
अन्यस्यामप्यमावास्यां यः स्नात्वा विजितेन्द्रियः ।
करोति मनुजः श्राद्धं विधिवन्मन्त्रसंयुतम् ॥ ५८ ॥
तस्य पुण्यफलं यत्स्यात्तच्छृणुष्व नराधिप !।
अग्निष्टोमाश्वमेधाभ्यां वाजपेयस्य यत्फलम् ॥ ५६ ॥
तत्फलं समवाप्नोति यथा मे शङ्करोऽब्रवीत् ।
रौरवादिषु सर्वेषु नरकेषु व्यवस्थिताः ॥ ६० ॥
पिता पितामहाद्याश्च पितृके मातृके तथा । पिण्डोदकेन चैकेन तर्पणेन विशेषतः
क्रीडन्ति पितृलोकस्था यावदाभूतसम्प्लवम् ।

ये कर्मस्था विकर्मस्था ये जाता' प्रेतकल्मषा ॥ ६२ ॥
पिण्डेनैकेन मुच्यन्ते तेऽपि तत्र न सशय ।
अस्माद्दके शिला दिव्या तिष्ठते गजसन्निभा ॥ ६३ ॥
ब्रह्मणा निर्मिता पूर्वं सर्वपापक्षयङ्करी । उपयस्यायथान्याय पितृनुद्दिश्य भारत
दक्षिणाग्रेषु दर्भेषु दद्यात्पिण्डान्विचक्षण. ।
भूमौ चान्नेन सिद्धेन श्राद्ध कृत्वा यथाविधि ॥ ६५ ॥
श्राद्धिभ्यो वस्त्रयुग्मानि छत्रोपानत्कमण्डलु ।
दक्षिणा विविधा देया पितृनुद्दिश्य भारत ॥ ६६ ॥
योददातिद्विजश्रेष्ठ'तस्यपुण्यफलंशृणु । तस्यतेद्वादशाब्दानितृप्तियान्तिन सशय'
अस्माद्दके महाराज पितरश्च पितामहा ।
वायुभूता निरीक्षन्ते आगच्छन्तं स्वगोत्रजम् ॥ ६८ ॥
अत्र तीर्थे सुतोऽभ्येत्य स्नात्वा तोय प्रदास्यति ।
श्राद्ध वा पिण्डदान वा तेन यास्यामि सद्गतिम् ॥ ६९ ॥
स्नात्वैवन्तेतुयेकेचिद्धायन्तेयत्नविप्लुत । प्रीणयेत्करकस्थास्तुतेपितृभ्रान्न सशय
केशोदविन्दवस्तस्य ये चाऽन्ये लेपभागिन ।
तृप्यन्त्यनग्निसंस्कारा ये मृता' स्यु स्वगोत्रजा ॥ ७१ ॥
नव्रतार्थेतुयेकेचिच्छ्राद्ध कुर्वीतविधानत । नरकादुद्धरन्त्याशु जपन्त पितृसहिताम्
वनस्पतिगते सोमे यदा सोमदिनभवेत् । अक्षयाल्लभते लोकान्पिण्डेनैकेन मानव
अक्षय तत्र वै सर्वं जायते नाऽत्र संशय' ।
नरकादुद्धरन्त्याशु जपन्ते पितृसहिताम् ॥ ७४ ॥
तस्मिंस्तीर्थे त्वमावास्या पितृनुद्दिश्य भारत ।
नील सर्वाङ्गसम्पूर्णं गोभिऽभिवृष्य स्मु सृजेत् ॥ ७५ ॥
तस्य पुण्यफलं वक्तु न तु वाचस्पति क्षम । अस्माद्दकेवृषोत्सर्गाद्यत्पुण्यसमवाप्यते
तत शुश्रूषणात्सर्वं तत्प्रवक्ष्यामि भारत ।

रौरवादिषु ये किञ्चित्पच्यन्ते तस्य पूर्वजाः ॥ ७७ ॥
वृषोत्सर्गेण तान्सर्वांस्तारयेदेकविंशतिम् ।
लोहितो यस्तु वर्णेन मुखे पुच्छे च पाण्डुरः ॥ ७८ ॥
पिङ्गः खुरविषाणाभ्यां स नीलो वृष उच्यते ।
यस्तु सर्वाङ्गपिङ्गश्च श्वेतः पुच्छखुरेषु च ॥ ७६ ॥
स पिङ्गो वृष इत्याहुः पितृणां प्रीतिवर्धनः । पारावतसवर्णश्चललाटेतिलकोभवेत्
तं वृषं बभ्रमित्याहुः पूर्णं सर्वाङ्गशोभनम् । सर्वाङ्गेष्वेकवर्णोयःपिङ्गःपुच्छखुरेषु च
खुरपिङ्गं तमित्याहुः पितृणां सद्गतिप्रदम् । नीलंसर्वशरीरेण स्वारक्तनयनं दृढम्
तमेवनीलमित्याहुर्नीलःपञ्चविधःस्मृतः । यस्तु वैश्यगृहेजातः सवैनीलोविशिष्यते
न वाहयेद्गृहे जातं वत्सकं तु कदाचन । तेनैवच वृषोत्सर्गे पितृणामनृणो भवेत्
जातं तु स्वगृहे वत्सं द्विजन्मा यस्तु-वाहयेत् ।
पतन्ति पितरस्तस्य ब्रह्मलोकगता अपि ॥ ८५ ॥
यथा यथा हि पिबति पीत्वा धूनाति मस्तकम् ।
पिबन्पितॄन्प्रीणयति नरकादुद्धरेद्धुनन् ॥ ८६ ॥
यथा पुच्छाभिघातेन स्कन्धं गच्छन्ति बिन्दवः ।
नरकादुद्धरन्त्याशु पतितान्गोत्रिणस्तथा ॥ ८७ ॥
गर्जन्प्रावृषि काले तु विषाणाभ्यां भुवं लिखन् ।
खुरेभ्यो या मृदुद्धूता तया सम्प्रीणयेद्वृषीन् ॥ ८८ ॥
पिबन्पितॄन्प्रीणयते खादनोल्लेखने सुरान् ।
गर्जन्नृषिमनुष्यांश्च धर्मरूपो हि धर्मज ! ॥ ८६ ॥
भूतैर्वापि पिशाचैर्वा चातुर्थिकज्वरेण वा ।
गृहीतोऽस्माद्दकं गच्छेत्सर्वव्यामाधिनाशनम् ॥ ६० ॥
स्नात्वा तु विमले तोये दर्भग्रन्थिं निबन्धयेत् ।
मस्तके बाहुमूले वा नाभ्यां वा गलकेऽपि वा ॥ ६१ ॥

गत्वा देवसमीपं च प्रादक्षिण्येन केशवम् । ततः संस्तुत्य मन्त्रगाथाभ्यां चापि वैष्णवम्
नारायणं शरण्येशं भयदेवनमस्कृतम् । नमो यज्ञाद्गमभूत सर्वव्यापिन्नमोऽस्तु ते
नमो नमस्ते देवेश पद्मनाभ सनातन । दामोदर जयानन्त रक्ष मां शरणागतम् ॥
त्वं धर्ता त्वं च हर्ता च जगत्यस्मिंश्चराचरे । त्वया व्याप्तमिदं सर्वं त्रिभुवनं च विभर्षि च
प्रसाद देवदेवेश सुमसन्न प्रबोधय । त्वद्ध्याननिरतो नित्यं त्वद्भक्तिपरमो हरे ॥
इति स्तुतो मया देव प्रसादं कुरु मेऽच्युत । मां रक्ष रक्ष पापेभ्यस्त्रायस्व शरणागतम्
एवं स्तुत्वा च देवेशं दानवान्तकरं हरिम् । पुनरन्येन वै स्नात्वा ततो विप्रांस्तु भोजयेत्

वेदोक्तेन विधानेन स्नानं कृत्वा यथाविधि ।
पिण्डनिर्वपणं कृत्वा ब्राह्मणैरन्यन्तिकं ततः ॥ ९९ ॥

एवं स्तुत्वा च देवेशं दानवान्तकरं हरिम् । पुनरन्येन वै स्नात्वा ततो विप्रांस्तु भोजयेत्
वेदोक्तेन विधानेन स्नानं कृत्वा यथाविधि । एवं तान्वाचयित्वा तु ततो विप्रान्विसर्जयेत्

यत्नशेषं तु किञ्चिद्धि विप्रेभ्यो निवेदयेत् ।
तत्र तीर्थे नरः स्नात्वा नारी वा भक्तितत्परा ॥
शक्तितो दक्षिणां दद्यात्कृत्वा श्राद्धं यथाविधि ॥ १०२ ॥

सवनाय नरो यश्च स्नापयेद्विधिपूर्वकम् । क्षीरेण मधुना वापि दध्ना वा शीतवारिणा
तावत्पुष्करपात्रेषु पिबन्ति पितरो जलम् । अयने विषुवे चैव युगादौ सूर्यसङ्क्रमे
पुण्ये सपूर्वपद्मशानैर्देवं प्रस्नापयेत् । सोऽश्वमेधस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोति पुष्कलम्
तत्र तीर्थे तु यो गत्वा सूर्यग्रहणमाचरेत् । सूर्यतेजोनिभैर्यानैर्विष्णुलोके महीयते ॥
तत्र तीर्थे तु यः श्राद्धं पितृभ्यः सम्प्रयच्छति । सत्पुत्रेण च तेनैव सम्प्राप्तं जन्मनः फलम्
इति श्रुत्वा ततो देवाः सर्वे शक्रपुरोगमाः । ब्रह्मविष्णुमहेशाद्यास्थापयाञ्चक्रिरे वरम्
सर्वरोगोपशमनं सर्वपातकनाशनम् । यस्तु संवत्सरं पूर्णममावास्यां तु भावितः
पितृभ्यः पिण्डदानं च कुर्यादस्माहके नृप । त्रिपुष्करे गयायां च प्रभासे नैमिषे तथा
यत्पुण्यं श्राद्धकृतः तातदिहैव भवेद्ध्रुवम् । तिलोदककुशैर्मिश्रं यो दद्याद्दक्षिणामुखः

मन्वादौ [redacted] युगादौ च व्यतीपाते दिनक्षये ।

यो दद्यात्पितृमातृभ्यः सोऽश्वमेधफलं लभेत् ॥ ११२ ॥
अस्माहके नरो यस्तु स्नात्वासम्पूजयेद्धरिम् ।
ब्रह्माणं शङ्करं भक्त्या कुर्याज्जागरणक्रियाम् ॥ ११३ ॥
सर्वपापविनिर्मुक्तः शक्रातिथ्यमवाप्नुयात् ।
तत्र तीर्थे नरः स्नात्वा यः पश्यति जनार्द्दनम् ॥ ११४ ॥
विशेषविधिनाऽभ्यर्च्य प्रणम्य चपुनःपुनः । सपुत्रेणघतेनैव पितॄणांविहितागतिः
एकमूर्तिस्त्रयो देवा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ।
सत्कार्यकारणोपेताः सुसूक्ष्माः सुमहाफलाः ॥ ११६ ॥
एतत्ते कथितं राजन्महापातकनाशनम् ।
अस्माहकस्य माहात्म्यं किमन्यत्परिपृच्छसि ॥ ११७ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे रेवाखण्डेऽस्माहकतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नामषट्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥

सप्तचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

सिद्धेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेन्महीपाल सिद्धेश्वरमनुत्तमम् । नर्मदादक्षिणे कूले तीर्थं परमशोभनम्
तत्र तीर्थे तु यः स्नात्वा पूजयेद् वृषभध्वजम् ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो गतिं यात्यश्वमेधिनाम् ॥ २ ॥
तत्रतीर्थे तु यः स्नात्वाश्राद्धंकुर्यात्प्रयत्नतः । पितॄणांप्रीणनार्थायसर्वं तेन कृतंभवेत्
तत्र तीर्थे मृतानां तुजन्तूनां नृपसत्तम । गर्भवासे मतिस्तेषां न जायेत कदाचन

गर्भवासो हि दुःखाय नसुखायकदाचन । तत्तीर्थवारिणा स्नातुर्न पुनर्भवसम्भव
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
रेवाखण्डे सिद्धेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम सप्तचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्याय

अष्टचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्याय.

मङ्गलेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेन्महीपाल तीर्थमङ्गारकशिवम् । उत्तरे नर्मदाकूले सर्वपापक्षयङ्करम्
चतुर्थ्यङ्गारकदिने सकल्पकृतनिश्चय । स्नायादस्त गते सूर्ये सन्ध्योपासनतत्पर

पूजयेल्लोहित भक्त्या गन्धमाल्यविभूषणैः ।
संस्थाप्यस्थण्डिले देव रक्तचन्दनचर्चितम् ॥ ३ ॥

अङ्गारकायेति नम कर्णिकायामपूजयेत् । कुजायभूमिपुत्राय रक्ताङ्गाय सुवाससे
हरकोपोद्भवायेति स्वेदजायाऽतिबाहवे । सर्वकामप्रदायेति पूर्वादिषु दलेषु च
एव सम्पूज्य विधिवद्द्यादर्घ्यंविधानत । भूमिपुत्र महावीर्य स्वेदोद्भव पिनाकिन

अङ्गारक महातेजा लोहिताङ्ग नमोऽस्तु ते ।
करक वारिसयुक्त शालितन्दुलपूरितम् ॥ ७ ॥
सहिरण्य सवस्त्र च मोदकोपरि संस्थितम् ।
ब्राह्मणाय निवेद्य तत्कुजो मे प्रीयतामिति ॥ ८ ॥

अर्घ्यंदत्त्वाविधानेनरक्तचन्दनवारिणा । रक्तपुष्पसमाकीर्णं तिलतन्दुलमिश्रितम्
कृत्वा ताम्रमये पात्रेमण्डलेवर्तुलेशुभे । कृत्वा शिरसितत्पात्र जानुभ्यांधरणींगत
मन्त्रपूत महाभाग दद्यादर्घ्यंविचक्षण । ततोभुञ्जीत मौनेन क्षारतैलादिवर्जितम्
स्निग्ध मृदुसमधुरमात्मन श्रेय इच्छता । एवं चतुर्थ्यां सप्राप्ते चतुर्थ्यंगारके नृप

सौवर्णं कारयेद्देवं यथाशक्ति सुरूपिणम् । स्थापयेत्ताम्रके पात्रे गुडपीठसमन्विते
गन्धपुष्पादिभिर्देवं पूजयेद्‌ गुडसंस्थितम् ।
ईशान्यां स्थापयेद्देवं गुडतोयसमन्वितम् ॥ १४ ॥
कासारेणतथाग्नेय्यां स्थापयेत्करकं परम् । रक्ततंदुलसंमिश्रंनैरृत्यांवायुगोचरे
स्थापयेन्मोदकैः सार्धं चतुर्थंकरकंबुधः । सूत्रेण वेष्टितग्रीवं गन्धमाल्यैरलङ्कृतम्
शङ्खतूर्यनिनादेन जयशब्दादिमङ्गलैः । रक्ताम्बरधरं विप्रं रक्तमाल्यानुलेपनम् ॥
वेदिमध्यगतं वाऽपि महदासनसंस्थितम् । सुरूपं सुभगं शान्तं सर्वभूतहिते रतम्
वेदविद्याव्रतस्नातं सर्वशास्त्रविशारदम् । पूजयित्वायथान्यायंचार्चयेत्पाण्डुनन्दन
रक्तां गां च ततो दद्याद्रक्तेनानडुहा सह । प्रीयतां भूमिजोदेवः सर्वदैवतपूजितः ॥
विप्रं प्रदक्षिणीकृत्य पत्नीपुत्रसमन्वितः ।
पितृमातृसुहृद्भृत्यसार्द्धं क्षमाप्य च विसर्जयेत् ॥ २१ ॥
एवंकृतस्यतस्याऽथ तस्मिन्तीर्थे विशेषतः । यत्पुण्यफलमुद्दिष्टंतत्तेसर्वंवदाम्यहम्
सप्त जन्मानि राजेन्द्र! सुरूपः सुभगो भवेत् ।
तीर्थस्याऽस्य प्रभावेन नाऽत्र कार्या विचारणा ॥ २३ ॥
अकामो वा सकामोवातत्र तीर्थे मृतो नरः । अङ्गारकपुरं याति देवगन्धर्वपूजितः
उपभुज्य यथान्यायं दिव्यान्भोगाननुत्तमान् ।
इह मानुष्यलोके वै राजा भवति धार्मिकः ॥ २५ ॥
सुरूपः सुभगश्चैव सर्वव्याधिविवर्जितः । जीवेद्वर्षशतं साग्रं सर्वलोकनमस्कृतः ॥
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे रेवाखण्डे मङ्गलेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनंनामाऽष्टाचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

एकोनपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

लिङ्गवाराहतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

तस्यैवाऽनन्तरं तीर्थं लिङ्गेश्वरमिति श्रुतम् । दर्शनाद्देवदेवस्य यत्र पापं प्रणश्यति
तस्या शुक्लदले पौषमासे युधिष्ठिर । यावदेकं तु मासं तु नर्मदायां यथास्थित
तर्पणार्थं तु य स्नाति कन्यादेवसमन्वित । स मुच्यते सर्वेभ्य महापापै पुरातनै ।
द्वादश्यां कृष्णपक्षस्य शुचिर्भूत्वा समुपोषित । गन्धमाल्यैश्च सततं पूजयेत्पाण्डुनन्दन
ब्राह्मणांश्च महाभाग दानसंमानभोजनैः । पूजयित्वा यथान्यायं ततः पुण्यफलमश्नु
तस्य वाजिसहस्रं तु तुल्यमेव द्वादशाब्दकं । ब्राह्मणान्भोजयेत्तत्र तद्देव स्मरेत् परम्

तर्पयित्वा पितॄन्देवान्स्नात्वा तत्र तु मानवः ।
जपेद्द्वादशनामानि देवस्य पुरतः स्थितः ॥ ७ ॥

मासिमासि निराहारो द्वादश्यां कुरुनन्दन । केशवं पूजयेद्विप्र मार्गशीर्षेषु
पौषे नारायणं देवं माघमासे तु माधवम् । गोविन्दं फाल्गुने मासि विष्णुं चैत्रे समर्चयेत्
वैशाखे मधुहन्तारं ज्येष्ठे देवं त्रिविक्रमम् । वामनं तु तथाऽऽषाढे श्रावणे श्रीधरं स्मरेत्
हृषीकेशं भाद्रपदे पद्मनाभं तथाऽऽश्विने । दामोदरं कार्त्तिके [illegible] कीर्तयन्नामभिर्नरः
वाचिकं मानसं पापं कर्मजं यत्पुरातनम् । तन्नश्यति न संदेहो मासनामानुकीर्तनात्
स्वयं विशुद्ध सततं मुनिभिर्यतिभिस्तथा । श्रीधरस्य मुखानोमन्त्रदर्शनसमुद्भिरेत्

परमापद्गतस्याऽपि जन्तोरेषा प्रतिक्रिया ।
यन्मासाधिपतेर्विष्णोर्मासनामानुकीर्तनम् ॥ १४ ॥
ता निशास्ते च दिवसास्ते मासास्ते च वत्सराः ।
नराणां सफला येषु चिन्तितो भगवान्हरिः ॥ १५ ॥
परमापद्गतस्याऽपि यस्य देवो जनार्दनः ।

नाऽवसर्पति हृत्पद्मात्स योगी नाऽत्र संशयः ॥ १६ ॥
ते भाग्यहीना मनुजाः सुशोच्यास्ते भूमिभाराय कृतावताराः ।
अचेतनास्ते पशुभिः समाना ये भक्तिहीना भगवत्यनन्ते ॥ १७ ॥
ते पूर्णकार्याः पुरुषाः पृथिव्यां ते स्वाङ्गपाताद्भुवनं पुनन्ति ।
विचक्षणा विश्वविभूषणास्ते ये भक्तियुक्ता भगवत्यनन्ते ॥ १८ ॥
सएव सुकृती तेन लब्धं जन्मतरोःफलम् । चित्तेवचसिकाये च यस्यदेवोजनार्द्दनः
एतत्तीर्थवरं पुण्यंलिंगोयत्र जनार्द्दनः । वञ्चयित्वारिपून्संख्ये क्रोडोभूत्वासनातनः
उपप्लवे चन्द्रमसो रवेश्च योऽष्टकानामयनद्वये च ।
पानीयमप्यत्र तिलैर्विमिश्रं दद्यात्पितृभ्यः प्रयतो मनुष्यः ॥ २१ ॥
घोणोन्मीलितमेरुरन्ध्रनिवहो दुःखाब्धिमज्जत्प्लवः ।
प्रादुर्भूतरसातलोदरगृहत्पङ्कार्द्रमग्नक्षुरः ॥
फूत्कारोत्करनुन्नवातविदलद्दिग्दन्तिनादश्रुति-
न्यस्तस्तब्धवपुः श्रुतिर्भवतु वः क्रोडो हरिः शान्तये ॥ २२ ॥
इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायांपञ्चमेऽवन्तीखण्डे-
रेवाखण्डे लिङ्गवाराहतीर्थमाहात्म्यवर्णनंनामैकोनपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

श्वेतवाराहतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेन्महाराजकुसुमेश्वरमुत्तमम् । दक्षिणे नर्मदाकूले उपपातकनाशनम् ॥
कामेन स्थापितोदेवः कुसुमेश्वरसञ्ज्ञितः । ख्यातःसर्वेषु लोकेषु देवदेवः सनातनः
कामो मनोभवो विश्वः कुसुमायुधचापभृत् ।

स कामान्ददाति सर्वान्पूजितो भक्तिकेनन ॥ ३ ॥

तन निर्दग्धकायेन चाराध्य परमेश्वरम् । अनङ्गेन तथा प्राप्तमङ्गित्वं नर्मदातटे ।

युधिष्ठिर उवाच

अङ्गिभूतस्य नाशान्यमनङ्गस्य तु मे वद । न श्रुतं न च मे दृष्टं भूतपूर्वं कदाचन ।
एतत्सर्वं यथा वृत्तमाचक्ष्व द्विजसत्तम । श्रोतुमिच्छामि विप्रेन्द्र भीमानुं नयमे सह

श्रीमार्कण्डेय उवाच

आद्ये कृतयुगे तात देवदेवो महेश्वर । तपश्चचार विपुलं गङ्गासागरसंस्थितः ॥
तेनसम्पादितालोकास्तपसा ससुरासुरा । जग्मुस्तेशरणं सर्वे देवदेवं शचीपतिम्
व्यापक सर्वभूतानां देवदेवो महेश्वर । सतापयति लोकांस्त्रींस्तन्निवारय गोपते
श्रुत्वा तद्वचनं तेषां देवानां सत्कृतक्रतुः । चिन्तयामास मनसा तपोविघ्नाय चादिशत्

अप्सरा मेनका रम्भा घृताची च तिलोत्तमाम् ।

वसन्तं कोकिलं कामं दक्षिणानिलमुत्तमम् ॥ ११ ॥

गत्वा तत्र महादेव तपश्चरणतत्परम् । क्षोभयध्वं यथान्याय गङ्गासागरवासिनम्
एतमुक्तास्तु ते सर्वे देवराजेन भारत । देवाप्सरः समोपेता जग्मुस्ते हरसन्निधौ

वसन्तमासे कुसुमाकराकुले मयूरदात्यूहतुकोकिलाकुले ।

प्रनृत्यदप्सरसां निकुञ्जे प्रवाति वाते मलयेऽतिसाकुले ॥ १४ ॥

तत्र सम्मूर्छिताः सर्वे मन्मथास्त्र सगात्मा । मधुमाधवगन्धेन सकिन्नरमहोरगा
यावदालोकने तावत्तद्वन व्याकुलाश्रितम् । चाम्पते मदनाविष्ट दशावस्थागतं जनम्

दृष्ट्वाऽपि ध्यानामवस्थात्रितयगत ।

सात्त्विकी राजसी तामसी ता शृणुष्व मे ॥ १७ ॥

एक योगसमाधिना मुकुलितं चक्षुर्द्वितीयं पुन

पार्वत्या वदनस्थले स्तनतटे शृङ्गारभारालसम् ।

अन्यद्दूरनिरस्तचापमदनक्रोधानलोद्दीपित

शम्भोर्भिन्नरसं समाधिसमये नेत्रत्रयं पातु वः ॥ १८ ॥

एवं दृष्टः स देवेन सशरः सशरासनः। भस्मीभूतोगतःकामोविनाशः सर्वदेहिनाम्
कामं दृष्ट्वा क्षयं यातं तत्र देवाप्सरोगणाः।
भीता यथाऽऽगतं सर्वे जग्मुश्चैव दिशो दश ॥ २० ॥
कामेन रहिता लोकाः ससुरासुरमानवाः। ब्रह्माणंशरणंजग्मुर्देवा इन्द्रपुरोगमाः
सीदमानंजगद्दृष्ट्वा तमूचुः परमेष्ठिनम्। जानामित्वंजगच्छेदंप्रभो मैथुनसम्भवात्
प्रजाः सर्वा विशुष्यन्ति कामेन रहिता विभो !॥ २२ ॥
एतच्छ्रुत्वा वचस्तेषां देवानां प्रपितामहः। जगाम सहितस्तत्र यत्रदेवो महेश्वरः
अतोषयज्जगन्नाथं सर्वभूतमहेश्वरम्। स्तुतिभिस्तण्डकैः स्तोत्रैर्वेदवेदाङ्गसम्भवैः
ततस्तुष्टो महादेवो देवानां परमेश्वरः। उवाच मधुरां वाणीं देवान्ब्रह्मपुरोगमान्
किं कार्यं कश्च सन्तापः किं वाऽऽगमनकारणम्।
देवतानामृषीणां च कथ्यतां मम मा चिरम् ॥ २७ ॥

देवा ऊचुः

कामनाशाज्जगन्नाशो भविताऽयं चराचरे।
त्रैलोक्यं त्वं पुनः शम्भो उत्पातयितुमर्हसि ॥ २८ ॥
एतच्छ्रुत्वावचस्तेषांविमृश्यपरमेश्वरः। चिन्तयामासकामस्यविग्रहम्भुविदुर्लभम्
आजगाम ततः शीघ्रमनङ्गो ह्यङ्गतां गतः। प्राणदःसर्वभूतानां पश्यतां नृपसत्तम
ततः शङ्खनिनादेन भेरीणां निःस्वनेन च। अभ्यनन्दंस्ततो देवं सुरासुरमहोरगाः
नमस्ते देवदेवेश कृतार्थाः सुरसत्तमाः। विसर्जिताः पुनर्जग्मुर्यथागतमरिन्दम ॥
गतेषु सर्वदेवेषु कामदेवोऽपि भारत। तपश्चचार विपुलं नर्मदातटमाश्रितः ॥३३॥
तपोजपकृशीभूतो दिव्यं वर्षशतंकिल। महाभूतैर्विघ्नकरैः पीड्यमानः समन्ततः ॥
आत्मविघ्नविनाशार्थं संस्मृतः कुण्डलेश्वरः। चकार रक्षांसर्वत्र शरपाते नृपोत्तम
ततस्तुष्टो महादेवो दृढभक्त्या वरप्रदः।
वरेण च्छन्दयामास कामं कामविनाशनः ॥ ३६ ॥
ज्ञात्वा तुष्टं महादेवमुवाच झषकेतनः। प्रणतः प्राञ्जलिर्भूत्वा देवदेवं त्रिलोचनम्

यदि तुष्टोऽसि देवेश ! यदि देयो वरो मम ।
अत्र तीर्थे जगन्नाथ ! सदा सन्निहितो भव ॥ ३८ ॥
तथेति चोक्त्वा वचनं देवदेवो महेश्वरः ।
अगमाऽऽकाशमाविश्य स्तूयमानोऽप्सरोगणैः ॥ ३९ ॥

गते चाऽदर्शनं देवे कामदेवो जगद्गुरुम् । स्थापयामास राजेन्द्र कुसुमेश्वरसञ्ज्ञितम्
तत्र तीर्थे तु यः स्नात्वा ह्युपवासपरायणः । चैत्रमासे चतुर्दश्यां मदनस्य दिनेऽथवा
प्रभाते विमले प्राप्ते स्नात्वा पूज्य दिवाकरम् । तिलमिश्रेण तोयेन तर्पयेत् पितृदेवता
कृत्वा स्नानविधानेन पूजयित्वा च तं नृप । पिण्डनिर्वपणं कुर्यात्तस्य पुण्यफलं शृणु

सत्रयाजिफलं यच्च लभते द्वादशाब्दिकम् ।
पिण्डदानात्फलं तच्च लभते नाऽत्र संशयः ॥ ४४ ॥

अङ्कोलमूले च पिण्डं पितॄनुद्दिश्य दापयेत् । तस्य ते द्वादशाब्दानि तृप्तिं यान्ति पितामहाः
कृमिकीटपतङ्गा ये तत्र तीर्थे युधिष्ठिर । प्राप्नुवन्ति मृताः स्वर्गं किं पुनर्ये नरा मृताः

सन्न्यासं कुरुते योऽत्र जितक्रोधो जितेन्द्रियः ।
कुसुमेशे नरो भक्त्या स गच्छेच्छिवमन्दिरम् ॥ ४७ ॥

तत्र दिव्याप्सरोभिश्च देवगन्धर्वगायनैः । क्रीडन्ते सेव्यमानस्तु कल्पकोटिशतं नृप

पूर्णे चैव तत्र काले इह मानुष्यतां गतः ।
जायते राजराजेन्द्र पूज्यमानो नृपो महान् ॥ ४९ ॥
सुरूपः सुभगो वाग्मी विद्वान्तो मतिमाञ्छुचिः ।
जीवेद्वर्षशतं साग्रं सर्वव्याधिविवर्जितः ॥ ५० ॥

एतत्पुण्यं पापहरं तीर्थकोटिशताधिकम् । कुसुमेशेति विख्यातं सर्वदेवनमस्कृतम्

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
रेवाखण्डे कुसुमेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम
पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५० ॥

——

एकपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

श्वेतवाराहतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

उत्तरे नर्मदाकूले तीर्थं परमशोभनम् । जयवाराहमाहात्म्यं सर्वपापप्रणाशनम् ॥

उद्धृता जगती येन सर्वदेवनमस्कृता । लोकानुग्रहबुद्ध्या च संस्थितो नर्मदातटे

तत्र तीर्थे तु यः स्नात्वा वीक्षते मधुसूदनम् ।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो दशजन्माऽनुकीर्त्तनात् ॥ ३ ॥

मत्स्यःकूर्मो वराहश्च नरसिंहोऽथवामनः । रामोरामश्चकृष्णश्च बुद्धःकल्किश्चतेदश

युधिष्ठिर उवाच

मत्स्येन किं कृतं तात कूर्मेणमुनिसत्तम ।। वराहेण च किं कर्म नरसिंहेनकिंकृतम्

मनेन च रामेण राघवेण च किं कृतम् । बुद्धरूपेणकिंवाऽपिकल्किनाकिंकृतंवद

मुक्तस्तु विप्रेन्द्रो धर्मपुत्रेण धीमता । उवाच मधुरांवाणीं तदा धर्मसुतम्प्रति

श्रीमार्कण्डेय उवाच

मीनो भूत्वा पुरा कल्पे प्रीत्यर्थं ब्रह्मणो विभुः ।
समर्पयत्समुद्धृत्य वेदान्मग्नान्महार्णवे ॥ ८ ॥

मृतोत्पादने राजन्कूर्मोभूत्वाजगद्गुरुः । मन्दरंधारयामास तथादेवींवसुन्धराम्

उज्जहार धरां मग्नां पातालतलवासिनीम् ।
वाराहं रूपमास्थाय देवदेवो जनार्द्दनः ॥ १० ॥

रस्यार्द्धतनुं कृत्वा सिंहस्यार्द्धतनुं तथा । हिरण्यकशिपोर्वक्षोविददारनखांकुशैः

टीवामनरूपेण स्तूयमानोद्विजोत्तमैः । तद्दिव्यंरूपमास्थायक्रमित्वामेदिनींक्रमैः

कृतवांश्च बलिं पश्चात्पातालतलवासिनम् ।

द्विपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

भार्गलेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततोगच्छेद्धरापाल भार्गलेश्वरमुत्तमम्। शङ्करं जगतः प्राणं स्मृतमात्रावनाशनम्
तत्र तीर्थेतुयः स्नात्वा पूजयेत्परमेश्वरम्। अश्वमेधस्ययज्ञस्य फलंप्राप्नोतिमानवः
तत्र तीर्थे तु यः कश्चित्प्राणत्यागं करिष्यति।
अनिवर्त्तिका गतिस्तस्य रुद्रलोकादसंशयम्॥ ३॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे रेवाखण्डे भार्गलेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनंनाम द्विपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

त्रिपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

आदित्येश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

तस्यैवानन्तरं चान्यद्रवितीर्थमनुत्तमम्। तस्य सन्दर्शनादेवमुच्यन्ते पातकैर्नराः
रवितीर्थे तु यः स्नात्वा नरः पश्यति भास्करम्।
तस्य यत्फलमुद्दिष्टं स्वयं देवेन तच्छृणु॥ २॥
नान्धो न मूको बधिरःकुलेभवतिकश्चन। कुरूपःकुनखीचापितस्य जन्मानिषोडश॥
दद्रुश्चित्रककुष्ठानि मण्डलानि विचर्चिका।
नश्यन्ति देवभक्तस्य षण्मासान्नात्र संशयः॥ ४॥
चरितं तस्य देवस्य पुराणेयच्छ्रुतंमया। नतत्कथयितुं शक्यं सङ्क्षेपेण नृपोत्तम॥

तत्र तीर्थे तु यच्छ्राद्धं रविमुद्दिश्य दीयते ।
विधिना पात्रविप्राय तस्यान्तो नाऽस्ति कर्हिचित् ॥ ६ ॥
अयने विषुवे चैवचन्द्रसूर्यग्रहे तथा । रवितीर्थप्रदत्तानां दानानां फलमुत्तमम
सङ्क्रान्तीयानिदानानिहव्यकव्यानिभारत ।अपामिवसमुद्रस्यतेषामन्तोनलभ्
येनयेन यदा दत्तयेनयेन यदा हुतम् । तस्य तस्य तदा काले सविता प्रतिदाय
सप्त जन्मानि तान्येव ददात्यर्क पुन पुन । शतमिन्दुक्षये दान सहस्रतु दिनक्ष
सङ्क्रान्तौ शतसाहस्र व्यतीपाते त्वनन्तकम् ॥ ११ ॥
युधिष्ठिर उवाच
रवितीर्थकथतात पुण्यात्पुण्यतरस्मृतम् । विस्तरेणममाख्याहिश्रवणीममलम्पः
श्रीमार्कण्डेय उवाच
शृणुष्वाऽवहितो भूत्वा ह्यादित्येश्वरमुत्तमम् ।
उत्तरे नर्मदाकूले सर्वव्याधिविनाशनम् ॥ १३ ॥
पुरा कृतयुगस्याऽऽदौ जाबालिर्ब्राह्मणोऽभवत् ।
वसिष्ठाऽन्वयसम्भूतो वेदशास्त्रार्थपारग ॥ १४ ॥
पतिव्रता साधुशीला तस्य भार्या मनस्विनी ।
ऋतुकाले तु सा गत्वा भर्तारमिदमब्रवीत् ॥ १५ ॥
वर्तते ऋतुकालो मे भर्तार त्वामुपस्थिता ।
भज मा प्रीतिसयुक्त पुत्रकामा तु कामिनीम् ॥ १६ ॥
एवमुक्तो द्विज प्राह प्रियेऽद्याऽहं व्रतान्वित ।
गच्छेदानीं वरारोहे दास्य ऋत्वन्तरे पुन ॥ १७ ॥
पुनर्द्वितीये सम्प्राप्ते ऋतुकालेऽप्युपस्थिता ।
पुन सा च्छन्दिता तेन व्रतस्थोऽद्येति भारत ॥ १८ ॥
इत्थ वाचदुशस्तेनच्छन्दिताचपुन पुन । निराशाचाऽभवत्तत्रभर्तार प्रतिभामिनी
दुःखेन महता विप्रा विधायानशन मृता । तेन भ्रूणहतेनैव पापेन सहसा द्विज ।

शीर्णघ्राणाङ्घ्रिरभवत्तपः सर्वं ननाश च। दृष्ट्वात्मानंसकुष्ठेन व्याप्तं ब्राह्मणसत्तमः
विषादं परमं गत्वानर्मदातटमाश्रितः। अपृच्छद्भास्करंतीर्थं द्विजेभ्यो द्विजसत्तमः

आरोग्यं भास्करादिच्छेदिति सञ्चिन्त्य चेतसि।
कुतस्तद्भास्करं तीर्थं भो द्विजाः कथ्यतां मम ॥ २३ ॥
तपस्तप्स्याम्यहं गत्वा तस्मिंस्तीर्थे सुभावितः ॥ २४ ॥

द्विजा ऊचुः

रेवायाउत्तरे कूलेआदित्येश्वरनामतः। विद्यतेभास्करंतीर्थं सर्वव्याधिविनाशनम्
तत्रयाह्यविचारेण गन्तुंचेच्छक्यतेत्वया। एवमुक्तोद्विजैर्विप्रो गन्तुं तत्र प्रचक्रमे ॥

व्याधिना परिभूतस्तु घोरेण प्राणहारिणा।
यदा गन्तुं न शक्नोति तदा तेन विचिन्तितम् ॥ २७ ॥

सामर्थ्यं ब्राह्मणानां हि विद्यतेभुवनत्रये। लिङ्गपातः कृतो विप्रैर्देवदेवस्यशूलिनः

समुद्रः शोषितो विप्रैर्विन्ध्यश्चापि निवारितः।
अहमप्यत्र संस्थस्तु ह्यानयिष्यामि भास्करम् ॥ २६ ॥

तपोबलेन महताह्यादित्येश्वरसञ्ज्ञितम्। इतिनिश्चित्यमनसाह्यग्रे तपसिसंस्थितः

वायुभक्षो निराहारो ग्रीष्मे पञ्चाग्निमध्यगः।
शिशिरे तोयमध्यस्थो वर्षास्वप्रावृताकृतिः ॥ ३१ ॥
साग्रे वर्षशते पूर्णे रविस्तुष्टोऽब्रवीदिदम् ॥ ३२ ॥

सूर्य उवाच

वरं वरय भद्रं ते किं ते मनसि वाञ्छितम्।
अदेयमपि दास्यामि ब्रूहि मां त्वं चिरं कृथाः ॥ ३३ ॥
किमसाध्यं हि ते विप्र! इदानीं तपसि स्थितः ॥ ३४ ॥

जावालिरुवाच

यदि तुष्टोऽसि देवेश यदि देयो वरो मम। मम प्रतिज्ञा देवेश ह्यादित्येश्वरदर्शने ॥

कृता तां पारितुं देव! न शक्तो व्याधिनावृतः।

शुक्लतीर्थेऽत्र तिष्ठ त्वमादित्येश्वरमूर्तिधृक् ॥ २६ ॥
एवमुक्ते तु देवेशो वटुरूपो दिवाकरः । उत्तरे नर्मदाकूले क्षणादेव व्यदृश्यत ॥२७॥
तदाप्रभृति भूपाल तद्धि तीर्थं प्रचक्षते । सर्वपापहरं प्रोक्तं सर्वदुःखविनाशनम् ॥
यस्तु संवत्सरं पूर्णं नित्यमादित्यवासरे ।
स्नात्वा प्रदक्षिणां चात्र दत्त्वा पश्यति भास्करम् ॥ २९ ॥
यत्फलं लभते तेन तच्छृणुष्व यथोदितम् । प्रसुप्ते मण्डलानीह दद्रुकुष्ठविचर्चिकाः
नश्यन्ति सत्वरं राजन्स्त्र्यादिविविधाऽनघ । धनपुत्रकलत्राणां पूर्येद्वत्सरत्रयात्
यस्तु श्राद्धप्रदस्तत्र पितॄनुद्दिश्य सङ्क्रमे । तृप्यन्ति पितरस्तस्य पितृदेवो हि भास्करः
इति ते कथितं सर्वमादित्येश्वरमुत्तमम् । सर्वपापहरं दिव्यं सर्वरोगविनाशनम् ॥
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
रेवाखण्डे आदित्येश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम त्रिपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

चतुःपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

कलकलेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

नर्मदादक्षिणेकूले तीर्थं कलकलेश्वरम् । विख्यातं सर्वलोकेषु स्वयं देवेन निर्मितम्
अन्धकं समरे हत्वा देवदेवो महेश्वरः । सहितो देवगन्धर्वैः किन्नरैश्च महोरगैः ॥
शङ्खतूर्यनिनादैश्च मृदङ्गपणवादिभिः । वीणावेणुरवैश्चान्यैः स्तुतिभिः पुष्कलादिभिः
गायन्ति सामानि यत्र वि चान्येश्छन्दांसि चान्ये ऋचमुद्गिरन्ति ।
स्तोत्रैरनेकैरपरे गृणन्ति महेश्वरं तत्र महानुभावाः ॥ ४ ॥
प्रमथानां निनादेन कलकलेन च वन्दितम् ।
यस्मात्प्रतिष्ठितं लिङ्गं तस्माज्जातं तदाख्यया ॥ ५ ॥

तत्र तीर्थे तु यः स्नात्वा वीक्षेत्कलकलेश्वरम् ।
वाजपेयात्परं पुण्यं स लभेन्मानवो भुवि ॥ ६ ॥
तेनपुण्येनपूतात्मा प्राणत्यागाद्दिवंव्रजेत् । आरूढःपरमंयानं गीयमानोऽप्सरोगणैः
उपभुज्यमहाभोगान्कालेनमहताततः । मर्त्यकेलोकेमहात्माऽसौजायतेविमलेकुले
ब्राह्मणःसुभगो लोके वेदवेदाङ्गपारगः । व्याधिशोकविनिर्मुक्तोजीवेच्चशरदांशतम्
इति श्रीस्कान्दे महापुराणएकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
रेवाखण्डे कलकलेश्वरतीर्थफलमाहात्म्यवर्णनं नाम
चतुःपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १५४ ॥

पञ्चपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

चाणक्यसिद्धिप्राप्तिवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि सर्वतीर्थादनुत्तमम् । उत्तरे नर्मदाकूले शुक्लतीर्थं युधिष्ठिर ॥
तस्य तीर्थस्य चाऽन्यानि पुण्यत्वाच्छुभदर्शनात् ।
पृथिव्यां सर्वतीर्थानि कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥ २ ॥

युधिष्ठिर उवाच

तस्य तीर्थस्य माहात्म्यं श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ।
भ्रातृभिः सहितः सर्वैस्तथान्यैर्द्विजसत्तमैः ॥ ३ ॥

श्रीमार्कण्डेय उवाच

शुक्लतीर्थस्य चोत्पत्तिमाकर्णय नरेश्वर !॥ यस्य सन्दर्शनादेव ब्रह्महत्या प्रलीयते ॥
नर्मदासरितां श्रेष्ठा सर्वपापप्रणाशिनी । यच्च बाल्ये कृतं पापं दर्शनादेव नश्यति
मोक्षदानिन सर्वत्र शुक्लतीर्थमृते नृप । शुक्लतीर्थस्य माहात्म्यं पुराणेयच्छ्रुतं मया

समागमे मुनीनां तु देवानां हि तथैव च । कथितं देवदेवेन शितिकण्ठेन भारत
कैलासे पर्वतश्रेष्ठे तत्ते सङ्कथयाम्यहम् ॥ ७ ॥
पुरा कृतयुगस्याऽऽदौ तोषयित्वा गिरिजापतिम् । तपश्चचार विपुलं विष्णुर्वर्षसहस्रकम्
वायुभक्षो निराहारः शुक्लतीर्थे व्यवस्थितः ॥ ८ ॥
ततः प्रत्यक्षतामागाद्देवदेवो महेश्वरः । प्रादुर्भूतस्तु सहसा तत्र तीर्थं नराधिप
कोशाह्वयमिदं पार्थ भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ।
तस्मिंस्तीर्थे नरः स्नात्वा मुच्यते सर्वकिल्बिषैः ॥ १० ॥
गङ्गा कनखले पुण्या कुरुक्षेत्रे सरस्वती । ग्रामे वा यदि वाऽरण्ये पुण्या सर्वत्र नर्मदा
सर्वौषधीनामशनं प्रधानं सर्वेषु पेयेषु जलं प्रधानम् ।
निद्रा सुखानां प्रमदा रतीनां सर्वेषु गात्रेषु शिरः प्रधानम् ॥ १२ ॥
स्नातस्याऽपि यथा पुण्यं [illegible] नृपसत्तम ।
शुक्लतीर्थं तथा पुण्यं नर्मदायां युधिष्ठिर ॥ १३ ॥
सरितां च यथा गङ्गा देवतानां जनार्दनः । शुक्लतीर्थं तथा पुण्यं नर्मदायां व्यवस्थितम्
चतुष्पदानां सुरभिर्वर्णानां ब्राह्मणो यथा । प्रधानं सर्वतीर्थानां शुक्लतीर्थं तथा नृप
ग्रहाणां तु यथाऽऽदित्यो नक्षत्राणां यथा शशी ।
शिरो वा सर्वगात्राणां धर्माणां सत्यमिष्यते ॥ १६ ॥
तथैव पार्थ तीर्थानां शुक्लतीर्थमनुत्तमम् । दुर्विज्ञेयो यथा लोके परमात्मा सनातनः
सुसूक्ष्मत्वादनिर्देश्यं शुक्लतीर्थं तथा नृप । मन्दप्रज्ञत्वमापन्नो महामोहसमन्वितः
शुक्लतीर्थं न जानाति नर्मदातटसंस्थितम् । बहुनाऽत्र किमुक्तेन धर्मपुत्र पुनः पुनः
शुक्लतीर्थं महापुण्यं सम्प्राप्तं कल्मषक्षयात् ।
योऽत्र दत्तशुचिर्भूत्वा एकं स्वजलाञ्जलिम् ॥ २० ॥
कल्पकोटिसहस्राणि पितरस्तेन तर्पिताः ॥ २१ ॥
एकः पुत्रो धरापृष्ठे पितृणामार्तिनाशनः ।
चाणक्यो नाम राजाऽभूच्छुक्लतीर्थं च वेद सः ॥ २२ ॥

युधिष्ठिर उवाच

कोऽसौ द्विजवरश्रेष्ठ! चाणक्योनाम नामतः ।
शुक्रतीर्थस्य यो वेत्ता नाऽन्यो वेत्ता हि कश्चन ॥ २३ ॥
केनोपायेन तत्तीर्थं तेन ज्ञातं धरातले । तदहं श्रोतुमिच्छामि परंकौतूहलं हि मे

श्रीमार्कण्डेय उवाच

इक्ष्वाकुप्रभवोराजानप्ताशुद्धोदनस्यच । चाणक्योनामराजर्षिर्बुभुजेपृथिवीमिमाम्
विक्रान्तोमतिमाञ्च्छूरः सर्वलोकैरवञ्चितः ।
वञ्चितः सहसा धूर्तवायसाभ्यां नृपोत्तमः ॥ २६ ॥

युधिष्ठिर उवाच

कथंसवञ्चितोराजावायसाभ्यां कुतोऽथवा । पुरायेनप्रतिज्ञातंधीगर्भेणमहात्मना
न जीवे वञ्चितोऽन्येन प्राणांस्त्यक्ष्ये न संशयः ।
एतन्मे वद विप्रेन्द्र! परं कौतूहलं मम ॥ २८ ॥

श्रीमार्कण्डेय उवाच

आत्मानंवञ्चितंज्ञात्वा तदा संगृह्य वायसौ । प्रेषयामासतीव्रेणदण्डेनयमसादनम्

वायसावूचतुः

सुन्दोपसुन्दयोः पुत्रावावां काकत्वमागतौ ।
मावधीस्त्वं महाभाग! कस्मिंश्चित्कारणान्तरे ॥ ३० ॥
तावावां कृतसङ्कल्पौ त्वयाऽकोपेन मानद !।
निरस्तावनिरस्तौ वा यास्यावः परमां गतिम् ॥ ३१ ॥
तदादेशय राजेन्द्रकृत्वातव महत्प्रियम् । मुक्तशापोभविष्यावो ब्रह्मणोवचनंतथा
तच्छ्रुत्वाकाकवचनंचाणक्योनृपसत्तमः । नाहंजीवेचिदित्वैवंवञ्चितःकेनकर्हिचित्
तस्मात्तीर्थं विजानीतं यमस्य सदने द्विजौ ।
प्रेषयामि यथान्यायं श्रुत्वा तत्कथयिष्यथः ॥ ३४ ॥
तेनैवमुक्तौ तौ काकौस्रक्चन्दनविभूषितौ । शीघ्रगौप्रेषयामासयमस्यसदनम्प्रति

राज्ञोवाच

तत्रधर्मपुरं गत्वाविचरन्तावितस्ततः । यदिपृच्छति धर्मात्मायम सयमनोमह
कुतोयामागतौकृत केनवा भूषितावुभौ । मदीयाभारतीतस्य कथनीयाहाशङ्कित

इक्ष्वाकुसम्भवो राजा धाणक्यो नाम धार्मिक ।
द्वादशाहे मृतस्याऽस्य सर्पिताथशनादिना ॥ ३८ ॥
तच्छ्रुत्वा वचनं राज्ञो गतौ तौ यमसादनम् ।
क्रीडितौ प्राङ्गणे तस्य स्वकचन्दनविभूषितौ ॥
धमराजेन तौ दृष्टौ पृष्टौ धूर्तौ च वायसौ ॥ ३९ ॥

यम उवाच

कुत स्थानात्समायातौ केनवाभूषितावुभौ । सूसचैकथ्यतामेतद्वायसावविशङ्कय

काकावूचतु

इक्ष्वाकुसम्भवो राजा वाणक्योनाम धार्मिक ।
द्वादशाहे मृतस्याऽस्य तर्पिनायशनादिभि ॥ ४१ ॥

तयोस्तद्वचनश्रुत्वातदा वैवस्वतोयम । चित्रगुप्तकलिकाल वीक्ष्यतामिदमब्रवी
अण्डजस्वेदजातीनाभूतानासचराचरे । विहित लोककर्तृणासान्निध्यब्रह्मणाम

गत कुत्र दुराचारश्चाणक्यो नामनस्त्विह ।
अन्विष्यता पुराणेषु स्वितिहासेषु या गति ॥ ४४ ॥

ततस्तैधर्मपालैस्तुधमराजप्रचोदितै । निरीक्षितापुराणोक्ताकर्मजागतिरागरि
तत प्रोवाच वचन धर्मो धमभृतावर । शृण्वताधर्मपालाना मेघगम्भीरयागिर
शुक्लतीर्थमृताना ॥ नर्मदाविमले जले । अण्डजस्वेदजातीना न गतिर्मम सन्निधं

तत्तीर्थं धार्मिक लोके ब्रह्मविष्णुमहेश्वरै ।
निर्मित परया भक्त्या लोकाना हितकाम्यया ॥ ४८ ॥

पापोपपातकैयु क्ता ये नरा नर्मदाजले । शुक्लतीर्थे मृता शुद्धात्मने मद्विषया क्वचि

एतच्छ्रुत्वा तु वचन तौ काकौ यमभाषितम् ।

आगतौ शीघ्रगौ पार्थ दृष्ट्वा यमपुरं महत् ॥ ५० ॥
पृष्टौतौप्रणतौराज्ञायथा वृत्तं यथाश्रुतम् । कथयामासतुःपार्थद्वानवौकाकतांगतौ
अस्मात्स्थानाद्गताचावां यमस्य पुरमुत्तमम् ।
पृथिव्या दक्षिणेभागे ह्यतीत्य बहुयोजनम् ॥ ५२ ॥
तत्पुरं कामगं दिव्यं स्वर्णप्राकारतोरणम् । अनेकगृहसम्बाधं मणिकाञ्चनभूषितम्
चतुष्पथैश्चत्वरैश्च घण्टामार्गोपशोभितम् ।
उद्यानवनसञ्छन्नं पद्मिनीखण्डमण्डितम् ॥ ५४ ॥
हंससारससङ्घुष्टं कोकिलाकुलसङ्कुलम् । सिंहव्याघ्रगजाकीर्णमृक्षवानरसेवितम्
नरनारीसमाकीर्णं नित्योत्सवविभूषितम् ।
शङ्खदुन्दुभिनिर्घोषैर्वीणावेणुनिनादितम् ॥ ५६ ॥
यममार्गेऽपिविहितं स्वर्गलोकमिवाऽपरम् । गतौ तत्र पुनश्चान्यैर्यमदूतैर्यमाज्ञया
विदितौप्रेषितौतत्रयत्रदेवोजगत्प्रभुः । प्राणस्य भीत्या दृष्टोऽसौसिंहासनगतःप्रभुः
महाकायो महाजङ्घो महास्कन्धो महोदरः ।
महावक्षा महाबाहुर्महावक्त्रेक्षणो महान् ॥ ५९ ॥
महामहिषमारूढो महामुकुटभूषितः । तत्राऽन्यश्च कलिः कालश्चित्रगुप्तोमहामतिः
समागतौ तदा दृष्टौ मध्ये ज्वलितपावकौ ।
पुण्यपापानि जन्तूनां श्रुतिस्मृत्यर्थपारगौ ॥ ६१ ॥
विचारयन्तौसततंतिष्ठातेतौदिवानिशम् । ततो ह्यावां प्रणामान्तेयमेनयममूर्तिना
पृष्टावागमनेहेतुं तमब्रूवश्शृणुष्व तत् । उज्जयिन्यांमहीपालश्चाणक्योऽभूत्प्रतापवान्
द्वादशाहे मृतस्याऽस्य भुक्त्वा प्राप्तौ यमालयम् ।
ततोऽस्माकं वचः श्रुत्वा कम्पयित्वा शिरो यमः ॥ ६४ ॥
उवाच वचनं सत्यं सभामध्येहसन्निव । अस्ति तत्कारणं येन चाणक्यःपापपूरुषः
नायातो मम लोके तु सर्वपापभयङ्करे । शुक्लतीर्थे मृतानां तु नर्मदायां परम्पदम्
जायते सर्वजन्तूनां नाऽत्र काचिद्विचारणा ।

अवश स्वधशोचाऽपि अनुस्त क्षेत्रमण्डले ॥ ६७ ॥
मृतः घेन सन्देहो रुद्रस्यानुचरो भवेत् । तद्भवचन श्रुत्वा निगत्यनगराद्बहि
पश्यन्तौ विविधा घोरा नरके लोकयातनाम् ।
त्रिंशत्कोट्यो हि घोराणा नरकाणा नृपोत्तम ॥ ६६ ॥
दृष्ट्वा भीतौ परामानि गतौ तत्र महापथि । नरको रौरवस्तत्र महारौरव एव च ॥
रौरण शोपणश्चैव कालसूत्रोऽस्थिभञ्जन ।
तामिस्रश्चान्धतामिस्र कृमिपूतिवहस्तथा ॥ ७१ ॥
कुम्भीपाको महाज्वालस्तथैव विषभोजन । नरकौ दशमशकौ तथा यमलपर्वतौ ॥
नदी वैतरणी दृष्टा सर्वपापप्रणाशिनी । शीतल सलिल यत्रपियन्तिह्यमृतोपमम्
तदेवनीरपापाना शोणितपरिवर्तते । असिपत्रवन चाऽन्यत्कूटशाल्मली शिला
अग्निपुञ्जनिभाकारा विशाला शाल्मली परा ।
इत्यादयस्तथैवान्ये शतसाहस्रसञ्ज्ञिताः ॥ ७१ ॥
घोरघोरतरा दृष्ट्वा क्लिश्यन्तेयत्रमानवा । वाचिकैर्मानसै पापै कर्मजैश्चपृथग्विधै
अहङ्कारकृतैर्दोषैर्मायायाचनपूर्वकै । पिता माता गुरुर्भ्राता अनाथायिफलेन्द्रिया
भ्रमन्ति नोद्धृता येषा गतिस्तथा हि रौरवे ।
तत्र द्वादशाब्दानि क्षपित्वा रौरवेऽधमा ॥ ७८ ॥
इह मानुष्यके लोकेदीनान्धाश्च भवन्तिते । देवब्रह्मस्वहृत पानरताणापापकर्मणाम्
महारौरवमाश्रित्य भव वासो यमालये । तत्र कालेन महता पापा पापेनवेष्टिता
जायन्त कण्टकैर्भिना कोशे वा कोशकारका ।
मृगपक्षिविहङ्गाना घातका मासभक्षकाः ॥ ८१ ॥
पैशुण नरक यान्ति शोषण जीवबन्धनात् ।
तत्र या यातना घोरा महित्वा शास्त्रचोदिताम् ॥ ८२ ॥
इह मानुष्यता प्राप्य पङ्ग्वन्धबधिरा नरा । गवार्थे ब्राह्मणार्थेवह्न्यन्तवदतामिह
पतन जायतेपु सा नरक कालसूत्रक । तत्रत्यायातना घोरा विहिताशास्त्रकर्तृ भि

भुक्त्वा समागता ह्यत्र ते यास्यन्त्यन्त्यजां गतिम् ।
वन्धयन्ति च ये जीवांस्त्यक्त्वात्मकुलसन्ततिम् ॥ ८५ ॥
पतन्तिनात्र सन्देहो नरके तेऽस्थिभञ्जने । तत्र वर्षशतस्याऽन्तऽह मानुष्यतांगताः
कुब्जा वामनकाः पापा जायन्ते दुःखभागिनः ।
ये त्यजन्ति स्वकां भार्यां मूढाः पण्डितमानिनः ॥ ८७ ॥
ते यान्तिनरकंघोरंतामिस्रं नाऽत्रसंशयः । तत्र वर्षशतस्यान्ते इह मानुष्यतांगताः
दुश्चर्माणो दुर्भगाश्च जायन्ते मानवाहिते । मानकूटं तुलाकूटं कूटवं तु वदन्ति ये
नरके तेऽन्धतामिस्रे प्रपद्यन्ते नराधमाः । शतसाहस्रिकं कालमुषित्वातत्रतेनराः
इह शत्रुगृहे त्वन्धा भ्रमन्ते दीनमूर्त्तयः । पितृदेवद्विजेभ्योऽन्नमदत्त्वा येऽत्र भुञ्जते॥
नरके कृमिभक्ष्ये ते पतन्तिस्वात्मपोषकाः । ततःप्रसूतिकालेहि कृमिभुक्तश्चसव्रणः
जायतेऽशुचिगन्धोऽत्र परभाग्योपजीवकः ।
स्वकर्मविच्युताः पापा वर्णाश्रमविवर्जिताः ॥ ९३ ॥
रके पूयसम्पूर्णे क्लिश्यन्ते ह्ययुतंसमाः । पूर्णेतत्र ततः काले प्राप्यमानुष्यकंभवम्
उद्वेजनीयाभूतानांजायन्तेव्याधिभिर्वृताः । अग्निदोगरदश्चैवलोभमोहान्वितोनरः
नरके विषसम्पूर्णे निमज्जति दुरात्मवान् । तत्र वर्षशतात्कालादुन्मज्जनमवस्थितः
भुवि मानुषतांप्राप्य कृपणोजायतेपुनः । पादुकोपानहौ छत्रंशय्यां प्रावरणानिच
अदत्त्वा दंशमशकैर्भक्ष्यन्ते जन्यसन्ततिम् । पितुर्द्रव्यापहर्त्तारस्ताडनक्रोशने रताः
पीडनं क्रियते तेषांयत्र तौ युग्मपर्वतौ । या सा वैतरणीघोरा नदी रक्तप्रवाहिनी
पिबन्ति रुधिरं तत्र येऽभियान्ति रजस्वलाम् ।
असिपत्रवने घोरे पीड्यन्ते पापकारिणः ॥ १०० ॥
परपीडाकरा नित्यंये नरोऽन्त्यजगामिनः । गुरुदाररतानां तु महापातकिनामपि
शिलावगूहनंतेषांजायतेजन्मसन्ततिम् । ज्वलन्तीमायसीं घोरांबहुकण्टकसम्वृताम्
शाल्मलीं तेऽवगूहन्ति परदाररताहिये । परस्ययोषितं हत्वा ब्रह्मस्वमपहृत्य च
अरण्ये निर्जले देशेस भवेत्क्रूरराक्षसः । देवस्वं ब्राह्मणस्वं च लोभेनैवाऽऽहरेच्चयः

स पापात्मा परे लोके भृशोद्विग्नेन जीवति ।

एवमादीनि पापानि भुञ्जन्ते यमशासनात् ॥ ७ ॥

येषां तु दर्शनादेव श्रवणाज्जायते भयम् । तथा दानरता ये चाऽन्ये भुञ्जाना यममन्दिरे दृष्टा धृतं वधयन्तो दूतानां धर्मराजवत् । रथैरन्यैर्गजैरश्वैर्वेष्टिता त्रिभिरावृताः

दृश्यन्ते च महाभागा नानाभरणभूषिताः ।

गोदाता स्वर्णदाता च भूमिदस्त्वन्नदा नराः ॥ ८ ॥

शय्यासनगृहादीनां तथैव कामरोहिणाम् । सर्वपापविनिर्मुक्ता दृश्यन्तेऽश्वमानवाः तत्र पूता सुगन्धा क्रीडन्ते यमसादने । अश्वमेधायनं दानमपि चाल्पमात्रकम् तदक्षयफलं सर्वं शुक्लतीर्थे नृपोत्तम । एतत्ते कथितं सर्वं यत्पृष्टं यथा मे श्रुतम् ॥ कुरुक्षेत्रमभिगम्य विशन्तोऽपि मुच्यन्ताम् । तयोरन्तरचारभूम्या चाणक्योऽहमानन- स्थितश्चर्यामास गतायामिनयकुत पुनः । नात्यन्तरम्योसर्वाण्यास्यायाविधिनुभारत

कामक्रोधौ परित्यज्य जगामाऽमरकण्टकम् ।

तत्र पश्चात्पुन गाढं कृष्णवर्णस्यायत्र शिवम् ॥ १४ ॥

पूज्यमाना जगामाऽऽशु चाणक्येयं जनार्दनम् ।

आराध्य भास्करादित्यस्तत्र वै जागतैर्दृशः ॥ १५ ॥

प्राप्ता निशान्तमीशानात्मनः प्राप्नोति केशवात् । शीघ्रं तत्रमयन्मेघवर्णं यद्विशुद्धकम्

शुक्लस्फटिकसङ्काशं दृष्ट्वा रङ्गतु महामतिः ।

आप्लुत्य विमले तोये गतोऽसौ वैष्णवं पदम् ॥ १७ ॥

गायन्ति यदृच्छया पुराणं नारायणं शाश्वतमच्युताह्वयम् ।

प्राप स तं राजमुना महात्मा निक्षिप्य देहं शुभशुक्लतीर्थे ॥ १८ ॥

तथा ते कथिता राजन्सिद्धिश्चाणक्यभूभृतः ।

तथाऽन्यत्तव वक्ष्यामि शृणुष्वैकाग्रमानसः ॥ १९ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे रेवाखण्डे चाणक्यसिद्धिप्राप्तिवर्णनंनाम पञ्चपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥

षट्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

शुक्लतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

नास्ति लोकेषु तत्तीर्थं पृथिव्यां यन्नरेश्वर। शुक्लतीर्थेन सदृशमुपमानेन गीयते ॥
शुक्लतीर्थं महातीर्थं नर्मदायां व्यवस्थितम्। प्रागुदक्प्रवणेदेशे मुनिसङ्घनिषेवितम्
वैशाखे च तथामासिकृष्णपक्षेचतुर्द्दशी। कैलासादुमयासार्द्धंस्वयमायातिशङ्करः

मध्याह्नसमये स्नात्वा पश्यत्यात्मानमात्मना।
ब्रह्मविष्ण्विन्द्रसहितः शुक्लतीर्थे समाहितः ॥ ४ ॥
कार्त्तिक्यां तु विशेषेण वैशाख्यां च नरोत्तम !।
ब्रह्मविष्णुमहादेवान् स्नात्वा पश्यति तद्दिने ॥ ५ ॥
देवराजः सुरैः सार्द्धं वायुमार्गव्यवस्थितः।
कृष्णपक्षे चतुर्द्दश्यां स्नात्वा पश्यति शङ्करम् ॥ ६ ॥
गन्धर्वाप्सरसो यक्षाः सिद्धविद्याधरोरगाः।
तद्दिने तेऽपि देवेशं दृष्ट्वा मुञ्चन्ति किल्बिषम् ॥ ७ ॥

अर्द्धयोजनविस्तारं तदर्द्धेनैव चायतम्। शुक्लतीर्थंमहापुण्यं महापातकनाशनम् ॥

यत्र स्थितैः प्रदृश्यन्ते वृक्षाग्राणि नरोत्तमैः।
तत्र स्थिता महापापैर्मुच्यन्ते पूर्वसञ्चितैः ॥ ९ ॥
पापोपपातकैर्युक्तो नरःस्नात्वा प्रमुच्यते।
उपार्जिता विनश्येत भ्रूणहत्याऽपि दुस्त्यजा ॥ १० ॥

यस्मात्तत्रैव देवेश उमया सह तिष्ठति। वैशाख्यांच विशेषेण कैलासादेतिशङ्करः
तेन तीर्थं महापुण्यं सर्वपातकनाशनम्। कथितंब्रह्मणा पूर्वं मया तव तथा नृप
रजकेन यथा धौतं वस्त्रं भवति निर्मलम्। तथातत्रवपुःस्नानं पुरुषस्य भवेच्छुचि

पूर्वे वयसि पापानि कृत्वा पुण्यानि मानवः ।
महापातकिनो भूत्वा शुक्लतीर्थे व्यपोहति ॥ १६ ॥
शुक्लतीर्थे महाराज गत्वा रेवाजलमुत्तमम् ।
कन्यकादि महत्यापि दत्त्वा स्युः पितरः शिवाः ॥ १७ ॥

न माता न पिता बन्धुः पतन्तं नरकार्णवे । उद्धरन्ति यथा पुत्र शुक्लतीर्थं नरेश्वर
नरमात्मवधार्थं पतता गच्छन्ति मद्गतिम् । शुक्लतीर्थे मृतो जन्तुर्देवत्वं येन पाप्नुयात्

कार्तिकस्य तु मासस्य कृष्णपक्षे चतुर्दशीम् ।
घृतेन स्नापयेद्देवमुपोष्य प्रयतो नरः ॥ १८ ॥

स्नात्वा प्रभातसमये स्नात्वा पुनरुपस्थलम् । सहिरण्ययथाशक्ति देवमुद्दिश्य सादरम्
स्नात्वा पूजां कुर्यात्तत्र पुनः स्थलम् । स गच्छन्ति महातेजाः शिवलोकं ततो नरः
तपःविशेषात्पापनाशनमुत्तमम् । शुक्लतीर्थे नरः स्नात्वा संविद्वयोऽर्घ्यं येन
गत्वा पापान्निःप्रयाति सोऽश्वमेधफलं लभेत् । मासोपवासं यः कुर्यात्तत्र तीर्थे नरेश्वर
भुक्त्वा समाप्त्यार्थं मानवस्तु समर्पितं । उच्छिष्टं रसविहीनं नवश्राद्धे च भोजनम्
गुरुतल्पगमनं चैव तथाऽभक्ष्यस्य भक्षणम् । अविक्रेयविक्रयं पापं माहिषेऽध्ययाजके
वाक्शुद्धे पदन्ति ब्राह्मणदूषके । एवमादीनि पापानि तथाऽन्यान्यपि भारत
चान्द्रायणतपर्णानि शुक्लतीर्थे नमस्यन् । शुक्लतीर्थे तु य स्नात्वा तर्पयेत्पितृदेवताः

तस्य ते द्वादशाब्दानि तृप्तिं यान्ति सुतर्पिताः ।
पादुकोपानहौ छत्रं शय्यामासनमेव च ॥ २९ ॥

सुवर्णं ससधान्यं च श्राद्धे पुनरुत्तथा । अन्नपानीयसहितं तस्मिंस्तीर्थे ददन्ति ये
इह पुण्यमूना यान्ति शिवलोकं न संशयः । तत्र तीर्थे तु यो भक्त्या शिवमुद्दिश्य भारत

भिक्षामात्रं तथाऽन्नं ये तेऽपि स्वर्यान्ति वै नराः ।
यन्त्रिणा यतिना चैव तत्र तीर्थनिवासिनाम् ॥ ३० ॥
अपि वालाग्रमात्रं हि दत्तं भवति चाऽक्षयम् ।
अग्निप्रवेशं यः कुर्याच्छुक्लतीर्थे समाहितः ॥ ३१ ॥

रागद्वेषविनिर्मुक्तो हृदि ध्यात्वा जनार्दनम् । सर्वकामसुसंपूर्णः स गच्छेद्वारुणं पुरम्
नरोगो न जरा तत्र यत्र देवोऽम्भसां पतिः । अनाशकं तु यः कुर्यात्तस्मिंस्तीर्थे युधिष्ठिर
अनिवर्तिका गतिस्तस्य रुद्रलोकादसंशयम् ।
अवशः स्ववशो वाऽपि जन्तुस्तत्क्षेत्रमण्डले ॥ ३४ ॥
मृतः स तु न सन्देहो रुद्रस्याऽनुचरो भवेत् ।
शुक्लतीर्थे तु यः कन्यां शक्त्या दद्यादलङ्कृताम् ॥ ३५ ॥
विधिना यो नृपश्रेष्ठ कुरुते वृषमोक्षणम् । तस्य यत्फलमुद्दिष्टं पुराणे रुद्रभाषितम्
तदहं संप्रवक्ष्यामि शृणुष्वैकमना नृप । यावन्तो रोमकूपाः स्युः सर्वाङ्गेषु पृथक्पृथक्
तावद्वर्षसहस्राणि रुद्रलोके महीयते । शुक्लतीर्थे तु यद्दत्तं ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ॥ ३८
वर्धते तद्गुणं तावद्दिनानि दश पञ्च च । शुक्लतीर्थे शुचिर्भूत्वा यः करोति प्रदक्षिणम्
पृथ्वीप्रदक्षिणा तेन कृता यत्तस्य तत्फलम् । शोभनं मिथुनं यस्तु रुद्रमुद्दिश्य पूजयेत्
सप्त जन्मानि तस्यैव वियोगो न भवेत्कचित् । एतत्ते कथितं राजन्संक्षेपेण फलं महत्
शुक्लतीर्थस्य यत्पुण्यं यथा देवाच्छ्रुतं मया ।
य इदं शृणुयाद्भक्त्या पुराणे विहितं फलम् ॥ ४२ ॥
स लभेन्नाऽत्र सन्देहः सत्यं सत्यं पुनः पुनः ।
पुत्रार्थी लभते पुत्रं धनार्थी लभते धनम् ॥ ४३ ॥
मोक्षार्थी लभते मोक्षं स्नानदानफलं महत् ॥ ४४ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
रेवाखण्डे शुक्लतीर्थमाहात्म्यवर्णनंनाम षट्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥

सप्तपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

हुङ्कारस्वामितीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

तस्यैवानन्तरं राजन्हुङ्कारतीर्थसमीपतः । वासुदेवस्य तीर्थं तु सर्वलोकेषु पूजितम्
तद्धि पुण्यं सुविख्यातं नर्मदायां पुरातनम् । तत्र हुङ्कारमात्रेण रेवा कोपाज्जगाम सा
यदा प्रभृति राजेन्द्र हुङ्कारेण गता सरित् ।
तदा प्रभृति स स्वामी हुङ्कार शब्दितो बुधैः ॥ ३ ॥
हुङ्कारतीर्थे यः स्नात्वा पश्यत्यच्युतम् । समुच्यतेऽन्तरं पापं सप्तजन्मकृतैरपि
संसारार्णवमग्नानां नराणां पापकर्मिणाम् । नैवोद्धर्ता जगन्नाथं विना नारायणं परः
सा जिह्वा या हरिं स्तौति तच्चित्तं यत्तदर्पितम् ।
तावेव केवलौ श्लाघ्यौ यौ तत्पूजाकरौ करौ ॥ ६ ॥
सर्वदा सर्वकार्येषु नास्ति तेषाममङ्गलम् । येषां हृदिस्थो भगवान्मङ्गलायतनो हरिः
यदन्यदेवताभक्त्या फलं प्राप्नोति मानवः । साष्टाङ्गप्रणिपातेन तत्फलं लभते हरेः
रेणुगुण्ठितगात्रस्य यावन्तोऽस्य रजःकणाः । तावद्वर्षसहस्राणि विष्णुलोके महीयते
सम्मार्जनाभ्युक्षणलेपनेन तथालये नश्यति सर्वपापम् ।
नार्चा नराणां परया न भक्त्या दृष्टा तु रेवा नरकस्तमस्य ॥ १० ॥
येनार्चितो भगवान्वासुदेवो जन्मार्जितं नश्यति तस्य पापम् ।
स याति लोकं गरुडध्वजस्य विधूतपापः सुरसङ्घपूज्यताम् ॥ ११ ॥
शाठ्येनाऽपि नमस्कारं प्रयुञ्जंश्चक्रपाणिनः ।
सप्तजन्मार्जितं पापं गच्छत्याशु न संशयः ॥ १२ ॥
पूजाया प्रीयतेऽत्यर्थं जपहोमैर्दिवाकरः । शङ्खचक्रगदापाणिः प्रणिपातेन तुष्यति ॥
भवजलधिगतानां द्वन्द्ववाताहतानां सुतदुहितृकलत्रत्राणभारार्दितानाम् ।

विषमविषयतोये मज्जतामप्लवानां भवति शरणमेको विष्णुपोतो नराणाम् ॥
हुङ्कारतीर्थेराजेन्द्र!शुभंवायदिवाऽशुभम् । यत्कृतंपुरुषव्याघ्र! तन्नश्यति नकर्हिचित्

इति श्रीस्कान्दे महापुराणएकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे रेवाखण्डे हुङ्कारस्वामितीर्थमाहात्म्यवर्णनंनाम सप्तपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

अष्टपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

सङ्गमेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेत्परं तीर्थं सङ्गमेश्वरमुत्तमम् । नर्मदा दक्षिणे कूले सर्वपापभयापहम् ॥
धनदस्तत्रविश्रान्तोमुहूर्त्तं नृपसत्तम । पितृलोकात्समायातः कैलासं धरणीधरम्

प्रत्ययार्थं नृपश्रेष्ठ! ह्यद्यापि धरणीतले ।
कृष्णवर्णा हि पाषाणा दृश्यन्ते स्फटिकोज्ज्वलाः ॥ ३ ॥
विन्ध्यनिर्झरनिष्क्रान्ता पुण्यतोया सरिद्वरा ।
प्रविष्टा नर्मदातोये सर्वपापप्रणाशने ॥ ४ ॥

सङ्गमे तत्र यः स्नात्वा पूजयेत्सङ्गमेश्वरम् । अश्वमेधस्ययज्ञस्यफलंप्राप्नोत्यसंशयम्
घण्टापताकावितनं यो ददेत्सङ्गमेश्वरे । हंसयुक्तविमानस्थो दिव्यस्त्रीशतसम्वृतः
स रुद्रपदमाप्नोति रुद्रस्यानुचरो भवेत् । दधिभक्तेन देवस्ययःकुर्य्याल्लिङ्गपूरणम्

सिक्थसङ्ख्यं शिवे लोके स वसेत्कालमीप्सितम् ।
श्रीफलैः पूरयेल्लिङ्गं निःस्वो भूत्वा भवस्य तु ॥ ८ ॥
सोऽपि तत्फलमाप्नोति गतः स्वर्गं नरेश्वर !।
अक्षया सन्ततिस्तस्य जायते सप्तजन्मसु ॥ ६ ॥

स्नपनं देवदेवस्य दध्ना मधुघृतेन वा । यः करोति विधानेन तस्य पुण्यफलं शृणु

घृतक्षीरवहा नद्यो यत्र वृक्षा मधुस्रवा । तत्र ते मानवा यान्ति सुप्रसन्ने महेश्वरे
पत्रं पुष्पं फलं तोयं यस्तु दद्यान्महेश्वरे । तत्सर्वं सप्तजन्मानि ह्यक्षयं फलमश्नुते
सर्वेषामेव पात्राणां महापात्रं महेश्वरः । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन पूजनीयो महेश्वरः ॥

ब्रह्मचर्यस्थितो नित्यं यस्तु पूजयते शिवम् ।
इह जीवन्स देवेशो मृतो गच्छेदनामयम् ॥ १४ ॥
शिवे ■ पूजिते पार्थ यत्फलं प्राप्यते बुधैः ।
योगीन्द्रे चैव तत्पार्थ पूजिते लभते फलम् ॥ १५ ॥
ते धन्यास्ते महात्मानस्तेषां जन्म सुजीवितम् ।
येषां गृहेषु भुञ्जन्ति शिवभक्तिरता नराः ॥ १६ ॥

सन्निरुध्येन्द्रियग्रामं यत्रयत्र वसेन्मुनिः । तत्रतत्र कुरुक्षेत्रं नैमिषं पुष्कराणि च ॥
यत्फलं वेदविदुषि भोजिते शतसङ्ख्यया । तत्फलं जायते पार्थ एकेन शिवयोगिना

यत्र भुञ्जति भस्माङ्गी मूर्खो वा यदि पण्डितः ।
तत्र भुञ्जति देवेशः सपत्नीको वृषध्वजः ॥ १९ ॥
विप्राणां वेदविदुषां कोटिं सम्भोज्य यत्फलम् ।
भिक्षामात्रप्रदानेन तत्फलं शिवयोगिनाम् ॥ २० ॥

सङ्गमेश्वरमासाद्य प्राणत्यागं करोति यः । न तस्य पुनरावृत्तिः शिवलोकात्कदाचन

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे रेवाखण्डे सङ्गमेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णननामाऽष्टपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

एकोनषष्ट्युत्तरशततमोऽध्यायः

अनरकेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेन्महाराज तीर्थं परमपावनम् । नर्मदायां सुपुण्याप्रं सिद्धंह्यनरकेश्वरम्

तस्मिंस्तीर्थेनरःस्नात्वापापकर्माऽपिभारत । नपश्यतिमहाघोरंनरकद्वारसञ्ज्ञिकम्

युधिष्ठिर उवाच

शुभाशुभफलैस्तात भुक्तभोगा नरास्त्विह । जायन्तेलक्षणैर्यैस्तु तानिमेवद सत्तम

यथा निर्गच्छते जीवस्त्यक्त्वा देहं न पश्यति ।

तथा गच्छन्पुनर्देहं पञ्चभूतसमन्वितः ॥ ४ ॥

त्वगस्थिमांसमेदोऽसृक्केशस्नायुशतैः सह ।

विण्मूत्ररेतःसङ्घाते का सञ्ज्ञा जायते नृणाम् ॥ ५ ॥

एवमुक्तः स मार्कण्डः कथयामासयोगवित् । ध्यात्वासनातनंसर्वंदेवदेवंमहेश्वरम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

शृणु पार्थ! महाप्रश्नं कथयामि यथाश्रुतम् ।

सकाशाद् ब्रह्मणः पूर्वमृषिदेवसमागमे ॥ ७ ॥

गुरुरात्मवतां शास्ता राजा शास्ता दुरात्मनाम् ।

इह प्रच्छन्नपापानां शास्ता वैवस्वतो यमः ॥ ८ ॥

अचीर्णप्रायश्चित्तानां यमलोके ह्यनेकधा ।

यातनाभिर्वियुक्तानामनेकां जीवसन्ततिम् ॥ ६ ॥

गत्वामनुष्यभावे तु पापचिह्नाभवन्ति ते । तत्तेऽहंसम्प्रवक्ष्यामिशृणुष्वैकमनानृप

सहित्वा यातनां सर्वां गत्वा वैवस्वतक्षयम् ।

तिस्तीर्णयातना ये तु लोकमायान्ति चिह्निताः ॥ ११ ॥

गद्गदोऽनृतवादी स्यान्मूकश्चैव गवानृते । ब्रह्महा जायते कुष्ठी स्याधदन्तस्तु मद्यपः
कुनखी स्वर्णहरणाद्दुश्चर्मा गुरुतल्पगः । संयोगी हीनयोनिः स्याद्दरिद्रोऽदत्तदानतः
ग्रामशूकरतां याति ह्ययाज्ययाजको नृप ।
स्वरो वै बहुयाजी स्याच्छ्वाऽनिमन्त्रितभोजनात् ॥ १४ ॥
अपरीक्षितभोजी स्याद्वानरो विजने वने । पिनद्धकोऽयमार्जारस्त्वग्धोतः कृस्रदाहतः
अपिधाय च प्रयच्छेत बलीवर्दो भवेद्धि सः ।
अन्न पर्युषितं विप्रे ददानः कर्णचिता भजेत् ॥ १६ ॥
मात्सर्याच्च जात्यन्धो जन्मान्धः पुस्तकं हरन् ।
फलान्याहरतोऽपत्यं म्रियते नाऽत्र संशयः ॥ १७ ॥
मृतो धानरत्नाया तितन्मुक्तोऽपगलाश्वान् । मद्यस्यामक्ष्यस्तानिहतपन्यो भवेन्नरः
हरत्यन्न भवेद्वोधा गन्दः पयनाशनः । भ्रातृजागमनाद्राजन्भवेन्मदपिशाचकः ॥
धानकोजलहन्ता च धान्यहर्त्ता च मूषकः । अप्राप्तयौवनागच्छन्भवेत्सर्प इति श्रुतिः
गुरुदाराभिलाषी च कृकलासो भवेच्चिरम् ।
जलप्रस्रवणं यस्तु भिन्द्यान्मत्स्यो भवेन्नरः ॥ २१ ॥
अविक्रय्यानि विक्रीयविक्रेताक्षो भवेन्नर । अयोनिगो वृको हि स्यादुलूकः क्रयवञ्चनात्
मृतस्यैकादशाहे तु भुञ्जानः श्वोपजायते । प्रतिश्रुत्य द्विजायार्थमदत्त्वा जम्बुको भवेत्
राजागमाद्वंशदुष्टनम्रगोधिद्रुमाहकः । परिवादी द्विजातीनां लभते कच्छपीं तनुम्
प्रवेद्रुधत्को गजन्योनि चाण्डालस्य द्विजनाम् ।
दुर्भग कल्यविक्रेता वृश्चिको वृषलीपतिः ॥ २५ ॥
मार्जारोऽग्नि पदा स्पृष्ट्वा रोगवान्परमांसभुक् ।
मातृयागमनात्षण्ढो दुर्गन्धश्च सुगन्धहृत् ॥ २६ ॥
ग्रामभङ्गा दिवाकार्निर्दग्धको गर्दभो भवेत् ।
कृपणश्चैव स्यान्मार्जारो मरणे व्यास एव च ॥ २७ ॥
स एव दृश्यते राजन्व्यक्ताशात्परमर्मणाम् । यद्यातद्वापि पापकर्यस्त्यल्पं वायदिया चद्

कृत्वाचे योनिमाप्नोतितैरर्थैर्नात्रसंशयः। एवमादीनिधान्यानिचिह्नानिनृपसत्तम
स्वकर्मचिहितान्येवदृश्यन्ते यैस्तु मानवाः। ततोजन्मततोमृत्युःसर्वजन्तुषु भारत
जायतेनाऽत्रसन्देहः सर्वाभूतेशुभाऽशुभे। स्त्रीपुंसोःसम्प्रयोगेणविशुद्धेशुक्रशोणिते
पञ्चभूतसमोपेतः सपष्ठः परमेश्वरः। इन्द्रियाणिमनः प्राणाः ज्ञानमायुःसुखंधृतिः
धारणं प्रेरणं दुःखमिच्छाहङ्कार एव च। प्रयत्न आकृतिर्वर्णः स्वद्वेषौ भवाभवौ

तस्येदमात्मनः सर्वमनादेरादिमिच्छतः।
प्रथमे मासि स क्लेदभूतो धातुविमूर्च्छितः॥ ३४॥
मास्यर्बुदं द्वितीये तु तृतीये चेन्द्रियैर्युतः।
आकाशाल्लाघवं सौक्ष्म्यं शब्दं श्रोत्रबलादिकम्॥
वायोस्तु स्पर्शनं चेष्टां दहनं रौक्ष्यमेव च॥ ३५॥
पित्तात्तु दर्शनं पक्तिमौष्ण्यं रूपं प्रकाशनम्।
सलिलाद्रसनां शैत्यं स्नेहं क्लेदं समार्दवम्॥ ३६॥

भूमेर्गन्धं तथा घ्राणं गौरवं मूर्त्तिमेव च। आत्मागृह्णात्यजःपूर्वंतृतीयेस्पन्दतेचसः

दौर्हृदस्याऽप्रदानेन गर्भो दोषमवाप्नुयात्।
वैरूप्यं मरणं वापि तस्मात्कार्यं प्रियं स्त्रियाः॥ ३८॥
स्थैर्यं चतुर्थे त्वङ्गानां पञ्चमे शोणितोद्भवः।
षष्ठे बलं च वर्णश्च नखरोम्णां च सम्भवः॥ ३९॥

मनसा चेतनायुक्तो नखरोमशतावृतः। सप्तमे चाऽष्टमेचैव त्वचावान्स्मृतिवानपि
पुनर्गर्भं पुनर्धात्रीमेनस्तस्य प्रधावति। अष्टमे मास्यतो गर्भो जातःप्राणैर्वियुज्यते

नवमे दशमे वाऽपि प्रबलैः सूतिमारुतैः।
निर्गच्छते बाण इव यन्त्रच्छिद्रेण सज्वरः॥ ४२॥

शरीरावयवैर्युक्तो ह्यङ्गप्रत्यङ्गसंयुतः। अष्टोत्तरं मर्मशतं तत्रास्था तु शतत्रयम्॥

सप्त शिरःकपालानि विहितानि स्वयम्भुवा।
तिस्रः कोट्योऽर्द्धकोटी च रोम्णामङ्गेषु भारत!॥ ४४॥

द्वासप्ततिसहस्राणि हृदयादभिनिसृता ।
हितानाम हि ता नाड्यस्तासां मध्ये शशिप्रभा ॥ ४५ ॥
एवं प्रवर्त्तते चक्रं भूतग्रामे चतुर्विधे । उत्पत्तिश्च विनाशश्च भवत सर्वदेहिनाम् ॥
गतिरूर्ध्वाच धर्मेण ह्यधर्मेण त्वधोगति । जायते सर्ववर्णानां स्वधर्मचलनान्नृप
देवत्वे मानवत्वे च दानभोगादिका क्रिया ।
दृश्यन्ते या महाराज ! तत्सर्वं कर्मजं फलम् ॥ ४८ ॥
स्वकर्मविहितेघोरे कामक्रोधार्जिते शुभे । निमज्जेन्नरके घोरे यस्योत्तारोनविद्यते
उत्तारणायजन्तूनां नमन्तातदस्थितम् । प्रथमंतन्महातीर्थं नरकेश्वरमुत्तमम् ॥
नरकापहं महापुण्यं महापातकनाशनम् । तत्तीर्थं सर्वतीर्थानामुत्तमं भुविदुर्लभम्
तत्र तीर्थे तु य स्नात्वापूजयेत महेश्वरम् । महापातकयुक्तोऽपि नरकं नैव पश्यति
तत्र तीर्थे तु यो दद्यात्तु वैतरणींशुभाम् । स मुच्यते सुखेनैव वैतरण्यानसंशय

युधिष्ठिर उवाच

यमद्वारमहाघोरख्याता वैतरणी नदी । किं रूपा क्रियमाणासाकथंसायहतिद्विज
कथं तस्याः प्रमुच्यन्ते केषा धाराऽस्तु सन्ततम् ।
केषां तु साऽनुकूला सा ह्येतद्विस्तरतो वद ॥ ५५ ॥

श्रीमार्कण्डेय उवाच

धर्मपुत्र महाबाहो शृणु सर्वं यथोदितम् । या सावैतरणीनाम यमद्वारेमहासरित्
अगाधा पाररहिता दृष्टमात्रा भयावहा । पूयशोणिततोयासामांसकर्दमनिर्मिता
सत्तोय भ्रमते तूर्णं तापीमध्ये घृतं यथा । कृमिभिः सङ्कुलं पूयं वज्रतुण्डैरयोमुखैः
शिशुमारैश्चमकरैर्वज्रकच्छपैः संयुते । अन्यैश्च जलजीवैः सा सुहिंस्रैर्मर्मभेदिभिः
तपन्ति द्वादशादित्याः प्रलयान्त इवोत्कटाः ।
पतन्ति तत्र वै मर्त्या क्रन्दन्तो भृशदारुणम् ॥ ६० ॥
हा भ्रात पुत्र हा मात प्रजल्पन्तिमुहुर्मुहुः ।
असिपत्रवने घोरे पतन्त योऽमिरक्षति ॥ ६१ ॥

प्रतरन्ति निमज्जन्ति ग्लानिं गच्छन्ति जन्तवः ।
चतुर्विधैः प्राणिगणैर्दृष्ट्या सा महानदी ॥ ६२ ॥
तरन्ति तस्यां सद्दानैरन्यथानुपतन्ति ते । मातरं ये न मन्यन्ते ह्याचार्यं गुरुमेव च
अवजानन्ति मूढा ये तेषां वासस्तु सन्ततम् ।
पतिव्रतां साधुशीलामूढां धर्म्मेषु निश्चलाम् ॥ ६४ ॥
परित्यजन्ति ये पापाः सन्ततं तु वसन्ति ते ।
विश्वासप्रतिपन्नानां स्वामिमित्रतपस्विनाम् ॥ ६५ ॥
स्त्रीबालवृद्धदीनानांच्छिद्रमन्वेषयन्ति ये । पच्यन्तेतत्रमध्येथैक्रन्दमानाःसुपापिनः
श्रान्तं बुभुक्षितं विप्रंयोविघ्नयतिदुर्मतिः । कृमिभिर्भक्ष्यते तत्र यावत्कल्पशतत्रयम्
ब्राह्मणाय प्रतिश्रुत्ययोदानंनप्रयच्छति । आहूयनास्तियोब्रूतेतस्यवासस्तुसन्ततम्
अग्निदोगरदश्चैव राजगामी च पैशुनी । कथाभङ्गकरश्चैव कूटसाक्षी च मद्यपः ॥
यज्ञविध्वंसकश्चैव स्वयंदत्तापहारकः । सुक्षेत्रसेतुभेदी च परदारप्रधर्षकः ॥ ७० ॥
ब्राह्मणोरसविक्रेता वृषलीपतिरेव च । गोकुलस्यतृषार्त्तस्य पालीभेदं करोति यः
कन्याभिदूषकश्चैव दानंदत्त्वानु तापकः । शूद्रस्तुकपिलापायीब्राह्मणोमांसभोजनी
एते वसन्ति सततं मा विचारं कृथा नृप !। सानुकूलाभवेद्येन तच्छृणुष्व नराधिप
अयने विषुवे चैव व्यतीपाते दिनक्षये । अन्येषु पुण्यकालेषु दीयते दानमुत्तमम् ॥
कृष्णां वा पाटलां वापि कुर्याद्वैतरणीं शुभाम्
स्वर्णशृङ्गीं रूप्यखुरां कांस्यपात्रस्य दोहिनीम् ॥ ७५ ॥
कृष्णवस्त्रयुगाच्छन्नां सप्तधान्यसमन्विताम् ।
कुर्यात्सद्द्रोणशिखर आसीनां ताम्रभाजने ॥ ७६ ॥
यमं हैमं प्रकुर्वीत लोहदण्डसमन्वितम् । इक्षुदण्डमयं बद्ध्वा ह्युडुपं पट्टबन्धनैः
उडुपोपरितांधेनुं सूर्यदेहसमुद्भवाम् । कृत्वाप्रकल्पयेद्विद्वांश्छत्रोपानद्युगान्विताम्
अङ्गुलीयकवासांसि ब्राह्मणाय निवेदयेत् ।
इममुच्चारयेन्मन्त्रं सङ्गृह्याऽस्याश्च पुच्छकम् ॥ ७९ ॥

ॐयमद्वारे महाघोरे या सा वैतरणी नदी । तत्तु कामोदद्‌माम्येनातुभ्यं वैतरणि नम

॥ इत्यधिवासनमन्त्र ॥

गावो मे चाग्रत सन्तु गावो मे सन्तु पृष्ठत ।

गावो मे हृदये सन्तु गवा मध्ये वसाम्यहम् ॥ ८२ ॥

ॐ विष्णुरूपद्विजश्रेष्ठभूदेवपङ्क्तिपावन । सदक्षिणामया दत्ता तुभ्यं वैतरणि नम

॥ इति दानमन्त्र ॥

ब्राह्मण धर्मराज च धेनु वैतरणीं शिवाम् । सर्वंप्रदक्षिणीकृत्य ब्राह्मणायभिवेदयेत्

पुच्छ सङ्गृह्य सुरभेरग्रे कृत्वा द्विजं तत ॥ ८४ ॥

धेनुके त्व प्रतीक्षस्व यमद्वारे महाभय । उत्तितीर्षु रह धेनो वैतरण्यै नमोऽस्तु

॥ इत्यनुव्रजमन्त्र ॥

अनुव्रजेत गच्छन्तं सर्वं तस्य गृह नयेत् । एवङ्कृते महीपाल सरित्स्यात्सुखवाहिनी

तारयेत तया धेन्वा सा सरिज्जलवाहिनी ।

सर्वान्कामानवाप्नोति ये दिव्या ये च मानुषा ॥ ८७ ॥

रोगीरोगाद्विमुक्त स्याच्छाश्वति परमापद ।

स्वस्थ सहस्रगुणितमातुरे शतसम्मितम् ॥ ८८ ॥

मृतस्यैव तु यद्दान परोक्ष तत्सम स्मृतम् । स्वहस्तेन ततो देयम्मृते क क स्य दास्यति

इति मत्वा महाराज स्वदत्त स्यान्महाफलम् ।

इत्येवमुक्त तव धर्मसूनो दान मया वैतरणीसमुत्थम् ।

शृणोति भक्त्या पठतीह सम्यक्स याति विष्णो पदमप्रमेयम् ॥ ९० ।

श्रीमार्कण्डेय उवाच

प्राप्त चाश्वयुज मासि तस्मिन्कृष्णा चतुर्दशी ।

स्नात्वा कृत्वा तत श्राद्ध सम्पूज्य च महेश्वरम् ॥ ९१ ॥

पितृभ्यो दीयते दान भक्तिश्रद्धासमन्विते ।

पश्चाज्जागरण कुर्यात्सत्कथाश्रवणादिभि ॥ ९२ ॥

ततः प्रभातसमये स्नात्वा वै नर्मदाजले। तर्पणंविधिवत्कृत्वा पितॄणां दैवपूर्वकम्
सौवर्णं घृतसंयुक्तं दीपं दद्याद् द्विजातये।
पश्चात्सम्भोजयेद्विप्रान्स्वयं चैव विमत्सरः ॥ ९४ ॥
एवंकृतेनरश्रेष्ठ! न जन्तुर्नरकं व्रजेत् । अवश्यमेव मनुजैर्द्रष्टव्या नारकी स्थितिः ॥
अनेन विधिना कृत्वा नपश्येन्नरकान्नरः । तत्र तीर्थमृतानां तु नराणांविधिनान्नृप
मन्वन्तरंशिवेलोकेवासोभवतिदुर्लभे । विमानेनाऽर्कवर्णेनकिङ्किणीशतशोभिना
स गच्छति महाभाग! सेव्यमानोऽप्सरोगणैः।
भुनक्ति विविधान्भोगानुक्तकालं न संशयः ॥ ९८ ॥
पूर्णे चैव ततः काल इह मानुष्यतां गतः।
सर्वव्याधिविनिर्मुक्तो जीवेच्च शरदां शतम् ॥ ९९ ॥
प्राप्यचाश्वयुजेमासिकृष्णपक्षेचतुर्दशीम् । अहोरात्रोषितोभूत्वापूजयित्वामहेश्वरम्
महापातकयुक्तोऽपि मुच्यते नाऽत्र संशयः ॥ १०० ॥
अष्टाविंशतिकोट्योवैनरकाणांयुधिष्ठिर !। विमुक्तानरकैर्दुःखैःशिवलोकंव्रजन्तिते
तत्र भुक्त्वा महाभोगान्दिव्यैश्वर्यसमन्वितान्।
लभन्ते मानुषं जन्म दुर्लभं भुवि मानवाः ॥ १०२ ॥
इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायांपञ्चमेऽवन्तीखण्डे
रेवाखण्डेऽनरकेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनंनामैकोनषष्ट्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥

षष्ठ्युत्तरशततमोऽध्यायः

मोक्षतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेत्पाण्डुपुत्र मोक्षतीर्थमनुत्तमम् । सेवितं देवगन्धर्वैर्मुनिभिश्च तपोधनैः

बहवस्तन्न जानन्ति विष्णुमायाविमोहिताः ।

यत्र सिद्धा महाभागा ऋषयः सतपोधनाः ॥ २ ॥

पुलस्त्यः पुलहो विद्वान्क्रतुश्चैव महामतिः । प्राचेतसो वसिष्ठश्च दक्षो नारदपर्वत

एते चाऽन्ये महाभागा सप्तसाहस्रसङ्ख्यकाः ।

मोक्षं गता सह मुनैस्तत्तीर्थं तेन मोक्षदम् ॥ ४ ॥

तत्र प्रवाहमध्ये तु पतिता तमसा नदी । तत्र तत्सङ्गमं तीर्थं सर्वपापक्षयङ्करम् ॥

ऋग्यजुःसामसञ्ज्ञानामभ्यस्तानां तु यत्फलम् ।

सम्यग्जप्त्वा तु विधिना गायत्रीं तत्र तल्लभेत् ॥ ६ ॥

तत्र दत्तं हुतं जप्तं तीर्थसेवार्जितं फलम् । सर्वमक्षयतां याति मोक्षसाधनमुत्तमम्

तत्र तीर्थे मृतानां तु सन्न्यासेन द्विजन्मनाम् ।

अनिवर्तिका गतिस्तेषां मोक्षतीर्थप्रभावतः ॥ ८ ॥

एतत्ते विधिवद्दिष्टं संक्षेपेण मयाऽनघ । व्युष्टिस्तीर्थस्य महती पुराणे याऽभिधीयते

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे रेवाखण्डे मोक्षतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम षष्ठ्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १६० ॥

एकपञ्चाशदुत्तरशततमोऽध्यायः

सर्पतीर्थ माहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेन्महाराज सर्पतीर्थमनुत्तमम् ।
यत्र सिद्धा महासर्पास्तपस्तप्त्वा युधिष्ठिर ॥ १ ॥
वासुकिस्तक्षकोघोरः सर्प ऐरावतस्तथा । कालियश्चमहाभागःकर्कोटकधनञ्जयौ
शङ्खचूडो महातेजा धृतराष्ट्रो वृकोदरः । कुलिको वामनश्चैवतेषां ये पुत्रपौत्रिणः
तत्र तीर्थे महापुण्ये तपस्तप्त्वा सुदुष्करम् ।
भुञ्जन्ति विविधान्भोगान्क्रीडन्ति च यथासुखम् ॥ ४ ॥
तत्र तीर्थे तुयः स्नात्वातर्पयेत्पितृदेवताः । वाजपेयफलं तस्य पुरा प्रोवाच शङ्करः
स्नातानांसर्पतीर्थेतुनराणां भुविभारत । सर्पवृश्चिकजातिभ्योन भयंविद्यतेक्वचित्
मृतो भोगवतीं गत्वापूज्यमानोमहोरगैः । नागकन्यापरिवृतो महाभोगपतिर्भवेत्
मार्गशीर्षस्य मासस्य कृष्णपक्षे च याऽष्टमी ।
सोपवासः शुचिर्भूत्वा लिङ्गं सम्पूजयेत्तिलैः ॥
यथाविभवसारेण गन्धपुष्पैः समर्चयेत् ॥ ८ ॥
एवं विधाय विधिवत्प्रणिपत्यक्षमापयेत् । तस्य यत्फलमुद्दिष्टं तच्छृणुष्वनरेश्वर
तिलास्तत्र च यत्सङ्ख्याः पत्रपुष्पफलानि च ।
तावत्स्वर्गपुरे राजन्मोदते कालमीप्सितम् ॥ १० ॥
ततः स्वर्गात्परिभ्रष्टो जायते विमले कुले । सुरूपः सुभगश्चैवधनकोटिपतिर्भवेत्॥
इति श्रीस्कान्दे महापुराणे एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
रेवाखण्डे सर्पतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नामैकपञ्चाशदुत्तरशततमोऽध्यायः॥ १५१ ॥

द्विषष्ट्युत्तरशततमोऽध्यायः

गोपेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

गोपेश्वरं ततो गच्छेत्सर्वक्षेत्रादनन्तरम् । यत्र स्नानेन चैकेन मुच्यन्ते,पातकैर्नरा
तत्रतीर्थेतुयः स्नात्वातु रुते प्राणसंक्षयम् । सगच्छेत्चद्दियुक्तोऽपिपापेनशिवमंदिरम्
तत्र तीर्थे तुयः स्नात्वा पूजयेद्दैषर्मीश्वरम् । मुच्यतेसर्वपापैश्च रुद्रलोकंसगच्छति

क्रीडित्वा च यथाकाम रुद्रलोके महातपाः ।
इह मानुष्यतां प्राप्य राजा भवति धार्मिकः ॥ ४ ॥

हस्त्यश्वरथसम्पन्नोदासीदाससमन्वित । पूज्यमानो नरेन्द्रैश्च जीवेद्वर्षशतंसुखी

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे रेवाखण्डे गोपेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम द्विषष्ट्युत्तरशततमोऽध्यायः॥१६२॥

त्रिषष्ट्युत्तरशततमोऽध्यायः

नागतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततोगच्छेन्महाराज नागतीर्थमनुत्तमम् । आश्विनस्यसितेपक्षेपञ्चम्यानियतःशुचि

रात्रौ जागरणं कृत्वा गन्धधूपनिवेदनैः ।
प्रभाते विमले स्नात्वा श्राद्धं कृत्वा यथाविधि ॥ २ ॥
मुच्यते सर्वपापेभ्यो नाऽत्र कार्या विचारणा ।
तत्र तीर्थे तु यो राजन्प्राणत्यागं करिष्यति ॥ ३ ॥

अनिवर्त्तिका गतिस्तस्य प्रोवाचेति शिवः स्वयम् ॥ ४ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे रेवाखण्डे नागतीर्थमाहात्म्यवर्णनंनाम त्रिषष्ठ्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १६३ ॥

चतुःषष्ठ्युत्तरशततमोऽध्यायः

साम्बौरेश्वरतीमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेन्महाराज! साम्बौरं तीर्थमुत्तमम् ।
यत्र सन्निहितो भानुः पूज्यमानः सुरासुरैः ॥ १ ॥
तत्रयेपङ्गुतांप्राप्ताःशीर्णघ्राणनखानराः । दद्रुमण्डलभिन्नाङ्गा मक्षिकाकृमिसङ्कुलाः
मातापितृभ्यां रहिता भ्रातृभार्याविवर्जिताः ।
अनाथा विकला व्यङ्गा मग्ना ये दुःखसागरे ॥ ३ ॥
तेषां नाथो जगद्योनिर्नर्मदातटमाश्रितः ।
साम्बौरनाथो लोकानामार्त्तिहा दुःखनाशनः ॥ ४ ॥
तत्र तीर्थेतुयः स्नात्वामासमेकंनिरन्तरम् । पूजयेद्भास्करंदेवं तस्यपुण्यफलं शृणु ;
यत्फलं चोत्तरे पार्थ! तथावै पूर्वसागरे । दक्षिणेपश्चिमेस्नात्वातत्रतीर्थेतुतत्फलम्
कौमारेयौवनेपापंवार्द्धकेयच्चसञ्चितम् । तत्प्रणश्यतिसाम्बौरेस्नानमात्रान्नसंशयः
न व्याधिर्नैव दारिद्र्यं न चैवेष्टवियोजनम् ।
सप्तजन्मानि राजेन्द्र! साम्बौरपरिसेवनात् ॥ ८ ॥
सप्तम्यामुपवासेन तद्दिनेचाप्युपोषिते । सतत्फलमवाप्नोति तत्रस्नात्वानसंशयः
रक्तचन्दनमिश्रेण यदर्घ्येण फलं स्मृतम् ।
तत्र तीर्थे नृपश्रेष्ठ! स्नात्वा तत्फलमाप्नुयात् ॥ १० ॥

नर्मदामखिलं रम्यं सर्वपातकनाशनम् ।
निरीक्षितं विशेषेण साम्बीरेण महात्मना ॥ ११ ॥
ते धन्यास्ते महात्मानस्तेषां जन्म सुजीवितम् ।
स्नात्वा पश्यन्ति देवेश साम्बीरेश्वरमुत्तमम् ॥ १२ ॥
सूर्यग्रहे पठेत्तावद्यावदाभूतसम्प्लवम् ॥ १३ ॥
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे रेवाखण्डे साम्बीरेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम चतुःषष्ट्युत्तरशततमोऽध्यायः

पञ्चषष्ट्युत्तरशततमोऽध्यायः

सिद्धेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

नर्मदादक्षिणे कूले सिद्धेश्वरमितिश्रुतम् ।
तीर्थं परं महाराज सिद्धैः कृतमिति प्रभो ॥ १ ॥
तत्र तीर्थं महापुण्यं सर्वतीर्थेषु पावनम् । नर्मदायां महाराज दक्षिणं कूलमाश्रितम्
तत्र तीर्थे नरः स्नात्वा तर्पयेत्पितृदेवताः । श्राद्धं तत्रैव यो दद्यात्पितॄनुद्दिश्य भारत
तृप्यन्ति पितरस्तस्य द्वादशाब्दान्न संशयः ।
तत्र तीर्थे तु यो भक्त्या स्नात्वा पूजयते शिवम् ॥ ४ ॥
रात्रौ जागरणं कृत्वा पठेत्पौराणिकीं कथाम् ।
ततः प्रभाते विमले स्नानं कुर्याद्यथाविधि ॥ ५ ॥
दीप्यते गिरिजाकान्तं स गच्छेत्परमां गतिम् ।
पुरा सिद्धा महाभागा कपिलाद्या महर्षयः ॥ ६ ॥
जपन्तश्च परं ब्रह्म योगसिद्धा महाव्रता ।

सिद्धिं ते परमां प्राप्ता नर्मदायाः प्रभावतः ॥ ७ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे रेवाखण्डे सिद्धेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनंनाम पञ्चषष्ट्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥

षट्षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

सिद्धेश्वरीदेवीतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततः सिद्धेश्वरीदेवीवैष्णवीपापनाशिनी । आनन्दंपरमं प्राप्तादृष्ट्वास्थानंसुशोभनम्

तत्रतीर्थे नरः स्नात्वापूजयेत्पितृदेवताः । देवींपश्यतियोभक्त्यामुच्यतेसर्वपातकैः

मृतवत्सा तु या नारी वन्ध्या स्त्री जननी तथा ।
पुत्रं सा लभते नारी शीलवन्तं गुणान्वितम् ॥ ३ ॥

तत्र तीर्थे तु यः स्नात्वा पश्येद्देवीं सुभक्तितः ।
अष्टम्यां वा चतुर्दश्यां सर्वकालेऽथवा नृप !॥ ४ ॥

सङ्गमे तु ततः स्नातः नारीवापुरुषोऽपि वा । पुत्रंधनंतथादेवीददातिपरितोषिता

गोत्ररक्षां प्रकुरुते दृष्टा देवी सुपूजिता । प्रजां च पाति सततंपूज्यमानान संशयः

नवम्यां च महाराज! स्नात्वा देवीमुपोषितः ।
पूजयेत्परया भक्त्या श्रद्धापूतेन चेतसा ॥ ७ ॥

स गच्छेत्परमं लोकं यः सुरैरपि दुर्लभः ॥ ८ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे रेवाखण्डे सिद्धेश्वरीदेव्यास्तीर्थमाहात्म्यवर्णनंनामषट्षष्ट्युत्तरशततमोऽध्यायः

सप्तषष्ट्युत्तरशततमोऽध्यायः

मार्कण्डेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

नर्मदादक्षिणे कूले ह्यचिह्नेनोपलक्षितम् । तीर्थमेतन्ममाऽऽख्याहि सम्भवश्च महा

श्रीमार्कण्डेय उवाच

पुराकृतयुगस्यादौ दक्षिणे गिरिमुत्तमम् । विन्ध्यसर्वगुणोपेतं नियतो नियता

ऋषिसङ्घैः कृतातिथ्यो दण्डके न्यवसं चिरम् ।

उषित्वा सुचिरं कालं वर्षाणामयुतं सुखी ॥ ३ ॥

तान्सर्वान्समनुप्राप्य शिष्यैरनुगतस्ततः । निवृत्तः सुमहाभाग नर्मदाकूलमा

पुण्यं च रमणीयं च सर्वपापविनाशनम् । कृत्वाऽहमास्पदं तत्र द्विजसङ्घसमा

ब्रह्मचारीभिराकीर्णं गार्हस्थ्ये सुप्रतिष्ठिते ।

वानप्रस्थैश्च यतिभिर्यताहारैर्यतात्मभिः ॥ ६ ॥

तपस्विभिर्महाभागैः कामक्रोधविवर्जितैः । तत्राऽहं वर्षमयुतं तपः कृत्वा सुदारु

आराध्य वासुदेवं प्रभुं कर्तारमीश्वरम् । उग्रतपोभिर्नियमैर्नर्मदाकूलमाश्रित

ततस्तौ वरदौ देवौ समायातौ युधिष्ठिर ।

प्रत्यक्षौ भास्करौ राजन्सुभार्याभ्यां विभूषितौ ॥ ९ ॥

प्रणम्याऽहं ततो देवौ भक्तियुक्तो यथोऽब्रुवम् ।

भवन्तौ प्रार्थयामि स्म वराहौ वरदौ शिवौ ॥ १० ॥

धर्मस्थितिं महाभागौ भक्तिं वाऽनुत्तमां युवाम् ।

अजरः व्याधिरहितः पञ्चविंशतिवर्षवत् ॥

अस्मिन्स्थाने सदा स्थैर्यं सह देवैरसंशयम् ॥ ११ ॥

एवमुक्तौ मया पार्थ तौ देवौ हरिशङ्करौ ।

मामूचतुः प्रहृष्टौ तौ निवासार्थं युधिष्ठिर !॥ १२ ॥

देवावूचतुः

अस्मिन्स्थाने स्थितौ विद्धि सह देवैः सवासवैः ।
एवमुक्त्वा ततो देवौ तत्रैवाऽन्तरधीयताम् ॥ १३ ॥
हंचस्थापयित्वातौशङ्करंकृष्णमव्ययम् । कृतकृत्यस्ततोजातःसम्पूज्यसुसमाहितः
तस्मिंस्तीर्थे नरः स्नात्वा पूजयेत्परमेश्वरम् ।
मार्कण्डेश्वरनाम्ना वै विष्णुं त्रिभुवनेश्वरम् ॥ १५ ॥
न गच्छेत्परमंस्थानं वैष्णवं शैवमेव च । घृतेन पयसावाऽथ दध्नाच मधुना तथा
ार्मदेनोदकेनाऽथ गन्धधूपैः सुशोभनैः । पुष्पोपहारैश्च तथा नैवेद्यैर्नियतात्मवान्
एवं विष्णोः प्रकुर्वीतजागरंभक्तितत्परः । स्नानादीनितथाराजन्प्रयतःशुचिमानसः
ज्येष्ठे मासि सिते पक्षे चतुर्दश्यामुपोषितः । द्वादश्यां कारयेद्देवपूजनं वैष्णवोनरः
एवं कृत्वाचतुर्दश्यामेकादश्यां नरोत्तम !। वैष्णवंलोकमाप्नोतिविष्णुतुल्योभवेन्नरः
माहेश्वरे च राजेन्द्र! गणवन्मोदते पुरे । श्राद्धं च कुरुते तत्र पितॄनुद्दिश्य सुस्थिरः
तस्य ते ह्यक्षयां तृप्तिं प्राप्नुवन्ति न संशयः ।
नर्मदायां द्विजः स्नात्वा मौनी नियतमानसः ॥ २२ ॥
उपास्य सन्ध्यां तत्रस्थो जपं कृत्वा सुशोभनम् ।
तर्पयित्वा पितॄन्देवान्मनुष्यांश्च यथाविधि ॥ २३ ॥
कृष्णस्य पुरतः स्थित्वा मार्कण्डेशस्य वा पुनः ।
ऋग्यजुःसाममन्त्रांश्च जपेदत्र प्रयत्नतः ॥ २४ ॥
ऋचमेकांजपेद्यस्तुऋग्वेदस्य फलं लभेत् । यजुर्वेदस्य यजुषासाम्नासामफलंलभेत्
एकस्मिन्भोजिते विप्रे कोटिर्भवति भोजिता ।
मृतप्रजा तु या नारी वन्ध्या स्त्रीजननी तथा ॥ २६ ॥
रुद्रांस्तु विधिवज्जप्त्वा ब्राह्मणो वेदतत्त्ववित ।

रुद्रैकादशभिर्मन्त्रैः स्नापयेत्कलशाम्भसा । पुत्रमाप्नोतिराजेन्द्र दीर्घायुरमकल्मषम्
माकण्डेश्वरवृक्षान्यो दूरस्थानपि पश्यति ।
ब्रह्महत्यादिपापेभ्यो मुच्यते शङ्करोऽब्रवात् ॥ २६ ॥
य इद शृणुयाद्भक्त्या पठेद्वा नृपसत्तम ।। सवपापविशुद्धात्मा जायतेनाऽत्रसशय
इद यशस्यमायुष्यधन्य दु स्वप्ननाशनम् । पठताशृणवता वाऽपिसर्वपापप्रमोचनम
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्या संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
रेवाखण्डे माकण्डेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनंनाम सप्तषष्ट्युत्तरशततमोऽध्याय ॥

अष्टषष्ट्यधिकशततमोऽध्याय

अङ्कूरेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

नमदादक्षिणे रोधस्यङ्कूरेश्वरमुत्तमम् । तीर्थं सर्वगुणोपेत त्रिषु लोकेषु विश्रुतम्
यत्रसिद्धमहारक्षआराध्यतु महेश्वरम् । शङ्करजगत प्राण स्मृतिमात्राघहारिणम्

युधिष्ठिर उवाच

किं तद्रक्षो द्विजश्रेष्ठ किनाम कस्यवाऽन्वये । एतद्विस्तरत सर्वंकथयस्वममाऽनघ
अज्ञानतिमिरान्धा ये पुमास पापकारिण ।
युष्मद्विधैर्दीपभूतै पश्यन्ति मघराघरम् ॥ ४ ॥
धर्मपुत्रवच श्रुत्वामाकण्डेयोमुनीश्वर । स्मितपूर्वमथोवाचकथापापप्रणाशनीम्

माकण्डेय उवाच

मानसोब्रह्मण पुत्र पुलस्त्योनामपार्थिव । वेदशास्त्रप्रशस्त्राथसास्त्राढ्योधार्मिकाऽपर
तृणबिन्दुसुता तस्य भार्याऽऽसात्परमेष्ठिन ।
तस्य धर्मप्रसङ्गेन पुत्रो जातो महामना ॥ ७ ॥

यस्माद्वेदेतिहासैश्च सपडङ्गपदक्रमाः । विश्रान्ता ब्रह्मणा दत्ता नामविश्रवसेतिच

कस्मिंश्चिदथ काले च भरद्वाजो महामुनिः ।
स्वसुतां प्रददौ राजन्मुदा विश्रवसे नृप !॥ ६ ॥

स तया रमतेसार्धं पौलोम्या मघवा इव । मुदा परमयाराजन्ब्राह्मणो वेदवित्तमः
केनचित्त्वथकालेन पुत्रः पुत्रगुणैर्युतः । जज्ञे विश्रवसो राजन्नाम्ना वैश्रवणः श्रुतः
सोऽपिमौनव्रतं कृत्वा बालभावाद्युधिष्ठिर । सर्वभूताभयंदत्त्वाचचार परमव्रतम्

तस्य तुष्टो महादेवो ब्रह्मा ब्रह्मर्षिभिः सह ।
सखित्वं चेश्वरो दत्त्वा धनदत्वं जगाम ह ॥ १३ ॥
यमेन्द्रवरुणानां च चतुर्थस्त्वं भविष्यसि ।
ब्रह्माऽप्युक्त्वा जगामाऽऽशु लोकपालत्वमीप्सितम् ॥ १४ ॥

ततस्त्वनन्तरेकालेकैकसीनामराक्षसी । पातालंभूतलंत्यक्त्वाविश्रवंचकमे पतिम्

पुत्रोऽथ रावणो जातस्तस्या भरतसत्तम !।
कुम्भकर्णो महारक्षो धर्मात्मा च विभीषणः ॥ १६ ॥

कुम्भश्चैव निकुम्भश्च कुम्भकर्णसुतावुभौ । महाबलौ महावीर्यौमहान्तौ पुरुषोत्तम

अङ्कूरो राक्षसश्रेष्ठः कुम्भस्य तनयो महान् ।
विभीषणं च गुणवद्दृष्ट्वैवं राक्षसोत्तमः ॥ १८ ॥

ततः स यौवनं प्राप्य ज्ञात्वा रक्षः पितामहम् । परं निर्वेदमापन्नश्चचार सुमहत्तपः
दक्षिणं पश्चिमं गत्वा सागरं पूर्वमुत्तरम् । नर्मदायां प्रसङ्गेन ह्यङ्कूरोराक्षसेश्वरः
तपश्चचार सुमहद्दिव्यं वर्षशतंकिल । ततस्तुष्टो महादेवः साक्षात्परपुरञ्जयः ॥२१॥
वरेण च्छन्दयामास राक्षसं वृषकेतनः । वरं वृणीष्व भद्रंते तव दास्यामि सुव्रत
प्रोवाच राक्षसो वाक्यं देवदेवं महेश्वरम् । वरदं सोऽग्रतो दृष्ट्वाप्रणम्य च पुनःपुनः

यदि तुष्टो महादेव! वरदोऽसि सुरेश्वर !।
दुर्लभं सर्वभूतानाममरत्वं प्रयच्छ मे ॥ २४ ॥

ममनाम्ना स्थितोऽनेनवरेणत्रिपुरान्तक !। सदासन्निहितोऽप्यत्रतीर्थेभचितमर्हसि

ईश्वर उवाच

यावद्विभीषणमतयाघद्धमनिषेचणम् । करिष्यसि दृढात्मात्व तावदेतद्भविष्यति
एवमुक्त्वा ययौ देव सर्वदेवतपूजित । विमानेनाऽर्कवर्णेन कैलास धरणीधरम्

गते चाऽदर्शन देवे ज्ञात्वाऽऽचम्य विधानत ।
स्थापयामास राजेन्द्र हडकुरेश्वरमुत्तमम् ॥ २८ ॥

गन्धपुष्पैस्तथा धूपैर्वस्त्रालङ्कारभूषणे । पताकैश्चामरैश्छत्रैर्जयशब्दादिमङ्गले

पूजयित्वा सुरेशान स्तोत्रैश्च सुपुष्कले ।
जगाम भवन रक्षो यत्र राजा विभीषण ॥ ३० ॥
पूजित स यथान्याय दानसन्मानगौरवे ।
सौंदर्ये स्थापितो भावे सोऽपासीत्सीत्तपरयामुदा ॥ ३१ ॥

तत्रतीर्थे तु य स्नात्वापूजयेत्परमेश्वरम् । मङ्कुरेश्वरनामान सोऽश्वमेधफललभेत्

माण्डव्यस्नातमारभ्य मङ्गम चाऽपि पञ्चुभम् ।
रेवाया आमलकाख्य देवक्षेत्र महेश्वरम् ॥ ३३ ॥
माण्डव्यस्नातात्पश्चिमतस्तीर्थं हडकुरेश्वरम् ।
तत्र तीर्थे नर स्नात्वा शुचि प्रयतमानस ॥ ३४ ॥

सन्ध्यामाचम्यपत्नेन अपकृत्वाऽथभारत । तर्पयित्वापितॄन्देवान्मनुष्यान्भरतर्षभ
सर्वेन्द्रियसनोमौनमास्थायसयत । अष्टम्या वा चतुर्दश्यामुपोष्यविधिवन्नर

पूजा च कुरुते राजस्तस्य पुण्यफल शृणु ।
स्नात्र तु योजनशत तीर्थान्यायतनानि च ॥ ३७ ॥
भवन्ति तानि दृष्टानि तत पापे प्रमुच्यत ।

अनिवर्त्तिकागतिस्तस्यरुद्रलोकादसंशयम् । कृमिकीटपतङ्गानां तत्रतीर्थेयुधिष्ठिर
अङ्कूरेश्वरनामाख्ये मृतानां सुगतिर्भवेत् ॥ ४१ ॥
एतत्ते कथितं राजन्नङ्कूरेश्वरसम्भवम् । तीर्थं सर्वगुणोपेतं परमम्पापनाशनम् ॥
येऽपि शृण्वन्ति भक्त्येदं कीर्त्त्यमानं महाफलम् ।
लभन्ते नाऽत्र सन्देहः शिवस्य भुवनं हि ते ॥ ४२ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराणएकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे रेवाखण्डे अङ्कूरेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनंनामाऽष्टषष्ट्यु त्तरशततमोऽध्यायः ॥

एकोनसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

काममोदिनीतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततोगच्छेत्परंतीर्थंपुण्यंपापप्रणाशनम् । माण्डव्योयत्रसंसिद्धऋषिर्नारायणस्तथा
नारायणेन शुश्रूषाशूलस्थेनकृतापुरा । तत्र स्नात्वामहाराज मुच्यतेपापकञ्चुकात्

युधिष्ठिर उवाच

आश्चर्यमेतल्लोकेषु यत्त्वया कथितं मुने !। न दृष्टं न श्रुतं तात! शूलस्थेन तपः कृतम्
एतत्सर्वं कथय मे ऋषिभिः सहितस्य वै ।
अस्य तीर्थस्य माहात्म्यं माण्डव्यस्य कुतूहलात् ॥ ४ ॥

श्रीमार्कण्डेय उवाच

शृणु राजन्यथावृत्तं पुरा त्रेतायुगेक्षितौ । लोकपालोपमो राजादेवपन्नोमहामतिः
धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च यज्वादानरतः सदा । प्रजा ररक्ष यत्नेन पिता पुत्रानिवौरसान्
दात्यायनीप्रिया भार्या तस्य राज्ञोवशानुगा । हारनूपुरघोषेण झङ्काररवनादिता
परस्परं तयोः प्रीतिर्वर्द्धतेऽनुदिनं नृप !।

यशास्तस्मै स्थितोराजा सशास्ति पृथिवीमिमाम् ॥ ८ ॥

हस्त्यश्वरथसम्पूर्णां धनवाहनसंयुताम् । अलङ्कृतो गुणैः सर्वैरनपत्यो महीपति दुःखेनमहताऽऽविष्ट सन्तप्त सन्ततिविना ।स्नानहोमरतोनित्यद्वादशाब्दानिभारत

व्रतोपवासनियमैः पत्नीभिः सह तस्थिवान् ।

आराधयद्भगवतीं चामुण्डां मुण्डमर्दिनीम् ॥ ११ ॥

स्तोत्रैरनेकैर्भक्त्या च पूजाविधिसमाधिना ।

जय वाराहि चामुण्डे जय देवि त्रिलोचने ॥ १२ ॥

ब्राह्मि ! रौद्रि ! कौमारि ! कात्यायनि ! नमोऽस्तु ते ।

प्रचण्डे ! भैरवि ! रौद्रि ! योगिन्याकाशगामिनि ॥ १३ ॥

नास्तिकिञ्चित्त्वयाहीनंत्रैलोक्येसचराचरे । राज्ञास्तुतातथसतुष्टादेवीवचनमब्रवीत्

वरयस्व यथाकामं यत्ते (यत्ते) मनसि वर्तते ।

आराधिता त्वया भक्त्या तुष्टा दास्यामि वरम् ॥ १५ ॥

देव्युवाच

यदि तुष्टाऽसि देवेशि वरार्हो यदिवाऽप्यहम् । पुत्रसन्तानरहितं त्वतः मामनुद्धर सन्तान नयमे वृद्धिंगोत्ररक्षां कुरुष्व मे । अपुत्रिणांगृहाणांहि श्मशानसदृशानिहि पितरस्तस्यनाश्नन्ति देवताऋषिभिः सह । क्रियमाणेऽप्यहरहः श्राद्धेमेपितरःसदा

दर्शयन्ति सदाऽऽत्मानं स्वप्ने क्षुत्पीडिता मम ।

इति राज्ञो वचः श्रुत्वा देवी ध्यानमुपागता ॥ १६ ॥

दिव्येन चक्षुषा दृष्ट्वा त्रैलोक्यं सचराचरम् । प्रसन्नवदना देवी राजानमिदमब्रवीत्

सन्तानं नाऽस्ति ते राजन्त्रैलोक्ये सचराचरे ।

यत्तस्य यत्पुत्रमपत्यं नास्ति तेऽन्यथा ॥ २१ ॥

मयादृष्टंमहीपालत्रैलोक्यं दिव्यचक्षुषा । एवमुक्त्वागता देवीराजाऽस्वगृहमागमत् इयाज यत्पुत्र सञ्जाता कन्यका तत । तेजस्विनी रूपवती सर्वलोकमनोहरा ॥

तस्या नाम कृतं पित्रा हर्षात्कामप्रमोदिनी ॥ २४ ॥
ततःकालेनववृधेरूपेणास्तम्भयज्जगत् । हंसलीलागतिः सुभ्रूः स्तनभारावनामिता
रक्तमाल्याम्बरधरा कुण्डलाभरणोज्ज्वला ।
दिव्यानुलेपनवती सखीभिः सा सुरक्षिता ॥ २६ ॥
कुचमध्यगतो हारोविद्युन्मालेवराजते । भ्रमराञ्चितकेशीसाबिम्बोष्ठीचारुहासिनी
कर्णान्तप्राप्तनेत्राभ्यां पिबन्तीवाऽथ कामिनः ।
चन्द्रताम्बूलसौरभ्यैराकर्षन्तीव मन्मथम् ॥ २८ ॥
कम्बुग्रीवा चारुमध्या ताम्रपादाङ्गुलीनखा ।
निम्ननाभिः सुजघना रम्भोरू सुदती शुभा ॥ २६ ॥
मातापितृसुहृद्वर्गे क्रीडानन्दविवर्द्धिनी ।
एकस्मिन्दिवसे बाला सखीवृन्दसमन्विता ॥ ३० ॥
चन्दनागरुताम्बूलधूपसौमनसाञ्चिता । गृहीत्वा पुष्पधूपादि गता देवीप्रपूजने ॥
तडागतट उत्सृज्यभूषणान्यङ्गवेष्टकान् । चक्रुःसरसिताःक्रीडां जलमध्यगतास्तदा
क्रीडन्तींतामवेक्ष्याथससखीं विमलेजले । राक्षसःशंबरो नामश्येनरूपेणचाऽगमत्
गृहीता जलमध्यस्था तेन सा काममोदिनी ।
खमुत्पपात दुष्टात्मा गृहीत्वाऽऽभरणान्यपि ॥ ३४ ॥
वायुमार्गं गतः सोऽथ कामिन्या सह भारत !।
अपतन्कुण्डलादीनि यत्र तोये महामुनिः ॥ ३५ ॥
माण्डव्यो नर्मदातीरे काष्ठवत्सञ्जितेन्द्रियः । लीनोमाहेश्वरे स्थानेनारायणपदेपरे
तस्य चानुचरोभ्राता भ्रातुः शुश्रूषणे रतः । तपोजपकृशीभूतो दध्यौदेवं जनार्दनम्
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
रेवाखण्डेकाममोदिनीहरणवर्णनं नामैकोनसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १६६ ॥

सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

माण्डव्यशूलारोपणवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

कामप्रमोदिनीनाम्न्यो नीयमानाश्चनैनतु । दृष्टानादमुमुगुसर्पानिगृन्वजन्मसम्पन्न
गताराजगृहेस्मर्पा कथयन्तिगुदुःखिता । कामप्रमोदिनीनामजन्तुनार्थनेनपरिक्षिता

पाडम्ती च जनस्थाने तडागे दैवसन्निधौ ।
अन्यथ्या च स्वयारातीन्नान्य मार्गं पिजाननता ॥ ३ ॥
नाम्ना तडघनं धत्वा दैवात्र गुदुःखित ।
हार्हेगुपन्था मनुष्याय स्वमागो यतास्तनाम् ॥ ४ ॥
मन्त्रिभि सहितस्तस्मिन्तडागे जलसन्निधौ ।
न चिह्न न च पन्थान दृष्ट्वा दुःखान्मुमोह च ॥ ५ ॥
तस्य राजस्तु दुःखेन दुःखिता नागरो जन ।
क्षणनाऽऽश्वासिता राजा मन्त्रिभि सपुरोहितै ॥ ६ ॥
किं कुम इत्युवाचदमस्मिन्काले विधीयताम् ।
सर्वैन्ननु सम्विद इत्या वाहिनी चतुरङ्गिणीम् ॥ ७ ॥

प्रयामि दिश मया हत्स्यध्वरथसतुःग । वादित्राणिचघाटनेध्याकुलीभूतसङ्कुले
नारार्थस्त्रोमिरभल्ल खड्ग परश्वधादिभि । राजासनाहयज्ञोऽभूद्गगनप्रसनेचिल
नदयोनघगन्धर्वोनर्दत्योनच राक्षस । किन्तरिष्यतिराजाऽद्य नज्ञानेरोपनिष्कृतिम्

नागरोऽपि जनस्तत्र दृष्ट्वा चकितमानस ।
चतुर्दशसहस्राणि दन्तिनां सृणिधारिणाम् ॥ ११ ॥
अश्वारोहसहस्राणि हर्शाति शस्त्रपाणिनाम् ।
रथाना त्रिससहस्राणि विंशतिर्मर्तयम ॥ १२ ॥

सङ्ग्रामभेरीनिनदैःखुररेणुर्नभोगता । एतस्मिन्नंतरे तात रक्षको नगरस्य हि ॥
गृहीत्वाऽऽभरणं तस्यास्त्वङ्गप्रत्यङ्गिकंतथा । कुण्डलाङ्गदकेयूरहारनूपुरझल्लरीः
निवेद्याकथयद्राज्ञेमयादृष्टंत्ववेक्षणात् । तापसानामाश्रमे तु माण्डव्योयत्रतिष्ठति
तापसैर्वेष्टितो यत्र ददृशे तत्र सन्निधौ । दण्डवासिवचःश्रुत्वाप्रत्यक्षाङ्गविभूषणम्
स क्रोधरक्तनयनो मन्त्रिणो वीक्ष्यनैगमान् । ईदृग्भूतस्समाचारोब्राह्मणोनगरेमम
चौरचर्यां व्रतच्छन्नःपरद्रव्यापहारकः । तेनकन्याहृता मेऽद्य तपस्विपापकर्मिणा

शाकुन्तं रूपमास्थाय जलस्थो गगनं ययौ ।
पाखण्डिनो विकर्मस्थान्विडालव्रतिकाञ्छठान् ॥ १६ ॥
घातुतस्करवृत्तान्हन्यान्नास्त्यस्य पातकम् ।
नद्रष्टव्यो मया पापः स्तेयी कन्यापहारकः ॥ २० ॥

शूलमारोप्यतां क्षिप्रं न विचारस्तुतस्यवै । सच वध्योमयादुष्टोरक्षोरूपी तपोधनः

एवं ब्रुवंश्चलन्क्रोधादादिश्य दण्डवासिनम् ।
कार्याकार्यं न विज्ञाय शूलमारोपयद्द्विजम् ॥ २२ ॥
पौरा जानपदाः सर्वे अश्रुपूर्णमुखास्तदा ।
हाहेत्युक्त्वा रुदन्त्यन्ये वदन्ति च पृथक्पृथक् ॥ २३ ॥

कुटिलतं चकृतंकर्मराज्ञा चण्डालधारिणा । ब्रह्मणोनैव वध्योहिविशेषेणतपोव्रतः

यदि रोषसमाचारो निर्वास्यो नगराद्बहिः ।
न जातु ब्राह्मणं हन्यात्सर्वपापेऽप्यवस्थितम् ॥ २५ ॥

राष्ट्रादेनं बहिः कुर्यात्समग्रधनमक्षतम् । नाश्नातिचगृहे राजन्नाग्निर्नगरवासिनाम

सर्वेऽप्युद्विग्नमनसो गृहव्याप्तिविवर्जिताः ॥ २६ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे रेवाखण्डे माण्डव्यशूलारोपणवर्णनंनाम सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७० ॥

एकसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

शाण्डिलीमहर्षिसम्वादवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

कथितं ब्राह्मणं श्रुत्वा शूलेऽस्थितं तपोधनं । नारायणसमीपे तु गताः सर्वे महर्षयः
नारदो देवलो रैभ्यो यमः शातातपोऽङ्गिराः ।
वसिष्ठो जमदग्निश्च याज्ञवल्क्यो बृहस्पतिः ॥ २ ॥
कश्यपोऽत्रिर्भरद्वाजो विश्वामित्रोऽरुणिर्मुनिः ।
वालखिल्यादयोऽन्ये च सर्वेऽप्यृषिगणाऽव्ययाः ॥ ३ ॥
दृष्ट्वा शूलमारूढं माण्डव्यमृषिपुङ्गवाः । प्रोचुर्नारायण विप्रं किं कुर्मस्तव चेप्सितम्
सर्वे ते तत्र सान्निध्यान्माण्डव्यस्य महात्मनः ।
सम्भ्रान्ता आगता ऊचुः किं मृतः किं नु जीवति ॥ ५ ॥
अवस्था तस्य तां दृष्ट्वा विषादमगमन्परम् । असहित्वा तु तद्दुःखं सर्वे ते मनसा द्विजाः
पृच्छ्यमाना यदि मन्येत राजानं भस्मसात्कुरु ।
तेषां तद्वचनं श्रुत्वा वाक्यं नारायणोऽब्रवीत् ॥ ७ ॥
मयि जीवति मद्भ्राता ह्यवस्थामीदृशीं गतः ।
धिग्जीवितं च मे किन्नु तपसो विद्यते फलम् ॥ ८ ॥
दृष्ट्वा शूलस्थितं ज्येष्ठं मन्मनोऽनुविदीर्यते । परं किं नु करिष्यामि येन राष्ट्रं सराजकम्
भस्मसाच्च करोम्यद्य भवद्भिः क्षम्यतामिह ।
एवमुक्त्वा गृहीत्वाऽसौ करस्थमभिमन्त्रयेत् ॥ १० ॥
क्रोधेन पश्यते यावत्तावद्धुङ्कारकोऽभवत् ।
तेन हुंकारशब्देन ऋषयो विस्मितास्तदा ॥ ११ ॥
माण्डव्यस्य समीपे ह्यपृच्छंस्ते द्विजोत्तमाः ।

निवारयसि किं विप्र! शापं नृपजिघांसनम् ॥ १२ ॥
अपापस्य तु येनेह कृतमस्य जिघांसनम् ।
ऋषीणां वचनं श्रुत्वा कृच्छ्रान्माण्डव्यकोऽब्रवीत् ॥ १३ ॥
अभिवन्दामि वोमूर्ध्ना स्वागतं ऋषयः सदा ।
अर्घ्यसन्मानपूजार्हाः सर्वेऽत्रोपविशन्तु ते ॥ १४ ॥
निविष्टैकाग्रमनसा सर्वान्माण्डव्यकोऽब्रवीत् ॥ १५ ॥
प्राप्तं दुःखं मयाघोरं पूर्वजन्मार्जितंफलम् । माविषादं कुरुध्वं भोःकृतंपापंतुभुज्यते

ऋषय ऊचुः

केन कर्मविपाकेन इहजात्यन्तरं व्रजेत् । दानधर्मफलेनैव केन स्वर्गं च गच्छति ॥

माण्डव्य उवाच

अदत्तदाना जायन्तेपरभाग्योपजीविनः । नस्नानंनजपोहोमो नातिथ्यंनसुरार्चनम्
नपर्वणिपितृश्राद्धंनदानं द्विजसत्तमाः । व्रजन्तिनरके घोरेयान्तितेत्वन्त्यजांगतिम्
पुनर्दरिद्राः पुनरेव पापाः पापप्रभावान्नरके वसन्ति ।
तेनैव संसारिणि मर्त्यलोके जीवादिभूते कृमयः पतङ्गाः ॥ २० ॥
ये स्नानशीला द्विजदेवभक्ता जितेन्द्रिया जीवदयानुशीलाः ।
ते देवलोकेषु वसन्ति हृष्टा ये धर्मशीला जितमानरोषाः ॥ २१ ॥
विद्याविनीता न परोपतापिनः स्वदारतुष्टाः परदारवर्जिताः ।
तेषां न लोके भयमस्ति किञ्चित्स्वभावशुद्धा गतकल्मषा हि ते ॥ २२॥

ऋषय ऊचुः

पूर्वजन्मनि विप्रेन्द्र! किं त्वयादुष्कृतंकृतम् । येन कष्टमिदंप्राप्तं सन्धानंशूलगर्हितम्
शूलस्थंत्वांसमालक्ष्यह्यागताःसर्वएवहि । जीवन्तंत्वां प्रपश्याम त्वंतत्रअवतारयन्
रुजा सन्तापजं दुःखं सोढ्वापि त्वमवेदनः ॥ २४ ॥

माण्डव्य उवाच

स्वयमेव कृतं कर्म स्वयमेवोपभुज्यते । सुकृतं दुष्कृतं पूर्वं नान्ये भुञ्जन्तिकर्हिचित्

एकसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

शाण्डिलीमहर्षिमम्वादवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

कथित ब्राह्मण द्रष्टु शूलेक्षित तपोधनं । नारायणसमीपे तु गता सर्वे महर्षय

नारदो देवलो रैभ्यो यम शातातपोऽङ्गिरा ।

वसिष्ठो जमदग्निश्च याज्ञवल्क्यो बृहस्पति ॥ २ ॥

कश्यपोऽत्रिभरद्वाजो विश्वामित्रोऽकणिर्मुनि ।

वालखिल्यादयोऽन्ये च सर्वेप्यृषिगणाऽन्यया ॥ ३ ॥

ददृशु शूलमारूढ माण्डव्यमृषिपुङ्गवा । प्रोचुर्नारायण विप्रकिंनुर्मन्तयन्नेप्सितम्

सच ते तत्र सान्निध्यान्माण्डव्यस्य महात्मन ।

सम्भ्रान्ता आगता ऊचु किं मृत किं नु जीवति ॥ ५ ॥

अवस्था तस्यतेदृष्ट्वापियाद्मगमन्परम् । थसहित्यातुनद्दृदु संमर्वेत मनसाद्विजा

पृच्छयता यदि मन्येत राजान भस्मसात्कुरु ।

तदा तद्वचन श्रुत्वा वाक्यं नारायणोऽब्रवीत् ॥ ७ ॥

मयि आयति मद्भ्राता ह्यवस्थामादृशी गत ।

धिग्गांयित च मे किन्तु तपसो विद्यते फलम् ॥ ८ ॥

दृष्टाशूलस्थितज्येष्ठ मन्मनोऽनुविदीयते । परंकिंनुकरिष्यामि येनराष्ट्र सराजकम्

भस्मसाच्च करोम्यद्य भवद्भि क्षम्यतामिह ।

एवमुक्त्वा गृहीत्वाऽसौ करस्थमभिमन्त्रयेत् ॥ १० ॥

साधन पश्यत यावत्तावद्धुङ्कारकोऽभवत् ।

तत हुङ्कारशब्देन ऋषयो विस्मितास्तदा ॥ ११ ॥

माण्डव्यस्य समीपे तु ह्यपृच्छस्ते द्विजोत्तमा ।

द्वितीयेऽह्नि समायाता न तु बुध्वाऽथ तं ऋषिम्।
भर्त्तारं शिरसा धार्य रात्रौ पर्यटते स्म सा ॥ ४० ॥
न दृष्टः शूलके विप्रो भाराक्रान्त्या युधिष्ठिर !।
स्खलिता तस्य जानुभ्यां शूलस्थस्य पतिव्रता ॥ ४१ ॥
सर्वाङ्गेषु व्यथा जाता तस्याः प्रस्खलनान्मुनेः।
ईदृशीं वर्त्तमानां च ह्यवस्थां पूर्वदैविकीम् ॥ ४२ ॥
पुनःपापफलं किञ्चिद्वाकष्टंममवर्त्तते । व्यथितोऽहंत्वयापापे किमर्थंत्नकर्मणि
स्वैरिणीं त्वां प्रपश्यामि राक्षसी तस्करी नु किम्।
एवमुक्त्वा क्षणं मोहात्क्रन्दमानो मुहुर्मुहुः ॥ ४४ ॥
तपस्विनोऽथऋषयःसर्वेसंत्रस्तमानसाः । पश्यमानामुनेः कष्टं पृच्छन्तेतेयुधिष्ठिर
पर्यटसे किमर्थं त्वं निशीथे वहनं नु किम्।
क्षिप्तं तु झोलिकाभारं किंवाऽऽगमनकारणम् ॥
व्यथामुत्पाद्य ऋषये दुःखाद्दु दुःखविलासिनि !॥ ४६ ॥

शाण्डिल्युवाच

नाऽसुरीं न च गन्धर्वीं न पिशाचीं न राक्षसीम्।
पतिव्रतां तु मां सर्वे जानन्तु तपसि स्थिताम् ॥ ४७ ॥
नमेकामोनमेक्रोधो नवैरं न च मत्सरः। अज्ञानाद्दृष्टिमान्द्याच्चस्खलनं क्षन्तुमर्हथ
वहनं भर्तृसौख्याय दिवा सम्पीड्यते रुजा।
अयं भर्त्ता विजानीथ झोलिका संस्थितः सदा ॥ ४६ ॥
भरणं पानं वस्त्रं च ददाम्येतस्य रोगिणः।
ऋषिः शौनकमुख्योऽसौ शाण्डिलीं मां विजानत ॥ ५० ॥
स्वभर्तृधर्मिणीं कोपं मा कुरुध्वातिथिकुरु। सतांसमीपंसम्प्राप्तांसर्वेमेक्षन्तुमर्हथ

ऋषय ऊचुः

परव्यथां न जानीषे व्यचरन्ती यदृच्छया। प्रभातेऽभ्युदितेसूर्येतवभर्त्तामरिष्यति

यथा धेनुसहस्रेषु वत्सो विन्दति मातरम् । तथा पूर्वकृतं कर्म कर्तारमुपगच्छति ॥

न माता न पिता भ्राता न भार्या न सुताः सुहृत् ।

न कस्य कर्मणा ऽपि स्वयमेवोपभुज्यते ॥ २९ ॥

श्रूयतां मम वाक्यं च भवद्भिः पृच्छितो ह्यहम् । पूर्वं वयसि भो विप्रा मल्लज्ञानकृतक्षणः

मयाज्ञानादुपालम्भार्थेन यूका कण्ठेऽधिरोपिता ।

तैलाभ्यक्तशिरोगात्रे मया यूका धृता न हि ॥ ३० ॥

कण्टकीतोऽप्यशेषेषु सा सा कण्ठेऽधिरोपिता । तेषु पापकृतं मया फलमेतन्ममागतम्

किंचित्कालं क्षपयित्वाऽहं प्राप्स्ये मोक्षं निरामयम् ।

भवन्तस्त्विह सन्तापं मा कुरुध्वं महर्षयः ॥ ३१ ॥

इमामवस्थां भुक्त्वाऽहं कश्चित्कल्पे न घोरके ।

अहानि कतिचिच्छूले क्षपयिष्यामि किल्बिषम् ॥ ३२ ॥

प्राक्तनं कर्म भुञ्जामि यन्मया सञ्चितं द्विजाः ।

क्षन्तव्यमस्य राज्ञोऽस्य कोपश्चैव विसर्ज्यताम् ॥ ३३ ॥

श्रुत्वा तु तस्य तद्वाक्यं माण्डव्यस्य महर्षयः ।

प्रहृष्यमतुलं लब्ध्वा साधुसाध्वित्यपूजयन् ॥ ३४ ॥

नारायण उवाच

इदं जलं मन्त्रपूतं तस्मिन्स्थाने क्षिपाम्यहम् । येन राजा भवेद्भस्म सराष्ट्रः सपुरोहितः

माण्डव्य उवाच

इदं जलं न रक्षस्व कालकूटविषोपमम् । समुद्रे क्षिपयिष्यामि दैवकार्यसमुत्थितम्

अथ ते मुनयः सर्वे माण्डव्यं प्रणिपत्य च ।

आमन्त्रयित्वा ह्यगाच्छ कश्यपाद्या गृहान् ययुः ॥ ३७ ॥

गच्छमानांस्तु तेऽवोचत् पञ्चमेऽहनि तापसाः ।

आगन्तव्यं भवद्भिश्च मत्सकाशं प्रतिज्ञया ॥ ३८ ॥

तथेति ते प्रतिज्ञाय नारदाद्या अदर्शनम् । गतेषु विप्रमुख्येषु शाण्डिलीव्रततपोधना

द्विसप्तत्युत्तरशततमोऽध्यायः

माण्डव्यतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

अथ तेऋषयःसर्वे देवाश्चेन्द्रपुरोगमाः। माण्डव्यस्याऽऽश्रमे पुण्ये समीयुर्नर्मदातटे
शङ्खदुन्दुभिनादेन दीपिकाज्वलनेन च। अप्सरोगीतनादेननृत्यन्त्यो वारयोषितः

कथानकैः स्तुवन्त्यन्ये तस्य शूलाग्रधारिणः।
अष्टाशीतिसहस्राणि स्नातकानां तपस्विनाम् ॥ ३ ॥

समाजेत्रिदशैःसार्द्धं तत्र ते चदिदृक्षया। ब्रह्मविष्णुमहेशानास्तत्र हर्षात्समागताः

मातरो मल्लिकाद्याश्च क्षेत्रपालाविनायकाः।
दिक्पाला लोकपालाश्च गङ्गाद्याश्च सरिद्वराः ॥ ५ ॥

ऋषिदेवसमाजे तु नित्यंहर्षप्रमोदने। तत्र राजा समायातः पौरजानपदैः सह ॥६

दृष्ट्वा कौतूहलं तत्र व्याकुलीकृतमानसम्।
वित्रस्तमनसो भूत्वा भयात्सर्वे समास्थिताः ॥ ७ ॥
तस्मिन्समागमे दिव्ये ब्रह्मविष्ण्वीशमब्रुवन्।
भो माण्डव्य महासत्त्व! वरदास्तेऽमरैः सह ॥ ८ ॥

अनेककष्टतपसा तव सिद्धिर्भविष्यति। प्रार्थयस्व यथाकामं यत्ते मनसिरोचते
अनादित्यमयं लोकं निर्वषट्कारमाकुलम्। नष्टधर्मंविजानीहिप्रकृतिस्थंकुरुष्व च

अनुग्रहं तु शाण्डिल्याः प्रार्थयाम द्विजोत्तम! ॥ १० ॥

एष ते कष्टदो राजासमायातस्तवाऽग्रतः। सम्भूषयस्वविप्रर्षे जनंदेवासुरं गणम्

माण्डव्य उवाच

यदि प्रसन्नामेदेवाःसमायाताःसुरैःसह। त्रिकालमत्रतीर्थेचस्थातव्यमृषिभिःसह
भवतांतुप्रसादेनरुजामेशाम्यतांसदा। एवमस्त्विति देवेशायावज्जल्पन्तिपाण्डव

आत्मदुःखात्परं दुःखं न जानासि कुलाधमे !।
तेन वाक्येन घोरेण शाण्डिली विमनाऽभवत् ॥ ५३ ॥
परं विषादमापन्ना क्षणं ध्यात्वाऽब्रवीद्वचः ।
कोपात्संरक्तनयना निरीक्षन्ती मुनींस्तदा ॥ ५४ ॥
मता गेहे पित्र माता भवता चाऽपकारिणी ।
साम्प्रतातिपितृजाया गिरौ च गृहमागते ॥ ५५ ॥
भवद्भिरीदृगाशिष्य एवऽर्थेव ममैव तु । स्वर्गापवर्गधर्मार्थ भवद्भिर्न निरीक्षितम्
प्राजापत्यामिमां दृष्ट्वा मा यथा प्राकृताः स्त्रियः ।
भजन्त्व स्त्रीफलं मेऽद्य पश्यन्तु दिवि देवताः ॥ ५७ ॥
भविष्यति न मे भर्ता ह्यादित्यो नोदयिष्यति ।
अन्धकारं जगत्सर्वं क्षीयते नाऽद्य शर्वरी ॥ ५८ ॥
एवमुक्ते तथा वाक्येन्नभिमतेऽर्कसमोमयम् । तथप्रजायतेसर्वंनिर्वषट्कारसत्क्रियम्
स्वाहाकार स्वधाकारः पञ्चयज्ञविधिर्न हि ।
स्नान दान जपो नास्ति सन्ध्यालोपव्यतिक्रमः ॥
षण्मासं च तदा पार्थ लुप्तपिण्डोदकक्रियम् ॥ ६० ॥
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे रेवाखण्डे शाण्डिलीऋषिसम्वादवर्णनं नामैकसप्तत्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥१७१॥

तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा स्वप्नावस्था कृतो ह्यृषिः ।
अन्तर्हितो मुहूर्त्तं च शाण्डिल्याश्च प्रपश्य ताम् ॥ २९ ॥
पुनरादाय ते सर्वे कृत्वा निर्व्रणसत्तनुम्
स्नापितो नर्मदातोये शाण्डिल्यायै समर्पितः ॥ ३० ॥
ततःसा हृष्टमनसापतिंदृष्ट्वा तु तैजसम् । प्रणम्य तानृषीन्देवान्विमलार्कंजगत्कृतम्
क्रियाप्रवर्त्तिताःसर्वे देवगन्धर्वमानुषाः । हृष्टतुष्टा गताःसर्वे स्वमाश्रमपदं महत् ॥
पतिव्रतास्वभर्त्रा सा मासमेवाऽऽश्रमे स्थिता ।
माण्डव्येनाऽप्यनुज्ञाता ययौ नत्वा स्वमाश्रमम् ॥ ३३ ॥
गतेषु तेषु सर्वेषु स्थापयामास चाच्युतम् ।
माण्डव्येश्वरनामानं नारायण इति स्मृतम् ॥ ३४ ॥
दिव्यं वर्षसहस्रं तु पूजयामास भारत । गतोऽसावृषिसङ्घैश्चसहितोऽमरपर्वतम्
तपस्तपन्तौतौतत्रह्यद्यापिकिलभारत । भ्रातरौ संयतात्मानौ ध्यायतःपरमम्पदम्
तत्र तीर्थे तु यः स्नात्वा तर्पयेत्पितृदेवताः ।
पितरस्तस्य तृप्यन्ति पिण्डदानाद्वशाब्दिकम् ॥ ३७ ॥
देवगृहे तु पक्षादौ यः करोति विलेपनम् । गोदानशतसाहस्रे दत्ते भवतियत्फलम्
उपलेपनेन द्विगुणमर्चने तु चतुर्गुणम् । दीपप्रज्वलने पुण्यमष्टधा परिकीर्त्तितम्
दिव्यनेत्रधरो भूत्वा त्रैलोक्ये सचराचरे । दध्ना मधुघृतैर्देवं पयसा नर्मदोदकैः ॥
स्नपनं ये प्रकुर्वन्ति पुष्पमालाविलेपनैः । येऽर्च्चयन्ति विरूपाक्षंदेवंनारायणंहरिम्
तेऽपि दिव्यविमानेन क्रीडन्ते कल्पसङ्ख्यया ।
दीपाष्टकं तु यः कुर्यादष्टमीं च चतुर्द्दशीम् ॥ ४२ ॥
एकादश्यांतुकृष्णस्यनपश्यन्तियमंतुते । फलैर्नानाविधैः शुभ्रैर्यःकुर्य्याल्लिङ्गपूरणम्
तेऽपि यान्ति विमानेन सिद्धचारणसेविताः ।
घण्टा चैव पताका च विमाने पुष्पमालिका ॥ ४४ ॥
वादित्राणि यथार्हाणि प्रान्ते च गच्छते शिवम् ।

तावद्दक्षो गृहीत्वाऽग्रे कन्या कामप्रमोदिनीम् ।
उवाच भगवञ्छापं पुरा दत्त्वोर्वशी मम ॥ १४ ॥
यदा कन्या हरेदृक्ष शापातस्तेऽभविष्यति । तेनमेगर्हितकर्म्मशापेनाऽस्तनुद्विन
क्षन्तव्यमितिचोक्त्वा च गतश्चाऽदर्शनं पुनः ।
गते चैव तु सा कन्या दृष्ट्वा पद्मदलेक्षणा ॥ १६ ॥
मन्त्रयित्वासुरे सर्वैर्दत्तामाण्डव्यधीमते । तावत्रशूलिकाप्रगाऽपयित्रैश्चमंदोदर्के
माण्डव्यमृषिमुख्यायं जयशब्दादिमङ्गले ।
विवाहयित्वा ता कन्या माण्डव्य ऋषिपुङ्गव ॥ १८ ॥
अभिवाद्य च तान्सर्वान्दानमन्मानगौरवैः ।
अथ राजा समापन्थो रत्नैश्च विविधैरपि ॥ १९ ॥
धिग्वादैर्निन्दित सर्वैस्तैर्जनैभू पितःपुन । राजाथब्राह्मणा सर्वेभूषणाच्छादनाशनै
सुवर्णकोटिदानेन तुणान्दत्वाक्षमापिता ।
वृत्ते विवाहे आहूय शाण्डिली तामथाब्रवीत् ॥ २१ ॥
मामयस्व इमान् विप्रान् मोचयस्व दिवाकरम् ।
अपहृत्य तमो येन कृपा सद्य प्रवर्त्तते ॥ २२ ॥
श्रुत्वाणा वचनं श्रुत्वा शाण्डिली दु खिताऽब्रवीत् ।
उदितेऽर्के तु मे भर्ता मृत्यु यास्यति भो द्विजा ॥ २३ ॥
त कथ मोचयामीह ह्यात्मनोऽनिष्टसिद्धये । क्रियाप्रवसनाश्चार्थविकार्यमे महर्षय
नि पुंसा स्त्री ह्यनाथाऽहं भवामि भवतो मतम् ।
निप्र त्वमन्यथाकारे तु नेच्छामि रविणोदयम् ॥ २० ॥
ततवाक्यततमर्वेदेवासुरमहर्षय । शिर सञ्चाल्य सर्व्वेसाधु साध्विति चाऽब्रुवन्
पतिव्रते महाभागे श्रृणु वाक्यतपोधने ॥ मन्त्रमे यदि नः सर्वान्दुर्घवचनसयन्

शाण्डिल्युवाच

यत्न म न मरेद्भर्त्ता येन सत्य मुनेर्वच । तत्कुरुध्वं विचार्याशु येन सम्पद्यते सुखम्

पूर्णिमायाममावास्यां व्यतीपातेऽर्कसङ्क्रमे ।
श्राद्धं च संग्रहे कुर्यात्सगच्छेत्परमां गतिम् ॥ ६३ ॥
देवखातेत्रयो देवा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः । तिष्ठन्ति ऋषिभिःसार्द्धंपितृदेवगणैःसह
तत्र तीर्थेऽश्विनेमासिचतुर्द्दश्यांविशेषतः । वायुमार्गेस्थितःशक्रस्तिष्ठते दैवतैःसह
पृथिव्यां यानि तीर्थानि सरितः सागरास्तथा ।
विशन्ति तानि सर्वाणि देवखाते दिनद्वयम् ॥ ६६ ॥
गयाशिरे च यत्पुण्यं प्रयागेऽमकरकण्टके ।
प्रयागे सोमतीर्थे च तत्पुण्यं माण्डवेश्वरे ॥ ६७ ॥
पट्टबन्धेनृयत्पुण्यंमात्रायां लकुलेश्वरे । आश्विन्यामश्विनीयोगे तत्पुण्यंमाण्डवेश्वरे
उज्जयिन्यां महाकाले वाराणस्यां त्रिपुष्करे ।
सन्निहत्यां रविग्रस्ते माण्डव्याख्ये सनातनम् ॥ ६९ ॥
इति ज्ञात्वा महाराज सर्वतीर्थेषु चोत्तमम् ।
पितृन्देवान्समभ्यर्च्य स्नानदानादिपूजनैः ॥ ७० ॥
चतुर्द्दश्यां निराहारः स्थितो भूत्वा शुचिव्रतः ।
पूजयेत्परया भक्त्या रात्रौ जागरणे शिवम् ॥ ७१ ॥
स्नानैश्च विविधैर्देवंपुष्पागरुविलेपनैः । प्रभातेपौर्णमास्यां तुस्नानादिविधितर्पणैः
श्राद्धेन हव्यकव्येन शिवपूजार्चनेन च । अग्निष्टोमादियज्ञैश्च विधिवच्चाप्तदक्षिणैः
धौतपापो विशुद्धात्मा फलते फलमुत्तमम् । गोसहस्रप्रदानेन दत्तंभवति भारत !॥
स्नानाद्यैर्विधिवत्तत्र,तद्दिने शिवसन्निधौ । हिरण्यंवृषभं धेनुं भूमिं गोमिथुनंहयम्
शिवमुद्दिश्य वै वस्त्रयुग्मे दद्यात्सुरूपिणे । पादुकोपानहौछत्रं भाजनं रक्तवाससी
होमं जाप्यं तथा दानमक्षयं सर्वमेवतत् । ऋचमेकांतु ऋग्वेदेयजुर्वेदे यजुस्तथा ॥
सामैकं सामवेदेतु जपेद्देवाग्रसंस्थितः । सम्यग्वेदफलं तस्य भवेद्धि नाऽत्रसंशयः
गायत्रीजाप्यमात्रस्तु वेदत्रयफलंलभेत् । कुलकोटिशतंसाग्रं लभतेतुशिवार्चनात्
[illegible]

देवालयं तु यः कुर्याद्विष्णव माण्डव्येश्वरम् ॥ ४५ ॥
स्वर्गे वसति धर्मात्मा यावदाभूतसम्प्लवम् ।
माण्डव्यनारायणाख्ये विप्रान्भोजयतेऽग्रत ॥ ४६ ॥
एकस्मिन्भोजिते विप्रे कोटिर्भवति भोजिता ।
आश्विने मासि सम्प्राप्ते शुक्लपक्षे चतुर्दशीम् ॥ ४७ ॥
कृतोपवासनियमो रात्रौ जागरणेन च । दीपमालां चतुर्दिक्षु पूजां कृत्वा तु शक्तितः
नारी वा पुरुषो वाऽपि नृत्यगीतप्रवादने । प्रभाते विमले दुर्ग्यैर्लाभादिकविधिं नृप
अभिनिवर्त्यमौनेन पश्यते देवमीदृशम् । सर्वपापविनिर्मुक्तो रुद्रलोके महीयते ॥
अथवा मार्गशीर्षे च चैत्रवैशाखयोरपि । श्रावणेवा महाराजसर्वकालेऽप्यपापिष
शिवरात्रिसमं पुण्यमित्येव शिवभाषितम् ।
वाजपेयाऽश्वमेधाभ्यां फलमाप्नोति नाऽन्यथा ॥ ५२ ॥
दुर्भगा तु स्त्रिता वन्ध्या दरिद्रा च मृतप्रजा ।
स्नाति रुद्रवरैर्या स्त्री सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥ ५३ ॥
कृमिकीटपतङ्गाश्चतस्मिंस्तीर्थे तु ये मृता । स्वर्गंप्रयान्तिते सर्वेदिव्यरूपधरान्नृप
अनाशके जलेऽग्नौ तु ये मृता व्याधिपीडिता ।
अनिवर्त्तिका गतिस्तेषां रुद्रलोके ह्यसशयम् ॥ ५५ ॥
नित्यंनमतियोराजञ्छिवनारायणावुभौ । गोदानफलमाप्नोतितस्यतीर्थप्रभावतः
देवालये तु राजेन्द्र यश्च कुर्यात्प्रदक्षिणाम् ।
प्रदक्षिणीकृता तेन ससागरधरा धरा ॥ ५७ ॥
सार्द्धं शतं च तीर्थानि मल्लिकाभवनाद् बहिः ।
तस्य तीर्थप्रमाणं तु विस्तरं राजसत्तम ॥ ५८ ॥
सूत्रेणवेष्टयेत्क्षेत्रमथवा शिवमन्दिरम् । अथवा शिवलिङ्गं च तस्यपुण्यफलं शृणु
जम्बूद्वीपश्च प्लक्षश्चशाल्मलीकुशक्रौञ्चकौ । शाकपुष्करगोमेदे सप्तद्वीपावसुन्धरा
भूषिता तेन राजेन्द्र सशैलवनकानना । रेवाया दक्षिणे भागे शिवक्षेत्रात्समीपत
देवखात महापुण्य निर्मितत्रिदशैरपि । तस्मिन्स्नात्वातुलोकानां मुच्यतेसर्वपातकै

पूर्णिमायाममावास्यां व्यतीपातेऽर्कसङ्क्रमे ।
श्राद्धं च संग्रहे कुर्यात्सगच्छेत्परमां गतिम् ॥ ६३ ॥
देवखातेत्रयो देवा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः । तिष्ठन्ति ऋषिभिःसार्द्धंपितृदेवगणैःसह
तत्र तीर्थेऽश्विनेमासिचतुर्द्दश्यांविशेषतः । वायुमार्गेस्थितःशक्रस्तिष्ठते देवतैःसह
पृथिव्यां यानि तीर्थानि सरितः सागरास्तथा ।
विशन्ति तानि सर्वाणि देवखाते दिनद्वयम् ॥ ६६ ॥
गयाशिरे च यत्पुण्यं प्रयागेऽमकरकण्टके ।
प्रयागे सोमतीर्थे च तत्पुण्यं माण्डवेश्वरे ॥ ६७ ॥
पट्टबन्धेनृयत्पुण्यंमात्रायां लकुलेश्वरे । आश्विन्यामश्विनीयोगे तत्पुण्यंमाण्डवेश्वरे
उज्जयिन्यां महाकाले वाराणस्यां त्रिपुष्करे ।
सन्निहत्यां रविग्रस्ते माण्डव्याख्ये सनातनम् ॥ ६९ ॥
इति ज्ञात्वा महाराज सर्वतीर्थेषु चोत्तमम् ।
पितृन्देवान्समभ्यर्च्य स्नानदानादिपूजनैः ॥ ७० ॥
चतुर्द्दश्यां निराहारः स्थितो भूत्वा शुचिव्रतः ।
पूजयेत्परया भक्त्या रात्रौ जागरणे शिवम् ॥ ७१ ॥
स्नानैश्च विविधैर्द्देवंपुष्पागरुविलेपनैः । प्रभातेपौर्णमास्यां तुस्नानादिविधितर्पणैः
श्राद्धेन हव्यकव्येन शिवपूजार्चनेन च । अग्निष्टोमादियज्ञैश्च विधिवच्चाप्तदक्षिणैः
धौतपापो विशुद्धात्मा फलते फलमुत्तमम् । गोसहस्रप्रदानेन दत्तंभवति भारत !॥
स्नानाद्यैर्विधिवत्तत्र तद्दिने शिवसन्निधौ । हिरण्यंवृषभं धेनुं भूमिं गोमिथुनंहयम्
शिवमुद्दिश्य वै वस्त्रयुग्मं दद्यात्सुरूपिणे । पादुकोपानहौछत्रं भाजनं रक्तवाससी
होमं जाप्यं तथा दानमक्षयं सर्वमेवतत् । ऋचमेकांतु ऋग्वेदेयजुर्वेदे यजुस्तथा ॥
सामैकं सामवेदेतु जपेद्देवाग्रसंस्थितः । सम्यग्वेदफलं तस्य भवेद्वै नाऽत्रसंशयः
गायत्रीजाप्यमात्रस्तु वेदत्रयफलंलभेत् । कुलकोटिशतंसाग्रं लभतेतुशिवार्चनात्
स्नाने दाने तथा श्राद्धे जागरे गीतवादिते ।

अनिवर्तिका गतिस्तस्य शिवलोकात्कदाचन ॥ ८० ॥
कालेन महताऽऽविष्टो मर्त्यलोके समाविशेत् ।
राजा भवति मेधावी सर्वव्याधिविवर्जितः ॥ ८१ ॥
जीवेद्वर्षशतं साग्रं पुत्रपौत्रधनान्वितः । तच्च तीर्थं पुनः स्मृत्वा लीयमानो महेश्वं
उपास्ते यस्तु वै सन्ध्यां तस्मिंस्तीर्थे च पर्वणि ।
साङ्गोपाङ्गैश्चतुर्वेदैर्लभते फलमुत्तमम् ॥ ८३ ॥
तत्र सर्वं शिवक्षेत्रमाक्रोशयात समन्ततः । न भवेद्ब्रह्मयोनिर्हि ब्रह्महत्या नराधिप
यत्रतत्रस्थितो भूमावप्यत्र तीर्थतत्परः । विविधैः पातकैर्मुक्तो मुच्यते नाऽत्र संशय
श्वभ्रीतन्महाराजन्मध्ये प्रदृश्यते । कथानिका पुराणोक्ता धान्तरीतीर्थसेवनात्
तत्र कूपो महाराज तिष्ठते देवनिर्मितः । शिवस्य पश्चिमे भागे शिवक्षेत्रमनुत्तमम्
धूपोत्सर्गं तु यः कुर्यात्तस्मिंस्तीर्थे नराधिप ।
क्रीडन्ति पितरस्तस्य स्वर्गलोके यदृच्छया ॥ ८८ ॥
अगम्याऽऽगमने पापमपेया पयानेऽस्तिने । स्तेयाद्ब्रह्मगोहत्यागुरुघाताच्च पातकम्
तत्सर्वं नश्यते पापं धूपोत्सर्गे कृते तु वै ॥ ८९ ॥
माण्डव्यतीर्थमाहात्म्यं यः शृणोति समाहितः ।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो नाऽत्र कार्या विचारणा ॥ ९० ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
रेवाखण्डे नर्मदामाहात्म्ये माण्डव्यतीर्थमाहात्म्यवर्णनंनाम
द्विसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७२ ॥

त्रिसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

शुद्धेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेत्तु राजेन्द्रतीर्थं परमशोभनम्। नर्मदादक्षिणे कुले सर्वपापप्रणाशनम्॥
सिद्धेश्वरमिति ख्यातं महापातकनाशनम्। यत्रशुद्धिंपरां प्राप्तो देवदेवो महेश्वरः
पुराहत्यायुतःपार्थ देवदेवस्त्रिशूलधृक्। पुरापञ्चशिरा आसीद्ब्रह्मालोकपितामहः
तेनाऽनृतं वचश्चोक्तं कस्मिंश्चित्कारणान्तरे॥ ३॥
तच्छ्रुत्वा सहसातस्मै चुकोप परमेश्वरः। छेदयामासभगवान्मूर्द्धानं करजैस्तदा
तस्य तत्करसंलग्नं च्यवतेन कदाचन। ततो हि देवदेवेशः पर्यटन्पृथिवीमिमाम्॥
ततो वाराणसीं प्राप्तस्तस्यांतदपतच्छिरः। पतितेतु कपाले च ब्रह्महत्यानमुञ्चति
ततस्तु सागरे गत्वापूर्वेच दक्षिणेतथा। पश्चिमे चोत्तरे पार्थ! देवदेवो महेश्वरः
पर्यटन्सर्वतीर्थेषु ब्रह्महत्या न मुञ्चति। नर्मदादक्षिणे कुले सुतीर्थं प्राप्तवान्प्रभुः॥
कुलकोटिं समासाद्य प्रार्थयामास चात्मवान्।
प्रायश्चित्तं ततः कृत्वा बभूव गतकल्मषः॥ ६॥
ततो निष्कल्मषोजातो देवदेवोमहेश्वरः। दत्त्वासुरेभ्यस्तत्स्थानंततश्चान्तर्द्धधेप्रभुः
तदाप्रभृति तत्तीर्थं शुद्धरुद्रेति कीर्त्तितम्। विख्यातं त्रिषु लोके ब्रह्महत्याहरं परम्
मासे मासे सितेपक्षेऽमावास्यायां युधिष्ठिर।
स्नात्वा तत्र विधानेन तर्पयेत्पितृदेवताः॥ १२॥
दद्यात्पिण्डं पितृणां तु भावितेनान्तरात्मना।
तस्य ते द्वादशाब्दानि सुतृप्ताः पितरो नृप!॥ १३॥
गन्धधूपप्रदीपाद्यैरभ्यर्च्य परमेश्वरम्। शुद्धेश्वराभिधानं तु शिवलोके महीयते॥
एतत्ते कथितं राजञ्छुद्धरुद्रमनुत्तमम्। मया श्रुतंयथादेव सकाशाच्छूलपाणिनः

मुच्यते सर्वपापेभ्यो रुद्रलोकं स गच्छति ॥ ११ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे रेवाखण्डे शुक्लेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम त्रिसप्तत्युत्तरशततमोऽध्यायः

चतुःसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

गोपेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

गोपेश्वरं ततो गच्छेदुत्तरे नर्मदातटे । यत्र स्नानेन चैकेन मुच्यन्ते पातकैर्नराः ॥
तत्रतीर्थे तु यः स्नात्वा कुरुते प्राणसंक्षयम् । वह्नियुक्तेन यानेन स गच्छेच्छिवमन्दिरे ॥
क्रीडित्वा सुचिरं कालं शिवलोके नराधिप ।
इह मानुष्यतां प्राप्य राजा भवति वीर्यवान् ॥ ३ ॥
हस्त्यश्वरथसम्पन्नो दासीदाससमन्वितः । पूज्यमानो नरेन्द्रैश्च जीवेद्वर्षशतं नरः ॥
तस्मात्ते कार्त्तिके मासि नवम्यां शुक्लपक्षतः ।
सोपवासः शुचिर्भूत्वा दीपकांस्तत्र दापयेत् ॥ ५ ॥
गन्धपुष्पैः समभ्यर्च्य रात्रौ कुर्वीत जागरम् ।
तस्य यत्स्यात्सुकृतं तच्छृणुष्व नराधिप ॥ ६ ॥
यावत्पुण्यं फलं संख्या दीपकानां तथैव च । तावद्युगसहस्राणि शिवलोके महीयते ॥
तस्मिंस्तीर्थे तु राजेन्द्र लिङ्गपूरणकं विधिम् ।
तथैव पत्रकैश्चैव दधिभक्तैस्तथैव च ॥ ८ ॥
यस्तु कुर्यान्नरश्रेष्ठ तस्य पुण्यफलं शृणु । यावन्ति तिलसंख्यानि दधिभक्तं तथैव च
पद्मसंख्या शिवे लोके मोदते कालमीप्सितम् ।
तस्मिंस्तीर्थे तु राजेन्द्र यत्किञ्चिद्दीयते नृप ॥ १० ॥

सर्वं कोटिगुणंतस्य संख्यातुं वानशक्यते । एवंते कथितं सर्वंसर्वतीर्थमनुत्तमम् ॥

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे रेवाखण्डे गोपेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनंनाम चतुःसप्तत्युत्तरशततमोऽध्यायः

पञ्चसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

कपिलेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

उत्तरे नर्मदाकूले भृगुक्षेत्रस्यमध्यतः । कपिलेश्वरंतु विख्यातंविशेषात्पापनाशनम्
योऽसौ सनातनो देवः पुराणे परिपठ्यते । वासुदेवो जगन्नाथः कपिलत्वमुपागतः
पातालं सुतलंनामतस्यैव नितलंह्यधः । गभस्तिगंचतस्याऽधोह्यन्धतामिस्रमेव च
पातालं सप्तमं यच्च ह्यधस्तात्संस्थितं महत् । वसतेतत्रवैदेवः पुराणःपरमेश्वरः ॥
सब्रह्मासमहादेवःसदेवो गरुडध्वजः । पूज्यमानःसुरैः सिद्धैस्तिष्ठते ब्रह्मवादिभिः

वसतस्तस्य राजेन्द्र! कपिलस्य जगद्गुरोः ।
विनाशं चाऽग्रतः प्राप्ताः क्षणेन सगरात्मजाः ॥ ६ ॥
भस्मीभूतांस्तु तान्दृष्ट्वा कपिलो मुनिसत्तमः ।
जगाम परमं शोकं चिन्त्यमानोऽथ किल्बिषम् ॥ ७ ॥

सर्वसंगपरित्यागे चित्तेनिर्विषयीकृते । अयुक्तं षष्टिसहस्राणांकर्तुंमम विनाशनम्

कृतस्य करणं नास्ति तस्मात्पापविनाशनम् ।
गत्वा तु कापिलं तीर्थं मोचयाम्यवमात्मनः ॥ ८ ॥

पातालं तु ततो मुक्त्वा कपिलोमुनिसत्तमः । तपश्चचारसुमहन्नर्मदातटमास्थित
व्रतोपवासैर्विविधैः स्नानदानजपादिकैः । परं निर्वाणमापन्नः पूजयन्रुद्रमव्ययम् ;
तत्र तीर्थे तुयः स्नात्वा पूजयेत्परमेश्वरम् । गोसहस्रफलंतस्य लभते नाऽत्र संशय

ज्येष्ठमासे तुग्रामे शुक्लपक्षे चतुर्दशी । तत्रस्नात्वाविधानेन भक्त्यादानप्रयच्छति
पात्रभूताय विप्रायस्वर्णं वायदिवायद्व । अक्षयं तत्फलं प्रोक्तं शिवेन परमेष्ठिना
अङ्गारकदिने प्राप्तेचतुर्थ्यां नवमीषु च । स्नानकरोतिपुरुषो भक्त्यांपोऽथवाङ्गना
रूपमैश्वर्यमतुलंसौभाग्यं सन्ततिपराम् । लभते मानवम्मानिनित्यं नित्यं पुन पुन
पौर्णमास्याममावास्यां स्नात्वा पिण्डं प्रयच्छति ।
नरूप ते द्वादशाब्दानि तृप्ता यान्ति पुरान्यम् ॥ १७ ॥
सवर्तार्थंतुपौमवत्या दयाङ्गीपस्तुशोभनम् । जायनेनम्यराजेन्द्रमहार्दीति शरीरना
तत्र तीर्थे मृतानां तु जन्तूनां सर्वदा किल ।
अनिवर्त्तिका भवेत्तेषां गतिस्तु शिवमन्दिरात् ॥ १६ ॥
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
रेवाखण्डे कपिलेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णननाम पञ्चसप्तत्यधिकशततमोऽध्याय

षट्सप्तत्यधिकशततमोऽध्याय

पिङ्गलेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततोगच्छेन्महीपाल पिङ्गलाख्यमुत्तमम् । सार्वंसवगुणोपेत कामिकभुविदुर्लभम्
वाचिक मानस पापकर्मजयन्तुराकृतम् । पिङ्गलेश्वरमासाद्य ततसर्वविलयव्रजेत्
तत्र स्नान च दान च देवखात कृतन्नृप । अक्षय तद्भवेत्सर्वमित्येवं शङ्करोऽब्रवीत् ॥
पृथिव्यासर्वतीर्थेषु समुद्धृत्यशुभोदकम् । मुक्ततत्रसुरै खात्वादेवखाततोऽभवत्

युधिष्ठिर उवाच

कथतु देवखात तत्सजातद्विजसत्तम । सुरा सर्वेकथ तत्र मुमुचुर्वारि तीर्थजम्
सर्वं कथय मे विप्र ! श्रवणे लम्पटं मन ॥ ५ ॥

श्रीमार्कण्डेय उवाच

यदा तुशूलशुद्ध्यर्थं रुद्रोदेवगणैः सह। बभ्राम पृथिवीं सर्वां कमण्डलुधरः शुभाम्
प्रभासाद्येपुतीर्थेपुस्नानंचक्रुःसुरास्तदा। सर्वतीर्थोत्थितंतोयं पात्रेवैनिहितंतुतैः
शूलभेदमनुप्राप्य शूलं शुद्धं तु शूलिनः। तत्रोत्थमुदकं गृह्य आगता भृगुकच्छके॥
तत्राऽपश्यंस्ततोह्यग्निपिङ्गलाक्षं च रोगिणम्। तपस्युग्रेव्यवसितंध्यायमानंमहेश्वर
हविर्भागैस्तुविप्राणांराज्ञां चैवामयाविनाम्। दृष्ट्वा तुवहुरोगार्त्तमग्निदेवमुखं सुराः
प्राहुस्ते सहिता देवं शङ्करं लोकशङ्करम्॥ १०॥

देवा ऊचुः

प्रसादः क्रियतां शम्भो पिङ्गलस्यामयाविनः।
यथा हि नीरुजः कायो हविषां ग्रहणक्षमः॥
पुनर्भवति पिङ्गस्तु तथा कुरु महेश्वर!॥ ११॥

ईश्वर उवाच

भोभोः सुरा हि तपसातुष्टोऽहं वोविशेषतः। वचनाच्चविशेषेणददाम्यभिमतवरम्

पिङ्गल उवाच

यदि तुष्टोऽसि देवेश! दीयते देव! चेप्सितम्।
चन्द्रादित्यौ च नयने कृत्वाऽत्र कलया स्थितः॥ १३॥
तथा पुनर्नवः कायोभवेद्धिमम शङ्कर। तथा कुरु विरूपाक्ष नमस्तुभ्यं पुनः पुनः॥

मार्कण्डेय उवाच

ततःसभगवाञ्छम्भुर्मूर्त्तिमादित्यरूपिणीम्। कृत्वातुतस्यतद्रोगमपानुदतशङ्करः
ततःपुनर्नवीभूतःपुनः प्रोवाचशङ्करम्। अत्रैव स्थीयतांशम्भोतथैव भास्करःस्वयम्
प्राणिनामुपकाराय रोगाणामुपशान्तये। पापानांध्वंसनार्थायश्रेयसां चैव वृद्धये
एवमुक्तस्तु भगवान्पिङ्गलेन महात्मना। अवतारं च कृतवान्गीर्वाणानिदमब्रवीत्

ईश्वर उवाच

मुञ्चध्वमुदकंदेवास्तीर्थेभ्यो यत्समाहृतम्। ममचोत्तरतःकृत्वा स्नातं देवमयंशुभम्

तत्रनिक्षिप्यनाथारि सर्वरोगविनाशनम् । सर्वपापहरं दिव्यं सर्वैरपि सुरादिभि
एवमुक्ताः सुराः सर्वे खातकृत्वा तथोत्तरे । त्रयस्त्रिंशत्कोटिगणैर्युक्तैस्तीर्थजंजलम्

प्रोचुस्ते सहिताः सर्वे विरूपाक्षपुरोगमाः ।

य कश्चिद्देवखातेऽस्मिन्मृदालम्भनपूर्वकम् ॥ २२ ॥

स्नानं कृत्वा रविदिने सम्प्राप्य नर्मदाजले ।

श्राद्धं कृत्वा पितृभ्यो वै दानं दत्त्वा स्वशक्तितः ॥ २३ ॥

पूर्णयिष्यन्ति पितृदेशतस्यवासस्त्रिविष्टपे । भविष्यतिसुरैरुक्त शृणोतिसकलंजगत्

श्रामया भुवि मर्त्यानां क्षयरोगविवर्धिका ।

व्याधयो विकृताकारा कासश्वासज्वरोद्भवाः ॥ २४ ॥

एकाहिकाश्चतुर्थाद्या ये ज्वराः भूतसम्भवाः ।

य चान्येविस्फोटाया दद्रुश्च कामलं तथा । दिनैनैसमभियान्तिनाशस्नानैरवैर्द्विजे

शनभेदप्रभिन्ना ये कुष्ठा बहुविधास्तथा ॥ २७ ॥

शतमादित्यवारेण स्नायाद्यस्तत्र तु य । सम्पूज्यशङ्करं दद्यात्तिलपात्रद्विजातये

तस्यन्तितस्यकुष्ठानिगरुडेनेवपन्नगाः । एवमुक्त्वागताः सर्वे त्रिदशास्त्रिदशालयम्

मार्कण्डेय उवाच

नदीषु देवखातेषु तडागेषु सरित्सु च । स्नानं समाचरेद्धित्य नरः पापैः प्रमुच्यते

षष्टितीर्थसहस्रेषु षष्टितीर्थशतेषु च । यत्फलं स्नानदानेषु देवखाते ततोऽधिकम्

देवखातेषु च स्नात्वा तर्पयित्वा पितॄन्नृप । पूजयेद्देवदेवेशं पिङ्गलेश्वरमुत्तमम् ॥

सोऽश्वमेधस्य यज्ञस्य वाजपेयस्य भारत ।

द्वयो पुण्यमवाप्नोति नात्र कार्या विचारणा ॥ ३३ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे रेवाखण्डे पिङ्गलेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णननाम षट्सप्तत्युत्तरशततमोऽध्याय ॥

सप्तसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

भूतीश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

भूतीश्वरं ततो गच्छेत्सर्वतीर्थेष्वनुत्तमम्। दर्शनादेव राजेन्द्र! यस्य पापंप्रणश्यति

तत्र स्थाने पुरापार्थ देवदेवेन शूलिना। उद्धूलनं कृतंगात्रे तेन भूतीश्वरं तु तत्

पुष्ये वा जन्मनक्षत्र (त्रेऽह्नि) अमावास्यां विशेषतः।

भूतीश्वरे नरः स्नात्वा कुलकोटिं समुद्धरेत् ॥ ३ ॥

तत्रस्थाने तुयो भक्त्याकुरुतेह्यङ्गगुण्ठनम्। तस्य यत्फलमुद्दिष्टं तच्छृणुष्वनराधिप

यावन्तो भूतिकणिका गात्रे लग्नाः शिवालये।

तावद्वर्षसहस्राणि शिवलोके महीयते ॥ ५ ॥

सर्वेषामेव स्नानानां भस्मस्नानं परं स्मृतम्।

पुराणैर्ऋषिभिः प्रोक्तं सर्वशास्त्रेष्वनुत्तमम् ॥ ६ ॥

एककालं द्विकालं वा त्रिकालं वाऽपि यः सदा।

स्नानं करोति चाऽऽग्नेयं पापं तस्य प्रणश्यति ॥ ७ ॥

दिव्यस्नानाद्वरंस्नानंवायव्यंभरतर्षभ। वायव्यादुत्तमंब्राह्मयं वरंब्राह्मयात्तुवारुणम्

आग्नेयं वारुणाच्छ्रेष्ठं यस्मादुक्तं स्वयम्भुवा।

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन ह्याग्नेयं स्नानमाचरेत् ॥ ९ ॥

युधिष्ठिर उवाच

आग्नेयं वारुणंब्राह्मयंवायव्यंदिव्यमेवच। किमुक्तंश्रोतुमिच्छामिपरंकौतूहलंहिमे

मार्कण्डेय उवाच

आग्नेयं भस्मना स्नानमवगाह्य च वारुणम्।

आपोहिष्ठेति च ब्राह्मयं वायव्यं गोरजः स्मृतम् ॥ ११ ॥

सूर्ये दृष्टे तु यत्स्नानं गङ्गातोयेनतत्समम्। तत्स्नानेपञ्चमयोक्त दिव्यंपाण्डवसत्तम
तस्मात्सर्वप्रयत्नेनस्नात्वा भूतेश्वरेतु य । पूजयेद्देवमीशानसवाह्याभ्यन्तर शुचि
तत्र स्थाने तु ये नित्यं ध्यायन्ति परम पदम्।
सूक्ष्म घातीन्द्रिय नित्य ते धन्या नाऽत्र सशय ॥ १४ ॥
मुक्तितीर्थं तु तत्तीर्थं सर्वतीर्थेष्वनुत्तमम्। दर्शनादेव तस्यैव पापघातिमहत्क्षयम
जायतेपूजया राज्य तत्र स्तुत्वामहेश्वरम्। जपेन पापसशुद्धिर्ध्यानेनैनान्त्यमश्नुते
ॐ ज्योति स्वरूपममादिमध्यमनुत्पाद्यमानमनुधार्यमत्याक्षरम्।
सर्वभूतस्थित शिव सर्वयोगेश्वर सर्वलोकेश्वरमोहशोकहीनमहाज्ञानगम्यम् ॥
तत्र तीर्थे तु यो गत्वा स्नान कुर्यान्नरेश्वर।
अश्वमेधस्य यज्ञस्य फल प्राप्नोति मानव ॥
एवंभूत न जानन्ति मोक्षापेक्षणिका नरा ॥ १८ ॥
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्या सहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
रेवाखण्डे भूतीश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णननाम सप्तसप्तत्यधिकशततमोऽध्याय ॥

अष्टसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

गङ्गावाहकतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेत् राजेन्द्र गङ्गावाहकमुत्तमम्। नर्मदाया महापुण्यं भृगुतीर्थसमीपत ।
तत्र गङ्गा महापुण्या चचार विपुल तप । पुरा वर्षशतसाग्रं परम व्रतमास्थिता
ध्यात्वा देव जगद्योनिं नारायणमकल्मषम्।
आत्मान परम धाम सरितमा उगतीपते ॥ ३ ॥
ततो जनार्दनो देव आगत्येदमुवाच ह ॥ ४ ॥

विष्णुरुवाच

तपसा तव तुष्टोऽहं मत्पादाम्बुजसम्भवे । मत्तः किमिच्छसे देवि ब्रूहि किं करवाणि ते

गङ्गोवाच

त्वत्पादकमलाद्भ्रष्टा गङ्गाऽहं परमा विभो । यदृच्छया त्रिलोकेश वन्द्यमाना दिवौकसैः
नृपो भगीरथस्तस्मात्तपः कृत्वा सुदुष्करम् । समाराध्य जगन्नाथं शङ्करं लोकशङ्करम्
अवतारयामास हि मां पृथिव्यां धरणीधर ॥ मयावै युवयोर्वाक्यादवतारः कृतो भुवि

वैष्णवीमिति मां मत्वा जनः सर्वाप्लुतो मयि ।
ये वै ब्रह्महणो लोके ये च वै गुरुतल्पगाः ॥ ९ ॥
त्यागिनः पितृमातृभ्यां ये च स्वर्णहरा नराः ।
गोघ्ना ये मनुजा लोके तथा ये प्राणिहिंसकाः ॥ १० ॥

अगम्यागामिनो ये च ह्यभक्ष्यस्य च भक्षकाः । वेदाऽनृतप्रवक्तारो ये च विश्वासघातकाः
देवब्राह्मणवित्तानां हर्त्तारो ये नराधमाः । देवब्रह्मगुरुस्त्रीणां ये च निन्दाकरा नराः
ब्रह्मशापप्रदग्धा ये ये चैवात्महनो द्विजाः । भ्रष्टानशनसंन्यासनियतव्रतधारिणः
तथैवापेयपेयाश्च ये च स्वगुरुनिन्दकाः । निषेधका ये दानानां पात्रदानपराङ्मुखाः

ऋतुघ्ना ये स्वपत्नीनां पित्रोः स्नेहपरा न हि ।
बान्धवेषु च दीनेषु करुणा यस्य नास्ति वै ॥ १५ ॥

क्षेत्रसेतुविभेदी च पूर्वमार्गप्रलोपकः । नास्तिकः शास्त्रहीनस्तु विप्रः सन्ध्याविवर्जितः

अहुताशी ह्यसन्तुष्टः सर्वाशी सर्वविक्रयी ।
कदर्या नास्तिकाः क्रूराः कृतघ्ना ये द्विजातयः ॥ १७ ॥
पैशुन्या रसविक्रेयाः सर्वकालविनाकृताः ।
स्वगोत्रां परगोत्रां वा ये भुञ्जन्ति द्विजाधमाः ॥ १८ ॥
ते मां प्राप्य विमुच्यन्ते पापसङ्घैः सुसञ्चितैः ।
तत्पापक्षारतप्ताया न शर्म मम विद्यते ॥ १९ ॥
तथा कुरु जगन्नाथ! यथाऽहं शर्म चाप्नुयाम् ।

वरयुग्मन्तु देहि त्वं पुरा प्रोवाच जाह्नवीम् ॥ २० ॥

विष्णुरुवाच

अन्यत्र वसिष्यामि गङ्गाधरमहावनात् । त्वयि चात्र यदा देवि त्वत्पदकेशमूर्तिन
मम पादस्पर्शनाद् यत्र निवत्स्यामि । यदा वर्षके काले सर्वभूतनमस्कृता

प्राप्स्यन्ति ममागत्य सर्वप्राप्ति अकामतः ।
स्पर्शनादपरं देवि प्राप्य मामुक्तविग्रहम् ॥ २१ ॥
लप्स्यन्ति लोकेऽत्र यदा गङ्गं नरो स्थितम् ।
तदा सर्वशोधनं पैत्र्यं पर्वसम्भवम् ॥ २४ ॥
न चैव गङ्गाबिन्दुः स्नानाद्यानादि तत्क्षणम् ।
भावे द्वे च न तथा पुण्यात्पुण्यतरं यथा ॥ २५ ॥

सन्निधानं करिष्यामि अहं गङ्गाया भाजन । स्नानमात्रेण लोकेऽस्मिन्नेव वासाद् यथा

पुण्यं स्वर्गोपभोगानां मनुष्याणां च मङ्गलम् ।
विष्णुना विष्णुर्येन तस्मात्पापानि प्रणश्यते ॥ २६ ॥

तथा गङ्गाप्रवाहेण भूषणालोकि मानव । गङ्गोद्वारे नरः स्नात्वा पार्श्वे दिव्यदेवताः

मृतान्ते प्रयतात्मान्ति सिद्धिं च सार्वकामिकीम् ।
गङ्गापदे तु यः स्नात्वा गङ्गोद्वारे प्रयान्ति ॥ २८ ॥

तेन विष्णुप्रसादेन प्राप्स्यति चिरं तथा । गङ्गोद्वारे नरः स्नात्वा पूजयेद् देवकेशवौ

दर्शं आगतं कृत्वा शुद्धो भवति जाह्नवि ।
यस्य लोके रत्नं यम मन्यते भुवि दुर्लभम् ॥ ३१ ॥
तस्मिन्नपि तत्पदं तत्र स्नात्वा व्यपोहय ।
एवमुक्त्वा परमं विष्णुरन्तरधीयत ॥ ३२ ॥

तदा प्रभृति तत्तीर्थं गङ्गापादमनुत्तमम् । स्नात्वा विप्रेन्द्र विमुक्तात्मा पापैः सर्वैः प्रमुच्यते
तत्र तीर्थेषु पापात्मा भक्तिभावेन भारत । गङ्गातीर्थेषु स्नात्वा समस्तेषु मसंशय

तत्र तीर्थे मृतानां तु नराणां भावितात्मनाम् ।

अनिवर्त्तिका गतिस्तेषां विष्णुलोकात्कदाचन ॥ ३५ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे रेवाखण्डे गङ्गावाहकतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नामाष्टसप्तत्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥

एकोनाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

गौतमेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र गौतमेश्वरमुत्तमम् । सर्वपापहरं तीर्थं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम्
गौतमेन तपस्तप्तं तत्र तीर्थे युधिष्ठिर ।। दिव्यं वर्षसहस्रं तु ततस्तुष्टो महेश्वरः ॥
प्रणम्य शिरसा तत्र स्थापितःपरमेश्वरः । स्थापितो गौतमेनेशो गौतमेश्वरउच्यते
तत्र देवैश्च गन्धर्वैर्ऋषिभिःपितृदेवतैः । सम्प्राप्ताह्युत्तमा सिद्धिराराध्यपरमेश्वरम्

तत्र तीर्थे तु यः स्नात्वा पूजयेत्पितृदेवताः ।
पूजयेत्परमीशानं सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ५ ॥

बहवस्तन्न जानन्तिविष्णुमायाविमोहिताः । तत्रसन्निहितंदेवंशूलपाणि महेश्वरम्
ब्रह्मचारीतुयोभूत्वातत्रतीर्थे नरेश्वर । स्नात्वाऽर्चयेन्महादेवंसोऽश्वमेधफलं लभेत्
ब्रह्मचारी तु यो भूत्वा तर्पयेत्पितृदेवताः । पूजयेत्परमीशानं सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥

तत्र तीर्थे तु यो दानं भक्त्या दद्याद् द्विजातये ।
तदक्षयफलं सर्वं नाऽत्र कार्या विचारणा ॥ ६ ॥
मासे चाऽश्वयुजे राजन्कृष्णपक्षे चतुर्दशीम् ।
स्नात्वा तत्र विधानेन दीपकानां शतं ददेत् ॥ १० ॥

पूजयित्वा महादेवं गन्धपुष्पादिभिर्नरः । मुच्यते सर्वपापेभ्योमृतःशिवपुरं व्रजेत्
अष्टम्यां च चतुर्दश्यां कार्त्तिक्यां तु विशेषतः ।

उपोष्य प्रयतो भूत्वा घृतेन स्नापयेच्छिवम् ॥ १२ ॥
पञ्चगव्येन मधुना दध्ना वा शीतवारिणा । सर्वस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोति मानवः
भक्त्यानुपूजयेत्पश्चात्स लभेत्फलमुत्तमम् । बिल्वपत्रैररण्डैश्च पुष्पैरुन्मत्तकोद्भवैः
कुशापामार्गसंहितैः कदम्बद्रोणजैरपि । मल्लिका करवीरैश्च रक्तपीतैः सितासितैः
पुष्पैरन्यैर्यथालाभं यो नरः पूजयेच्छिवम् । निरन्तरं षण्मास यो ऽर्चयेद्गौतमेश्वरम्
सर्वान्कामानवाप्नोति मृतः शिवपुरं व्रजेत् ॥ १६ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे रेवाखण्डे गौतमेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णननामैकोनाशीत्यधिकशततमोऽध्याय ॥

अशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

दशाश्वमेधतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेन्महीपाल दशाश्वमेधिकं परम् । तीर्थं सर्वगुणोपेतं महापातकनाशनम्
यत्र गत्वा महाराज स्नात्वा सम्पूज्य शंकरम् ।
दशानामश्वमेधानां फलं प्राप्नोति मानवः ॥ २ ॥

युधिष्ठिर उवाच

अश्वमेधो महायज्ञो बहुसम्भारदक्षिणः । अशक्यः प्राकृतैः कर्तुं कथं तेषां फलं लभेत्
अत्याश्चर्यमिदं तत्त्वं त्वयोक्तं वदतां सता । यथा मे जायते श्रद्धा दीर्घायुस्त्वं तथा वद

मार्कण्डेय उवाच

इदमाश्चर्यभूतं हि गौर्या पृष्टस्त्रियम्बकः । तत्तेऽहं सम्प्रवक्ष्यामि पृच्छतो निपुणाय वै
पुरा वृषस्थो देवेशः उमया सह शङ्करः । कदाचित्पर्यटन्पृथ्वीं नर्मदातटमाश्रित
दशाश्वमेधिकं तीर्थं दृष्ट्वा देवो महेश्वरः । तीर्थं प्रत्यर्पितं ध्यानमग्नो त्रिलोचन

कृताञ्जलिपुटं देवं दृष्ट्वा देवीदमब्रवीत् ॥ ८ ॥

देव्युवाच

किमेतद्देवदेवेश! चराचरनमस्कृत !। प्रह्वनम्राञ्जलिं बद्ध्वा भक्त्या परमया युतः

एतदाश्चर्यमतुलं सर्वं कथय मे प्रभो! ॥ १० ॥

ईश्वर उवाच

प्रत्यक्षं पश्य तीर्थस्य फलं मा विस्मिता भव ।

वियत्स्था मे भुविस्थस्य क्षणं देवि! स्थिरा भव ॥ ११ ॥

एवमुक्त्वा तु देवेशो गौरवर्णो द्विजोऽभवत् ।

क्षुत्क्षामकण्ठो जटिलः शुष्को धमनिसन्ततः ॥ १२ ॥

उपविश्यभुवःपृष्ठेसुस्वरंमन्त्रमुच्चरन् । क्रमप्रियोमहादेवो माधुर्येण प्रमोदयन् ॥ १३

श्रुत्वा तां मधुरां वाणीं स्वयं देवेन निर्मिताम् ।

सम्भ्रान्ता ब्राह्मणाः सर्वे स्नातुं ये तत्र चाऽऽगताः ॥ १४ ॥

नित्यक्रिया च सर्वेषां विस्मृता श्रुतिविभ्रमात् ।

तं दृष्ट्वा पठमानं तु क्षुत्पिपासाऽभिपीडितम् ॥ १५ ॥

द्विजोन्यमन्त्रयत्कश्चिद्भक्त्या तंभोजनायवै । प्रसादः क्रियतांब्रह्मन्भोजनायगृहेमम

अद्य मे सफलं जन्म ह्यद्य मे सफलाः क्रियाः ।

सर्वान्कामान्प्रदास्यन्ति प्रीता मेऽद्य पितामहाः ॥ १७ ॥

त्वयि भुक्ते द्विजश्रेष्ठ प्रसीद त्वं ध्रुवं मम । एवमुक्तो महादेवो द्विजरूपधरस्तदा

प्रहस्य प्रत्युवाचेदं ब्राह्मणंश्लक्ष्णयागिरा । मयावर्षसहस्रं तु निराहारं तपः कृतम्

इदानीं तुगृहे तस्य करिष्ये द्विजसत्तम । दशभिर्वाजिमेधैश्च येनेष्टं पारणं तथा ॥

इत्युक्तो देवदेवेनब्राह्मणो विस्मयान्वितः । उत्तमाङ्गंविधुन्वन्वै जगामस्वगृहंप्रति

एवंतेबहवोविप्राःप्रत्याख्यातेनिमन्त्रणे । पुराणार्थमजानन्तोनास्तिकाबहवोगताः

अथ कश्चिद् द्विजो विद्वान्पुराणार्थस्य तत्त्ववित् ।

[illegible]

यथैव गोऽपि ईप्सितोऽस्य मया ह संयुत । मतगाणि तयिष्यानुपुराणोत द्विजोत्तम
स्मृतिसंस्पुराणेषु यद्युक्तं तत्तथामयेन् । इतिनिश्चित्य संचिन्त्य महत्प्रिय ॥

मा मो द्विजं प्रतीक्षस्व यावदागमनं पुन ।
इत्युक्त्वा तु द्विजो गत्वा दयाभ्यंसेधिषं धाम् ॥ २६ ॥

स्नानं महा नमादि कृतेन द्विजसत्तमा । अर्थ धार्डनयादाने इत्यापर्मा पुराणत

संचन्त्य करिष्ये तत्र पुराणोक्तविधानत ।
समाचारपरितं तत्र मत्राऽर्घ्यौ निहितै द्विज ॥ २८ ॥
मयाऽऽगम्य द्विजं प्राह यात्रिमेध इतो मया ।
उत्तिष्ठ मे गृहं यावं भाजनार्थं हि गम्यताम् ॥ २९ ॥

इत्युक्त शङ्करलोनप्राह्मनाऽतिविधिम्मित । उपायप्राप्तमवेदैव इत्यार्थमित्यमितोगत

द्विजयर' कर्थ मया दया यथा महाबला ॥ ३१ ॥

द्विज उवाच

न विचारस्त्वयया काय इला यथा न मयायः ।
यदि यदा प्रमाणं मे श्रुति दया द्विजास्त्वया ॥ ३२ ॥

दयाश्चयधिषर्गामतथा मर्यद्विजोत्तम । यदि यद्पुराणोक्तं वाक्यनिसंशयमनेन्

तदा प्राप्तं मया मत्र नाऽत्र कार्या विचारणा ।
यथमुक्तस्तु त्वया भाविस्वयं तस्य येतम ॥ ३४ ॥

विमृश्य बहुभि विनिष्टुमर नक्षयन । नगाम महगृह स्वयं पठमल सनातनम् ॥
मप्राप्तं न द्विजभय ग्रापाया स्थपानमधयन । षडस्मभोजन नैनद्र्संपधायथाविधि
ततो भुक्त महादेव मयश्चमय शिर । पुष्पवृष्टि पपाताऽऽशु गगनात्तस्य मूर्द्धनि

तस्यास्मिस्मत नु मल य नुण प्रायाघ शङ्कर ॥ ३७ ॥

ईश्वर उवाच

किं तऽत्र क्रियता ब्रहि यत्राऽत्र द्विजोत्तम
अद्यमपि गाम्यामि एकचित्तस्य न ध्रुवम् ॥ ३८ ॥

ब्राह्मण उवाच

यदि प्रीतोऽसि मेदेवयदिदेयोवरो मम। अस्मिंस्तीर्थेमहादेव स्थानव्यं सर्वदैवहि
उपकाराय देवेश एष मे वर उत्तमः । एवमुक्तस्तु देवेन आरुरोह द्विजोत्तमः ॥

गन्धर्वाप्सरःसम्बाधं विमानं सार्वकामिकम्।
पूज्यमानो गतस्तत्र यत्र लोका निरामयाः ॥ ४१ ॥

मार्कण्डेय उवाच

एतदाश्चर्यमतुलं दृष्ट्वा देवी सुविस्मिता । विस्मयोत्फुल्लनयना पुनःपप्रच्छशङ्करम्

पार्वत्युवाच

कथमेतद्भवेत्सत्यं यत्रेदमसमञ्जसम् । स्नानं कुर्वन्ति बहवो लोका यत्र महेश्वर ॥
नेषां तु स्वर्गगमनं यथैव स्वर्गतिं गतः । कथमेतत्समाचक्ष्व विस्मयः परमो मम

एतच्छ्रुत्वा तु देवेशः प्रहस्यप्रत्युवाच ताम्।
वेदवाक्ये पुराणार्थे स्मृत्यर्थे द्विजभाषिते ॥ ४६ ॥

विस्मयो हिनकर्त्तव्योह्यनुमानंहितत्तथा । असंसाध्यंहिलोकानां पुराणेयत्प्रगीयते
यदि पक्षं पुरस्कृत्य लोकाः कुर्वन्ति पार्वति ॥
तस्मान्न सिद्धिरेतेषां भवत्येको न विस्मयः ॥ ४७ ॥

नास्तिका भिन्नमर्यादा ये निश्चयबहिष्कृताः।
तेषां सिद्धिर्न विद्येत आस्तिक्याद्भवते शुभम् ॥ ४८ ॥

श्रुत्वाख्यानमिदं देवीववन्देतीर्थमुत्तमम्। सर्वपापहरंपुण्यं नर्मदायांव्यवस्थितम्

मार्कण्डेय उवाच

दशाश्वमेधं राजेन्द्र सर्वतीर्थोत्तमोत्तमम्। तीर्थं सर्वगुणोपेतं महापातकनाशनम्
तत्रागता महाभागा स्नातुकामा सरस्वती।
पुण्यानां परमा पुण्या नदीनामुत्तमा नदी ॥ ५१ ॥
नाममात्रेण यस्यास्तु सर्वपापैः प्रमुच्यते।
स्नातास्तत्र दिवं यान्ति ये मृतास्तेऽपुनर्भवाः ॥ ५२ ॥

दशाश्वमेधे साराजनियताब्रह्मचारिणी । आराधयित्वा दवेशपरनिर्वाणमागती
कालुष्य ब्रह्मसभूतासवत्सरसमुद्भवम् । प्रक्षालयितुमायाति दशम्यामाश्विनस्यच
उपोष्य रजनीं ता तु सपूज्य त्रिपुरान्तकम् ।
राजनिष्कलमषा यान्ति श्वोभूते शाश्वत पदम् ॥ ५५ ॥

युधिष्ठिर उवाच

सरस्वती महापुण्या नदीनामुत्तमानदी । दशाश्वमेधमायाति स्नातुसवत्सरेसदा
किमधिकृत्य भवेत्तीर्थं दशम्या तत्र शस मे ॥ ५६ ॥

श्रीमार्कण्डेय उवाच

राजनाश्वयुजेमासि दशम्या तद्विशिष्यते। पार्थिवेषु चतीर्थे तुसर्वेष्वेव नराधिप
दशाश्वमेधिकेराजनित्यहि दशमीशुभा । विशेषादाश्विनेशुक्लामहापातकनाशिनी
तस्या स्नात्वाऽर्चयेद्देवानुपवासपरायण ।
श्राद्ध कृत्वा विधानेन पश्चात्सपूजयेच्छिवम् ॥ ५७ ॥

सम्प्रस्था पूजयेद्देवीं स्नातुकामा सरस्वतीम् । नमो नमस्ते देवेशि ब्रह्मदेहसमुद्भवे
कुरु पापक्षय देवि ससाराम्मा समुद्धर । गन्धधूपैश्च सपूज्य ह्यर्घ दत्वा पुन पुन
दश प्रदक्षिणा दत्वा सूत्रेण परिवेष्टयेत् । कपिला तुततोविप्रे दद्याद्विगतमत्सर
सर्वलक्षणसपन्ना सर्वोपस्करसयुताम् । दत्त्वा विप्राय कपिलान शोचतिकृताकृते
पश्चाज्जागरण कुर्याद्घृतेनोज्वाल्यदीपकम् । पुराणपठनेनैव नृत्यगीतविवादनै
वेदोक्तैश्चैव जाप्यैश्चपूजयेच्छशिशेखरम् । प्रभातेविमले पश्चात्स्नात्वार्चेनमदाजले
ब्राह्मणान्भोजयेद्भक्त्या शिवभक्ताश्च योगिन ।
एव कृत्न ततो राजन्सम्यक्तीर्थफल लभेत् ॥ ६६ ॥

तत्र तीर्थे तु य स्नात्वा पूजयेच्छङ्करनर । दशाश्वमेधावभृथ लभते पुण्यमुत्तमम्
पूतात्मा तेन पुण्येन रुद्रलोक स गच्छति ।
आरूढ परम यान कामग च सुशोभनम् ॥ ६८ ॥
तत्र दिव्याऽप्सरोभिस्तु वीज्यमानोऽथ चामरै ।

क्रीडते सुचिरं कालं जयशब्दादिमङ्गलैः ॥ ६६ ॥
ततोऽवतीर्णः कालेन इहराजाभवेद्ध्रुवम् । हस्त्यश्वरथसंपन्नो महाभोगी परंतपः
दशाश्वमेधे यद्दानं दीयते शिवयोगिनाम् । दशाश्वमेधसदृशं भवेत्तन्नाऽत्र संशयः
सर्वेषामेव यज्ञानामश्वमेधो विशिष्यते ।
दुर्लभः स्वल्पवित्तानां भूरिशः पापकर्मणाम् ॥ ७२ ॥
तत्र तीर्थेतु राजेन्द्रदुर्लभोऽपिसुरासुरैः । प्राप्यतेस्नानदानेन इत्येवंशङ्करोऽब्रवीत्
अकामो वा सकामो वा मृतस्तत्र नरेश्वर ।
देवत्वं प्राप्नुयात्सोऽपि नाऽत्र कार्या विचारणा ॥ ७४ ॥
अग्निप्रवेशं यः कुर्यात्तत्र तीर्थेनरोत्तम । अग्निलोके वसेत्तावद्यावदाभूतसम्प्लवम् ॥
जलप्रवेशंयः कुर्यात्तत्र तीर्थे नराधिप । ध्यायमानो महादेवंवारुणंलोकमाप्नुयात्
दशाश्वमेधे यः कश्चिच्छूरवृत्त्या तनुं त्यजेत्
अक्षया तु गतिस्तस्य इत्येवं श्रुतिनोदना ॥ ७७ ॥
न तां गतिं यान्ति भृगुप्रपातिनो न दण्डिनो नैव च सांख्ययोगिनः ॥
ध्वजाकुले दुन्दुभिशंखनादिते क्षणेन यां यान्ति महाहवे मृताः ॥ ७८॥
यत्र तत्र हतःशूरः शत्रुभिः परिवेष्टितः । अक्षयाँल्लभतेलोकान्यदि क्लीवं न भाषते
दशाश्वमेधे संन्यासं यः करोति विधानतः ।
अनिवर्त्तिका गतिस्तस्य रुद्रलोकात्कदाचन ॥ ८० ॥
दशाश्वमेधे यत्पुण्यं संक्षेपेणयुधिष्ठिर । कथितं परया भक्त्यासर्वपापप्रणाशनम्
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे रेवाखण्डे दशाश्वमेधतीर्थमाहात्म्यवर्णनंनामाशीत्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥

एकाशीत्यधिकशततमोऽध्याय

भृगुकच्छोत्पत्तिवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

अत परम्प्रवक्ष्यामि भृगुतीर्थस्य विस्तरम् । यच्छ्रुत्वाब्रह्महागोघ्नोमुच्यतेसर्वपातकै
तत्रतीर्थे तुविख्यात धूतपापमितिस्थितम् । भृगुणातत्र राजेन्द्रतपस्तप्त पुराकिल

युधिष्ठिर उवाच

भृगुकच्छे सविप्रेन्द्रो नियतस्थेनहेमुना । तपस्तप्त्वासुविपुलपरा सिद्धिमुपागत

को वा भृग इति प्रोक्तस्तस्मात् येन स्थानितम् ।

एतत्सर्वं यथान्याय कथयस्व ममाऽनघ ॥ ४ ॥

श्रीमार्कण्डेय उवाच

एष प्रश्नो महाराजयस्त्वया परिपृच्छित । तत्सर्वंकथयिष्यामि भृगुर्येकमनानृप
षष्ठस्तु ब्रह्मण पुत्रो मानसो भृगुसत्तम । तपश्चचार विपुलर्थावृते क्षेत्र उत्तमे ॥

दिव्यं वर्षसहस्रं तु सशुष्को मुनिसत्तम ।

निराहारो निरानन्द काष्ठपाषाणवत्स्थित ॥ ७ ॥

तत कदाचिद्वृषेशोविमानवरमास्थित । उमयासहित श्रीमास्तेनमार्गेणचागत
दृष्ट्वा तत्र महाभाग भृगु वल्मीकवत्स्थितम् । उवाच देवीदेवेशकिमिदृश्यतेप्रभो

ईश्वर उवाच

भृगुनाम महादेवि तपस्तप्त्वा सुदारुणम् । दिव्यवर्षसहस्रं तुमम ध्यानपरायण
जलबिन्दु कुशाग्रेण मासेमासे पिबेत्स । सम्यक्स्मरणात्र तिष्ठते च वरानने
तच्छ्रुत्वा वचन गौरीक्रोधसंवर्तितेक्षणा । उवाचदेवी देवेश शूलपाणि महेश्वरम

सत्यमुग्रोऽसि लोके त्व ख्यापितो वृषभध्वज ।

निष्कारुण्यो दुराराध्य सर्वभूतभयङ्कर ॥ १३ ॥

दिव्यं वर्षसहस्रं तु ध्यायमानस्यशङ्करम्। ब्राह्मणस्यवरं कस्मान्नप्रयच्छसिशंसमे
एवमुक्तोऽथ देवेशः प्रहस्य गिरिनंदिनीम्। उवाच नरशार्दूल!मेवगम्भीरयागिरा
स्त्री विनश्यति गर्वेणतपः क्रोधेननश्यति। गावो दूरप्रचारेणशूद्रान्नेन द्विजोत्तमाः

क्रोधान्वितो द्विजो गौरि! तेन सिद्धिर्न विद्यते।
धर्मायुतैस्तथा लक्षैर्न किञ्चित्कारणं प्रिये!॥ १७॥
एवंभूतस्य तस्याऽपि क्रोधस्य चरितं महत्।
एवमुक्त्वा ततः शम्भुर्वृषं दध्यौ च तत्क्षणे॥ १८॥

वृषोहि भगवन्ब्रह्मा वृषरूपी महेश्वरः। ध्यानप्राप्तः क्षणादेव गर्जयन्वै मुहुर्मुहुः॥
किंकरोमि सुरश्रेष्ठ ध्यातःकेनैव हेतुना। करोमि कस्य निधनमकाले परमेश्वर!॥

ईश्वर उवाच

कोपयस्व द्विजश्रेष्ठं गत्वा त्वंभृगुसत्तमम्। येनमे श्रद्दधत्येषा गौरीलोकैकसुन्दरी

एतच्छ्रुत्वा वृषो गत्वा धर्षणार्थं द्विजोत्तमम्।
नर्मदायास्तटे रम्ये समीपे चाऽऽश्रमे भृगुः॥ २२॥

ततः शृंगैर्गृहीत्वा तुप्रक्षिप्तोनर्मदाजले। ततःक्रुद्धो भृगुस्तत्र दण्डहस्तोमहामुनिः
पशुवत्ते वधिष्यामि दण्डघातेनमस्तके। शिखायज्ञोपवीते च परिधानं वरासने

सुसंवृतं कृतं तेन धावन्वै पृष्ठतोऽब्रवीत्॥ २५॥

भृगुरुवाच

पापकर्मन्दुराचार कथंयास्यसिमेवृष। अवमानं समुत्पाद्य कृत्वा गर्त्तं खुरैस्तथा
गर्जयित्वामहानादंततो विप्रमपातयत्। आत्मानं पालितंज्ञात्वावृषेणपरमेष्ठिना
भृगुः क्रोधेनजज्वाल हुताहुतिरिवानलः। करेगृह्य महादण्डं ब्रह्मदण्डमिवाऽपरम्
हन्तुकामो वृषंविप्रोभ्यधावत युधिष्ठिर। धावमानं ततो दृष्ट्वास वृषः पूर्वसागरे
जम्बूद्वीपं कुशं क्रौञ्चं शाल्मलिंशाकमेवच। गोमेदंपुष्करंप्राप्तः पूर्वतोदक्षिणापथम्
उत्तरं पश्चिमं चैवद्वीपाद्द्वीपं नरेश्वर। पातालं सुतलं पश्चाद्वितलंच तलातलम्॥

तामिस्रमन्धतामिस्रं पातालं सप्तमं ययौ।

ततो जगाम भूर्लोकं प्राणार्थी स द्विजोत्तम ॥३२॥
भुवः स्वश्चैव च महस्तपः सत्यं जनस्तथा।
अनुगम्यमानो विप्रेण न शर्म लभते क्वचित् ॥ ३३ ॥
पाप कृत्यैव पुरुषः कामक्रोधबलार्दितः। ततो जगाम शरणं ब्रह्माणं विष्णुमेव च ।
इन्द्रं चन्द्रं तथाऽऽदित्यैर्यमवारुणमारुतैः।
यदा सर्वैः परित्यक्तो लोकालोके सुरेश्वरैः ॥ ३५ ॥
तदा देव नमस्कृत्वा रक्षरक्षस्वचाऽब्रवीत्। वध्यमानमहादेवो भृगुणा परमेष्ठिन
सकलोकैः परित्यक्तमनाथमिव तं प्रभो। दृष्ट्वा श्रान्तं नृप देव पतितं चरणाग्रत
ततः प्रोवाच भगवान्स्मितपूर्वमिदं वचः ॥ ३८ ॥

ईश्वर उवाच

पश्य देवि! महाभाग! शमं विप्रस्य सुन्दरि! ॥ ३९ ॥

पार्वत्युवाच

यावद्विप्रोमयास्माकं कुप्यते परमेश्वर!। तावद्वरप्रदश्चाऽऽशुयदिचेच्छसिमत्प्रियः
ततो भस्मी जटी शूली चन्द्रार्धकृतशेखरः। उमार्धदेहोभगवान्भूत्वा विप्रमुवाच
भोभोद्विजवरश्रेष्ठक्रोधस्तेनशमंगतः। यस्मात्तस्मादिदंतातक्रोधस्थानं भविष्यति
ततो दृष्ट्वा च तं शम्भुं भृगु श्च त्रिलोचनम्।
जानुभ्यामवनिं गत्वा इदं स्तोत्रमुदीरयन् ॥ ४३ ॥

भृगुरुवाच

प्रणिपत्य भूतनाथं भवोद्भवं भूतिदं भयातीतम्।
भवभीतो भुवनपते! विज्ञप्तुं किञ्चिदिच्छामि ॥ ४४ ॥
त्वद्गुणनिकरान्वक्तुं का शक्तिर्मानुषस्यास्य।
वासुकिरपि न तावद्वक्तुं वदनसहस्रं भवेद्यस्य ॥ ४५ ॥
भक्त्या तथाऽपि शङ्कर! शशिधर! करजालधवलिताशेष!।
स्तुतिमुखरस्य महेश्वर! प्रसीद तव चरणनिरतस्य ॥ ४६ ॥

सत्त्वं रजस्तमस्त्वं स्थित्युत्पत्तिविनाशनं देव !।
भवभीतो भुवनपते भुवनेश! शरणनिरतस्य ॥ ४७ ॥
यमनियमयज्ञदानं वेदाभ्यासश्च धारणायोगः।
त्वद्भक्तेः सर्वमिव नार्हन्ति वै कलासहस्रांशम् ॥ ४८ ॥
उत्कृष्टरसरसायनखड्गाञ्जनविवरपादुकासिद्धिः।
चिह्नं हि तव नतानां दृश्यत इह जन्मनि प्रकटम् ॥ ४९ ॥
शाठ्ये न यदि प्रणमति वितरसि तस्याऽपि भृतिमिच्छया देव !।
भवति भवच्छेदकरी भक्तिर्मोक्षाय निर्मिता नाथ !॥ ५० ॥
परदारपरस्वरतं परपरिभवदुःखशोकसन्तप्तम्।
परवदनवीक्षणपरं परमेश्वर! मां परित्राहि ॥ ५१ ॥
अधिकाभिमानमुदितं क्षणभङ्गुरविभवविलसन्तम्।
क्रूरं कुपथाभिमुखं शङ्कर! शरणागतं परित्राहि ॥ ५२ ॥
दीनं द्विजं परार्थे बन्धुजनेनैव पूरिता आशा।
छिन्धि महेश्वर! तृष्णां किं मूढं मां विडम्बयसि ॥ ५३ ॥
तृष्णां हरस्व शीघ्रं लक्ष्मीं दद हृदयवासिनीं नित्यम्।
छिन्धि मदमोहपाशं मामुत्तारय भवाच्च देवेश !॥ ५४ ॥
करुणाभ्युदयं नाम स्तोत्रमिदं सर्वसिद्धिदं दिव्यम्।
यः पठति भृगुं स्मरति च शिवलोकमसौ प्रयाति देहान्ते ॥ ५५ ॥
एतच्छ्रुत्वा महादेवः स्तोत्रं च भृगुभाषितम्।
उवाच वरदोऽस्मीति देव्या सह वरोत्तमम् ॥ ५६ ॥

भृगुरुवाच

प्रसन्नो देवदेवेश! यदि देयो वरो मम। सिद्धिक्षेत्रमिदं सर्वं भविता मम नामतः॥
भवद्भिः सन्निधानेन स्थातव्यं हि सहोमया। देवक्षेत्रमिदंपुण्यंयेनसर्वम्भविष्यति
अत्र स्थाने महास्थानं करोमि जगदीश्वर। तवप्रसादाद्देवेश पूर्यन्तांमे मनोरथाः

ईश्वर उवाच

श्रियारत्नमिदं पूर्वं किं न ज्ञातं त्वया द्विज। अनुमान्य श्रियं देवीं यदीयं मन्यते भवान्
कुरुष्व यदभिप्रेतं त्वत्कृतं न तदन्यथा।
एवमुक्त्वा गते देवे स्नात्वा गत्वा भृगुः श्रियम् ॥ ६१ ॥
कृत्वा च पारणं तत्र च सन्निविष्टस्तया सह। श्रियाचसहितः काले इदं वचनमब्रवीत्

भृगुरुवाच

यदि मे रोचसे भद्रे! दुःखासीनं च मे यदि।
त्वया गृहे महाक्षेत्रे स्थीयं स्थानं करोम्यहम् ॥ ६२ ॥

श्रीरुवाच

ममनाम्ना तु विप्रर्षे तव नाम्ना तु शोभनम्। स्थानं कुरुष्वाभिप्रेतमविरोधेन मे मतिः

भृगुरुवाच

कच्छपाधिष्ठितं ह्येतत्तस्य पृष्ठिगतं त्वमे। समस्त्वं सहितं तेन शोभनं भवती कुरु
इति श्रीस्कान्देमहापुराणएकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
रेवाखण्डे भृगुकच्छोत्पत्तिवर्णनं नामैकाशीत्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥

द्व्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

भृगुकच्छतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो भृगुः श्रिया चैव समेतः कच्छपं गतः। अभिवन्द्य यथान्यायमुवाच वचनं शुभम्
त्वया पुना धरा सर्वा तथा लोकाश्चराचराः।
त्वं च पुण्यभावत्वात्स्थितस्तत्र महामते ॥ २ ॥
चातुर्विद्यस्य स्थानं करोमि रमया सह। यदि त्वमन्यसे देव तदादेशय माविभो

कूर्म उवाच

एवमेवद्विजश्रेष्ठ ममनामाङ्कितं पुरम् । भविष्यति महत्कालं ममोपरिसुसंस्थितम्

अचलं सुस्थिरं तात न भीःकार्या सुलोचने !।

एतच्छ्रुत्वा शुभं वाक्यं कच्छपस्य मुखाच्च्युतम् ॥ ५ ॥

नन्दनेवत्सरे माघे पञ्चम्यां भरतर्षभ । शस्ते नु हा त्तरायोगेकुम्भस्थे शशिमण्डले

रेवाया उत्तरे तीरे गम्भीरे चारुवारुणि । प्रागुदक्प्रवणेदेशे कोटितीर्थसमन्वितम्

क्रोशप्रमाणं तत्क्षेत्रं प्रासादशतसङ्कुलम् । अचिरेणैवकालेन तपोबलसमन्वितः ॥

विचिन्त्य विश्वकर्माणं चकार भृगुसत्तमः ॥ ६ ॥

ब्राह्मणा वेदविद्वांसो क्षत्रिया राज्यपालकाः ।

वैश्या वृत्तिरतास्तत्र शूद्राः शुश्रूपकास्त्रिपु ॥ १० ॥

एवं श्रिया वृतं क्षेत्रं परमानन्दनन्दितम् । निर्मितं भृगुणातातसर्वपातकनाशनम्

इति भृगुकच्छोत्पत्तिः

मार्कण्डेय उवाच

ततःकालेन महता कस्मिंश्चित्कारणान्तरे ।

देवलोकंःजगामाशु लक्ष्मीऋ षिसमागमे ॥ १२ ॥

समर्प्य कुञ्चिकाट्टालं भृगवे ब्रह्मवादिने । पालयस्व यथार्थं चे स्थानकं ममसुव्रत

देवकार्याण्यशेषाणि कृत्वा श्रीः पुनरागता ।

आजगाम रमा देवी भृगुकच्छं त्वरान्विता ॥ १४ ॥

प्रार्थितं कुञ्चिकाट्टालंःस्वगृहं स्वपरिग्रहम् ।

भृगुर्यदा तदा पार्थ! मिथ्या नास्ति तदाऽवदत् ॥ १५ ॥

एवं विवादः सुमहान्सञ्जातश्च नरेश्वर । ममेति मम चैवेति परस्परसमागमे ॥१६

ततः कालेन महता भृगुणा परमर्षिणा ।

चातुर्विद्यप्रमाणार्थं चकार महतीं स्थितिम् ॥ १७ ॥

अस्मदीयं यथा सर्वं नगरंमृगलोचने । चातुर्विद्या द्विजाःसर्वेतथाजानन्तिसुन्दरि

ईश्वर उवाच

श्रियाकृतमिदं पूर्वं किं न ज्ञातत्वयाद्विज । अनुमान्यश्रिय देवीं यदीयमन्यतेभवान्
कुरुष्व यदभिप्रेत त्वत्कृत न तदन्यथा ।
एवमुक्त्वा गते देवे ज्ञात्वा गत्वा भृगु श्रियम् ॥ ६१ ॥
कृत्वा च पारण तत्रचसन्निधमस्तया सह । श्रियाचसहित काल इदं वचनमब्रवीत्

भृगुरुवाच

यदि ते रोचते भद्रे तु चासीनं च ते यदि ।
त्वया कृते महाक्षेत्रे स्वीय स्थान करोम्यहम् ॥ ६३ ॥

श्रीरुवाच

ममनाम्ना तु विप्रर्षेतवनाम्ना तु शोभनम् । स्थान कुरुष्वाभिप्रेतमविरोधेनमेमति

भृगुरुवाच

कच्छपाधिष्ठित ह्येतत्तस्य पृष्ठिगने रमे । समन्त्य सहित तेन शोभन भवती कुरु
इति श्रीस्कान्देमहापुराणएकाशीतिसाहस्र्यासंहितायापञ्चमेऽवन्तीखण्डे
रेवाखण्डे भृगुकच्छोत्पत्तिवर्णन नामैकाशीत्युत्तरशततमोऽध्याय ॥

द्व्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

भृगुकच्छतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो भृगु श्रिया चैव समेत कच्छपगत । अभिनन्द्य यथान्यायमुवाचवचनशुभम्
त्वया धृता धरा सर्वा तथा लोकाश्चराचरा ।
तथैव पुण्यभावत्वात्स्थितस्तत्र महामने ॥ २ ॥
चातुर्विद्यस्य सस्थान करोमि रमया सह । यदित्वमन्यसेदेव तदादेशयमाविभो

भृगुरुवाच

शापयित्वा द्विजान्सर्वान्पुरा लक्ष्मीर्विनिर्गता।
अपवित्रमिदं चोक्त्वा ततो देवा विनिर्गताः॥ ३३॥

ईश्वर उवाच

पुरा मयायथाप्रोक्तंतत्तथा न तदन्यथा। क्रोधस्थानमसन्देहंतथाऽन्यदपितच्छृणु
तत्र स्थानसमुद्भूता महद्भयविवर्जिताः। ब्राह्मणामत्प्रसादेन भविष्यन्तिनसंशयः
वेदविद्याव्रतस्नाताः सर्वशास्त्रविशारदाः।
येऽपि ते शतसाहस्रास्त्वरिता ह्यागतास्त्विह॥ ३६॥
अपठस्यापि मूर्खस्य सर्वावस्थांगतस्य च। उत्तरादुत्तरंशक्तो दातुंन तु भृगूत्तम
कोटितीर्थमिदं स्थानं सर्वपापप्रणाशनम्। अद्यप्रभृतिविप्रेन्द्र भविष्यतिन संशयः
मत्प्रसादाद्देवगणैः सेवितश्च भविष्यति। भृगुक्षेत्रे मृताये तु कृमिकीटपतङ्गकाः
वासस्तेषां शिवे लोके मत्प्रसादाद्भविष्यति।
वृषखाते नरः स्नात्वा पूजयित्वा महेश्वरम्॥ ४०॥
सर्वमेधस्य यज्ञस्य फलंप्राप्नोत्यसंशयम्। भृगुतीर्थेनरः स्नात्वा तर्पयेत्पितृदेवताः
तस्य ते द्वादशाब्दानि शान्ति गच्छन्ति तर्पिताः।
दधिक्षीरेण तोयेन घृतेन मधुना सह॥ ४२॥
येस्नपन्तिविरूपाक्षंतेषां वासस्त्रिविष्टपे। मत्प्रसादाद्द्विजश्रेष्ठसर्वदेवानुसेवितम्
भविष्यति भृगुक्षेत्रं कुरुक्षेत्रादिभिः समम्।
मार्त्तण्डग्रहणे प्राप्ते यवं कृत्वा हिरण्मयम्॥ ४४॥
दत्त्वा शिरसि यः स्नाति भृगुक्षेत्रे द्विजोत्तम!।
अविचारेण तं विद्धि संस्नातं कुरुजाङ्गले॥ ४५॥
अहं चैव वसिष्यामि अम्बिका च मम प्रिया।
सर्वदुःखापहा देवी नाम्ना सौभाग्यसुन्दरी॥ ४६॥
वसिष्यामि तया देव्या सहितो भृगुकच्छके।

धर्मउवाच

प्रमाणमम विप्रेन्द्र धातुर्वण्या न संशयः । मदीयंवात्वदीयंवाक्यमस्तुद्विजोत्तमाः
तत समस्तैर्विबुधै सम्यधार्यपरस्परम् । द्विधातैर्वाक्यमस्यत्दृष्ट्वाब्राह्मणान्नृपसंहितम्
अष्टादशसहस्राणि नोचुर्वै किञ्चिदुत्तरम् । अष्टादशसहस्रेषु भृगुकोपमयान्नृप ॥

उक्तं च तान्क हस्ते यस्य तस्येदमुत्तरम् ॥ २१ ॥

एतच्छ्रुत्वा तु सा देवी निगम नैगमं कृतम् ।

क्रोधेन महताविष्टा शशाप द्विजपुङ्गवान् ॥ २८ ॥

श्रीदेव्युवाच

यस्मात्सत्यं समुत्सृज्य लोभोपहतमानसैः ।

मदीयं लोपितं स्थानं तस्माच्छृण्वन्तु मे गिरम् ॥ २३ ॥

त्रिपौरुषामनैर्विद्याविपुलन भनेऽवनम् । न द्वितीयस्तुयोवेद पठितोभयतिद्विजा

गृहाणि न द्विभौमानि न च भूतिः स्थिरा द्विजा ।

एभयानन यो धर्मो न च निःश्रेय भावत ॥ २० ॥

इणे गोत्रजन कश्चिल्लोभेनावृतमानस । न च द्वैध परित्यज्य हे क्सत्यमभविष्यति
अद्यप्रभृति सर्वगामहङ्कारो द्विजन्मनाम् । न पितापुत्रवाक्येन न पुत्र पितृकर्मपि
अहङ्कारकृता सर्व भविष्यन्तिनसंशय । इति जप्त्वा रमादेवी तदैव च दिवं ययौ

ततो गताया वै लक्ष्म्या देवाब्रह्मर्षयोऽमला ।

क्रोधलोभमिदं स्थानं तेऽपि त्यक्त्वा दिवं ययु ॥ २९ ॥

गता दृष्ट्वा ततो देवामृषाश्चैव तपोधनान् ।

भृगुश्च परमंप्रा स विषादमगमत्परम् ॥

प्रसादयामास पुनः शङ्करं त्रिपुरान्तकम् ॥ ३० ॥

तपसा महता पार्थ ततस्तुष्टो महेश्वर । उवाच वचनं काले हर्षयन्भृगुमुत्तमम्॥

किं विषण्णोऽसि विप्रेन्द्र' किं वा सन्तापकारणम् ।

मयि प्रसन्नेऽपि तव ह्येतत्कथय मेऽनघ ॥ ३२ ॥

स याति परमं लोकमिति रुद्रः स्वयं जगौ ॥ ६३ ॥
देवखाते नरः स्नात्वा पिण्डदानादिसत्क्रियाम् ।
यां करोति नृपश्रेष्ठ! तामक्षयफलां विदुः ॥ ६४ ॥
य इमं शृणुयाद्भक्त्या भृगुकच्छस्य विस्तरम् ।
कोटितीर्थफलं तस्य भवेद्वै नाऽत्र संशयः ॥ ६५ ॥

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे रेवाखण्डे भृगुकच्छतीर्थमाहात्म्यवर्णनंनाम द्व्यशीत्युत्तरशततमोऽध्यायः

त्र्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

केदारेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

अतःपरंमहाराजगच्छेत्केदारसञ्ज्ञकम् । यत्रगत्वामहाराजश्राद्धं कृत्वा पिवेज्जलम्
सम्पूज्य देवदेवेशं केदारोत्थं फलं लभेत् ॥ १ ॥

युधिष्ठिर उवाच

कथमत्र सुरश्रेष्ठ केदाराख्यः स्थितः स्वयम् । उत्तरे नर्मदाकूले एतद्विस्तरतोवद

श्रीमार्कण्डेय उवाच

पुरा कृतयुगस्याऽऽदौ शङ्करस्तुमहेश्वरः । भृगुणाराधितःशप्तःश्रियाचभृगुकच्छके
अपवित्रमिदंक्षेत्रं सर्ववेदविवर्जितम् । भविष्यति नृपश्रेष्ठ गतेत्युक्त्वा हरिप्रिया
तपश्चचार विपुलं भृगुर्वर्षसहस्रकम् । वायुभक्षो निराहारश्चिरं धमनिसन्ततः ॥
ततःप्रत्यक्षतामागाल्लिङ्गीभूतोमहेश्वरः । प्रादुर्भूतस्तुसहसाभित्त्वापातालसप्तकम्
ददर्शाऽथ भृगुर्देवमौत्पलीं कलिकामिव ।
स्तुतिं चक्रे स देवाय स्थाणवे त्र्यम्बकेति च ॥ ७ ॥

एवमुक्त्वा स्थितो देवो भृगुकच्छेऽम्बिका तथा ॥ ४७ ॥
भृगुस्तु स्वपुरं प्रायाद् ब्रह्मघोषनिनादितम् ।
ऋग्यजुःसामघोषेण ह्याथर्वणनिनादितम् ॥ ४८ ॥
तत्रतीर्थेतुयः स्नात्वा पूजयेद् भृगुसत्तमम् । स याति शिवसायुज्यमित्येवं शङ्करोऽब्रवीत्
तत्र तीर्थे तु यः स्नात्वा चैत्रे मासि समाचरेत् ।
दद्याच्च लवणं चित्रे पूज्य सौभाग्यसुन्दरीम् ॥ ५० ॥
साभूद्धिरण्यं विप्रेभ्य प्रार्थयेत् ललितां शिवाम् । न दुःखदुर्भगत्वञ्च वियोगं पतिना सह
प्राप्नोति नारी राजेन्द्र भृगुनार्याः प्रसादेन च । यस्तु नित्यं भृगुं देवं पश्येद्वै पाण्डुनन्दन
आब्रह्मसदनं यावत्तत्रस्थैर्देवतैः सह । यत्फलं समवाप्नोति तच्छृणुष्व नृपोत्तम ॥
सुवर्णशृङ्गां कपिलां पयस्विनीं साध्वीं सुशीलां तरुणीं सवत्साम् ।
दत्त्वा द्विजे संयमतोपपन्ने फलं च यत्स्यात्तदिहैव नूनम् ॥ ५४ ॥
समाः सहस्राणि तु सप्त वै जले त्रियेत्भेद्द्वादशवह्निमध्ये ।
ध्यानस्तु शस्त्रहत्या नरेन्द्र शक्राऽतिथ्यं याति वै मर्त्यधर्मा ॥ ५५ ॥
आख्यानमेतच्च सदा यशस्यं स्वर्ग्यं धन्यं पुण्यमायुष्यकारि ।
*रण्यलुभे मत्वमेतद्धि भक्त्या पर्वणि पर्वण्याजमीढस्तदैव ॥ ५६ ॥
सन्यासं कुरुते यस्तु भृगुतीर्थे विधानतः । स मृतः परमस्थानं गच्छेद्वैयच्चदुर्लभम्
एतच्छ्रुत्वा भृगुश्रेष्ठोदेवदेवेनभाषितम् । महाप्रसन्नो भूत्वा तत्रैव संस्थितो द्विजः
तिरोभावं गते देवे भृगुश्रेष्ठो द्विजोत्तम ।
स्वमूर्तिं तत्र मुक्त्वा तु ब्रह्मलोकं जगाम ॥ ५९ ॥
भृगुकच्छस्य चोत्पत्तिः कथिता तव पाण्डव ।
संक्षेपेण महाराज सर्वपापप्रणाशनी ॥ ६० ॥
एतत्पुण्यं पापहरं क्षेत्रं देवेन कीर्तितम् । चतुर्युगसहस्रेण पितामहदिनं स्मृतम् ॥
प्राप्ते ब्रह्मदिने विप्रा नायं नेयुगसम्भवः । न पश्यामि त्विदं क्षेत्रमिति रुद्रः स्वयं जगौ
यः शृणोति त्विदं भक्त्या नारी वा पुरुषोऽपि वा ।

स याति परमं लोकमिति रुद्रः स्वयं जगौ ॥ ६३ ॥
देवखाते नरः स्नात्वा पिण्डदानादिसत्क्रियाम् ।
यां करोति नृपश्रेष्ठ! तामक्षयफलां विदुः ॥ ६४ ॥
य इमं शृणुयाद्भक्त्या भृगुकच्छस्य विस्तरम् ।
कोटितीर्थफलं तस्य भवेद्वै नाऽत्र संशयः ॥ ६५ ॥

इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे रेवाखण्डे भृगुकच्छतीर्थमाहात्म्यवर्णनंनाम द्व्यशीत्युत्तरशततमोऽध्यायः

त्र्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

केदारेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

अतःपरंमहाराजगच्छेत्केदारसञ्ज्ञकम् । यत्रगत्वामहाराजश्राद्धं कृत्वा पिबेज्जलम्
सम्पूज्य देवदेवेशं केदारोत्थं फलं लभेत् ॥ १ ॥

युधिष्ठिर उवाच

कथमत्र सुरश्रेष्ठ केदाराख्यः स्थितः स्वयम् । उत्तरे नर्मदाकूले एतद्विस्तरतोवद

श्रीमार्कण्डेय उवाच

पुरा कृतयुगस्याऽऽदौ शङ्करस्तुमहेश्वरः । भृगुणाराधितःशप्तःश्रियाचभृगुकच्छके
अपवित्रमिदंक्षेत्रं सर्ववेदविवर्जितम् । भविष्यति नृपश्रेष्ठ गतेत्युक्त्वा हरिप्रिया
तपश्चचार विपुलं भृगुर्वर्षसहस्रकम् । वायुभक्षो निराहारश्चिरं धमनिसन्ततः ॥
ततःप्रत्यक्षतामागाल्लिङ्गीभूतोमहेश्वरः । प्रादुर्भूतस्तुसहसाभित्त्वापातालसप्तकम्
ददर्शाऽथ भृगुर्देवमोत्पलीं कलिकामिव ।
स्तुतिं चक्रे स देवाय स्थाणवे त्र्यम्बकेति च ॥ ७ ॥

एवं स्तुतः स भगवान्प्रोवाच प्रहसन्निव । पुनः पुनर्भृगुं भक्तं किन्नु प्रार्थयसे॥

भृगुरुवाच

पशुक्रोशमिदं क्षेत्रं यत्त्वया शापितं विभो । अपवित्रमिदं क्षेत्रं सर्वक्षेत्रविवर्जितम्
भविष्यतीति च प्रोच्य गता देवी दिवं प्रति ॥ ६ ॥

पुनः पवित्रतां याति यथेदं क्षेत्रमुत्तमम् । तथा कुरु महेशान प्रसन्नो यदि शं

ईश्वर उवाच

केदाराख्यमिदं ब्रह्मन् लिङ्गमाद्यं भविष्यति ।
इत्यवमादिलिङ्गानि भविष्यन्ति द्विजोत्तम हि ॥ ११ ॥

एकादशानन्दरूपाण्यन्तर्बहि क्षेत्रमध्ये भविष्यति । पा(ल)यिष्यन्ति तत्क्षेत्रमेकादशास्ययवि
तथा वै द्वादशादित्या मत्प्रसादात्तु भूमिप ।
वसिष्यन्ति भृगुक्षेत्रे रोगदुःखनिबर्हणाः ॥ १३ ॥

दुर्गा एकादश तथा क्षेत्रपालास्तु षोडश । भृगुक्षेत्रे भविष्यन्ति यदिमप्राक्षमार
पवित्रीकृतमतदि नित्यं क्षेत्रं भविष्यति ।

माघमासे तु पक्षकाले स्नात्वा भरत जितेन्द्रिय ॥ १५ ॥

यः पूजयति केदारं स गच्छेच्छिवमन्दिरम् ।
तस्मिंस्तीर्थे नरः स्नात्वा पितृनुद्दिश्य भारत ।
श्राद्धं ददाति विधिवत्तस्य प्रीताः पितामहाः ॥ १६ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
रेवाखण्डे केदारेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम त्र्यशीत्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥

चतुरशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

धौतपापतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

धौतपापं ततो गच्छेद्भृगुतीर्थसमीपतः । वृषेणतु भृगुस्तत्र भूयोभूयोभुतस्ततः

धौतपापं तु तत्तेन नाम्नालोकेपुविश्रुतम् । तत्र स्थितोमहादेवस्तुष्ट्यर्थंभृगुसत्तमे

तत्र तीर्थे तु यः स्नात्वा शाठ्येनाऽपि नरेश्वर !।

मुच्यते सर्वपापेभ्यो नाऽत्र कार्या विचारणा ॥ ३ ॥

यस्तु सम्यग्विधानेन तत्र स्नात्वाऽर्चयेच्छिवम् ।

देवान्पितॄन्समभ्यर्च्य मुच्यते सर्वपातकैः ॥ ४ ॥

ब्रह्महत्या गवांवध्या तत्रतीर्थे युधिष्ठिर । प्रविशेन्नसदाभीताप्रविष्टापिक्षयम्व्रजेत्

युधिष्ठिर उवाच

आश्चर्यभूतं लोकेऽस्मिन्कथयस्वद्विजोत्तम । प्रविशेन्नब्रह्महत्यायथार्थंधौतपाप्मनि

ब्रह्महत्यासमं पापं भविता नेह किञ्चन । कथं वा धौतपापे तु प्रविष्टं नश्यते द्विज

एतद्विस्तरतः सर्वं पृच्छामि वद कौतुकात् ॥ ७ ॥

मार्कण्डेय उवाच

आदिसर्गे पुरा शम्भुर्ब्रह्मणः परमेष्ठिनः । विकारंपञ्चमंदृष्ट्वा शिरोऽश्वमुखसन्निभम्

अङ्गुष्ठाङ्गुलियोगेन तच्छिरस्तेनकृन्तितम् । कृत्तमात्रे तु शिरसिब्रह्महत्याऽभवत्तदा

ब्रह्महत्यायुतश्चासीदुत्तरे नर्मदातटे । धुनितं तु यतो राजन्वृषेण धर्म्ममूर्त्तिना ॥

तत्र धौतेश्वरीं देवीं स्थापितां वृषभेण तु ।

ददर्श भगवाञ्छम्भुः सर्वदैवतपूजिताम् ॥ ११ ॥

दृष्ट्वाधौतेश्वरीं दुर्गां ब्रह्महत्याविनाशिनीम् । तत्रविश्रममाणश्चशङ्करस्त्रिपुरान्तकः

स शङ्करो ब्रह्महत्या विहीनं मेने त्मानन्तस्य तीर्थस्य भावात् ।

गुप्तिस्थितो देवदेवो वरेण्यो दृष्टा दूरे ब्रह्महत्यां च तीर्थात् ॥ १३ ॥
विधौतपापं महितं धर्मशक्त्या विशेष हत्या देवीमगात्सभीता ।
रक्ताम्बरा रक्तमाल्योपयुक्ता कृष्णा नारी रक्तदामप्रमत्ता ॥ १४ ॥
सा चाङ्गुली स्कन्धदेशे रहस्ये दूरे स्थिता तीर्थवरप्रभावात् ।
सञ्चिन्त्य देवो मनसा स्वतारिवासाय बुद्धिं तत्र तीर्थे चकार ॥ १५ ॥
विमृश्य देवो बहुधा स्थितः स्वयं विधौतपापे प्रथिते पृथिव्याम् ।
बभूव तत्रैव निवासकारी विधूतपापनिकल्मषस्थः ॥ १६ ॥

तदाप्रभृति राजेन्द्र ब्रह्महत्याविनाशनम् । विधौतपापतत्तीर्थं महापापस्थितम
अभ्युक्षणार्चनपरो तत्र कार्यं विशिष्यते । दिनत्रयं तु राजेन्द्र समस्यादिविधिवत
समुपोष्याष्टमासक्तयामाद्वै वेदपारगः । अहोरात्रेणचैकेन भ्रूणहत्तामसक्षम
अभ्यमन्त्रहहत्याया मुच्यते नात्र संशयः । गुरुस्त्रीगमनञ्चैव यथा नृपङ्गनागम

स्नात्वा प्रयतस्तोऽङ्कृते कुम्भेनैव प्रमुच्यते ।
वन्ध्या स्त्री वनिता या तु काकवन्ध्या मृतप्रजा ॥ २१ ॥
सापि कुम्भोदके स्नात्वा जीवत्पुत्रा प्रजायते ।
अपत्यन्तु गरोपोष्य भ्रूणघ्नस्तामसक्षयाम् ॥ २८ ॥

भ्रूणमका जपन्त्वित्रन्तथा पठन्ति यो नृप । मनूघोपोष्यगायत्रीं जपेद्वेदमातरम्
जपत्रयस्या विपन्द्रो मुच्यते पापसञ्चयात् । एवतुकथिततात पुराणोक्तमहर्षिभि
धौतपापमहापुण्यं शिवेनकथितमम । प्राणत्यागं तु यः कुर्यात्तत्रैवाऽऽतीर्थस्थलेविवा
स गच्छति विमानेन उज्ज्वलार्कसमप्रभ । हंसयहिप्रयुक्तेन सेव्यमानोऽप्सरोगणैः

शिवस्य परमं स्थानं यत्सुरैरपि दुर्लभम् ।
क्रीडते स्वेच्छया तत्र यावच्चन्द्रार्कतारकम् ॥ २७ ॥

धौतपापतुयानार्यस्तु नत्व प्राणसङ्क्षयम् । तत्क्षणाद्वेधसा पाथ पुंस्त्वमवाप्नुयात्
अथ किं बहुनोक्तेन शुभवायदिवाऽशुभम् । तदक्षयफलं सर्वं धौतपापे कृत नृप ॥
सन्यसन्नियमनान्न मन्यसेद्धिक्रियादिकम् । फलमूलादिक चैवजलमेवं नसंत्यजेत् ॥

एवं यःकुरुतेपार्थरुद्रलोकं सगच्छति । तत्र भुक्त्वाखिलान्भोगाञ्जायतेभुविभूपतिः
इति श्रीस्कान्दे महापुराणएकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायांपञ्चमेऽवन्तीखण्डे
रेवाखण्डे धौतपापतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम चतुरशीत्युत्तरशततमोऽध्यायः

पञ्चाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

एरण्डीतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेन्महीपाल एरण्डीतीर्थमुत्तमम् । स्नानमात्रेण तत्रैव ब्रह्महत्याप्रणश्यति
मासि चाश्वयुजे तत्र शुक्लपक्षे चतुर्द्दशीम् । उपोष्य प्रयतःस्नातस्तर्पयेत्पितृदेवताः
पुत्रर्द्धिरूपसम्पन्नोजीवेच्चशरदांशतम् । शिवलोकंमृतोयाति नाऽत्रकार्याविचारणा
इति श्रीस्कान्देमहापुराण एकाशीतिसाहस्र्यांसंहितायांपञ्चमेऽवन्तीखण्डे
रेवाखण्डे एरण्डीतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम पञ्चाशीत्युत्तरशततमोऽध्यायः

षडशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

कनखलेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेन्महीपाल तीर्थं कनखलोत्तमम् । गरुडेन तपस्तप्तं पूजयित्वा महेश्वरम्
दिव्यं वर्षशतंयावज्जातमात्रेण भारत । तपोजपैः कृशीभूतो दृष्टो देवेन शम्भुना ॥
ततस्तुष्टो महादेवो वैनतेयं मनोजवम् । उवाच परमं वाक्यं विनतानन्दवर्धनम्
खेचर !॥

गरुड उवाच

इच्छामि वाहनं विष्णोर्द्विजेन्द्रत्वं सुरेश्वर ॥ प्रसन्ने त्वयि मे सर्वं भविष्यतीति मतिर्मम

श्रीमहेश उवाच

दुर्लभः प्राणिनामेतयोर्वरः प्रार्थितोऽनघ । देवदेवस्य वहनं द्विजेन्द्रत्वं सुदुर्लभम्

नारायणोदरे सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम् । त्वया स कथमूह्यो तद्देवदेवो जगद्गुरुः

तेनैव स्थापितश्चेन्द्रस्त्रैलोक्ये सचराचरे ।

कथमन्यस्य चेन्द्रत्वं भवतीति सुदुर्लभम् ॥ ८ ॥

तथाऽपि मम वाक्येन वाहनत्वं भविष्यसि । शङ्खचक्रगदापाणेर्वहनोऽपि जगत्त्रयम्

इन्द्रत्वं पक्षिणां मध्ये भविष्यति न संशयः । इति दत्त्वा वरं तस्मा अन्तर्धानं गतो हरः

ततो गते महादेवे तार्क्ष्यस्याऽनुजो नृप ॥

आराधयामास तदा चामुण्डां मुण्डमण्डिताम् ॥ ११ ॥

श्मशानवासिनीं देवीं भूतसमन्विताम् ।

योगिनीं योगसंसिद्धां वसामांसासवप्रियाम् ॥ १२ ॥

ध्यातमात्रा तु तेनैव प्रत्यक्षाऽभवत्तदा । जालन्धरे यथासिद्धिः कौलीने उड्डियानके

समस्था सा भृगुक्षेत्रे सिद्धक्षेत्रे तु संस्थिता ।

चामुण्डा तत्र सा देवी सिद्धक्षेत्रे व्यवस्थिता ॥ १४ ॥

सन्तुता सखिभिर्दिव्यैर्योगक्षेमार्थसिद्धये । विनताऽऽनन्दजननस्तत्र तां योगिनीं नृप

भक्त्या प्रसादयामास स्तोत्रैर्वैदिकलौकिकैः ॥ १५ ॥

गरुड उवाच

ॐ या सा क्षुत्क्षामकण्ठा नवरुधिरमुखा प्रेतपद्मासनस्था

भूतानां वृन्दवृन्दे पितृवननिलया क्रीडते शूलहस्ता ।

शस्त्र चर्मखर्वारत्नजरुधिरगलन्मुण्डमालोत्तरीया

देवी श्रीवीरमाला विमलशशिनिभा पातु वश्चर्ममुण्डा ॥ १६ ॥

या सा क्षुत्क्षामकण्ठा विकृतभयकरी त्रासिनी दुष्कृतानाम्

मुञ्चज्ज्वालाकलापैर्दशनकसमसैः खादति प्रेतमांसम् ।
पिङ्गोद्र्ध्वोद्वद्धजूटारविसदृशतनुर्व्याघ्रचर्मोत्तरीया-
दैत्येन्द्रैर्यक्षरक्षोऽप्सरसुरनमिता पातुवश्चर्ममुण्डा ॥ १७ ॥
या सा दोर्द्दण्डखण्डैर्डमरुरणरणाटोपटङ्कारखण्टैः
कल्पान्तोत्पातवाताहतपटुपटहैर्वल्गते भूतमाता ।
क्षुत्क्षामा शुष्ककुक्षिः खरतरनखरैः क्षोदति प्रेतमांसम्
मुञ्चन्ती चाट्टहासं घुरघुरितरवा पातु वश्चर्ममुण्डा ॥ १८ ॥
या सा निम्नोदराभा विकृतभवभयत्रासिनी शूलहस्ता
चामुण्डा मुण्डघाता रणरुणितरणज्झल्लरीनादरम्या ।
त्रैलोक्यं त्रासयन्ती ककहकहकहैर्घोररावैरनेकै-
र्नृत्यन्ती मातृमध्ये पितृवननिलया पातु वश्चर्ममुण्डा ॥ १६ ॥
या धत्ते विश्वमखिलं निजांशेनमहोज्ज्वला । कनकप्रसवेलीना पातुमांकनकेश्वरी
हिमाद्रिसम्भवा देवीदयादर्शितविग्रहा । शिवप्रियाशिवे सक्तापातुमांकनकेश्वरी
अनादिजगदादिर्या रत्नगर्भा वसुप्रिया । रथाङ्गपाणिना पद्मापातु मां कनकेश्वरी
सावित्री या च गायत्री मृडानी वागथेन्दिरा ।
स्मर्तॄणां या सुखं दत्ते पातु मां कनकेश्वरी ॥ २३ ॥
सौम्यासौम्यैः सदा रूपैः सृजत्यवति या जगत् ।
परा शक्तिः परा बुद्धिः पातु मां कनकेश्वरी ॥ २४ ॥
ब्रह्मणः सर्गसमये सृज्यशक्तिः परातुया । जगन्मायाजगद्धात्री पातु मांकनकेश्वरी
विश्वस्य पालने विष्णोर्या शक्तिः परिपालिता ।
मदनोन्मादिनी मुख्या पातु मां कनकेश्वरी ॥ २६ ॥
विश्वसंलयने मुख्या या रुद्रेण समाश्रिता ।
रौद्री शक्तिः शिवाऽनन्ता पातु मां कनकेश्वरी ॥ २७ ॥
कैलाससानुसंरुढकनकप्रसवेशया । भस्मकाभिरता पतै पातु मां कनकेश्वरी ॥

पतिमप्राप्यमिच्छन्ती शस्यन्ती या विना पतिम् ।
अबला त्वेवभार्या च पातु मां कनखेश्वरी ॥ २६ ॥
विभ्वसंरक्षणे सक्ता रक्षिता कनखेन या । आत्मप्रम्नात्रभजननी पातुमांकनखेश्वरी॥
प्रशंपिण्ड्यामयरा शक्त्याशरीरग्रहणयया । प्रापिताप्रथमाशाविं पातुमांकनखेश्वरी
श्रुत्वा ॥ गरुडेनोक्तं देवीस्तवमनुत्तमम् । प्रसन्ना सम्मुखी भूत्वा वाक्यमेतदुवाच ह

श्रीचामुण्डोवाच

प्रसन्ना ते महासत्त्व वरं वरय वाञ्छितम् । ददामि ते द्विजश्रेष्ठ यत्तेमनसिरोचते

गरुड उवाच

अजरश्चामरश्चैव अधृष्यश्च सुरासुरे । तव प्रसादाद्धर्म्ये वाग्वैरजेयश्च भवाम्यहम् ॥
त्वया चाऽत्र सदा देवि! स्थातव्यं तीर्थसन्निधौ ।

मार्कण्डेय उवाच

एवं भविष्यतीत्युक्त्वा देवी देवैरभिष्टुता ॥ ३५ ॥
जगामाकाशमाविश्य भूतसङ्घसमन्विता । यदाऽस्या नृपश्रेष्ठ स्थापितपुरमुत्तमम्
अनुमान्य तदा देवीं छत्र तस्या समर्पितम् ।

लक्ष्मीरुवाच

रक्षणाय मया देवि! योगक्षेमार्थसिद्धये ॥ ३७ ॥
मातृवत्प्रतिपाल्यं तेसदादेविपुरमम । गरुडोऽपितत्र स्नात्वा सम्पूज्यकनखेश्वरीम्
तीर्थं तत्रैव संस्थाप्य जगामाऽऽकाशमुत्तमम् ।
तत्र तीर्थे तु यः स्नात्वा पूजयेत्पितृदेवता ॥ ३९ ॥
सर्वकामसमृद्धस्य यज्ञस्य फलमश्नुते । गन्धपुष्पादिभिर्यस्तु पूजयेत्कनखेश्वरम्
तस्य योगैश्वर्यसिद्धिर्योगपीठेषु जायते । मृतो योगेश्वरं लोकं जयशब्दादिमङ्गलैः
स गच्छेन्नाऽत्र सन्देहो योगिनीगणसंयुतः ॥ ४१ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे रेवाखण्डे कनखलेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णननाम षडशीत्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥

सप्ताशी यधिकशततमोऽध्यायः

कालाग्निरुद्रतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

जालेश्वरं ततो गच्छेल्लिङ्गमाद्यं स्वयम्भुवः ।
कालाग्निरुद्रं विख्यातं भृगुकच्छे व्यवस्थितम् ॥ १ ॥
सर्वपापप्रशमनं सर्वोपद्रवनाशनम् । क्षेत्रपापविनाशाय कृपया च समुत्थितम् ॥
पुरा कल्पेऽसुरगणैराक्रान्ते भुवनत्रये । वेदोक्तकर्मनाशे च धर्मे च विलयंगते ॥३॥
देवर्षिमुनिसिद्धेषु विश्वासपरमेषु च । कालाग्निरुद्रादुत्पन्नो धूमः कालोद्भवोद्भवः
धूमात्समुत्थितं लिङ्गं भित्त्वा पातालसप्तकम् ।
अवटं दक्षिणे कृत्वा लिङ्गं तत्रैव तिष्ठति ॥ ५ ॥
तत्रतीर्थेनृपश्रेष्ठकुण्डंज्वालासमुद्भवम् । यत्र सा पतिताज्वालाशिवस्यदहतःपुरम्
तत्रावाटंसमुद्भूतंधूमावर्त्तस्ततोऽभवत् । तस्मिन्कुण्डेतुयःस्नानंकृत्वाथैनर्मदाजले
कुर्याच्छ्राद्धं पितृभ्यो वै पूजयेच्च त्रिलोचनम् ।
कालाग्निरुद्रनामानि स गच्छेत्परमां गतिम् ॥ ८ ॥
यत्किञ्चित्कामिकं कर्म ह्याभिचारिकमेव वा ।
रिपुसङ्क्षयकृद्वापि सान्तानिकमथापि वा ॥
अत्र तीर्थे कृतं सर्वमचिरात्सिद्ध्यते नृप !॥ ९ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे रेवाखण्डे कालाग्निरुद्रतीर्थमाहात्म्यवर्णनंनाम सप्ताशीत्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥

———

अष्टाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

शालग्रामतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततः परं महाराज चत्वारिंशत्क्रमान्तरे। शालग्रामं ततो गच्छेत्सर्वदैवतपूजितम्
यत्रादिदेवो भगवान्वासुदेवस्त्रिविक्रमः।
स्वयं तिष्ठति लोकात्मा सर्वेषां हितकाम्यया ॥ २ ॥
नारदेन तपस्तप्त्वा कृता शाला द्विजन्मनाम्।
स्थिरीक्षेत्रे भृगुक्षेत्रे ज्ञात्वा रेवातटे स्वयम् ॥ ३ ॥
शालग्रामाभिधो देवो विप्राणां स्वधियासितः।
साधूनां चोपकाराय वासुदेवः प्रतिष्ठितः ॥ ४ ॥
योगिनामुपकाराय योगिध्येयो जनार्दनः। शालग्रामेति तेनैव नर्मदातटमाश्रितः
मासि मार्गशिरे शुक्ले ह्येकादश्यां यदा। स्नात्वा रेवाजले पुण्ये तद्दिने समुपोषयेत्
रात्रौ जागरणं कुर्यात्सम्पूज्य जनार्दनम्। पुनः प्रभातसमये द्वादश्यां नर्मदाजले
स्नात्वा सन्तर्प्य देवांश्च पितॄन्मातॄंस्तथैव च।
श्राद्धं कृत्वा ततः पश्चात्पितृभ्यो विधिपूर्वकम् ॥ ८ ॥
शक्तितो ब्राह्मणान्पूज्य स्वर्णवस्त्रान्नदानतः।
क्षमापयित्वा तान्विप्रांस्तथा देवं जगद्गुरुम् ॥ [illegible]
एवं कृते महाराज यत्पुण्यं स्याद्भवेन्नृणाम्। शृणुष्वावहितो भूत्वा तत्पुण्यं नृपसत्तम
न शक्नुते प्रतिपत्स्यतीह जीवन्मृतो याति मुरारिसाम्यम्।
महान्ति पापानि विसृज्य दुग्धं पुनर्न मातुः पिबते स्तनोद्यत् ॥ ११ ॥
शालग्रामं पश्यते यो हि नित्यं स्नात्वा जले नार्मदेऽर्घावहारे।
स मुच्यते ब्रह्महत्यादिपापैर्नारायणानुस्मरणेन तेन ॥ १२ ॥

वसन्ति ये संन्यसित्वा च तत्र निगृह्य दुःखानि विमुक्तसङ्गाः ।
ध्यायन्तो वै साङ्ख्यवृत्त्या तुरीयं पदं मुरारेस्तेऽपि तत्रैव यान्ति ॥ १३॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराणएकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे रेवाखण्डे शालग्रामतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नामाष्टाशीत्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥

एकोननवत्यधिकशततमोऽध्यायः

उदीर्णवराहतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र! तीर्थं परमशोभनम् । उदीर्णो यत्र वाराहो ह्यभवद्धरणीधरः
धुन्वन्दंष्ट्रां करालाग्रां बिभ्रच्च पृथिवीमिमाम् ।
स एव पञ्चमः प्रोक्तो वाराहो मुक्तिदायकः ॥ २ ॥

युधिष्ठिर उवाच

कथमुदीर्णरूपोऽभूद्वाराहो धरणीधरः । वाराहत्वं गतः केन पञ्चमः केन स.ञ्ज्ञित

मार्कण्डेय उवाच

आदिकल्पेपुराराजन्क्षीरोदे भगवान्हरिः । शेतेस भोगिशयनेयोगनिद्राविमोहित
लक्ष्मीकराम्बुजयुगमृद्यमानपदद्वयः । तस्मिन्स्वपतिदेवेशे भाराक्रान्तावसुन्धर
बभूव नृपतिश्रेष्ठ गत्वा चैदेवसन्निधौ । अवोचद्भारखिन्नाहं गमिष्यामि रसातल
दृष्ट्वा देवाः समुद्विग्ना गता यत्र जनार्दन । तुष्टुवुर्वाग्भिरिष्टाभिःकेशवंजगतःपति

देवा ऊचुः

नमो नमस्ते देवेश!सुरार्तिहर!सर्वग !। विश्वमूर्त्ते नमस्तुभ्यं त्राहि सर्वान्महद्भया
इत्युक्तो दैवतैर्देवो ह्युवाच किमुपस्थितम् ।

देवा ऊचुः

धरा धरित्री भूताना भारोद्विग्ना निमज्जति ।
तामुद्धर हृषीकेश लोकान्संस्थापय स्थितौ ॥ १० ॥

एवमुक्तः सुरैः सर्वैः केशवः परमेश्वरः । वाराहं रूपमास्थाय सर्वयज्ञमयः विभुः ॥
दंष्ट्राकरालः पिङ्गाक्षः समाकुञ्चितमूर्द्धजम् ।
कृत्वाऽनन्तं पादपीठं दंष्ट्राग्रेणोद्धरन्भुवम् ॥ १२ ॥
सपर्वतवनामुर्वीं समुद्रपरिमेखलाम् । उद्धृत्य भगवान्विष्णुरत्रैव समनायत ॥
स्थाप्यन्पञ्चधात्मानमुत्तरे नर्मदातटे । तथाऽऽद्य कोशलायां तु द्वितीयं योधनीपुरे
जयक्षेत्राभिधानेतु जयेनिपरिकीर्त्तितम् । असुरान्मोहयल्लिङ्गस्तृतीयः परिकीर्त्तित
पापताय जगद्धेतो स्थितोयस्माच्छशिप्रभ । अतस्तुगृपप्रसादू रूपेनेतस्त्यभिधीयते
उद्धृत्य जगती दर्भामुद्दीर्णो भृगुकच्छके । तत पञ्चमउर्द्धीर्णोवराह इति सञ्ज्ञितः
इति पञ्चवराहास्ते कथिता पाण्डुनन्दन । युगपत्स्नान यात्रा ब्रह्महत्याव्यपोहति
ज्येष्ठ मासि सिते पक्ष एकादश्यां विशेषतः ।
गत्वा ह्यादिवराह तु सम्प्राप्त दशमीदिने ॥ १९ ॥
हविष्यमन्न भुञ्जीयाद्ब्रह्मलाय गते रवौ । रात्रौ जागरणं कुर्याद्वराहेश्वादिरूपके
ततः प्रभात ॥ यस्मि स्नात्वा नर्मदाजले ।
सन्तर्प्य पितृदेवांश्च तिलैर्यवविमिश्रितैः ॥ २१ ॥
धेनु दद्याद्द्विजेयाग्रदेसर्वाभरणभूषिताम् । निमस्रोमिरहङ्कारो दानदद्याद्द्विजातये
गत्वा सम्पूजयेद्देव वाराह ह्यादिसञ्ज्ञितम् ।
अनेन विधिना पूज्य पश्चाद्गच्छेज्जय त्वरन् ॥ २३ ॥
त्वरितंतुनयगत्वापूर्वकविधिमाचरेत् । अश्वदद्याद्द्विजाग्रधायजयपूर्वाभिनिर्गतम्
लिङ्गे चैव तिला देया ज्जने हिरण्यमेवच । उद्दीर्णेचभुवद्यात्पूर्वक विधिमाचरेत्
अनस्तमित आदित्ये वराहान्पञ्चपश्यत । यत्फलंलभते पार्थ तदिहैकमनाःशृणु
ब्रह्महत्यासुरापान स्तेयगुर्वङ्गनागम । एभिस्तुसहसयोगो विध्वस्तानाघवञ्जनम्

स्वसृदुहितृभगिनीकुलदारोपबृंहणम् । आजन्ममरणाद्यावत्पापं भरतसत्तम !॥
तीर्थपञ्चकपूतस्य वैष्णवस्य विशेषतः । युगपच्चविनश्येत तूलराशिरिवानलात्
नारायणानुस्मरणाज्जपध्यानाद्विशेषतः ।
विप्रणश्यति पापानि गिरिकूटसमान्यपि ॥ ३० ॥
दृष्ट्वा पञ्चवराहान्वै पौरुषेमहतिस्थितः । आप्लवन्नर्मदातोयेश्राद्धंकृत्वायथाविधि
उदयास्तमनादर्वाग्यः पश्येल्लोटणेश्वरम् । कलेवरविमुक्तः स इत्येवं शङ्करोऽब्रवीत्
मुक्तिं प्रयाति सहसा दुष्प्रापां परमेश्वरीम् ।
पौरुषे क्रियमाणेऽपि न सिद्धिर्जायते यदि ॥ ३३ ॥
ब्रुवन्ति स्वर्गगमनमपि पापान्वितस्य च । यत्र तत्र गतस्यैवभवेत्पञ्चवराहकी ॥
ज्येष्ठस्यैकादशीतिथौ ध्रुवं तत्र वसेन्नरः । आदिं जयंतथा श्वेतं लिङ्गमुदीर्णमेवच
आश्रित्य तस्या द्रष्टव्या वराहास्तु यतस्ततः ।
ज्येष्ठस्यैकादशीतिथौ विष्णुना प्रभुविष्णुना ॥ ३६ ॥
वाराहं रूपमास्थाय उद्धृता धरणी विभो !।
पुण्यात्पुण्यतमा तेन ह्यशेषाघौघनाशिनी ॥ ३७ ॥
दृष्ट्वा पञ्चवराहान्वै क्रोडमुदीर्णरूपिणम् । पूजयित्वाविधानेन पश्चाज्जागरणञ्चरेत्
सपञ्चवर्त्तिकान्दीपान्घृतेनोज्ज्वाल्य भक्तितः ।
पुरणश्रवणैर्नृत्यैर्गीतवाद्यैः सुमङ्गलैः ॥ ३६ ॥
वेदजाप्यैः पवित्रैश्च क्षपयित्वा च शर्वरीम् ।
यत्पुण्यं लभते मर्त्यो ह्याजमीढ! शृणुष्व तत् ॥ ४० ॥
रेवाजलं पुण्यतमं पृथिव्यां तथा च देवो जगतां पतिर्हरिः ।
एकादशी पापहरा नरेन्द्र! वह्वायासैर्लभ्यते मानवानाम् ॥ ४१ ॥
एकैकशो ब्रह्महत्यादिकानि शक्तानि हन्तुं पापसङ्घानि राजन् ।
नैते सर्वे युगपद्वै समेता हन्तुं शक्ताः किन्न तद्ब्रूहि राजन् !॥ ४२ ॥
यथेदमुक्तं तव धर्मसूनो! श्रुतं च यच्छङ्कराच्चन्द्रमौलेः ।

श्रुत्वेदमिच्छन्मुच्यते सर्वपापैः पदं यदं याति हि वृत्रशत्रोः ॥ ४३ ॥

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे रेवाखण्डे नर्मदामाहात्म्ये उदीर्णवराहतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नामैकोननवत्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १८९ ॥

नवत्यधिकशततमोऽध्यायः

चन्द्रहासतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

ततो गच्छेन्महीपाल सोमतीर्थमनुत्तमम् । चन्द्रहासेतिविख्यातसर्वदैवतपूजित
यत्र सिद्धिं परां प्राप्तः सोमो राजा सुरोत्तम ॥ २ ॥

युधिष्ठिर उवाच

कथं सिद्धिमनुप्राप्तः सोमो राजा ग्रहपतिः । तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामि कथयस्व ममाऽनघ

मार्कण्डेय उवाच

पुरा शप्तो मुनीन्द्रेण दक्षेण किल भारत । असेवनाद्धि दाराणां क्षयरोगी भविष्यसि
उद्वाहिताना पत्नीनां ये न कुर्वन्ति सेवनम् ।
या निष्ठा जायते तेषां तां शृणुष्व नरोत्तम ॥ ५ ॥

ऋतुकालेतु नारीणां सेवनाज्जायते सुतः । सुतात्स्वर्गश्च मोक्षश्चहीत्येवं श्रुतिनोदितम्
तत्कालोचितधर्मेण ये न सेवन्ति ता नराः ।
तेषां ब्रह्मघ्नजं पापं जायते नाऽत्र संशयः ॥ ७ ॥

तेन पापेन घोरेण वेष्टतो रौरवे वसेत् । तस्यतद्रुधिरं पापा पिबन्ते कालमीप्सितम्
ततोऽवतीर्णकालेन दारा योनिं प्रयास्यति ।
तस्यां तस्यां स दुर्गतमो दुर्भगो जायते सदा ॥ ९ ॥

नारीणांतुसदाकामो ह्यधिकःपरिवर्त्तते । विशेषेणऋतोःकालेभिद्यतेकामसायकैः
परिभूता हि सा भर्त्रा ध्यायतेऽन्यं पतिं ततः ।
तस्याः पुत्रः समुत्पन्नो ह्यटते कुलमुत्तमम् ॥ ११ ॥
स्वर्गस्थास्तेन पितरःपूर्वंजातामहीपते! । पतन्ति जातमात्रेण कुलटस्तेनप्रोच्यते
तेन कर्मविपाकेन क्षयरोगी शशी ह्यभूत् ।
त्यक्त्वा लोकं सुरेन्द्राणां मर्त्यलोकमुपागतः ॥ १३ ॥
तत्रतीर्थान्यनेकानि पुण्यान्यतनानि च । भ्रमित्वानर्मदांप्राप्तःसर्वपापप्रणाशिनीम्
उपवासस्तु दानानि व्रतानि नियमाश्च ये ।
चचार द्वादशाब्दानि ततो मुक्तः स किल्बिषैः ॥ १५ ॥
स्थापयित्वा महादेवंसर्वपातकनाशनम् । जगामप्रभया पूर्णः सोमलोकमनुत्तमम्
येनैव स्थापितोदेवः पूज्यतेचपसंज्ञया । तावद्युगसहस्राणि तस्यलोकं समश्नुते
तेन देवान्विधानोक्तान्स्थापयन्ति नरा भुवि ।
अक्षयं चाव्ययं यस्मात्फलं भवति नाऽन्यथा ॥ १८ ॥
सोमतीर्थेतुयः स्नात्वापूजयेद्देवमीश्वरम् । जायते स नरो भूत्वा सोमवत्प्रियदर्शनः
चन्द्रप्रभासे यो गत्वा स्नानं विधिवदाचरेत् ।
व्याधिना नाभिभूतः स्यात्क्षयरोगेण वा युतः ॥ २० ॥
चन्द्रहास्येनरः स्नात्वा द्वादश्यांतुनरेश्वर । चतुर्दश्यामुपोष्यैवक्षीरस्य जुहुयाच्चरुम्
मन्त्रैः पञ्चभिरीशानं पुरुषस्त्र्यम्बकं यजेत् ।
हविःशेषं स्वयं प्राश्य चन्द्रहास्येशमीक्षयेत् ॥ २२ ॥
अनेनविधिना राजंस्तुष्टो देवो महेश्वरः । विधिनातीर्थयोगेन क्षयरोगाद्विमुच्यते
सप्तभिःसोमवारैर्यःस्नानं तत्रसमाचरेत् । सचैकर्णकृताद्रोगान्मुच्यतेपूजयञ्छिवम्
अक्षिरोगस्तथा राजंश्चन्द्रहास्ये विनश्यति ।
चन्द्रहास्ये तु यो गत्वा ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ॥
स्नानं समाचरेद्भक्त्या मुच्यते सर्वपातकैः ॥ २५ ॥

तत्रस्नानं प्रदानं च चन्द्रहास्ये शुभाशुभम् । कृतन्नृपवर्धेत्सर्वं भवतिचाक्षयम् ॥
ते धन्यास्ते महात्मानस्तेषां जन्म सुजीवितम् ।
चन्द्रहास्ये तु ये स्नात्वा पश्यन्ति प्रहसं नराः ॥ २९ ॥
धार्मिकं ज्ञानमशेषं कल्मषं पुराहरम् । स्नानमात्रास्तु राजेन्द्र तत्तीर्थं प्रपश्यति
यद्वयस्तत्र जानन्ति महामोहसमन्विताः । देहस्थं दशसर्वेषां परमात्मेयसंस्थितम्
पश्यन्ति मानवेन्द्रा सोमनाथमनुत्तमम् । स समग्रमवाप्नोति चन्द्रहास्येसमद्यपः
मन्वन्तौ च व्यतीपाते विषुवे चायने तथा ।
चन्द्रहास्ये नरः स्नात्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ३१ ॥
न मूढास्ते दुराचारास्तेषां जन्म निरर्थकम् ।
चन्द्रहास्यं न जानन्ति नर्मदायां व्यवस्थितम् ॥ ३२ ॥
चन्द्रहास्ये तु यः कश्चित्संन्यासं कुरुते नृप ।
अनिवर्तिका गतिस्तस्य सोमलोकात्कदाचन ॥ ३३ ॥
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे रेवाखण्डे चन्द्रहास्यतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नाम नवत्युत्तरशततमोऽध्यायः

—————

एकनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

द्वादशादित्यतीर्थमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

सिद्धेश्वरं ततो गच्छेत्तस्यैव तु समीपतः । अमृतस्याचितं लिङ्गमाद्यं स्वायम्भुवं तथा
दृश्यमानेन येनेह तृष्णा नायते नरः । पुरा चरतेन साम्बमाराध्य परमेश्वरम् ॥
प्राप्नुयुः परमां सिद्धिमादित्या द्वादशैव तु ।
अतः सिद्धेश्वरः प्रोक्तः सिद्धिदः सिद्धिकाङ्क्षिणाम् ॥ २ ॥

युधिष्ठिर उवाच

कथं सिद्धेश्वरे प्राप्तास्सिद्धिं देवा द्विजोत्तम !।
आदित्या इति यच्चोक्तं तत्ते विस्मापनं महत् ॥ ४ ॥
तपस्युग्रे व्यवसिता आदित्याः केन हेतुना ।
संप्राप्तास्तु द्विजश्रेष्ठ सिद्धिं चैवाभिलाषिकीम् ॥ ५ ॥
संक्षिप्य तु मया पृष्टं विस्तराद् द्विज! शंस मे ॥ ६ ॥

मार्कण्डेय उवाच

अदितेर्द्वादशादित्या जाताः शक्रपुरोगमाः ।
इन्द्रो धाता भगस्त्वष्टा मित्रोऽथ वरुणोऽर्यमा ॥ ७ ॥
विवस्वान्सविता पूषा ह्यंशुमान्विष्णुरेव च ।
त इमे द्वादशादित्या इच्छन्तो भास्करं पदम् ॥ ८ ॥
नर्मदातटमाश्रित्यतपस्युग्रेव्यवस्थिताः । सिद्धेश्वरेमहाराज काश्यपेयैर्महात्मभिः
एवं सिद्धिरनुप्राप्ता द्वादशादित्यसञ्ज्ञितैः ।
स्थापितश्च जगद्धाता तस्मिंस्तीर्थे दिवाकरः ॥ १० ॥
स्वकीयांशविभागेन द्वादशादित्यसञ्ज्ञितैः ।
तदाप्रभृति तत्तीर्थं राजन्ख्यातिं गतं भुवि ॥ ११ ॥
प्रलये समनुप्राप्ते ह्यादित्याद्वादशैव ते । द्वादशादित्यतो राजन्संभवन्तियुगक्षये
इन्द्रस्तपति पूर्वेण धाता चैवाग्निगोचरे ।
गभस्तिपतिर्वैयाम्ये त्वष्टा नैरृतदिङ्मुखः ॥ १३ ॥
वरुणः पश्चिमे भागे मित्रस्तु वायवे तथा ।
विष्णुश्च सौम्यदिग्भागे विवस्वानीशगोचरे ॥ १४ ॥
ऊर्ध्वतश्चैवसविताह्यधःपूषाविशोषयन् । अंशुमांस्तुतथा विष्णुर्मुखतोनिर्गतंजगत्
प्रदहन्वै नरश्रेष्ठ चभ्रमुश्च इतस्ततः । यथैव ते महाराज! [illegible]

प्रातरुत्थाय यः स्नात्वा द्वादशादित्यसन्निधानम् ॥ १७ ॥

पश्यते देवदेवेशं शृणु तस्यापि यत्फलम् । वाचिकं मानसं पापं कर्मजं यत्पुराकृतम् तत्सर्वं नश्यते तस्य द्वादशादित्यदर्शनात् । प्रदक्षिणं तु यः कुर्यात्सप्त देवस्य भारत प्रदक्षिणीकृता तेन पृथिवी नात्र संशयः । सर्वतीर्थेषु यत्पुण्यं सर्वयज्ञेषु यत्फलम् अन्यत्र सकलसस्या स्थलजलनिवासिना । तत्फलं लभते देवि द्वादशादित्यदर्शनात् प्रदक्षिणं तु यः कुर्यात्तस्य पापं प्रणश्यति । अरोगी सप्तजन्मानि लभेदेतान्न संशयः यस्तु प्रदक्षिणशतं कुर्यात्कार्तिके दिने । दत्तुपिटवकुद्धानि मण्डलानि विपश्चितः सर्वलिङ्गाधिपत्यं च लभते वै यशस्वता । पुत्रपौत्रसमायुक्तः पश्यति धामसंस्थितान्

इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे रेवाखण्डे द्वादशादित्यतीर्थमाहात्म्यवर्णनं नामैकनवत्युत्तरशततमोऽध्यायः

द्विनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

श्रीपत्युत्पत्तिवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

तस्यैवानन्तरं तात स्थानाद्यमनुत्तमम् । दृष्ट्वा तु श्रीपतिं पार्थ मुच्यते मानवो भुवि ॥
महार्णवस्य जामाता श्रीदेवो जनार्दनः ॥ २ ॥

युधिष्ठिर उवाच

कोऽयं श्रियः पतिस्त्वाख्यातनामाधिपो विभुः । कथं जन्माऽभवत्तस्य देवेशस्य महामुने सम्यगाख्याहि मे तात नानारूपसहस्रशः । एतद्विस्तरतो ब्रह्मन्वक्तुमर्हसि भार्गव

श्रीमार्कण्डेय उवाच

संक्षेपात्कथयिष्यामि माहात्म्यं श्रीपतेर्महत् । नहि विस्तरतो वक्तुं शक्यते सर्वमद्य
नारायणस्य माहात्म्यं ज्ञातो देवासुरैरपि ।

तस्य दक्षोऽङ्गजो राजन्दक्षिणाङ्गुष्ठसंभवः ॥ ६ ॥
धर्मः स्तनान्तात्संजातस्तस्य पुत्रोऽभवत्किल ।
नारायणसहायोऽसावजोपिऽभरतर्षभ ! ॥ ७ ॥
मरुत्वती वसुर्जाना लम्बा भानुमती नती ।
संकल्पा च मुहूर्त्ता च साध्या विश्वावती ककुप् ॥ ८ ॥
धर्मपत्न्यो दशैवैता दाक्षायण्यो महाप्रभाः ।
तासां साध्या महाभागा पुत्रानजयन्नृप !॥ ६ ॥
नरो नारायणश्चैव हरिः कृष्णस्तथैवच । विष्णोरंशांशका ह्येतेचत्वारोधर्मसूनवः
तथा नारायणनरौ गन्धमादनपर्वते । आत्मन्यात्मानमाधाय तेपतुः परमं तपः ॥
ध्यायमानावनौपम्यं स्वं कारणमकारणम् । वासुदेवमनिर्देश्यमप्रवर्क्यमनंतरम्
योगयुक्तौ महात्मानावास्थितावुग्रतापसौ ।
तयोस्तपः प्रभावेण न ततांप दिवाकरः ॥ १३ ॥
वबाह शङ्कितो वायुः सुखस्पर्शो ह्यशङ्कितः ।
शिशिरोऽभवदत्यर्थं ज्वलन्नपि विभावसुः ॥ १४ ॥
सिंहव्याघ्रादयः सौम्याश्चेरुः सहमृगैर्गिरौ ।
तयोर्गौ रिव भारार्त्ता पृथिवी पृथिवीपते !॥ १५ ॥
चेलश्च भूधराश्चैव चुक्षुभेच महोदधिः । देवाश्चस्वेषु धिष्ण्येषु निष्प्रभेषु हतप्रभाः
बभूवुरवनीपाल! परमं क्षोभमागताः ॥ १६ ॥
देवराजस्तथा शक्रःसन्तप्तस्तपसातयोः । युयोजाप्सरसस्तत्र तयोर्विघ्नचिकीर्षया

इन्द्र उवाच

रम्भेतिलोत्तमे कुब्जे घृताचि ललितेशुभे । प्रम्लोचेसुभ्रु सुम्लोचे सौरभेयिमहोद्धते
अलम्बुषे मिश्रकेशिपुण्डरीके वरूथिनि । विलोकनीयं बिभ्राणा वपुर्मन्मथबोधनम्
गन्धमादनमासाद्य कुरुध्वं वचनंमम । नरनारायणौ तत्र तपोदीक्षान्वितौ द्विजौ
तेपाते धर्मतनयौ तपः परमदुश्चरम् । तावस्माकं वरारोहाः कुर्वाणौ परमं तपः

कमातिशापदुःखार्तिप्रशापातिनाशनौ । तद्गच्छतनमौ कार्यौ भयनाभिरिदंवच
स्मर महायशो मघिना धर्मतापपराङ्मुखा । कर्थं यत्र समालोक्यमदनोद्दीपनं परम्
कन्दर्पंयशमभ्येति विवशः को न मानवः ॥ २३ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इत्युक्त्वा देवराजेन मदनेन समं गता । अप्सरस्त्वरम सर्वा वसन्तश्च मदीपने ॥
गन्धमादनमासाद्य पुष्पोत्थितगुणगुञ्जम् ।
चकार माधवो रम्यं प्रोत्फुल्लवनपादपम् ॥ २५ ॥
ववयौ दक्षिणाशाया मन्दगामुगतोऽनिलः । भृङ्गमालास्वनस्यै रमणीयमभूद्वनम् ॥
गन्धश्च सुरभिः सद्यो वनराजिसमुद्भवः । किन्नरोत्तायक्षाणां बभूव प्राणतर्पणः
पराङ्मुखाश्च ता सर्वा नरनारायणावृषी ।
चित्राभर्चितुमारब्धा कामदृष्टिन्तिस्मितैः ॥ २८ ॥
जगौमनोहरं काचित्क्वणन् नृत्यं चाऽप्सराः । अन्यादयस्तथैवान्या मनोहरतरं नृप ॥
हावैर्भावै गुणैहास्यैरन्याऽन्या वल्गुभाषिणैः ।
तयोः क्षोभाय तन्वङ्ग्यश्चक्रुरुद्यममङ्गनाः ॥ ३० ॥
तथापि ततयोः कश्चिन्मनसः पृथिवीपतेः। विकारोऽभवद्ध्यानमपारसमाश्रयतयो
निवातस्थौ यथा दीपावकम्पौ नृप तिष्ठतः ।
वासुदेवार्पणस्वस्थ तथैव मनसी तयोः ॥ ३२ ॥
पूर्यमाणोऽपि चाम्भोभिः सुधमन्या महोदधिः ।
यथा न याति सङ्क्षोभं तथा तन्मानसं क्वचित् ॥ ३३ ॥
सर्वभूतहितं ब्रह्मवासुदेवमयं परम् । मन्यमानौ न रागस्य द्वेषस्य च वशं गतौ ॥
स्मरोऽपि नशशाकाय प्रवेष्टुं हृदयं तयोः । चिन्तामयं दीपयुतमन्धकारदुरालयम्
पुष्पोज्ज्वगात्रस्वरान्वसन्तं दक्षिणानिलम् ।
तांश्चाप्सरसः सद्या कन्दर्पं च महामुनी ॥ ३६ ॥
यथारब्धं तपस्ताभ्यामात्मानं गन्धमादनम् । ददृशातेऽखिलं रूपं ब्रह्मणः पुरुषर्षभौ

दाहायनामलोवह्नेर्नापःक्लेदायचाम्भसः । तद्द्रव्यमेवतद्द्रव्यविकारायन च यतः
ततोविज्ञाय विज्ञाय परंब्रह्म स्वरूपतः । मधुकन्दर्पशोपित्तु विकारेनाऽभवत्तयोः
ततो गुरुतरं यत्नं वसन्तमदनौ नृप । चक्राते ताश्चतन्वंग्यस्तत्क्षोभाय पुनः पुनः ॥
अथ नारायणो धैर्यंसन्धार्योदीर्णमानसः । ऊरोरुत्पादयामास वराङ्गीमवलांतदा
त्रैलोक्यसुन्दरीरत्नमशेषमवनीपते । गुणैर्लावण्यमभ्येति यस्याः संदर्शनादनु ॥ ४२

तां विलोक्य महीपाल! चकम्पे मनसाऽनिलः ।
वसन्तो विस्मयं यातः स्मरः सस्मार किञ्चन ॥ ४३ ॥

रम्भातिलोत्तमाद्याश्च वैलक्ष्यं देवयोषितः । न रेजुरवनीपाल तद्रूपहृतवीक्षणाः ॥
ततःकामो वसन्तश्चपार्थिवाप्सरसश्चताः । प्रणम्य भगवन्तौतौ तुष्टुवुर्मुनिसत्तमौ

वसन्तकामाप्सरस ऊचुः

प्रसीदतु जगद्धाता यस्य देवस्य मायया ।
मोहिताः स्म विजानीमो नान्तरं विघ्नेे ऽ्योः ॥ ४६ ॥

प्रसीदतु स वां देवोयस्य रूपमिदंद्विधा । धामभूतस्य लोकानामनादेरप्रतिष्ठतः

नरनारायणौ देवौ शङ्खचक्रायुधावुभौ ।
आस्तां प्रसादसुमुखावस्माकमपराधिनाम् ॥ ४८ ॥

निधानं सर्वविद्यानां सर्वपापवनानलः । नारायणोऽसौ भगवान्सर्वपापं व्यपोहतु

शार्ङ्गचिह्नायुधः श्रीमानात्मज्ञानमयोऽनवः ।
नरः समस्तपापानि हतात्मा सर्वदेहिनाम् ॥ ५० ॥
जटाकलापबद्धोऽयमनयोर्नः क्षमावतोः ।
सौम्यास्यदृष्टिः पापानि हन्तुं जन्मार्जितानि वै ॥ ५१ ॥
तथाऽऽत्मविद्यादोषेण योऽपराधः कृतो महान् ।
त्रैलोक्यवन्द्यौ यौ नाथौ विलोभयितुमागताः ॥ ५२ ॥

प्रसीद देव विज्ञानवन! मूढदृशामिव । भवन्ति सन्तः सततं स्वधर्मपरिपालकाः ॥
दृष्ट्वैतन्नः समुत्पन्नं यथा स्त्रीरत्नमुत्तमम् । त्वयिनारायणोत्पन्ना श्रेष्ठापारवतीमतिः

तेन सत्येन सत्या मत्परमात्मन्सनातन ।। नारायण प्रसीदेश सर्वलोकपरायण ।।
प्रसन्नशुद्धे शान्तात्मन्प्रसन्नवदनेक्षण । प्रसीद योगिनामीश नर! सर्वगताऽच्युत !
नमस्यामो नर देव तथा नारायण हरिम् । नमो नराय नम्याय नमोनारायणाय

प्रसन्नानामनाथानां तथा नाथवतां प्रभो ।।

[redacted] करोतु नरोऽस्माकं श नारायणं देहि न ॥ ५८ ॥

मार्कण्डेय उवाच

एवमभ्यर्थित स्तुत्या रागद्वेषादिवर्जित । प्राहेश सर्वभूतानां मध्येनारायणो नृप

नारायण उवाच

स्वागतं माधवे कामे भवत्वप्सरसामपि ।

यत्कार्यमागतानां [redacted] इहास्माभिस्तदुच्यताम् ॥ ६० ॥

यूयं स्वसिद्धये नूनमस्माकं बलशत्रुणा ।

सम्प्रेषितास्ततोऽस्माकं न्यायोगादिदर्शनम् ॥ ६१ ॥

नवय गीतनृत्येननाङ्गचेष्टादिभाषितैः । हृदयावेधिसर्वैमेन्ये विषयादाहणात्मका

शब्दादिसङ्गदुष्टानि यदा नाक्षाणि न शुभा ।

तदा नृत्यादयो भावा कथं लोभप्रदायिन ॥ ६३ ॥

ते सिद्धा स्म न वै साध्या भवतीनां स्मरस्य च ।

माधवस्य च शक्रोऽपि स्वास्थ्यं यात्वविशङ्कितः ॥ ६४ ॥

योऽसौ परम्श परमं पुरुष परमेश्वर । परमात्मा समस्तस्य स्थावरस्य चरस्य च
उत्पत्तिहेतुरन्ते च यस्मिन्सर्वं प्रलीयते । सर्वाधासीति देवत्वाद्वासुदेवेत्युदाहृत

यमशाशकास्तस्य चतुर्व्यूहस्य मानिज ।

तदादेशितवर्त्मानो जगद्बोधाय देहिनाम् ॥ ६७ ॥

तत्स्वभूतसर्वेशसर्वत्र समदर्शिनम् । कुत पश्यन्तो रागादीन्करिष्यामोविभेदिन
वसन्ते मयि चेन्द्रे चमवतीषु तथास्मरे । यदासर्व भूतात्मा तदादेशादय कथम्

तन्मयाऽन्यविभक्तानि यदा सर्वेषु जन्तुषु ।

सर्वेश्वरेश्वरो विष्णुः कुतो रागादयस्ततः ॥ ७० ॥

ब्रह्माणमिन्द्रमीशानमादित्यमरुतोऽखिलान् ।

विश्वेदेवानृषीन्साध्यान्वसून्पितृगणांस्तथा ॥ ७१ ॥

यक्षराक्षसभूतादीन्नागान्सर्पान्सरीसृपान् । मनुष्यपक्षिगोमृगगजसिंहजलेचरान्

मक्षिकामशकान्दंशाञ्छलभाञ्जलजान्कृमीन् ।

गुल्मवृक्षलतावल्लीत्वक्सारतृणजातिषु ॥ ७३ ॥

यच्चकिञ्चिद्दृश्यं वाऽदृश्यंवात्रिदशाङ्गनाः । मन्यध्वंजातमेकस्य तत्सर्वंपरमात्मनः

जायमानः कथं विष्णुमात्मानं परमं वयम् ।

रागद्वेषौ तथा लोभं कः कुर्यादमराङ्गनाः ॥ ७५ ॥

सर्वभूतमये विष्णौ सर्वगे सर्वधातरि । निपात्यतं पृथग्भूते कुतोरागादिकोगुणः

एवमस्मासु युष्मासु सर्वभूतेषु चाचलाः । तन्मयैकत्वभूतेषु रागाद्यवसरः कुतः ॥

सम्यग्दृष्टिरियं प्रोक्ता समस्तैक्याचलोकिनी ।

पृथग्विज्ञानमात्रैव लोकसंव्यवहारवत् ॥ ७८ ॥

भूतेन्द्रियान्तः करणप्रधानपुरुषात्मकम् । जगद्देहो तदखिलं तदा भेदः किमात्मकः

भवन्ति लयमायान्ति समुद्रसलिलोर्मयः ।

न वारिभेदतो भिन्नास्तथैवैक्यादिदं जगत् ॥ ८० ॥

यथाग्नेरर्चिषः पीताः पिङ्गलारुणधूसराः ।

तथाऽपि नाऽग्नितो भिन्नास्तथैतद्ब्रह्मणो जगत् ॥ ८१ ॥

भवतीभिश्च यत्क्षोभमस्माकं सपुरन्दरः । कारयत्यसदेतच्च विवेकाधारचेतसाम्

भवन्त्यः सच देवेन्द्रो लोकाश्चससुरासुराः । समुद्राद्रिवनोपेतामद्देहान्तरगोचराः

यथेयं चारुसर्वाङ्गी भवतीनां मयाऽग्रतः ।

दर्शिता दर्शयिष्यामि तथा चैवाऽखिलं जगत् ॥ ८४ ॥

प्रयातु शक्रो मा गर्वमिन्द्रत्वं कस्य सुस्थिरम् ।

यूयं च मा स्मयं यात सन्ति रूपान्विताः स्त्रियः ॥ ८५ ॥

किं सुभ्रू कुरूपं वा यदा भेदो न दृश्यते । तारतम्यं सुरूपत्वे सततं भिन्नदर्शनात्
भवतीनां स्वयं मत्वा रूपौदार्यगुणोद्भवम् । मदैश्वर्यदर्शिना तन्वी ततस्तुरगमभ्येत्य

यस्मान्मदूरोर्निष्पन्ना त्वियमिन्दीवरेक्षणा ।
उर्वशीनाम कल्याणी भविष्यति वराप्सराः ॥ ८८ ॥
तदियं देवराजस्य नीयतां वरवर्णिनी ।
भवत्यस्तेन चाऽस्माकं प्रेषिताः प्रीतिमिच्छता ॥ ८९ ॥
वयं त्वत्र महाभागो नाऽस्माकं भोगकारणात् ।
तपश्चर्या न चाप्राप्यमन्यं प्राप्तुमभीप्सता ॥ ९० ॥

तन्मार्गमस्य जगतो दर्शयिष्ये करोम्यहम् । तथा नरेण सहितो जगत्पालनोद्यत
यदि कश्चित्तथाबाधा करोति त्रिदशेश्वर । तमहं वारयिष्यामि निवृत्तो भवतामस्य

कृताऽस्मि नेत्यमाबाधा न दुष्टस्येह कस्यचित् ।
न चाऽपि शान्ता तदहं प्रवर्तिष्याम्यसत्पथम् ॥ ९३ ॥
एतज्ज्ञात्वा न सन्तापस्त्वया कार्यो हि मां प्रति ।
उपकाराय जगतामवतीर्णोऽस्मि वासव ॥ ९४ ॥

या चेयमुर्वशी मत्त ऊरुमूलात्पुरन्दर । चैतान्हि हेतुभूतेयं वधं प्राप्य भविष्यति ॥
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे
रेवाखण्डे नर्मदामाहात्म्ये श्रीपन्युपमिवर्णननाम द्विनवत्युत्तरशततमोऽध्यायः

त्रिनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

श्रीपतिमाहात्म्यवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

इत्युक्तेऽप्सरसः सर्वाःप्रणिपत्यपुनःपुनः । ऊचुर्नारायणं देवं तद्दर्शनसमीहया ॥ १

वसन्तकामाप्सरस ऊचुः

भगवन्भवता योऽयमुपदेशो हितार्थिना ।
प्रोक्तः स सर्वो विज्ञातो माहात्म्यं विदितं च ते ॥ २ ॥

यत्त्वेतद्भवता प्रोक्तंप्रसन्नेनान्तरात्मना । दर्शितेयंविशालाक्षीदर्शयिष्यामिवोजगत्
तत्रार्थे सर्वभावेन प्रपन्नानांजगत्पते ॥ दर्शयात्मानमखिलं दर्शितेयं यथोर्वशी ॥

यदि देवाऽपराधेऽपि नाऽस्मासु कुपितं तव ।
नमस्ते जगतामीश दर्शयाऽऽत्मानमात्मना ॥ ५ ॥

नारायण उवाच

पश्यतेहाऽखिलाँल्लोकान्मम देहे सुराङ्गनाः ।
मधुं मदनमात्मानं यच्चान्यद् द्रष्टुमिच्छथ ॥ ६ ॥

श्रीमार्कण्डेय उवाच

इत्युक्त्वाभगवान्देवस्तदानारायणोनृप । उच्चैर्जहासस्वनवत्तत्राऽभूदखिलंजगत्
ब्रह्मा प्रजापतिः शक्रः सह रुद्रैः पिनाकधृक् ।
आदित्या वसवः साध्या विश्वेदेवा महर्षयः ॥ ८ ॥

नासत्यदस्रावनिलः सर्वशश्च तथाग्नयः । यक्षगन्धर्वसिद्धाश्च पिशाचोरगकिन्नराः
समस्ताप्सरसो विद्याःसाङ्गा वेदास्तदुक्तयः ।
मनुष्याः पशवः कीटाः पक्षिणः पादपास्तथा ॥ १० ॥
सरीसृपाश्चाथ सूक्ष्मा यच्चान्यज्जीवसञ्ज्ञितम् ।

समुद्राः सप्त शैलाः सरितः काननानि च ॥ ११ ॥
[illegible] तथातथा सर्वसरांसि च । नगरग्रामसम्पूर्णां मेदिनीं मेदिनीपते
दैवाद्वनाभिर्देपान्य दृष्टे दृष्टं महात्मनः ॥ १२ ॥

[illegible] । [illegible] । [illegible] । [illegible] पदं विस्मयमागताः

[illegible] ऊचुः

[illegible] ।
[illegible] ॥ १६ ॥
[illegible] ।
[illegible] ॥ १७ ॥
[illegible] दृष्टं त्वमेव । ।
[illegible] ॥ १८ ॥
[illegible] कश्चित् ।
[illegible] देवदेव ॥ १९ ॥
[illegible] ।
[illegible] ॥ २० ॥
[illegible] ।
[illegible] ॥ २१ ॥
[illegible] विविक्तयात्तु ।
[illegible] परिष्यात् ॥ २२ ॥
[illegible] ।
[illegible] ॥ २३ ॥
[illegible] ॥

नारायणोऽपि भगवानाह तास्त्रिदशाङ्गनाः ॥ ५९ ॥

नारायण उवाच

नीयतामुर्वशीभद्रा यत्राऽसौत्रिदशेश्वरः । भवतीनांहितार्थाय सर्वभूतेष्वसावितिः
ज्ञानमुत्पादितं भूयो लयं भूतेषु कुर्वता । यद्गच्छध्वंसमस्तोऽयं भूतग्रामोमदंशकः
अहमध्यात्मभूतस्य वासुदेवस्य योगिनः ।
अस्मात्परतरं नाऽस्ति योऽनन्तःपरिपठ्यते ॥ ५६ ॥
तमजं सर्वभूतेशं जानीत परमं पदम् । अहं भवत्यो देवाश्च मनुष्याः पशवश्च ये ॥
एतत्सर्वमनन्तस्य वासुदेवस्य वै कृतम् ॥ ६० ॥
एवं ज्ञात्वा समं सर्वं सदेवासुरमानुषम् । सपश्वादिगुणं चैव द्रष्टव्यंत्रिदशाङ्गनाः

मार्कण्डेय उवाच

इत्युक्तास्तेन देवेन समस्तास्ताः सुरस्त्रियः ।
प्रणम्य तौ समदनाः सवसन्ताश्च पार्थिव !॥ ६२ ॥
आदाय चोर्वशीं भूयो देवराजमुपागताः । आचख्युश्च यथावृत्तं देवराजायतत्तथा

मार्कण्डेय उवाच

तथा त्वमपि राजेन्द्र! सर्वभूतेषु केशवम् । चिन्तयन्समतां गच्छसमतैव हि मुक्तये
जानन्नेवं विशेषेण भूतेषु परमेश्वरम् । वासुदेव कथं दोषांल्लोभादीन्न प्रहास्यसि
सर्वभूतानि गोविन्दाद्यदा नाऽन्यानि भूपते !।
तदा वैरादयो भावाः क्रियतां न तु पुत्रक !॥ ६६ ॥
इति पश्य जगत्सर्वं वासुदेवात्मकं नृप !। एतदेव हि कृष्णेन रूपमाविष्कृतं नृप !
परमेश्वरेति यद्रूपं तदेतत्कथितं तव । जन्मादिभावरहितं तद्विष्णोः परमम्पदम् ।
संक्षेपेणाऽथ भूपाल!श्रूयतां यद्वदामि ते । यन्मतंपुरुषः कृत्वा परं निर्वाणमृच्छति
सर्वौ विष्णुसमासो हि भावाभावौ च तन्मयौ ।
सदसत्सर्वमीशोऽसौ महादेवः परं पदम् ॥ ७० ॥
भवजलधिगतानां द्वन्द्ववाताहतानां सुतदुहितृकलत्रत्राणभारार्दितानाम् ।

नमोऽनन्त नमस्तुभ्यं विश्वात्मन्विश्वभावन ।
त्वन्नामस्मरणात्पापमशेषं नः प्रणश्यतु ॥ ३७ ॥

धरण्य यज्ञपुरुष प्रजापालन वामन । त्वन्नामस्मरणात्पापमशेषं नः प्रणश्यतु ॥
नमोऽस्तु पद्मनाभाय प्रजापतिक्लेशहर । त्वन्नामस्मरणात्पापमशेषं नः प्रणश्यतु
समापालयपालाय नमस्तुभ्यमधोक्षज । त्वन्नामस्मरणात्पापमशेषं नः प्रणश्यतु
मम धर्मार्थकामाय पापसंहारयेऽधमे । स्वच्छयागुणयुताय सर्गस्थित्यन्तकारिणे
उपसंहर विश्वात्मन्प्रपञ्चं सनातनम् । यथमान न नो दृष्टु समर्थं धर्तुमीश्वर ॥

प्रत्याहिमस्याल्प समा दीप्तिस्त्वयाऽच्युत ।
प्रभावेन दिशो भूमिगगनं च समावृतम् ॥ ४२ ॥

नविष्ण नृत्र यमामो भयाच्यायोपलक्ष्यते । सर्वं जगद्दिवि कन्थं विपिडन स्वयामदे
किं यथाग्नामा रूपं किं प्रमाणमिदं हर । माहात्म्यं किं पुनस्तथपलिताघनगोचरे
यत्रापि धान्यपुनरपि दुर्लभममुनामुने । गुणनिर्वचनं नाथ वक्तुं तव न शक्यते
सद्गुर्दिशल कथ प्रमाण परम पुन । उन्नता जगतामीश तद्रूपमुपसंहर ॥ ४३ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इत्येवं सम्भुनम्नाभिरप्सरोभिश्च नारद ।
स्तुतानानागस्थानो नाम्नो ह्यस्य(यं)माभिय ॥ ४८ ॥

विपश्च नवनुमार्नि स्वर्गशात् नभायन । तं दृष्ट्वा स्वयम्भुनेषु रिक्तमानमधोक्षजम् ॥
विस्मयापनमजन समस्तादपवर्जित । सनसर्वेश्वरः शैलरूपाद्रशस्त्रागारसम्भुयम्
तस्मिपि मध्य वायुमाकाशं च विधश ह ।
का न विश्वाय सवास्था प्रान्मनवास्त्र्यथाऽपि वा ॥ ५१ ॥

तम्मकवान्ययमन्तर माहया भगवच्छ्रुतम् । दृष्यशासमहांशि महायिधावरोवता
मनुष्यानपूर्वा गरंगाफलम् जर्मितल । वज्जर्वितनताभूर्मिविधि दे च अनावयो
मानिनी रा च पञ्चात्मापुरस्तान्तयमाणिन । सन्तानार्थसवांसिद्ध एष्युमविश्रुम
ता पर विश मवन्नम्नु सर्वाहिरर्यानचिन । प्रभु सायन्ताम्पापापुपदनानुत्तम

तत इन्द्रादयो देवाः शङ्खचक्रगदाधराः ॥ १० ॥
भूत्वा जग्मुस्तदर्थं ते सा तु दृष्टवती सुरान् ।
विश्वरूपं वैष्णवं यत्तद्दर्शयत मा चिरम् ॥ ११ ॥
विलक्षा व्रीडिता देवा गत्वा नारायणं तदा ।
अब्रुवन्विश्वरूपं नो शक्ता दर्शयितुं वयम् ॥ १२ ॥
ततो यथेष्टं ते जग्मुः स च विष्णुरचिन्तयत् । उग्रतपास्थिताऽऽदर्शादिति भार्गवी
तां तस्मात्तत्र गत्वाऽहं वरं दत्त्वा तु वाञ्छितम् ।
पुनस्तपः करिष्यामि दर्शयिष्यामि वा पुनः ॥
वैष्णवं विश्वरूपं यद्दुर्दर्शं देवदानवैः ॥ १४ ॥

मार्कण्डेय उवाच

ततो गत्वा हृषीकेशः सागरान्तस्थितां श्रियम् ।
प्राह तुष्टोऽस्मि ते देवि! वरं वृणु यथेप्सितम् ॥ १५ ॥

श्रीरुवाच

यदि तुष्टोऽसि मे देव प्रपन्नाया जनार्दन ! । तदादर्शयतद्रूपमप्सरोभिस्तथाऽनन
विश्वरूपमनन्तं च भूतभावन केशव !। गन्धमादनमास्थाय कृतं यच्च तपस्त्वया ॥
तद्वदस्व विभो! विष्णो! न मिथ्या यदि केशव !।
श्रद्दधामि न चैवाऽहं रूपस्याऽस्य कथञ्चन ॥ १८ ॥
बहुभिर्यक्षरक्षोभिर्मायाचारप्रचारिभिः । छन्दिता मम जानद्भिर्भावमन्तर्गतं हरि
भूत्वा विष्णुस्वरूपास्ते चक्रिणश्च चतुर्भुजाः ।
सुव्रीडिताऽगताः सर्वे विश्वरूपो सहायतः ॥ २० ॥

मार्कण्डेय उवाच

नारायणोऽथभगवाञ्छङ्खचक्रगदाभृतम् । तयातथोक्तस्तद्रूपंमुक्त्वाऽहं सुरपूजितम्
रूपं परं यथोक्तं वै विश्वरूपमदर्शत । दर्शयित्वा वचः प्राह पञ्चरात्रविधानतः
योऽर्चयिष्यति मां नित्यं स पूज्यः स च पूजितः ।

विषमविषयतोये मज्जतामप्लवानां भवति शरणमेको विष्णुपोतो नराणाम् ॥
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्यां संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे रेवाखण्डे श्रीपतिमाहात्म्यवर्णनंनाम त्रिनवत्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १९३ ॥

चतुर्नवत्यधिकशततमोऽध्यायः

श्रीपतिविवाहवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

तच्छ्रुत्वानन्तदेवेन विश्वरूपमुदाहृतम् । देवराजस्तथा देवाः परं विस्मयमागताः

दृष्ट्वा चाप्सरसं पुण्यामुर्वशीं कमलाननाम् ।
सव्रस्तो विस्मितश्चाऽभूदिन्द्रो राजश्रिया सह ॥ २

न किंचिदुक्तवान्वाक्यमुक्तवाङ्गोपमास्थितः ।
इति वृत्तान्तभूत हि नारायणविचेष्टितम् ॥ ३ ॥

भृगोः सा (ऱ्या) स्या समुत्पन्ना लक्ष्मीः श्रुत्वा तु वै नृप ।
विश्वरूपं परं रूपं विस्मिताऽचिन्तयत्तदा ॥ ४ ॥

केनोपायेन मे स्यान्मे भर्ता नारायणः प्रभुः । व्रतेनतपसायाऽपिदानेननियमेन च
वृद्धानासेवनेनाऽथदेवताराधनेनवा । इति चिन्तापराऽन्याथलीशारवायुधिष्ठिर

प्राह ग्रामो मया भर्ता शङ्करस्तपसा किल ।
प्रजापतिश्च गायत्र्या ह्यन्याभिरभिवाञ्छिता ॥ ७ ॥

तपसैवहि तं प्राप्यस्तस्मात्तचर भुवने । तपस्त्वहिमहच्चोग्रं सर्वकाङ्क्षितदायकम्

मार्कण्डेय उवाच

सागरान्त समासाद्य लक्ष्मी परपुरञ्जय । चचारविपुलं कालं तपः परमदुश्चरम् ॥

स्थाणुवत्संस्थिता साऽभूद्दिव्यं वर्षसहस्रकम् ।

ते दिव्यज्ञानसम्पन्ना दिव्यदेहविचेष्टिताः।
दिव्यं लोकमवाप्स्यन्ति दिव्यभोगसमन्विताः ॥ ३७ ॥

मार्कण्डेय उवाच

तयोरेवं सम्वदतोर्देवा इन्द्रपुरोगमाः। समागता वनोद्देशं सागरान्ते महर्षयः ॥
ततो भृगुं देवराजो नारायणविचिन्तितम्।
वव्रे ज्ञात्वा तु तत्कन्यां धर्मात्मा स ददौ च ताम् ॥ ३६ ॥
धर्मोऽपि विधिवद्वत्स! विवाहं समकारयत्। देवदेवस्य राजर्षे देवतार्थे समाहितः

युधिष्ठिर उवाच

धर्मो विवाहमकरोद्विधिवद्यस्त्वयोदितम्।
को विधिस्तत्र का दत्ता दक्षिणा भृगुणाऽपि च ॥ ४१ ॥
विवाहयज्ञे समभूत्स्रुक्स्रुवग्रहणेश्चकः। ऋत्विजः के सदस्याश्च तस्यासन्द्विजसत्तम
किं तस्याऽवभृथं त्वासीत्तत्सर्वं वद विस्तरात्।
त्वद्वाक्यामृतपानेन तृप्तिर्मम न विद्यते ॥ ४३ ॥

मार्कण्डेय उवाच

नारायणविवाहस्य यज्ञस्य च युधिष्ठिर!। तपसस्तस्य देवस्य सम्यगाचरणस्य च
वक्तुं समर्थो न गुणान्ब्रह्माऽपि परमेश्वरः।
तथाप्युद्देशतो वच्मि शृणु भूत्वा समाहितः ॥ ४५ ॥
ब्रह्मा सप्तर्षयस्तत्र स्रुक्स्रुवग्रहणे रताः। अग्नीञ्जुहुविरे राजन्वेदिर्धात्रीससागरा
ददुः समुद्रा रत्नानि ब्रह्मर्षिभ्यो नृपोत्तम!।
धनदोऽपि ददौ वित्तं सर्वब्राह्मणवाञ्छितम् ॥ ४७ ॥
विश्वकर्माऽपि देवानां ब्रह्मर्षीणां परन्तप। वेश्मानि सुविचित्राणि सर्वरत्नमयानि च
कृत्वा प्रदर्शयामास देवेन्द्राय यशस्विने। शतक्रतुस्ततो विप्रान्काश्यपादीन्पुरोगमान्
शौनकादींश्च पप्रच्छ वाष्कलाञ्छागलानपि।
आत्रेयानपि राजेन्द्र! वृणुध्वमभिवाञ्छितम् ॥ ५० ॥

धनधान्यसमायुक्तः सर्वभोगसमन्वितः ॥ २३ ॥
मूलं हि सर्वधर्माणां ब्रह्मचर्यं परन्तप । तेनाहतत्रस्थास्यामिमूलश्रीपतिमञ्चितः
मूर्ध्नी प्रोच्यतब्राह्मी ब्रह्मचर्यस्वरूपिणी । सर्वयोगमयीपुण्या सर्वपापहरीशुभा
पतिस्तस्या प्रभुरहं वरदः प्राणिनां प्रिये ।
स्नात्वा पश्येत्तु यो देवि योऽसौ येमां यतव्रतः ॥ २६ ॥
मूर्ध्नीपतिनिनामानं वाञ्छितं प्राप्नुयात्फलम् ।
स्नानानि तत्र यो दद्यात्महादानानि च प्रिये ॥ २७ ॥
सहस्रगुणितं पुण्यमस्यानादवाप्स्यते । इष्टं स्वथानत्रदेवो सम्यक्चैवायथारितम्
तन्निमित्तं पराकामानवाप्स्यसि त्वं न संशयः ॥ २८ ॥
वरं वृणीष्व देवेशि वाञ्छितं दुर्लभं सुरैः । दुःखसंसारकान्तारपतिते परमेश्वरि
श्रीरुवाच
नारायण जगन्नाथनारायण जगत्पते । नारायण परब्रह्मं नारायणपरायण ॥३०
प्रसीद पाहि मां भक्त्या सम्यक्स्वर्गे नियोजय ।
प्रियो हासि प्रियाऽहं ते यथा स्यां तत्तथा कुरु ॥ ३१ ॥
गृहं समाधकामानां कारणं देव सम्मतम् ।
मनाग्ध्यायाऽऽश्रमं पुण्यं मां श्रयसि नियोजय ॥ ३२ ॥
नारायण उवाच
नारायणगिरा देवि चिन्तितोऽस्मि यतस्त्वया ।
नारायणगिरिर्नाम तव म्रत्र भविष्यति ॥ ३३ ॥
नारायणस्मृतौ याति दुरितं जन्मकोटिजम् ।
यस्माद्गिरति तस्माच्च गिरिरित्येव शब्दितम् ॥ ३४ ॥
तस्मात्सर्वाश्रयो देवि गिरिः पर्वतराड् भवेत् ।
सुरासुरमनुष्याणां यथाऽहमपि चाऽऽश्रय ॥ ३५ ॥
य एतं पूजयिष्यति मण्डलस्थं परं मम । नारायणगिरिर्नाम देवरूपं शुभेक्षणे ॥

प्राजापत्याश्चतुर्विंशसहस्राणि नरेश्वर !॥ ६४ ॥

[स]र्वव्रतस्थानां व्रतब्रह्मविचारिणाम् । द्वादशैषां सहस्राणिसन्तिवै वृषभध्वज

नारदस्य वचः श्रुत्वा देवा देवर्षयोऽपि च ।

साधुसाध्वित्यमन्यन्त नोचुः केचन किञ्चन ॥ ६६ ॥

समाह्वयत्ततो लक्ष्मीस्तान्विप्रान्भक्तिसंयुता ।

उवाच चरणान्गृह्य प्रसादः क्रियतां मयि ॥ ६७ ॥

षट्त्रिंशच्च सहस्राणि वेश्मनामत्र संस्थितिः ।

विश्वकर्मकृतानां तु तेषु तिष्ठन्तु वोऽखिलाः ॥ ६८ ॥

ते तथेति प्रतिज्ञाय स्थिताः सम्प्रीतमानसाः ।

धनधान्यसमृद्धाश्च वाञ्छितप्राप्तिलक्षणाः ॥

सर्वकामसमृद्धाश्च ह्यनारम्भेषु कर्मणाम् ॥ ६९ ॥

इति संस्थाप्य तान्विप्रान्सा स्थिता पर्यपालयत् ।

चतुर्द्धा तु स्थितो विष्णुः श्रियाः देव्याः प्रिये रतः ॥ ७० ॥

एवं ववाहिकमखेनिवृत्ते ऋषयस्तुतम् । ऊचुश्चावभृथस्नानं कुत्र कुर्मो जनार्द्दन !॥

इति श्रुत्वा तु वचनं श्रीपतिःपादपङ्कजात् । मुमोचजाह्नवीतोयं रेवामध्यगमंशुचि

हरेः पादोदकंदृष्ट्वानिःसृतंमुनयस्तु ते । विस्मितास्समपश्यन्तजरनंतस्तस्यगौरवम्

रुद्रेण सहिताः सर्वे देवता ऋषयस्तथा ।

सङ्कथा विस्मिताश्चक्रुर्विधुन्वन्तः शिरांसि च ॥ ७४ ॥

ऋषय ऊचुः

ब्रूहि शम्भो! किमत्रायं अकस्माद्वारिसम्भवः ।

विष्णोः पादाम्बुजोत्थश्च सम्मोहकरणः परः ॥ ७५ ॥

ईश्वर उवाच

पादोदकमिदंविष्णोरहंजानामिवै सुराः । दशाश्वमेधावभृथैःस्नानमत्रातिरिच्यते

युष्माभिः श्रीपतिः पूज्यः स्नानं चावभृथं कुतः ।

दृष्ट्वातेधिश्वरत्वानिशाद्भुसर्वेश्वरेश्वरम् । देवानाञ्च ऋषीणा ■ मद्गमोऽयसुपुण्य

यस्मिन्पुण्ये सुरेशान' वस्तु वाञ्छामहे सदा ।

शतरतु प्राह पुनर्वासो योऽत्र भविष्यति ॥

सत्यधमरता यूयं यावत्काल भविष्यथ ॥ ५२ ॥

मार्कण्डेय उवाच

पृष्यद्राजराद्द् ७ केमवे होशिणोऽभवत् । तन्मोक्ष्यमाणमधुनाऽगुसूर्यासमाहि

समन्तुमात्प्रमुखा सदस्यास्तस्य चाऽभवत् ।

बौद्धाग्रमरथद्गिर्सा भर्ताचिद्ध चकार ह ॥ ५४ ॥

होत्र धमयशिष्टांच ब्रह्मचमनकोमुनि । पटभिशद्ग्रामसाहस्रप्रासाजेभ्यप्रातन

लम्माभवा च मयुक्ताऽभवत्तत्रजान्प्रभु । ब्राह्मणोजुहनोयहियाय द्वेशस्त्यिने सु

दृष्टे हराट दत्ताऽसा लगाद इति सञ्ज्ञित । स देवार्थापत्तं श्रेत्रपुण्यंद्वर्पिसेषि

सपाध्ययमयविश्व दिव्यसिद्धिसमन्वितम् ।

ब्राह्मणाना तत पदानि निवेशयितुमुद्यता ॥ ५८ ॥

दृष्ट्वा धीपतिनामानमाह देव वचस्तदा ।

श्रीरुवाच

य एत ब्राह्मणा शिष्या भृत्यादीना यतव्रता ।

नानिग्रहायितुमिच्छामि त्वत्प्रसादाद्धिषोत्तम ॥

सदाद्यादय सुवन्तुण स्थापिता गन्दध्वज ॥ ६० ॥

नैष्ठिकव्रतिना विप्रावश्याऽश्वयनप्रता । प्रापण्येप्रतं ह्राहोयं विद्वन्त्यपन्थिय

तानह स्थापयिष्यामि त्वत्प्रसादाद्धिषोत्तम ॥ ६१ ॥

मार्कण्डेय उवाच

तत कौतूहलाद्भगवान्नृपमब्रवन । पप्रच्छ प्रतिन सर्वान्नृत्तिभेदैःस्वयमन्वित

नारदोऽपि महान्तमुपस्थमर्वार्णनिम् । प्राहकृष्णाजिनधरोनैष्ठिका ब्राह्मणा ह

अमा काया सुयस्य छत्रगुहा द्विजोत्तमाः ।

प्राजापत्याश्चतुर्विंशसहस्राणि नरेश्वर !॥ ६५ ॥

ब्रह्मचर्यव्रतस्थानां व्रतब्रह्मविचारिणाम्। द्वादशैषां सहस्राणिसन्तिवै वृषभध्वज

नारदस्य वचः श्रुत्वा देवा देवर्षयोऽपि च।

साधुसाध्वित्यमन्यन्त नोचुः केचन किञ्चन ॥ ६६ ॥

समाहूयत्ततो लक्ष्मीस्तान्विप्रान्भक्तिसंयुता।

उवाच चरणान्गृह्य प्रसादः क्रियतां मयि ॥ ६७ ॥

षट्त्रिंशच्च सहस्राणि वेश्मनामत्र संस्थितिः।

विश्वकर्मकृतानां तु तेषु तिष्ठन्तु वोऽखिलाः ॥ ६८ ॥

ते तथेति प्रतिज्ञाय स्थिताः सम्प्रीतमानसाः।

धनधान्यसमृद्धाश्च वाञ्छितप्राप्तिलक्षणाः॥

सर्वकामसमृद्धाश्च ज्ञानारम्भेषु कर्मणाम् ॥ ६६ ॥

इति संस्थाप्य तान्विप्रान्सा स्थिता पर्यपालयत्।

चतुर्द्धा तु स्थितो विष्णुः श्रियाः देव्याः प्रिये रतः ॥ ७० ॥

एवं वचाहिकमखेनिवृत्ते ऋषयस्तुतम्। ऊचुश्चावभृथस्नानं कुत्र कुर्मो जनार्द्दन !॥

इति श्रुत्वा तु वचनं श्रीपतिःपादपङ्कजात्। मुमोचजाह्नवीतोयं रेवामध्यगमंशुचि

हरेः पादोदकंदृष्ट्वानिःसृतंमुनयस्तु ते। विस्मितास्समपश्यन्तजरनंतस्तस्यगौरवम्

रुद्रेण सहिताः सर्वे देवता ऋषयस्तथा।

सङ्कथा विस्मिताश्चक्रुर्विधुन्वन्तः शिरांसि च ॥ ७४ ॥

ऋषय ऊचुः

ब्रूहि शम्भो! किमत्रायं अकस्माद्वारिसम्भवः।

विष्णोः पादाम्बुजोत्थश्च सम्मोहकरणः परः ॥ ७५ ॥

ईश्वर उवाच

पादोदकमिदंविष्णोरहंजानामिवै सुराः। दशाश्वमेधावभृथैःस्नानमत्रातिरिच्यते

युष्माभिः श्रीपतिः पूज्यः स्नानं चावभृथं कुतः।

भविष्यतीति तेनाऽऽशु इदं घोऽर्ये विनिर्मितम् ॥ ७७ ॥
स्नात्वाऽत्र त्रिदशेशाना यत्फल सम्प्रपद्यते । यत्तु नवेनविद्यातितत त्रिमुत्तरवच
मार्कण्डेय उवाच
एवमुक्त्वा तुते सर्वे स्नानं कृत्वा यथागतम् । जग्मुर्देवा महेशानपुरोगाभरतं
ब्राह्मणाश्च तत्र सर्वे स्वयेश्मान्येव भेजिरे ।
देवतीर्थं महाराज सर्वपापप्रणाशने ॥ ८० ॥
इति श्रीस्कान्दे महापुराण एकाशीतिसाहस्र्या संहितायां पञ्चमेऽवन्तीखण्डे रेवाखण्डे श्रीपतिविवाहवर्णननाम चतुनव युत्तरशततमोऽध्याय ॥ १९४ ॥

पञ्चनवत्यधिकशततमोऽध्याय

श्रीपतिमाहात्म्यवर्णनम्

युधिष्ठिर उवाच

देवतार्थेतुकिन्नाममाहात्म्यसमुदाहृतम् । फलं किंस्नानदानादिकारिणाजायतेद्विज
मार्कण्डेय उवाच

पृथिव्या यानि तीर्थानि देवैर्मुनिगणैरपि ।
सेवितानि महाबाहो तानि ध्यातानि विष्णुना ॥ २ ॥
समागतान्येकता वै तत्र तीर्थे युधिष्ठिर । तत्तीर्थंवैष्णवपुण्य देवतीर्थमितिश्रुत
कुरुक्षेत्र भुवि परमन्तरिक्षे त्रिपुष्करम् । पुरुषोत्तम दिवि पर देवतीर्थं परात्पर
देवतीर्थसम नास्ति तीर्थमत्र परत्र च । यत्प्राप्य मनुजस्तत्पोत्र कदाचिद्युधिष्ठि
देवैरुक्तानि तीर्थानि योऽत्र स्नान समाचरत् ।
देवतीर्थ स सवत्र स्नातो भवति मानव ॥ ६ ॥
एवमस्त्विति तैरुक्ते देवा ऋषिगणा अपि ।

सन्तुष्टाः श्रीशमभ्यर्च्य स्वं स्वं स्थानं तु भेजिरे ॥ ७ ॥
सूर्यग्रहेऽत्र वै क्षेत्रे स्नात्वा यत्फलमश्नुते ।
स्नात्वा श्रीशं समभ्यर्च्य समुपोष्य यथाविधि ॥ ८ ॥
यद्ददाति हिरण्यानि दानानि विधिवन्नृप ॥
तदनन्तफलं सर्वं सूर्यस्य ग्रहणे यथा ॥ ६ ॥
भूमिदानं धेनुदानं स्वर्णदानमनन्तकम् । वस्त्रदानमनन्तं च फलं प्राह शतक्रतुः ॥
सोमो वै वस्त्रदानेनमौक्तिकानांचभार्गवः । सुवर्णस्यरविर्दानं धर्मराजोह्यनन्तकम्
वतीर्थे तु यद्दानं श्रद्धायुक्तेन दीयते । तदनन्तफलं प्राह बृहस्पतिरुदारधीः ॥१२॥
वतीर्थं भृगुक्षेत्रे सर्वतीर्थाधिकंनृप ॥ देवतीर्थे नरः स्नात्वाश्रीपतिं योऽनुपश्यति
सोमग्रहे कुलशतं स समुद्धृत्य नाकभाक् ।
दानानि द्विजमुख्येभ्यो देवतीर्थे नराधिप ॥ १४ ॥
र्द्दत्तानि नरैर्भोगभागिनः प्रेत्य चेह ते । देवतीर्थे विप्रभोज्यं हरिमुद्दिश्ययश्चरेत्
स सर्वाह्लादमाप्नोति स्वर्गलोके युधिष्ठिर ॥
देवतीर्थे नरो नारी स्नात्वा नियतमानसौ ॥ १६ ॥
उपोष्यैकादशीं भक्त्या पूजयेद्यः श्रियः पतिम् ।
रात्रौ जागरणं कृत्वा घृतेनोद्बोध्य दीपकम् ॥ १८ ॥
द्वादश्यां प्रातरुत्थाय तथावै नर्मदाजले । विप्रदां पत्यमभ्यर्च्य विधिवत्कुरुनन्दन
वस्त्राभरणताम्बूलपुष्पधूपविलेपनैः । अक्षये विष्णुलोकेऽसौ मोदते चरितव्रतः ॥
यः सदैकादशीतिथौ स्नात्वोपोष्याऽर्चयेद्धरिम् ।
रात्रौ जागरणं कुर्याद्वेदशास्त्रविधानतः ॥ २० ॥
धर्मराजकृतांपापांनसपश्यतियातनाम् । पञ्चरात्रविधानेनश्रीपतिंयोऽर्चयिष्यति
दीक्षामवाप्य विधिवद्वैष्णवीं पापनाशनीम् ।
स्वर्गमोक्षप्रदां पुण्यां भोगदां चित्तदामथ ॥ २२ ॥
राज्यदांवामहाभागपुत्रदांभाग्यदामथ । सुकलत्रप्रदांवापिविष्णोर्भक्तिप्रदामिति

यदारुणाख्यस्त्रैलोक्ये महाबाधां करिष्यति । तदाहं भ्रामरं रूपं कृत्वाऽसंख्येयषट्पदम्

त्रैलोक्यस्य हितार्थाय वधिष्यामि महासुरम् ।
भ्रामरीति च मां लोकास्तदा स्तोष्यन्ति सर्वतः ॥ ५० ॥
इत्थं यदा यदा बाधा दानवोत्था भविष्यति ।
तदा तदाऽवतीर्याऽहं करिष्याम्यरिसंक्षयम् ॥ ५१ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये देव्याः स्तुति
र्नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥
समाप्तश्चायमेकादशः ॥

तदा मां देवीं ज्ञानप्रमुखाः भक्तिप्रह्वकाया मन्तः सर्वेऽपि मुनयः धनिष्ठाय स्तोष्यन्ति । ततः भीमरूपेण रक्षोभक्षणाद्धेतोः विख्यातप्रसिद्धभीमादेवीति विश्रुतनाम भविष्यति । विस्मयस्यादितिभीमस्य भीमाद्योऽपादाने निपातिता ॥ ४८ ॥

हे देवाः ! यदा त्रैलोक्ये अरुणो नाम महासुरः महाबाधां महतीं पीडां करिष्यति । लोकान् बाधिष्यते अतितरां तदा अहं असंख्येयषट्पदं भ्रामरं रूपं भ्रमरसमष्टिनीं मूर्तिं कृत्वा त्रैलोक्यस्य हितार्थाय अरुणं महासुरं वधिष्यामि तदा लोकाः सर्वतः भ्रामरीत्येवं स्तोष्यन्ति भ्रमराणां इयं भ्रामरी इत्याख्या भ्रामरी देवी । असंख्येयाः संख्यातुमशक्याः षट्पदाः भ्रमराः मूर्तिभूताः अरुणासुरं हनिष्यन्ति अतः सा भ्रामरीति नाम्ना लोकैः सङ्कीर्त्यते इत्यर्थः । अरुणस्यापत्यं पुमान् आरुणः इति च्छेदे अतः अस्य बाधित्वात् शिवा तस्याद्रणधा ॥ ४९ ॥ ५० ॥

इदानीं देव्या अवताराणां तत्कार्याणां चानन्त्यात् साकल्येन वक्तुमशक्यत्वात् संक्षिप्यन्तं कथामुपसंहरति । हे देवाः इत्युक्तानुसारेण प्रकारेण यदा यदा दानवेभ्य

द्विनवतितमोऽध्यायः

(द्वादशोऽध्यायः)

श्रीमद्देवीचरित्रपठनमाहात्म्यवर्णनम्

देव्युवाच

एभिः स्तवैश्च मां नित्यं स्तोष्यते यः समाहितः।
तस्याहं सकलां बाधां शम (नाश) यिष्याम्यसंशयम् ॥ १ ॥

उत्तिष्ठतिउत्थास्यतिवादानवोत्थादानवेभ्यः समुद्भवाबाधापीडालोकानांभविष्य तिउत्पत्स्यते। तदातदाअहंतत्तत्कार्यानुरूपमवतीर्यप्रादुर्भावमवाप्यअरिसंक्षयंशत्रुविनाशंककरिष्यामि। दानवोत्थेतिसुपिस्थःकः कर्तरि ॥ ५१ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे श्रीमदु० शन्तनु० देवीमा०टीकायांनारायणीस्तुतिर्नामैकनवतितमोध्यायः ॥ ६१ ॥

देव्युवाच। यद्यपि प्रागपिदेवान् देव्येवोवाचतथाप्यध्यायादौ देवीवचनस्य प्राधान्यंध्वनयितुंदेवीमाहात्म्याध्ययनश्रवणादिफलप्राप्तिप्रामाण्यं च दर्शयितुंदेव्येवोचितांवाचं देवानुक्तवती। यः पुरुषः समाहितःभक्तिश्रद्धान्वितो भूत्वा एभिःप्रागुक्तैः स्तवैः स्तोत्रैः पुनःपुनः नित्यंअविकल्पितं यथा भवति तथा शश्वद्वामांदेवींस्तोष्यते तस्यपुंसःसकलांबाधांशमयिष्यामिअसंशयंसंशयाभावः। अर्थाभावेऽव्ययर्थाभावः। यद्वा, असंशयंयथास्यात्तथास्तोष्यते क्रियाफलेकर्तृगतेञित्वादात्मनेपदम्। एभिरितिब्रह्मकृतैरिन्द्रादिदेवकृतैश्च। हंसःसूर्यः परमात्मा।

मधुकैटभनाशञ्च महिषासुरघातनम् । कीर्त्तयिष्यन्ति ये तद्वद्वधं शुम्भनिशुम्भयं

अष्टम्याञ्च चतुर्दश्यां नवम्याञ्चैकचेतसः ।

श्रोष्यन्ति चैव ये भक्त्या मम माहात्म्यमुत्तमम् ॥ ३ ॥

न तेषां दुष्कृतं किञ्चिद्दुष्कृतोत्था न चापदः ।

'अमावास्यायामेवमे तिथौ' । इमस्यक न्याहमकग । याध्यर्लैप्राणिनोऽनयाबाध मरहृति अविद्यमानाह भवन्ग प्रज्ञाविद्यायस्यास्ता अहम्मकलायाधा मोहरूपा ममनामरहृति । सा बाधा अमशयंशमयिष्यामीत्यपिमुक्तिनामेरखमान्यम् । 'रचितश्चैनच्छर्दिहर्मी' । यद्वा, एभिस्स्तवैमाय स्तोष्यन्ते तस्याऽहङ्कारस्तनामप्रत्य बाधामसर्वतिशमयिष्यामि ॥ १ ॥

त्रयाणामन्वयमैक्यं, ये पुरुषाएकचेतसः मत मावधाना सन्त अष्टम्या नवम्या चतुर्दश्याच पक्षद्वयेऽपिविशेषानुक्तिन यथाक्रममनयोः य मधुकैटभनाशं महिषासुरघातनं च तद्वच्छुम्भनिशुम्भयोर्वधममकस्या कीर्त्तयिष्यन्ति पठिष्यन्ति तद्वदेवये श्रोष्यन्ति भक्त्या मममाहात्म्य उत्तम पुण्यतम सर्वकामदुघ तेषां दुष्कृत दुरित मयसञ्चितमपि किञ्चिदपिमविष्यतिदु ष्कृतोत्थाआपदश्चनभविष्यन्तिचिनश्यन्तीत्यर्थः । न तेषां दारिद्र्य भविष्यति आढ्यतैवभविष्यतीत्यर्थः । न च तेषा इष्टैःमह्वैनरैरवेनतैश्चपुत्रादिभिर्धनादिभिश्चवियोजन वियोगो भविष्यति । मधुकैटभयोनाश यस्मिन्ग्रन्थेमतथोक्त । हननघात नस्यकरणघातनण्यस्तात् ल्युट । महिषासुरस्यघातनम् । सूत्र धा इतिपाठ । पूर्वक्षरणेहिंसाया च । वधोयस्मिन्ग्रन्थग्रनिपात्यतेसंवध । अर्शआदित्वादच् । शुम्भनिशुम्भयोरिति द्विवचनेनवधद्वयसूच्यते । तनवधानावैनम्यादष्म्यादिदिनत्रयेणयथाक्रमकीर्त्तन शङ्कापिदूरीकृता । एकमनन्यवृत्तिचेनोयेषाते । भक्तिमक्तिरनन्यशरणतथाश्रयणम् । महान्तआत्मन अवतारायस्या सामहात्मादेवी तस्या भाव माहात्म्यम् ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥

भविष्यति न दारिद्र्यं न चैवेष्टवियोजनम् ॥ ४ ॥
शत्रुतो न भयं तेषां (तस्य) दस्युतो वा न राजतः ।
न शस्त्रानलतोयौघात् कदाचित् सम्भविष्यति ॥ ५ ॥
तस्मान्ममैतन्माहात्म्यं पठितव्यं समाहितैः ।
श्रोतव्यञ्च सदा भक्त्या परं स्वस्त्ययनं महत् (हि तत्) ॥ ६ ॥

उपसर्गानशेषांस्तु महामारीसमुद्भवान् । तथा त्रिविधमुत्पातंमाहात्म्यंशमयेन्मम

ये मम माहात्म्यंकीर्त्तयिष्यन्ति स्तोष्यन्ति च तेषां कदाचिदपिशत्रुतोभयंनसम्भविष्यति । दस्युतः तस्करतोऽपिवा न । राजतोऽपिनृपात्न नशस्त्रतः आयुधतः न अनलतोऽग्नितः । न तोयौघात् जलप्रवाहात् न सम्भविष्यतीत्यनेन सर्वत्र सम्बध्नाति ॥ ५ ॥

तस्माद्वाञ्छितार्थसाधनत्वाद्धेतोः समाहितैः सावधानैः कृतप्रयत्नैः पुंभिःपरं प्रकृष्टंमहत्पूजनीयम् । स्वस्त्ययनंक्षेमकरं अयनंवर्त्ममदेव्याएतन्माहात्म्यंग्रन्थसन्दर्भरूपंपक्त्या पठितव्यंश्रोतव्यं च । एतन्माहात्म्यमिति बहुव्रीहिः । ग्रन्थसन्दर्भरूपोऽन्यपदार्थः । शब्दस्यैव पठनश्रवणयोग्यत्वेनचिषयभावात् । एतदितितुपृथक्पदत्वे माहात्म्यम्प्रतिपाद्यन्तद्यत्रास्तिग्रन्थवन्धेसोऽप्युपचारात् मत्वर्थीयेनअर्शआद्यचाचामाहात्म्यशब्देनोच्यतइतिपठनश्रवणयोग्यंद्रष्टव्यम् । 'स्वस्त्याशीःक्षेमपुण्येषु मङ्गलेचाव्ययंस्मृतम्' ॥ ६ ॥

ममदेव्याः माहात्म्यंकर्त्तृ भक्तितः पठतांभक्तितःशृण्वतां च पुंसांमहामारी समुद्भवान् सर्वानुपसर्गान् उपद्रवान् शमयेद्दूरीकुर्यात् । तथातेषां पुंसांत्रिविधं उत्पातं आध्यात्मिकं आधिदैविकमाधिभौतिकं । आध्यात्मिकं शरीरोत्पन्नंराग द्वेषादिकंव्याध्यादिकं च । आधिभौतिकं भूतप्रेतादिकजनितं भयभ्रमादिकम् । आधिदैविकंदैवकृतंवज्रपातादिकं दारिद्र्यादिकं च । यद्वा, भूर्भुवःस्वःसम्भवमुत्पातत्रयंशमयेत् । भौमंभूकम्पादिकं आन्तरिक्षं अनभ्रगर्जनादि । स्वर्लोक-

यत्रैतत्पठ्यते सम्यङ् नित्यमायतने मम ।
सदा न तद्विमोक्ष्यामि सान्निध्यं तत्र मे स्थितम् ॥ ८ ॥
बलिप्रदाने पूजायामग्निकार्ये महोत्सवे । सर्वं ममैतच्चरितमुच्चार्यं श्राव्यमेव च ॥ ९ ॥

जनितसमस्तदेहेन्द्रियोपद्रवनम् । महामारीनिमित्तमाणमारणशीलस्त्रियमिर् कृत्यादिष्वि छान्त्मोगुण । यद्वा, औपादिक मरधातुम्यन् । स्त्रियामिदिकारादकितो ङीप् । महती मारी महामारी । 'अन्येषामपि दृश्यते' इति पूर्वपदस्य दीर्घ । महा माया समुद्भवा । यद्वा, मरणमरजहृतोरप् मरस्येयं मृतिमारी । यद्वा, मार यतिमार कामस्तामारस्यमाय मायं मायैव्यम् । मायमेवमारीस्त्रियामित्यात् ङीप् ॥ ७ ॥

यत्र ममायतने गृहे प्रतिमादिमन्दिरे एतन्माहात्म्यचरितमयपयोपेन माहात्म्य नित्यमविच्छिन्नमध्ययनं सम्यक् शुद्धपाठे भक्तिपुरःसरम् । तदायतनं सदा न विमोक्ष्यामि न त्यक्ष्यामि । तत्र गृहादौ देव्या मानिध्यं सन्निधानं समयस्थानं स्थितं स्थितिमद्भूत् ॥ ८ ॥

बलिप्रदाने पूजायामग्निकार्ये महोत्सवे च सर्वं एतन्मम चरितं उच्चार्यं श्राव्यं श्रवणार्हम् । 'अहं गोपशम् श्रावय अवश्यश्राव्यं च 'ओरावश्यके ण्यत्' । यद्वा, पठ तात्पर्यात । श्राव्यश्रावयितव्यमनयोः पर्यायम् । एकदेशानपेक्षितुडितन्न्यायात् । महानवम्यादौ छागमेषमहापशुभिर्बलिदान देवतोद्देशेन पशुसमर्पणम् । दद्याने इयु ५ । धूपपुष्पोपहारदीपादिसमर्पणम् । यद्वा, अलङ्कारवस्त्रचन्दन वाहनच्छत्रचामरादिभि कुमारीसुवासिनीसमर्चनपूजा । अग्निकार्यं फाल्गुने मासि अग्निज्वालाचन देवीमाहात्म्यरूपमालामन्त्रपुरश्चरणान्ते विहितहोमोऽग्निकार्यम् । एत त्रयस्थाणोमहोत्सव । यद्वा, चैत्रे वसन्तोत्सव । वैशाखे धारण पुष्पप्रचायिकोत्सव । ज्येष्ठे जलक्रीडोत्सव । आषाढे इन्द्रध्वजोत्थानोत्सव श्रावणे दोलोत्सव । भाद्रपदे इन्द्रधाणिधनुरुत्थनोत्सव । आश्वयुजि शारदोत्सव ।

जानताऽजानता वापि वलिपूजां तथा कृताम्।
प्रतीच्छि (क्षि) ष्याम्यहं प्रीत्या वह्निहोमं तथा कृतम् ॥ १० ॥
शरत्काले महापूजा क्रियते या च वार्षिकी।
तस्यां ममैतन्माहात्म्यं श्रुत्वा भक्तिसमन्वितः ॥ ११ ॥
सर्वाबाधाविनिर्मुक्तोधनधान्यसुता(सम)न्वितःमनुष्योमत्प्रसादेनभविष्यतिनसंश

कार्त्तिकेदीपोत्सवः।मार्गशीर्षेमनूदयोत्सवः। पौषेनिधिपूजोत्सवः। माघेमेरूत्सव फाल्गुनेगन्धर्वोत्सवः। एतेषुसम्पूर्णंदेवीचरितंपठनीयंइतिभावः। यद्वा, महोत्सव सर्वश्रुतिपारायणम्। यद्वा, वदतेः कर्त्तरिक्विप्। वदतीष्टदेवतां इतिउतद्व प्रणवः। महानुउत् मन्त्रो यत्र समहोत्सचासौसवश्चेतिमहोत्सवः। मन्त्र दीक्षाख्योयज्ञः तस्मिन्। यद्वा, उन्दीक्लेदने, उन्दनंउत्। स्त्रियाम्भावेसम्पद दिभ्यः क्विब्वावक्तव्यः उदः सवोदीक्षायज्ञः उत्सवः सुधोत्सवः सुधोत्सवोम मन्त्रग्रहेमहोत्सवः तस्मिन्॥ ६ ॥

तथातेनप्रकारेण इतिकर्त्तव्यतां गुरूपदिष्टेष्टदेवताराधनसामग्रीभावः योपक्रमोपसंहृतिक्रियाक्रमज्ञानताअजानतावापिभक्तिमतापुंसाकृतंबलिंवलिप्रः तथा तेन कृतांपूजांच। तथातेनकृतंवह्निहोमंतिलमध्वादिहोमद्रव्यप्रक्षेपंचप्रीत्य हम्प्रतीच्छिष्यामिस्वीकरिष्यामि। 'पतच्छ्रितंप्रतीच्छंस्यात्'। पतच्छ्रयणा र्तीच्छा। प्रतीच्छास्त्यस्यप्रतीच्छः कश्चित्। अर्शआदित्वादच्। ततःतद्व घरतीत्याचारेक्विप्। सनाद्यन्तत्वाद्धातुत्वात्प्रतीच्छधातोर्भविष्यतिकाले स्यप्रत्ययः मिप् इडागमः। 'अतोलोपः'। इण्कोः। 'आदेशप्रत्यययः षत्वः प्रतीक्षिष्यामीतिपाठे ईक्षदर्शने अनुदात्तेत्त्वनिबन्धनमात्मनेपदविधानमनित्य तिचक्षिङोङित्करणं ज्ञापकमित्युक्तत्वात्परस्मैपदम्। वलिपूजां इत्येकप तु वलिनापशुविशसनेन सहकृतापूजा वलिपूजा। वलिरूपावा पूजासत रः तम्। ॥ १० ॥

श्रुत्वा ममैतन्माहात्म्यं तथा चोत्पत्तयः शुभाः । पराक्रमं च युद्धेषु जायते निर्भयः पुमान् ॥
रिपवः संक्षयं यान्ति कल्याणं चोपपद्यते । नन्दते च कुलं पुंसां माहात्म्यं मम शृण्वताम् ॥
शान्तिकर्मणि सर्वत्र तथा दुःस्वप्नदर्शने । ग्रहपीडासु चोग्रासु माहात्म्यं शृणुयान्मम ॥

शुभम् । पापनिर्घातनार्थिनी महामारी शान्त्यर्थैश्चिन्तनैश्चापि ये मम तन्माहात्म्यं परिश्रवणस्थानं भक्तिसमन्वितः श्रुत्वा पठित्वा श्रुत्वा च सर्वाबाधाविनिर्मुक्तः धनधान्यसमन्वितः भविष्यति नात्र संशयः । कलौ निरुक्ते सार्वत्रिकी ... 'मर्त्यः' इति लिङ् । ... । ... ॥ ११ ॥ १२ ॥

उत्पत्तिश्रवणस्थाने मम माहात्म्यं श्रुत्वा धूम्राक्षप्रभृतीनां ... पराक्रमं युद्धेषु निर्भयो जायते । तथा ममशुभा ... उत्पत्तयः ... भूयो ... युद्धेषु निर्भयो ... मम पराक्रमाख्यं ... श्रुत्वा । यद्वा । युद्धे ... पुमान् । ... 'युद्धेष्वपि' इति ... । युद्धेष्वपि ... । शुभमित्यादि । ... । यद्वा ... । यद्वा, शुभवन्धनेत्यादि ... युद्धे ... । माहाठ । ... । ईलहा ... । ... । ... ॥ १३ ॥

भक्त्या मम माहात्म्यं शृण्वतां पुंसां रिपवः संक्षयं यान्ति कल्याणं च उपपद्यते । ... । उपसर्गादि गच्छति । उपजायते इत्यर्थः । कुलं च नन्दते ... । ... । यद्वा, ... । 'नन्दति ... ॥ १४ ॥

उपसर्गाः शमं यान्ति ग्रहपीडाश्च दारुणाः ।
दुःस्वप्नञ्च नृभिर्दृष्टं सुस्वप्नमुपजायते ॥ १६ ॥
बालग्रहाभिभूतानां बालानां शान्तिकारकम् ।
सङ्घातभेदे च नृणां मैत्रीकरणमुत्तमम् ॥ १७ ॥
दुर्वृत्तानामशेषाणां बलहानिकरं परम् । रक्षोभूतपिशाचानां पठनादेव नाशनम् ॥

उत्पातादिसूचितोपद्रवाणां सर्वत्रसर्वस्मिन् शान्तिकर्मणितथादुःस्वप्नदर्शनेदुष्टफलस्वप्नदर्शने । उग्रासुअत्यनिष्टफलासुग्रहकृतासुपीडासु मम माहात्म्यंशृणुयात्पुरुषःततःसचबाधोपशान्तिर्भवतिसर्वेष्टार्थसिद्धिश्चेतिभावः ॥ १५॥

पूर्वोक्तंपुनर्व्यनक्ति । मम माहात्म्यश्रवणादुपसर्गाः बाधाः अतिवृष्ट्यादयः शमं यान्ति । यद्वा, उपसर्गाउत्पाताः प्रकृतिविरुद्धेतयः । 'अजन्यंक्लीबउत्पात उपसर्गः समंत्रयम्' । तथाततएवदारुणाः भयानकाः ग्रहपीडाः शन्यादिकृताबाधाशमंशान्तियान्ति । नृभिः दृष्टंदुःस्वप्नंसुस्वप्नमुपजायते । दुःस्वप्नसूचितं यद्दुष्टं फलं तत्सुस्वप्नसूचितमिवफलं,संपद्यतइतिभावः । अतर्कितप्राप्यफलोहिमणिमन्त्रौषधदेवताप्रभावः । दुःस्वप्नसुस्वप्नयोर्नियतेपुंल्लिङ्गत्वेऽपिबहुव्रीहौफलेऽन्यपदार्थेविवक्षितेनपुंसकतोपपत्तिः । अर्द्धर्चादौस्वप्नशब्दो नास्त्येव । अन्यथाऽस्यपुंनपुंसकतोपपद्येत । दुःस्वप्नश्चेतिपाठोवा ॥ १६ ॥

बालानांशिशूनांग्रहाः पीडकाः पूतनादयः श्मशानाद्विवासिनोदृष्टिबंधिगलबन्ध्यंत्रबन्धिनाभिबन्धिशुक्रबन्ध्युपस्थबन्धिरुधिरशोषिपिशितशोषिमूत्रशोषिलालाशोषिप्रभृतयश्चतैरभिभूतानामाक्रान्तानां शान्तिकारकं उपशमनकारणं मम माहात्म्यश्रवणाद्युतममाश्रयणीयम् । किं च नृणांएककार्यकारिणां कथंचित्परकृतोच्चाटनप्रयोगतः सङ्घातभेदेप्रसक्तेसतिमन्माहात्म्यश्रवणमेवोत्तमं मैत्रीकरणं मित्रत्वकरणसाधनम् ॥ १७ ॥

दुष्टं वृत्तं चरितं येषां तेदुर्वृत्ताः तेषामशेषाणांपरं श्रेष्ठंबलहानिकरंबल-

सर्वं ममैतन्माहात्म्यं मम सन्निधिकारकम् । सर्वं स्तमेतदादिमध्यावसानलक्षणम्
पशुपुष्पार्घ्यधूपैश्च गन्धदीपैस्तथोत्तमैः ॥ १९ ॥
विप्राणां भोजनैर्होमैः प्रोक्षणीयैरहर्निशम् । अन्यैश्च विविधैर्भोगैः प्रदानैर्वत्सरेण या
प्रीतिर्मे क्रियते सास्मिन्सकृदुच्चरिते श्रुते । श्रुतं हरति पापानि तथाऽऽरोग्यं प्रयच्छति

न्नाशहेतु तन्माहात्म्य । इत्योहेनीट । किंच रक्षसा मायोपजीविनां भूतानां धारग्रहादीनां पिशाचानां पिशिताशनानां तामसानां च पीडकानामदृश्यरूपा यां मम माहात्म्यस्यपठनाद्विनाशनं दूरीकरणं भवति ॥ १८ ॥

ममसान्निध्यकारकं मेकम्याकारकम् । सन्निधिकारकं इतिपाठेऽपिम निधि सनिधानं इतिव्याख्यायामप्ययमेवार्थ । यद्वा सन्निधि महानिधि महापद्मादि तस्यकारकमापकंपठ्यमानमदितिभाव ॥ १९ ॥

शुभम पुष्भिरभि प्रकारैर्वत्सरेणयाक्रियतेमेमन प्रीति साऽस्मिन्त मा हात्म्ये सकृदकथारमेव उच्चरित पठिते श्रुतेवाभक्तिमद्भि मवकामदुघोपार्जितय स्यात् । पशुभि चतुष्पद्भि छागमेषमहिषमातद्भादिभि छिपाद्भिमहापशुभिश्च नरै पुष्पै सुरभिसम्भूतै अर्घ्यै पूजार्थमधुरस्नादिभि धूपै कपूरागरमृगमदादि गर्भितैरु रूपादिभिर्नानाहृतिग-धादिभि घशन्दात् श्रीवासादिधूपाद्यन्तै ।

तथाउत्तमैर्विविधैर्विप्राणां वसन्यैर्भोजनै पङ्क्भोयैर्भोज्यैरन्नादिभिरर्चितै । तथा विधिवद्धोमै । तथाऽहर्निशद्दिवानिशा विविधै प्रेक्षणीयैः शनीयैर्नृत्यगीत वाद्यै । तथान्यैश्च विविधै भोगै तथा दानैमन्त्रार्थ्यैर्विविधै । च शब्दाद स्तालंकारधूनादिभि सायनै वत्सरेणयामेप्रीति सकम्यामदुधामनै क्रियत साऽस्मिन्प्राक प्रपञ्चितममाहात्म्येसकृदेकवारमकथा उच्चरितपञ्चितश्रुतेवामा

रक्षाङ्करोति भूतेभ्यो जन्मनांकीर्तनं मम! । युद्धेषु चरितं यन्मे दुष्टदैत्यनिवर्हणम् ॥

अस्मिन् (तस्मिन्) श्रुते वैरिकृतं भयं पुंसां न जायते ।

युस्माभिः स्तुतयो याश्च याश्च ब्रह्मर्षिभिः कृताः ॥ २३ ॥

ब्रह्मणा च कृतास्तास्तु (यास्ता) प्रयच्छन्ति शुभां मतिम् (गतिम्)।

अरण्ये प्रान्तरे वाऽपि दावाग्निपरिवारितः ॥ २४ ॥

धयितुंसुगमेत्यर्थः । यद्वा, सकृत्सहद्भिर्नैः पुंभिः पञ्चषैः सप्ताष्टैरेकद्वित्रिच-तुरैरेकतयोच्चरितेश्रुतेवेत्यर्थः । 'सहार्थेचैकवारेचसहार्थेवाव्ययंसकृत्' । 'सकृत्सुचरितेश्रुते' इतिपाठे श्रुतशब्दतः श्रवणप्राधान्यंसुचरितेशोभनेचरिते प्रोक्षणीयैरहर्निशं इतिपाटेतुकश्चिदाह । मन्त्रपूतजलोक्षणसंस्कृतहतच्छागादिपशुबलिरितितन्न । पशुपुष्पार्घधूपैरितिपशुग्रहणेनपौनरुक्त्यप्रसङ्गात् । ततइत्थंत्वर्थोऽत्रवक्तव्यः । उक्षसेचने । प्रत्यहंपंचामृताभिषेकैरविच्छिन्नपीयूषधाराभिषेकैर्वेति ॥ २० ॥ २१ ॥

ममदेव्या माहात्म्यस्यश्रुतं श्रवणं कर्तृ पापानि हरति अपनयति नपुंसकेभावेक्तः' । तद्योगेषष्ठ्येव । यद्वा, मममाहात्म्यं श्रुतं सत् पापानिहरति । तथाभजतां आरोग्यं प्रयच्छतिदानप्रतिग्रहाभावात् षष्ठ्येव । मम जन्मनां उत्पत्तीनां ब्रह्माण्यादिरूपतयाप्रादुर्भावानां कीर्त्तनं कथनंभूतेभ्यः हिंस्रेभ्यः भूतप्रेतपिशाचसिंहव्याघ्रग्रहादिभ्यः भक्तानां रक्षांकरोति ॥ २२ ॥

युद्धेषुयद्दुष्टदैत्यवर्हणं मे देव्याश्चरितं शस्त्रप्रयोगलक्षणंसङ्ग्रामकौशलमभूत्तस्मिञ्छ्रुतेसतिश्रुतवतां पुंसां युद्धेषुततोऽन्यत्र च वैरिकृतं भयं न जायते । निवर्हयति निवर्हणम् । नन्द्यादित्वाल्ल्युः । दुष्टानां दैत्यानां निवर्हणंचरित्रम् । ॥ २३ ॥

सुमेधसा मार्कण्डेयेन च ततः पूर्वैश्चब्रह्मर्षिभिः याः स्तुतयः कृताः 'तथापिममतावर्ते मोहगर्ते निपातिताः महामायाप्रभावेणे'त्यादयः ताश्च शुभां

दस्युभिर्वा वृतः शून्ये गृहीतो वाऽपि शत्रुभिः ।
सिंहव्याघ्रानुयातो वा वने वा वनहस्तिभिः ॥ २५ ॥
राज्ञा क्रुद्धेन वा (वा) ज्ञप्तो वध्यो बन्धगतोऽपि वा ।
आघूर्णितो वा वातेन स्थितः पोते महार्णवे ॥ २६ ॥
पतत्सु चापि शस्त्रेषु सङ्ग्रामे भृशदारुणे । सर्वाबाधासु घोरासु वेदनाभ्यर्दितोऽपि वा
स्मरन्ममैतच्चरितं नरो मुच्येत सङ्कटात् । मम प्रभावात्सिंहाद्या दस्यवो वैरिणस्तथा
दूरादेव पलायन्ते स्मरतश्चरितं मम ॥ २८ ॥

गतिम् प्रयच्छन्ति पठ्यमानाः पश्यन्त्वन्य पु भय याश्च ब्रह्मणा मधुकैटभभीतेन कृताः स्तुतयः 'विश्वेश्वरीं जगद्धात्रीम्' इत्यादयः । याश्च युष्माभिरेव कृताः स्तुतयः 'देव्या यया ततमिदं जगदात्मशक्त्या' इत्यादयः । 'नमो देव्यै' इत्यादयश्च । 'देवि प्रपन्नार्तिहरे' इत्यादयश्च । तास्त्रिविधाः स्तुतयः ॥ २४ ॥

एकान्वयमिदं श्लोकचतुष्टयम् । अरण्ये विपिने वा वर्तमानो मदीयं चरितं स्मरन्नरः सङ्कटाद्दुःखदशातो मुच्येत स्वयमेव । सङ्कटात् सम्बाधात् कर्मकर्तरि मुचेर्लिङ् । तथा प्रान्तरे वापि दूरे जनशून्यमार्गे । 'प्रान्तरं दूरशून्योऽध्वा' तथा दावाग्निपरिवारितः सन्नपि वा । तथा दस्युभिः तस्करैर्वृतः वेष्टितो वा । तथा शून्ये निर्जनप्रदेशे शत्रुभिर्गृहीतो वा । तथा सिंहेन व्याघ्रेण वाऽनुयातोऽनुद्रुतः । तथा वनहस्तिभिर्वृतो वा हन्तुमनुयातः । तथा क्रुद्धेन राज्ञा वध्योऽयं वध्यार्होऽयमित्याज्ञप्तः । हन्तुमाज्ञापितो वा । तथा बन्धगतोऽपि वा । तथा वातेन घूर्णितः व्याकुलितः बाधितोऽपास्तो वा । महार्णवे समुद्रे पोते नौकाविशेषे सांयात्रिकाः पोतवणिजः कथ्यन्ते, तत्र स्थितो वा 'यानपात्रे शिशौ पोतः' । तथा भृशदारुणे अत्यर्थं भीषणे सङ्ग्रामे शस्त्रेषु आयुधेषु पतत्सु । सर्वाबाधासु, सर्वाः समन्तात् बाधा महाबाधा तासु । सर्वबाधास्विति पाठे स एवार्थो भवति दूरविकर्षात् । घोरा सुव्रणपीडासु वर्त्तमानो वा । तथा वेदनासु तत्तद्दुःखानुभवेषु अभ्यर्दितः वर्त-

ऋषिरुवाच

इत्युक्त्वासाभगवती चण्डिकाचण्डविक्रमा। पश्यतामेवदेवानांतत्रैवान्तरधीयत
तेऽपिदेव्यानिरातङ्काःस्वाधिकारान्यथापुरा। यज्ञभागभुजःसर्वेचक्रुर्विनिहतारयः
दैत्याश्चदेव्यानिहते शुम्भेदेवरिपौयुधि। जगद्विध्वंसिनितस्मिन्महोग्रेऽतुलविक्रमे
निशुम्भे च महावीर्ये शेषाःपातालमाययुः। एवंभगवतीदेवीसानित्यापिपुनःपुनः

मानः यद्वा, तीव्रवेदनयाऽभ्यर्दितः हिंसितोऽपिवा सर्वत्रैतन्ममचरितंस्मरन्नरः सङ्कटान्मुच्येत स्वयमेवेतियोजनीयम्। इहारण्ये प्रान्तरेवापीत्यतः श्लोकात्पूर्वं सिंहव्याघ्रानुयातोवेतिपठन्तिकेचित्। अतश्चममप्रभावात्सिंहाद्याइत्युपपन्नम्भवति ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥ २८ ॥

ममप्रभावात्सामार्थ्यात्सिंहाद्याः तथा दस्यवः तस्कराः तथावैरिणश्चशत्रवः चरितंस्मरतः पुरुषात्सकाशाद्दूरादेव पलायन्ते ॥ २९ ॥

इत्थं उक्त्वा सा भगवती चण्डविक्रमा प्रगल्भवीर्या चण्डिकादेवी पश्यतामेवदेवानां तत्रैवपुरोभाग एवान्तरधीयत। अन्तर्धानमगात्। अदन्तरोरुपसर्गवद्वृत्तिर्व्याख्येयाः। अन्तःपूर्वाद्धधातेः कर्मकर्त्तरिलिङ्। यद्वा, तान् देवान्त्रायते इतितत्त्रापालयन्ती सत्येवस्वयमन्तरधीयत। 'आतोऽनुपसर्गेकः'। यद्वा, तत्रैवदेवशरीरेष्वेवान्तरधीयत। स्वयमेवशरीरेष्वेवान्तर्न्यलीयतेत्यर्थः। पश्यतां इत्यनादरेषष्ठीतिपक्षेयथा जननी सुतान्व्याजतोऽनादृत्यालोकनान्तर्धत्ते तथेयमपिसर्वजननीदेवदर्शनतोऽन्तरधीयतस्वयमेवेतिभावः ॥ ३० ॥

अथ तेदेवा अपिदेव्यापिनिहतारयःनाशितशत्रवः अतएव यथापुरापूर्वकालइवनिरातङ्काः कृच्छ्रजीवनतोनिर्भयाः यज्ञभागभुजःयज्ञांशान् भुञ्जानाः सन्तः स्वाधिकारान्स्वव्यापारांश्चक्रुःकृतवन्तः ॥ ३१ ॥

युधिसङ्ग्रामेदेव्यातस्मिञ्जगद्विध्वंसिनि त्रैलोक्यभञ्जिनिमहोग्रे अतुलविक्रमे अनुपमशक्तौ देवरिपौ ससैन्ये शुम्भेमहावीर्ये निशुम्भे च निहते सतिशेषाः

सम्भूय कुरुते भूप जगतः परिपालनम् । तयैतन्मोह्यते विश्वं सैव विश्वं प्रसूयते ॥
सा याचिता च विज्ञानं तुष्टा ऋद्धिं प्रयच्छति । व्याप्तं तयैतत् सकलं ब्रह्माण्डं मनुजेश्वर

देव्या पातालमाययुर्बलिप्रभृतयोऽसुराः । अथाह्वेन मर्त्ये च इतिविनाशकालरूपा एतत्त्वयस्मिन्विधिविलासात् ॥ ३२ ॥

हे भूप एवं उक्तरीत्या सा भगवती नित्याऽपि जन्मशून्याऽपि कारणापिमती पुनः पुनः सम्भूयप्रादुर्भावमवाप्य जगतः परिपालनं कुरुते । उक्तञ्च प्रागपि 'नित्यैव सा जगन्मूर्तिरि'ति । 'देवानां कार्यसिद्ध्यर्थमि'ति च ॥ ३३ ॥

सैव देवी विश्वं प्रसूयते जनयति । सप्तम्याणिप्रसवयन्त्यादि । तयैव हेतुभूतया एतद्विश्वं मोह्यते । मुह्यतेर्णिचि यगिति । अविवेकेनयाज्यते । ममता सहितं क्रियते । सा देवी याचिता सती विज्ञानं च प्रयच्छति । सैवम्बा तुष्टा सती तत्तन्मनोभिलाषानुसारेण ऋद्धिं च सम्पदं च महतां प्रयच्छति ददाति । तुष्टा ऋद्धिं इति तुष्टा समाहिताऽथा निर्देशः । 'ऋत्यक इति प्रकृतिभावेनाऽथा स्थानेऽन्वयसमर्था तुष्टा ऋद्धिरिति स्यात् । 'स्वस्त्यृद्ध्य इति पदं । 'सा याचिता च विज्ञानं इति पाठे । सर्वेषु विज्ञानमिति विरुद्धं । एतद्रागप्युक्तं 'त्वया विस्मयकार्यौ, यागनिद्रा जगत्पतेः । महामायाहरेश्चैषा तयेति ॥ ३४ ॥

हे मनुजेश्वर सुरथ महामारीस्वरूपया तया महाकाल्या महातामस्या महाकाल्या एतत्सकलं ब्रह्माण्डं चैतन्यात्मकं स्थानत्रयात्मकम् । महाकाले प्रलयसमये महाप्रलयावसरेऽस्थिते महाकाले अनिष्टकाले । यद्वा महाप्रलयकालरूपं महाकालकालाग्निरुद्रस्तस्मिन्नुपस्थिते महाकाले महति प्रलयसमये । महाप्रलयकाले कालाग्निरुद्रस्तस्यैव श्रीमहाकालीतया । मारयति महद्ति मार महाप्रलयमारकमहामारकस्तस्य श्रीमहामारी सा स्वरूपयस्याः सा देवी महामारीस्वरूपा तया । यद्वा 'महदुद्भवउत्सव' । महान् उत्सवानां समन्तात् मारयति नाशयति महामारी महाप्रलयानलज्वाला तस्याः स्वरूपं यस्याः सा तया ।

महाकाल्या महाकाले महामारीस्वरूपया । सैवकालेमहामारीसैवसृष्टिर्भवत्यजा
स्थितिं करोति भूतानांसैवकालेसनातनी । भवकालेनृणांसैवलक्ष्मीर्वृद्धिप्रदागृहे

सैवाभावे तथाऽलक्ष्मीर्विनाशायोपजायते ।
स्तुता सम्पूजिता पुष्पैर्धूपगन्धादिभिस्तथा ॥
ददाति वित्तं पुत्रांश्च मतिं धर्मे तथा (गतिं) शुभाम् ॥ ३७ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्येदेवीचरित्र-
माहात्म्यवर्णनंनाम द्विनवतितमोऽध्यायः ॥ ९२ ॥

सप्तशत्यांद्वादशः ॥

'मृत्युजिह्वामहामारी जगत्संहारकारिणी । महारात्रिर्महानिद्रा महाकाल्याति-तामसी । सैवकालानलज्वाला सैवाविद्यातमःप्रसूः । सैवमोहप्रसूर्मृत्युःसैव-सर्वाधिदेवता' ॥ ३५ ॥

अजाजन्मरहितासनातनी नित्यादेवीकाले भूतानांप्रलयसमयेतमोगुण-मयीसतीमहामारीतिकथ्यते । तथाकालेउत्पत्तिसमये सैवभूतानांसर्गसमयेरजः प्रधानास्थितिंकरोति ॥ ३६ ॥

भवकालेदेवीसांनिध्य भवकालेनृणां गृहेसैवलक्ष्मीर्वृद्धिप्रदा । सम्प-द्रूपऽदामवति । प्रेदाज्ञःकः तथासैवदेवी अभावेदेवीसांनिध्याभावेऽलक्ष्मीः सम्पदःविनाशायाभवायउपजायते । यत्रलक्ष्मीःतत्रदेव्याःसान्निध्यम् । यत्रदेव्याः सान्निध्यं न तत्र सम्पदपिनेत्यन्वयव्यतिरेकौवेदितव्यौ ॥ ३७ ॥

नित्यन्देवीसान्निध्यकारणंतत्फलंचोपदिशति सुमेधाऋषिः । हेनृप! सादेवी स्तुतास्तावकैः पदैः संकीर्तिताच तथा पुष्पैः सम्पूजिता च तथा गन्धैः कर्पूरचन्दनमृगमदादिभिर्विलिप्ता तथाधूपैर्बहुविधैर्धूपिता । तथा आदिग्रहणा-

त्रिनवतितमोऽध्यायः

(सप्तशत्या त्रयोदशोऽध्यायः)

सुरथवैश्ययोर्वरप्रदानवर्णनम्

ऋषिरुवाच

एतत्ते कथितं भूप देवीमाहात्म्यमुत्तमम् । एवंप्रभावा सा देवी ययेदं धार्यते जगत्

तस्मात्कुङ्कुमागरुकर्पूरादिभिरानन्दिनामर्के प्रणता सम्यता अभ्यर्थिनैधमक्तेभ्य पित धन पुत्रांश्च आयुरारोग्यमैश्वर्यं च शत्रुमूर्छिनं धर्ममतिं च शुभागतिश्च ददाति। यदुक्तं प्राक् । 'सा विद्या परमा मुक्तेर्हेतुभूता सनातनी । संसारबन्धहेतुश्च सैव सर्वेश्वरेश्वरी' ॥ ३८ ॥

इति मार्कण्डेयपुराणाधिराजनोमपान्वय श्रीमद्गुरुदासात्मज शान्तनुचक्रवर्तिविरचितायां देवीमाहात्म्यटीकायां दुर्गाचरित्रमाहात्म्यवर्णनं नाम द्विनवतितमोऽध्यायः ॥ ९२ ॥

ऋषिरुवाच । सुमेधा भगवानृषिः सुरथं राजानमुचितमाचचक्षे हे सुरथ एतत्सर्वमर्थ्यमसन्ध्यासाधनं ते तुभ्यं कथितम् । सा च देवी एवं प्रभावाऽचिन्त्यसामर्थ्यावती । या का यया देव्या सर्वजगत्स्वरूपिण्या सर्वसंहारिण्या इदं जगद्विश्वं धार्यते सृज्यते पाल्यते । अन्यत्रसर्गिष्वनेषु यथाकालम् । धृङ् अवस्थानेऽलिट् । कर्मणि यक् । आत्मनेपदं चलट् । 'क्रियावाचित्वमाख्यातुमेकोऽत्रार्थः प्रदर्शितः । प्रयोगतोऽनुसर्तव्या अनेकार्था हि धातवः' । महात्मनो महामूर्त्तेर्देव्या भावे कर्मणि ब्राह्मणादित्वात्ष्यञ् अनस्तद्धिते इति टिलोपे माहात्म्यमिति सिद्धम् ॥ १ ॥

विद्या तथैव क्रियते भगवद्विष्णुमायया। तयात्वमेषवैश्यश्च तथैवान्ये विवेकिनः
मोह्यन्ते मोहिताश्चैव मोहमेष्यन्तिचापरे। तामुपैहि महाराज!शरणं परमेश्वरीम्॥
आराधिता सैव नृणां भोगस्वर्गापवर्गदा॥ ३॥

भगवद्विष्णुमाययातयैवचण्डिकयैवविद्याज्ञानं क्रियते उत्पाद्यते। परमात्मज्ञानसाधनं देव्येवोपनिषद्रूपेतिभावः। विष्णोर्माया विष्णुमाया भगवतीविष्णुमाया भगवद्विष्णुमायातया। यद्वा, भगवान् विष्णुः भगवद्विष्णुः तस्यमाययायदुक्तं 'साविद्यापरमामुक्तेर्हेतुभूता'इति। 'ऐश्वर्यस्यसमग्रस्यधर्मस्य यशसः श्रियः। ज्ञानवैराग्ययोश्चैवषण्णांभगइतीरणा'। हे राजन् तयामोहरूपयादेव्या त्वं विवेकीसन्नपिसम्प्रतिमोह्यसेप्राक् मोहितोभूः भविष्यतिचकाले मोहमेष्यसिच। तथातथैवएषवैश्यश्च समाधिर्नाममोह्यतेमोहितश्च मोहमेष्यतिच। तथैवतयैवयुवाभ्यामन्येऽपिविवेकिनः पुमांसः अधिगतशास्त्राः सन्तोऽप्यपरेच तेभ्यश्चान्येचसर्वेतथैव देव्यामोह्यन्तेमोहिताश्च मोहमेष्यन्तिच। यदुक्तंप्राक् 'तथापिममतावर्त्तमोहगर्त्तेनिपातिता'इत्यादि॥ २॥

प्राक् राज्ञा'भगवंस्त्वामहं प्रष्टुमिच्छाम्येकं वदस्वतदि'तियद्रहस्यं पृष्टं हेमहाराजसुरथ त्वं तां परमेश्वरीं देवीं शरणंउपेहि। उपइहिआद्गुणः उपगच्छ शरणंव्रज। सैवदेवीभगवत्येवाराधितातपसातोषितासतीनृणां पुंसां भोगस्वर्गापवर्गदाभुविभोगदा। जन्मान्तरेस्वर्गदा। ततः अपवर्गदामोक्षदाभवतियतोज्ञानदा। ततएवमोक्षदा। 'ज्ञानादेवतुकैवल्यमि'तिसिद्धान्ततः। सम्प्रदानाभावाद्रजकस्यवस्त्रं ददातीतिवत्सम्बन्धेषष्ठ्येव नृणामिति। उपपूर्वइण् गतौ। 'सेह्यपिच्च'। उपइहिइतिस्थिते। 'एत्येधत्यूठ्सु' इतिवृद्धिर्नतद्विधावेषीत्यनुवर्त्तते। ततआद्गुण एवंबाधकाभावात्। आङ्पूर्वत्वेपि आइहि इतिस्थिते। वृद्धिंबाधित्वा 'ओमाङोश्चे'तिपररूपत्वेसतिउपेहीत्येवरूपम्। उपैहीतिवृद्धिकृतः पाठः छान्दसः काचित्कः 'सर्वेविधयश्छंदसिविकल्पन्ते'इतिवच-

मार्कण्डेय उवाच

इति तस्य वच श्रुत्वासुरथ स नराधिप । प्रणिपत्यमहाभागतमृषिंशसितव्रतम्
निर्विण्णोऽतिममत्वेनराज्यापहरणेन च । जगाम सद्यस्तपसेसच वैश्यो महामुने
सन्दर्शनार्थमम्बाया नदीपुलिनसस्थित । सचवैश्यस्तपस्तेपे देवीसूक्त पर जपन्

नात्। यद्वा, पहीत्येतन्निमत्तिमतिरूपकमव्यय पृषोदरादित्वात्साधु । उपपह्लिउपैहि । महाराज । 'राजाह सखिभ्यष्टच्'। अपूननाम् पूजायास्य तिग्रहणम् । 'अश्मोनेराशुकर्मणिधरद्चेद्योधाया ' परमार्थेश्वरीम् ॥ ३ ॥

सुर्म । ऋषिरुवाच । मार्कण्डेयोभगवान्मुनि स्वशिष्यमौष्टुकिमुनि वाचमुचिताम्वेदेमौष्टुकिमुनेमाकर्णंश्र । इतिप्रागुक्तप्रकारेणतस्यसुमेधमोऽन्न पैं वच श्रुत्वा देवीमारा ध्येतिउपदेशवाक्यमाकर्ण्यसुरथोनामनराधिप त सुमेधस महाभागमशितव्रतऋषिप्रणिपत्यप्रणामैराराध्य । पुत्रमित्रकलत्रादावतिममत्वे नअतिमोहेनशत्रुभि राज्यापहरणेनचहेतुना निर्विण्ण दु खितमानस 'सन्मद्य सप द्वितपसेजगाम । तथासमाधिर्नामवैश्यश्चतपसेजगाम । भगवच्छब्दयाद्देरिदं भागमन्वागवस्यमहाभाग त । सशितव्रतेनप्रतिपादितव्रतयस्ययेनसमशितव्र त । शोननूकरणे । कर्तणिक्तशाक्तोरक्तततस्याम् । 'शातेरित्यव्रतेमित्य मितिवक्तव्यम् । शमितव्रत इतिपाठेशमते क्षमणिक्त । शसाधासज्ञानायस्य प्रखिनवनशास्त्रोक्त उपवासादियस्यत शसुन्तुतो । निर्विण्णस्योपसर्गस्यमिति णत्व । विद्लृलाभेविदविचारणेवाक्त निष्ठानत्वम् ॥ ४ ॥ ५ ॥

अम्बाया जगज्जनन्यादेव्या सन्दर्शनार्थंप्रत्यक्षीकरणाय । नद्या पुलि नेद्वीपेनग्विरोपेवासस्थित सैकतेदेशेमस्यमधस्थित सराजाचसुरथ सवैश्यश्चस माधिनामरथश्च सर्वाभिप्रदकेअध्यात्मीसूक्तदैविकसूक्तविशेषमत्रन्देव्यधिदैवतदेव्यासु प्तुशोभनमुक्तप्रणातं देव्या वाचिदयेसूक्तमुपदिष्टमाचार्यैरागमीयदेवीप्रणवमङ्गिगर्भं वाप्तदेवनामचरित्रत्रयअपनतप नेपे । केचित्तुवाग्ग्रहणादम्बामाताहामातृकेतिमातृ

तौ तस्मिन् पुलिने देव्याः कृत्वा मूर्त्तिं महीमयीम् ।
अर्हणाञ्चक्रतुस्तस्याः पुष्पधूपाग्नितर्पणैः ॥ ७ ॥
निराहारौ यताहारौ तन्मनस्कौ समाहितौ ।
ददतुस्तौ बलिञ्चैव निजगात्रासृगुक्षितम् ॥ ८ ॥

कामंत्ररूपंदेवीसूक्तमाहुः । अपरेतुदेवीसूक्तंपृथगस्तिरहस्येतज्जपमित्याहुः । अन्येत्वाहुःश्रुतिस्मृतिपुराणोक्तानिदेवीसूक्तानीति । 'संस्थाधारेस्थितौमृतौ'तपस्तपः कर्मस्यैवेतितपः कर्त्ताकर्मवद्भवति । उपवासादीनितपांसितापसन्तपन्ति दुःखयन्तिसतापसःस्वगस्थिभूतः स्ववांछितस्वर्गाद्यर्थंतपः तप्यते । तपसंतापेलिट्तिपःतेपेतपोऽर्जितवानित्यर्थः । अन्यकर्मकत्वेतुउत्तपतिस्वर्णंसुवर्णकारः ॥ ६ ॥

तौद्वौराजासुरथः वैश्यश्चसमाधिः तस्मिन्नद्याः पुलिनेतटविशेषे'तोयोत्थितन्तत्पुलिनम्' । तत्रदेव्याःमूर्त्तिंआकृतिंमहीमयींमृण्मयींप्रतिमांविधाय'मयड्वैतयोर्भाषायामभक्ष्याच्छादनयोरि'तिविकारावयवयोः मयट् । तस्याःदेव्याः अम्बिकायाः पुष्पधूपाग्नितर्पणैः पुष्पैः धूपैः अग्निकार्यैर्होमैः तर्पणैश्चविहितैः तैरुचितैः अर्हणांपूजां आराधनंचक्राते । पृथक्पृथक्विदधाते 'मूर्त्तिः काठिन्यकाययोः' 'पूजानमस्यापचितिःसपर्याचार्हणाःसमाः'पुष्पाणिधूपाःअग्नयःतर्पणानिचतैः ॥ ७ ॥

'निर्निश्चयनिषेधयोः'निराहारौहविष्यादिनाताचन्निश्चिताशनौ । ततः क्रमशोमूलाशनौ । यतात्मानौविषयेभ्योव्यावर्त्तितमनोनेत्रादिज्ञानेन्द्रियौनिर्जितेन्द्रियग्रामौ । 'तावज्जितेन्द्रियोनस्यात् विजितान्येन्द्रियः पुमान् । नजयेद्रसनंयावज्जितंसर्वंजितेरसे' । तन्मनस्कौ । तस्यामेवाध्यातुंमनोययोस्तौ तथोक्तौदेवीध्यानपरौ समाहितौ गुरूपदिष्टार्थसावधानौ । निरस्तसंशयौबहुविघ्नपरिहारपरौ । तौसुरथवैश्यौ । निजगात्रासृगुक्षितम् । तपश्चरणकारणकालेपरहिंसापराङ्मुखौईयच्छरीरोद्भवरक्तसिक्तमेवान्नमयंबलिंचददतुः । 'तुण्डजम्बाहुजंवा-

एवं समाराधयतोस्त्रिभिर्वर्षैर्यतात्मनो । परितुष्टा जगद्धात्री प्रत्यक्षं प्राह चण्डिका

देव्युवाच

यत्प्रार्थ्यते त्वया भूप त्वया च कुलनन्दन । मत्तस्तत्प्राप्यतां सर्वं परितुष्टा ददामि

मार्कण्डेय उवाच

ततो वव्रे नृपो राज्यमविभ्रंश्यन्यजन्मनि । अत्रैव च निजं राज्यं हतशत्रुबलं बलात्

पिरक्तमात्ममयम्बलिम् । भक्त्यावेशात्महाशूरो महामायार्थमुत्सृजेत् 'वशाम्भाभिज-शरीरजरुधिरचन्दनविलेपनश्रद्देव्यैददाते । 'एनेनशरीररक्तपातयामिसम्बयामाध-यामी'तिहृदयोम सचित ॥ ८ ॥

एवउक्तप्रकारेणसमाराधयतो त्रिभिर्वर्षै यतात्मनो देव्यामयहितचेत-सो तयो क्षत्रियवैश्ययो परितुष्टा । तत्फलेनतपसाऽतिशीला । जगताधात्री चण्डिकादेवीप्रत्यक्षंभूय प्राहचयथामानप्राहेतिविभजिप्रतिरूपकम वयम् । यत चण्डिकाजगद्धात्रीतन तयो तापसयो प्रत्यक्षीबभूव । अन्यथातत्कृतेनघोरेण तपनाग्निनेवजगन्तिदग्धेयेवेतिभाव । जगन्तिदधातिजगद्धा,धातोनुपसर्गेक अदभक्षणेत्यत्र,तृत्याभ थी महर्षो । यद्वा, धीहाक् त्यागेभनोऽपिकेजगन्तिजहातित स्माततोत्वीमोचथी ॥ ९ ॥

देव्युवाच । देवीचण्डिकाराजानसुरथंवैश्यञ्चसमाधिनामानवाचमूचे यत्प्रार्थ्यतइति हेभूप त्वयाचत्प्राप्यतेहेकुलनन्दनकुलवर्द्धनवैश्यत्वयायत्प्रार्थ्यतया चयते । तत्सर्वमत्त देव्यान मत्तःसकाशात्प्राप्यतात्स्मनो अहपरितुष्टाऽस्मि । तच तथांतथैवददामिच । कुलनन्दन वैश्य यतोऽसौकुलात्स्वकायादुधर्मीनगृहा त्यतिमोक्षकामत्वाद्वैराग्यभावत्वादितिभाव । द्वितीयार्द्धेप्राप्यतामितितुभ्यमि त्याद मतुनरक । प्राप्यतामितितुभ्यनाम् । यद्वा, वैश्यापेक्षयातर्यानरुवयम् । त्वयाचप्राप्यतामिति ददामितन्ददामितेचइतिपाठद्वयं क्वचिद्दृश्यते ॥ १० ॥

मार्कण्डेयमुनि स्वशिष्यं प्राचमूचे तत देव्यान तत देव्युक्त्यनन्तरंधा

सोऽपि वैश्यस्ततो ज्ञानं वव्रे निर्विण्णमानसः ।
ममेत्यहमिति प्राज्ञः सङ्गविच्युतिकारकम् ॥ १२ ॥

देव्युवाच

स्वल्पैरहोभिर्नृपते! स्वं राज्यं प्राप्स्यते भवान् ।
हत्वा रिपूनस्खलितं तव तत्र भविष्यति ॥ १३ ॥

नृपः सुरथः अन्यजन्मनि एतज्जन्मापेक्षया अन्यद्द्वितीयमग्रिमं सावर्णिकजन्म तस्मिन् । अविभ्रंशि अचलं राज्यं राज्ञोभावः कर्म वा राज्यं वव्रेप्रार्थयामास । मन्वन्तरत्व-रूपम् । अथच, अत्र अस्मिन् अपि जन्मनि अविभ्रंशि । भ्रंशु अधःपतने णिनिः । नविभ्रंशः अविभ्रंशः तद्युक्तम्वा । अरिबलनिर्जनगरहृतशत्रुबलं निजं आत्मीयं आत्मीयं राज्यमेव वव्रे प्रार्थयामास । हतंशत्रुबलं यत्रतथोक्तम् । वृञ्वरणेकर्त्तरिलिडात्म-नेपदम्वव्रे । 'स्वाल्यसामर्थ्यसैन्येषुबलंनाकाकर्माकिणोः' ॥ ११ ॥

ततोऽनन्तरम् । प्राज्ञःमोक्षकाङ्क्षित्वादतिरांबुद्धिमान् निर्विण्णमानसः संसारदुःखोद्विग्नचेतस्कः । स समाधिर्नामवैश्योऽप्यतिविरक्तःसन् ज्ञानंमोक्ष-बुद्धिं वव्रे । कीदृशं, ममेत्यहमित्येवं सङ्गविच्युतिकारकम् । ममायंपुत्रोऽहंपिता ममेदंकुलमहंभर्त्ता । ममेदंधनमहंस्वामीतस्येत्याद्यध्यासजनितः यःसङ्गःतस्य-विच्युतिः विलयः तस्याः कारकं करणम् । ममत्वंनाममोहः संसृतिः अहंता च संसृतिः तद्विलयकारकं ज्ञानमितिभावः । अतस्मिंस्तद्बुद्धिरध्यासः । तेननिः-संगस्यैवात्मनोममत्वमहं त्वं सर्वदुःखावहः संगः सर्वात्मनाभाव्यते । तस्य सङ्गस्यपरमात्मरूपब्रह्मज्ञानंविच्युतिकारकंभवति । ममताचाहंताचसङ्गः संसर्गऽ-पेक्षाबुद्धिःद्वैतज्ञानंभेदनिबन्धनं तस्य विच्युतिकारकं विच्छेदजनकं मोक्षोपयोगि-ज्ञानम् ॥ १२ ॥

हे नृपते हे सुरथ! भवान् स्वल्पैरहोभिः दिवसैः कतिपयैर्वासरैः रिपून् हत्वास्थितवतः अस्खलितं अचलितं तव राज्यम्भविष्यति । तवराज्यं तत्र

मृतश्चभूयः सम्प्राप्य जन्म देवाद्विवस्वतः । सावर्णिको नाम मनुर्भवान् भुवि भविष्यति

वैश्यवर्य्य त्वया यश्च वरोऽस्मत्तोऽभिवाञ्छितः ।
तं प्रयच्छामि संसिद्ध्यै तव ज्ञानं भविष्यति ॥ १५ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इति दत्त्वा तयोर्देवी यथाऽभिलषितं वरम् ।

तवेतिपाठद्वयम्' तथान्तरे राज्यान्तरे च ॥ १३ ॥

देव्युवाच । हे नृप भवान् मृतः सन् स्वशरीरं परित्यज्य ततोऽपि भूयः पुनरपि विवस्वतः सूर्याद्देवात्सवर्णायाश्छायायाः जन्म उत्पत्तिं सम्प्राप्य सावर्णिको नाम मनुः राजा भुवि भविष्यति । सावर्णिरेव सावर्णिकः स्वार्थे कन् । वर्णेन सहितः सवर्णः तत्र स्वार्थेऽन्यथाधिष्ण्या बाह्वादिपाठादिञि सावर्णिः सूर्यतनयो योमनुः कथ्यतेऽष्टमः ॥ १४ ॥

हेवैश्य वैश्य '। यद्वा, हे वैश्येषु वर्यश्रेष्ठ त्वया अस्मत्तः देवीतः यः वरः अभिवाञ्छितः अखिलगोचरः संसिद्ध्यै परमात्मरूपमुक्त्यै प्रयच्छामि । ततश्च वरदानतः तव ज्ञानं भविष्यति । 'मोक्षधीर्ज्ञानमुच्यते' । अस्मत्त इति पञ्चमी बहुवचनं तस्मिन् । अन्यैकत्वाभावात् 'मन्ययोत्तरपदयोश्चे'ति मादेशाभावः । ननु अस्मत्त इति बहुवचनोपक्रमात्प्रयच्छाम इति बहुवचनेनभाव्यम् । तत्कथं प्रयच्छामीत्येकवचनम् । यद्वा तर्हि अहम् मत्तः इतिच्छेदः । असुक्षेपणे । अस्यतिक्षिपति समारं निराकरोतीति । अम् , क्विपिरूपं वरस्यविशेषणम् । एकत्वात् मादेशः । अथ अस्मयादित्वात् मन्त्वापद्त्वाभावाद्रुत्वाद्यभावः । क्वचित्तु वैश्यवर्य त्वया मत्तो वरोयश्चाभिवाञ्छित इतिवापाठः । यद्वा, 'कप्रत्ययो बहुलं' इतिपक्षवचनं अन्ये बहुवचनम् । तत्तश्चास्मत्त इत्येवपाठः । वरणार्होवर्यः । 'क्लीबेप्रधानं प्रमुखप्रवेकानुत्तमोत्तमाः' । मुख्यवर्यवरेण्याश्च प्रवर्होनवरार्द्ध्यवत्' ॥ १५ ॥

मार्कण्डेय मुनिः स्वशिष्यवाचमुचिवान् । हेक्रोष्टुकिमहर्षे । इति

बभूवान्तर्हिता सद्यो भक्त्या ताभ्यामभिष्टुता ॥ १६ ॥

एवं देव्यावरंलब्ध्वा सुरथःक्षत्रियर्षभः। सूर्याज्जन्मसमासाद्य सावर्णिर्भविता मनुः

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे देवीमाहात्म्ये

सुरथवैश्ययोर्वरप्रदानवर्णनंनाम त्रिनवतितमोऽध्यायः ॥ ९३ ॥

समाप्तेयंसप्तशती ॥

उक्तप्रकारेणतयोः क्षत्रियवैश्ययोः सुरथस्यसमाधेश्च। तथाभिलषितं अभिवाञ्छितं अनतिक्रम्यअभीष्टंवरंदत्त्वा। भक्त्याताभ्यां लब्धवराभ्यां अभिष्टुता त्वं जगतां स्त्रष्ट्रीरक्षित्रीसंहर्त्री जननीत्यभिष्टुता संस्तुतासतीसद्यः सादेवी भगवती चण्डिकासपद्यन्तर्हिताबभूव। अदृश्याऽभूत् ॥ १६ ॥

हे क्रोष्टुकिमहर्षे! एवं प्रागुक्तप्रकारेण सुरथः क्षत्रियर्षभः श्रेष्ठःक्षत्रियः देव्याः भगवत्याः सकाशाद्वरंलब्ध्वाप्राप्य। इहराज्यमनुभूय ततःतनुंत्यक्त्वा सवर्णायां सूर्याद्देवाज्जन्मसमासाद्य सम्प्राप्यसावर्णिर्नाममनूराजाभुविभविता। कर्त्तरिभविष्यदनद्यतनेलुट्। भविष्यतीत्यर्थः। मनुरित्ययंसप्तशतिकास्वरूपो-महामालामन्त्रः सर्वेषामधीयतां सर्वकामधुगिति सूचियितुमवसाने प्रायोजि भगवता श्रीमार्कण्डेयेनेनिश्चिद्धम् ॥ १७ ॥

समाप्तिश्लोकाः

सन्तः सन्तुपरप्रयोजनकृतः कल्पद्रुमाभाः सदा स्वस्मिन्नेवपथिप्रवर्त्तनपराः सत्कीर्त्तयश्चापरे। अन्येनिस्पृहणाश्रितश्रुतिपथा दीव्यन्तु भव्याशयाः कोकन्तः कलहप्रियाः खलजना जायन्तु जीवन्तु ते ॥ १ ॥

सत्कृतिबालदिवाकरबिम्बं सज्जनमानसराजसरोजम्। सम्चिकसेद्-

भिपश्यदयस्य नश्यति दुर्जनवत्कुमुद तत् ॥ २ ॥

यावद्भूमिमुदित्वरद्युतिमणिश्रेणिस्फुरन्मूर्द्धसु (यत्)फूत्कारपयोधिकानन गिरिव्रातोह्लसत्फलम् ।धत्तेशेषमिवाहिमद्भुनवधास्वरुथीकृताशेषगीस्ताव'च्छान्तनवी' तदा जयतु च श्रीचण्डिकादीपिका ॥ ३ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे श्रीराजाधिराजतोमरान्वय श्रीमदुद्धरणात्मज
शान्तनुचक्रवर्त्तिविरचिताया देवीमाहात्म्यटीकाया देवीमाहात्म्यं
नाम त्रिनवतितमोऽध्याय ॥ ६३ ॥

समाप्तेय शान्तनवीटीका सप्तशतिकाया ।

अपरं पुस्तकमेकमशोधनाय सहायुतं । हीनाधिके एतरेवपौरस्माक दूषणस्य

— ० —

चतुर्नवतितमोऽध्यायः

रौच्यमन्वन्तरवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

सावर्णिकमिदंसम्यक् प्रोक्तंमन्वन्तरं तव । तथैवदेवीमाहात्म्यं महिषासुरघातनम्
उत्पत्तयश्चया देव्यामातृणाञ्च महाहवे । तथैवसम्भवोदेव्याश्चामुण्डायायथाभवः
शिवदूत्याश्च माहात्म्यं वधःशुम्भनिशुम्भयोः । रक्तवीजवधश्चैव सर्वमेतत्तवोदितम्
श्रूयतां मुनिशार्दूल! सावर्णिकमथापरम् । दक्षपुत्रश्चसावर्णो भावीयोनवमोमनुः

कथयामि मनोस्तस्य ये देवा मुनयो नृपाः ।
पारामरीचिभर्गाश्च सुधर्माणस्तथा सुराः ॥ ५ ॥
एते त्रिधा भविष्यन्ति सर्वे द्वादशका गणाः ।
तेषामिन्द्रो भविष्यस्तु सहस्राक्षो महाबलः ॥ ६ ॥
साम्प्रतं कार्त्तिकेयो यो वह्निपुत्रः षडाननः ।
अद्भुतो नाम शक्रोऽसौ भावी तस्यान्तरे मनोः ॥ ७ ॥
मेधातिथिर्वसुः सत्यो ज्योतिष्मान् द्युतिमांस्तथा ।
सप्तर्षयोऽन्यः सबलस्तथान्यो हव्यवाहनः ॥ ८ ॥

धृष्टकेतुर्वर्हकेतुः पञ्चहस्तो निरामयः । पृथुश्रवास्तथार्चिष्मान् भूयद्युम्नो बृहद्भयः
एते नृपसुतास्तस्यदक्षपुत्रस्यवैनृपाः । मनोस्तुदशमस्यान्यच्छृणु मन्वन्तरं द्विज!
मन्वन्तरेचदशमेब्रह्मपुत्रस्यधीमतः ॥ सुखासीनानिरुद्धाश्चत्रिःप्रकाराःसुराःस्मृताः

शतसङ्ख्या हि ते देवा भविष्या भाविनो मनोः ।
यत् प्राणिनां शतं भावि तद्देवानां तदा शतम् ॥ १२ ॥
शान्तिरिन्द्रस्तथा भावी सर्वैरिन्द्रगुणैर्युतः ।
सप्तर्षीन् [illegible]

पञ्चनवतितमोऽध्यायः

रुचिसमुपाख्यानेरुचिनापितृणांसम्वादवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

रुचिःप्रजापतिः पूर्वं निर्ममो निरहङ्कृतः ।
अत्रस्तो मितशायी च चचार पृथिवीमिमाम् ॥ १ ॥
अनग्निमनिकेतंतमेकाहारमनाश्रमम् । विमुक्तसङ्गं तं दृष्ट्वा प्रोचुस्तत्पितरोमुनिम्

पितर ऊचुः

वत्स ! कस्मात्त्वया पुण्यो न कृतो दारसङ्ग्रहः ।
स्वर्गापवर्गहेतुत्वाद् बन्धस्तेनाऽनिशं विना ॥ ३ ॥
गृही समस्तदेवानां पितृणाञ्च तथार्हणाम् ।
ऋषीणामतिथीनाञ्च कुर्व्वन् लोकानुपाश्नुते ॥ ४ ॥
स्वाहोच्चारणतो देवान् स्वधोच्चारणतः पितॄन् ।
विभजत्यन्नदानेन भूयाद्यानतिथीनपि ॥ ५ ॥
सत्वंदैवादृणाद्बन्धं बन्धमस्मदृणादपि । अवाप्नोपि मनुष्येभ्योभूतेभ्यश्चदिनेदिने
अनुत्पाद्य सुतान् देवानसन्तर्प्य पितॄंस्तथा ।
अकृत्वा च कथं मौढ्यात् सुगतिं गन्तुमिच्छसि ॥ ७ ॥
क्लेशमेकैककं पुत्र ! मन्यामोऽत्र भवेत्तव । मृतस्यनरकं तद्वत् क्लेशमेवान्यजन्मनि

रुचिरुवाच

परिग्रहोऽतिदुःखाय पापायाधोगतिस्तथा । भवत्यतोमयापूर्वं नकृतोदारसङ्ग्रहः
आत्मनः सङ्गमो योऽयं क्रियते मुनियन्त्रणात् ।
स मुक्तिहेतुर्न भवत्यसावपि परिग्रहात् ॥ १० ॥
प्रक्षाल्यतेऽनुदिवसं यदात्मा निष्परिग्रहैः ।

ममन्यपङ्कदिग्धोऽपि चित्ताम्भोभिर्व्यरं हि तत् ॥ ११ ॥
अनेकभवसम्भूतकर्मपङ्काङ्कितो बुधैः ।
आत्मा सद्वासनातोयैः प्रक्षाल्यो नियतेन्द्रियैः ॥ १२ ॥

पितर ऊचुः

युक्तं प्रक्षालनं कर्तुमात्मनो नियतेन्द्रियैः ।
किन्तु मोक्षाय मार्गोऽयं यत्र त्वं पुत्र ! वर्तसे ॥ १३ ॥

परन्तु दानैरशुभं कुर्वन्नेऽभिसन्धितैः । फलैस्तथोपभोगैश्च पूर्वकर्म शुभाशुभम् ॥१४॥
एवं न बन्धो भवति कुर्वत करुणात्मकम् । न च बन्धाय तत्कर्म भवत्यनभिसन्धितम्
पूर्वकर्मफलभोगैः क्षीयतेऽहर्निशं तथा । सुखदुःखात्मकैर्वत्स ! पुण्यपुण्यात्मकं नृणाम्
एवं प्रक्षाल्यते प्राज्ञैरात्मा बन्धाच्च रक्ष्यते । न दोषमविवेकेन पापपङ्केन गृह्यते ॥

रुचिरुवाच

अविद्या पठ्यते वेदे कर्ममार्गः पितामहाः । तत्कथं कर्मणो मार्गं भवन्तो योजयन्ति माम्

पितर ऊचुः

अविद्या सत्यमेवैतत्कर्म नैतन्मृषा वचः । किन्तु विद्यापरिप्राप्तौ हेतुः कर्म न संशयः

विहिताकरणात् पुम्भिरसद्भिः क्रियते तु यः ।
संयमो मुक्तये सोऽन्ते प्रयुताऽधोगतिप्रदः ॥ २० ॥
प्रक्षालयामीति भवान् वत्सात्मानन्तु मन्यते ।
विहिताकरणोद्भूतैः पापैस्त्वं तु विदह्यसे ॥ २१ ॥
अविद्याप्युपकाराय विषवज्जायते नृणाम् ।
अनुष्ठिताभ्युपायेन बन्धायान्यापि नो हि सा ॥ २२ ॥
तस्माद्वत्स ! कुरुष्व त्वं विधिवद्दारसङ्ग्रहम् ।
मा जन्म विफलं तेऽस्तु असम्प्राप्य तु लौकिकम् ॥ २३ ॥

रुचिरुवाच

वृद्धोऽहं साम्प्रतं कोऽमे पितरः सम्प्रदास्यति । भार्यां तथा दरिद्रस्य दुष्करो दारसंग्रहः

पितर ऊचुः

अस्माकंपतनंवत्स! भवतश्चाप्यधोगतिः। नूनंभाविभविर्त्रीचनाभिनन्दसिनोवचः

मार्कण्डेय उवाच

इत्युक्त्वा पितरस्तस्य पश्यतो मुनिसत्तम!।

बभूवुः सहसाऽदृश्या दीपा वाताहता इव ॥ २९ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे रुच्युपाख्यानवर्णनंनामपञ्चनवतितमोऽध्यायः ॥ ९५ ॥

षण्णवतितमोऽध्यायः

ब्रह्मरुचिसम्वादेपितृस्तोत्रवर्णनम्

श्रीमार्कण्डेय उवाच

सतेन पितृवाक्येन भृशमुद्विग्नमानसः।कन्याभिलाषीविप्रर्षिःपरिबभ्राम मेदिनीम्

कन्यामलभमानोऽसौ पितृवाक्याग्निदीपितः।

चिन्तामवाप महतीमतीवोद्विग्नमानसः ॥ २ ॥

किं करोमि क्व गच्छामि कथं मे दारसङ्ग्रहः।

क्षिप्रं भवेत् मत्पितृणां स चाभ्युदयकारकः ॥ ३ ॥

इतिचिन्तयतस्तस्यमतिर्जाता महात्मनः। तपसाराधयाम्येनं ब्रह्माणंकमलोद्भवम्

ततोवर्षशतं दिव्यं तपस्तेपे स वेधसः। आराधनाय,स तदा.परं नियममास्थितः

ततःस्वं दर्शयामास ब्रह्मा लोकपितामहः।

उवाच तं प्रसन्नोऽस्मीत्युच्यतामभिवाञ्छितम् ॥ ६ ॥

ततोऽसौ प्रणिपत्याह ब्रह्माणं जगतो गतिम्।

पितृणां वचनात् तेन यत्कर्तुमभिवाञ्छितम् ॥

ब्रह्मा चाह रुचिं विप्रं श्रुत्वा तस्याभिवाञ्छितम् ॥ ७ ॥

ब्रह्मोवाच

प्रजापतिस्त्वं भविता स्रष्टव्या भवता प्रजाः ।
सृष्ट्वा प्रजाः सुतान् विप्र ! समुत्पाद्य क्रियास्तथा ॥ ८ ॥
कृत्वा कृताधिकारस्त्वं ततः सिद्धिमवाप्स्यसि ।
स त्वं तथोक्तः पितृभिः कुरु दारपरिग्रहम् ॥ ९ ॥
कामश्चैवमभिध्याय क्रियतां पितृपूजनम् ।
त एव तुष्टाः पितरः प्रदास्यन्ति तवेप्सितान् ।
पत्नीं सुतांश्च सन्तुष्टाः किं न दद्युः पितामहाः ॥ १० ॥

श्रीमार्कण्डेय उवाच

इत्युषेर्वचनं श्रुत्वा ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः । नद्याविविक्ते पुलिने चकार पितृतर्पणम्
तुष्टाव च पितॄन्विप्र ! स्तवैरेभिस्तथाहृतः । एकाग्रः प्रयतो भूत्वा भक्तिनम्रात्मकन्धरः

रुचिरुवाच

नमस्येऽहं पितॄन् श्राद्धे ये वसन्त्यधिदेवताः ।
देवैरपि हि तर्प्यन्ते ये च श्राद्धे स्वधोत्तरैः ॥ १३ ॥
नमस्येऽहं पितॄन् स्वर्गे ये तर्प्यन्ते महर्षिभिः ।
श्राद्धैर्मनोमयैर्भक्त्या भुक्तिमुक्तिमभीप्सुभिः ॥ १४ ॥
नमस्येऽहं पितॄन् स्वर्गे सिद्धाः सन्तर्पयन्ति यान् ।
श्राद्धेषु दिव्यैः सकलैरुपहारैरनुत्तमैः ॥ १५ ॥
नमस्येऽहं पितॄन् भक्त्या येऽर्च्यन्ते गुह्यकैरपि ।
तन्मयत्वेन वाञ्छद्भिर्ऋद्धिमात्यन्तिकीं पराम् ॥ १६ ॥
नमस्येऽहं पितॄन्मर्त्यैरर्च्यन्ते भुवि ये सदा । श्राद्धेषु श्रद्धयाभीष्टलोकप्राप्तिप्रदायिनः
नमस्येऽहं पितॄन् विप्रैरर्च्यन्ते भुवि ये सदा ।
वाञ्छिताभीष्टलाभाय प्राजापत्यप्रदायिनः ॥ १८ ॥
नमस्येऽहं पितॄन् ये वै तर्प्यन्तेऽरण्यवासिभिः ।

वन्यैः श्राद्धैर्यताहारैस्तपोनिर्धूतकिल्बिषैः ॥ १६ ॥
नमस्ये्ऽहं पितृन् विप्रैर्नैष्ठिकव्रतधारिभिः ।
ये संयतात्मभिर्नित्यं सन्तर्प्यन्ते समाधिभिः ॥ २० ॥
नमस्येऽहं पितृन् श्राद्धैः राजन्यास्तर्पयन्ति यान् ।
कव्यैरशेषैर्विधिवल्लोकत्रयफलप्रदान् ॥ २१ ॥
नमस्येऽहं पितृन् वैश्यैरर्च्यन्ते भुवि ये सदा ।
स्वकर्माभिरतैर्नित्यं पुष्पधूपान्नवारिभिः ॥ २२ ॥
नमस्येऽहं पितृन् श्राद्धैर्ये शूद्रैरपि भक्तितः ।
सन्तर्प्यन्ते जगत्यत्र नाम्ना ख्याताः सुकालिनः ॥ २३ ॥
नमस्येऽहं पितृन् श्राद्धैः पाताले ये महासुरैः ।
सन्तर्प्यन्ते स्वधाहारास्त्यक्तदम्भमदैः सदा ॥ २४ ॥
नमस्येऽहंपितृन्श्राद्धैरर्च्यन्तेयेरसातले । भोगैरशेषैर्विधिवन्नागैःकामानभीप्सुभिः
नमस्येऽहं पितृन् श्राद्धैः सर्पैः सन्तर्पितान्सदा ।
तत्रैव विधिवन्मन्त्रभोगसम्पत्समन्वितैः ॥ २६ ॥
पितॄन्नमस्ये निवसन्ति साक्षात् ये देवलोके च तथान्तरीक्षे ।
महीतले ये च सुरादिपूज्यास्ते मे प्रतीच्छन्तु मयोपनीतम् ॥ २७ ॥
पितॄन्नमस्ये परमात्मभूता ये वै विमाने निवसन्ति मूर्त्ताः ।
यजन्ति यानस्तमलैर्मनोभिर्योगीश्वराः क्लेशविमुक्तिहेतून् ॥ २८ ॥
पितॄन्नमस्ये दिवि ये च मूर्त्ताः स्वधाभुजः काम्यफलाभिसन्धौ ।
प्रदानशक्ताः सकलेप्सितानां विमुक्तिदा येऽनभिसंहितेषु ॥ २६ ॥
तृप्यन्तु तेऽस्मिन् पितरः समस्ता इच्छावतां ये प्रदिशन्ति कामान् ।
सुरत्वमिन्द्रत्वमतोऽधिकं वा सुतान् पशून् स्वानि बलं गृहाणि ॥ ३० ॥
सोमस्य ये रश्मिषु येऽर्कबिम्बे शुक्ले विमाने च सदा वसन्ति ।
तृप्यन्तु तेऽस्मिन् पितरोऽन्नतोयैर्गन्धादिना पुष्टिमितो व्रजन्तु ॥ ३१ ॥

येषां हुतेऽग्नौ हविषा च तृप्तिर्ये भुञ्जते विप्रशरीरसंस्थाः ।
ये पिण्डदानेन मुदं प्रयान्ति तृप्यन्तु तेऽस्मिन् पितरोऽन्नतोयैः ॥ ३२ ॥
ये खड्गमांसेन सुरैरभीष्टैः कृष्णैस्तिलैर्दिव्यमनोहरैश्च ।
कालेन शाकेन महर्षिवर्यैः सम्प्रीणितास्ते मुदमत्र यान्तु ॥ ३३ ॥
कव्यान्यशेषाणि च यान्यभीष्टान्यतीव तेषाममरार्चितानाम् ।
तेषां तु सान्निध्यमिहास्तु पुष्पगन्धाम्बुभोज्येषु मया कृतेषु ॥ ३४ ॥
दिने दिने ये प्रतिगृह्णतेऽर्चां मासान्तपूज्या भुवि येऽष्टकासु ।
ये वत्सरान्तेऽभ्युदये च पूज्याः प्रयान्तु ते मे पितरोऽत्र तुष्टिम् ॥ ३५ ॥
पूज्या द्विजानां कुमुदेन्दुभासो ये क्षत्रियाणां ज्वलनार्कवर्णाः ।
तथा विशां ये कनकावदाता नीलीनिभाः शूद्रजनस्य ये च ॥ ३६ ॥
तेऽस्मिन् समस्ता मम पुष्पगन्धधूपान्नतोयादिनिवेदनेन ।
तथाग्निहोमेन च यान्तु तृप्तिं सदा पितृभ्यः प्रणतोऽस्मि तेभ्यः ॥ ३७ ॥
ये देवपूर्वाण्यतितृप्तिहेतोरश्नन्ति कव्यानि शुभाहृतानि ।
तृप्ताश्च ये भूतिसृजो भवन्ति तृप्यन्तु तेऽस्मिन् प्रणतोऽस्मि तेभ्यः ॥ ३८ ॥
रक्षांसि भूतान्यसुरांस्तथोग्रान् निर्नाशयन्तस्त्वशिवं प्रजानाम् ।
आद्याः सुराणाममरेशपूज्यास्तृप्यन्तु तेऽस्मिन् प्रणतोऽस्मि तेभ्यः ॥ ३९ ॥

अग्निष्वात्ता बर्हिषद आज्यपाः सोमपास्तथा ।
व्रजन्तु तृप्तिं श्राद्धेऽस्मिन् पितरस्तर्पिता मया ॥ ४० ॥
अग्निष्वात्ताः पितृगणाः प्राचीं रक्षन्तु मे दिशम् ।
तथा बर्हिषदः पान्तु याम्यां ये पितरः स्मृताः ॥ ४१ ॥

प्रतीचीमाज्यपास्तद्वदुदीचीमपि सोमपाः । रक्षोभूतपिशाचेभ्यस्तथैवासुरदोषतः
सर्वतश्चाधिपस्तेषां यमो रक्षां करोतु मे । विश्वो विश्वभुगाराध्यो धर्मो धन्यः शुभाननः

भूतिदो भूतिकृद्भूतिः पितॄणां ये गणा नव ।
कल्याणः कल्पदः कर्ता कल्यः कल्यतराश्रयः ॥ ४४ ॥

कल्यताहेतुरनघः षडिमे ते गणाः स्मृताः। वरोवरेण्योवरदः पुष्टिदस्तुष्टिदस्तथा
विश्वपातातथाधातासप्तैवैतेतथागणाः।महान्महात्मा महितोमहिमावान्महाबलः
गणाः पञ्चतथैवैतेपितृणां पापनाशनाः। सुखदोधनदश्चान्यो धर्मदोऽन्यश्चभूतिदः
पितृणां कथ्यते चैतत्तथा गणचतुष्टयम्। एकत्रिंशत्पितृगणा यैर्व्याप्तमखिलंजगत्
ते मेऽनुतृप्तास्तुष्यन्तु यच्छन्तु च सदा हितम्॥ ४८॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे रुच्युपाख्याने ब्रह्मोपदेशात्पितृस्तोत्रवर्णनं नाम षण्णवतितमोऽध्यायः॥ ९६॥

सप्तनवतितमोऽध्यायः

रुचयेपितृवरप्रदानवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

एवन्तु स्तुवतस्तस्य तेजसोराशिरुच्छ्रितः। प्रादुर्बभूव सहसागगनव्याप्तिकारकः
तद् दृष्ट्वा सुमहत्तेजः समासाद्य स्थितं जगत्।
जानुभ्यामवनिं गत्वा रुचिः स्तोत्रमिदं जगौ॥ २॥

रुचिरुवाच

अर्चितानाममूर्त्तानां पितृणां दीप्ततेजसाम्।
नमस्यामि सदा तेषां ध्यानिनां दिव्यचक्षुषाम्॥ ३॥
इन्द्रादीनाञ्च नेतारो दक्षमारीचयोस्तथा।
सप्तर्षीणां तथान्येषां तान्नमस्यामि कामदान्॥ ४॥
मन्वादीनां मुनीन्द्राणां सूर्याचन्द्रमसोस्तथा।
तान्नमस्याम्यहं सर्वान् पितॄनप्सूदधावपि॥ ५॥
नक्षत्राणां ग्रहाणाञ्च वाय्वग्न्योर्नभसस्तथा।

द्यावापृथिव्योश्च तथा नमस्यामि कृताञ्जलिः ॥ ९ ॥
देवर्षीणां जनितॄंश्च सर्वलोकनमस्कृतान् । अक्षय्यस्य सदा दातॄन् नमस्येऽहं कृताञ्जलिः ॥
प्रजापतेः कश्यपाय सोमाय वरुणाय च । योगेश्वरेभ्यश्च सदा नमस्यामि कृताञ्जलिः ॥
नमो गणेभ्यः सप्तभ्यस्तथा लोकेषु सप्तसु । स्वयम्भुवे नमस्यामि ब्रह्मणे योगचक्षुषे ॥

सोमाधारान् पितृगणान् योगमूर्तिधरांस्तथा ।
नमस्यामि तथा सोमं पितरं जगतामहम् ॥ १० ॥

अग्निरूपांस्तथैवान्यान्नमस्यामि पितॄनहम् । अग्नीषोममयं विश्वं यत एतदशेषतः ॥
ये तु तेजसि ये चैते सोमसूर्याग्निमूर्तयः । जगत्स्वरूपिणश्चैव तथा ब्रह्मस्वरूपिणः ॥

तेभ्योऽखिलेभ्यो योगिभ्यः पितृभ्यो यतमानसः ।
नमो नमो नमस्ते मे प्रसीदन्तु स्वधाभुजः ॥ १३ ॥

मार्कण्डेय उवाच

एवं स्तुतास्ततस्तेन तेजसो मुनिसत्तम । निश्चक्रमुस्ते पितरो भासयन्तो दिशो दश ॥
निवेदितञ्च यत्तेन पुष्पगन्धानुलेपनम् । तद्भूषितानथ स तान् ददृशे पुरतः स्थितान् ॥
प्रणिपत्य पुनर्भक्त्या पुनरेव कृताञ्जलिः । नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यमित्याह पृथगादृतः ॥
ततः प्रसन्नाः पितरस्तमूचुर्मुनिसत्तमम् । वरं वृणीष्वेति स तानुवाचानतकन्धरः ॥

रुचिरुवाच

साम्प्रतं सर्गकर्तृत्वमादिष्टं ब्रह्मणा मम ।
सोऽहं पत्नीमभीप्सामि धन्यां दिव्यां प्रजावतीम् ॥ १८ ॥

पितर ऊचुः

अत्रैव सद्यः पत्नी ते भवत्वतिमनोरमा । तस्याञ्च पुत्रो भविता भवतो मनुसत्तमः ॥

मन्वन्तराधिपो धीमांस्त्वन्नाम्नैवोपलक्षितः ।
रुचे ! रौच्य इति ख्यातिं यो यास्यति जगत्त्रये ॥ २० ॥
तस्यापि बहवः पुत्रा महाबलपराक्रमाः ।
भविष्यन्ति महात्मानः पृथिवीपरिपालकाः ॥ २१ ॥

त्वञ्च प्रजापतिर्भूत्वा प्रजाः सृष्ट्वा चतुर्विधाः ।
क्षीणाधिकारो धर्मज्ञ! ततः सिद्धिमवाप्स्यसि ॥ २२ ॥
स्तोत्रेणानेन च नरो योऽस्मांस्तोष्यति भक्तितः ।
तस्य तुष्टा वयं भोगानात्मज्ञानं तथोत्तमम् ॥ २३ ॥
शरीरारोग्यमर्थञ्च पुत्रपौत्रादिकं तथा ।
वाञ्छद्भिः सततं स्तव्याः स्तोत्रेणानेन वै यतः ॥ २४ ॥
श्राद्धे च य इमं भक्त्या अस्मत्प्रीतिकरं स्तवम् ।
पठिष्यति द्विजाग्रा (ग्रया) णां भुञ्जतां पुरतः स्थितः ॥ २५ ॥
स्तोत्रश्रवणसम्प्रीत्या सन्निधानेपरे कृते । अस्माकमक्षयंश्राद्धंतद्भविष्यत्यसंशयम्
यद्यप्यश्रोत्रियं श्राद्धं यद्यप्युपहतं भवेत् ।
अन्यायोपात्तवित्तेन यदि वा कृतमन्यथा ॥ २७ ॥
अश्राद्धार्हैरुपहतैरुपहारैस्तथा कृतम् । अकालेऽप्यथवाऽदेशे विधिहीनमथापिवा
अश्रद्धया वापुरुषैर्दम्भमाश्रित्यवाकृतम् । अस्माकंतृप्तयेश्राद्धं तथाप्येतदुदीरणात्
यत्रैतत्पठ्यते श्राद्धे स्तोत्रमस्मत्सुखावहम् ।
अस्माकं जायते तृप्तिस्तत्र द्वादशवार्षिकी ॥ ३० ॥
हेमन्ते द्वादशाब्दानि तृप्तिमेतत् प्रयच्छति ।
शिशिरे द्विगुणाब्दांश्च तृप्तिस्तोत्रमिदं शुभम् ॥ ३१ ॥
वसन्ते षोडशसमास्तृप्तये श्राद्धकर्मणि । ग्रीष्मे चषोडशैवैतत्पठितं तृप्तिकारकम्
विकलेऽपि कृते श्राद्धे स्तोत्रेणानेनसाधिते। वर्षासुतृप्तिरस्माकमक्षयाजायतेरुचे!
शरत्कालेऽपि पठितं श्राद्धकाले प्रयच्छति ।
अस्माकमेतत्पुरुषैस्तृप्तिं पञ्चदशाब्दिकीम् ॥ ३४ ॥
यस्मिन् गृहे च लिखितमेतत्तिष्ठति नित्यदा ।
सन्निधानं कृते श्राद्धे तत्रास्माकं भविष्यति ॥ ३५ ॥
तस्मादेतत्त्वयाश्राद्धे विप्राणां भुञ्जतां पुरः ।

धार्यश्चैवं महाभाग अस्माकं पुष्टिहेतुकम् ॥ ३६ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे रौच्ये मन्वन्तरे पितृवरप्रदानं नाम सप्तनवतितमोऽध्यायः ॥ ९७ ॥

अष्टनवतितमोऽध्यायः

रुचिनामालिनीपरिणयवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

ततस्तस्मात् सरोमध्यात् समुत्तस्थौ मनोरमा ।
प्रम्लोचा नाम तन्वङ्गी तत्समीपे वराप्सराः ॥ १ ॥

सा चोवाच महात्मानं रुचिं सुमधुराक्षरम् । अतीव प्रश्रयवती सुभ्रूः प्रम्लोचा वराप्सराः ॥ अतीवरूपिणी कन्या मत्सुता तपतां वर । जाता वरुणपुत्रेण पुष्करेण महात्मना ॥

तां गृहाण मया दत्तां भार्यार्थे वरवर्णिनीम् ।
मनुर्महामतिस्तस्यां समुत्पत्स्यति ते सुतः ॥ ४ ॥

मार्कण्डेय उवाच

तथेति तेन साऽप्युक्ता तस्मात्तोयाद्वपुष्मतीम् ।
उज्जहार ततः कन्यां मालिनीं नाम नामतः ॥ ५ ॥

नद्याश्च पुलिने तस्मिन् स ऋषिर्मुनिसत्तम ।
जग्राह पाणिं विधिवत् समानाय्य महामुनीन् ॥ ६ ॥

तस्यां तस्य सुतो जज्ञे महावीर्यो महामतिः ।
रौच्योऽभवत् पितुर्नाम्ना ख्यातोऽत्र वसुधातले ॥ ७ ॥

तस्य मन्वन्तरे देवास्तथा सप्तर्षयश्च ये । तनयाश्च नृपाश्चैव ते सम्यक् कथितास्तव धर्मवृद्धिस्तथाऽऽरोग्यधनधान्यसुतोद्भवः । नृणां भवत्यसन्दिग्धमस्मिन्मन्वन्तरे श्रुते

पितृस्तवं तथा श्रुत्वा पितृणाञ्च तथा गणान्।
सर्वान् कामानवाप्नोति तत्प्रसादान्महामुने !॥ १० ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे मालिनीपरिणयपूर्वकरौच्यमन्वन्तरसमाप्ति-
वर्णनंनामाऽष्टनवतितमोऽध्यायः ॥ ६८ ॥

नवनवतितमोऽध्यायः

भौत्यमनुसमुत्पत्तिवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

ततः परं तु भौत्यस्य समुत्पत्तिं निशामय।
देवानृषींस्तथा पुत्रांस्तथैव वसुधाधिपान्॥ १ ॥
बभूवाङ्गिरसः शिष्यो भूतिर्नाम्नातिकोपनः।
चण्डशापप्रदोऽल्पेऽर्थे मुनिरागस्यसौम्यवाक्॥ २ ॥
तस्याश्रमे मातरिश्वा न ववावतिनिष्ठुरम्।
नातितापं रविश्चक्रे पर्ज्जन्यो नातिकर्दमम्॥ ३ ॥
नातिशीतञ्च शीतांशुः परिपूर्णोऽपि रश्मिभिः।
चकार भीत्या वै तस्य कोपनस्यातितेजसः॥ ४ ॥

ऋतवश्च क्रमंत्यक्त्वावृक्षेष्वाश्रमजन्मसु। तस्यपुष्पफलञ्चक्रुराज्ञयासार्वकालिकम्
ऊहुरापश्च छन्देन तस्याश्रमसमीपगाः। कमण्डलुगताश्चैव तस्य भीता महात्मनः
नातिक्लेशसहोविप्रसोऽभवत्कोपनोभृशम्। अपुत्रश्चमहाभागःसतपस्यकरोन्मनः
पुत्रकामो यताहारःशीतवातानलाहतः। तपस्यामिविचिन्त्येतितपस्येवमनोदधे
तस्येन्दुनातिशीतायनातितापायभास्करः। अभवन्मातरिश्वाचचवौनातिमहामुने
आपीड्यमानो द्वन्द्वैश्च सभूतिर्मुनिसत्तमः। अनवाप्याभिलाषस्तंतपसः सन्यवर्त्तत

नस्य भ्राता सुरर्चाऽभूयत्रे तेनाभिमन्त्रित ।
वियातु शान्तिनामान शिष्यमाह महामतिम् ॥ ११ ॥
प्रशान्तमप्रतिम विनीत गुरुकर्मणि । सदोद्यतं शुभाचारमुदारं मुनिसत्तमम् ॥

भूतिरुवाच

अह यज्ञागमिष्यामि भ्रातु शान्तेसुरचम । तेनाहूतस्त्वयाचेदृग्यत्कर्तव्यंशृणुयत्नत्
प्रति जागरण यहं त्वया कार्यममाश्रमे । तथातथापयत्नेन यथाग्निं शमनैर्

मार्कण्डेय उवाच

इत्याज्ञाप्य तथे युक्तोगुरु शिष्येणशान्तिना । जगामयज्ञं तद्भ्रातुराहूत सयवीयसा
स च शान्तियनाधाय समि पुष्पफलादिकम् ।
उपानयति भूम्यर्थं गुरोस्तस्य महात्मन ॥ १६ ॥
अन्यत्र पुरतो कत गुरुभक्तियशानुग । प्रशान्तस्तावदृत्नगो योऽस्मौ भूतिपरिग्रह
न दृष्ट्वा सोऽनल शान्त शान्तिरत्यन्तदु खित ।
भीतश्च भूतेरदुधा चिन्तामाप महामति ॥ १८ ॥
किं करोमि कथ चाग्निमविनागम र गुरो । मयात्रप्रतिपत्तव्य किं कृते सुकृतभवत्
प्रशान्ताग्निमिमंद्रेक्ष्य यदि पश्यतिमेगुरु । ततोमाधिपमेहायाप्यमनेसर्गियोऽयति
यत्रान्यमग्निमत्राहमग्निस्थानेकरोमितम् । सर्वंप्रत्यक्षदृग्भस्मसोऽयश्यमाकरिष्यति
सोऽहं पापो गुरोस्तस्य निमित्त कोपशापयो ।
तथात्मान न शोचामि यथा पाप कृत गुरो ॥ २२ ॥
दृष्ट्वा प्रशान्तमग्निनून शप्स्यतिमागुरु । अथवापावक क्रुद्धस्तथावीर्योहिसद्विज
यस्य प्रभावाद्बिभ्यन्तो देवास्तिष्ठन्ति शासने ।
कृतागस स मा युक्त्या कया नाशयिष्यति ॥ २४ ॥

मार्कण्डेय उवाच

बहुधेव विचिन्त्याऽसौ भीतस्तस्य सदा गुरो ।
ययौ मतिमता श्रेष्ठ शरण जातवेदसम् ॥ २५ ॥

सचकारतदास्तोत्रंसमार्चयंतमानसः । सचैकचित्तोग्नेर्दिन्यांन्यस्तजानुःकृताञ्जलिः
शान्तिरुवाच
ओँ नमः सर्वभूतानां साधनाय महात्मने । एकद्विपञ्चधिष्ण्यायराजसूये ,षडात्मने
नमःसमस्तदेवानां वृत्तिदाय सुवर्चसे । शुक्ररूपाय जगतामशेषाणां स्थितिप्रदः
त्वं मुखं सर्वदेवानां त्वयात्तुं भगवान् हविः ।
प्रीणयत्यखिलान्देवान् त्वत्प्राणाः सर्वदेवताः ॥ २९ ॥
हुतं हविस्त्वय्यमलमेधत्वमुपगच्छति । ततश्चजलरूपेणपरिणाममुपैतियत् ॥ ३०
तेनाखिलौषधीजन्मभवत्यनिलसारथे !। ओषधीभिरशेषाभिःसुखंजीवन्तिजन्तवः
वितन्वते नरा यज्ञान् त्वत्सृष्टास्वोषधीषु च ।
यज्ञैर्देवास्तथा दैत्यास्तद्वद्रक्षांसि पावक !॥ ३२ ॥
आप्यायन्ते च ते यज्ञास्त्वदाधारा हुताशन ! ।
अतः सर्वस्य योनिस्त्वं वह्ने ! सर्वमयस्तथा ॥ ३३ ॥
देवता दानवा यज्ञा दैत्यागन्धर्वराक्षसाः । मानुषाःपशवोवृक्षामृगपक्षिसरीसृपाः
आप्याय्यन्ते त्वया सर्वे सम्वर्ध्यन्ते च पावक !।
त्वत्त एवोद्भवं यान्ति त्वय्यन्ते च तथा लयम् ॥ ३५ ॥
अपः सृजसि देव ! त्वं त्वमत्सि पुनरेव ताः ।
पच्यमानास्त्वया ताश्च प्राणिनां पुष्टिकारणम् ॥ ३६ ॥
देवेषु तेजोरूपेण कान्त्यासिद्धेष्ववस्थितः । विषरूपेण नागेषु वायुरूपःपतत्रिषु
मनुजेषु भवान् क्रोधो मोहः पक्षिमृगादिषु ।
अवष्टम्भोऽसि तरुषु काठिन्यं त्वं महीं प्रति ॥ ३८ ॥
जले द्रवः त्वं भगवान् जवरूपी तथाऽनिले ।
व्यापित्वेन तथैवाग्ने !नभस्यात्मा व्यवस्थितः ॥ ३९ ॥
त्वमग्ने!सर्वभूतानामन्तश्चरसि पालयन् । त्वमेकमाहुःकवयस्त्वामाहुस्त्रिविधंपुनः
त्वामष्टधा कल्पयित्वा यज्ञमाद्यमकल्पयन् । त्वयासृष्टमिदंविश्वं वदन्ति परमर्षयः

तस्य भ्राता सुवर्चाऽभूद्यज्ञे तेनाभिमन्त्रित ।
धियास्तु शान्तिनामान शिष्यमाह महामतिम् ॥ ११ ॥
प्रशान्तमक्षप्रतिम विनीत गुरुकर्मणि । मद्द्योतक शुभाचारमुदार मुनिसत्तमम्

भूतिरुवाच

अह यहंगमिष्यामिभ्रातु शान्तेसुरधम्न । तेनाहूतस्य यायाचेद्यत्कर्त्तव्यग्गुप्यत
प्रति जागरण यह्नेरन्यया कार्यममाश्रमे । तथानथाप्रयत्नेन यथाग्नि शमयते

मार्कण्डेय उवाच

इत्याज्ञाप्य तथे युक्तोगुरु शिष्यणशान्तिना । जगामयज्ञ सभ्रातुराहूत नयवीयस
स च शान्तिधनाद्यावत्समि पुष्पफलादिकम् ।
उपानयति शुश्रूर्ष गुरोस्तस्य महात्मन ॥ १६ ॥
अन्यथा कुरुते कर्म गुरुभक्तिपरायणः । प्रशान्तस्तावदनलो योऽसौ।भूतिपरिम
न दृष्ट्वा मोऽनल शान्त शान्तिरत्यन्तदु खित ।
भीतश्च भूनयद्बुधा चिन्तामाप महामति ॥ १८ ॥
किं करोमि कथ चात्रमविनाशमम गुरो । मयात्यवलोपत य किं कृते सुकृतभं
प्रशान्ताग्निमिमरा सय यदि पश्यतिमेगुरु । ततोमा विपमेसचस्त्वमनेसभियोऽथ
यद्यन्यमग्निमत्राहमग्निमध्यानिकरोमितत्। सर्वप्रत्यक्षदृग्भस्मनोऽयश्यमाक दिष्य
सोऽह पापो गुरोस्तस्य निमित्त कोपशापयो ।
तथात्मान न शोचामि यथा पापं कृत गुरो ॥ २२ ॥
दृष्ट्वा प्रशान्तमग्निनून शप्स्यतिमांगुरु । अयशापाचकस्तुद्धस्तथार्वायोंहिमदि
यस्य प्रभावात्त्विग्धन्ना देवास्तिष्ठन्ति शासने ।
कृतागस स मां गुरुस्या कया नाधरयिस्यति ॥ २५ ॥

मार्कण्डेय उवाच

बहुधैव विचिन्त्याऽसौ भीतस्तस्य सदा गुरो ।
ययौ मतिमतां श्रेष्ठ शरणं जातवेदसम् ॥ २१ ॥

सचकारतदास्तोत्रंसमाधियंतमानसः । सर्वैकचित्तोग्नेदिन्यांन्यस्तजानुःकृताञ्जलिः

शान्तिरुवाच

ओं नमः सर्वभूतानां साधनाय महात्मने । एकद्विपञ्चधिष्ण्यायराजसूये,षडात्मने

नमः समस्तदेवानां वृत्तिदाय सुवर्चसे । शुक्ररूपाय जगतामशेषाणां स्थितिप्रदः

त्वं मुखं सर्वदेवानां त्वयात्तं भगवान् हविः ।

प्रीणयत्यखिलान्देवान् त्वत्प्राणाः सर्वदेवताः ॥ २९ ॥

हुतं हविस्त्वय्यमलमेघत्वमुपगच्छति । ततश्चजलरूपेणपरिणाममुपैतियत् ॥ ३०

तेनाखिलौषधीजन्मभवत्यनिलसारथे !। ओषधीमिरशेषाभिःसुखंजीवन्ति जन्तवः

वितन्वते नरा यज्ञान् त्वत्सृष्टास्त्वोषधीषु च ।

यज्ञैर्देवास्तथा दैत्यास्तद्वद्रक्षांसि पावक !॥ ३२ ॥

आप्यायन्ते च ते यज्ञास्त्वदाधारा हुताशन ! ।

अतः सर्वस्य योनिस्त्वं वह्ने ! सर्वमयस्तथा ॥ ३३ ॥

देवता दानवा यक्षा दैत्यागन्धर्वराक्षसाः । मानुषाःपशवोवृक्षामृगपक्षिसरीसृपाः

आप्याय्यन्ते त्वया सर्वे सम्वर्धन्ते च पावक !।

त्वत्त एवोद्भवं यान्ति त्वय्यन्ते च तथा लयम् ॥ ३५ ॥

अपः सृजसि देव ! त्वं त्वमत्सि पुनरेव ताः ।

पच्यमानास्त्वया ताश्च प्राणिनां पुष्टिकारणम् ॥ ३६ ॥

देवेषु तेजोरूपेण कान्त्यासिद्धेष्ववस्थितः । विषरूपेण नागेषु वायुरूपःपतत्त्रिषु

मनुजेषु भवान् क्रोधो मोहः पक्षिमृगादिषु ।

अवष्टम्भोऽसि तरुषु काठिन्यं त्वं महीं प्रति ॥ ३८ ॥

जले द्रवः त्वं भगवान् जवरूपी तथाऽनिले ।

व्यापित्वेन तथैवाग्ने !नभस्यात्मा व्यवस्थितः ॥ ३९ ॥

त्वमग्ने!सर्वभूतानामन्तश्चरसि पालयन्। त्वमेकमाहुःकवयस्त्वामाहुस्त्रिविधंपुनः

त्वामष्टधा कल्पयित्वा यज्ञमाद्यमकल्पयन्। त्वयासृष्टमिदंविश्वं वदन्ति परमर्षयः

त्वामृते हि जगत् सर्वं सद्यो नश्येद्धुताशन ।
तुभ्यं कृत्वा द्विज पूजां स्वकर्मविहिता गतिम् ॥ ४२ ॥
प्रयान्ति हव्यकव्याद्यैः स्वधास्वाहास्युदीरणात् ।
परिणामात्मवीर्याणि हि प्राणिनाममरार्चित ॥ ४३ ॥
दहन्तिसर्वभूतानि ततो निष्क्रम्यहेतयः । जातवेदस्तवैवैषं विश्वसृष्टिर्महाद्युते ।
तवैव वैदिकं कर्म सर्वभूतात्मकं जगत् । नमस्तेऽनल पिङ्गाक्ष नमस्तेऽस्तुहुताशन
पावकाद्य नमस्तेऽस्तु नमस्तेहव्यवाहन । त्वमेवभुक्तपीतानां पाचनाद्विश्वपावक
शस्यानां पाककर्ता त्वं पोष्टा त्वं जगतस्तथा ।
त्वमेव मेघस्त्वं वायुस्त्वं बीजं शस्यहेतुकम् ॥ ४७ ॥
पोषायसर्वभूतानां भूतभव्यभवोह्यसि । त्वंज्योतिः सर्वभूतेषु त्वमादित्योविभावसुः
त्वमहस्त्वं तथा रात्रिरुभे सन्ध्ये तथा भवान् ।
हिरण्यरेतास्त्वं वह्ने हिरण्योद्भवकारणम् ॥ ४९ ॥
हिरण्यगर्भश्च भवान् हिरण्यसदृशप्रभ । त्वंमुहूर्तंक्षणस्त्वंत्रुटिस्त्वं तथालवः
कलाकाष्ठानिमेषादिरूपेणाऽसि जगत्प्रभो ।
त्वमेतदखिलं कालः परिणामात्मको भवान् ॥ ५१ ॥
या जिह्वा भवतः काली कालनिष्ठाकरी प्रभो ।
भयान्नः पाहि पापेभ्य ऐहिकाच्च महाभयात् ॥ ५२ ॥
करालीनामया जिह्वामहाप्रलयकारणम् । तयानः पाहिपापेभ्यऐहिकाच्चमहाभयात्
मनोजवाभिधाया जिह्वा लघिमागुणलक्षणा । तयानः पाहिपापेभ्यऐहिकाच्चमहाभयात्
करोति कामं भूतेभ्यो या ते जिह्वा सुलोहिता ।
तया नः पाहि पापेभ्य ऐहिकाच्च महाभयात् ॥ ५५ ॥
सुधूम्रवर्णा या जिह्वा प्राणिनां रोगदायिका ।
तया नः पाहि पापेभ्य ऐहिकाच्च महाभयात् ॥ ५६ ॥
स्फुलिङ्गिनी च या जिह्वा यतः सकलपुद्गला ।

तया नः पाहि पापेभ्य ऐहिकाच्च महाभयात् ॥ ५७

या ते विश्वा सदा जिह्वा प्राणिनां शर्मदायिनी ।

तया नः पाहि पापेभ्य ऐहिकाच्च महाभयात् ॥ ५८ ॥

पिङ्गाक्ष!लोहितग्रीव! कृष्णवर्णहुताशन । त्राहिमांसर्वदोषेभ्यःसंसाराद्धुद्धरेहमाम्

प्रसीद वह्ने!सप्तार्चिः कृशानो हव्यवाहन! । अग्निपावकशुक्रादिनामाष्टभिरुदीरितः

अग्नेऽग्रे सर्वभूतानां समुद्भूतविभावसो! । प्रसीदहव्यवाहाख्यअभिष्टुतमयाव्यय

त्वमक्षयो वह्निरचिन्त्यरूपः समृद्धिमान् दुष्प्रहसोऽतितीव्रः ।

त्वमव्ययं भीममशेषलोकं समूर्तको हन्त्यथवातिवीर्य्यः ॥ ६२ ॥

त्वमुत्तमं सत्त्वमशेषसत्त्व हृत्पुण्डरीकस्त्वमनन्तमीड्यम् ।

त्वया ततं विश्वमिदं चराचरं हुताशनैको बहुधा त्वमत्र ॥ ६३ ॥

त्वमक्षयः सगिरिवना वसुन्धरा नभः ससोमार्कमहर्दिवाखिलम् ।

महोदधेर्जठरगतश्च वाडवो भवान् विभूत्या परया करे स्थितः ॥ ६४ ॥

हुताशनस्त्वमिति सदाभिपूज्यसे महाक्रतौ नियमपरैर्म्महर्षिभिः ।

अभिष्टुतः पिबसि च सोममध्वरे वषट्कृतान्यपि च हवींषि भूतये ॥ ६५॥

त्वंविप्रैः सततमिहेड्यसे फलार्थः वेदाङ्गेष्वथ सकलेषु गीयसे त्वम् ।

त्वद्धेतोर्यजनपरायणा द्विजेन्द्रा वेदाङ्गान्यधिगमयन्ति सर्वकाले ॥ ६६ ॥

त्वं ब्रह्मा यजनपरस्तथैव विष्णुर्भूतेशःसुरपतिरर्य्यमा जलेशः ।

सूर्य्येन्दू सकलसुरासुराश्च हव्यैः सन्तोष्याभिमतफलान्यथाप्नुवन्ति ॥६७॥

अर्चिभिः परममहोपघातदुष्टं संस्पृष्टं तव शुचि जायते समस्तम् ।

स्नानानां परममतीव भस्मना सत् सन्ध्यायां मुनिभिरतीवसेव्यसे तत् ॥

प्रसीद वह्ने !शुचिनामधेय प्रसीद वायो!विमलातिदीप्ते !।

प्रसीद मे पावक! वैद्युताद्य प्रसीद हव्याशन! पाहि मां त्वम् ॥ ६६ ॥

यत्तेवह्ने! शिवरूपंये चतेसप्तहेतयः । तैःपाहिनः स्तुतो देव! पिता पुत्रमिवात्मजम्

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेऽग्निस्तोत्रं नाम नवनवतितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥

शततमोऽध्याय

भौत्यमन्वन्तरकथावर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

एव स्तुतस्ततस्तेन भगवान् हव्यवाहनः ।
ज्वालामालावृतस्तस्याविर्भूतो मुनेः ॥ १ ॥
द्वेषोविभावसु प्रीतस्तोत्रेणानेनचैद्विज ! । त शान्तिमाह प्रणतं मेघगम्भीरयागिर

अग्निरुवाच

परितुष्टोऽस्मि ते विप्र' भक्त्या या त स्तुति कृता ।
वर ददामि भवते प्रार्थ्यतां यत्तवेप्सितम् ॥ ३ ॥

शान्तिरुवाच

भगवन् ! कृतकृत्योऽस्मि यत्था पश्यामि रूपिणम् ।
तथापि भक्तिनम्रस्य भवता श्रूयतां मम ॥ ४ ॥
भ्रातुर्यज्ञं गतो देव ममाचार्यो निजाश्रमात् ।
आगतश्चाश्रमं शिष्य स्वत्सनाथं स पश्यतु ॥ ५ ॥
ममापराधात् नत्यक्त शिष्य यत्ते विभावसो !।
तस्वयाधिष्ठित सोऽद्य पूर्ववत् पश्यता द्विज ॥ ६ ॥
तथान्यदपि [redacted] देव प्रसादं कुरुषे यदि । पुत्रो विशिष्टो भवतु तद्गुरुस्तस्य मे गुरो
यथा च मैत्री तनये स करिष्यतिमे गुरु । तथा समस्तसत्त्वेषु भवत्वस्यमनोमृदु
पश्यता स्तोष्यते येन प्रीतिं यातोऽसि मेऽव्यय !
स्तोत्रेण तस्य वरदो भवेथा मत्प्रसादित ॥ ९ ॥

मार्कण्डेय उवाच

एतत् श्रुत्वा वचस्तस्य तमाह द्विजसत्तमम् ।

स्तोत्रेणाऽऽराधितो भूयो गुरुभक्त्या च पावकः ॥ १० ॥

अग्निरुवाच

गुरोरर्थे यतो ब्रह्मन् याचितंनैवरद्वयम् । नात्मार्थनेन मे प्रीतिस्त्वय्यतीव महामुने

भविष्यत्येतदखिलंगुरोर्यत् प्रार्थितं त्वया । मत्रोमिमस्तभूतेषु पुत्रश्चास्यभविष्यति

मन्वन्तराधिपः पुत्रो भौत्यो नाम भविष्यति ।

महाबलो महावीर्यो महाप्राज्ञो गुरुस्तव ॥ १३ ॥

अनेन यश्च स्तोत्रेण स्तोष्यते मां समाहितः ।

तस्याभिलषितं सर्वं पुण्यञ्चास्य भविष्यति ॥ १४ ॥

यज्ञेषु पर्वकालेषु तीर्थेज्याहोमकर्मसु । धर्माय पठनामेतन्मम पुष्टिकरं परम् ॥१५॥

अहोरात्रकृतं पापं श्रुतमेतन् सकृद् द्विज । नाशयिष्यत्यसन्दिग्धं मम तुष्टिकरं परम्

अहोमकालदोषादीन्ययोग्यैरपितद्दलैः । ये दोषास्तानिमंस्तवः शमयिष्यतिमंश्रुतम्

पौर्णमास्याममावस्यां पर्वस्वन्येषु प्रस्तवः ।

मर्मेव संश्रुतो मर्त्यैर्मेचिता पापनाशनः ॥ १८ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इत्युक्त्वा भगवानग्निः पश्यतस्तस्य वै मुने !।

बभूवादर्शनः सद्यो दीपस्यो निर्वृतो तथा ॥ १९ ॥

स च शान्तिर्गते वह्नौ परितुष्टेन चेतसा । हर्षरोमाञ्चिततनुः प्रविवेशाश्रमं गुरोः

जाज्वल्यमानं तत्राऽसौ गुरुधिष्ण्ये हुताशनम् ।

ददर्श पूर्ववत् प्राप ततः स परमां मुदम् ॥ २१ ॥

एतस्मिन्नन्तरे सोऽपि गुरुस्तस्य महात्मनः ।

भ्रातुर्यवीयसो यज्ञादाजगाम स्वमाश्रमम् ॥ २२ ॥

तस्याग्रतश्च शिष्योऽसौ चक्रेपादाभिवन्दनम् । गृहीतासनपूजश्चतमाहसतदागुरुः

वत्सातिहार्दं त्वयिमेतथान्येषुचजन्तुषु । न वेत्सिकिमिदंत्वञ्चेद्वत्सैतत्कथयाशुमे

ततः स शान्तिस्ततसर्वमाचार्याय महात्मने !।

अग्निनाशादिकं विप्रः समाचष्टे यथातथम् ॥ २५ ॥
तच्छ्रुत्वा स परिष्वज्य स्नेहार्द्रनयनो गुरुः ।
शिष्याय प्रददौ वेदान् साङ्गोपाङ्गान् महामुने ॥ २६ ॥

भौत्यो नाम मनुस्तस्यपुत्रोभूतेरजायत । तस्य मन्वन्तरे देवान्तृषीन् भूपांश्चमेऽ

भविष्यस्य भविष्यास्तु गदतो मम विस्तरात् ।
देवेन्द्रो यश्च भविता तस्य विख्यातकर्मणः ॥ २८ ॥
चाक्षुराश्च कनिष्ठाश्च पवित्रा भ्राजिरास्तथा ।
धारावृकाश्च इत्येते पञ्च देवगणाः स्मृताः ॥ २९ ॥

शुचिरिन्द्रस्तदा तेषांत्रिदशानांभविष्यति । महाबलोमहावीर्यं सर्वैरिन्द्रगुणैर्यु
आग्नीध्रश्चाग्निबाहुश्चशुचिर्मुक्तोऽथमाधवः । शुक्रोऽजितश्चसप्तैतेतदा सप्तर्षयःस्मृत
गुरुर्गंभीरोब्रध्नश्चभरतोऽनुग्रहस्तथा । स्त्रीमानीचप्रतीरश्चविष्णु सङ्क्रन्दनस्तथ
तेजस्वी सुबलश्चैव भौत्यस्यैते मनोः सुताः । चतुर्दश मयैतत्ते मन्वन्तरमुदाहृत

श्रुत्वा मन्वन्तराणीत्थं क्रमेण मुनिसत्तम ।
पुण्यमाप्नोति मनुजस्तथा क्षीणाञ्च सन्ततिम् ॥ ३४ ॥

श्रुत्वामन्वन्तरंपूर्वंधर्ममाप्नोतिमानवः । स्वारोचिषस्यश्रवणात्सर्वकामानवाप्नु
औत्तमेर्धनमाप्नोति ज्ञानञ्चाप्नोतितामसे । रैवते च श्रुते बुद्धिसुरूपां विन्दते स्त्रिय
आरोग्यञ्चाक्षुषे पुंसा श्रुते चैवाप्नुते बलम् । गुणवत्पुत्रपौत्रन्तु सूर्यसावर्णिके श्रु
माहात्म्य ब्रह्मसावर्णधर्मसावर्णिकेशुभम् । मतिमाप्नोतिमनुजोरुद्रसावर्णिकेश्रव
ज्ञातिश्रेष्ठो गुणैर्युक्तो दक्षसावर्णिके श्रुते । निशातयत्यरिबलं रौच्यंश्रुत्वा नरोत्त
देवप्रसादमाप्नोति भौत्ये मन्वन्तरे श्रुते । तथाग्निहोत्रं पुत्रांश्च गुणयुक्तानवाप्नु

सर्वाण्यनुक्रमाच्च शृणोति मुनिसत्तम ।
मन्वन्तराणि तस्यापि श्रूयतां फलमुत्तमम् ॥ ४१ ॥
तत्र देवानृषीनिन्द्रान्मनूंस्तत्तनयान्नृपान् ।
वंशांश्च श्रुत्वा सर्वेभ्यः पापेभ्यो विप्रमुच्यते ॥ ४२ ॥

देवर्षीन्द्रनृपाश्चान्ये ये तन्मन्वन्तराधिपाः ।
ते प्रीयन्ते तथा प्रीताःप्रयच्छन्ति शुभां मतिम् ॥ ४३ ॥
ततः शुभांमतिप्राप्यकृत्वाकर्मतथाशुभम् । शुभांगतिमवाप्नोतियावदिन्द्राश्चतुर्दश
सर्वे स्युर्ऋतवः क्षेम्याः सर्वे सौम्यास्तथा ग्रहाः ।
भवन्त्यसंशयं श्रुत्वा क्रमान्मन्वन्तरस्थितिम् ॥ ४५ ॥
इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेचतुर्दशमन्वन्तरसमाप्तिवर्णनंनाम शततमोऽध्यायः ॥ १००

एकाधिकशततमोऽध्यायः

वंशानुकीर्त्तनवर्णनम्

कौष्टुकिरुवाच

भगवन्!कथिता सम्यक् त्वया मन्वन्तरस्थितिः ।
क्रमाद्विस्तरतस्त्वत्तो मया चैवावधारिता ॥ १ ॥
ब्रह्माद्यमखिलं वंशंभूभुजांद्विजसत्तम !। श्रोतुम्ममेच्छतः सम्यक् भगवन्प्रब्रवीहिमे

मार्कण्डेय उवाच

शृणु वत्स! नृपाणां त्वमशेषाणां समुद्भवम् ।
चरितंच जगन्मूलमादौ कृत्वा प्रजापतिम् ॥ ३ ॥
अयं हि वंशोभूपालैरनेकक्रतुकर्तृभिः । सङ्ग्रामजिद्भिर्धर्मज्ञैःशतसङ्ख्यैरलङ्कृतः
श्रुत्वा चैषां नरेन्द्राणां चरितानि महात्मनाम् ।
उत्पत्तयश्च पुरुषः सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ५ ॥
मनुर्यत्र तथेक्ष्वाकुरनरण्योभगीरथः । अन्ये च शतशोभूपाः सम्यक् पालितभूमयः
धर्मज्ञा यज्विनः शूराः सम्यक् परमवेदिनः ।
श्रुते तस्मिन् पुमान् वंशे पापौघाद्विप्रमुच्यते ॥ ७ ॥

तदयं श्रूयतां वंशो यतो वंशाः सहस्रशः । भिद्यन्ते मनुजेन्द्राणामथरोहायथावदात्

ब्रह्मा प्रजापतिः पूर्वं सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः । ९

अङ्गुष्ठाद्दक्षिणाद्दक्षमसृजद्द्विजसत्तम ॥ ६ ॥

वामाङ्गुष्ठाच्च तत्पत्नीं जगत्सृष्टिकरो विभुः ।

ससर्ज भगवान् ब्रह्मा जगतां कारणं परम् ॥ १० ॥

अदितिस्तस्य दक्षस्य कन्याजायत शोभना ।

तस्यां च कश्यपो देव मार्तण्डं समजीजनत् ॥ ११ ॥

ब्रह्म स्वरूपं जगतामशेषाणां परात्परम् । आदिमध्यान्तभूतं च सर्गे स्थित्यन्तकर्मसु

यतोऽखिलमिदं यस्मिन्नशेषं च स्थितं द्विज । यत्तु रूपं जगच्चेदं सदेवासुरमानुषम्

यः सर्वभूतः सर्वात्मा परमात्मा सनातनः ।

अदित्यामभवद्भास्वान् पूर्वमाराधितस्तया ॥ १४ ॥

क्रौष्टुकिरुवाच

भगवन् श्रोतुमिच्छामि यत्स्वरूपं विवस्वतः ।

यत्कारणं चादिदेवः सोऽभवत् कश्यपात्मजः ॥ १५ ॥

यथा चाराधितो देव्या सोऽदित्या कश्यपेन च ।

आराधितेन चोक्तं यत्तेन देवेन भास्वता ॥ १६ ॥

प्रभावश्चावतीर्णस्य यथावन्मुनिसत्तम ।

भवता कथितं सम्यक् श्रोतुमिच्छाम्यशेषतः ॥ १७ ॥

मार्कण्डेय उवाच

विस्पष्टा परमा विद्या ज्योतिर्भा शाश्वती स्फुटा ।

कैवल्यं ज्ञानमाविर्भूः प्राकाम्यं संविदेव च ॥ १८ ॥

बोधश्चावगतिश्चैव स्मृतिर्विज्ञानमेव च । इत्येतानीह रूपाणि तस्य रूपस्य भास्वतः

श्रूयतां च महाभाग विस्तराद्वदतो मम । यत् पृष्टवानसि रवेराविर्भावो यथाभवत्

निष्प्रभेऽस्मिन्निरालोके सर्वतस्तमसावृते । बृहदण्डमभूदेकमक्षरं कारणं परम् ॥

द्विभेद तदन्तःस्थो भगवान्प्रपितामहः। पद्मयोनिःस्वयंब्रह्मायःस्रष्टाजगतांप्रभुः
तन्मुखादोमितिमहानभूच्छब्दो महामुने !।
ततो भूस्तुभुवस्तस्मात् ततश्च स्वरनन्तरम् ॥ २३ ॥
एता व्याहृतयस्तिस्रः स्वरूपं तद्विवस्वतः।
ओमित्यस्मात् स्वरूपात्तु सूक्ष्मरूपं रवेः परम् ॥ २४ ॥
ततो महरितिस्थूलं जनं स्थूलतरं ततः। ततस्तपस्ततः सत्यमितिमूर्त्तानिसमधा
स्थितानि तस्य रूपाणि भवन्ति न भवन्ति च।
स्वभावभावयोर्भावं यतो गच्छन्ति संशयम् ॥ २६ ॥
आद्यन्तं यत्परं सूक्ष्ममरूपं परमं स्थितम्। ओमित्युक्तं मयाविप्रतत्परं ब्रह्म तद्वपुः
इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे वंशानुकीर्त्तनं नामैकाधिशततमोऽध्यायः ॥ १०१ ॥

द्व्यधिकशततमोऽध्यायः

मार्तण्डमाहात्म्यवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

तस्मादण्डाद्विभिन्नात्तुब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः। ऋचो बभूवुः प्रथमंप्रथमाद्वदनान्मुने
जपापुष्पनिभाःसद्यस्तेजोरूपान्तसंहताः। पृथक्पृथग्विभिन्नाश्चरजोरूपवहास्ततः
यजूंषि दक्षिणाद्वक्त्रादनिरुद्धानि काञ्चनम्।
यादृग्वर्णन्तथावर्णान्यसंहतिधराणि च ॥ ३ ॥
पश्चिमं यद्विभोर्वक्त्रं ब्रह्मणः परमेष्ठिनः।
आविर्भूतानि सामानि ततश्छन्दांसि तान्यथ ॥ ४ ॥
अथर्वाणमशेषञ्च भृङ्गाञ्जनचयप्रभम्। यावद्घोरस्वरूपन्तदाभिचारिकशान्तिकम्
उत्तरात् प्रकटीभूतंवदनात्तस्यवेधसः। सुखसत्त्वतमःप्रायंसौम्यासौम्यस्वरूपवत्

ऋचो रजोगुणा सत्त्वं यजुषाञ्च गुणा मुने ।
तमोगुणानि सामानि तमः सत्त्वमथर्वसु ॥ ७ ॥
एतानि ज्वलमानानि तेजसाऽप्रतिमेन वै ।
पृथक् पृथगवस्थानं भाति पूर्वमिवाभवत् ॥ ८ ॥
ततस्तदाद्यं यत् तेज ओमित्युक्त्वाभिशब्दितम् ।
तस्य स्वभावात्तत्तेजस्तम् समावृत्य संस्थितम् ॥ ९ ॥
यथा यजुर्मयं तेजस्तद्वत् साम्रा महामुने ! एकत्वमुपयातानि परे तेजसि सत्रये
शान्तिकं पौष्टिकञ्चैव तथा चैवाभिचारिकम् ।
ऋगादिषु त्रयं ब्रह्म स्थितमेतं त्रिधागमत् ॥ ११ ॥
ततो विश्वमिदं सर्वमस्तमोनाशात्सुनिर्मलम् विभाव्यतीयविप्रेर्तिर्यगूर्ध्वमधस्तथा
ततस्तन्मण्डलीभूतं छान्दसं तेज उत्तमम् । परेण तेजसा ब्रह्मन्नैकत्वमुपयाति तत्
आदित्यसंज्ञामगमदादावेव यतोऽभवत् ।
विश्वस्यास्य महाभाग ! कारणञ्चाव्ययात्मकम् ॥ १४ ॥
प्रातर्मध्यन्दिने चैव तथा चैवापराह्णिके । त्रयीतपति साकालेष्वृग्यजुःसामसंज्ञिता
ऋचस्तपन्ति पूर्वाह्ने मध्याह्ने च यजूंषि वै ।
सामानि चापराह्णे वै तपन्ति मुनिसत्तम ! ॥ १६ ॥
शान्तिकं ऋक्षु पूर्वाह्णे यजुष्वस्त्रपौष्टिकम् ।
विन्यस्तं भाति सायाह्ने चाभिचारिकमत्रत ॥ १७ ॥
मध्यन्दिनेऽपराह्णे च स मे चैवाभिचारिकम् ।
अपराह्णे पितृणान्तु साम्रा काय्याणि तानि वै ॥ १८ ॥
विरञ्ची ऋङमयो ब्रह्मा स्थितो विष्णुर्यजुर्मयः ।
रुद्रः साममयोऽन्ते च तस्मात्तस्याशुचिर्ध्वनिः ॥ १९ ॥
तदेवं भगवान् भास्वान् वेदात्मा वेदसंस्थितः । वेदविद्यात्मकश्चैव परः पुरुष उच्यते
स्वर्गस्थित्यन्तहेतुश्च रजः सत्त्वादिकान् गुणान् ।

आश्रित्य ब्रह्मविष्ण्वादिसञ्ज्ञामभ्येति शाश्वतः ॥ २१ ॥
देवैः सदेड्यः स तु वेदमूर्त्तिरमूर्त्तिराद्योऽखिलमर्त्यमूर्तिः ।
विश्वाश्रयं ज्योतिरवेद्यधर्मा वेदान्तगम्यः परमः परेभ्यः (परेशः) ॥ २२ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे मार्त्तण्डमाहात्म्यवर्णनं नाम
द्व्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०२ ॥

त्र्यधिकशततमोऽध्यायः

आदित्यस्तवनवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

तस्य सन्ताप्यमाने तु तेजसोर्द्ध्वमधस्तथा ।
सिसृक्षुश्चिन्तयामास पद्मयोनिः पितामहः ॥ १ ॥
सृष्टिः कृतापि मे नाशं प्रयास्यत्यभितेजसः ।
भास्वतःसृष्टिसंहारस्थितिहेतोर्महात्मनः ॥ २ ॥
अप्राणाःप्राणिनः सर्वे आपः शुष्यन्ति तेजसा ।
न चाम्भसा विना सृष्टिर्विश्वस्याऽस्य भविष्यति ॥ ३ ॥
इतिसञ्चिन्त्यभगवान् स्तोत्रंभगवतोरवेः । चकारतन्मयोभूत्वाब्रह्मालोकपितामहः

ब्रह्मोवाच

नमस्ये यन्मयं सर्वमेतत्सर्वमयश्च यः । विश्वमूर्तिः परंज्योतिर्यत्तद्ध्यायन्तियोगिनः
य ऋङ्मयो यो यजुषान्निधानं साम्नाश्चयो योनिरचिन्त्यशक्तिः ।
त्रयीमयो स्थूलतयार्द्धमात्रा परस्वरूपो गुणपारयोग्यः ॥ ६ ॥
त्वां सर्वहेतुं परमञ्चवेद्यमाद्यं परंज्योतिरवहिरूपम् (रवेद्य) ।
स्थूलञ्च देवात्मतया नमस्ये भास्वन्तमाद्यं परमं परेभ्यः ॥ ७ ॥

सृष्टिंकरोमि यदहं तव शक्तिराद्या तत्प्रेरितो जलमहीपवनाग्निरूपाम् ।
तद्देवतादिविषया प्रणवाद्यशेषा नात्ममेच्छया स्थितिलयावपितद्वदेव ॥ ८ ॥
वह्निस्त्वमेव जलशोषणत पृथिव्याः सृष्टिंकरोमि जगताञ्च तथाद्यपाकम् ।
व्यापी त्वमेव भगवन्! गगनस्वरूप त्वं पञ्चधाजगदिदं परिपासि विश्वम् ॥ ९
यज्ञैर्यजन्ति परमात्मविदो भवन्त विष्णुस्वरूपमखिलेष्टिमय विवस्वन्! ।
ध्यायन्तियापियतयोनियतात्मचित्ता सर्वेश्वरं परममात्मविमुक्तिकामाः ॥१०
नमस्ते देवरूपाय यज्ञरूपाय ते नम । परब्रह्मस्वरूपाय चिन्त्यमानाय योगिभिः

उपसंहर तेजो यत् तेजस संहतिस्तव ।
सृष्टेर्विघाताय विभो! सृष्टौ चाहं समुद्यत ॥ १२ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इत्येव संस्तुतो भास्वान् ब्रह्मणा सर्गकर्तृणा ।
उपसंहृतवास्तेज पर स्वल्पमधारयत् ॥ १३ ॥
चकार च तत सृष्टिंजगत पद्मसम्भव । तथातेषु महाभाग पूर्वकल्पान्तरेषु वै
देवासुरादीन् मर्त्यांश्च पश्वादीन् वृक्षवीरुध ।
ससर्ज पूर्ववद्ब्रह्मा नरकांश्च महामुने! ॥ १४ ॥
इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे आदित्यस्तवनर्णन नामत्र्यधिक
शततमोऽध्याय ॥ १०३ ॥

चतुरधिकशततमोऽध्यायः

दिवाकरस्तुतिवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

सृष्ट्वा जगदिदं ब्रह्मा प्रविभागमथाकरोत्। वर्णाश्रमसमुद्राद्रिद्वीपानां पूर्ववद्यथा॥
देवदैत्योरगादीनां रूपस्थानानि पूर्ववत्। देवेभ्य एव भगवानकरोत् कमलोद्भवः

ब्रह्मणस्तनयो योऽभून्मरीचिरिति विश्रुतः।
कश्यपस्तस्य पुत्रोऽभूत् काश्यपो नाम नामतः॥ ३॥

दक्षस्य तनया ब्रह्मंस्तस्य भार्यास्त्रयोदश। बहवस्तत्सुताश्चासन् देवदैत्योरगादयः

अदितिर्जनयामास देवांस्त्रिभुवनेश्वरान्।
दैत्यान् दितिर्दनुश्चोग्रान् दानवानुरुविक्रमान्॥ ५॥
गरुडारुणौ च विनता यक्षरक्षांसि वै खसा।
कद्रुः सुषाव नागांश्च गन्धर्वान्सुषुवे मुनिः॥ ६॥
क्रोधाया जज्ञिरे कुल्या रिष्टायाश्चाप्सरोगणाः।
ऐरावतादीन्मातङ्गानिरा च सुषुवे द्विज!॥ ७॥
ताम्रा च सुषुवे श्येनी प्रमुखाः कन्यका द्विज!।
यासां प्रसूताः खगमाः श्येनभासशुकादयः॥ ८॥
इलायाः पादपा जाताः प्रधाया यादसां गणाः।
अदित्यां या समुत्पन्ना कश्यपस्येति सन्ततिः॥ ९॥
तस्याश्च पुत्रदौहित्रैः पौत्रदौहित्रिकादिभिः।
व्याप्तमेतज्जगत् सूत्या तेषां तासाञ्च वै मुने!॥ १०॥
तेषां कश्यपपुत्राणां प्रधाना देवतागणाः।
सात्त्विका राजसास्त्वेते तामसाश्च मुने! गणाः॥ ११॥

देवान् यज्ञभुजश्चक्रे तथा त्रिभुवनेश्वरान्। ब्रह्मा ब्रह्मविदां श्रेष्ठः परमेष्ठी प्रजापतिः

तानबाधन्त सहिताः सपत्ना दैत्यदानवाः।
राक्षसाश्च तथा युद्धं तेषामासीत् सुदारुणम् ॥ १३ ॥

दिव्यं वर्षसहस्रन्तु पराजीयन्त देवताः। जयिनश्चाऽभवन् विप्र बलिनो दैत्यदानवाः
ततो निराकृतान् पुत्रान् दैतेयैर्दानवैस्तथा। हृतत्रिभुवनान् दृष्ट्वा अदितिर्मुनिसत्तम

आच्छिन्नयज्ञभागांश्च क्षुधा सम्पीडितान् भृशम्।
आराधनाय सवितुः परं यत्नं प्रचक्रमे ॥ १६ ॥

एकाग्रा नियताहारा परं नियममास्थिता। तुष्टाव तेजसां राशिं गगनस्थं दिवाकरम्

अदितिरुवाच

नमस्तुभ्यं परं सूक्ष्मं सौवर्णं बिभ्रते तनुम्।
धाम धामवतामीश धामाधार शाश्वत ॥ १८ ॥

जगतामुपकाराय तथापन्तप गोपते।
आददानस्य यद्रूपं तीव्रं तस्मै नमाम्यहम् ॥ १९ ॥

ग्रहीतुमष्टमासेन कालेनेन्दुमयं रसम्। बिभ्रतस्तव यद्रूपमतितीव्रं नतास्मि तत्
तमेव मुञ्चतः सर्वं रसं वै वर्षणाय यत्। रूपमाप्यायकं भास्वंस्तस्मै मेघाय ते नमः
वायुंस्सर्गविनिष्पन्नमशेषौषधिगणम्। पाकायतयद्रूपं भास्कर तं नमाम्यहम्
यच्च रूपं तवातीव हिमोत्सर्गादिशीतलम्। तत्कालशस्यपोषाय तरणे तस्यतैनमः
नास्तितीव्रञ्च यद्रूपं नातिशीतञ्च यत्तव। वसन्तर्त्तौ रवे सौम्यं तस्मै देव नमोनमः

आप्यायनमशेषाणां देवानाञ्च तथा परम्।
पितृणाञ्च नमस्तस्मै शस्यानां पाकहेतवे ॥ २० ॥

यद्रूपं जीवनायैकं वीरुधाममृतात्मकम्। पीयते देवपितृभिस्तस्मै सोमात्मने नमः
आप्यायकं रूपाभ्यां रूपं विश्वमयन्तव। समेतमग्नीषोमाभ्यां नमस्तस्मै गुणात्मने
यद्रूपं ऋग्यजुः साम्नामैक्येन तपते तव। विश्वमेतत् त्रयीसञ्ज्ञं नमस्तस्मै विभावसो!

यच्च तस्मात्परं रूपं ओमित्युक्त्वाभिशब्दितम्।

अस्थूलानन्तममलं नमस्तस्मै सदात्मने ॥ २९ ॥

मार्कण्डेय उवाच

एवं सा नियता देवी चक्रे स्तोत्रमहर्निशम् ।
निराहारा विवस्वन्तमाराधयिषुर्मुने ! ॥ ३० ॥
ततःकालेनमहताभगवांस्तपनोऽम्बरे । प्रत्यक्षतामगाद्स्यादाक्षायण्याद्विजोत्तम!
सा ददर्श महाकूटं तेजसोऽम्बरसंश्रितम् ।
भूमौ च संस्थितं भास्वत् ज्वालामालातिदुर्दशम् ॥ ३२ ॥
तं दृष्ट्वा सा तदा देवी साध्वसं परमं गता ।
जगाद मे प्रसीदेति न त्वां पश्यामि गोपते ! ॥ ३३ ॥
यथा दृष्टवती पूर्वमम्बरस्थंसुदुर्दशम् । निराहाराविवस्वन्तं तपन्तं तदनन्तरम् ॥
सङ्घातं तेजसां तद्वदिह पश्यामि भूतले । प्रसादंकुरुपश्येयं यद्रूपं ते दिवाकर ! ॥
भक्तानुकम्पक विभो ! भक्ताऽहं पाहि मे सुतान् ॥ ३५ ॥
त्वं धाताविसृजसि विश्वमेतत् त्वं पासि स्थितिकरणाय सम्प्रवृत्तः ।
त्वय्यन्ते लयमखिलं प्रयाति तत्त्वं त्वत्तोऽन्या न हि गतिरस्ति सर्वलोके॥३६
त्वं ब्रह्मा हरिरजसञ्ज्ञितस्त्वमिन्द्रो वित्तेशःपितृपतिरम्बुपतिः समीरः ।
सोमोऽग्निर्गगनपतिर्महीधरोऽब्धिः किं स्तव्यं तव सकलात्मरूपधाम्नः ॥
यज्ञेश त्वामनुदिनमात्मकर्मसक्ताः स्तुवन्तो विविधपदैर्द्विजा यजन्ति ।
ध्यायन्तो विनियतचेतसो भवन्तं योगस्थाःपरमपदं प्रयान्ति योगमूर्त्या॥३८
तपसि पचसिविश्वं पासि भस्मीकरोषि प्रकटयसिमयूखैर्ह्लादयस्यम्बुगर्भैः ।
सृजसि पुनरपि त्वं भावनास्वच्युतासु-
प्रणमितसरमर्त्यैः पापकृद्भिस्त्वगम्यः ॥ ३९ ॥
इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे दिवाकरस्तुतिर्नाम चतुरधिकशततमोऽध्यायः॥ १०४ ॥

पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः

मार्तण्डोत्पत्तिवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

ततस्तु तेजसस्तस्मादाविर्भूतो विभावसुः ।
अदृश्यत तदादित्यस्तप्तताम्रोपमः प्रभुः ॥ १ ॥
अथ तां प्रणतां देवीं तस्य सन्दर्शनान्मुने ! ।
प्राह भास्वान् वृणुष्वेष्टं वरं मत्तो यमिच्छसि ॥ २ ॥

प्रणता शिरसा साथ जानुपीडितमेदिनी । स्तुवाथ विवस्वन्तं वरदं समुपस्थितम्
देव ! प्रसीद पुत्राणां हृतं त्रिभुवनं मम । यज्ञभागाश्च दैत्यैश्च दानवैश्च बलाधिकैः
तन्निमित्तं प्रसादं त्वं कुरुष्व मम गोपते !। अंशेन तेषां भ्रातृत्वं गत्वा नाशय तद्रिपून्

यथा मे तनया भूयो यज्ञभागभुजः प्रभो ! ।
भवेयुरधिपाश्चैव त्रैलोक्यस्य दिवाकर ! ॥ ६ ॥

तथानुकम्पां पुत्राणां सुप्रसन्नो रवे ! मम । कुरु प्रपन्नार्तिहर स्थितिकर्ता त्वमुच्यते

मार्कण्डेय उवाच

ततस्तामाह भगवान् भास्करो वारितस्कर ।
प्रणतामदितिं विप्र ! प्रसादसुमुखो विभुः ॥ ८ ॥

सहस्रांशेन ते गर्भे सम्भूयाहमशेषतः । त्वत्पुत्रशत्रून्दिति नाशयाम्याशु निर्वृता ॥

इत्युक्त्वा भगवान् भास्वानन्तर्धानमुपागमत् ।
निवृत्ता साऽपि तपसः सम्प्राप्ताखिलवाञ्छिता ॥ १० ॥

ततो रश्मिसहस्रात्तु सौषुम्नाख्यो रवेः कर । विप्रावतारं सञ्चक्रे देवमातुरथोदरे

कृच्छ्रचान्द्रायणादीनि सा च चक्रे समाहिता ।
शुचिः सन्धारयामास दिव्यं गर्भमिति द्विज ! ॥ १२ ॥

ततस्तां कश्यपः प्राह किञ्चित्कोपप्लुताक्षरम् ।
किम्मारयसि गर्भाण्डमिति नित्योपवासिना ॥ १३ ॥
सा च तंप्राहगर्भाण्डमेतत्पश्यसिकोपन । न मारितं विपक्षाणांमृत्यवेतद्भविष्यति
मार्कण्डेय उवाच
इत्युक्त्वा तं तदा गर्भमुत्ससर्ज्ज सुरारणिः (सुराग्णिः) ।
जाज्वल्यमानन्तेजोभिः पत्युर्वचनकोपिता ॥ १५ ॥
तं दृष्ट्वा कश्यपोगर्भमुद्यद्भास्करवर्चसम् । तुष्टावप्रणतोभूत्वाऋग्भिराद्याभिरादरात्
संस्तूयमानः स तदा गर्भाण्डात् प्रकटोऽभवत् ।
पद्मपत्रसवर्णाभस्तेजसा व्याप्तदिङ्मुखः ॥ १७ ॥
अथान्तरीक्षादाभास्यकश्यपंमुनिसत्तमम् । सतोयमेघगम्भीरवागुवाचाशरीरिणी
मारितं ते यतः प्रोक्तमेतदण्डं त्वया मुने !।
तस्मान्मुने सुतस्तेऽयं मार्त्तण्डाख्यो भविष्यति ॥ १६ ॥
सूर्याधिकारञ्च विभुर्जगत्येव करिष्यति । हनिष्यत्यसुरांश्चायं यज्ञभागहरानरीन्
देवा निशम्येति वचो गगनात्समुपागमन् । प्रहर्षमतुलं याता दानवाश्च हतौजसः
ततो युद्धाय दैतेयानाजुहाव शतक्रतुः । सह देवैर्मुदा युक्ता दानवाश्च समभ्ययुः
तेषां युद्धमभूद्घोरं देवानामसुरैः सह । शस्त्रास्त्रदीप्तिसन्दीप्तंसमस्तभुवनान्तरम्
तस्मिन् युद्धे भगवता मार्त्तण्डेन निरीक्षिताः ।
तेजसा दह्यमानास्ते भस्मीभूता महासुराः ॥ २४ ॥
ततः प्रहर्षमतुलंप्राप्ताःसर्वे दिवौकसः । तुष्टुवुस्तेजसां योनिंमार्त्तण्डमदितिं तथा
स्वाधिकारांस्तथा प्राप्ता यज्ञभागांश्च पूर्ववत् ।
भगवानपि मार्तण्डः स्वाधिकारमथाकरोत् ॥ २६ ॥
कदम्बपुष्पवद्भास्वानधश्चोर्ध्वञ्चरश्मिभिःवृत्ताग्निपिण्डसदृशोदध्रेनातिस्फुरद्वपुः
इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेमार्त्तण्डोत्पत्तिर्नामपञ्चाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०५ ॥

षडधिकशततमोऽध्यायः

भानुतनुलिखनवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

अथ तस्मैददौकन्या सञ्ज्ञा नामविवस्वते । प्रसाद्यप्रणतोभूत्वाविश्वकर्माप्रजापति

वैवस्वतस्तु सम्भूतो मनुस्तस्यां विवस्वत ।
पूर्वमेव तथा ख्यात तस्यरूपं विशेषत ॥ २ ॥

(क्रौष्टुकिरुवाच
भूयस्तच्छ्रोतुमिच्छामि मार्तण्डस्य महात्मन ।
चरितं द्विज यत्पाप यत्नो सम्यग्वदता गुणाम् ॥)

मार्कण्डेय उवाच

त्रीण्यपत्यान्यसौ तस्यां जनयामास गोपति ।
द्वौ पुत्रौ सुमहाभागौ कन्याञ्च यमुनां मुने ॥ ३ ॥

मनुर्वैवस्वतो ज्येष्ठ श्राद्धदेव प्रजापति । ततो यमो यमी चैव यमलौ सम्बभूवतु

यत्तेजोऽभ्यधिक तस्य मार्तण्डस्य विवस्वत ।
तेनातितापयामास त्रीन् लोकान् सचराचरान् ॥ ५ ॥
गोलाकारन्तु तं दृष्ट्वा सञ्ज्ञारूपं विवस्वत ।
असहन्ती महत्तेज स्वच्छायां प्रेक्ष्य साऽब्रवीत् ॥ ६ ॥

सञ्ज्ञोवाच

अहंयास्यामिभद्रन्तेस्वमेवभवनंपितु । निर्विकारत्वयाप्यत्रस्थेयंमच्छासनाच्छुभे
इमौ च बालकौमह्यं कन्याचवरवर्णिनी । सम्भाव्यानैवचाख्येयमिदम्भगवतेत्वया

छायोवाच

आकेशग्रहणाद्देवि आशापान्नैव कर्हिचित् ।

आख्यास्यामि मतं तुभ्यं गम्यतां यत्र वाञ्छितम् ॥ ९ ॥

इत्युक्ताछायया संज्ञा जगाम पितृमन्दिरम् । तत्रावसत् पितुर्गेहे कञ्चित्कालं शुभेक्षणा

भर्तुः समीपं याहीति पित्रोक्ता सा पुनः पुनः ।

अगच्छद्वडवा भूत्वा कुरून् विप्रोत्तरांस्ततः ॥ ११ ॥

तत्र तेपे तपः साध्वी निराहारा महामुने । पितुः समीपं यातायाः संज्ञायां वाक्यतत्परा

तद्रूपधारिणी छाया भास्करं समुपस्थिता ।

तस्याञ्च भगवान् सूर्यः सञ्ज्ञेयामिति चिन्तयन् ॥ १३ ॥

तथैव जनयामास द्वौ सुतौ कन्यकां तथा ।

पूर्वजस्य मनोस्तुल्यः सावर्णिस्तेन सोऽभवत् ॥ १४ ॥

यस्तयोः प्रथमं जातः पुत्रयोर्द्विजसत्तम । द्वितीयो योऽभवच्चान्यः सग्रहोऽभूच्छनैश्चरः

कन्या भूत्तपती या तां वव्रे संवरणो नृपः । संज्ञा तु पार्थिवी तेषामात्मजानां यथाऽकरोत्

स्नेहान्न पूर्वजातानां तथा कृतवती सती ।

मनुस्तत्क्षान्तवांस्तस्या यमश्चास्या न चक्षमे ॥ १७ ॥

बहुशो याच्यमानस्तु पितुः पत्न्या सुदुःखितः ।

स वै कोपाच्च बाल्याच्च भाविनोऽर्थस्य वै बलात् ॥ १८ ॥

पदासन्तर्जयामास छायासञ्ज्ञां यमो मुने! ।

ततः शशाप च यमं सञ्ज्ञा सामर्षिणी भृशम् ॥ १९ ॥

छायोवाच

पदा तर्जयसे यस्मात् पितृभार्यां गरीयसीम् । तस्मात्तवैव चरणः पतिष्यति न संशयः

यमस्तु तेन शापेन भृशं पीडितमानसः । मनुना सह धर्मात्मा सर्वं पित्रे न्यवेदयत्

यम उवाच

स्नेहेन तुल्यमस्मासु माता देव! न वर्तते ।

विसृज्य ज्यायसोऽप्यस्मान् कनीयांसौ बुभूर्षति ॥ २२ ॥

बाल्याद्वा यदि वा मोहात्तद्भवान् क्षन्तुमर्हति ॥ २३ ॥

शप्तोऽहं तात कोपेन जनन्या तनयो यतः । ततो नमस्ये जननीमिमां वै तपताम्ब

विगुणेष्वपि पुत्रेषु न माता विगुणा पितः ।

पादस्ते पततात्पुत्र' कथमेतत् प्रवक्ष्यति ॥ २० ॥

तव प्रसादाच्चरणो न पतेद्भगवान् यथा । मातृशापादय मेऽद्य तथा चिन्तय गोप

रविरुवाच

असंशयमिदं पुत्र भविष्यत्यत्र कारणम् ।

येन त्वामाविशत् क्रोधो धर्मज्ञं सत्यवादिनम् ॥ २७ ॥

सर्वेषामेव शापानां प्रतिघातो हि विद्यते । न तु मात्राभिशप्तानां क्वचिच्छापनिवर्तन

न शक्यमेतन्मिथ्या तु कर्तुं मातुर्वचस्तव । किञ्चित्तव विधास्यामि पुत्रस्नेहादनुग्रह

कृमयो मांसमादाय प्रयास्यन्ति महीतलम् ।

कृतं तस्या वचः सत्यं त्वञ्च त्रातो भविष्यसि ॥ ३० ॥

मार्कण्डेय उवाच

आदित्यस्त्वब्रवीच्छायां किमर्थं तनयेषु वै । तुल्येष्वप्यधिकः स्नेह एकं प्रति कृतस्त्वया

नूनं नैषा त्वं जननी सञ्ज्ञा कापि त्वमागता । विगुणेष्वप्यपत्येषु कथं माता शपेत्सुतम्

मार्कण्डेय उवाच

सा तत्परिहरन्तीव नाचचक्षे विवस्वतः । स चात्मानं समाधाय युक्तस्तत्त्वमपश्यत

तं शप्तुमुद्यतं दृष्ट्वा छायासञ्ज्ञा विवस्वतिम् ।

भयेन कम्पती ब्रह्मन् यथावृत्तं न्यवेदयत् ॥ ३४ ॥

विवस्वांस्तु ततः क्रुद्धः श्रुत्वा श्वशुरमभ्यगात् ।

स चापि तं यथान्यायमर्चयित्वा दिवाकरम् ।

निर्दग्धुकामं रोषेण सान्त्वयामास सुव्रत ॥ ३६ ॥

विश्वकर्मोवाच

तवातितेजसा व्याप्तमिदं रूपं सुदुःसहम् । असहन्ती ततः सञ्ज्ञा वने चरति वै तपः

द्रक्ष्यते तां भवानत्रस्थां भार्यां शुभचारिणीम् । रूपार्थं भवतोऽरण्ये चरन्तीं सुमहत्तपः
श्रुतं मे ब्रह्मणो वाक्यं यदि ते देव! रोचते । रूपं निवर्तयाम्यद्य तव कान्तं दिवस्पते!

मार्कण्डेय उवाच

यतो हि भास्वतो रूपं प्रागासीत् परिमण्डलम् ।
ततस्तथेति तं प्राह त्वष्टारं भगवान् रविः ॥ ३९ ॥

विश्वकर्मा त्वनुज्ञातः शाकद्वीपे विवस्वतः । भ्रमिमारोप्य तत्तेजः शातनायोपचक्रमे
भ्रमताऽशेषजगतां नाभिभूतेन भास्वता । समुद्राद्रिवनोपेता समारोह मही नभः
गगनं चाखिलं ब्रह्मन्! सचन्द्रग्रहतारकम् । अधोगतं महाभाग! बभूवाक्षिप्तमाकुलम्

विक्षिप्तसलिलाः सर्वे बभूवुश्च तथार्णवाः ।
व्यभिद्यन्त महाशैलाः शीर्णसानुनिबन्धनाः ॥ ४३ ॥
ध्रुवाधाराण्यशेषाणि धिष्ण्यानि मुनिसत्तम !।
त्रुट्यद्रश्मिनिबन्धानि अधो जग्मुः सहस्रशः ॥ ४४ ॥

वेगभ्रमणसञ्जातवायुक्षिप्ताः सहस्रशः । व्यशीर्यन्त महामेघा घोररावविराविणः

भास्वद्भ्रमणविभ्रान्तं भूम्याकाशरसातलम् ।
जगदाकुलमत्यर्थं तदासीन्मुनिसत्तम ! ॥ ४६ ॥

त्रैलोक्ये सकले विप्र! भ्रममाणे सुरर्षयः । देवाश्च ब्रह्मणा सार्द्धं भास्वन्तमभितुष्टुवुः

आदिदेवोऽसि देवानां ज्ञातमेतत् स्वरूपतः (स्वयन्तव) ।
सर्गस्थित्यन्तकालेषु त्रिधाभेदेन तिष्ठसि ॥ ४८ ॥
स्वस्ति तेऽस्तु जगन्नाथ ! घर्मवर्षाहिमाकर ! ।
कुरुष्व शान्तिं लोकानां देवदेव ! दिवाकर ! ॥ ४९ ॥
इन्द्रश्चागत्य तं देवं लिख्यमानं यथाऽस्तुवत् ।
जय देव ! जगद्व्यापिन् ! जयाशेष जगत्पते ! ॥ ५० ॥
ऋषयश्च ततः सप्त वशिष्ठात्रिपुरोगमाः ।
तुष्टुवुर्विविधैः स्तोत्रैः स्वस्तिस्वस्तीतिवादिनः ॥ ५१ ॥

वेदोक्ताभिरथाग्र्याभिर्वालखिल्याश्च तुष्टुवुः ।
भास्वन्त ऋग्भिराद्याभिरिज्यमानं मुदा युता॥ ५२ ॥
त्वं नाथ ! मोक्षिणां मोक्षो ध्येयस्त्वं ध्यानिनां परः ।
त्वं गतिः सर्वभूतानां कर्मकाण्डेऽपि वर्ततां (म्पोर्यतिनाम्)॥ ५३
शं प्रजाभ्योऽस्तु देवेश ! शन्नोऽस्तु जगताम्पते ! ।
शन्नोऽस्तु द्विपदे नित्य शन्नश्चास्तु चतुष्पदे ॥ ५४ ॥
ततोविद्याधरगणा यक्षराक्षसपन्नगाः । कृताञ्जलिपुटा सर्वे शिरोभिः प्रणता रविम्
ऊचुरेवंविधावाचोमनः श्रोत्रसुखावहाः । सह्यम्भवतु ते तेजो भूतानां भूतभावन!
ततोहाहाहूहूश्चैव(?)नारदस्तुम्बुरुस्तथा । उपगायितुमारब्धागान्धर्वकुशलारविम्
षड्जमध्यमगान्धारग्रामत्रयविशारदाः । मूर्च्छनाभिश्चतालैश्च सम्प्रयोगैः सुखप्रदम्
विश्वाची च घृताची च उर्वश्यथ तिलोत्तमा ।
मेनका सहजन्या च रम्भा चाप्सरसा वरा (वराः) ॥ ५६ ॥
ननृतुर्जगतामीशे लिख्यमाने विभावसौ ।
हावभावविलासाढ्यान् कुर्वन्तोऽभिनयान् बहून् ॥ ६० ॥
प्रावाद्यन्त ततस्तत्र वेणुवीणादिदर्दुराः ।
पणवाः पुष्कराश्चैव मृदङ्गाः पटहानकाः ॥ ६१ ॥
देवदुन्दुभयः शङ्खाः शतशोऽथ सहस्रशः । गायद्भिश्चैवगन्धर्वैर्नृत्यद्भिश्चाप्सरोगणैः
तूर्यवादित्रघोषैश्च सर्वं कोलाहलीकृतम् । ततः कृताञ्जलिपुटा भक्तिनम्रात्ममूर्त्तयः
लिख्यमानं सहस्रांशुं प्रणेमुः सर्वदेवताः । ततः कोलाहले तस्मिन् सर्वदेवसमागमे
तेजसः शातनञ्चक्रे विश्वकर्मा शनैः शनैः ॥ ६४ ॥
इति हिमजलघर्मकालहेतोर्हरकमलासनविष्णुसंस्तुतस्य ।
तनुपरिलिखनं निशम्य भानोर्व्रजति दिवाकरलोकमायुषोऽन्ते ॥ ६५ ॥
इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भानुतनुलेखनवर्णनंनाम षडधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०६

सप्ताधिकशततमोऽध्यायः

सूर्यस्तवनवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

लिख्यमाने ततोभानौविश्वकर्माप्रजापतिः। उद्भूतपुलकस्तोत्रमिदञ्चक्रेविवस्वतः

विवस्वते प्रणतहितानुकम्पिने महात्मने समजवसप्तसप्तये।
सुतेजसे कमलकुलावबोधिने नमस्तमःपटलपटावपाटिने॥ २॥
पावनातिशयपुण्यकर्मणे नैककामविषयप्रदायिने।
भास्वरानलमयूखशायिने सर्वलोकहितकारिणे नमः॥ ३॥
अजाय लोकत्रयकारणाय भूतात्मने गोपतये वृषाय।
नमो महाकारुणिकोत्तमाय सूर्याय चक्षुःप्रभवालयाय॥ ४॥
विवस्वते ज्ञानभृतान्तरात्मने जगत्प्रतिष्ठाय जगद्धितैषिणे।
स्वयम्भुवे लोकसमस्तचक्षुषे सुरोत्तमायामिततेजसे नमः॥ ५॥
क्षणमुदयाचलमौलिमणिःसुरगणमहितहितो जगतः (गीतगरिष्ठगुणः)।
त्वमुरुमयूखसहस्रवपुर्जगति विभासि तमांसि नुदन्॥ ६॥
भव तिमिरासवपानमदात् भवति विलोहितविग्रहात्।
मिहिर विभासि यतः सुतरां त्रिभुवनभावनभानिकरैः॥ ७॥
रथमधिरुह्य समावयवं चारु विकम्पितमुरुरुचिरम्।
सततमखिलहयैर्भगवन्!चरसि जगद्धिताय विततम्॥ ८॥
अमृतसुधांशुरसेन समं विबुध! पितृनपि तर्पयसे।
अरिगणसूदन! तेन तव प्रणिपत्य लिखामि जगद्धिताय॥ ९॥
शुकसमवर्णहयग्रथितं तव पदपांशुपवित्रतलम्।
नतजनवत्सल मां प्रणतं त्रिभुवनपावन! पाहि रवे!॥ १०॥

इति सकलजगत्प्रसूतिभूतं त्रिभुवनभावनधाम हेतुमेकम् ।
रविमखिलजगत्प्रदीपभूतं देवं प्रणतोऽस्मि विश्वकर्माणम् ॥ ११ ॥
(त्रिदशवर प्रणतोऽस्मि सर्वदा त्वाम्)

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सूर्यस्तवननाम सप्ताधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०७ ॥

अष्टाधिकशततमोऽध्यायः

रवेर्माहात्म्यवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

एवं सूर्यस्तवं कुर्वन् विश्वकर्मा विवस्वतः । तेजसः षोडशं भागं मण्डलस्थमधारयत् ॥
शातितैस्तेजसो भागैर्दशभिः पञ्चभिस्तथा ।
अतीव कान्तिमच्चारु भानोरासीत्तदा वपुः ॥ २ ॥
शातितश्चास्य यत्तेजस्तेन चक्रं विनिर्मितम् । विष्णोः शूलं च शर्वस्य शिबिका धनदस्य च ॥
दण्डः प्रेतपतेः शक्तिर्देवसेनापतेस्तथा । अन्येषां चैव देवानामायुधानि तु विश्वकृत् ॥
चकार तेजसा भानोर्भासुराण्यरिशान्तये ।
इति शातिततेजाः स शुशुभे नातितेजसा ॥ ५ ॥
वपुर्दधार मार्तण्डः सर्वावयवशोभनम् ।
स ददर्श समाधिस्थां स्वां भार्यां वडवाकृतिम् ॥ ६ ॥
अधृष्यां सर्वभूतानां तपसा नियमेन च ।
उत्तरांश्च कुरून् गत्वा भूत्वाऽश्वो भानुरागमत् ॥ ७ ॥
सा च दृष्ट्वा तमायान्तं परपुंसो विशङ्कया । जगाम सम्मुखं तस्य पृष्ठरक्षणतत्परा ॥
ततश्च नासिकायोगं तयोस्तत्र समेतयोः ।
वडवायाश्च तत्तेजो नासिकाभ्यां विवस्वतः ॥ [illegible] ॥
देवौ तत्र समुत्पन्नावश्विनौ भिषजां वरौ । नासत्यदस्रौ तनयावश्ववक्त्राद्विनिर्गतौ

मार्त्तण्डस्य सुतावेतावश्वरूपधरस्य हि।
रेतसोऽन्ते च रेवन्तः खड्गी धन्वी तनुत्रधृक् ॥ ११ ॥
अश्वारूढः समुद्भूतो वाणतूणसमन्वितः। ततः स्वरूपममलं दर्शयामासभानुमान्
तस्य शान्तं समालोक्य सा रूपं मुदमाददे।
स्वरूपधारिणीञ्चेमां स निनाय निजालयम् ॥ १३ ॥
सञ्ज्ञां भार्यां प्रीतिमतीं भास्करो वारितस्करः।
ततः पूर्वसुतो योऽस्याः सोऽभूद्वैवस्वतो मनुः ॥ १४ ॥
द्वितीयश्च यमः शापात् धर्मदृष्टिरनुग्रहात्। यमस्तुतेन शापेन भृशं पीडितमानसः
धर्मोऽभिरोचते यस्मात् धर्मराजस्ततः स्मृतः।
कृमयो मांसमादाय पादतस्ते महीतलम् ॥ १६ ॥
पतिष्यन्तीति शापान्तं तस्य चक्रे पिता स्वयम्।
धर्मदृष्टिर्यतश्चासौ समो मित्रे तथाऽहिते ॥ १७ ॥
ततो नियोगे तं याम्ये चकार तिमिरापहः।
तस्मै ददौ पिता विप्र! भगवान् लोकपालताम् ॥ १८ ॥
पितृणामाधिपत्यञ्चपरितुष्टोदिवाकरः। यमुनाञ्चनदीञ्चक्रेकलिन्दान्तरवाहिनीम्
अश्विनौ देवभिषजौ कृतौ पित्रा महात्मना।
गुह्यकाधिपतित्वे च रेवन्तो विनियोजितः ॥ २० ॥
एवमप्याहचततोभगवांल्लोकभावितः। त्वमप्यशेषलोकस्य पूज्योवत्सभविष्यसि
अरण्यादिमहादाववैरिदस्युभयेषु च। त्वांस्मरिष्यन्तियेमर्त्यामोक्ष्यन्तेतेमहापदः
क्षेमम्बुद्धिं सुखं राज्यमारोग्यं कीर्त्तिमुन्नतिम्।
नराणां परितुष्टस्त्वं पूजितः सम्प्रदास्यसि ॥ २३ ॥
छायासञ्ज्ञासुतश्चापि सावर्णः सुमहायशाः।
भाव्यः सोऽनागते काले मनुःसावर्णकोऽष्टमः ॥ २४ ॥
मेरुपृष्ठे तपो घोरमद्यापि चरते प्रभुः। भ्राताशनैश्चरस्तस्य ग्रहोऽभूच्छासनाद्रवेः

यवीयसी तु या कन्याऽऽदित्यस्याभूद् द्विजोत्तम ।
अभवत् सा सरिच्छ्रेष्ठा यमुना लोकपावनी ॥ २६ ॥
यस्तु ज्येष्ठो महाभाग सर्गो यस्येह साम्प्रतम् ।
विस्तरं तस्य वक्ष्यामि मनोर्वैवस्वतस्य ॥ २७ ॥
इदं यो जन्म देवानां शृणुयाद्वा पठेत वा । विवस्वतस्तनूजानामर्कमाहात्म्यमेव
आपदं प्राप्य मुच्येत प्राप्नुयाच्च महायशः । अहोरात्रकृतं पापमेतच्छमयते श्रुत
माहात्म्यमादिदेवस्य मार्तण्डस्य महात्मनः ॥ २९ ॥
इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे रविमाहात्म्यवर्णनं नामाऽष्टाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०८

नवाधिकशततमोऽध्यायः

भानुसन्ततिवर्णनप्रसङ्गे ऐश्वर्यमाहात्म्यवर्णनम्

क्रौष्टुकिरुवाच

भगवन्! कथितं सम्यक् भानोः सन्ततिसम्भवः ।
माहात्म्यमादिदेवस्य स्वरूपञ्चातिविस्तरात् ॥ १ ॥
भूयोऽपि भास्वतः सम्यङ्माहात्म्यं मुनिसत्तम! ।
श्रोतुमिच्छाम्यहं तन्मे प्रसन्नो वक्तुमर्हसि ॥ २ ॥

मार्कण्डेय उवाच

श्रूयतामादिदेवस्य माहात्म्यं कथयामि ते । विवस्वतो यथा कारपूर्वमाराधितो जनै
दमस्य पुत्रो विख्यातो राजाऽभूद्राज्यवर्द्धनः ।
स सम्यक् पालनञ्चक्रे पृथिव्याः पृथिवीपतिः ॥ ४ ॥
धर्मतः पाल्यमानन्तु तेन राष्ट्रं महात्मना । ववृधेऽनुदिनं विप्र जनेन च धनेन च
हृष्टपुष्टमतीवासीत्तस्मिन् राजन्यशेषतः । राजकं सकलञ्चोर्व्यां पौरजानपदो जन

नोपसर्गो न च व्याधिर्न च व्यालोद्भवं भयम् ।
न चावृष्टिभयं तत्र दमपुत्रे महीपतौ ॥ ७ ॥

स इयाज महायज्ञैर्ददौ दानानि चार्थिनाम् । सुधर्मस्याविरोधेन बुभुजे विषयानपि
तस्यैवं कुर्वतो राज्यं सम्यक् पालयतः प्रजाः । सप्तवर्षसहस्राणि जग्मुरेकमहो यथा
विदूरथस्य तनया दाक्षिणात्यस्य भूभृतः । तस्य पत्नी बभूवाथ मानिनी नाम मानिनी

कदाचित्तस्य सा सुभ्रूः शिरसोऽभ्यञ्जनाहने ।
पश्यतो राजलोकस्य मुमोचाऽश्रूणि मानिनी ॥ ११ ॥

तदश्रुबिन्दवो गात्रे यदा तस्य महीपतेः । तदोर्ध्वास्याश्रुवदनां तामपृच्छत मानिनीम्

निःशब्दमश्रुमोक्षेण रुदन्तीं तां विलोक्य वै ।
किमेतदिति पप्रच्छ मानिनीं राज्यवर्धनः ॥ १३ ॥

पृष्टा सा तु ततस्तेन भर्त्रा प्राह मनस्विनी ।
न किञ्चिदिति तां भूपः पप्रच्छ स महीपतिः ॥ १४ ॥

बहुशः पृच्छतस्तस्य भूभृतः सा सुमध्यमा । दर्शयामास पलितं केशभारान्तरोद्भवम्

एतत्पश्येति भूपाल! किमिदं मन्युकारणम् ।
ममातिमन्दभाग्याया जहासाऽथ नृपस्ततः ॥ १६ ॥

स विहस्याह तां पत्नीं शृण्वतां सर्वभूभृताम् ।
पौराणाञ्च महीपाला ये तत्रासन् समागताः ॥ १७ ॥

शोकेनालं विशालाक्षि रोदितव्यं न ते शुभे । जन्मर्द्धिपरिणामाद्या विकाराः सर्वजन्तुषु
अधीताः सकला वेदा इष्टा यज्ञाः सहस्रशः । दत्तं द्विजानां पुत्राश्च समुत्पन्ना वरानने

भुक्ता भोगास्त्वया सार्द्धं ये मर्त्यैरतिदुर्लभाः ।
सम्यक् च पालिता पृथ्वी साधु युद्धेष्वनुष्ठितम् ॥ २० ॥

मित्रैः सहेष्टैर्हसितं विहृतं च वनान्तरे । किमन्यन्नकृतं भद्रे! पलितेभ्यो बिभेषि यत्

भवन्तु केशाः पलिता वलयः सन्तु मे शुभे !।
शैथिल्यमेतु मे कायः कृतकृत्योऽस्मि मानिनि !॥ २२ ॥

मूर्ध्नि यद्दर्शितं भद्रे भवत्यापलितं मम। चिकित्सामेव तस्याहं करोमि वनमाश्रयन्
बाल्ये बालक्रिया पूर्वं तद्वत् कौमारके च या।
यौवने चापि या योग्या वार्द्धके वनसंश्रया ॥ २५ ॥
एवमन्पूर्वकैर्मद्रे हतन्त पूरवैश्वरन्। अतोऽनेनेऽङ्गपातस्य किञ्चिन्नपश्यामि कारणम्
अत्रत्ने मन्तुतां भद्रे नन्वभ्युदयकारि मे। दर्शनं पलितस्यास्य मारोदीर्निष्प्रयोजनम्
मार्कण्डेय उवाच
ततः प्रणम्य तं भूपं पौराश्चैव समागता। सान्त्वमोचुर्महीपालं महर्षेराज्यवर्द्धनम्
न रोदितव्यमनया तव पत्न्या नराधिप।
रोदितव्यमिहास्माभिरथवा सर्वजन्तुभिः ॥ २८ ॥
त्वं ब्रवीषि यथा नाथ वनवासाश्रितं वच।
पतन्ति तेन नः प्राणा व्याकुलानां तथा नृप ॥ २९ ॥
सर्वे यास्यामहे भूप यदि यासि भवान् वनम्।
ततोऽशेषक्रियाहानिः सर्वपृथ्वीनिवासिनाम् ॥ ३० ॥
भविष्यति नसन्देहस्त्वयि नाथ वनाश्रये। सा च धर्मोपघाताय वदितम्प्रथिमुच्यताम्
सप्तवर्षसहस्राणि त्वयेयं पालिता मही। तत्समुत्थं महापुण्यमालोक्य नराधिप
वने वसन्महाराज! ६१ करिष्यसि यत्तप।
तन्महीपालनस्यास्य कला नार्हन्ति षोडशीम् ॥ ३३ ॥
राजोवाच
सप्तवर्षसहस्राणि मयेयं पालिता मही। इदानीं वनवासस्य मम कालोऽयमागत
ममापत्यानि जातानि दृष्टा मेऽपत्यसन्तती।
स्वल्पैरेव महाहोभिरन्तको न सहिष्यति ॥ ३० ॥
यदेतत्पलितं मूर्ध्नि तद्विजानीत नागरा। दूतभूतमनार्यस्य मृत्योरत्युग्रकर्मण ॥
सोऽहं राज्ये सुतं कृत्वा भोगांस्त्यक्त्वा वनाश्रय।
तपस्तप्स्ये समायान्ति न यावद्यमसैनिका ॥ ३७ ॥

मार्कण्डेय उवाच

ततो यियासुः स वनं दैवज्ञानवनीपतिः । पुत्रराज्याभिषेकाय दिनलग्नान्यपृच्छत॥

श्रुत्वा च ते तु नृपतेर्वचो व्याकुलचेतसः ।

दिनं लग्नञ्च होराञ्च न विदुः शास्त्रदृष्टयः ॥ ३९ ॥

ऊचुश्च तं महीपालं दैवज्ञा वाष्पगद्गदम् । ज्ञानानि नःप्रणष्टानिश्रुत्वैतत्तेवचोनृप!

ततोऽन्यनगरेभ्यश्च भृत्यराष्ट्रेभ्य एव च ।

ततस्तस्माच्च नगरात् प्राचुर्येणाभ्युपागमन् ॥ ४१ ॥

समुत्पत्यमहीपालं तं यियासुं मुनेवनम् । प्रकम्पिशिरसोभूत्वाप्रोचुर्ब्राह्मणसत्तमाः

प्रसीद पाहि नो राजन्! पालिताः स्म यथा पुरा ।

सीदिष्यत्यखिलो लोकस्त्वयि भूप ! वनाश्रये ॥ ४३ ॥

स कुरुष्व तथा राजन्! यथा नोसीदते जगत् ।

यावज्जीवामहे वीर ! स्वल्पकालमिमे वयम् ।

नेच्छामश्च भवच्छून्यं द्रष्टुं सिंहासनं विभो! ॥ ४४ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इत्येवं तैस्तथान्यैश्च द्विजैः पौरपुरःसरैः । भूपैर्भृत्यैरमात्यैश्च प्रोक्तः प्रोक्तःपुनःपुनः

वनवासविनिर्बन्धं नोपसंहरते यदा । क्षमिष्यत्यन्तको नेति ददाति च तथोत्तरम्

ततोऽमात्याश्च भृत्याश्च पौरवृद्धास्तथा द्विजाः ।

समेत्य मन्त्रयामासुः किमत्र क्रियतामिति ॥ ४७ ॥

तेषां मन्त्रयतां विप्र ! निश्चयोऽयमजायत । अनुरागवतां तत्र महीपालेतिधार्मिके

सम्यग्ध्यानपरा भूत्वा प्रार्थयामः समाहिताः ।

तपसाराध्य भास्वन्तमायुरस्य महीपतेः ॥ ४९ ॥

तत्रैकनिश्चयाः कार्ये केचिद्गेहे च भास्करम् । सम्यगर्घोपचाराद्यैरुपहारैरपूजयन्,

अपरे मौनिनोभूत्वा ऋग्जापेनतथाऽपरे । यजुःसामयसाम्नाञ्चतोषयाञ्चक्रिरेरविम्

अपरेच निराहारानदीपुलिनशायिनः । तपसा चक्रुरायस्ताभास्कराराधनंद्विजाः

अग्निहोत्रपराधान्ये रविसूक्तान्यहर्निशम् । जेपुस्तत्रापरे तस्थुर्भास्करैक्यस्तदृष्य
इत्येवमतिनिर्बन्धं भास्कराराधनं प्रति ।
बहुप्रकारं चक्रुस्ते ते ते विधिमुपाश्रिता ॥ ५४ ॥
तथा तु यतता तेषां भास्कराराधनं प्रति । सुदामा नामगन्धर्वउपागम्येदमब्रवीत्
यद्याराधनमिष्टवो भास्करस्य द्विजालय । तदेतत् क्रियतायेनभानु प्रीतिमुपैष्यति
तस्माद् गुरुविशालाख्यं वनं सिद्धनिषेवितम् ।
कामरूपे महाशैले गम्यता तत्र वै लघु ॥ ५७ ॥
तस्मिन्नाराधनं भानो क्रियतां सुसमाहितैः ।
सिद्धक्षेत्रं स्थिते तत्र सर्वकामानवाप्स्यथ ॥ ५८ ॥
मार्कण्डेय उवाच
इतितेनवचःश्रुत्वा गत्वा तत्कानन द्विजा । ददृशुर्भास्करतस्तत्रपुण्यमायतनशुभम्
तस्मिन् नियताहारा वर्णाविप्रादयोद्विज । धूपपुष्पोपहाराद्यापूजाश्चक्रुस्तन्द्रिता
पुष्पानुलेपनामैश्च धूपगन्धादिकैस्तथा । जपहोमान्नदीपाद्यै पूजनन्ते समाहिता
कुर्वन्तस्तुष्टुवुर्भक्त्या विवस्वन्तं द्विजालय ॥ ६१ ॥
ब्राह्मणा ऊचु
देवदानवयक्षाणा ग्रहाणाज्योतिषामपि । तेजसाभ्यधिक देवंमजाम शरणरविम्
दिविस्थितञ्च देवेशयोतयन्तसमन्ततः । वसुधामन्तरीक्षञ्चव्याप्नुवन्तमरीचिभि
आदित्यं भास्करं भानु सवितार दिवाकरम् ।
पूषाणमर्यमाणं च स्वर्भानु दीप्तदीधितिम् ॥६४ ॥
चतुर्युगान्तकालाग्नि दुष्प्रेक्ष्य प्रलयान्तगम् ।
योगीश्वरमनन्तं च रक्तं पीतं सितासितम् ॥ ६० ॥
ऋषीणामग्निहोत्रेषु यज्ञदेवेष्ववस्थितम् । अक्षरं परमं गुह्य मोक्षद्वारमनुत्तमम् ॥
छन्दोभिरश्वरूपैश्च सदृयुर्न्तैर्विहङ्गमम् । उदयास्तमने युक्त सदा मेरो प्रदक्षिणे ॥
अनृतञ्च ऋतञ्चं च पुण्यतीर्थं पृथग्विधम् ।

विश्वस्थितिमचिन्त्यञ्च प्रपन्नाः स्म प्रभाकरम् ॥ ६८ ॥
यो ब्रह्मा यो महादेवो योविष्णुर्यः प्रजापतिः ।
वायुराकाशमापश्च पृथिवीगिरिसागराः ॥ ६६ ॥
ग्रहनक्षत्रचन्द्राद्या वानस्पत्यं द्रुमौषधम् । व्यक्ताव्यक्तेषुभूतेषुधर्माधर्मप्रवर्त्तकः ॥
ब्राह्मी माहेश्वरी चैव वैष्णवी चैव ते तनुः ।
त्रिधा तस्य स्वरूपन्तु भानोर्भास्वान् प्रसीदतु ॥ ७१ ॥
यस्य सर्वमजस्येदमङ्गभूतं जगत् प्रभोः ।
सनः प्रसीदतां भास्वान् जगतां यश्च जीवनम् ॥ ७२ ॥
यस्यैकभास्वरंरूपंप्रभामण्डलदुर्द्दशम् । द्वितीयमैन्दवंसौम्यंसनोभास्वानप्रसीदतु
ताभ्याञ्च यस्य रूपाभ्यामिदं विश्वं विनिर्मितम् ।
अग्नीषोममयं भास्वान् स नो देवः प्रसीदतु ॥ ७४ ॥
मार्कण्डेय उवाच
इत्थं स्तुत्या तदा भक्त्या सम्यक् पूजयतां तथा ।
तुतोष भगवान् भास्वांस्त्रिभिर्मासैर्द्विजोत्तम ! ॥ ७५ ॥
ततः स मण्डलादुद्यन्निजविश्वसमप्रभः । अवतीर्य ददौ तेभ्यो दुर्द्दशो दर्शनं रविः
ततस्ते स्पष्टरूपं तं सवितारमजं जनाः । पुलकोत्कम्पिनोविप्राभक्तिनम्राःप्रणेमिरे
नमोनमस्तेऽस्तु सहस्ररश्मे! सर्वस्य हेतुस्त्वमशेषकेतुः ।
पातात्वमीड्योऽखिलयज्ञधाम! ध्येयस्तथा योगविदां प्रसीद !॥ ७८ ॥
इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वन्तरे भानुस्तवर्णनंनाम-
नवाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०६ ॥

———

दशाधिकशततमोऽध्यायः

भानोर्माहात्म्यवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

ततः प्रसन्नो भगवान् भानुराहादितिं जनम् । नियतायदभिप्रेतं मत्तः प्राप्नुहि जादय

मार्कण्डेय उवाच

ततस्ते प्रणिपत्योचुर्विप्र ! विप्रादयो जनाः ।

समाध्यममशीनांशुमन्तलोकस्य पुरः स्थितम् ॥ २ ॥

प्रजा ऊचुः

ततस्तंप्रणिपत्योचुर्भरद्वजगदीश्वरम् । भगवन् ! यदिनोभक्त्याप्रसन्नस्तिमिरापह

दशवर्षसहस्राणितनोजीवनानृप । निरामयोजितारातिः सुकोषः स्थिरयौवनः

दशवर्षसहस्राणि जीवता राज्यवर्द्धनः ॥ ४ ॥

मार्कण्डेय उवाच

तथेत्युक्त्वा जनान् भास्वान् दृष्टः शोऽभून्महामुने ! ।

सोऽपि लब्धवरो हृष्टः समाजग्मुर्जनेश्वरम् ॥ ५ ॥

यथावृत्तञ्चतस्मिन्नरेन्द्रायन्यवेदयन् । वरं लब्ध्वा सहस्रांशोः सकाशादखिलं द्विज !

तच्छ्रुत्वा अहृपे तस्य सा पत्नी मानिनी द्विज ! ।

स च राजा चिरं दध्यौ नाह किञ्चिच्च तं जनम् ॥ ७ ॥

ततः सा मानिनी भूपं हर्षापूरितमानसा ।

दिष्ट्याऽऽयुषा महीपाल ! वर्द्धस्वेत्याह तं पतिम् ॥ ८ ॥

तया तया मुदा भर्त्ता मानिन्याथ समाजितः ।

नाह किञ्चिन्महीपालश्चिन्ताजडमना द्विज ! ॥ ९ ॥

सा पुनः प्राह भर्त्तारं चिन्तयानमधोमुखम् । कस्मान्नहर्षमभ्येषिपरमाभ्युदयेनृप !

दशवर्षसहस्त्राणि नीरुजः स्थिरयौवनः। भार्यात्वमद्यप्रभृति किं तथापिनहृष्यसे
किन्तुतत्कारणंब्रूहियचिन्ताकृष्टमानसः। परमाभ्युदयेऽपि त्वं सम्प्राप्तेपृथिवीपते!

राजोवाच

कथमभ्युदयो भद्रे! किं सभाजयसे च माम।
प्राप्तो दुःखसहस्त्राणां किं सभाजनमिष्यते ॥ १३ ॥

दशवर्षसहस्त्राणि जीविष्याम्यहमेककः। न त्वंनवचिरर्नामे किन्न दुःखंभविष्यति
पुत्रान् पौत्रान् प्रपौत्रांश्च तथान्यानिष्टबान्धवान्।
पश्यतो मे मृतान् दुःखं किमल्पं हि भविष्यति ॥ १५ ॥

भृत्येषुचातिभक्तेषु मित्रवर्गे तथा मृते। भद्रे! दुःखमपारं मे भविष्यति तु सन्ततम्
यैमदर्थं तपस्तप्तंकृशैर्धमनिसन्ततैः। ते मरिष्यन्त्यहं भोगीजीविष्यामीतिधिक्कृतम्
सेयमापद्वरारोहे! प्राप्ता नाभ्युदयो मम।
कथं वा मन्यसे न त्वं यत्सभाजयसेऽद्य माम् ॥ १८ ॥

मानिन्युवाच

महाराज! यथात्थत्वंतथैवंनात्रसंशयः। मयापौरैश्चदोषोऽयंप्रीत्यानालोकितस्तव
एवं गतेऽत्र किं कार्य्यं नरनाथ! विचिन्त्यताम्।
नान्यथा भावि यत्प्राह प्रसन्नो भगवान्रविः ॥ २० ॥

राजोवाच

उपकारः कृतः पौरैः प्रीत्या भृत्यैश्च यो मम।
कथं भोक्ष्यम्यहं भोगान् गत्वा तेषामनिष्कृतिम् ॥ २१ ॥

सोऽहमद्यप्रभृत्याद्रिंगत्वानियतमानसः। तपस्तप्स्येनिराहारोभानोराराधनोद्यतः
दशवर्षसहस्त्राणियथाहंस्थिरयौवनः। तस्य प्रसादाद्देवस्यजीविष्यामिनिरामयः
तथायदिप्रजाःसर्वाःभृत्यास्त्वञ्चसुताश्चमे। पुत्राःपौत्राःप्रपौत्राश्चसुहृदश्चवरानने!
जीवन्त्येतं प्रसादं न करोति भगवान्रविः।
ततोऽहं भविता राज्ये भक्ष्ये भोगांस्तथा मता ॥ २५ ॥

नचेद्देवकरोत्यर्कस्तद्दर्शितत्रमानिनि ।। तपस्तप्स्येनिराहारोयावज्जीवितसङ्क्ष

मार्कण्डेय उवाच

इत्युक्ता मा तदातेन तथेत्याहनराधिपम् । जगामतेनघमम साऽपिन धर्णाधा
स तदायतनगत्वा भायया सह पार्थिव । भानोराराधनश्चक्रे शुश्रूषानिरतो हि
निराहारस्त्रा सा च यथासौ पृथिवीपति । मेरे तपस्तथैवोग्रंशीतवातातपक्ष
तस्यपूजयतो भानु तप्यतश्चतपो महत् । साग्रे सम्वत्सरेयाते ततःप्रीतोदिवाक
समस्तभृत्यपौरादिपुत्राणाञ्च इति द्विज ।। दर्शयथाभिलषित वरद्विजवरोत्तम

लब्ध्वा वर स नृपति समभ्येत्यात्मन पुरम् ।
चकार मुदितो राज्य प्रजा धर्मेण पालयन् ॥ ३२ ॥
ईजे यज्ञान् स च बहून् ददौ दानान्यहर्निशम् ।
मानिन्या महितो भोगान् बुभुजे च स धर्मवित् ॥ ३३ ॥

दशवर्षसहस्राणिपुत्रपौत्रादिभि सह । भूत्वै पौत्रै समुदित सोऽभवत्स्थिरयौवन
तस्यैतिचरित दृष्ट्वा प्रमतिनाम भार्गव । विस्मयाइष्टहृदयो गाथामेतामगायत
भानुभक्तेरहोशक्तिर्यद्राजाराज्यवर्द्धन । आयुषो वर्द्धनेजात स्वजनस्यतथा मन

इति ते कथित विप्र ! यत्पृष्टोऽह त्वया विभो ! ।
आदिदेवस्य माहात्म्यादित्यस्य विवस्वत ॥ ३७ ॥
विप्रैस्तदखिल श्रुत्वा भानोर्माहात्म्यमुत्तमम् ।
पञ्चम मुच्यते पापै सप्तरात्रकृतैर्नर ॥ ३८ ॥

अरोगी धनवानाढ्य कुले महतिधीमताम् । जायते च महाप्राज्ञोयश्चैतद्धारयेद्बुध

मन्त्राश्च येऽत्राभिहिता भास्वतो मुनिसत्तम ! ।
नाप प्रत्येकमेतेषा त्रिसन्ध्यं पातकापह ॥ ४० ॥

समस्तमेतन्माहात्म्य यत्र चायतने रवेः । पठ्यतेतत्रभगवान् साम्निध्यनविमुञ्चति

तस्मादेतत् त्वया ब्रह्मन् ! भानोर्माहात्म्यमुत्तमम् ।
धार्य्यं मनसि जप्यञ्च सह पुण्यमभीप्सता ॥ ४२ ॥

सुवर्णशृङ्गीमतिशोभनाङ्गीं पयस्विनीं गां प्रददाति यो हि ।
शृणोति चैतत् त्र्यहमात्मवान्नरः समं तयोः पुण्यफलं द्विजाग्र्य ! ॥ ४३ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भानोर्माहात्म्यवर्णनं नाम दशाधिक-
शततमोऽध्यायः ॥ ११० ॥

एकादशाधिकशततमोऽध्यायः

वंशानुक्रमे मित्रावरुणेष्ट्यामपचारादिलाख्यानवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

एवम्प्रभावो भगवाननादिनिधनो रविः ।
यस्य त्वं क्रौष्टुके! भक्त्या माहात्म्यं मयि पृच्छसि ॥ १ ॥
परमात्मा स योगीनां युञ्जतां चेतसां लयम् ।
क्षेत्रज्ञः साङ्ख्ययोगानां यज्ञेशो यज्विनामपि ॥ २ ॥
सूर्याधिकारं वहतो विष्णोरीशस्य वेधसः ।
मनुस्तस्याऽभवत् पुत्रश्छिन्नसर्वार्थसंशयः ॥ ३ ॥
मन्वन्तराधिपो विप्र यस्य सप्तममन्तरम् । इक्ष्वाकुर्नाभगो रिष्टोमहाबलपराक्रमाः
नरिष्यन्तोऽथनाभागःपृषध्रोधृष्णव च । एते पुत्रामनोस्तस्यपृथग्राज्यस्यपालकाः
विख्यातकीर्त्तयः सर्वे सर्वे शास्त्रास्त्रपारगाः ।
विशिष्टतरमन्विच्छन् मनुः पुत्रं तथा पुनः ॥ ६ ॥
मित्रावरुणयोरिष्टिं चकार कृतिनाम्वरः । यत्र चापह्नते होतुरपचारान्महामुने ! ॥
इला नाम समुत्पन्नामनोःकन्यासुमध्यमा । तांदृष्ट्वाकन्यकांतत्रसमुत्पन्नां ततोमनुः
तुष्टाव मित्रावरुणौवाक्यञ्चेदमुवाचह । भवत्प्रसादात्तनयोविशिष्टो मे भवेदिति
कृते मखे समुत्पन्नातनया मम धीमतः । यदि प्रसन्नौवरदौतदियं तनया मम ॥ १०॥
प्रसादाद्भवतोः पुत्रो भवत्वतिगुणान्वितः ।

इला समभवत् सद्य सुद्युम्न इति विश्रुत । पुनश्चेश्वरकोपेन मृगव्यामन्ता वने।
स्त्रीत्वमासादित तेन मनुपुत्रेण धीमता। पुरूरवसनामान चक्रवर्तिनमूर्जितम्।
जनयामास तनय यज्ञसोमसुना बुध । जाते सुतेपुनस्त्वा सोऽश्वमेध महाक्रतुम्
पुरुषत्वमनुप्राप्ता सुद्युम्न पार्थिवोऽभवत्।
सुद्युम्नस्य त्रय पुत्रा उत्कलो विनयो गय ॥ १७ ॥
पुरूरवसेमहावीर्याः पञ्चिन पृथुलोचन । पुरूरवे तु येनाताश्चस्यराजस्तनय सुता
तुभुतुल्ने महीमेना धम नियतधेनम । स्त्रीभूतस्य तुयो जानस्तस्य राज पुरूरवा
न स लेभे महाभाग यतोबुधसुतो हि स । ततोवशिष्ठवचनात् प्रतिष्ठानपुरोत्तमम
तस्मै दत्त स राजाभूत्तत्रातीवमनोहरे ॥ १८ ॥
इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेवंशानुक्रमोनामैकादशाधिकशततमोऽध्याय ॥ १११ ॥

द्वादशाधिकशततमोऽध्याय

पृषध्रोपाख्यानवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

पृषध्राख्यो मनो पुत्रोमृगव्यामगमद्वनम् । तत्रचङ्क्रममाणोऽसौ विपिने निर्जनेवने
नासमाद मृग कश्चिद्वानुरीधिनितापित । क्षुत्तृष्णातापपरीताङ्गस्ततश्चतश्च चङ्क्रमन
स ददर्श तदा तत्र होमधेनु मनोहराम् (वनोदरे) ।
स्वाध्यायिनोवनान्तस्थ (स्माल्लर्देहछिद्राधा) ब्राह्मणस्याग्निहोत्रिण ॥ ३ ॥
स मन्यमानोगवयमिषुणातामताडयत् । पपातसाऽपितद्बाणविभिन्नहृदया भुवि
ततोऽग्निहोत्रिण पुत्रा ब्रह्मचारी तपोरति ।
शमवान् स पितुर्दृष्ट्वा होमधेनु निपातिताम् ॥ [illegible] ॥
गोपाल प्रथित पुत्रोबाभ्रव्योनाम नामत । कोपामर्षपराधीनचित्तवृत्तिस्ततोमुने
चुकोप विगलत्स्वेदनयनोलाविलेक्षण । स क्रुद्ध प्रस्य स नृप पृषध्रो मुनिदारकम्
प्रसीदेति नती कस्मात् शूद्रवत् कुरुषे इयम् ।

न क्षत्रियं न वा वैश्यमेवं क्रोधमुपैति वै ।
यथा त्वं शूद्रवज्जातो विशिष्टे ब्रह्मणः कुले ॥ ८ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इति निर्भर्त्सितस्तेन स राजा मौलिनः सुतः
शशाप तं दुरात्मानं शूद्र एव भविष्यति ॥ ९ ॥
प्रयास्यति क्षयंब्रह्मयत्तेऽधीतंगुरोर्मुखात् । होमधेनुर्ममगुरोर्यस्त्वियंहिंसितात्वया
एवं शप्तो नृपः क्रुद्धस्तच्छापपरिपीडितः । प्रतिशापपरोविप्रतोयं जग्राह पाणिना
सोऽपि राज्ञो विनाशाय कोपञ्चक्रे द्विजोत्तमः ।
तमभ्येत्य त्वरायुक्तो वारयामास वै पिता ॥ १२ ॥
वत्सालमलमत्यर्थं कोपेनायातिवैरिणा । ऐहिकामुष्मिकहितःशमएवद्विजन्मनाम्
कोपस्तपो नाशयतिक्रुद्धोभ्रश्यत्यथायुषः । क्रुद्धस्य गलतेज्ञानंक्रुद्धस्यार्थोपिहीयते ॥
न धर्मः क्रोधशीलस्य नार्थञ्चाप्नोति रोषणः ।
नालं सुखाय कामाप्तिः कोपेनाविष्टचेतसाम् ॥ १५ ॥
यदि राज्ञा हता धेनुरियंविज्ञानिनासता । युक्तमत्र दयां कर्तुमात्मनोहितबोधिना
अथवाऽजानता धेनुरियंव्यापादितामम । तत्कथंशापयोग्योऽयंदुष्टेनास्यमनोयतः
आत्मनो हितमन्विच्छन् बाधते योऽपरं नरः ।
कर्तव्या मूढविज्ञाने दया तत्र दयालुभिः ॥ १८ ॥
अज्ञानतः कृते दण्डं पातयन्ति बुधा यदि ।
बुधेभ्यस्तमहं मन्ये वरमज्ञानिनो नराः ॥ १९ ॥
नाद्य शापस्त्वया देयः पार्थिवस्यास्य पुत्रक !।
स्वकर्मणैव पतिता गौरेषा दुःखमृत्युना ॥ २० ॥

मार्कण्डेय उवाच

पृषध्रोऽपि मुनेः पुत्रं प्रणम्यात्तकरः । प्रसीदेतिजगादोच्चैरज्ञानाद्धातितेतिच
मया गवयबुद्ध्या गौरवध्या घातितामुने । अज्ञानाद्धोमधेनुस्ते प्रसीदत्वञ्चनोमुने

ऋषिपुत्र उवाच

आजन्मनो महीपालनमयाव्याहृतं मृषा । क्रोधश्चापि महाभागनान्यथामेकदाचन
तस्माद्धमेनं शक्नोमिशापकर्तुं नृपान्यथा । यस्तेसमुद्यत शापोद्वितीय'स निवर्तित
इत्युक्तचन्न त वाम्मादायसपितातत । जगामस्वाश्रमसोऽपिपृषध्र शूद्रतामगात्

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेपृषध्रोपाख्याने द्वादशाधिकशततमोऽध्याय ॥ ११२ ॥

त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः

नाभागचरित्रवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

कारूषा क्षत्रिया शूरा करूषस्याभवन् सुता ।
ते तु सप्तशता धीरास्तेभ्यश्चाभ्ये सहस्रश ॥ १ ॥

दिष्टपुत्रस्तु नाभाग स्थित प्रथमयौवने । ददर्श वैश्यतनयामतीव सुमनोहराम्
तस्या स हृष्टमात्राया मदनाक्षिप्तमानस । बभूव भूपतनयो नि श्वासाक्षेपतत्पर

तस्या स गत्वा जनक वव्रे ता वैश्यकन्यकाम् ।
ततोऽनङ्गपराधीनमनोवृत्ति नृपात्मजम् ॥ ४ ॥

तञ्चाह सपिता तस्या राजपुत्र कृताञ्जलि । विरूयस्तस्य पितुर्विप्रश्रयावनतंवच
भवन्तो भूभुजोभृत्यावयंच करप्रदायका । कथसम्बन्धमसमैरस्माभिरभिवाञ्छसि

राजपुत्र उवाच

साम्य मानुषदेहस्य काममोहादिभि कृतम् ।
तथापि काले तैरेव योज्यते मानुषं वपु ॥ ७ ॥
तथैव स्वोपकाराय जायन्ते तस्य तान्यपि ।
अन्यानि चान्ये जीवन्ति भिन्नजातिमता सताम् । ८ ॥

तथान्यान्यप्ययोग्यानि योग्यतां यान्ति कालतः।
योग्यान्ययोग्यतां यान्ति कालवश्या हि योग्यता ॥ ९ ॥
आप्याय्यते यच्छरीरमाहारादिभिरीप्सितैः।
कालं ज्ञात्वा तथा भुक्तं तदेव परिशिष्यते ॥ १० ॥

इत्थं ममैषाभिमतातनयादीयतां त्वया। अन्यथा मच्छरीरस्यविपत्तिरुपलक्ष्यते

वैश्य उवाच

परतन्त्रा वयं त्वञ्च परतन्त्रो महीभुजः। पित्रातेनाभ्यनुज्ञातस्त्वंगृहाणददाम्यहम्

राजपुत्र उवाच

प्रष्टव्याः सर्वकार्येषु गुरवो गुरुवर्तिभिः। नत्वीदृशेष्वकार्येषु गुरूणांवाक्यगोचरः
क मन्मथकथालापो गुरूणां श्रवणं कथम्। विरुद्धमेतदन्यत्र प्रष्टव्या गुरवो नृभिः

वैश्य उवाच

एवमेतत्स्मरालापस्तवायंपृच्छतोगुरुम्। अहंपृच्छामिनालापोममकामकथाश्रयः

मार्कण्डेय उवाच

इत्युक्तःसोऽभवन्मौनीराजपुत्रःसचापितत्। तत्पित्रे सर्वमाचष्टराजपुत्रस्ययन्मतम्

ततस्तस्य पिता विप्रानृचीकादीन् द्विजोत्तमान्।
प्रवेश्य राजपुत्रञ्च यथाख्यातं न्यवेदयत् ॥ १७ ॥

निवेद्यच ततःप्राह मुनीनेवं व्यवस्थितम्। यत्कर्तव्यं तदादेष्टुमर्हन्तिद्विजसत्तमाः

ऋषय ऊचुः

राजपुत्रानुरागस्ते यद्यस्यां वैश्यसन्ततौ। तदस्तुधर्मएवैष किन्तु न्यायक्रमेण सः
मूर्द्धाभिषिक्ततनया पाणिग्राहोऽभवत्पुरा। भवत्वनन्तरञ्चेयं तवभार्याभविष्यति
एवं न दोषोभवतितथेमामुपभुञ्जतः। अन्यथाऽस्यैतितेजातिरुत्कृष्टाबालिकां हरन्

मार्कण्डेय उवाच

इत्युक्तस्तदपास्यैव वचस्तेषां महात्मनाम्।
चिन्तिष्कम्य गृहीत्वा तामगतासिरधावर्तीन ॥ २२ ॥

राक्षसेनविवाहेनमयावैश्यसुताहृता । यस्य सामर्थ्यमत्रास्तिसएतामोचयत्विति
ततः स वैश्यस्ता दृष्टापुत्रींतातनया द्रुतम् । त्राहीतिपितरन्तस्यप्रययौशरणद्विज !
ततस्तस्यपितावृद्ध आदिदेश बलं महत् । हन्यतां हन्यतादुष्टो नाभागोधर्मदूषक
ततस्तयुयुधे सैन्यनेन भूभृत्सुतेन वै । हतञ्चतेन तदाक्षेण तत्पाचुर्य्येण पातितम्
स श्रुत्वा निहतंसैन्यं राजपुत्रेणभूपतिः । स्वयमेवययौयोद्धुं स्वसैन्यपरिवारितः
ततोयुद्धमभूत्तस्य भूभुजस्स्वसुतेन यत् । राजपुत्रेणशस्त्रास्त्रैस्तत्रातिशयितः पिता
ततोऽन्तरीक्षादागत्य परिव्राट् सहसा मुनिः ।
प्रयुवाच महीपालं विरमस्वेति सयुगात् ॥ २९ ॥
त्वत्पुत्रस्य महाभाग ! विधर्मोऽय महात्मन ।
तथापि वैश्येन सह न युद्धं धर्मवन्नृप ! ॥ ३० ॥
ब्राह्मणो ब्राह्मणीपूर्वं कुर्वन्दारपरिग्रहम् । ब्राह्मण्यात्मर्वंवर्णेषु महानिमुपगच्छति
तथैवक्षत्रियसुता क्षत्रिय पूर्वमुद्वहन् । इतरे च ततो राजश्च्यवन्ते न स्वधर्मत ॥
पूर्वं वैश्यस्तथा वैश्या पश्चात् शूद्रकुलोद्भवाम् ।
न हीयते वैश्यकुलात्तथ न्याय क्रमोदित ॥ ३३ ॥
ब्राह्मणा क्षत्रियावैश्या सवर्णां पाणिसङ्ग्रहम् ।
अकृत्वान्यतरापाणे पतन्ति नृप ! सङ्ग्रहात् ॥ ३४ ॥
यस्या यस्या हि हीनाया कुरुते पाणिसङ्ग्रहम् ।
अकृत्वा वर्णसयोग सोऽपि तद्वस्तुमाप्नुयात् ॥ ३५ ॥
सोऽय वैश्यत्वमापन्नस्तव पुत्र स मन्दधी ।
नास्याधिकारो युद्धाय क्षत्रियेण त्वया सह ॥ ३६ ॥
वयमेतत्ननातीम कारणं नृपनन्दन ! । यथाभविष्यतीदञ्च निवर्त्त रणकर्मत ॥३७॥
इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे नाभागचरित्रवर्णनं नाम
त्रयोदशाधिकशततमोऽध्याय ॥ ११३ ॥

चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः

नाभागचरितवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

निवृत्तोऽसौततोभूपःसंग्रामात्स्वसुतेनवै । उपयेमेच तां वैश्यतनयांसोऽपितत्सुतः

ततः स वैश्यतां प्राप्तः समुत्पत्याह पार्थिवम् ।
भूपाल ! यन्मया कार्य्यं तत् समादिश्यतां मम ॥ २ ॥

राजोवाच

धर्माधिकरणेयुक्ता बाभ्रव्याद्यास्तपस्विनः । यदस्यकर्म धर्माय तद्वदन्तु तथा चर

मार्कण्डेय उवाच

ततस्ते मुनयस्तस्य पाशुपाल्यंतथाकृषिम् । वाणिज्यञ्चपरंधर्ममाचचक्षुःसभासदः

तथाचचक्रेससुतस्तस्य राज्ञो यथोदितम् । तैर्धर्मवादिभिर्धर्मं च्युतस्यनिजधर्मतः

तस्य पुत्रस्ततो जातो नाम्ना ख्यातो भलन्दनः ।
स मात्रा प्रहितोऽगच्छद्गोपालो भव पुत्रक ! ॥ ६ ॥
मात्रा तथा नियुक्तोऽथ प्रणिपत्य स्वमातरम् ।
राजर्षिमगमन्नीपं हिमवत्पर्वताश्रयम् ॥ ७ ॥

तं समेत्य स जग्राह तस्यपादौ यथाविधि । प्रणिपत्याहचैवैनंराजर्षिं सभलन्दनः

आदिष्टो भगवन्मात्रा गोपालस्त्वं भवेति वै ।
मया च पालनीया क्ष्मा तस्या स्वीकरणं कथम् ॥ ९ ॥
मया हि गौः पालनीया सा यदा स्वीकृता भवेत् ।
आक्रान्ता बलवद्भिः सा दायादैः पृथिवी मम ॥ १० ॥
तां यथा प्राप्नुयां पृथ्वीं त्वत्प्रसादादहं विभो ! ।
तथाऽऽदिश करिष्यामि तवाज्ञां प्रणतोऽस्मि ते ॥ ११ ॥

मार्कण्डेय उवाच

ततः सर्वांगो राजर्षिस्तस्मै निवशयत । भलन्दाय ददौब्रह्मन्नस्त्रग्राम महामते॥

प्राप्तास्त्रश्चिय स ययौ पितृ यतनयान् द्विज ।

वसुरातादिकान् पुत्रानादिष्ट स महामना ॥ १३ ॥

अथाधन स राज्यार्द्धं पितृपैतामहोचितम् ।

स चोचुर्वैश्यपुत्रस्त्व क्व भोक्ष्यसि मेदिनाम् ॥ १४ ॥

ततस्तेषु द्वममभवद्भलन्दस्या मवशजै । वसुरातादिभि युद्धे हतास्त्रस्यास्त्रवर्षिभि

स जित्वा तानशेषांस्तु शस्त्रविक्षतमौलिकान् ।

जहार पृथिवीं तेषा धर्मयुद्धेन धर्मवित् ॥ १६ ॥

स निर्जितारि सकला पृथ्वीं राज्य तथा पितु ।

निवेदयामासततस्तं पिताअगृहेनच । प्रत्युवाच च त पुत्र भार्यायाः पुरतस्तदा

नाभाग उवाच

भलन्द राज्यमेतत्त क्रियता पूर्वजै कृतम् ॥ १८ ॥

राजोवाच

अहतहतयाप्राप्य नामामध्ययुन पुरा । वैश्यता नुपुरस्त्वस्य तथैवाहाकर पितु

कृत्वाऽप्रीति पितुरहं वैश्यस्य यापरिग्रहात् ।

न पुण्यलोकभाग्राना यावदाहृतसम्प्लुव ॥ २० ॥

उत्पङ्क्ष्याज्ञा पुनस्तस्य पालयामि महीं यदि ।

नास्ति मोक्षस्ततो नूनं मम कल्पशतैरपि ॥ २१ ॥

मघापियुक्तत्वद्वाहुर्निर्जितममवानिन । राज्यभोक्तुमर्नीहस्यद्युपस्येहस्यचित्

राज्यं कुरु स्वय यावन्नायादेभ्यो विमुञ्च वा ।

ममाज्ञापालनं शस्त पितुन क्षितिपालनम् ॥ २३ ॥

मार्कण्डेय उवाच

ततः प्रहस्य तद्भार्या सुप्रभा नाम भामिनी ।

प्रत्युवाच पतिं भूप ! गृह्यतां राज्यमूर्जितम् ॥ २४ ॥

नत्वंवैश्योनचैवाहंजातावैश्यकुलेनृप !। क्षत्रियस्त्वं तथैवाहंक्षत्रियाणां कुलोद्भवा

पूर्वमासीन्महीपालःसुदेव इतिविश्रुतः । तस्याभूच्चसखाराज्ञोधूम्राश्वस्य सुतोनलः

स तेन सख्या संहितो जगामाऽऽश्रवनं वनम् ।

पत्नीभिः स समं रन्तुं माधवे मासि पार्थिव ! ॥ २७ ॥

ततः पानान्यनेकानि भक्ष्याणि बुभुजे तथा ।

भार्य्याभिः सहितस्ताभिस्तेन सख्या समन्वितः ॥ २८ ॥

ततःपुष्करिणीतीरे ददर्शातिमनोरमाम् । पत्नींच्यवनपुत्रस्य प्रमतेःपार्थिवात्मजाम्

सखातस्यनलोमत्तोजगृहे,ताञ्चदुर्मतिः । पश्यतस्तस्यराज्ञश्चत्रातत्रातेतिवादिनीम्

आक्रन्दितं निशम्यैव स तस्याः प्रमतिः पतिः ।

आजगाम त्वरायुक्तः किमेतदिति वै वदन् ॥ ३१ ॥

ततो ददर्श राजानं सुदेवं तत्र संस्थितम् । गृहीताञ्चतथा पत्नीं नलेन सुदुरात्मना

ततःसुदेवंप्रमतिःप्राहायंशाम्यतामिति । त्वञ्चशास्ताभवान्राजादुष्टश्चायंनलोनृप !

मार्कण्डेय उवाच

तस्यार्त्तस्य वचः श्रुत्वा सुदेवो नलगौरवात् ।

प्राह वैश्योऽस्मि गच्छाऽन्यं क्षत्रियं त्राणकारणात् ॥ ३४ ॥

ततः स प्रमतिः क्रुद्धस्तेजसानिर्दहन्निव ।

प्रत्युवाचाथ राजानं वैश्योऽस्मीत्यभिभाषिणम् ॥ ३५ ॥

प्रमतिरुवाच

एवमस्तुभवान् वैश्यक्षत्रियःक्षतरक्षणात् । क्षत्रियैर्धार्य्यतेशस्त्रंनार्त्तशब्दोभवेदिति

स त्वं न क्षत्रियो भावी वैश्य एव कुलाधमः ॥ ३६ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे नाभागचरितवर्णनंनाम

चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११४ ॥

पञ्चदशाधिकशततमोऽध्याय

भाभागस्यवैश्यनिराकरणेकारणनिरूपणवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

तस्मै दत्त्वा तत्र शापं नल क्रुद्धोऽब्रवीद् द्विज ! ।
प्रमतिर्भार्गव कोपात् त्रैलोक्य निर्दहन्निव ॥ १ ॥
मदोन्मत्तो यदा भार्या भवानत्र ममाश्रमे ।
बलाद्गृह्णासि भस्म त्वं तस्माद्व्रजतु मा चिरम् ॥ २ ॥
तेनोदाहृतमात्रे च वाक्ये तस्मिन् तदा नर ।
देहजेनाग्निना सद्यो भस्मपुञ्जस्तदाऽभवत् ॥ ३ ॥
दृष्ट्वा प्रभावं तत्तस्य सुदेवो विस्मयान्वित । प्रणामनम्र प्राहेद क्षम्यतां क्षम्यतामिति
यदुक्तवांस्त्वं भगवन् ! सुरापानमदाकुलम् ।
तत् क्षम्यतां प्रसीद त्वं शापोऽयं विनिवर्त्यताम् ॥ ७ ॥
एवं प्रसादितस्तेन प्रमति प्राह भार्गव । गतकोपो नरे तस्मिन् भावहीनेन चेतसा
नान्यथाभावि मद्वाक्यं यन्मया समुदीरितम् ।
तथापि ते करिष्यामि प्रसन्नोऽनुग्रहं परम् ॥ ७ ॥
भविता वैश्यजातीयो भवान्नास्त्यत्र संशय ।
भविता क्षत्रियो वैश्यस्तस्मिन्नेवाशु जन्मनि ॥ ८ ॥
ग्रहीष्यति बलात् कन्यां यदा ते क्षत्रसम्भव ।
तदा त्वं क्षत्रियो वैश्य ! स्वगृहीतो भविष्यति ॥ ९ ॥
एव स वैश्यो भूपाल ! सुदेवोऽस्मत्पिताऽभवत् ।
अहञ्च या महाभाग ! तत्सर्वं श्रूयतां त्वया ॥ १० ॥
सुरथोनामराजर्षि प्रागासीद्गन्धमादने । तपस्वीनियताहारस्त्यक्तसङ्गोवनाश्रय

ततःश्येनमुखभ्रष्टां दृष्ट्वैकां शारिकाम्भुवि ।
कृपाऽभूज्जनिता मूर्च्छा तथा तस्य महात्मनः ॥ १२ ॥
ततो मूर्च्छावसानेऽहं तस्योत्पन्नाशरीरतः । समांदृष्ट्वाव्रजग्राहक्लिद्यमानेनचेतसा
यस्मात्कृपाभिभूतस्य मम जातेयमात्मजा ।
तस्मात्कृपावतीनाम्ना भविष्यत्याह स प्रभो ! ॥ १४ ॥
ततोऽहमाश्रमेतस्य वर्धमाना दिवानिशम् ।
सखीभिः सह तुल्याभिर्विचरामि वनानि च ॥ १५ ॥
ततोमुनेरगस्त्यस्य भ्राताऽगस्त्य इति श्रुतः ।
स चिन्वन् कानने वन्यं सखीभिः कोपितोऽशपत् ॥ १६ ॥
नापराधं कृतवती तवाहं द्विजसत्तम !। अन्यासामपराधेन किमर्थं शप्तवानसि

ऋषिरुवाच

दुष्टतां दुष्टसंसर्गाददुष्टमपिगच्छति । सुराबिन्दुनिपातेन पञ्चगव्यघटी यथा ॥१८
प्रणिपत्य न दुष्टास्मि यत्त्वयाहं प्रसादितः ।
तस्मादनुग्रहं बाले ! शृणुयात् ते करोम्यहम् ॥ १९ ॥
वैश्ययोनौ यदा जाता त्वं पुत्रं बोधयिष्यसि ।
राज्याय जातिस्मरतां तदा त्वं समवाप्स्यसि ॥ २० ॥
ततो भूयः क्षत्रजातिं प्राप्ता त्वं पतिना सह ।
दिव्यानवाप्स्यसे भोगान् गच्छ भीतिरपैतु ते ॥ २१ ॥
एवं शप्तास्मि राजेन्द्र तेन पूर्वं महर्षिणा । पिताचममेपूर्वमेवं शप्तः प्रमतिनाऽभवत्
एवं वैश्यो न राजंस्त्वं न च वैश्यः पिता मम ।
न त्वं हि मय्यदुष्टायामदुष्टो दुष्यसे कथम् ॥ २३ ॥
इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे नाभागस्यवैश्यजातित्त्वनिराकरणवर्णनंनाम-
पञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११५ ॥

एकदा तु वनं यातो मृगयां स विदूरथः। ददर्श गर्तं सुमहद्भूमेर्मुखमिवोद्गतम्॥
तं दृष्ट्वाचिन्तयामासकिमेतदिति भैरवम्। पातालविवरंमन्ये नैतद्भूमेश्चिरन्तनम्
चिन्तयन्निति तत्रासौ ददर्श विजने वने। ब्राह्मणं सुव्रतं नाम तपस्विनमुपागतम्

स तं पप्रच्छ च नृपः किमेतदिति विस्मितः।
अतिगम्भीरमवनेर्दर्शितान्तर्गतोदरम्॥ १४॥

ऋषिरुवाच

किन्न वेत्सि महीपाल! वागर्थस्त्वं हि मे मतः।
ज्ञेयं सर्वं नरेन्द्रेण वर्तते यन्महीतले॥ १५॥
दानवः सुमहावीर्यो वसत्युग्रो रसातले।
स जृम्भयति यत्पृथ्वीं कुजृम्भः प्रोच्यते ततः॥ १६॥

क्रियते तेन यत्किञ्चिद्भूतं भूतं महीतले। त्रिदिवे वा नरपते तं कथं वेत्तिनोभवान्

सुनन्दं नाम मुषलं त्वष्ट्रा यन्निर्मितं पुरा।
तज्जहार स दुष्टात्मा तेन हन्ति रणे रिपून्॥ १८॥
पातालान्तर्गतस्तेन भिनत्ति वसुधामिमाम्।
ततोऽसुराणां सर्वेषां द्वाराणि कुरुतेऽसुरः॥ १६॥

तेन भिन्नात्रवसुधासुनन्दमुषलायुधा। भोक्ष्यतेवसुधामेतां तमजित्वाकथंभवान्

यज्ञान् विध्वंसयत्युग्रो देवानामुपरोधकः।
आप्याययति दैतेयान् स बली मुषलायुधः॥ २१॥

यद्यरिं पातयस्येनं पातालान्तरगोचरम्। ततः समस्तवसुधापतिस्त्वं परमेश्वरः
मुषलं तस्य बलिनः सौनन्दं प्रोच्यतेजनैः। तथाबलाबलञ्च च तंवदन्तिविचक्षणाः

तत्तु निर्वीर्यतां याति संस्पृष्टं योषिता नृप!।
तस्मिन्दिने द्वितीयेऽह्नि वीर्यवत्तदुदीर्यते॥ २४॥

न स वेत्ति दुराचारःप्रभावंमुषलस्यतत्। योषित्कराग्रसंस्पर्शदोषंवीर्यविशातनम्
एवंतस्य बलं भूप दानवस्य दुरात्मनः। मुषलस्य स ते प्रोक्तं यदुक्तं तत् समाचर

मानस्त्रीनृपसुत पुरस्य पृथिवीपतेः । दृष्टेन महता निर्भिन्नः किं मयान्यथा
स्युक्तया ॥ गते तस्मिन् पुरे गत्वा महीपतिः ।
मन्यमानस्तथा पुरमध्ये तु मन्दिरम् ॥ २८ ॥
तथाप्युत्पन्नेन तत् कथयामास मन्दिरम् । पुरस्य प्रासादस्तु पर्यन्ततलमीरण
संलग्न विपमास्तु मणिविभिन्नेन भूभृता । तस्याभ्यन्तर्निर्गत्यानुधावन्सुद्पर्णी
तत्र पतितवाहे तु तां कन्यां ददर्शान्तिकाम् ।
उदारोऽयताहृदयस्य कुजन्त स मार्गतनुताम् ॥ ३१ ॥
तत्तु त्यामनर्हाय स्वीयांसुलेन । पुत्रागुराज स्वस्ति तत्कुलपतयोऽपि
निर्विकल्पात्मानादृते स्पर्शनेन तथा स्थानम् ।
स दृष्ट्वा योऽसावर्णा सुखसन्तानवत् तुष्टमंसि ॥ ३३ ॥
मार्कण्डेय उवाच
तमात्मनो तत्पुनीतान्तनपांनस्यतनुर्णी । सुपुर्वानेतु स्वाऽन्यमांस्त्रीयानिपर्जीश्री
तत्र पतितविनिर्जानिकृत्यस्वकापौ । वाङ्गीयाविवर्णं पुनर्निश्रामानीम् सुराम्यम्
सतो मायावत्यस्या तेन दैन्देन मानसैः । तत्पुत्री स्त्रे कन्यां विदन्यां तेनविश्री ॥
तत्तु स्या स महाराज प्राहेदं सर्वेणैविवान ।
वक्तुं न कामार्जितुंशो मृदिवसन ॥ ३४ ॥
तस्मात् किमन्य देवंध योऽयविन्यस्य मे गुनाम् ।
तत्त्वदं तस्मान्नाद्यापि शालिवस्यमसोऽयताम् ॥ ३८ ॥
इत्येव योगराज्ञरे स राज्ञः स्मनुं न तत । विलासः पुत्रसमावमवर्योऽशान दे पुरे
ततः सुभावनन्दनमाक्षरवनुमोऽस्मिन् । मार्गेऽपवात चरमान तवान वरोऽपिवंशपुर
स पालवार्जिनपदैश मन्त्रार्णिकसम्भवम् । विनताचरणोद्भवा विपुर्विवरं नुम्भव
मत्वात्तथापु मन्त्रेश्व नवरं मत्पताति मे । तदेव मेत्रया स्या मां देवं नमवान् मे
मार्कण्डेय उवाच
स मं सुरा पतिष्यति विनयवन्तु सुपतामह ।

गम्यतामिति संसिद्धयै वत्सेत्याह स पार्थिवः ॥ ४३ ॥
स्थाने स्थास्यति मे वत्सो यथैवं कुरुते विधिम्
वत्सैतत्क्रियतामाशु यथोत्साहि मनस्तव ॥ ४४ ॥

मार्कण्डेय उवाच

ततः सखड्गः सधनुर्बद्धगोधाङ्गुलित्रवान्। जगामर्वागः पातालं तेनगर्त्तेन सत्वरः
ततोऽथास्यनमत्युग्रंत्वधरोपार्थिवात्मजः। येनपातालमखिलमार्गीदापूरितान्तरम्
ततो ज्याघ्यनमाकर्ण्य कुजृम्भोदानवेश्वरः।
आजगामाऽतिकोपेन स्वसैन्यपरिवारितः ॥ ४७ ॥
ततो युद्धमभूत्तस्य तेन पार्थिवसूनुना। ससैन्यस्य ससैन्येन बलिनो बलशालिना
दिनानि त्रीणि स यदा क्षोभितस्तेन दानवः।
ततः कोपपरीतात्मा मुसलायाऽभ्यधावत ॥ ४९ ॥
गन्धैर्माल्यैस्तथा धूपैः पूज्यमानः स तिष्ठति।
अन्तःपुरे महाभाग! प्रजापतिविनिर्मितः ॥ ५० ॥
ततो विज्ञानमुसलप्रभावा सा मुदावती। पस्पर्शं मुसलश्रेष्ठमतिनम्रशिरोऽधरा ॥
पुनर्यावत् स गृह्णातिमुसलंतंमहासुरः। तावन्नावन्दनव्याजात्पस्पर्शानेकशःशुभा
ततः स गत्वा युयुधे मुसलेनासुरेश्वरः। व्यर्थामुसलपातास्ते सञ्जग्मुस्तेषु शत्रुषु
परमास्त्रे तु निर्वीर्ये सौनन्दे मुसले मुने !!
अस्त्रैः शस्त्रैश्च दैत्येयः सोऽयुध्यत रणेऽरिणा ॥ ५४ ॥
शस्त्रास्त्रैर्नसमस्तस्यराजपुत्रस्यसोऽसुरः। मुसलेन बलन्तस्य तद्युद्धयानिराकृतम्
ततः पराजित्य स भूपसूनुरस्त्राणि शस्त्राणि च दानवस्य।
चकार सद्यो विरथं ततश्च सचर्मखड्गः पुनरप्यधावत् ॥ ५६ ॥
तमापतन्तं रभसाऽभ्युदीर्णं विस्पष्टकोपं त्रिदशेन्द्रशत्रुम्।
शस्त्रेण वह्नेर्भुवि राजपुत्रो जघान कालानलसप्रभेन ॥ ५७ ॥
स पावकास्त्रेण हृदि क्षतो भृशं तत्याज देहं त्रिदशारिरात्मजः ॥

बभूव सद्यश्च महोरगाणां रसातलान्तेषु महानयोत्सव ॥ ५८ ॥
ततोऽपतत् पुष्पवृष्टिर्महीपालसुतोपरि । जगुर्गन्धर्वपतयो देववाद्यानिसस्वनु
स चापि राजपुत्रस्त हत्वा तौ नृपते सुतौ ।
मोचयामास तन्वङ्गीं तांश्च कन्यां मुदावतीम् ॥ ६० ॥
तत्रापि मुषले तस्मिन् कुम्भे विनिपातिते ।
अत्राह नागाधिपतिरनन्त शेषसञ्ज्ञित ॥ ६१ ॥
तस्याश्च परितुष्टोऽस्मी वीर सर्वोरगेश्वर ।
मुदावत्यामुदाध्यातमनोवृत्तिस्तपोधन ॥ ६२ ॥
सुनन्दमुषलस्पर्शं यश्चकार पुन पुन । योषित्स्वत स्पर्शप्रभावश्चातिशोभना
मुदावत्यास्ततो नाम नागराजस्तदाकरोत् ।
सुनन्दामितिमानन्दं सौनन्दगुणजं द्विज ! ॥ ६४ ॥
स चापि राजपुत्रस्तां मातृभ्यां सहितां पितु ।
समीपमानिनायाशु प्रणिपत्याह चैव तम् ॥ ६५ ॥
आनीतौ तनयौ तात! तथैव च मुदावती ।
तवाज्ञया मयाऽन्यथत् कर्त्तव्य तत् समादिश ॥ ६६ ॥

मार्कण्डेय उवाच

तत प्रहर्षपूर्णहृदय स महीपति ।
साधु साध्विति यथाहोच्चैवत्स वत्सेति शोभनम् ॥ ६७ ॥
सभाजितोऽस्मि त्रिदशैवत्साह कारणैस्त्रिभि ।
त्वं जामाता च यत्प्राप्तो यच्चारिर्विनिपातित ॥ ६८ ॥
आगतान्यश्वतान्यत्र यच्चाप यानि मे पुन ।
तद्गृहाणाद्य शस्तेऽह्नि पाणिमस्या मयोदितम् ॥ ६९ ॥
त्वं राजपुत्र चार्वङ्ग्या कन्यायाः दुहितुर्मम ।
मद्वाधन्या मुदा युक्त स यथाकर्थं कुरुष्व माम् ॥ ७० ॥

राजपुत्र उवाच

तातस्याज्ञामयाकार्यायद्ब्रवीषिकरोमि तत्।त्वमेवतातजानीषेनैवत्राविकृतावयम्

मार्कण्डेय उवाच

ततस्तयोः स राजेन्द्रश्चक्रे वैवाहिकं क्रमम् । मुदावत्याश्च दुहितुर्भलन्दनसुतस्यवै
ततः स ह तयारेमेवत्सप्रीर्नवयौव नः । रमणीयेषु देशेषुप्रासादशिखरेषु च ॥ ७२ ॥

कालेन गच्छता वृद्धः पिता तस्य भलन्दनः ।
वनं जगाम वत्सप्रीः स बभूव महीपतिः ॥ ७४ ॥

इयाज यज्ञान् सततंप्रजाधर्मेणपालयन् । पुत्रवत्पाल्यमानास्तुप्रजास्तेनमहात्मना
वव्रृधुर्विषये तस्य न चाभूद्वर्णसङ्करः । न दस्युव्यालदुर्वृत्तभयमासीच्च कस्यचित्
नोपसर्गभयञ्चैव तस्मिन् शासति भूपतौ ॥ ७६ ॥

इतिश्रीमार्कण्डेयपुराणेभलन्दवत्सप्रीचरित्रंनामषोडशाधिक-
शततमोऽध्यायः ॥ ११६ ॥

सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः

खनित्रचरित्रवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

तस्य तस्यां सुनन्दायां पुत्राद्वादशजज्ञिरे । प्रांशुःप्रवीरःशूरश्चसुचक्रो विक्रमःक्रमः
बली बलाकश्चण्डश्च प्रचण्डश्च सुविक्रमः ।
स्वरूपश्च महाभागाः सर्वे सङ्ग्रामजित्तमाः ॥ २ ॥

तेषां ज्येष्ठो महावीर्यः प्रांशुरासीन्नराधिपः । इतरेभृत्यवत्तस्यबभूवुर्वशवर्त्तिनः ॥
तस्य यज्ञे द्विजत्यक्तैरनेकैर्द्रव्यराशिभिः । न्यूनवर्णविसृष्टैश्च सत्यनामा वसुन्धरा
सम्यक् पालयतस्तस्य प्रजाःपत्रानिवौरसान् ।

योऽभूत्[illegible] नैव निष्पादितास्तु ये ॥ ९ ॥
[illegible] । [illegible]
[illegible] पुत्रोऽभूत् [illegible] । [illegible]
[illegible] । [illegible]
[illegible] । [illegible]
[illegible] । [illegible]

तेषां खनित्रो राजाभूत् प्रख्यातो निजविक्रमैः ।
स शान्तः सत्यवाक् शूरः सर्वभूतहिते रतः ॥ १० ॥
स्वधर्माभिरतो नित्यं वृद्धसेवी बहुश्रुतः ।
वाग्मी विनयसम्पन्नः ख्यातोऽप्यविकत्थनः ॥ ११ ॥

[illegible] लोकहिते नित्यमुवाचैवं [illegible] । नन्दन्तु सर्वभूतानि स्निह्यन्तु विजनेष्वपि
स्वस्त्यस्तु सर्वभूतेषु निरातङ्कानि सन्तु च ।
मा व्याधिरस्तु भूतानामाधयो न भवन्तु च ॥ १२ ॥
मैत्रीमशेषभूतानि पुष्यन्तु सकले जने । शिवमस्तु द्विजातीनां प्रीतिरस्तु परस्पर
समृद्धिः सर्ववर्णानां सिद्धिरस्तु च कर्मणाम् ।
हे लोकाः सर्वभूतेषु शिवा वोऽस्तु सदा मतिः ॥ १३ ॥
यथात्मनि तथा पुत्रे हितमिच्छथ सर्वदा । तथा समस्तभूतेषु वर्तध्वं हितबुद्धय
एतद्वो हितमत्यन्तं को वा कस्यापराध्यते ।
यत् करोत्यहितं किञ्चित् कस्यचिन्मूढमानसः ॥ १४ ॥
तं समभ्येति तन्नूनं कर्तृगामि फलं यतः । इति मत्वा समस्तेषु भो लोकाः कृतबुद्ध
सन्तु मा लौकिकं पापं लोकाः प्राप्स्यथ वै बुधाः ।
यो मेऽद्य स्निह्यते तस्य शिवमस्तु सदा भुवि ॥ १५ ॥
यश्च मां द्वेष्टि लोकेऽस्मिन् सोऽपि भद्राणि पश्यतु ।
एवं स्वरूपः पुत्रोऽभूत् खनित्रस्तस्य भूपतेः ॥ १६ ॥
समस्तगुणसम्पन्नः श्रीमान् राजीवलोचनः । तेन भ्रातर आत्मीया पृथग्राज्येषु योजिता-

स्वयञ्चपृथिवीमेतांवुभुंजेसागराम्वराम् । प्राच्यांतेनकृतःशौरिर्दक्षिणायामुदावसुः
दिशि प्रतीच्यां मुनयउत्तरस्यांमहारथः । तेषांतस्यचभूपस्यपृथग्गोत्राःपुरोहिताः
वभूवुर्मुनयश्चैव मन्त्रिवंशक्रमागताः । शौरेरत्रिकुलोद्भूतः सुहोत्रो नाम वै द्विजाः
उदावसोः कुशावर्त्तोगौतमान्वयजोऽभवत् । काश्यपःप्रमतिर्नामसुनयस्यपुरोहितः

महारथस्य वाशिष्ठः पुरोधाऽभून्महीभृतः ।
वुभुजुस्ते स्वराज्यानि चत्वारोऽपि नराधिपाः ॥ २६ ॥

खनित्रश्चाधिपस्तेषामशेषवसुधाधिपः । तेषु भ्रातृष्वशेषेषु खनित्रः स महीपतिः

प्रजासु च समस्तासु पुत्रेष्विव सदा हितः ।
एकदा मन्त्रिणा शौरिः स प्रोक्तो विश्ववेदिना ॥ २८ ॥
विविक्ते पृथिवीपाल! किञ्चिद्वक्तव्यमस्ति नः ।
यस्येयं पृथिवी कृत्स्ना यस्य भूपावशानुगाः ॥ २९ ॥

सराजातस्यपुत्रश्चतत्पौत्राश्चान्वयस्ततः । इतरेभ्रातरस्तस्यप्राक्कल्पविषयाधिपाः

तत्पुत्रश्चाल्पकस्तस्मात् तत् पौत्राश्चाल्पकल्पिकाः ।
कालेन ह्रासमासाद्य पुरुषात् पुरुषान्तरम् ॥ ३१ ॥

कृष्योपजीविनोभूप!भवन्तीति तदन्वयाः । नोद्धारं कुरुतेभ्राताभ्रातृस्नेहवलार्पणः
स्नेहकः पृथिवीपाल! परयोर्भ्रातृपुत्रयोः । तत्पुत्रयोःपरतरा मतिर्भवति पार्थिव!

तत्पुत्रः केन कार्य्येण प्रीतियुक्तो भविष्यति ।
अथवा येन तेनैव सन्तोषं कुरुते नृपः ॥ ३४ ॥

क्रियते तत्किमर्थन्तुभूपैर्मन्त्रपरिग्रहः । भुज्यतेसकलंराज्यंमया ते मन्त्रिणा सता
तत् किंसुखाधारयसे सन्तोषं कुरुतेयदि । कार्यनिष्पादकंराज्यंकरणंकर्त्तुरिष्यते

राज्यलब्धुश्च ते कार्य्यं त्वं कर्त्ता करणं वयम् ।

सोऽस्माभिः करणैराज्यं पितृपैतामहं कुरु । फलप्रदाभविष्यामःपरलोकेनतेवयम्

राजोवाच

ज्येष्ठो राजा महीपाल! वयन्तस्यानुजा यतः ।

ततः स भुङ्क्ते पृथिवीं वयञ्चाल्पवसुन्धराम् ॥३८॥
यदन्तु भ्रातर पञ्चपृथ्वीचैकामहामते ॥ अतोऽस्या-पृथगैश्वर्य कर्तुमर्हन्नेभविष्यति

विश्ववेदुवाच

एवमेतद्भ्रातस्तत्र यथैका वसुधानृप । तात्वमेवाभिषेक्तव्यज्येष्ठशास्तुमर्हभवा
सर्वाधिपत्यः सर्वेभ्यो भवत्वमखिलेश्वरः । यतस्त्वेवयथाऽहन्तेतेषामाहितमन्विच

राजोवाच

ज्येष्ठो राजा यथा प्रीत्या भजतेऽस्मान् सुतानिव ।
कथ तस्य करिष्यामि ममत्वं जगतीगतम् ॥ ४२ ॥

विश्ववेदुवाच

राज्यस्थित पूजयेथाज्येष्ठोभूपाहं गैर्नयैः । कनिष्ठज्येष्ठताकेयंराज्यप्रार्थयतानृपा

मार्कण्डेय उवाच

तथेति च प्रतिज्ञाते भूभुजा तेनसत्तम! । विश्ववेदीततोमन्त्रीतद्भ्रातनयद्धराम्
तेषां पुरोहिताश्चैव आत्मनः शान्तिकादिषु ।
नियोजयामास ततः खनित्रस्याभिचारके ॥ ४९ ॥
बिभेद तस्यनिभृतान् सामदानादिभिस्तथा । सर्वेऽपरमोद्योगंनिजद्वणप्रभाव
आभिचारिकमन्युग्रमहन्यहनि कुर्वताम् । पुरोधसा चतुर्णाञ्च अभेकृत्याचतुष्टय
विकरालं महावक्त्रमतिभीषणदर्शनम् । समुद्यतमहाशूलं प्रभूतमतिदारुणम् ॥४८
ततस्ताद्यागतास्तत्र खनित्रो यत्र पार्थिवः । निरस्ताश्चाप्यदुष्टस्यतस्यपुण्यचयेनत
कृत्याचतुष्टयन्तेषु निपपात दुरात्मसु । पुरोहितेषु भूपानां तथा वै विश्ववेदिनि
ततो निहन्त्या निर्दग्धाः कृत्यया वै पुरोहिताः ।
विश्ववेदी तथा मन्त्री स शरीरेर्हुताशनेन्त्रदः ॥ ५१ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे खनित्रचरित्रवर्णनंनाम
सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११७ ॥

अष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः

खनित्रचरित्रवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

ततःसमस्तलोकस्य विस्मयः सोऽभवन्महान् ।
यदेककाले नेशुस्ते पृथक् पुरनिवासिनः ॥ १ ॥
ततः शुश्राव निधनं यातान् भ्रातृपुरोहितान् ।
मन्त्रिणञ्च तथा भ्रातुर्दग्धं तं विश्ववेदिनम् ॥ २ ॥
किमेतदिति सोऽतीव विस्मितो मुनिसत्तम !।
खनित्रोऽभून्महाराजो नाजानात् तच्च कारणम् ॥ ३ ॥
ततोवसिष्ठंपप्रच्छ सराजागृहमागतम् । यत्कारणंविनेशुस्तेभ्रातृमन्त्रिपुरोहिताः
तेन पृष्टस्तदाग्राहयथावृत्तंमहामुनिः । यच्छौरिमन्त्रिणाप्रोक्तं यच्च शौरिरुवाचतत्
यथाचानुष्ठितन्तेन भ्रातृणां भेदकारिवै । मन्त्रिणातेनदुष्टेन यच्चक्रुश्च पुरोहिताः ॥
यन्निमित्तं विनेशुस्ते अपापस्यापकारिणः ।
पुरोहितास्तस्य राज्ञः शत्रावपि दयापराः ॥ ७ ॥
सतच्छ्रुत्वा ततो राजा हा हतोऽस्मीति वै वदन् ।
निनिन्दात्मानमत्यर्थं वशिष्ठस्याग्रतो द्विज ! ॥ ८ ॥

राजोवाच

धिङ्मामपुण्यसंस्थानमल्पभाग्यमशोभनम् । दैवदोषकृतं पापं सर्वलोकविगर्हितम्
तन्निमित्तं विनष्टं यत्तद्ब्राह्मणचतुष्टयम् ।
मत्तः कोऽन्यः पापतरो भविष्यति पुमान् भुवि ॥ १० ॥
नाभविष्यं यदि पुमानहमत्र महीतले । ततस्तेन विनश्येयुर्मम भ्रातृपुरोहिताः ॥
धिग् राज्यं धिक् च मे जन्म भूभुजां महतां कुले ।

कारणत्वं गतो योऽहं विनाशस्य द्विजन्मनाम् ॥ १२ ॥
कुर्वन्तः स्वामिनोऽर्थं ते भ्रातृणां मम चाज्ञया ।
नाशं ययुर्न दुरात्मे कृतोऽहं नाशकारणे ॥ १३ ॥
किं करोमि क्व गच्छामि नान्यो मत्तो हि पापकृत् ।
पृथिव्यामस्ति हेतुत्वं द्विजनाशस्य यो गतः ॥ १४ ॥

इत्थमुद्विग्नहृदयः खनित्रः पृथिवीपतिः । वनं यियासुः पुत्रस्य क्षुपस्याभिषेचनम्

अभिषिच्य सुतं राज्ये क्षुपसंज्ञं महीपतिः ।
भार्याभिस्तिसृभिः सार्द्धं तपसे स वनं ययौ ॥ १५ ॥
तत्र गत्वा तपस्तेपे वानप्रस्थविधानवित् ।
शतानि त्रीणि वर्षाणां साग्राणि नृपसत्तम ॥ १७ ॥
तपसा क्षीणदेहस्तु राजवर्यो द्विजोत्तम ।
निगृह्य सर्वस्रोतांसि तत्याजाऽसून् वनेचरः ॥ १८ ॥
ततः पुण्यान् ययौ लोकान् सर्वकामदुहोऽक्षयान् ।
अश्वमेधादिभिर्यज्ञैर्व्याप्ता ये नराधिपैः ॥ १९ ॥
भार्याश्च तस्य ताश्चापि समस्तेनैव तत्यजुः ।
प्राणानवापुः सालोक्यं तेनैव सुमहात्मना ॥ २० ॥

एतत् खनित्रचरितं श्रुतं कल्मषनाशनम् । चरितञ्च महाभाग क्षुपस्यातो निशामय

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे खनित्रचरितवर्णनं नामाऽष्टादशाधिक
शततमोऽध्यायः ॥११८॥

एकोनविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

क्षुपनृपतिचरित्रेणसहविविंशचरित्रवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

खनित्रपुत्रस्तु प्राप्यराज्यंयथापिता। तथैवपालयामास प्रजा धर्मेण रञ्जयन्

स दानशीलो यष्टा च यज्ञानामवनीपतिः।
समः शत्रौ च मित्रे च व्यवहारादिवर्त्मनि ॥ २ ॥

कदास महीपालो निजस्थानगतोमुने!। सूतैरुक्तोयथापूर्वं क्षुपोराजातथाऽभवत्

ब्रह्मणस्तनयः पूर्वं क्षुपोऽभूत् पृथिवीपतिः।
यादृक् चरितमस्यासीत्तादृक् तस्यैव चेष्टितम् ॥ ४ ॥

राजोवाच

श्रोतुमिच्छामि चरितं क्षुपस्य सुमहात्मनः।
यदि तादृङ्मया शक्यं चेष्टितुं तत्करोम्यहम् ॥ ५ ॥

सूता ऊचुः

स चकाराकरान् भूप! राजा गोब्राह्मणान् पुरा।
षष्ठांशेन कृता चोर्व्यामिष्टिस्तेन महात्मना ॥ ६ ॥

राजोवाच

तेषां महात्मनां राज्ञां कोऽनुयास्यति मद्विधः।
तस्याप्युत्कृष्टचेष्टानां चेष्टासूद्यमवान् भवेत् ॥ ७ ॥
तत् श्रूयतां प्रतिज्ञा या साम्प्रतं क्रियते मया।
क्षुपस्यानुकरिष्यामि महाराजस्य चेष्टितम् ॥ ८ ॥
त्रींस्त्रीन् यज्ञान् करिष्यामि शस्यापाते गतागते।
पृथिव्याश्चतुर्णायां प्रतिज्ञेयं कृता मया ॥ ९ ॥

यश्च गोब्राह्मणा पूर्वमददन् भूभृतेकरम् । तमेवप्रतिदास्यामिब्राह्मणानातथागघाम्
इति प्रतिज्ञाय घच शुपस्तन् कृतवास्तथा ।
शस्यापाते सयक्षार्त्तीनयजयजता धर ॥ ११ ॥
गोब्राह्मण पुराराज्ञामददश्च येकरम् । तावत् सम्यमदाछित्तमन्यद्गोब्राह्मणायस
तस्य पुत्रोऽभवद्वीर प्रमथायाममिन्दिन ।
यस्य प्रतापशौर्य्याभ्या छना यश्या महीभृत ॥ १३ ॥
तस्यापिनन्दिनी नामधेदमौं दयिताऽभवत् । विविंशस्तनयतस्याजनयामाससमभु
विविंशेशासति महीं महीपाले महौजसि । महीतलमभून्न्यास निरन्तरतया नरै
ववर्ष काले पर्जन्यो मही शस्यवती तथा ।
सुफलानि च शस्यानि रसवन्ति फलानि च ॥ १६ ॥
रसा पुष्टिकराश्चासन् पुष्टिर्नोन्मादकारिणी । नविसनिचयानृणा प्रभूता मदहेनव
तत्प्रतापेन रिपवो भयमापुर्महामुने ! ।
स्वास्थ्य जन सुहृद्वर्गौ मुदमिच्छन्ति पौरिका ॥ १८ ॥
इष्ट्वा स यज्ञान् सुयहून् सम्यक् सम्पाल्य मेदिनीम् ।
सङ्ग्रामे निधन प्राप्य शक्रलोकमितो गत ॥ १९ ॥
इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे विविंशचरित्रवर्णन नामैकोन-
विंशत्यधिकशततमोऽध्याय ॥ ११९ ॥

त्रिंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

नृपखनीनेत्रचरित्रवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

तस्यपुत्रःखनीनेत्रोमहाबलपराक्रमः। यस्य यज्ञे व्यगायन्तगन्धर्वाविस्मयान्विताः

खनीनेत्रसमो नान्यो भुवि यज्वा भविष्यति।
तेन यज्ञायुते पूर्णे दत्ता पृथ्वी ससागरा ॥ २॥
दत्त्वा च सकलां पृथ्वीं ब्राह्मणानां महात्मनाम्।
तपसा द्रव्यमासाद्य मोचयेत् साधितेन यः ॥ ३॥
यतश्च प्राप्य वित्तर्द्धिमतुलां दातृसत्तमात्।
जगृहुर्ब्राह्मणा विप्र! नान्यराज्ञः प्रतिग्रहम् ॥ ४॥

सप्तषष्टिसहस्राणि सप्तषष्टिशतानि च। सप्तषष्टिश्च यो यज्ञानयजद्भूरिदक्षिणान्
अपुत्रः समहीपालो मृगयामुपचक्रमे। पुत्रार्थं पितृयज्ञाय मांसकामो महामुने! ॥
अश्वारुढो विना सैन्यमेक एवमहावने। बद्धगोधाङ्गुलित्राणो बाणखड्गधनुर्धरः
तं वाहयन्तं तुरगमग्रतोगहनाद्वनात्। विनिष्क्रम्य मृगः प्राह मां हत्वाभिमतंकुरु

राजोवाच

अन्ये मृगाः पलायन्ते महाभीत्या विलोक्य माम्।
कथमात्मप्रदानं त्वं मृत्यवे कर्त्तुमिच्छसि ॥ ६॥

मृग उवाच

अपुत्रोऽहं महाराज! वृथा जन्मप्रयोजनम्।
विचारयन्न पश्यामि प्राणानामिह धारणम् ॥ १०॥

मार्कण्डेय उवाच

अथाभ्येत्य मृगःप्राहतमन्योवसुधाधिपम्। मृगस्य तस्य प्रत्यक्षमलमेतेन पार्थिव!

घातयस्वेति मा मांसैमम कर्म समाचर ।
यथा कृतार्थता ते स्यान्मम चाप्युपकारि तत् ॥ १२ ॥
पुत्रार्थं त्व महाराज स्वपितॄन् यष्टुमिच्छसि ।
अपुत्रस्याऽस्य मांसेन लप्स्यसे वाञ्छितं कथम् ॥ १३ ॥
यादृक् कर्म विनिष्पाद्य तादृक द्रव्यमुपाहरेत् ।
दुर्गन्धेन सुगन्धामा गन्धज्ञानविनिर्णय ॥ १४ ॥

राजोवाच

वैराग्यकारण प्रोक्तमनेनापुत्रता मम । कथ्यतां प्राणसंत्यागे यत्ते वैराग्यकारणम्

मृग उवाच

बहवो मे सुता भूप बहवोदुहितरस्तथा ।
यश्चिन्तादु खदावाग्निज्वालामध्ये वसाम्यहम् ॥ १६ ॥
सयसाध्या नरेन्द्रेयं मृगजातिं सुकातरा ।
तेष्वपत्येषु मे चानि ममत्वं तेन दु खित ॥ १७ ॥
मनुष्य सिंहशार्दूल वृकादिभ्योबिभेम्यहम् ।
न हीनात्सत्वसत्त्वेभ्य श्वश्रृगालादपिममो ॥ १८ ॥
सोऽहं निमित्तं बन्धूनामिमां शून्यां वसुन्धराम् ।
नृसिंहादिभयात् सर्वामिच्छामि सुभृशं सकल ॥ १९ ॥
तृणान्यन्येऽपि खादन्ति गोऽजावितुरगादिका ।
तास्तेषां पोषणायाहमिच्छामि निधनं गतान् ॥ २० ॥
निष्क्रान्तपुनतस्तेपुममापत्येषु वै पृथक । भवन्ति चिन्ता शतशोममत्वावृतचेतस
किं कूटपाशं किं वज्र वागुरां किं सुतो मम ।
प्राप्तश्चरन् वने किं वा नृसिंहादिवशं गत ॥ २२ ॥
प्राप्तोऽयमेव मत्त्रासास्तेऽवस्था कीदृशी मम ।
साम्प्रतं विचरन्तो वै ये गता सुमहावनम् ॥ २३ ॥

दृष्ट्वा प्राप्तसमाश्वासमहं तानात्मजान्नृप । ईषदुच्छ्वसितः क्षेममिच्छामि रजनीं पुनः

प्रभाते दिवसं क्षेममस्तगेऽर्के निशामपि ।
वाञ्छाम्यहं कदा क्षेमं सर्वकालं भविष्यति ॥ २५ ॥

एतत्ते कथितं भूप ममोद्वेगस्य कारणम् । अतः प्रसादं कुरु मे बाणोऽयं पात्यतां मयि

इति दुःखशताविष्टः प्राणानपि त्यजामि यत् ।
तत्कारणं निबोध त्वं ब्रुवतो मम पार्थिव ! ॥ २७ ॥

असूर्या नाम ते लोका यान् गच्छन्त्यात्मघातकाः ।
यज्ञोपयुक्ताः पशवः सम्प्रयान्त्युच्छ्रिताः प्रभो ॥ २८ ॥

अग्निः पशुरभूत्पूर्वं पशुरासीज्जलाधिपः । भास्वानथोच्छ्रिताः प्राप्तो यतो निघ्नमुपागतः

तन्ममैतां कृपां कृत्वा नय मामुच्छ्रितान्नृप । आत्मनश्चेप्सितं कामं पुत्रलाभादवाप्स्यसि

पूर्वमृग उवाच

राजेन्द्र नैष हन्तव्यो धन्योऽयं सुकृती मृगः । बहवस्तनया यस्य हन्तव्योऽहमसन्ततिः

उत्तरमृग उवाच

एकदेहभवं यस्य दुःखं धन्यः स वै भवान् । बहूनि यस्य देहानि तस्य दुःखान्यनेकधा

एको यदाहमासन्तु प्राक् तदा देहजं मम ।
दुःखमासीन्ममत्वे तु भार्यायास्तदभूद् द्विधा ॥ ३३ ॥

यदा जातान्यपत्यानि तदा यावन्ति तानि वै ।
तावच्छरीरभूतानि मम दुःखान्यथाभवन् ॥ ३४ ॥

न कृतार्थो भवान् यस्य नातिदुःखाय सम्भवः ।
इह दुःखाय मत्सूतिः परत्र च विरोधिनी ॥ ॥ ३५ ॥

यतो रक्षणपोषार्थमपत्यानां करोमि तत् । चिन्तयामि च सम्भूतिस्तेन मे नरके ध्रुवा

राजोवाच

न वेद्मि किं सन्ततिमान् धन्योऽपुत्रोऽत्र किं मृग
पुत्रार्थं चायमारम्भो मम दोलायते मनः ॥ ३७ ॥

दुःखाय सन्ततिः सन्यमैहिकामुष्मिकाय तत्।
तथाप्यतनयान् यान्ति ऋणानीति श्रुतं मया ॥ ३८ ॥
सोऽहं यतिष्ये पुत्रार्थमृनेशाणिवर्धमृग ! । तपसैव प्रयत्नेन यथा पूर्वं महीपतिः
इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे खनीनेत्रचरितं नाम विंशत्यधिक-
शततमोऽध्यायः ॥ १२० ॥

एकविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

करन्धमचरित्रवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

ततः स नृपतिर्गत्वा गोमतीं पापनाशिनीम् । संयतुष्टायनियतोभूत्वादेवं पुरन्दरम्
तप्यमानस्तपश्चोग्रं यतवाक्कायमानसः । तुष्टाव प्रयतः शक्रमपत्यार्थं महीपतिः ॥
तस्य स्तोत्रेणतपसा भक्त्याचाधिसुरेश्वरः । तुतोष भगवानिन्द्र प्राहचैनंमहामुने
अनेन तपसा भक्त्या स्तोत्रेणोच्चारितेन च ।
परितुष्टोऽस्मि ते भूप ! व्रियतां भवता वरः ॥ ४ ॥

राजोवाच

अपुत्रस्य सुतो मेऽस्तुसर्वशस्त्रभृतां वरः । सदा चाव्याहतैश्वर्योधर्मज्ञःकर्मवित् कृती

मार्कण्डेय उवाच

तथेति चोक्तः शक्रेण राजाप्राप्तमनोरथः । प्रजाः पालयितुं भूय आजगामनिजंपुरम्
तत्रास्य कुर्वतो यज्ञं सम्यक् पालयतः प्रजाः ।
अजायत सुतो विप्र तदा शक्रप्रसादतः ॥ ७ ॥
तस्य नाम पिता चक्रे बलाश्वइतिभूपतिः । अस्त्रग्राममशेषञ्च ग्राहयामासतंसुतम्
पितर्युपरते विप्र सोऽधिराज्ये स्थितो नृपः ।

स वलाश्वो वशं निन्ये भुवि सर्वमहीक्षितः ॥ ६ ॥
करञ्चदापयामास सारग्रहणपूर्वकम् । स सर्वभूमिपान् राजा पालयामासचप्रजाः
अथाखिलनरेन्द्रास्तेदायादास्तस्यदुर्मदाः।नचाभ्युत्थायसततंतेचास्मैप्रददुःकरान्
व्युत्थिताः स्वेषु राष्ट्रेषु न सन्तोषपरास्ततः ।
भुवं तस्य नरेन्द्रस्य जगृहुस्ते नराधिपाः ॥ १२ ॥
स गृहीत्वास्वकंराज्यंपृथिवीशोवलान्मुने !। तस्थौस्वनगरेभूपैर्विरोधोवहुभिःकृतः
समेत्य सुमहावीर्याः ससाधनधनास्ततः । रुरुधुस्तं महीपालं पुरे तत्र नरेश्वराः ॥
पुररोधेन तेनाथ कुपितः स महीपतिः । स्वल्पकोषोऽल्पदण्डश्च वैक्लव्यं परमं गतः
अपश्यमानः शरणं सवलोद्विजसत्तम !। करौ मुखाग्रतः कृत्वानिशश्वासार्तमानसः
ततोऽस्यहस्तविरवान्मुखानिलसमाहताः । निजग्मुः शतशोयोधारथनागतुरङ्गमाः
ततः क्षणेन तत् सर्वं नगरं तस्य भूपतेः । व्याप्तमासीद्वलौघेनसारेणातिवलान्मुने
अथ सोऽतिवलौघेनमहतातेनसम्वृतः । निर्गम्यनगरात्तस्मात्तान्विजिग्येनराधिपः
जित्वा च वशमानीय चकार करदान् पुनः ।
यथा पूर्वं महाभाग महाभाग्यो नरेश्वरः ॥ २० ॥
धुतयोः करयोर्जज्ञे यतस्तस्यारिदाहदम् ।
वलं करन्धमस्तस्मात् स वलाश्वोऽभिधीयते ॥ २१ ॥
स धर्मात्मा महात्मा च स मैत्रः सर्वजन्तुषु ।
करन्धमोऽभवद्भूपस्त्रिषु लोकेषु विश्रुतः ॥ २२ ॥
सम्प्रासस्यपरामार्त्तिदद्दावरिविनाशनम् । वलंधर्मेण चाक्षितमभ्युपेत्य स्वयंनृपः
इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे करन्धमचरितवर्णनंनामैकविंशत्यधिक-
शततमोऽध्यायः ॥ १२१ ॥

द्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

अवीक्षितनृपतिचरित्रवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

वीर्यचन्द्रसुता सुभ्रूर्वीरा नाम शुभव्रता । स्वयम्वरे सा जगृहे महाराज करन्धमम्
तस्यां पुत्रं सरानेन्द्रो जनयामास वीर्यवान् । अवीक्षितमिति ख्यातिं भुवने जगतीतले
जाते तस्मिन् सुते राजा सदैवज्ञानपृच्छत । कच्चिन्मुहूर्ते नक्षत्रे शस्ते लग्ने सुतो मम
कच्चिद्यालोकितजन्मममपुत्रस्य शोभने । अहं कच्चिद्दुष्टग्रहाणां दृक्पथं गतम्

इत्युक्तास्तेन दैवज्ञास्तमूचुस्तं पतिं तदा ।
शस्ते मुहूर्ते नक्षत्रे लग्ने चैव सुतस्तव ॥ ५ ॥
समुत्पन्नो महावीर्यो महाभागो महाबलः ।
भविष्यति महाराज महाराजस्तवात्मजः ॥ ६ ॥

अवैक्षनेम देवानां गुरुः शुक्रश्च सप्तमः । सोमश्चतुर्थस्तनयं तथैव समवैक्षत ॥ ७ ॥
उपान्तसंस्थितश्चैव सोमपुत्रोऽप्यवैक्षत । नावैक्षतैनं सविता न भौमो न शनैश्चर

तव पुत्रं महाराज धन्योऽयं तनयस्तव ।
सर्वकल्याणसम्पत्ति समवेतो भविष्यति ॥ [illegible] ॥

मार्कण्डेय उवाच

इति दैवज्ञवचनं निशम्य वसुधाधिप । हर्षपूर्णमना प्राह निजमन्धानगतस्तदा ॥
अवैक्षनेनं देवानां गुरुः सोमसुतो बुधः । नावैक्षतैनमादित्यो नार्कसूनुर्न भूमिजः ॥

अवैक्षतेति यत् प्रोक्तं भवद्भिर्बहुशो वचः ।
अवीक्षितेति तेनास्य ख्यातं नाम भविष्यति ॥ १२ ॥

मार्कण्डेय उवाच

अवीक्षित सुतस्तस्य वेदवेदाङ्गपारगः । अस्त्रग्राममशेषं स कण्वपुत्रादथाग्रहीत्

स रूपेणातिभिषजौ देवानां पार्थिवात्मजः ।
बुद्ध्या वाचस्पतिं कान्त्या शशाङ्कं तेजसा रविम् ॥ १४ ॥
धैर्येणाब्धिं तथोर्वीञ्च सहिष्णुत्वेन वीर्यवान् ।
शौर्येण न समस्तस्य कश्चिदासीन्महात्मनः ॥ १५ ॥
स्वयम्वरे तं जगृहे हेमधर्मात्मजा वरा । सुदेवतनया गौरी सुभद्रा वलिनः सुता॥
लीलावती वीरसुता वीरभद्रसुतानिभा ।
भीमात्मजा मान्यवती दम्भपुत्री कुमुद्वती ॥ १७ ॥
याश्चैवन्नाभिनन्दन्ति स्वयम्वरकृतक्षणाः ।
ताश्चापि स बलाद्वीरो जग्राह नृपतेः सुतः ॥ १८ ॥
निराकृत्य नृपान् सर्वांस्तासां पितृकुलानि च ।
स्वकं हि वीर्यमाश्रित्य बलवान् स बलोद्धतः ॥ १९ ॥
एकदा तु विशालस्य वैदिशाधिपतेः सुताम् ।
वैशालिनीं स सुदतीं स्वयम्वरकृतक्षणाम् ॥ २० ॥
परिभूयाखिलान् भूपान् स्वेच्छया न वृतस्तया ।
बलाज्जग्राह विप्रर्षे ! यथान्या बलगर्वितः ॥ २१ ॥
ततस्ते भूभृतः सर्वे बहुशस्तेन मानिना ।
निराकृताः सुनिर्विण्णाः प्रोचुरन्योन्यमाकुलाः ॥ २२ ॥
क्षमतांललनामेतामेकस्माद्बलशालिनाम् । बहूनामेकवर्णानांजन्मधिग्वोमहीभृताम्
क्षत्रियो यः क्षतत्राणंवध्यमानस्यदुर्मदैः । करोतितस्यतन्नामवृथैवान्येहिविभ्रति
आत्मनोऽपि क्षतत्राणं दुष्टादस्मादकुर्वताम् ।
भवतां क्षत्रियकुले जातानां कीदृशी मतिः ॥ २५ ॥
उच्चार्यते स्तुतिर्या च सूतमागधवन्दिभिः ।
सा सत्या मा वृथा वीरा भवत्वरिविनाशनात् ॥ २६ ॥
चरतां सा वृथैवेष भूपश्चारैर्दिगन्तरैः । पौरुषाश्रयिणः सर्वे विशिष्टकुलसम्भवाः॥

विभेति को न मरणात् को युद्धेन विनाऽमरः ।
विचिन्त्यैतन्न हातव्यं पौरुषं शस्त्रवृत्तिभिः ॥ २८ ॥
एतन्निशम्य ते भूपाविस्पष्टमवपूरिता ।ऊचुः परस्परं सर्वे समुत्तस्थुश्च सायुधाः
केचिद्रथानारुरुहुश्चे चिन्नागांस्तथा हयान् । अन्येऽमर्षपराधीनास्तमुपेताः पदातयः
इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेऽवीक्षितचरित्रवर्णनंनाम द्वा-
विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२२ ॥

त्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

अवीक्षितचरित्रवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

इति सङ्ग्रामसन्नास्ते भूपा भूपसुतास्तथा ।
निराकृताः सुबहवस्तत्कालञ्चाप्यवीक्षिता ॥ १ ॥
ततो बभूव सङ्ग्रामस्तस्य तैः सह दारुणः । एकस्य बहुभिर्भूपैर्भूपपुत्रवरैर्मुने ॥
तेऽसिशक्तिगदाबाणपाणयस्तसुदुर्मदाः । अभिमन्तोयुयुधिरे तैः समस्तैरमोचपि
स तान् शरशतैरुग्रैर्बिभेद नृपनन्दनः ।
कृतास्त्रो बलवान् बाणैस्ते च तं बिभिदुः शितैः ॥ ४ ॥
कस्यचिच्चिच्छिदे बाहुमन्यस्य च शिरोधराम् ।
हृदि विव्याध चैवान्यमन्यं वक्षस्यताडयत् ॥ ५ ॥
करश्चिच्छेद करिणस्तुरगस्य तथा शिरः ।
तथान्येषां तथैवाश्वानन्यस्यान्यस्य सारथिम् ॥ ६ ॥
बाणानापततश्चक्रे द्विधा बाणैस्तथा द्विषाम् ।
चिच्छेदान्यस्य खड्गञ्च धनुरन्यस्य लाघवात् ॥ ७ ॥

नुत्रेऽपहृते तेन ननाशान्यो नृपात्मजः। अवीक्षिताहतश्चान्यःपदातिःप्रजहौरणम्
हत्याकुलीकृते तस्मिन् समग्रेराजमण्डले। तस्थुःसप्तशाता वीरा मरणेकृतनिश्चयाः

आभिजात्यवयःशौर्य्यलज्जाभारसमन्विताः।
निर्जिते सकले सैन्ये पलायनपरायणे ॥ १० ॥

ते समेत्य महीपालैः स तु पुत्रो महीभृतः। युयुधे धर्मयुद्धेन तेन तेनातिकोपितः

विच्छिन्नयन्त्रकवचान् स तानपि महाबलः।
कर्त्तुं व्यवस्थितस्ते च ततः क्रुद्धा महामुने! ॥ १२ ॥

धर्ममुत्सृज्य युयुधुर्युध्यमानेन धर्मतः। नरेन्द्रपुत्राःप्रस्वेदजलक्लिन्नाननाः समम् ॥

विव्याध कश्चिद्बाणौघैः कश्चिच्चिच्छेद कार्मुकम्।
ध्वजमस्यापरो बाणैश्छित्त्वा भूमावपातयत् ॥ १४ ॥
जघ्नुरन्ये तथैवाश्वान् बभञ्जुश्चापरे रथम्।
गदापातेनाऽथ वान्ये बाणैः पृष्ठमताडयन् ॥ १५ ॥

छिन्नेधनुषिसक्रोधः स तदा नृपतेःसुतः। जग्राहासिंतथाचर्म तदप्यन्योन्वपातयत्

च्छिन्नासिचर्मा जग्राह स गदां गदिनां वरः।
तामप्यन्यः क्षुरप्रेण चिच्छेद कृतहस्तवत् ॥ १७ ॥

अन्ये शरसहस्रेण शतेनान्येनराधिपाः। विभिदुःकोष्ठकीकृत्य धर्मयुद्धपराङ्मुखाः
स विह्वलः पपातोर्व्यामेकोबहुभिरर्दितः। राजपुत्रामहाभागा बबन्धुस्तेच तं ततः
तमधर्मेणतेसर्वे गृहीत्वा नृपतेःसुतम्। विशालेन समं राज्ञा वैदिशं विविशुः पुरम्

हृष्टाः प्रमुदिता बद्धं तमादाय नृपात्मजम्।
स्वयम्वरा च सा कन्या न्यस्ता तेन ततः-पुरः ॥ २१ ॥
पुनः पुनश्च पित्रोक्तातथापिच पुरोधसा।
आलम्ब्यतामिति वरो यस्ते राजसु रोचते ॥ २२ ॥

यदासामानिनी कश्चिन्न जग्राह वरं मुने!। तदापप्रच्छदैवज्ञं विवाहार्थं नरेश्वरः ॥
विशिष्टतरमेतस्या विवाहाय दिनं वद। अथैतद्दीदृक् सञ्जातं युद्धंविघ्नोपपादकम्

मार्कण्डेय उवाच

इति पृष्टो नरेन्द्रेण स दैवज्ञो विमृश्य तत् ।
दुर्मना प्राह विज्ञातपरमार्थो महीपतिम् ॥ २१ ॥

भविष्यन्त्यपराणीह दिनानिपृथिवीपते ।। प्रशस्तलग्नयुक्तानि शोभनान्यचिरेणच
करिष्यतिविवाहार्थं तेषु प्राप्तेषु मानद ' । अलमेतेन यत्रार्थ महाविघ्न उपस्थित॰

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेऽवीक्षितचरितवर्णननामत्रयो-
विंशत्यधिकशततमोऽध्याय ॥ ॥ १२३ ॥

चतुर्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

अवीक्षितनृपतिचरित्रवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

तत शुश्राव स बद्ध तनय स करन्धम । तस्यपत्नीतथावीराअन्येचापि महीभृत
तमधर्मेणतनय बद्ध श्रुत्वा महीपति । समन्ते पृथिवीपालैश्चिरद्ध्यौ महामुने '
केचिद्वूचुर्महीपाला कन्या' सर्वे महीभृत । यैरेक सयुगे बद्ध समस्तैस्तैरधर्मत ॥

युज्यता वाहिनी शीघ्रमूचुरन्यै किमास्यते ।
विशालो वध्यता दुष्टस्तत्र येऽन्ये समागता ॥ ४ ॥

अन्येतथोचुर्धर्मोऽत्र त्यक्त पूर्वं महीक्षिते । अन्यायेन बलाद्येनगृहीतातमथाभ्छती
स्वयवरेष्वशेषेषु तेनराजसुतास्तदा । खलीकृतास्तन सर्वे समेत्य स वशीकृत'
तेषामेतद्वच श्रुत्वा वीरा वीरप्रजावती । वीरगोत्रसमुद्भूता वीरपत्नी प्रहर्षिता ॥
[illegible] मम पुत्रेणपार्थिवाः

तदप्यस्मत् सुतस्याजौ मन्ये नापचयप्रदम्। एतदेव हि पौरुष्यं यद्धर्मवशाद्वरः
नीतिं न गणयत्येवं जिघांसुरिव केसरी। स्वयम्वरान्यचिन्त्यस्तामपुत्रेणकन्यका
बह्वयो गृहीता भूपानां पश्यतामतिमानिनाम्।
क्व क्षत्रियकुले जन्म क्व याच्ञा दीनसेविना॥ १२॥
बलादेव समादत्ते क्षत्रियो बलिनांपुरः। लोहशृङ्खलबद्धाश्च न पशंयान्तिकातराः
प्रसह्यकारिणी यान्ति राजानो धर्मशालिनः।
तदलं दौर्मनस्येन श्लाघ्यमेवास्य बन्धनम्।॥ १४॥
युष्माकमप्यायुधानामङ्गमूर्द्धसु पातनम्। हत्वैवपृथिवीशानां पृथ्वीपुत्रादिकंचनु
भार्य्या धार्य्यंनिमित्तानि ततो यातानि गौरवम्।
तत् त्वर्य्यतां रणायाऽऽशु स्यन्दनान्यधिरोहत॥ १६॥
सज्जीकुरुत नागाश्वमचिरेण सुसारथिम्।
मन्यध्वं किं महीपालैर्बहुभिः सह विग्रहम्॥ १७॥
प्रभूता एवतोयाय शूरस्याल्परणे क्रियाः। कस्यनाल्पेषुसामर्थ्यंनरेन्द्रादिषुजायते
येभ्यो न विद्यते भीतिर्हन्तुं पुत्राहितान्मुने!।
व्याप्तलोकान् समस्तान् यो ह्यभिभूय यतो नरः॥
व्यरोचतेति शूरः स -तमांसीव दिवाकरः॥ १६॥

मार्कण्डेय उवाच

इत्थमुद्धर्षितो राजाऽनया पत्न्या करन्धमः।
चकार सबलोद्योगं हन्तुं पुत्राहितान्मुने!॥ २०॥
ततस्तस्य समं भूपैर्विशालेन च सङ्गरः। बभूव वत्सपुत्रस्य तैरशेषैर्महामुने!॥
दिनत्रयमभूद्युद्धं तेन राज्ञः समं तदा। करन्धमेन भूपानां विशालस्यानुकुर्वताम्
यदा पराजयप्रायं तं सर्वं भूपमण्डलम्। तदाविशालोऽर्घ्यकरःकरन्धममुपास्थितः
करन्धमोऽपि सम्प्रीत्या तेन राज्ञाभिपूजितः।
वियुक्ते तनये तत्र निशां तां सुखमावसत्॥ २४॥

ताश्च धन्यामुपादाय विशाले समुपस्थिते ।
अथाविक्षित् प्राह विप्रैं विवाहार्थं पितुः पुरः ॥ २५ ॥
नाहमेतां ग्रहीष्यामि न चान्यां योषितं नृप ! ।
परैर्यस्या निरीक्षन्त्या सङ्ग्रामेऽहं पराजितः ॥ २६ ॥
अन्यस्मै सम्प्रयच्छेमामियञ्चान्यं वृणोतु तम् ।
अक्षतश्रियशो धार्यो यः परैर्नापमानितः ॥ २७ ॥
परैः पराजितोऽहं यत् कातरं यथाऽबला ।
किमत्र मानुषत्वं मे न तस्या मम चान्तरम् ॥ २८ ॥
स्वतन्त्रता मनुष्याणां परतन्त्रा सदाऽबला ।
मयोऽपि परतन्त्रो यस्तस्य कीदृङ्मनुष्यता ॥ २९ ॥
साऽहमस्या मुखं भूयः दर्शयिता कथम् ।
याऽहमस्याः पुरो भूमौ परैर्भूवैः विलुण्ठितः ॥ ३० ॥
इत्युक्ते तेन तनयामुवाच नगराधिपः । श्रुतं ते वचनमस्त्र्यं यदतोऽस्यमहामनः
परयान्यपति तत्र मनस्ते रमते शुभे ।
वयं धाम प्रयच्छामो यस्मिंस्तस्मिं स्तवाहृताः ।
एतयार्हे समातिष्ठ मागयो रुचिरानने ! ॥ ३२ ॥

मार्कण्डेय उवाच

पराजितोऽयं वहुभिः सम्यक् सम्यगाचरन् ।
सङ्ग्रामे तथशा धाप्यहानिकारिणि पार्थिव ! ॥ ३३ ॥
एकोऽहनायुद्धायगतानामिवकेशरी । यस्मस्थित परशौर्यं तेनास्य प्रकटितम्
न केवलमयं तस्मिं युद्धे तऽप्यखिला जिताः ।
बहुशाऽनेन चत्न विक्रमोऽपि प्रकाशितः ॥ ३५ ॥
शौर्यविक्रमसंयुक्तमिमं समर्हाक्षिनः । धमयुद्धमधर्मेण जितवन्तोऽत्र का त्रपा
न चापि रूपमात्रं मे लोभमस्यगता पितः !।

शौर्य्यं विमर्दधैर्य्याणि हरन्त्यस्य मनो मम ॥ ३९ ॥

तत्किमुक्तेन बहुना याच्यतां मत्कृते नृपः । त्वया महानुभावोऽयं नान्यो मे भविता पतिः

विशाल उवाच

राजपुत्र! सुतामाह मर्मैतच्छोभनं वचः । एवञ्चैव त्वया तुल्यः कुमारो न महीतले

अविसम्वादि ते शौर्य्यं महांश्च पराक्रमः ।

पावयाऽस्मत् कुलं वीर! दुहितुर्मे परिग्रहात् ॥ ४० ॥

राजपुत्र उवाच

नाहमेतां ग्रहीष्यामि नवान्यां योषितं नृप! ।

आत्मन्येव हि मे बुद्धिः स्त्रीमयी मनुजेश्वर! ॥ ४१ ॥

मार्कण्डेय उवाच

ततः करन्धमः प्राह पुत्रेयं गृह्यतां त्वया । विशालतनया सुभ्रूस्त्वयि हार्दवती दृढम्

राजपुत्र उवाच

नाज्ञाभङ्गः कदाचित्ते कृतपूर्वो मया प्रभो! ।

तथाऽऽज्ञापय मां तात! यथाज्ञां करवाणि ते ॥ ४३ ॥

मार्कण्डेय उवाच

अत्यन्तनिश्चितमतौ तस्मिन्राजसुते सताम् ।

तामुवाच विशालोऽपि व्याकुलीकृतमानसः ॥ ४४ ॥

निवर्त्यतां मनः पुत्रि! एतस्माच्च प्रयोजनात् ।

अन्यं वरय भर्त्तारं सन्त्यनेके नृपात्मजाः ॥ ४५ ॥

कन्योवाच

वरं वृणोम्यहं तात! मामेव यदि नेच्छति ।

तपसोऽन्यो न मे भर्त्ता जन्मान्यस्मिन् भविष्यति ॥ ४६ ॥

मार्कण्डेय उवाच

ततः करन्धमो राजा विशालेन समं मुदा । स्थित्वा दिनत्रयं तत्र निजमभ्याययौ पुरम्

अवीक्षितोऽपि तेनैव पित्राऽन्यैश्च नराधिपैः ।
निदर्शने पुरावृत्ते सान्त्वितोऽभ्यागमत् पुरम् ॥ ४८ ॥
सापि कन्या वनं गत्वा निरस्य निजबान्धवैः ।
तपस्तेपे निराहारा वैराग्यं परमास्थिता ॥ ४९ ॥
निराहारा यदासा तु मासत्रयमवस्थिता । सम्प्राप परमामार्त्तिं कृशा धमनिसन्तता
मन्दोत्साहातितन्वङ्गी मुमूर्षुरपि बालिका ।
देहत्यागाय सा चक्रे तदा बुद्धिं नृपात्मजा ॥ ५१ ॥
आत्मत्यागाय तां ज्ञात्वा कृतबुद्धिं सुरास्ततः ।
समेत्य प्रेषयामासुर्देवदूतं तदन्तिकम् ॥ ५२ ॥
समुपेत्य स तां प्राह दूतोऽहं पार्थिवात्मजे ! ।
प्रेषितस्त्रिदशैस्तुभ्यं यत्कार्यं तन्निशामय ! ॥ ५३ ॥
न भवत्या परित्याज्यं शरीरमतिदुर्लभम् ।
त्वं भविष्यसि कल्याणि ! जननी चक्रवर्तिनः ॥ ५४ ॥
पुत्रेण च महाभागे ! भोक्तव्या निहतारिणा ।
अव्याहताज्ञेन चिरं सप्तद्वीपवती मही ॥ ५५ ॥
हन्तव्यस्तेन तरजिद्देवानां पुरतो रिपुः ।
अयःशङ्कुस्तथा क्रूरो धर्मे स्थाप्यास्तेन प्रजाः ॥ ५६ ॥
परिपालनीयमखिलं चातुर्वर्ण्यं स्वधर्मतः ।
हन्तव्या दस्यवो म्लेच्छा ये चान्ये दुष्टचेष्टिताः ॥ ५७ ॥
यष्टव्यं विविधैर्यज्ञैः समाप्तवरदक्षिणैः । वाजिमेधादिभिर्भद्रे षट्सहस्रैश्च सङ्ख्यया

मार्कण्डेय उवाच

तं दृष्ट्वा साऽन्तरीक्षस्थं दिव्यस्रगनुलेपनम् । देवदूतमुवाचेदं राजपुत्री ततो मृदु
सत्यं त्वमागतः स्वर्गाद्देवदूतो न संशयः ।
किन्तु भर्त्रा विना पुत्रः स कथं मे भविष्यति ॥ ६० ॥

अवीक्षितमृते भर्त्ता मम नान्योऽत्र जन्मनि ।
भवितेति प्रतिज्ञातं मयैतत्सन्निधौ पितुः ॥ ६१ ॥
स च नेच्छति मां प्रोक्तो मत्पित्रा जनकेन च ।
करन्धमेनाथ सम्यक् याचितश्च मया तथा ॥ ६२ ॥

देवदूत उवाच

किमनेन महाभागे बहुनोक्तेन ते सुतः ।
समुत्पत्स्यति मा स्वार्थास्त्वमात्मानमधर्मतः ॥ ६३ ॥
अत्रैव कानने तिष्ठ तनुं क्षीणाञ्च पोषय । तपःप्रभावाद्देतत्ते सर्वं साधु भविष्यति

मार्कण्डेय उवाच

इत्युक्त्वादेवदूतोऽसौयथागतमगच्छत । चकारानुदिनंसुभ्रूःसाप्यात्मतनुपोषणम्

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेऽवीक्षितचरित्रवर्णनंनाम-
चतुर्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२४ ॥

पञ्चविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

अवीक्षितचरित्रवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

अथ साऽवीक्षितो माता वीरा वीरप्रजावती ।
पुण्येऽहनि समाहूय प्राह पुत्रमवीक्षितम् ॥ १ ॥
पुत्राहमस्म्यनुज्ञातातवपित्रामहात्मना ।उपवासंकरिष्यामिदुष्करोऽयंकिमिच्छकः
स चायत्तस्तव पितुस्त्वया साध्यो मयापि च ।
प्रतिज्ञाते त्वया भर्त्रा ... ॥ २ ॥

द्रव्यस्यार्द्धं महाकोशात् तव दास्याम्यहं पितुः ।
धनन्ते पितुरायत्तमनुज्ञातोऽस्मि तेन च ॥ ४ ॥
कलेशसाध्योमदायत्तं महिश्रेयोभविष्यति ।साध्योमनेद्रायदिनेकश्चिदुग्रल्पपराक्रमे
न तेऽसाध्यो ह्यन्यथा वा तु सुसाध्यो भविष्यति ।
तत्त्व प्रतिज्ञा कुरुषे यदि पुत्राऽत्र चैव ते ॥
तदेतदहमायात्स्ये कथयतो यत्मन तव ॥ ६ ॥
अवीक्षित उवाच
चित्तं [illegible] पितुरायत्तं मम् स्यामिन्ध न तत्र वै ।
यन्मच्छरीरनिष्पाद्यं तत्करिष्ये त्वयोदितम् ॥ ७ ॥
किमिच्छकजनमातर्निश्चिन्ताभवनि र्यथा ।राज्ञापित्राऽप्यनुज्ञातयदिदिसेश्वरेणमे
मार्कण्डेय उवाच
सत मा राजमहिषीतदुनतमसुपोषिना ।यथोक्ताराऽकरोत्पूजाराजराजस्यसंपता
निर्धातामप्यशेषाणा निधिपालगणस्य च ।
लक्ष्म्याश्च परया भक्त्या यतवाकायमानसा ॥ १० ॥
विविक्ते तु गृहस्थोऽयमथ राज्ञा करन्धम ।
भार्साना उक्तः सचिवैर्नीतिशास्त्रविशारदैः ॥ ११ ॥
सचिवा ऊचु
राजन् वय परिणत तवैनच्छासतो महीम् । एकस्तेतनयोऽवीक्षितयत्सदारपरिग्रह
अपुत्र स च तेनिष्यात्भूप गमिष्यति । तदारिपक्षं पृथिवीनिश्चितवयास्यति
वंशश्चयस्ते भविनापितृपिण्डोदकक्षयः । एतन्महत्तेऽरिभयजियाद्दान्ग्राभविष्यति
तस्मात् कुरुत्व यथाभूपयया तेनतयःपुन । करोतिमततबुद्धिंपितृणामुपकारिणाम्
मार्कण्डेय उवाच
एतस्मिन्नन्तर शब्दं शुश्राव जगतीपति । पुरोहितस्य वीराया गदतोऽर्थिन प्रति
क किमिच्छति दु साध्यं कस्य किं साध्यतामिति ।

करन्धमस्य महिषी किमिच्छकमुपोषिता ॥ १७ ॥

राजपुत्रोऽप्यवीक्षित्तु श्रुत्वा पौरोहितं वचः ।

प्रत्युवाचार्थिनः सर्वान् राजद्वारमुपागतान् ॥ १८ ॥

मया साध्यं शरीरेण यस्य किञ्चिद्ब्रवीतु सः ।

मम माता महाभागा किमिच्छकमुपोषिता ॥ १९ ॥

शृण्वन्तुमेऽर्थिनःसर्वेप्रतिज्ञातंमयातदा । किमिच्छथददाम्येषक्रियमाणेकिमिच्छके

मार्कण्डेय उवाच

ततोराजानिशम्यैतद्वाक्यंपुत्रमुखाच्च्युतम् । समुत्पत्याब्रवीतपुत्रमहमर्थीप्रयच्छमे

अवीक्षिदुवाच

दातव्यं यन्मया तात! भवते तद्ब्रवीहि माम् ।

कर्तव्यं दुष्करं वा ते साध्यं दुःसाध्यमेव वा ॥ २२ ॥

राजोवाच

यदि सत्यप्रतिज्ञस्त्वं ददासि च किमिच्छकम् ।

पौत्रस्य दर्शय मुखं ममोत्सङ्गगतस्य तत् ॥ २३ ॥

अवीक्षिदुवाच

अहन्तवैकस्तनयो ब्रह्मचर्यञ्च मे नृप । नमेपुत्रोऽस्ति पौत्रस्य दर्शयामि कथंमुखम्

राजोवाच

पापाय ब्रह्मचर्यन्तेयदिदंधार्यते त्वया । तस्मात् त्वं मोचयात्मानं ममपौत्रञ्चदर्शय

अवीक्षिदुवाच

विषमं स्यान्महाराज! यदन्यत्तत् समादिश ।

वैराग्येण मया त्यक्तः स्त्रीसम्भोगस्तथास्तु सः ॥ २६ ॥

राजोवाच

बहुभिर्युध्यमानानां दृष्टो वै वैरिणां जयः । तत्रापियदिवैराग्यमुपैषि तदपण्डितः

किं वा नो बहुनोक्तेनब्रह्मचर्यं;परित्यज । मातुस्त्वमिच्छया वक्त्रंपौत्रस्यममदर्शय

मार्कण्डेय उवाच

यदा स षड्भिस्तेन प्रोक्तः पुत्रेण पार्थिवः ।
नान्यत् प्रार्थयते किञ्चित् तदा पुत्रोऽब्रवीत् पुनः ॥ २९ ॥
दत्त्वा किमिच्छक तुभ्यं प्राप्तोऽहं तात सद्व्ययम् ।
तत्करिष्यामि निर्लज्जो भूयो दारपरिग्रहम् ॥ ३० ॥
स्त्रियः समक्षं पितुर्जिनं पतितोऽधरणीतले । स्वीयपतिर्मेविताभूयस्तातैतदतिदुष्करम्
तथापि किङ्करोम्येष सत्यपाशयगत ।
करिष्यामि यथाऽऽत्थ त्वं भुज्यतां निजशासनम् ॥ ३२ ॥
इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेऽवीक्षितचरित्रवर्णनंनामपञ्चविंशत्यधिक शततमोऽध्यायः ॥ १२१ ॥

षड्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

अवीक्षितचरित्रवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

कदाचिद्राजपुत्रोऽसौमृगयामचरद्वने । मृगान्निघ्नन्वराहांश्चशार्दूलांश्चद्विपान्
शुश्राव सहसा शब्दं त्राहि त्राहीति योषितः ।
विक्रोशन्त्या सुबहुशो गद्गदमुखकं ॥ २ ॥
मा भैर्मैरिति वदन् राजपुत्रः स वेगितः । चोदयामास तुरगं यतः शब्दः समागतः
ततश्च सापि चुक्रोश कन्यका विजने वने । गृहीता दनुपुत्रेण दृढकेशेन मानिनी ॥
करन्धमसुतस्याहं भार्या साहमवीक्षितः । इत्यनार्यो विपिनेपृथिवीशस्यधीमतः
यस्य सर्वे महीपालास्तथा गन्धर्वगुह्यकाः ।
न समर्थाः पुरः स्थातुं तस्य भार्या हृताऽस्म्यहम् ॥ ६ ॥

यस्य मृत्योरिव क्रोधः शक्रस्येव पराक्रमः ।
करन्धमसुतस्यैषा तस्य भार्या हृताऽस्म्यहम् ॥ ७ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इत्याकर्ण्य महीपालतनयः सशरासनी । चिन्तयामास किमिदं मम भार्याऽत्र कानने
मायेयं रक्षसां नूनं दुष्टानां काननौकसाम् ।
अथ वा गत एवाहं सर्वं वेत्स्यामि कारणम् ॥ ६ ॥

मार्कण्डेय उवाच

त्वरितः स ततो गत्वा ददर्शातिमनोरमाम् । कानने कन्यकामेकां सर्वालङ्कारभूषिताम्
गृहीतां दनुपुत्रेण दृढकेशेन दण्डिना । त्राहि त्राहीति करुणं विक्रोशन्तीं पुनःपुनः
मा भैरिति स तामाह हतोऽसीति च तं वदन् ।
शासतीमां महीं दुष्टः को भूपेऽत्र (दूयेत) करन्धमे ॥ १२ ॥
यस्य प्रतापावनता भुवि सर्वे महीक्षितः । ततस्तमागतं दृष्ट्वा गृहीतवरकार्मुकम्
मां त्राहीत्याह तन्वङ्गी हृतास्म्येषेति चासकृत् ।
राज्ञः करन्धमस्याहं स्नुषा भार्याप्यवीक्षितः ॥
हृताऽस्म्येतेन दुष्टेन सनाथाऽनाथवद्वने ॥ १४ ॥

मार्कण्डेय उवाच

ततो विममृषे वाक्यमवीक्षित् स तथोदितम् ।
कथमेषा हि मे भार्या स्नुषा तातस्य वा कथम् ॥ १५ ॥
अथ वा मोचयाम्येतां तन्वीं वेत्स्यामि तत् पुनः ।
क्षत्रियैर्धार्यते शस्त्रमार्त्तानां त्राणकारणात् ॥ १६ ॥
ततः क्रुद्धोऽब्रवीद्वीरो दानवं तं सुदुर्मतिम् । जीवन्गच्छ विमुच्यैनामन्यथा न भविष्यसि
ततः स तां विहायोच्चैर्दण्डमुत्क्षिप्य दानवः ।
तमप्यधावत्सोऽप्येनं शरवर्षैरवाकिरत् ॥ १८ ॥
स वार्यमाणो बाणौघैर्दानवोऽतिमदान्वितः । राजपुत्राय चिक्षेप दण्डं शङ्कुशतावृतम्

समापतन्त चिच्छेद शरैर्भूपसुतस्तत ।
सोऽप्यासन्न गृहीत्वोच्चैर्द्रुममाजौऽयवस्थित ॥ २० ॥
सृजत शरवर्षाणि त चिक्षेपततो द्रुमम् । स ततिलशश्चक्रे भल्लै कार्मुकमोचितै
ततश्चिक्षेप स शिला राजपुत्राय दानव ।
सापि मोघा पपातोर्व्यामुज्झिता तेन लाघवात् ॥ २२ ॥
राजपुत्राय कुपितो यद्यच्चिक्षेप दानव ।
तत्तच्चिच्छेद बाणौघैर्भूभृत्सुत स लीलया ॥ २३ ॥
ततो विच्छिन्नदण्डोऽसौ विच्छिन्नसकलायुध ।
मुष्टिमुद्यम्य सक्रोधो राजपुत्रमधावत ॥ २४ ॥
तस्यापतत एवासौ क्षुरप्रमतुल शिर । छित्त्वा चैतत्परेणपातयामास वैभुवि
तस्मिन् विनिहते दैत्यैदानवेतुरुचेष्टिने । करन्धमसुत पर्वे साधुसाध्विविति भाषित
वर वृणीष्वेति तदा देवैरुक्तो नृपात्मज ।
यथे पुत्र महावीर्यं पितु प्रियचिकीर्षया ॥ २७ ॥
देवा ऊचु
भविष्यति हितेपुत्रश्चक्रवर्ती महाबल । अस्यामेवहिकन्यायामोक्षितायात्वयानघ
राजपुत्र उवाच
पित्राह्सत्यपाशेनबद्धइच्छाम्यहसुतम् । शत्रुभिर्निर्जितेनाऽऽजौऽस्याभेदारसंग्रह
सा च मे याचता त्यक्ता विशालनृपते सुता ।
तया च मत्कृते त्यक्तो माम्रुते नरसत्तम ॥ ३० ॥
तत् कथ तामपास्याथ विशालतनयामहम् ।
नृशसाना (त्मा) करिष्यामि अन्यनारीपरिग्रहम् ॥ ३१ ॥
देवा ऊचु
इयमेवहि ते भार्या श्लाघ्यते या त्वया सदा ।
विशालस्य सुता सुभ्रूस्त्वत्कृतेयाऽऽस्थिता तप ॥ ३२ ॥

तस्यामुत्पत्स्यते वीरः सप्तद्वीपप्रसाधकः । यष्टायज्ञसहस्राणां चक्रवर्त्ती सुतस्तव

मार्कण्डेय उवाच

इत्युच्चार्यं ययुर्देवाः करन्धमसुतं द्विज !।
सोऽप्याह तां तदा पत्नीं कथ्यतां भीरु! किं त्विदम् ॥ ३४ ॥
सा चास्मै कथयामास त्यक्ताऽहं भवता यदा ।
त्यक्तबन्धुजनारण्यं निर्वेदात् समुपागता ॥ ३५ ॥

तत्राहं तपसा वीर! क्षीणप्रायंकलेवरम् । त्यक्तुकामा समभ्येत्य देवदूतेन वारिता

भविष्यति च पुत्रस्ते चक्रवर्त्ती महाबलः ।
प्रीणयिष्यति यो देवानसुरांश्च हनिष्यति ॥ ३७ ॥

इति देवाज्ञया तेन देवदूतेन वारिता । न सन्त्यक्तवती देहं त्वत्सङ्गममनोरथा ॥
परश्वश्च महाभाग! स्नातुंगङ्गाह्रदंगता । अवतीर्णाविकृष्टास्मि वृद्धनागेन केनचित्

ततो रसातलं नीता तेन तत्र च मे पुरः ।
नागाः सहस्रशस्तस्थुर्नागपत्न्यः कुमारकाः ॥ ४० ॥
तुष्टुवुर्मां समभ्येत्य मामन्येऽपूजयंस्तथा ।
ययाचिरे सविनयं नागा मामङ्गनास्तथा ॥ ४१ ॥

प्रसादं कुरुसर्वेषांत्वमस्माकं सुतस्त्वया । अपराधमुपेतानांसंनिवार्यो यथोन्मुखः

अपराधं करिष्यन्ति त्वत्पुत्रस्यानिलाशनाः ।
तन्निमित्तं निवार्योऽसौ प्रसादः क्रियतामिति ॥ ४३ ॥

तथेतिचमया प्रोक्ते दिव्यैःपातालभूषणैः । भूषिताऽहंतथापुष्पैर्गन्धवासोभिरुत्तमैः

समानीता तथालोकमिमन्ते नानिलाशिना ।
पुरा यथा कान्तिमती पूर्ववद्रूपशालिनी ॥ ४५ ॥

इतिरूपवतीं दृष्ट्वा सर्वालङ्कारभूषिताम् । जग्राह दृढकेशोऽयं हर्तुकामः सुदुर्मतिः

युष्मद्वाहुबलेनाहं राजपुत्र! विमोक्षिता ।
तत् प्रसीद महाबाहो ! मां प्रतीच्छ त्वया समः ।

भूलोके राजपुत्रोऽन्यो नास्ति सत्यं ब्रवीम्यहम् ॥ ४७ ॥
इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेऽवीक्षितचरित्रवर्णनं नाम
षड्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२६ ॥

सप्तविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

अवीक्षितचरित्रेभामिनीराजपुत्र्याःपूर्वजन्मवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

इति तस्या वचः श्रुत्वा स्मृत्वा पितृवचः शुभम् ।
किमिच्छकप्रतिज्ञाते यदुक्तं तेन भूभृता ॥ १ ॥
प्रत्युवाच स तां कन्यामवीक्षिन्नृपतेः सुतः ।
सानुरागमनाः कन्या त्वत्कृतेऽहं तु तत्कृते ॥ २ ॥
यदाहं त्वत्कृतेऽन्यां त्वामरातिपराजितः ।
विजित्य शत्रून् सम्प्राप्तो (सा) त्वं मयाऽत्र करोमि किम् ॥ ३ ॥

कन्योवाच

ममपाणिगृहाणत्वरमणीयेऽत्रकानने । सकामायाःसकामेनसङ्गोगुणवान् भवेत्

राजपुत्र उवाच

एवं भवतु भद्रं ते विधिरेवात्रकारणम् । अन्यथाकथमन्यत्र त्वमहञ्च समागतः ॥

मार्कण्डेय उवाच

एतस्मिन्नन्तरे प्राप्तो गन्धर्वतनयो मुने । वराप्सरोभिः सहितो गन्धर्वैःपरिवृतः

गन्धर्व उवाच

राजपुत्र ! सुतेयम्मे भामिनी नाम मानिनी ।
अभिशापादगस्त्यस्य विशालतनयाऽभवत् ॥ ७ ॥

बालभावेन योऽगस्त्यः कोपितः क्रीडमानया ।
ततस्तेन तदा शप्ता मानुषी त्वं भविष्यसि ॥ ८ ॥
प्रसादितः स चास्माभिर्बालेयमविवेकिनी ।
तवाऽपराधाद्विप्रर्षे! प्रसादः क्रियतामिति ॥ ९ ॥
प्रसाद्यमानः सोऽस्माभिरिदमाह महामुनिः ।
बालेति मत्वा शापोऽल्पो दत्तोऽस्या नान्यथैव तत् ॥ १० ॥
इतिशापादगस्त्यस्य विशालभवनेशुभा । जातेयंमत्सुता सुभ्रूर्भामिनीनामनामतः
तदस्याऽहं कृते प्राप्तो गृहाणेमां नृपात्मजाम् ।
ममात्मजां सुतस्तेऽत्र चक्रवर्त्ती भविष्यति ॥ १२ ॥

मार्कण्डेय उवाच

तथेत्युक्त्वेति तस्याश्च स पाणिं पार्थिवात्मजः ।
जग्राह विधिवद्धोमं चक्रे तत्र च तुम्बुरुः ॥ १३ ॥
प्रजगुर्देवगन्धर्वा ननृतुश्चाप्सरोगणाः । पुष्पाणिससृजुर्मेघा देववाद्यानि सस्वनुः
विवाहे राजपुत्रस्य तयातत्र समेयुषः । समस्तवसुधात्राणकर्तृकारणभूतया ॥
ततोगन्धर्वलोकं ते सह तेनमहात्मना । निःशेषेणययुः साचस च राजसुतो मुने !
भामिन्या मुमुदे सार्द्धमवीक्षिन्नृपनन्दनः । साचतेनसमंतत्र भोगसम्पत्समन्विता
कदाचिदतिरम्येऽसौ नगरोपवने तथा । विक्रीडतिसमं तन्व्या कदाचिदुपपर्वते
कदाचित् पुलिने नद्या हंससारसशोभिते ।
कदाचिद्भवनस्याऽन्ते प्रासादे चातिशोभने ॥ १९ ॥
विहारदेशेष्वन्येषु रमणीयेष्वहर्निशम् । सरेमेसहितस्तन्व्यासाचतेनमहात्मना ॥
भक्ष्यानुलेपनं वस्त्रं स्रक्पानादिकमुत्तमम् । उपजह्रुस्तयोस्तत्रमुनिगन्धर्वकिन्नराः
तया च रमतस्तस्य भामिन्या सह दुर्लभे ।
गन्धर्वलोके वीरस्य पुत्रं सा सुषुवे शुभा ॥ २२ ॥
तस्मिन् जाते महावीर्येगन्धर्वाणांमहोत्सवः । बभूवमनुजव्याघ्रे तेनकार्यमवेक्षताम्

जगुः केचित्तथैवान्ये मृदङ्गपटहानकान् । अवादयन्तथैवान्येवेणुवीणादिकास्तथा
ननृतुश्च तथा तत्र बह्वोऽप्सरसां गणाः । पुष्पवृष्टिमुचोमेघाजगर्जु र्मृदुनिस्वनाः
तथाकोलाहलेतस्मिनवर्त्तमानेऽथतुम्बुरुः । प्रणयेनसमेतयातोजातकर्माकरोन्मुनि
देवा समाययुः सर्वे तथादेवर्षयोऽमलाः । पातालात्पन्नगेन्द्राश्चशेषवासुकितक्षकाः

तथा देवासुराणाञ्च ये प्रधाना द्विजोत्तम ।
यक्षाणां गुह्यकानाञ्च वायवश्च तथाऽखिलाः ॥ २८ ॥
तदाऽऽगतैरशेषैर्दिदेवदानवपन्नगैः ।
मुनिभिश्चाकुलमभून् गन्धर्वाणां महत्पुरम् ॥ २९ ॥
ततः स तुम्बुरुः कृत्वा जातकर्मादिकां क्रियाम् ।
चक्रे स्वस्त्ययनं तस्य वाग्भिः स्तुतिपूर्वकम् ॥ ३० ॥
चक्रवर्तीमहावीर्यो महाबाहुर्महाबलः । महान्तकाल्मीशित्वमशेषायाः क्षितेः सुतः
इमे शक्रादयः सर्वे लोकपालास्तथापरे ।
स्वस्ति कुर्वन्तु ते वीर! वीर्यं शत्रुविनाशनम् ॥ ३२ ॥
मरुत्तव शिवायाऽस्तु वातु पूर्वेण योऽरजः ।
मरुत्ते विमलोऽक्षीणोऽरैवस्थायास्तु दक्षिणे ॥ ३३ ॥
पश्चिमस्ते मरुद्वीर्यमुत्तमन्ते प्रयच्छतु । बल्यच्छतु सोऽस्य मरुत्ते च तथोत्तरे ॥
इतिस्वस्त्ययनस्यान्ते वागुवाचाशरीरिणी । मरुत्तेतिवक्त्रुगो यदिदं गुरुरब्रवीत्
मरुत्त इति तेनायं भुवि ख्यातो भविष्यति ।
भुवि चास्य महीपालाः यास्यन्त्याज्ञावशाः यतः ॥ ३६ ॥
एष सर्वक्षितीशानां वीरः स्थास्यति मूर्द्धनि ।
चक्रवर्ती महावीर्यः सप्तद्वीपवतीं महीम् ॥ ३७ ॥
आक्रम्य पृथिवीपालानयं भोक्ष्यत्यवारितः ।
प्रधानः पृथिवीशानां भविष्यत्येष यज्विनाम् ॥
आधिक्यं शौर्यवीर्येण भविष्यत्यस्य राजसु ॥ ३८ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इत्याकर्ण्य वचः सर्वे केनाप्युक्तं दिवौकसाम् ।
तुतुपुर्विप्रगन्धर्वाश्चास्य माता तथा पिता ॥ ३६ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेऽवीक्षितचरित्रमाहात्म्यवर्णनंनाम
सप्तविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२७ ॥

अष्टाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

करन्धमपौत्रप्राप्तौराज्येमहाहर्षवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

ततः स राजपुत्रस्तमादाय दयितं सुतम् । पत्न्याश्चानुगतोविप्रगन्धर्वैराययौपुरम्
स पितुर्भवनंप्राप्यववन्दे पितुरादरात् । चरणौसाच तन्वङ्गी ह्रीमती नृपतेः सुता
तथाह राजपुत्रोऽसौ गृहीत्वा बालकं सुतम् ।
धर्मासनगतं भूपं राज्ञां मध्ये करन्धमम् ॥ ३ ॥
मुखं पौत्रस्य पश्यैतदुत्सङ्गस्थस्य यन्मया ।
किमिच्छके प्रतिज्ञातं तुभ्यं मातुः कृते पुरा ॥ ४ ॥
इत्युक्त्वापितुरुत्सङ्गे तं कृत्वातनयंततः । यथावृत्तमशेषं स कथयामासतस्यतत्
स परिष्वज्य तं पौत्रमानन्दास्राविलेक्षणः ।
सभाग्योऽस्मीत्यथात्मानं प्रशशंस पुनः पुनः ॥ ६ ॥
ततः सोऽर्घ्यादिना सम्यक् गन्धर्वान् समुपागतान् ।
सम्मानयामास मुदा विस्मृतान्यप्रयोजनः ॥ ७ ॥
ततःपुरे महानासीदानन्दः पौरवेश्मसु । अस्माकंसन्ततिर्जातानाथस्येतिमहामुने।
हृष्टपुष्टे पुरे तस्मिन् गीतवाद्यैर्वराङ्गने ! ।

विलासिन्योऽतिचार्वङ्ग्यो ननृतुर्लास्यमुत्तमम् ॥ ९ ॥
राजा च द्विजमुख्येभ्यो रत्नानि च वसूनि च ।
गावो वस्त्राण्यलङ्कारानददद्धृष्टमानसः ॥ १० ॥
ततः स ववृधे चन्द्रे शुक्लपक्षे यथा शशी ।
पितृणां प्रीतिजनको जनस्यैवंच सोऽभवत् ॥ ११ ॥
आचार्याणां सकाशात् स प्राग्वेदान् जगृहे मुने ! ।
ततः शस्त्राण्यशेषाणि धनुर्वेदं ततः परम् ॥ १२ ॥
कृतोद्योगोयदासोऽभूत् खड्गकार्मुकवस्तुनि । अन्येषुचतथावीर शस्त्रेषुविजितश्रमः
ततोऽस्त्राणि स जग्राह भार्गवाद् भृगुसम्भवात् ।
विनयावनतो विप्र! गुरौ प्रीतिपरायणः ॥ १४ ॥
गृहीतास्त्रः कृतीवेदे धनुर्वेदस्य पारगः । निष्णातः सर्वविद्यासु न बभूव ततः परः
विशालाऽपि सुताकार्त्तामुपलभ्याखिलामिमाम् ।
हृपतिभरविस्तोऽभूद्रौद्विनत्य च योग्यताम् ॥ १६ ॥
अथ राजा सुतमुखं दृष्ट्वा प्राप्तमनोरथः ।
यज्ञाननेकान् निष्पाद्य दत्त्वा दानानि चार्थिनाम् ॥ १७ ॥
कृताद्योगश्रियो युक्तः सवर्णं रमतो महीम् । परिपालरारिविजयीयलबुद्धिसमन्वितः
सयियासुवनं पुत्रमवाक्षितमभाषत । पुत्रवृद्धोऽस्मि गच्छामि वनं राज्यं गृहाण मे
कृतार्थोऽस्मि नास्त्यन्यत् किञ्चिन् त्वदभिषेचनात् ।
सुनिष्पन्नमतो राज्यं त्वं गृहाण मयार्पितम् ॥ २० ॥
इत्युक्तः पितरप्राहमोऽवीक्षिन्नृपनन्दनः । प्रश्रयावनतो भूत्वा यियासुस्तपसेवनम्
नाऽहं तात ! करिष्यामि पृथिव्याः परिपालनम् ।
नापैति हीर्मे मनसो राज्येऽन्यं त्वं नियोजय ॥ २२ ॥
तातेनमोक्षितो यद्बो न स्वशौर्यादहंयतः । ततः कियत्पौरुषं मे पुरुषैः पाल्यते मही
योऽहं न पालनायाऽऽत्मनोऽपि वसुन्धराम् ।

स कथं पालयिष्यामि राज्यमन्यत्र विक्षिप ॥ २४ ॥

मन्त्री स धर्मः पुरुषोयश्चान्येनावद्रुह्यते ।

आत्माऽमोहाय भवतो बन्धनाद्येन मोक्षितः ॥

सोऽहं कथं भविष्यामि स्त्रीसधर्मा महीपतिः ॥ २५ ॥

स्त्रियः पुमान्भवेद्भर्ता यः शूरः स महीपतिः ।

पितोवाच

न भिन्न एव पुत्रस्य पितापुत्रस्तथा पितुः ।

नान्येन मोक्षितो वीर ! यस्त्वं पित्रा विमोक्षितः ॥ २६ ॥

पुत्र उवाच

हृदयं नान्यथानेतुं मया शक्यं नरेश्वर!। हृदये हीर्ममातीव यस्त्वहं मोक्षितस्त्वया

पित्रोपात्तां श्रियं भुङ्क्ते पित्रा कृच्छ्रात् समुद्धृतः ।

विज्ञायते च यः पित्रा मानवः सोऽस्तु नो कुले ॥ २८ ॥

स्वयमर्जितवित्तानां ख्यातिं स्वयमुपेयुषाम् ।

स्वयं निस्तीर्णकृच्छ्राणां या गतिः साऽस्तु मे गतिः ॥ २९ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इत्याह बहुशः पित्रा यदाप्युक्तोऽभ्यसौ मुने! । तदातस्यसुतंराज्येमरुत्तमकरोन्नृप

स पित्रा समनुज्ञातं राज्यं प्राप्य पितामहात् ।

चकार सम्यक् सुहृदामानन्दमुपपादयन् ॥ ३१ ॥

राजा करन्धमश्चापि वीरामादाय तां तथा ।

वनं जगाम तपसे यतवाक्कायमानसः ॥ ३२ ॥

तत्र वर्षसहस्रं च स तपस्तप्त्वा सुदुश्चरम् ।

विहाय देहं नृपतिः शक्रस्याप सलोकताम् ॥ ३३ ॥

साऽस्य पत्नी तदावीरा वर्षाणामपरंशतम् । तपश्चचार विप्रर्षे!जटिला मलपङ्किनी

सालोक्यमिच्छती भर्त्तुः स्वर्गतस्य महात्मनः ।

फलमूलकृताहारा भागवाश्रमसंश्रया । द्विजातिपत्नीमध्यस्था द्विजशुश्रूषणादृता
इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे मरुत्तचरित्रवर्णननामाऽ
ष्टाविंशत्यधिकशततमोऽध्याय ॥ १२८ ॥

एकोनत्रिंशदधिकशततमोऽध्याय·

मरुत्तचरित्रवर्णनम्

क्रौष्टुकिरुवाच

भगवन्! विस्तरात् सर्वं ममैतत्कथितं त्वया ।
करन्धमस्य चरितमवीक्षितचरितञ्च यत् ॥ १ ॥
आवीक्षितस्य नृपतेर्मरुत्तस्य महात्मन । श्रोतुमिच्छामि चरितं श्रयतेऽसोऽतिचेष्टित
चक्रवर्त्ती महाभाग शूर कान्तो महामति ।
धर्मविच्चमहत्स्थैव सम्यक् पालयिता भुव ॥ ३ ॥

मार्कण्डेय उवाच

स पित्रा समनुज्ञात राज्यं प्राप्य पितामहात् ।
धर्मत पालयामास पिता पुत्रानिवौरसान् ॥ ४ ॥
इयाज सुबहून् यज्ञान् यथावत् स्वाप्तदक्षिणान् ।
ऋत्विक्पुरोहितादेशादनन्यचित्तो (ह्यनिर्विण्णो) महीपति ॥ ५ ॥
तस्याप्रतिहतं चक्रमासीद्द्वीपेषु सप्तसु । गतिश्चाप्यनवच्छिन्नाऽस्य पातालजगदिषु
तत्र प्राप्यधनधिर्यं यथावत्स्वक्रियापर । अयजत् स महायज्ञैर्देवानिन्द्रपुरोगमान्
इतर च यथा वर्णा स्वे स्वे कर्मण्यतन्द्रिता ।
तदुपात्तधनाश्च कृ रिणपूर्त्तादिका क्रिया ॥ ७ ॥
पाल्यमाना महीतेन मरुत्तेन महात्मना । पस्पर्द्धं त्रिदशावासमधाम्निर्मिद्विजसत्तम

तेनातिशायिताः सर्वे केवलं न समीक्षितः।
यज्विना-देवराजोऽपि शतयज्ञाभिसन्धिभिः ॥ १० ॥
ऋत्विक् तस्य तु सम्वर्त्तो बभूवाङ्गिरसः सुतः।
भ्राता बृहस्पतेर्विप्र! महात्मा तपसां निधिः ॥ ११ ॥
सौवर्णोमुञ्जवान्नामपर्वतःसुरसेवितः। पातितंतेनतच्छृङ्गं हृतं (कृते)तस्यमहीपतेः
तेन यस्याखिलं यज्ञे भूमिभागादिकं द्विज!।
प्रासादाश्च कृताः शुभ्रास्तपसा सर्वकाञ्चनाः ॥ १३ ॥
गाथाश्चाप्यत्रगायन्तिमरुत्तचरिताश्रयाः। सातत्येनर्षयःसर्वेकुर्वन्तोऽध्ययनं यथा
मरुत्तेन समो नाभूद्यजमानो महीतले। सदः समस्तं यद्यज्ञे प्रासादाश्चैव काञ्चनाः
अमाद्यदिन्द्रः सोमेन दक्षिणाभिर्द्विजातयः।
विप्राणां परिवेष्टारः शक्राद्यास्त्रिदशोत्तमाः ॥ १६ ॥
यथायज्ञे मरुत्तस्य तृप्तास्सर्वे महीपतेः। सुवर्णमखिलं त्यक्तं रत्नपूर्णगृहे द्विजैः ॥
प्रासादादि समस्तञ्च सौवर्णन्तस्य यत्कृतौ।
त्रयो वर्णा ह्यलभ्यन्त तस्मात्केचित्तथा ददुः ॥ १८ ॥
[तैनत्यक्तेनशिष्टायेजनाःपूर्णमनोरथाः। तेऽपि यज्ञान् यजन्तेस्मदेशेदेशेपृथक्पृथक्
तस्यैवंकुर्वतोराज्यंसम्यक् पालयतःप्रजाः। तपस्वीकश्चिदभ्येत्यतमाहमुनिसत्तम!
पितुर्मातातवाहेदं दृष्ट्वातापसमण्डलम्। विषाभिभूतमुरगैर्मदोन्मत्तैर्नरेश्वर! ॥२०
पितामहस्ते स्वर्यातः सम्यक् सम्पाल्य मेदिनीम्।
पिता तवतथाशक्तोहित्वाग्रामंवनंगतः। तपश्चरणशक्ताऽहमिह चौर्वाश्रमे स्थिता
साऽहं पश्यामिवैकल्यं तव राज्यं प्रशासतः। पितामहस्यतेनाभूद्यत्पूर्वंप्राश्नतेनृप!
नूनं प्रमत्तो भोगेषु सक्तो वाऽविजितेन्द्रियः।
चारान्धता यतस्तेषां दुष्टादुष्टं न वेत्सि यत् ॥ २३ ॥
पातालादभ्युपेतैस्तुभुजगैर्दंशशालिभिः। दष्टामुनिसुता सप्त दूषिताश्चजलाशयाः
स्वेदमूत्रपूरीषेण दूषितञ्च हुतं हविः। अपराधं समुद्दिश्यदत्तो नागवलिश्चिरात ॥

एते समर्थामुनयो मत्स्मोक्त्तं भुजङ्गमान् ।
किन्त्वेषा नाधिकारोऽत्र त्वमेवात्राऽधिकारवान् ॥ २[illegible] ॥
तावत्सुख भूपतिर्भोगान् प्राप्यते नृप ! । अभिषेकजल यावन्मूर्ध्नि विनिपात्यते
कानि मित्राणि क शत्रुर्मम शत्रोर्बलं कियत् ।
कोऽहं के मन्त्रिणः पक्षे के वा भूपतयो मम ॥ २८ ॥
[कियान्कोशोऽथ किम्वा कोऽनुरक्तोजनोमम ।]
विरक्तो वा परैर्भिन्न एषामपि कीदृश । क मत्पुरे नगरे विषये वा जनो मम
धर्मधर्मोश्रयो मूढ क [illegible] यत्नतः ।
को दण्ड्यः परिपाल्य क के वा (कां) वेक्ष्या नरा मया ॥ ३० ॥
मनुष्येदनया दृष्टदेशकालमवेक्ष्यता । चाराश्च चारयेद्वर्यैरज्ञातान् भूपतिर्भवेः ॥
सचिवादिषु सर्वेषु चरान्दधान्मर्हीपतिः । [illegible] भूपतिर्नित्य [illegible]
नयेद्दिन तथा रात्रिं न तु भोगपरायणः । राज्ञां शरीरग्रहणं न भोगाय महीपते !
क्लेशाय महते पृथ्व्या स्वधर्मपरिपालने । सम्यक् पालयतः पृथ्वीं स्वधर्मज्ञ महीपते
इह क्लेशो महान् स्वर्गपरमसुखमक्षयम् । तदेतदनुभूयत्व (स्व) हित्वा भोगान्नरेश्वर !
पालनाय क्षिते क्लेशमङ्गीकर्तुमिहार्हसि ।
इति श्रुत्वर्षीणां यदुक्तमत्र त्वयि शासति ॥ ३१ ॥
भुक्तहेतुक भूप ! चाराश्चो नापि वेद्मि तत् ।
वध्यताश्च विमुक्तेन दुष्टे दण्डो निपात्यताम् ॥ ३७ ॥
शिष्टान् पालय राजस्त्व धर्मषड्भागमाप्स्यसि ।
अरक्षन् पापमखिलं दुष्टैरविनयात् कृतम् ॥ ३८ ॥
समवाप्स्यस्यसन्दिग्ध यदिच्छसि कुरुष्व तत् ।
एतन्मयोक्तं सकलं यत्तदाह पितामही ॥
कुरुष्वैव स्थिते यत्ने रोचते वसुधाधिप ! ॥ ३६ ॥
इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे मरुत्तचरित्रवर्णननामैकोनत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥

त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

नागैर्मरुत्तमातुःपार्श्वेप्रार्थनकरणम्

मार्कण्डेय उवाच

इति तापसवाक्यं स श्रुत्वा लज्जापरो नृपः ।
धिङ्मां चारान्धमित्युक्त्वा निःश्वस्य जगृहे धनुः ॥ १ ॥
ततः सत्वरितं गत्वा तमौर्वस्याश्रमंप्रति । ववन्देशिरसावीरां मातरं पितुरात्मनः
तापसांश्च यथान्यायं तैश्चाशीर्भिरभिष्टुतः ।
दृष्ट्वा च तापसान् सम नागैर्दष्टान् सुतान् भुवि ॥ ३ ॥
निनिन्दात्मानमसकृत् पुरस्तेषांमहीपतिः । उवाचचैतदद्याहं मद्वीर्यमवमन्यताम्
यत्करोमि भुजङ्गानां दुष्टानां ब्राह्मणद्विषाम् ।
तत्पश्यतु जगत् सर्वं सदेवासुरमानुषम् ॥ ५ ॥

मार्कण्डेय उवाच

इत्युक्त्वा जगृहे कोपादस्त्रं सम्वर्तकं नृपः ।
नाशायाशेषनागानां पातालोर्व्वीविचारिणाम् ॥ ६ ॥
तेजज्वालसहसानागलोकःसमन्ततः । महास्त्रतेजसाविप्र! दह्यमानोनिवारितःतत
हा हा ! तातेति हा ! मातर्हा हा ! वत्सेतिसम्भ्रमे ।
तस्मिन्नस्त्रकृते वाचः पन्नगानामथाऽभवन् ॥ ८ ॥
केचित् ज्वलद्भिः पुच्छाग्रैः फणैरन्यभुजङ्गमाः ।
गृहीतपुत्रदाराश्च त्यक्ताभरणवाससः ॥ ९ ॥
पातालमुत्सृज्य ययुःशरणंभामिनींतदा । मरुत्तमातरं पूर्वं यया दत्तं तदाऽभयम्
तामुपेत्योरगाः सर्वेसप्रणामंभयातुराः । सगद्गदमिदंप्रोचुः स्मर्यतां नः पुरोदितम्
प्रणम्याभ्यर्चितं पूर्वं यदस्माभीरसातले ।

तस्य कालोऽयमायातस्त्राहि वीरप्रजायिनि ॥ १२ ॥
पुत्रो निवार्यतां राज्ञि प्राणैः सायोज्यमस्तु नः ।
दह्यते सकलो लोको नागानामस्त्रवह्निना ॥ १३ ॥
पच्यमानदह्यमानानामस्माकं तनयेन ते । त्वामृते शरणं नान्यत् कृपां कुरु यशस्विनि ॥

मार्कण्डेय उवाच

इति श्रुत्वा वचस्तेषां सस्मृत्वा दीनं च भाषितम् ।
भर्तारमाह सा साध्वी ससम्भ्रममिदं वचः ॥ १५ ॥
पूर्वमेव तवाख्यातं पाताले यद्भुजङ्गमैः । प्रोक्तमभ्यर्थनापूर्वं ममाभीप्सितं प्रति ॥
तदिमेऽभ्यागता भीता दह्यन्तेऽस्यनेन समाः । मामनेशरणं पूर्वं दत्तमेभ्यो मयाऽभयम् ॥
येनाशरणमापन्नाः पुनस्त्वां शरणमागताः । अस्तु यावदवश्यं यातास्ते शरणं तव ॥
तन्निवारय पुत्रस्य मरुत्त वधमात्मनः । मया चाभ्यर्थितोऽवश्यं शममभ्युपयास्यति ॥

राजोवाच

महापराधे नियतं मरुत्तः क्रोधमागतः । दुर्निवारमहं मन्ये तस्य क्रोधं सुतस्य ते ॥

नागा ऊचुः

शरणागतास्त्वप्रमादं क्रियतां नृप । क्षत्रस्यार्तपरित्राणनिमित्तं शस्त्रधारणम् ॥

मार्कण्डेय उवाच

नागानां तद्वचः श्रुत्वा भूतानां शरणैषिणाम् ।
तया चाभ्यर्थितः पत्न्या प्राहावीक्षित् महायशाः ॥ २२ ॥
गत्वाऽभ्यर्थामि तं भद्रे तनयं त्वरयाऽतः । परित्राणाय नागानां न्याय्याश्च शरणागताः ॥
नोपसंहरते सोऽस्त्रं यदि मद्वचनान्नृप । तदस्त्रं वारयिष्यामि तस्याहं तनयस्य ते ॥

मार्कण्डेय उवाच

ततो गृहीत्वा स धनुर्वीक्षित् क्षत्रियोत्तमः ।
भार्यया सहितः प्रायात् त्वरयान् भार्गवाश्रमम् ॥ २५ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे मरुत्तचरित्रवर्णनं नाम त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३०

एकत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

मरुत्तेनपितुःसम्वादवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

सतुतस्याः सुतंदृष्ट्वागृहीतवरकार्मुकम् । धनुःशरञ्चतस्योग्रंज्वालाव्याप्तदिगन्तरम्
उद्गिरन्तं महावह्निं दीपिताखिलभूतलम् । पातालान्तर्गतं प्राप्तमस्त्रं घोरभीषणम्
स तं दृष्ट्वा महीपालं भृकुटीकुटिलाननम् । माक्रुधस्त्वं मरुत्तास्त्रमुपसंह्रियतामिति
प्रहासकृतत्वरालुप्तवर्णक्रममुदारधीः । सनिशम्यगुरोर्वाक्यं दृष्ट्वा तत्र पुनः पुनः ॥
गृहीतकार्मुकः पित्रोःप्रणिपत्यसगौरवम् । प्रत्युवाचापराद्धामेसुभृशं पन्नगाःपितः
शासतीमां मयि महीं परिभूय बलं मम । गत्वाश्रममुपागम्य दष्टा मुनिकुमारकाः॥
ऋषीणामाश्रमस्थानामर्मी रामधर्मापते! । मयिशासतिदुर्वृत्तैर्दूषितानिहवींषि च
जलाशयास्तथाप्येतैःसर्वं एवहिदूषिताः । तदेतत्कारणं किञ्चिन्न वक्तव्यंत्वयापितः
न निवारयितव्योऽहं ब्रह्मघ्नान् प्रति पन्नगान् ॥ ८ ॥

अवीक्षिदुवाच

यद्येभिर्निहताविप्रायास्यन्तिनरकंमृताः । ममैतत्क्रियतांवाक्यं चिरमास्त्रप्रयोगतः

मरुत्त उवाच

नाहमेषांक्षमिष्यामि दुष्टानामपराधिनाम् । अहमेवगमिष्यामिनरकंयद्विपापिनाम्
न निग्रहे यतास्येषां मां निवारय मा पितः !॥ १० ॥

अवीक्षिदुवाच

मामेते शरणं प्राप्ताः पन्नगा मम गौरवात् ।
उपसंह्रियतामस्त्रमलं कोपेन ते नृप !॥ ११ ॥

मरुत्त उवाच

नाहमेषांक्षमिष्यामिदुष्टानामपराधिनाम् । स्वधर्मंसुहृत्यकथंकरिष्यामिवचस्तव

दण्ड्ये निपातयन् दण्डं भूप शिष्टांश्च पालयन् ।
पुण्यल्लोकानवाप्नोति नरकांश्चाप्युपेक्षकः ॥ १३ ॥

मार्कण्डेय उवाच

एवं स बहुशः पित्रा वार्यमाणोऽप्यगान्मृगम् । नोपमहन्नेमोऽत्यर्थं ततोऽसौ पुनरब्रवीत्
हिंससे पशवान् भीतान् मदीनान् शरणं गतान् ।
वार्यमाणोऽपि तस्मात्ते करिष्यामि प्रतिक्रियाम् ॥ १५ ॥
न राज्यमन्यथाप्नोति न स्वर्गं कोऽप्यत्रचिद् भुवि ।
समाश्रितं मुमुक्षुं च परिरक्ष किमन्तर ॥ १६ ॥
ततः कार्मुकमादाय कोपनाज्ञाविलोचनः । मत्तोऽसि रक्ष समाहकालस्य मुनिपुङ्गवः
ततो ज्वालापराग्नेयमस्त्रमुत्तमम् ।
कालाग्निसंज्ञं महाघोरं योजयामास कार्मुके ॥ १८ ॥
ततश्चक्षोभ जगती सम्यग्नाग्निसमप्रभा ।
साब्धिशैलाऽखिला विप्र कालस्यास्त्रे समुद्यते ॥ १९ ॥

मार्कण्डेय उवाच

कालाग्निसमुत्पन्नं पित्रा भद्र सोऽपि वीक्ष्य तत् ।
प्राहोर्ध्वमन्त्रमेतन्मे दुष्प्राप्यस्त्रमुत्तमम् ॥ २० ॥
न त्वद्वधाय कालाग्निं मयि मुञ्चति किं भवान् ।
सन्धत्तोऽसि मुने मद्वाक्यात्कर तव ॥ २१ ॥
मया कार्यं महाभाग प्रजानां परिपालनम् ।
स्वयं विचार्य कस्मात्तत् पथ्यात्परमुत्तमम् ॥ २२ ॥

अवीक्षिदुवाच

शरणागतसत्यकधर्मत्वमितायथम् । नरकगामिनस्तस्य त्वंनमेनीयन् विमाक्यसे
मा मा हत्याऽभ्यर्थयत जहि दुष्टानितोऽगतान् ।
त्वां मां हत्वाऽद्य मन्येषु रक्षिष्यामि महोरगान् ॥ २५ ॥
धिक् तस्य जीवितं पुंसः शरणार्थिनमागतम् ।

यो नार्तमनुगृह्णाति वैरिपक्षमपि ध्रुवम् ॥ २५ ॥
क्षत्रियोऽहमिमे भीताः शरणं मामुपागताः ।
अपकर्त्ता त्वमेतेषां कथं वध्यो न मे भवान् ॥ २६ ॥

मरुत्त उवाच

मित्रं वा बान्धवो वाऽपि पिता वा यदि वा गुरुः ।
प्रजापालनविघ्नाय यो हन्तव्यः स भूभृता ॥ २७ ॥
सोऽहन्ते प्रहरिष्यामि न क्रोद्धव्यं त्वया पितः !।
स्वधर्मः परिपाल्यो मे न मे क्रोधस्तवोपरि ॥ २८ ॥

मार्कण्डेय उवाच

ततस्तौ निश्चितौ दृष्ट्वा परस्परवधं प्रति । समुत्पत्यान्तरेतस्थुर्मुनयो भार्गवादयः
ऊचुश्चैनंन मोक्तव्यं त्वयास्त्रंपितरं प्रति । त्वयाप्यनायंहन्तव्यःपुत्रःप्रख्यातचेष्टितः

मरुत्त उवाच

मया दुष्टा निहन्तव्याः सन्तो रक्ष्या महीक्षिता ।
इमे क्व दुष्टा भुजगाः कोऽपराधोऽत्र मे द्विजाः !॥ ३१ ॥

अवीक्षिदुवाच

शरणागतसन्त्राणं मयाकार्यमयञ्च मे । अपराध्यःसुतोविप्रायोहन्तिशरणागतान्

ऋषय ऊचुः

इमे वदन्ति भुजगास्त्रासलोलविलोचनाः ।
सञ्जीवयामस्तान् विप्रान् ये दष्टा दुष्टपन्नगैः ॥ ३३ ॥
तदलं विग्रहेणोभौ राजवर्यौ प्रसीदताम् । उभावपिविनिमूढप्रतिज्ञौ धर्मकोविदौ

मार्कण्डेय उवाच

सा तु वीरा समभ्येत्यपुत्रमेतदभाषत । मद्वाक्यादेव ते पुत्रो हन्तुंनागानकृतोद्यमः)
तन्निष्पन्नं यदा विप्रास्ते जीवन्ति तथा मृताः ।
सञ्जीवन्तश्च मुच्यन्ते यद्द युष्मच्छरणं गताः ॥ ३६ ॥

भामिन्युवाच

अहमभ्यर्थिता पूर्वमेभिः पातालसंस्थितैः । तन्निमित्तमयं भर्ता मयाप्यत्र नियोजितः
तदेतदार्यनिर्वृत्तमुभयोरपि शोभनम् । मम भर्तुश्च पुत्रस्य त्वत् पौत्रस्यात्मजस्य च

मार्कण्डेय उवाच

ततः सर्वाश्चमापुत्स्नात् विप्रास्ते भुजङ्गमाः ।
दिव्यैरोषधिजातैश्च विषस्य हरणेन च ॥ ३९ ॥

पित्रोर्नत्वा च चरणौ स ततो जगतीपतिः । सकलत्रस्ततः प्रीत्या परिष्वज्येदमब्रवीत्
मानद्य मम यावत्त्वा चिरपाल्यमिमेदिनीम् । पुत्रपौत्रैश्च मोदस्व मायानेनमन्तु चिरम्
ततो द्विजैरनुज्ञातो वीरया च महेश्वरी । समारुह्य रथं सार्धमात्मिर्नीत्यपुरहूता ॥

वीराऽपि कृत्वा सुमहत्तपो धर्मभृतां वर ।
भर्तुः सलोकतां प्राप्ता महाभागा पतिव्रता ॥ ४३ ॥
मरुत्तोऽपि यथान्यायं धर्मेण परिपालनम् ।
विनिर्जितारिषड्वर्गो मेदिनीं बुभुजे नृप ॥ ४४ ॥

तस्य पत्नी महाभागा विदर्भतनया तथा । प्रभावती सुवीरस्य सौवीरी चाभवत्सुता

सुकेशी केतुवीर्यस्य मागधस्यात्मजाऽभवत् ।
सुता च सिन्धुवीर्यस्य मद्रराजस्य केकयी ॥ ४६ ॥
केकयस्य च सैरन्ध्री सिन्धुमर्तुर्वपुष्मती ।
चैदिराजसुता चान्या भार्या तस्य सुशोभना ॥ ४७ ॥
तासां पुत्रास्तस्य चाभवन् भूभृतोऽष्टादश द्विज ।
तेषां प्रधानो ज्येष्ठश्च नरिष्यन्तः सुतोऽभवत् ॥ ४८ ॥

वीर्यो मरुत्तोऽभून्महाराजो महाबलः । तस्यासमनिरतं चक्रमासीद् द्वीपेषु सप्तसु

तस्य तुल्योऽपरो राजा न भूतो न भविष्यति ।
तस्यविक्रमयुक्तस्य राजर्षेरमितौजसः ॥ ५० ॥
तस्यैतच्चरितं श्रुत्वा मरुत्तस्य महात्मनः ।

जन्म प्राप्य द्विजश्रेष्ठ! मुच्यते सर्वकिल्बिषैः ॥ ४१ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे मरुत्तचरितसमाप्तिवर्णनं नामैकत्रिंशदधिक-
शततमोऽध्यायः ॥ १३१ ॥

द्वात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

नरिष्यन्तचरितवर्णनम्

क्रौष्टुकिरुवाच

मरुत्तचरितं कृत्स्नं भगवन् कथितं त्वया । तत्सन्ततिमशेषेण श्रोतुमिच्छाम्यहं ततः

तत्सन्ततौ स्थिताश्च ये राजानो वीर्यशालिनः ।
तानहं श्रोतुमिच्छामि त्वया ख्यातान्महामुने ॥ २ ॥

मार्कण्डेय उवाच

नरिष्यन्त इति ख्यातो मरुत्तस्याभवत् सुतः ।
अष्टादशानां पुत्राणां स ज्येष्ठः श्रेष्ठ एव च ॥ ३ ॥

वर्षाणाञ्च सहस्राणि सप्तति दश पञ्च च । बुभुजे पृथिवीं कृत्स्नां मरुत्तः क्षत्रियर्षभः
कृत्वा राज्यं स्वधर्मेण इष्ट्वा यज्ञाननुत्तमान् । नरिष्यन्तं सुतं ज्येष्ठमभिषिच्य ययौ वनम्

एकाग्रचित्तः स नृपस्तप्त्वा तत्र तपो महत् ।
आरुरोह दिवं विप्र यशसाऽऽवृत्य रोदसी ॥ ६ ॥

नरिष्यन्तः सुतः सोऽस्य चिन्तयामास बुद्धिमान् ।
पितुर्वृत्तं समालोक्य तथान्येषाञ्च भूभृताम् ॥ ७ ॥

अत्र वंशे महात्मानो राजानो मम पूर्वजाः ।
यज्विनो धर्मतः पृथ्वीं पालयामासुरूर्जिताः ॥ ८ ॥

दातारश्चापि वित्तानां संग्रामेष्वनिवर्त्तिनः ।
नैषां कश्चिदिह शक्तस्त्वनुयातुं महात्मनाम् ॥ ९ ॥
किन्तु तैः न कृतं कर्म धर्म्यमाहवनादिभिः ।
तदहं कर्तुमिच्छामि यच्च नास्ति करोमि किम् ॥ १० ॥
धर्मतः पाल्यते पृथ्वी को गुणोऽत्र महीपतेः ।
असम्यक् पालनात् पापी नरेन्द्रो नरकं व्रजेत् ॥ ११ ॥
सति वित्ते महायज्ञाः कर्तव्याः पृथ्वीभृता ।
दातव्यश्चात्र किञ्चिच्च सीदतामीश्वरो गतिः ॥ १२ ॥
आभिजात्यं तथा दृष्ट्वा कोपश्चारिजनाश्रयः ।
कारयन्ति स्वधर्माश्च सङ्ग्रामादपलायनम् ॥ १३ ॥
तत्तन्मय यथा सम्यग्पूर्वैः पूर्वैः कृतम् । पितृपितामहैस्तनत्वथा सत्वेन धार्यते
तदहं किं करिष्यामि यच्च तैः पूर्वजैः कृतम्
ये यज्विनो धरा दान्ताः संग्रामाद्यानिवर्त्तिनः ॥ १०
अहं संग्रामसंसर्गाद्विमनाद्दितपौरुषाः कर्मणा ह्ययतिष्यामि कल्मैः पानभिसन्धितुम्
अथ वा तैः स्वयं यथा कृता पूर्वजनेश्वरैः ।
अपि श्रमद्भिरनायैस्तु कारितास्तत्करोम्यहम् ॥ १७ ॥
मार्कण्डेय उवाच
इति सञ्चिन्त्य वचनं मघवन्नरैकनरेश्वरः । यादृशामथकारान्यो वित्तोत्सर्गोपशोभितम्
द्विजाना जीवनायालं दत्त्वा तु सुमहाधनम् । ततः शतगुणमवाप्यश्चार्थमददन्नृप
गावो वस्त्राण्यलङ्कारं धान्यागारादिकं तथा ।
तथा प्रत्येकमददत्तथा पृथ्वीनिवासिनाम् ॥ २० ॥
ततस्तत यदा यत्र प्रारब्धोऽभूत्सुरापुनः । प्रारब्धेसमश्वेयष्टुं मनोनालभतद्विनान
यान् यान् वृणोति स नृपो विप्रानार्त्विज्यकर्मणि ।
ते ते तमूचुश्चाय चयम यज्ञ दीक्षिताः ॥ २२ ॥

अन्यं चरय यद्वित्तं त्वयाऽस्माकं विवर्जितम् ।
तस्यान्तो नास्ति यज्ञेषु दद्यास्त्वं नृपते ! धनम् (कथम्) ॥ २३ ॥

मार्कण्डेय उवाच

नचाप ऋत्विजो विप्रांस्तदाशेषक्षितीश्वरः ! यज्ञेष्वथ तदा दानं स दातुमुपचक्रमे
तथापि जगृहुर्नैव धनसम्पूर्णमन्दिराः । द्विजायदातुं भूयोऽसौ निर्विण्ण इदमब्रवीत्
अहोऽतिशोभनं पृथ्व्यां यद्विप्रो नाधनः क्वचित् ।
अशोभनश्च यत्कोषो विफलोऽयमयज्विनः ॥ २६ ॥
नार्त्विज्यं कुरुतेकश्चिद्यजमानोऽखिलोजनः । द्विजानांधनोदानं ददतांस्मप्रतीच्छते

मार्कण्डेय उवाच

ततः कांश्चिद् द्विजान् भक्त्या प्रणिपत्य पुनः पुनः ।
स्वयज्ञे ऋत्विजश्चक्रे ते प्रचक्रुर्महामखम् ॥ २८ ॥
अत्यद्भुतमिदञ्चासीद्यदा तस्य महीपतेः ।
सयज्ञोऽभूत्तदा पृथ्व्यां यजमानोऽखिलो जनः ॥ २६ ॥
द्विजन्मनामभूत्रासीत् सदस्यस्तत्र कश्चन ।
यजमाना द्विजा केचित् केचित् तेषान्तु याजकाः ॥ ३० ॥
नरिष्यन्तो नरपतिरियाज स यदातदा । तत्प्रदातुर्धनैर्यागं कुर्युः पृथ्व्यामशेषतः
प्राच्यां कोट्यस्तु यज्ञानामासन्नष्टादशाधिकाः ।
प्रतीच्यां सप्त वै कोट्या दक्षिणायां चतुर्दश ॥ ३२ ॥
उत्तरस्याञ्च पञ्चाशदेककालं तदाऽभवन् ।
मुने ! ब्राह्मण ! यज्ञानां नरिष्यन्तो यदाऽयजत् ॥ ३३ ॥
एवंसराजाधर्मात्मा नरिष्यन्तोऽभवत्पुरा । मरुत्ततनयोविप्र! विख्यातबलपौरुषः

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे नरिष्यन्तचरित्रवर्णनं नाम
द्वात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३२ ॥

अथ त्रयस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

दमजन्मवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

नरिष्यन्तस्य तनयो नृपतिर्दमनामकः । शक्रस्येवबलं तस्य दयाशीलं मुनेरिव ।
बाभ्रव्यस्मिन्द्रसेनायां स जज्ञे तस्य भूभृतः ।
नव वर्षाणि जठरे स्थित्वा स मातुर्महायशाः ॥ २ ॥
यस्माद्दमयामास दमं मातरं जठरे स्थितः । दमनाम्नाऽभ्यधिना तस्मादस्यैव नाम तत् ।
ततस्त्रिकालविज्ञाता सहितः तस्य पुरोहितः । दम इत्यकरोन्नाम नरिष्यन्तसुतस्य तु ।
स दमो राजपुत्रस्तु धनुर्वेदमवाप्तवान् । वृषपर्वणो नरराजेन्द्र सकलास्त्राण्यवाप्तवान् ॥ ५ ॥
दुन्दुभेर्दैत्यपतेस्तु तपोवननिवासिनः । शक्राद्वेदानशेषांश्च ...
शस्त्रास्त्राण्यखिलान्यपि ।
तथार्ष्टिषेणाद्राजेन्द्रः योगमारमवाप्तवान् ॥ ७ ॥
तं स्वरूपमहात्मानं शीलाढ्यं महाबलम् ।
स्वयम्वरे कृता पिता जग्राह सुमना पतिम् ॥ ८ ॥
सुता दशार्णाधिपतेश्चारुकर्मणः । पश्यतां स्वयमुतानां ये तदर्थमुपागताः ॥
तस्याश्च सानुरागोऽभून्मद्रराजस्य बैस्तु । सुमनायां महानादो महाधन्वस्य राजा ।
तथा विदर्भाधिपते पुत्रः सङ्क्रन्दनस्य च । वपुष्मान् राजपुत्रश्च महाधनुर्धराः ।
तत्पत्नीवृतं दृष्ट्वा दृष्टास्त्रिदमनस्य च । मन्त्रयामासुरन्योऽन्यं तथा कामविमोहिताः
समाकृष्य बलात्कन्यां गृहीत्वा रूपशालिनीम् ।
गृहं प्रयामस्तन्वीयमस्माकं यं वरिष्यति ॥ १३ ॥
सा तु कुलया धर्मरोहा स्वयम्बरविधानतः ।
तस्येच्छया नो भविष्यत्री भार्या धर्मोपपादिता ॥ १४

ः

अथनेच्छतिसाकश्चिदस्माकंमदिरेक्षणा। ततस्तस्यभवित्रीसायोदमंवातयिष्यति

मार्कण्डेय उवाच

इतिते निश्चयंकृत्वात्रयःपार्थिवनन्दनाः। जगृहुस्तांसुचार्वङ्गींदमपार्श्वानुवर्त्तिनीम्

ततः केचिन्नृपास्तेषां ये तत्पक्षा विचुक्रुशुः।

चुक्रुशुश्चापरे भूपाः केचिन्मध्यस्थतां गताः ॥ १७ ॥

ततो दमस्तान् भूपालानवलोक्य समन्ततः। अनाकुलमनावाक्यमिदमाह महामुने

दम उवाच

भो भूपा धर्मकृत्येषुयद्वदन्तिस्वयंवरम्। अधर्मो वाऽथवाधर्मो यदेभिर्गृह्यतेबलात्

यद्यधर्मो न मे कार्यमन्यभार्याभविष्यति। धर्मोवा तदलंप्राणैर्यै रक्ष्यन्तेऽरिलङ्घने

ततो दशार्णाधिपतिश्चारुधर्मानराधिपः। निःशब्दंकारयित्वाततस्सदःप्राहमहामुने

दमेन यदिदं प्रोक्तं धर्माधर्माश्रितं नृपाः।

तद्वदध्वं यथा धर्मो ममास्य च न लुप्यते ॥ २२ ॥

मार्कण्डेय उवाच

ततः केचिन्महीपालास्तमूचुर्वसुधाधिपम्।

परस्परानुरागेण गान्धर्वो विहितो विधिः ॥ २३ ॥

क्षत्रियाणां परमयं न विट्शूद्रद्विजन्मनाम्।

दममाश्रित्य निष्पन्नः स चास्या दुहितुस्तव ॥ २४ ॥

इति धर्माद्दमस्यैषा दुहिता तव पार्थिव !।

योऽन्यथा वर्त्तते मोहात् कामात्मा सम्प्रवर्त्तते ॥ २५ ॥

तथाऽपरे तदा प्रोचुर्महात्मानोहि भूभृताम्। पक्षेयेभूभृतोविप्र! दशार्णाधिपतेर्वचः

मोहात् किमाहुर्धर्मोऽयं गान्धर्वः क्षत्रजन्मनः।

न त्वेष शास्ता नान्यो हि राक्षसः शस्त्रजीविनाम् ॥ २७ ॥

बलादि मां योहरतिहत्वा तुपरिपन्थिनः। तस्यैवाशौराक्षसेनविवाहेनावनीश्वराः

प्रधानतर एषोऽत्र विवाहद्वितये मतः। क्षत्रियाणामतोधर्मोमहानन्दादिभिः कृतः

मार्कण्डेय उवाच

अथ प्रोचु पुनर्भूपा ये पूर्वमुदिता नृपा । परस्परानुरागेण जातिधर्माश्रित वच-

मत्य शस्त्रा राक्षसोऽपि क्षत्रियाणा परो विधि ।

किन्त्वसौ जनकस्वाम्ये कुमार्यानुमतो वर ॥ ३१ ॥

हत्वा नु पितृसम्बन्ध बलेन ह्रियते हि या ।

स राक्षसो विधि प्रोक्तो नान्य (स) भर्तृकरे स्थिता ॥ ३२ ॥

पश्यतासर्वभूपानामनयायद्गृहीतोऽयम् । गान्धर्वस्त्वेहनिष्पत्तौविवाहोराक्षसोऽनव-

विवाहितायां कन्यायां कन्यात्व नैव विद्यते ।

कन्यायाश्च विवाहेन सम्बन्ध पृथिवीश्वरा ॥ ३४ ॥

त इमे ये बलादेना दमादादातुमुद्यता ।

बलिनस्ते यदि नत कुर्वन्तु न तु साधु तम् ॥ ३०

मार्कण्डेय उवाच

तच्छ्रुत्वाऽसौदम कोपकषायीकृतलोचन । आरोपयामासधनुर्वचनञ्चेदमब्रवीत्

ममाऽपि भार्या बलिभि ,पश्यतो ह्रियते यदि ।

तत्कुलेन भुजाभ्या वा को गुण कल्पितजन्मन ॥ [illegible] ॥

धिङ्ममास्त्राणि धिक् शौर्यं धिक् शरान् धिक् शरासनम् ।

धिग् व्यर्थं मे कुले जन्म मरुत्तस्य महात्मन ॥ ३८ ॥

यदि भार्यामिमे मूढा ममादाय बलान्विता ।

प्रयान्ति जीवतो धिक् ता मम व्यर्थधनुष्मताम् ॥ ३९ ॥

इत्युक्त्वा तान्महीपालान् महानन्दमुखान् वशी ।

अथाब्रवीत्तदा सर्वान् महारिदमनो दम ॥ ४० ॥

एषातिशोभना बाला चार्वङ्गी मदिरेक्षणा ।

किन्तस्य जन्मना भार्या न यस्येय कुलोद्भवा ॥ ४१ ॥

इति सञ्चिन्त्यभूपालास्तथायतनमयुगे । यथाभिजित्य मामेता पत्नीकुरुतमानिन

इत्याभाष्य ततस्तत्र शरवर्षममुञ्चत । छादयन्पृथिवीपालांस्तमसेव महीरुहान् ॥

तेऽपि धीरा महीपालाः शरशक्त्यृष्टिमुद्गरान् ।
मुमुचुस्तत्प्रयुक्तांश्च दमश्चिच्छेद लीलया ॥ ४४ ॥

तेऽपि तत्प्रहितान् बाणान् तेनाज्ञप्ताः शरोत्करान् ।
चिच्छेद पृथिवीशानां नरिष्यन्तात्मजो मुने ! ॥ ४५ ॥

वर्त्तमाने तदा युद्धे दमस्य क्षितिपात्मजैः । प्रविवेश महानन्दः खड्गपाणिर्यतो दमः

तमायान्तं दमो दृष्ट्वा खड्गपाणिं महामृधे । मुमोच शरवर्षाणि वर्षाणीव पुरन्दरः

तदस्त्राणि ततस्तानि शरजालानि तत्क्षणात् ।
महानन्दः प्रचिच्छेद खड्गेनान्यानवञ्चयन् ॥ ४८ ॥

ततो रोषात् समारुह्य तं दमस्य तदा रथम् ।
महानन्दो महावीर्यो दमेन युयुधे सह ॥ ४९ ॥

बहुधा युध्यमानस्य महानन्दस्य लाघवात् । दमो मुमोच हृदये शरं कालानलप्रभम् ॥

तं लक्ष्ममात्मनोत्कृष्य विभिन्नेन ततो हृदि ।
दमं प्रति विचिक्षेप महानन्दोऽसिमुज्ज्वलम् ॥ ५१ ॥

पतन्तञ्चैनमुल्काभं शक्त्या चिक्षेप तं दमः । शिरो वै न सपत्रेण महानन्दस्य चाच्छिनत्

तस्मिन् हते महानन्दे प्राचुर्येण पराङ्मुखाः ।
बभूवुः पार्थिवास्तस्थौ वपुष्मान् कुण्डिनाधिपः ॥ ५३ ॥

दमेन युयुधे चासौ बलगर्वमदान्वितः । दाक्षिणात्यमहीपालतनयो रणगोचरः ॥

युध्यमानस्य तस्योग्रं करवालं सचैलवु । चिच्छेद सारथेश्चैव शिरः संख्ये तथा ध्वजम्

छिन्नखड्गो गदां सोऽथ जग्राह बहुकण्टकाम् ।
तामप्यस्य स चिच्छेद करस्थामेव सत्वरः ॥ ५६ ॥

यावदन्यत् समादत्ते स वपुष्मान् वरायुधम् ।
तावच्छरेण तं विद्ध्वा दमो भूमावपातयत् ॥ ५७ ॥

स पातितस्ततो भूमौ विह्वलाङ्गः सवेपथुः ।

विनिर्वृत्तमनिर्युद्धादुरभूच्च क्षितिपात्मज ॥ ५८ ॥
तमालोक्य तथाभूतमयुद्धमतिमात्मवान् ।
उत्सृज्याऽऽदाय सुमना सुमना प्रययौ दम ॥ ५९ ॥
ततो दशार्णाधिपतिः प्रीतिमानकरोत्तयोः ।
दमस्य सुमनायाश्च विवाहं विधिपूर्वकम् ॥ ६० ॥
कृतदारो दमस्तत्र दशार्णाधिपतेः पुरे ।
स्थित्वाऽल्पकालं प्रययौ सभार्यो निजमन्दिरम् ॥ ६१ ॥
दशार्णाधिपतेश्चासौ दत्त्वा नागांस्तुरङ्गमान् ।
रथगोऽश्वखरोष्ट्रांश्च दासीदासांस्तथा बहून् ॥ ६२ ॥
वस्त्रालङ्कारचापादि वरोपस्करमात्मनः ।
अन्यैस्तैश्च तथा भाण्डैः परिपूर्णं व्यसर्जयत् ॥ ६३ ॥
इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे दमचरित्रवर्णनन्नाम त्रयस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३३ ॥

चतुस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

दमचरित्रवर्णने दमस्य पितुर्वधानन्तरं तेन सह तन्मातुरग्निप्रवेशः

मार्कण्डेय उवाच

मनालब्ध्वा तथा पत्नीं सुमनां सुमहामुने । प्रणम्य स पितुः पादौ मातुश्च क्षितिपात्मज
मा पत्नी श्वशुरौ सुभ्रूर्नाम सुमना तदा । ताभ्यां तौ च तदा विप्र आशीर्भिरभिनन्दितं
महोत्सवश्च सञ्जज्ञे नरिष्यन्तस्य वै पुरे । कृतदारे च संप्राप्ते दशार्णाधिपतेः पुरा
सम्बन्धितं क्वार्णोऽशं जिताश्च पृथिवीश्वरान् । धृत्वा पुत्रेण सुमुदे नरिष्यन्तो महीपरि
लोऽपि रेमे सुमनया महाराजसुतो दम । वरोद्यानवनोद्देशप्रासादगिरिसानुषु

अथ कालेन महता रममाणा दमेन सा। अवाप गर्भमुमनादशार्णाधिपतेः सुता ॥
सोऽपि राजा नरिष्यन्तो भुक्तभोगो महीपतिः।
वयः परिणतिं प्राप्य दमं राज्येऽभिषिच्य च ॥ ७ ॥
वनं जगामेन्द्रसेना पत्नी चास्य तपस्विनी। वानप्रस्थविधानेन स तत्रसमतिष्ठत
दाक्षिणात्यः सुदुर्वृत्तःसंक्रन्दनसुतो वने। वपुष्मान्समृगान्हन्तुंययावल्पवनानुगः
स तं दृष्ट्वा नरिष्यन्तंतापसंमलपङ्किनम्। इन्द्रसेनाञ्च तत्पत्नीं तपसातिसुदुर्बलाम्
पप्रच्छ कस्त्वं भो विप्रः क्षत्रियो वा वनेचरः।
वानप्रस्थमनुप्राप्तो वैश्यो वा मम कथ्यताम् ॥ ११ ॥
ततो मौनव्रती भूपो न हितस्योत्तरंददौ। इन्द्रसेनात्वतन्सर्वमाचष्टास्मैयथातथम्
मार्कण्डेय उवाच
ज्ञात्वा तञ्च नरिष्यन्तं वपुष्मान् पितरं रिपोः।
प्राप्तोऽस्मीति वदन् कोपात् जटासु परिगृह्य च ॥ १३ ॥
हा हेति चेन्द्रसेनायां रुदन्त्यां वाष्पगद्गदम्।
चकर्ष कोपात् खड्गञ्च वाक्यञ्चेदमुवाच ह ॥ १४ ॥
निर्जितः समरे येन येन मे सुमना हृता। दमस्य तस्य पितरं हनिष्येऽवतु तं दमः
येनाखिलमहीपालपुत्राः कन्यार्थमागताः। अवधूता हनिष्येऽहं पितरं तस्य दुर्मतेः
योधनेषु स्वरूपेण दमो यस्य दुरात्मनः। सदमोवारयत्वेषहन्मितस्य रिपोर्गुरुम्
मार्कण्डेय उवाच
इत्युक्त्वा स दुराचारो वपुष्मानवनीपतिः।
क्रन्दन्त्यामिन्द्रसेनायां शिरश्चिच्छेद तस्य च ॥ १८ ॥
ततो धिग्धिङ् मुनिजनाश्चान्येचवनवासिनः। तमूचुःसचतंहत्वाजगामस्वपुरंवनात्
गते तस्मिन् विनिश्वस्यसेन्द्रसेनावपुष्मति। प्रेषयामासपुत्रस्यसमीपंशूद्रतापसम्
गच्छेथा आशु मे पुत्रं दमं ब्रूहि वचो मम।
अभिज्ञो ह्यसि मद्भर्तृवृत्तान्तं प्रोच्यतेऽत्र किम् ॥ २१ ॥

तथापि वाच्य पुत्रो मे यद्ब्रवीम्यतिदुःखिता ।
रुद्धुनामीदृशीं प्राप्ता विलोकयैता महीपते ॥ २२ ॥
मद्वक्त्राऽधिकृतो राजा चतुर्णां परिपालकः ।
त्वमाश्रमाणां किं युक्तं तापसान् यन्नरीक्षसि ॥ २३ ॥
भर्त्ता मम नरिष्यस्तस्तापसस्तस्तवर्ति स्थितः ।
चिलपन्त्यास्तथा नाथो यथा नाप्तिः तथा स्थितिः ॥ २४ ॥
आकृष्य केशेषु बलाद्दपराधविनाततः । हतोथपुष्पनाथवानतिमिति ने भूपतिर्गतः ॥
एवं स्थितेतत्नियमायथाधर्मोनलुप्यते । तथावनैश्वयत्तवश्रमतोऽस्मत्तापसीदम्
पिता वृद्धस्तपस्वी च नापराधेन दूषितः ।
निहतो येन यत्तस्य कर्तव्यन्तद्विचिन्त्यताम् ॥ २७ ॥
सन्ति ते मन्त्रिणो धीरा सर्वशास्त्रार्थवेदिनः ।
तैः सहालोच्य यत्कार्यमेवम्भूते कुरुष्व तत् ॥ २८ ॥
नास्माकमधिकारोऽत्र तापसानां नराधिप ।
कुरुष्वैतदितीत्थं त्वमेव भूपतिभाषितम् ॥ २६ ॥
विदूरथस्य जनको वधनेन यथा हतः । तथाय तव पुत्रस्य कुलं तेन विनाशितम्
जम्भस्यासुरराजस्य पिता क्षणे भुजङ्गमैः ।
तेनाप्यखिलपातालवासिनः पन्नगा हताः ॥ ३१ ॥
पराशरेण पितरि शक्तौ च रक्षसाऽऽहृतम् ।
श्रुत्वाऽग्नौ पातितं कृत्स्नं रक्षसामभवत् कुलम् ॥ ३२ ॥
अन्यस्यापि स्वपशस्य लङ्घना क्रियते हिया ।
ता नालं क्षत्रिय सोढुं किं पुनः पितृमारणम् ॥ ३३ ॥
नायं पिता ते निहतो नास्मिन् शस्त्रं निपातितम् ।
त्वामत्र निहतं मन्ये त्वयि शस्त्रं निपातितम् ॥ ३४ ॥
विभेत्यन्यद्धिकः शत्रुन्यस्त्येनवनौकसाम् । तवभूपस्यविग्रह्यमाविभेतुर्विभेतुवा

यथेयं लक्षणायुक्तायदस्मिंस्तत्समाचर। वपुष्मतिमहाराजे स भृत्यज्ञातिबान्धवे

मार्कण्डेय उवाच

इति सङ्क्रान्तसन्देशामिन्द्रसेना विसृज्य तम्।
पतिदेहमुपाश्लिष्य विवेशाग्निं मनस्विनी ॥ ३३ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे दमचरित्रवर्णनंनामचतुस्त्रिंशदधिक-
शततमोऽध्यायः ॥ १३४ ॥

पञ्चत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

दमस्यपितृघातिनेदण्डदातुं प्रतिज्ञावर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

इन्द्रसेनात्मनाङ्गनः स गत्वा शूद्रतापसः। समाचष्ट यथा पूर्वं दमायनिधनं पितुः
तापसेन समाख्यातं दमस्तेन पितुर्वधम्। क्रोधेनातीवजज्वालहविषेवाग्निरुक्षितः
स तु क्रोधाग्निना धीरो दह्यमानो महामुने। करंकरेणनिष्पिष्यवाक्यमेतदुवाचह
अनाथ इव मे तातोनायिपुत्रे तु जीवति। घातितः सुदुशंसेन परिभूय कुलं मम ॥४
न्यायवादो जनेतस्य (तापंकरोम्यहंकिन्त्वा) प्येवंकृतवान् दमाम्यहम्।
दुष्टं तथान्यो शिष्टानां पालनेऽधिकृता वयम् ॥ ५ ॥
पितातस्यापि (तस्यापि निहतं) निहतो दृष्ट्वा जीवन्ति शत्रवः।
तत्किमेतेन बहुना हा तातेति च किं पुनः ॥ ६ ॥
विलापेनात्र यत् कृत्यं तदेवोऽत्र करोम्यहम्। यदाहंतस्यरक्तेन देहोत्थेन वपुष्मतः
न करोमि गुरोस्तृप्तिं तत् प्रवेक्ष्ये हुताशनम् ॥ ७ ॥
तच्छोणितेनोदककर्म तस्य तातस्य सङ्ख्ये विनिपातितस्य।
मांसेन सम्यग्द्विजभोजनञ्च नचेत् प्रवेक्ष्यामि हुताशनन्तत् ॥ ८ ॥

साहाय्यमस्यासुरदेवयक्षगन्धर्वविद्याधरसिद्धसङ्घा ।
कुर्वन्ति चेत्तानपि धाम्नपूर्गैर्मरुमीकरोम्येव रुषासमेत ॥ ९ ॥
नि शूरमाधार्मिकमप्रशस्त न दाक्षिण्याल्य समरे निहत्य ।
भोक्ष्ये ततोऽहं पृथिवीञ्च कृत्स्ना वह्निं प्रवेक्ष्याम्यनिहत्य त था ॥ १० ॥
सुदुर्मति तापनवृद्धमौलिन घलन्त्यिन शान्तवचोविविधिनम् ।
हन्ताहमद्यारिलरन्धुमिव पद्मातिहस्त्यश्ववलं ममेतम् ॥ ११ ॥
रपोऽहमादाय धनु ससङ्गो रथीनथैवारिजल समेत्य ।
करोमि यै यत् कदन ममस्ता पश्यन्तु मे देवगणा समेता ॥ १२ ॥
यो य सहायो भविनाऽद्य तस्य मया समेतस्य रणाय भूय ।
तथैव नि शेषकुरक्षयाय समुद्यतोऽहं निजबाहुवीर्य ॥ १३ ॥
यदि कुलिशधरोऽस्मिन् मयुगेदेवराज पितृपतिरथ घोर दण्डमुद्यम्य कोपात्
धनपतिवरुणार्को रक्षितु न यतन्ते निशितशरवरौघैर्घातयिष्ये तथापि ॥ १४
नियतमतिरदोष काननात्पण्डुरक्तोमिपतितफलभक्ष्य सर्वभूतेषु मैत्र ।
प्रसभमिति मयि पुत्रे हिंसितो येन तात पिशितरुधिरतृप्तास्तस्य सन्त्वद्य गृध्रा ॥
इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे दमचरिते दमप्रतिज्ञावर्णननाम पञ्चत्रिंशदधिक
शततमोऽध्याय ॥ १३० ॥ *

---

* कलिकातास्थ पण्डितप्रवरजीवानन्द विद्यासागरमुद्रितमार्कण्डेयपुराणे
मार्कण्डेय उवाच
दमेन राज्ञाऽत्युग्रे पितृशत्रु पराजित । स पितातापसोऽन्यश्च तत्पता निर्भयमहत्
पलायनपरान् दृष्ट्वा किञ्चिद्रोषं दमेन तान् ॥ १ ॥
इति सार्धैक श्लोकं दत्त्वा पुनर्ग्रन्थोपसंहरणे 'एतत् महीयते'

षट्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

दमचरित्रेवपुष्मद्वधवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

तिप्रनिशाय तद्वानरिष्यन्तसुतोदमः। कोपामर्षविवृत्ताक्षः श्मश्रुमावृत्य पाणिना

हा हतोऽस्मीतिपितरं ध्यात्वा दैवं विनिन्द्य च।

प्रोवाच मन्त्रिणः सर्वानानिनाय पुरोहितम्॥ २॥

दम उवाच

यदत्रकृत्यंतद्ब्रूत ताते प्राप्ते सुरालयम्। श्रुतं भवद्भिर्यत्प्रोक्तं तेन शूद्रतपस्विना

वृद्धस्तपस्वीसन्नृपोवानप्रस्थव्रतेस्थितः। मौनव्रतधरोऽशक्तो मन्मात्रावेन्द्रसेनया

प्रोक्तं संश्रुत्ययास्यात्म्याद्याथातथ्यं वपुष्मते।

तेनापि खड्गमाकृष्य जटां सव्येन पाणिना॥ ५॥

धृत्वा जघान दुष्टात्मा लोकनाथमनाथवत्।

माता च सन्दिश्य हि मां धिक् शब्दं ब्रुवती सती॥ ६॥

मन्दभाग्यं च निश्शोकं प्रविष्टा हव्यवाहनम्।

तमालिङ्ग्य नरिष्यन्तं प्रयातास्त्रिदशालयम्॥ ७॥

सोऽहमद्य करिष्यामि यन्मे मातुरुदीरितम्।

हस्त्यश्वरथपादातं सैन्यं च परिकल्प्यताम्॥ ८॥

अनिर्याप्यपितुर्वैरमहत्वापितृघातकम्। अकृत्वा च वचोमातुर्जीवितं किमिहोत्सहे

इतिश्लोकसप्तकेन अध्यायसमाप्तिपूर्वकं पुराणसमापनं कृतम्। परन्तु मोहमयीस्थ श्रीवेङ्कटेश्वरमुद्रणयन्त्रे मुद्रितपुस्तके एतत्प्रसङ्गो यथाख्यानं सुष्ठुनिर्वर्ण्याष्टादशपुराणपरिगणनं विधाय पुनरुपसंहारः कृतस्तदेव वर्णनमस्माकं पार्श्वे श्री-

मार्कण्डेय उवाच

मन्त्रिणस्तद्वच श्रुत्वा हाहेत्युक्त्वा तथा च तत् ।
कृन्दन्तो विमनस समुत्पन्नबलवाहना ॥ १० ॥
निर्ययु सपरीवारा पुरस्कृत्य दमं नृपम् ।
गृहीत्वा चाशिषो विप्रात्त्रिकालज्ञात्पुरोधस ॥ ११
सहिराड्डिप निभस्य दम प्रायाद्वपुष्मतम् ।
सीमापालान्विनाशमत्तान्निघ्नन्याम्या दिशं त्वरन् ॥ १२ ॥

निरीक्ष्यत समाधान्त वपुष्मान्समरं नृपति । सङ्क्रन्दनसुतेनापि दमोऽशानोवपुष्मता

आयात स परीवार सामान्य सपरिच्छद ॥ १३ ॥

अङ्कितेनैनमनसा सर्वैन्यानिदिदेशाह । दूतं च प्रेषयामास निर्गम्य नगराद्बहि ॥
स्वशक्तितरमागच्छत्परित्यज्य महीतले । समार्यश्चत्रयस्थोऽस्यसमायातिसमान्वितम्

इमे मद्बाहुनिर्मुक्ता शिलाधौता पिपासिता ।
भित्त्वा शरीरं मद्बाणे पास्यन्ति रुधिरं तव ॥ १६ ॥

श्रुत्वादमस्तुल सर्वदूतस्रोत सर्वान्धरन् । स्मृत्वामतिसपूर्वोक्तानि श्वसन्नुरगोयथा
आहूत समरस्थैवपुमान्मेनाधिकम्पत । ततो युद्धमतीवासीद्दमस्य च वपुष्मत ॥
रथी रथिनानागोनागिनाहरिनाहयी । मत्त पन्त च विप्रेर्रं तयद्नुमु स्वमुन्
पश्यतां सर्वदेवानां सिद्धगन्धर्वरक्षसाम् । चरमे वसुधामरम्युध्यमाने दमे युधि
नगजोनरथनाभजनश्वाणमहानुर । ततो दमेन युयुधे सेनाध्यक्षो वपुष्मत
इदि विद्याधरमापुणागायमान्वितम् । तस्मिन्निपतितेसैन्य पलायनपरंभवत्

तस्माद्भिरूयान्सम्प्रिणानां शिवचैतन्यवर्षिणं महोदयानां कृपया प्रासस्य
इस्तलिखितमार्कण्डेयपुराणस्य पाठे समुचितं लिखितम् । अत सर्वं
जगत्स्मात पुनराम्नत्वां विद्वज्जनानुमोदितं ।

[सम्पादकः]

स स्वामिनंततःप्राहदमःशक्रंदमस्तथा । क्व यासिदुष्टपितरंघातयित्वातपस्विनम्
अशस्त्रंचतपस्यन्तंक्षत्रियोऽसिनिवर्तताम् । ततोनिवृत्यसदमंयोधयामाससानुजः
सपुत्रसहसम्बन्धिबान्धवैर्युयुधेरथी । ततः शरासनान्मुक्तबाणैर्व्याप्तास्ततोदिशः
दमं च सरथंचाशुशरजालैरपूरयन् । ततः पितृवधोत्थेन कोपेन स दमस्तथा ॥

चिच्छेद तांश्छरांस्तेषां चिच्छेदाथाऽन्यैश्च तानपि ।
एकैकेनबाणेन सप्तपुत्रांस्तथा द्विज !॥ २७ ॥
सम्बन्धिबान्धवान्मित्रान्निनाय यमसादनम् ।
वपुष्मान्सरथीक्रोधान्निहतात्मजबान्धवः ॥ २८ ॥

युयुधे च सतेनाजौशरैराशीविषोपमैः । चिच्छेदतस्यतान्बाणान्सदमश्च महामुने!
युयुधाते च संरब्धौपरस्परजयैषिणौ ।। परस्परशराघातविच्छिन्नधनुषौ त्वरा ॥
गृहीतखड्गावुत्तीर्यचिक्रीडातिमहाबलौ । दमः क्षणंनृपं ध्यात्वा पितरं निहतं वने
केशेष्वाकृष्यचाक्रम्यनिपात्यधरणीतले । शिरोधरायां पादेन भुजमुद्यम्यचाब्रवीत्
पश्यन्तु देवताःसर्वामानुषाः पन्नगाः खगाः । पाटयन्तं च हृदयंक्षत्रबन्धोर्वपुष्मतः
एवमुक्त्वाच सदमोहृदयं च व्यदारयत् । पातुकामश्चसस्सुरैः क्षतजेन निवारितः

ततश्चकार तातस्य रक्तेनैवोदकक्रियाम् ।
आनृण्यं प्राप्य स पितुः पुनः प्रायात्स्वमन्दिरम् ॥ ३५ ॥

वपुष्मतश्च मांसेन पिण्डदानं चकार ह । ब्राह्मणान्भोजयामासरक्षःकुलसमुद्भवान्

एवंविधा हि राजानो बभूवुः सूर्यवंशजाः ।
अन्येपि सुधियः शूरा यज्विनो धर्मकोविदाः ॥ ३७ ॥
वेदान्तपारगास्तांश्च न सङ्ख्यातुमिहोत्सहे ।
एतेषां चरितं श्रुत्वा नरः पापैः प्रमुच्यते ॥ ३८ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे दमचरित्रेवपुष्मद्वधवर्णनंनाम षट्त्रिंशदधिक-
शततमोऽध्यायः ॥ १३६ ॥

सप्तत्रिंशदधिकशततमोऽध्याय

उपसंहारेपुराणमाहात्म्यवर्णनम्

पक्षिण ऊचु

एवमुक्त्वा जैमिनेयं मार्कण्डेयो महामुनि ।

विसृज्य क्रौष्टुकिमुनि चक्रे माध्याह्निकक्रियाम् ॥ १ ॥

अस्माभिश्च श्रुततस्मात्ययत्तेप्रोक्तमहामुने । अनादिसिद्धमेतद्धिपुराणप्रोक्तस्वयम्भुवा

मार्कण्डेयाय मुनये यत्तऽस्माभिरदाहृतम् ।

पुण्य पवित्रमायुष्य धर्मकामार्थसिद्धिदम् ॥ ३ ॥

पठता शृण्वता नित्य सर्वपापप्रमोचनम् । आद्यावेतद्द्वत्ना येवप्रश्नाश्चत्वार एव हि

पितु पुत्रस्य सवादस्तथा सृष्टि स्वयम्भुव ।

तथा मनूना स्थितयो राज्ञा च चरित मुने ॥ ॰ ॥

अस्माभिरेतत्तेप्रोक्त किमद्य श्रोतुमिच्छसि । एतान्सर्वान्नर श्रुत्वापठन्वैवाप्तभाग्नुत

विधूयसर्वपापानिब्रह्मणोऽन्ते न्यमज्जेत् । अष्टादशपुराणानि यानि प्राह पितामह

तैया [illegible] सप्तम ज्ञेय मार्कण्डेय मुनिविश्रुतम् ।

ब्राह्म पाद्म वैष्णव च शैव भागवत तथा ॥ ८ ॥

तथान्य नारदीय च मार्कण्डेय च सप्तमम् । आग्नेयमष्टम प्रोक्त भविष्य नवम तथा

दशम ब्रह्मवैवर्त्त लैङ्गमेकादश स्मृतम् । वाराह द्वादश प्रोक्त स्कान्दमत्रत्रयोदशम्

चतुर्दश वामन च कौर्मपञ्चदश तथा । मात्स्य च गारुडचैव ब्रह्माण्ड च तत परम्

अष्टादशपुराणाना नामधेयानियत्पठेत् । त्रिसन्ध्य य जपेन्नित्यसोऽश्वमेधफललभेत्

सर्गश्चप्रतिसर्गश्च वशोमन्वन्तराणि च । वशानुचरित चैव पुराण पञ्चलक्षणम्

चतुःप्रश्नसमोपेतपुराणह्येतदुत्तमम् । श्रुत्वा पुनश्च ते पाप कल्पकोटिशतै कृतम्

ब्रह्महत्यादि पापानि यान्यन्यान्यशुभानि च ।

तानि सर्वाणि नश्यन्ति तृणं वातहतं यथा ॥ १५ ॥

पुष्करे दानजंपुण्यं श्रवणादस्यजायते । सर्ववेदाधिकफलंसमाप्त्याचाधिगच्छति
यः श्रावयेत्पूजयेत्तं यथादेवपितामहम् । गन्धपुष्पैस्तथावस्त्रैर्ब्राह्मणानां च तर्पणैः
यथा शक्त्या च दातव्यंनृपैर्ग्रामादिवाहनम् । एतत्पुराणमखिलंवेदार्थंसम्पबृंहितम्

धर्मशास्त्रैकनिलयं श्रुत्वा सर्वार्थमाप्नुयात् ॥ १८ ॥

श्रुत्वापुराणमखिलं व्यासं सम्पूजयेद्बुधः । धर्मार्थकाममोक्षाणांयथोक्तफलहेतवे

दद्याद्गां गुरवे स्वर्णवस्त्रालङ्कारसंयुताम् ।
श्रवणस्य फलावाप्त्यै दानैः सन्तोषयेद् गुरुम् ॥ २० ॥
अपूज्य पाठकर्त्तारं श्लोकमेकं शृणोति यः ।
नासौपुण्यमवाप्नोति शास्त्रचोरः स्मृतो हि सः ॥ २१ ॥

नतस्यदेवाः प्रीणन्ति पितरो नैवपुत्रकान् । दत्तंश्राद्धंतथैवच्छन्तितीर्थस्नानफलंनच
लभते शास्त्रचोरस्यनिन्दांसज्जनसंसदि । अवज्ञया न श्रोतव्यं शास्त्रमेतद्विचक्षणैः
पठ्यमानेत्ववज्ञाते साधुभिःशास्त्रउत्तमे । मूकोभवति जन्मानि सप्तमूर्खः प्रजायते
श्रुत्वातत्पूजयेद्यस्तु पुराणं सप्तमं पुनः । सर्वपापविनिर्मुक्तः पुनात्येव निजं कुलम्
पूतोयाति न सन्देहो विष्णुलोकंसनातनम् । च्युतस्ततःपुनर्नैवसम्भविष्यतिमानवः
पुराणश्रवणादेवपरंयोगमवाप्नुयात् । नास्तिकाय न दातव्यं वृषले वेदनिन्दके ॥
गुरुद्विजातिनिन्दायतथाभग्नव्रतायच । मातापित्रोर्निन्दकायवेदशास्त्रादिनिन्दिने
भिन्नमर्यादिने चैव तथा वैज्ञातिकोपिने । एतेषां नैव दातव्यं प्राणैः कण्ठगतैरपि
लोभाद्वायद्विवामोहाद्भयाद्वापि विशेषतः । पठेद्वापाठयेद्वापिसगच्छेन्नरकं ध्रुवम्

मार्कण्डेय उवाच

एतत्सर्वमुपाख्यानं धर्म्यंस्वर्गापवर्गदम् । यःशृणोतिपठेद्वापि सिद्धंतस्यसमीहितम्

आधिव्याधिजदुःखेन कदाचिन्नाभियुज्यते ।
ब्रह्महत्यादि पापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः ॥ २२ ॥
सन्तः स्वजनमित्राणि भवन्ति हितबुद्धयः ।

नाऽस्य गर्भमविष्यन्ति दम्पत्यो वा कदाचन ॥ ३३ ॥

सद्योऽपस्मारिरोगी च दुर्मित्रैर्नाशमीदृशि । परदारपरद्रव्यपरहिंसादिकिल्बिषैः

मुच्यतेऽशेषदुःखेभ्यो नित्यं चैव द्विजोत्तम ।

शान्तिं कीर्तिं स्मृतिं शान्तिं श्रीं पुष्टिस्तुष्टिश्च च ॥

नित्यं तस्य भवेद्विप्र यः शृणोति कथामिमाम् ॥ ३४ ॥

मार्कण्डेयपुराणमेतदखिलं शृण्वन्नशेषं पुमान्,
यो वा सम्यगुदीरयेद्गतमदं श्रोत्रो गतोऽपि द्विज ।
योगज्ञानविशुद्धसिद्धिसहितं स्थानादिगोपेऽव्ययी,
शक्राद्यैश्च सुरादिभिः परिवृतः स्वर्गे सदा पूज्यते ॥ ३५ ॥

पुराणमेतच्छ्रुत्वा च ज्ञानविज्ञानसंयुतम् । विमानवरमारुह्य स्वर्गलोके महीयते

पुराणाख्यसमाख्या च संख्याता तत्त्वबुद्धिना ।

श्लोकानां पञ्चसहस्राणि तथाष्टशतानि च ॥ ३८ ॥

श्लोकास्तत्र तथाशीति एकादश समाहिता ।

कथिता मुनिना पूर्वं मार्कण्डेयेन धीमता ॥ ३९ ॥

जैमिनिरुवाच

भवद्भिर्नाशितो ह्यस्मे संशयस्तोऽत्र द्विजाः । तद्बुद्धिः कृतं यत्र कथितं च करिष्यति

यूयं दीर्घायुषः सन्तु प्रज्ञाबुद्धिविशारदाः ।

माऽस्त्वियोगे तथा चास्तु बुद्धिरव्यभिचारिणी ॥ ४१ ॥

पितृशापस्मात्तदुःखाद्विमनस्यं व्यपैतु वः । एतावदुक्त्वा चागमज्जगाम स्वाश्रमं मुनिः

चिन्तयन्परमोदारं पक्षिणां वाक्यमीरितम् ॥ ४२ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे एतत्पुराणमाहात्म्यश्रवणपठनफलवर्णनं नाम
सप्तत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३७ ॥

शुभमस्तु सताम्

॥ श्रीः ॥

* परिशिष्टम्

—:*:—

प्राधानिकरहस्यवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

सावर्णिकमिदंसम्यक् प्रोक्तंमन्वन्तरं तव । तथैवदेवीमाहात्म्यं महिषासुरघातनम्

उत्पत्तयश्च या देव्या मातृणां च महामृधे ।
तथैव संस्तवो देव्याश्चामुण्डाया महाहवे ॥ २ ॥
शिवदूत्याश्च माहात्म्यं वधं शुम्भनिशुम्भयोः ।
रक्तबीजवधश्चैव सर्वं मे तत्र चोदितम् ॥ ३ ॥

श्रूयतांमुनिशार्दूल! रहस्याण्यपराणि ते । इदं रहस्यंपरमंनाऽऽख्येयं कस्यचिन्मुने

भक्तोऽसीति न मे किञ्चित्तवावाच्यं मुनीश्वर ।
सर्वस्याद्यामहालक्ष्मी स्त्रिगुणा परमेश्वरी ॥ ५ ॥
लक्ष्यालक्षस्वरूपासाव्याप्य कृत्स्नं व्यवस्थिता ।
मातुलिङ्गं गदां खेटं पानपात्रं च बिभ्रती ॥ ६ ॥

नागंलिङ्गंचयोगं(नि)चबिभ्रतीनिजमूर्द्ध । तप्तकाञ्चनवर्णाभा तप्तकाञ्चनभूषणा
शून्यं तदखिलंस्वेन पूरयामास तेजसा । शून्यं तदखिलंलोकं तमसा केवलेन हि
साभिन्नाञ्जनसङ्काशादंष्ट्राङ्कितवरानना । विशाललोचनानारी बभूवतनुमध्यमा
खड्गपाशशिरःखेटैरलङ्कृतचतुर्भुजा । कवन्धहारंशिरसा बिभ्राणहि शिरःस्रजम्

* अस्माभिः सर्वप्रकाशितेऽस्मिन्पुराणे हस्तलिखितपुस्तकोपलम्भादेषपाठः परिशिष्टेदीयते । एतद्रहस्यत्रयस्यपाठोऽस्मत्प्रकाशितमार्कण्डेयपुराणेनोपलभ्यते । माहेश्वरतः शिवचैतन्यवर्णिमहोदयानां प्रेषितेऽतीवपुरातने हस्तलिखितेऽस्मिन् ग्रन्थे रहस्यत्रयी सप्तशतीमनुसन्निवेशिता अतस्तत्रपाठेयोजनायाऽधुनापरिशिष्ट-रूपेण विदुषांप्रीत्यै दीयते । अस्माभिस्तत्रनोपादानं कृतं प्रस्तुतहस्तलिखित

सा प्रोवाच महालक्ष्मीं तामसीं प्रमदोत्तमा।
नामकर्म च मे मातर्देहि तुभ्यं नमोऽस्तु ते ॥ ११ ॥
तां प्रोवाच महालक्ष्मीस्तामसीं प्रमदोत्तमाम्।
ददामि तव नामानि यानि कर्माणि तानि ते ॥ १२ ॥
महामाया महाकाली महामारी क्षुधा तृषा
निद्रा तृष्णा चैकवीरा कालरात्रिर्दुरत्यया ॥ १३ ॥
इमानि तव नामानि प्रतिपाद्यानि कर्मभिः।
एभिः कर्माणि ते ज्ञात्वा योऽधीते सोऽश्नुते सुखम् ॥ १४ ॥
तामित्युक्त्वा महालक्ष्मीः स्वरूपमपरं मुने।
सत्त्वाख्येनातिशुद्धेन गुणेनेन्दुप्रभं दधौ ॥ १५ ॥
अक्षमालाङ्कुशधरावीणापुस्तकधारिणी। सा बभूव वरा नारी नामान्यस्यै च सा ददौ
महाविद्या महावाणी भारती वाक्सरस्वती।
आर्या ब्राह्मी महा (काम) धेनुर्वेदगर्भा च धीश्वरी ॥ १७ ॥
अथोवाचमहालक्ष्मीमहाकालीं सरस्वतीम्। युवाञ्जनयतां देव्यौ मिथुने स्वानुरूपत
इत्युक्त्वा ते महालक्ष्मीः ससर्ज मिथुनं स्वयम्।
हिरण्यगर्भौ रुचिरौ स्त्रीपुंसौ कमलासनौ ॥ १९ ॥
ब्रह्मन्विधे विरिञ्चेति धातरित्याह तं नरम्।
श्रीः पद्मे कमले लक्ष्मीत्याह माता स्त्रियं च ताम् ॥ २० ॥
महाकाली भारती च मिथुने सृजतः सह। एतयोरपि रूपाणि नामानि च वदामि ते
नीलकण्ठं रक्तबाहुं श्वेताङ्गं चन्द्रशेखरम्। जनयामास पुरुषं महाकाली सितां स्त्रियम्
स रुद्रः शङ्करः स्थाणुः कपर्दी च त्रिलोचनः।
त्रयी विद्या कामधेनुः सा स्त्री भाषा स्वराक्षरा ॥ २३ ॥

पुराणस्य प्रधानमाहात्म्यात्।

सरस्वतीस्त्रियंगौरीं कृष्णं च पुरुषं मुने। जनयामासनामानि तयोरपिवदामिते
विष्णुः कृष्णो हृषीकेशो वासुदेवो जनार्दनः।
उमागौरी सती चण्डी सुन्दरी सुभगासुखा (शिवा) ॥ २५ ॥
एवं युगतयः सर्वाः पुरुषत्वं प्रपेदिरे। चक्षुष्मन्तः प्रपश्यन्ति नेतरेतद्विदोजनाः ॥
ब्रह्मणेप्रददौपत्नीं महालक्ष्मीर्मुनेस्त्रियम्। रुद्रायगौरीं वरदां वासुदेवायच श्रियम्
स्वरया सह सम्भूय विरिञ्चोऽण्डमजीजनत्।
बिभेद भगवान् रुद्रस्तद्गौर्या सहवीर्यवान् ॥ २८ ॥
अण्डमध्ये प्रधानादि कार्यजातमभून्मुने। महाभूतात्मकंसर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम्
पुपोष पालयामास तल्लक्ष्म्या सह केशवः। सञ्जहारेद्रुशंसर्वं सहगौर्या महेश्वरः ॥
महालक्ष्मीर्महाभाग सर्वदेवमयीश्वरी।
साकारा च निराकारा सैव नानाभिधानभृत् ॥ ३१ ॥
नामान्तरैर्निरूप्यैषा नाम्नाऽनेकेन कुत्रचित्।
नामानि च त्वयाब्रह्मन्नाख्येयानि न कस्यचित् ॥ ३२ ॥
इति मार्कण्डेयपुराणे देवीमाहात्म्ये प्राधानिकरहस्यवर्णनंनाम
नवाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८९ ॥

वैकृतिकरहस्यवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

त्रिगुणा तामसी देवी सात्विकी या त्रिधोदिता।
सा सर्वा चण्डिका दुर्गा भद्रा भगवतीति च ॥ १ ॥
योगनिद्रा हरेरुक्ता महाकाली तमोगुणा।
मधुकैटभनाशार्थं यां तुष्टावाऽम्बुजासनः ॥ २ ॥
दशवक्त्रा दशभुजा दशपादाञ्जनप्रभा। विशालयाराजमानात्रिंशल्लोचनमालया

स्फुरद्दशनदंष्ट्रासाभीमरूपामहामुने। रूपसौभाग्यकान्तीनां साप्रतिष्ठामहाश्रया
खड्गबाणगदाशूलशङ्खचक्रभुशुण्डभृत्। परिघकार्मुकशीर्षनिश्च्योतद्रुधिरंदधौ(र्धौ)

एषा सा वैष्णवी माया कालरात्रिर्दुरत्यया।
आराधिता वशीकुर्यात् पूजाकर्तुश्चराचरम् ॥ ८ ॥

सर्वदेवशरीरेभ्योयाविर्भूतामितप्रभा। त्रिगुणासामहालक्ष्मीः साक्षान्महिषमर्दिनी
श्वेताननाऽनीलभुजासुश्वेतस्तनमण्डला। रक्तमध्या रक्तपादा रक्तजङ्घोरुरुन्मदा

सुचित्रजघनाचित्रमाल्याम्बरविभूषणा।
चित्रानुलेपना कान्ति रूपसौभाग्यमालिनी (शालिनी)॥ ९ ॥
अष्टादशभुजा पूज्या स सहस्राम्बुजासना।
आयुधान्यत्र वक्ष्यन्ते दक्षिणाधःकरक्रमात् ॥ १० ॥

अक्षमालाचकमलं बाणोऽसिकुलिशंगदा। चक्रत्रिशूलपरशु शङ्खोघण्टाचपाशका
शक्तिर्दण्डश्चर्मचापं पानपात्रं कमण्डलु। अलङ्कृतभुजामेभिरायुधैः कमलासनाम्
सर्वदेवमयीमीशां महालक्ष्मीमिमांमुने। पूजयेत्सर्वलोकानां सदेवानामप्रभुर्भवेत् ॥

गौरीदेहात्समुद्भूता या सत्त्वैकगुणाश्रया।
साक्षात्सरस्वतीप्रोक्ता शुम्भासुरनिबर्हणा ॥ १४ ॥

दधौचाष्टभुजाबाणमुशलं शूलचक्रभृत्। शङ्खं घण्टां लाङ्गलञ्च कार्मुकञ्चमहामुने!
एषा सम्पूजिताभक्त्यासर्वज्ञत्वंप्रयच्छति। निशुम्भमथनीदेवी शुम्भासुरनिबर्हणी
इत्युक्तानि स्वरूपाणिमूर्तीनां तवभार्गुरे। उपासनं जगन्मातुः पृथगासांनिशामय
महालक्ष्मीयदापूज्या महाकालीसरस्वती। दक्षिणोत्तरयोः पूज्येपृष्ठतोमिथुनत्रयम्

विरिञ्चि सु (स्व) रयामध्ये रुद्रोगौर्या च दक्षिणे।
वामे लक्ष्म्या हृषीकेशः पुरतो देवतात्रयम् ॥ १६ ॥

अष्टादशभुजामध्येवामेचास्यादशानना। दक्षिणेऽष्टभुजालक्ष्मीर्महतीतिसमर्चयेत्

पूर्वादिदले पूज्या असिताङ्गादिभैरवा।

अष्टादशभुजा चैषा यदापूज्या महामुने। दशाननाचाष्टभुजा दक्षिणोत्तरयोस्तदा

कालमृत्यूचसम्पूज्यौसर्वारिष्टप्रशान्तये । अष्टाचाष्टभुजापूज्याशुम्भासुरनिवर्हिणी
नवास्याः शक्तयः पूज्यास्तथारुद्रविनायकौ ।
नमोदेव्याइतिस्तोत्रैर्महादेवीं समर्चयेत् ॥ २७ ॥
अवतारत्रयार्चायां स्तोत्रमन्त्रास्तदाश्रयाः । अष्टादशभुजाचैवापूज्यामहिषमर्दिनी
महालक्ष्मीर्महाकाली सैवप्रोक्तासरस्वती । ईश्वरीपुण्यपापानां सर्वलोकमहेश्वरी
महिषान्तकरी येन पूजिता स जगत्प्रभुः ।
पूजयेज्जगतां धात्रीं चण्डिकां भक्तवत्सलाम् ॥ २९ ॥
अर्घ्यादिभिरलङ्कारैर्गन्धपुष्पाक्षतैस्तथा । धूपैर्दीपैश्चनैवेद्यैर्नानाभक्ष्य समन्वितैः ॥
रुधिराक्तेन बलिना मांसेन सुरयासुने । प्रणामाचमनीयेन चन्दनेन सुगन्धिना ॥
सकर्पूरैश्चताम्बूलैर्भक्तिभावसमन्वितैः । वामभागेऽग्रतोदेव्याश्छिन्नशीर्षमहासुरम्
पूजयेन्महिषं येन प्राप्तं सायुज्यमीशया ।
दक्षिणे पुरतः सिंहं समग्रं धर्ममीश्वरम् ॥ ३०
वाहनम्पूजयेद्देव्या धृतंयेनचराचरम् । लिखित्वाऽष्टदलंपद्मं चन्दनागुरुकुङ्कमैः ॥
षट्कोणं तद्गतं कृत्वा देवीं तन्मध्यतो न्यसेत् ।
ततःकृताञ्जलिर्भूत्वा स्तुवीत चरितैरिमैः ॥ ३२ ॥
कुर्यात्तुस्तवनंधीमांस्तस्यामेकाग्रमानसः । एकेन वा मध्यमेन नैकेनेतरयोरिह ॥
चरितार्द्धं तु न जपेज्जपंश्छिद्रमवाप्नुयात् ।
स्तोत्रमन्त्रैः स्तुवीतेमां यदि वा जगदम्बिकाम् ॥ ३४ ॥
प्रदक्षिणां नमस्कारं कृत्वा मूर्द्धिन कृताञ्जलिः ।
क्षमापयेज्जगद्धात्रीं मुहुर्मुहुरतन्द्रितः ॥ ३५ ॥
प्रतिश्लोकंचजुहुयात्पायसंतिलसर्पिषा । जुहुयात्स्तोत्रमन्त्रैर्वाचण्डिकायैशुभंहविः
नमोनमः पदं देवीं पूजयेत्सुसमाहितः । प्रयतःप्राञ्जलि प्रह्वः प्राणःनारोप्यचात्मनि
(शुचिस्तां) सुचिरं भावयेद्देवी चण्डिकां तन्मनाभवेत् ।
एवं यः पूजयेद्भक्त्या प्रत्यहं परमेश्वरीम् ॥ ३८ ॥

भुक्त्वा भोगान्यथाकामं देवीसायुज्यमाप्नुयात् ।
यो न पूजयते नित्यं चण्डिकां भक्तवत्सलाम् ।
भस्मीकृत्यास्य पुण्यानि निर्दहेत्तमपीश्वरी (त्परमेश्वरी)॥ ३६ ॥
तस्मात्पूजयधर्मज्ञसर्वलोकमहेश्वरीम् । यथोक्तेनविधानेन चण्डिकासमवाप्स्यसि
इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे देवीमाहात्म्ये वैकृतिकरहस्यवर्णननाम
नवतितमोऽध्याय ॥ ९० ॥

मूर्तिरहस्यवर्णनम्

मार्कण्डेय उवाच

नन्दा भगवती माया याऽयमनन्दजा शुभा ।
सा स्तुता पूजिता भक्त्या वशाकुर्याज्जगत्त्रयम् ॥ १ ॥
कनकोत्तमकान्ति सा सुकान्ति कनकाम्बरा ।
देवी कनकवर्णा सा कनकोत्तमभूषणा ॥
कमलाङ्कुशपाशाब्जैरलङ्कृतचतुर्भुजा ।
इन्दिरा कमलालक्ष्मी सा श्री (श्री) रुक्माम्बुजासना ॥ ३ ॥
यारक्तदन्तिकानामदेवीप्रोक्तामयानघ । तस्याः स्वरूपवक्ष्यामिश्रृणुपापभयापहम्
रक्ताम्बरा रक्तवर्णा रक्तसर्वाङ्गभूषणा । रक्तायुधा रक्तनेत्रा रक्तकेशातिभीषणा ।
रक्ततीक्ष्णनखा रक्तदशनारक्तदन्तिका । पतिंनारीवानुरक्ता देवीभक्त भजेज्जनम् ।
वसुधेवविशालासासुमेरुयुगलस्तनी । दीर्घौलम्बावतिस्थूलौ तावतीवमनोहरौ
कर्कशावतिकान्तौ च सर्वानन्दपयोनिधी ।
भक्तान्सम्पाययेद्देवी सर्वकामदुघौ स्तनौ ॥ ८ ॥
खड्ग पात्र च मुशल लाङ्गलञ्च बिभर्ति सा ।

आख्याता रक्तचामुण्डा देवीयोगेश्वरीति च ॥ ६ ॥

अनयाव्याप्तमखिलंजगत्स्थावरजङ्गमम् । इमांयःपूजयेद्भक्त्यासव्याप्नोतिचराचरम्

अधीते यः इमंनित्यं रक्तदन्त्यावपुःस्तवं । तंमापरिचरेद्देवी पुत्रंप्रियमिवाङ्गना ॥

शाकम्भरीनीलवर्णा नीलोत्पलविलोचना । गम्भीरनाभिस्त्रिवलीविभूषिततनूदरी ॥

सुकर्कशसमोत्तुङ्गवृत्तपीनघनस्तनी । मुष्टीशिलीमुखापूर्णा कमलं कमलालया ॥

पुष्पपल्लवमूलादि फलाढ्यं शाकसञ्चयम् ।

काम्यानन्तरसैर्युक्तं क्षुत्तृट् (ण्) मृत्युज्वरापहम् ॥ १४ ॥

कार्मुकञ्चस्फुरत्कान्तिबिभ्रतीपरमेश्वरी । शाकम्भरीशताक्षीसासैवदुर्गाप्रकीर्तिता

उमा गौरी सती चण्डी कालिका सा च पार्वती ।

शाकम्भरींस्तुवन् ध्यायन् जपन्सम्पूजयन्नमन् ॥ १६ ॥

अक्षय्यमश्नुतेशीघ्रमन्नपानामृतं फलम् । भीमापिनीलवर्णासादंष्ट्रादशनभासुरा

विशाललोचनादेवी वृत्तपीनपयोधरा । चण्डहासंघटमरुं शिरःपात्रं च बिभ्रती

एकवीरा कालरात्रिः सैवोक्ताकामदा स्तुता ।

तेजोमण्डलदुर्धर्षाभ्रामरी चित्रकान्तिभृत् ॥ १९ ॥

चित्राभरणपाणिः सा महागौरीतिगीयते ।

इत्येता मूर्त्तयो देव्याः ख्यातास्ते भागुरे ! मया ॥ २० ॥

जगन्मातुश्चण्डिकायाः कीर्तिताः कामधेनवः ।

इदं रहस्यं परमं न वाच्यं यस्य कस्यचित् ।

व्याख्यानं दिव्यमूर्तीनामधीष्वाऽवहितः स्वयम् ॥ २१ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेदेवीमाहात्म्ये मूर्त्तिरहस्यवर्णनंनामैक-
नवतितमोऽध्यायः ॥ ६१ ॥

———